शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यास : एक मूल्यांकन

SHATRUGHAN PRASAD KE EAITIHASIK UPANYAS : EK MULYANKAN

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (हिन्दी)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोधार्थी – रघुवीर सिंह

शोध पर्यवेक्षक

डॉ मनीषा शर्मा

सह आचार्य

हिन्दी विभाग

राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2020

प्रमाण पत्र

मुझे प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि शोध प्रबन्ध ''शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यास : एक मूल्यांकन'' शोधार्थी रघुवीर सिंह (No. RS/1072/13) ने कोटा विश्वविद्यालय कोटा के कला संकाय में पीएच.डी. (हिन्दी) के नियमानुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ मेरे निर्देशन में पूर्ण किया है।

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्सवर्क पूर्ण किया है।
2. शोधार्थी ने 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूरा किया है।
3. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार समय–समय पर अपने कार्य का प्रगति प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है।
4. शोधार्थी ने विभाग व संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी द्वारा यू.जी.सी. से अनुमोदित शोध पत्रिका में शोध पत्र का प्रकाशन किया है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय कोटा की पीएच.डी. उपाधि प्रदत्त किये जाने हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुशंसा करती हूँ।

दिनांक : (डॉ मनीषा शर्मा)

स्थान : शोध पर्यवेक्षक

Anti Plagiarism Certificate

It is certified that Ph.D. thesis Titled ''शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यास : एक मूल्यांकन'' by Raghuveer Singh (No. RS/1072/13) has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, photo, table, paragraph or section has been copied verbatim for previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.

b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism) no ideas, processes, result or words of other have been presented as author's own work.

c. There is no fabrication of data or result which have been compiled and analysed.

d. The is no falsification by manipulation research materials, equipment or processes or changing or omitting data or result such that the research is not accurately represented in the research record.

e. The thesis has been checked using 'URKUND' Antiplagiarism Software and found within limits as per HEC plagiarism policy and instructions issued from time to time.

(Raghuveer Singh)	(Dr. Manisha Sharma)
Place :	Place : ....
Date :	Date : ....

शोध सार

प्रस्तुत शोध प्रबंध में शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों का समग्र मूल्यांकन किया गया है। यह मूल्यांकन उनके उपन्यासों में निहित अतीतकालीन जीवन के माध्यम से व्यक्त विचारों पर केन्द्रित है।

प्रथम अध्याय में ऐतिहासिक उपन्यासों के उद्भव व विकास क्रम को दर्शाया गया है। प्रेमचन्द को केन्द्र में रखकर विकास क्रम को वर्गीकृत किया गया है। किशोरीलाल गोस्वामी से लेकर शत्रुघ्न प्रसाद तक के लगभग सभी चर्चित ऐतिहासिक उपन्यासकारों का उल्लेख किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यासों में व्यक्त विषयवस्तु के साथ–साथ उपन्यासकार की विचारधारा को भी स्पष्ट किया गया है।

द्वितीय अध्याय शत्रुघ्न प्रसाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आधारित है। इस अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद की पारिवारिक एवं जीवनकालीन स्थितियों को वर्णित करते हुए उनके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं को भी विवेचित किया गया है। साथ ही उनके बहुआयामी कृतित्व का भी विवेचन–विश्लेषण किया गया है। परिवार आदि की सम्पूर्ण जानकारी प्रस्तुत करते हुए उनकी जीवनशैली, जीवन संघर्ष एवं व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं को दर्शाया गया है। उनके अध्यापकीय, संपादकीय एवं लेखकीय अवदान को दर्शाते हुए उनके कृतित्व को वर्गवार वर्णित किया गया है।

तृतीय अध्याय शत्रुघ्न प्रसाद रचित उपन्यासों की कथ्यगत एवं शिल्पगत विशेषताओं पर आधारित है। इस अध्याय का मूल्यांकन कथ्य एवं शिल्प के लिए आलोचकों द्वारा निर्धारित मापदण्डों के आधार पर किया गया है। प्रत्येक उपन्यास की मूल संवेदना को व्यक्त करते हुए समग्र रूप में व्यक्त विचारों का भी उल्लेख किया गया है। इतिहास के प्रति आस्था, राष्ट्रीय गौरव की भावना, सांस्कृतिक निष्ठा, प्रगतिशील चेतना आदि भावों के आधार पर उनके उपन्यासों का विवेचन किया गया है। शैली, भाषा एवं औपन्यासिक संरचना से सम्बन्धित विशेषताओं को भी विश्लेषित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय इतिहास एवं कल्पना के समन्वय पर आधारित है। इस अध्याय में ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए इतिहास और कल्पना तत्व के महत्व को स्पष्ट करते हुए यह दर्शाया गया है कि शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में इतिहास एवं कल्पना का संतुलित एवं उचित समन्वय किया गया है। उपन्यासों में वर्णित ऐतिहासिक तथ्यों को इतिहास ग्रन्थों के उद्धरणों द्वारा प्रमाणित एवं अनुमोदित किया गया है। कल्पित प्रसंगों का उल्लेख करते हुए उनके महत्व एवं उपयोगिता को भी सिद्ध किया गया है। इतिहास–कल्पना की कुशल एवं कलात्मक समन्वय क्षमता को भी व्यक्त किया गया है।

पंचम अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में अभिव्यक्त युगीन चेतना का विवेचन किया गया है। इतिहास के भिन्न–भिन्न कालखण्डों की धटनाओं एवं पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने जिस जागृति को पैदा करने का प्रयास किया है, उस चेतना के स्वरूप को आधार बनाकर मूल्यांकन किया गया है। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक–सांस्कृतिक, मूल्यपरक चेतना को उपन्यासों में वर्णित प्रसंगों एवं उद्धरणों के माध्यम से विवेचित किया गया है।

षष्टम अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद का समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासकारों के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, शरद पगारे, मनमोहन सहगल, भगवतीशरण मिश्र, राजेन्द्र मोहन भटनागर, मेवाराम एवं लक्ष्मीनारायण नंदवाना द्वारा रचित समकालीन विषयवस्तु पर आधारित कृतियों के आधार पर शत्रुघ्न प्रसाद के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। विषयवस्तु, इतिहास, कथ्य, शिल्प, युगबोध एवं वर्तमान उपयोगिता की दृष्टि से तुलनात्मक मूल्यांकन किया गया है।

सप्तम अध्याय में ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य में शत्रुघ्न प्रसाद के योगदान को रेखांकित किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य की समृद्धि में एवं इस परम्परा को आगे बढ़ाने में शत्रुघ्न प्रसाद का महत्वपूर्ण अवदान है। इस अध्याय में यही तथ्य दर्शाया गया है। ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा को विकसित करने, वैचारिक समृद्धि प्रदान करने, भविष्य के लिए उपयोगी होने के संदर्भ में उनके योगदान एवं महत्व को दर्शाकर ऐतिहासिक उपन्यासकारों में उनका स्थान निर्धारित किया गया है।

अष्टम अध्याय उपसंहार है जिसमें सभी अध्यायों में निहित विचारों को सार रूप में अभिव्यक्त किया गया है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की मूल प्रेरणा एवं संवेदना को जो अन्य अध्यायों में विस्तार से वर्णित हैं, इस अध्याय में निष्कर्षात्मक रूप में व्यक्त की गई है। इसमें शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों का समापन संदेश है।

निष्कर्षतः प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों का विवेचन उनमें व्यक्त इतिहास तत्व के साथ–साथ आधुनिक चेतना के आधार पर किया गया है और ऐतिहासिक उपन्यास परम्परा के साथ जोड़कर उनका मूल्यांकन किया गया है। इस परम्परा में शत्रुघ्न प्रसाद के योगदान को दर्शाते हुए ऐतिहासिक उपन्यासकारों में उनका महत्व निर्धारित किया गया है।

घोषणा शोधार्थी

मैं रघुवीर सिंह (शोधार्थी – हिन्दी विभाग) यह घोषणा करता हूँ कि मेरा यह शोध प्रबन्ध ''शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यास : एक मूल्यांकन'' जो मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है, यह मेरा अपना शोध कार्य है। मैंने यह शोध कार्य डॉ मनीषा शर्मा, सह आचार्य, हिन्दी के निर्देशन में पूर्ण किया है। यह मेरा अपना मौलिक कार्य है। मैंने अपने विचारों को अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है और जहाँ दूसरे विचारों और शब्दों का प्रयोग किया गया है, वह मेरे द्वारा मान्य स्त्रोतों से लिये गए है। अपरिहार्य स्थिति में ली गई ऐसी हर सामग्री का यथा स्थान संदर्भ एवं आभार व्यक्त कर दिया गया है, जो कार्य इस शोध कार्य में प्रस्तुत किया गया है।

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मैंने विश्वविद्यालय के सभी अकादमिक नियमों का निष्ठा एवं ईमानदारी से पालन किया है, तथा किसी तथ्य को गलत प्रस्तुत नहीं किया है। मैं समझता हूँ कि मेरे द्वारा किसी भी नियम उल्लंघन पर मेरे खिलाफ प्रशासनिक कार्यवाही की जा सकती है। मेरे खिलाफ जुर्माना भी लगाया जा सकता है यदि मैंने किसी स्त्रोत से बिना उसका नाम दर्शाये या जिस स्त्रोत से अनुमति की आवश्यकता हो, बिना अनुमति के लिया हो।

दिनांक : .... रघुवीर सिंह

स्थान : .... शोधार्थी

(No. RS/1072/13)

प्रमाणित किया जाता है कि रघुवीर सिंह, शोधार्थी (No. RS/1072/13) द्वारा दी गई उपर्युक्त सभी सूचनाएं मेरी जानकारी के अनुसार सही है।

दिनांक : .... (डॉ मनीषा शर्मा)

स्थान : .... शोध पर्यवेक्षक

प्राक्कथन

उपन्यास आज आधुनिक साहित्यिक विधाओं में सर्व लोकप्रिय एवं सशक्त गद्य विधा के रूप में मान्य है। ऐतिहासिक उपन्यास अतीतकालीन यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाला उपन्यास का वह रूप है जिसमें उपन्यास और इतिहास का मेल होता है। इस विधा को विकसित एवं समृद्ध करने वाले उपन्यासकारों में शत्रुघ्न प्रसाद का उल्लेखनीय नाम है। उनका मानना है कि काल अखण्ड व अनवरत है। अतीत वर्तमान के साथ अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। अतः इतिहास, वर्तमान एवं भविष्य मानव जीवन की अनवरत कड़ी है। ऐतिहासिक उपन्यास लेखन को वर्तमान एवं भविष्य के लिए उपयोगी सिद्ध करते हुए उन्होंने भारतीय इतिहास के भिन्न–भिन्न कालखण्डों पर ऐतिहासिक उपन्यासों का श्रेष्ठ सृजन किया है।

''शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यास : एक मूल्यांकन'' विषय पर शोधरत होने से पूर्व मेरी ऐतिहासिक साहित्य के अध्ययन में रूचि रही है। इस शोध विषय का चयन इसी रूचि का परिणाम रहा है। महाविद्यालयी जीवन के दौरान अनायास ही 'बाणभट्ट की आत्मकथा' पढ़ने का अवसर मिला, जिसने मुझे गहराई तक प्रभावित किया। बाद में संयोगवश अनेक वर्ष अध्ययन बाधित रहा। साहित्यिक मनीषी प्रेममोहन लखोटिया के सम्पर्क में आने पर नीरज जैन रचित गोमटेश गाथा, बंकिम रचित आनन्द मठ एवं जयशंकर प्रसाद के नाटकों को पढ़ने का अवसर मिला जिन्होंने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से उपजी रूचि को और प्रबल बना दिया। लम्बे अन्तराल के बाद स्नातकोत्तर एवं नेट की तैयारी के दौरान डॉ नगेन्द्र एवं हरदयाल द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों का संक्षिप्त सा उल्लेख पढ़ने को मिला। उनके उपन्यासों के शीर्षकों ने मुझे रोमांचित किया। शोध करने का अवसर मिलने पर मेरा मन शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की ओर प्रवृत्त हुआ। विषय चयन की ओर उत्सुक शोधार्थी मन में यही नाम घर कर गया। शोध पर्यवेक्षक डॉ मनीषा शर्मा से स्वीकृति मिलने पर मेरा संकल्प दृढ़ हो गया और मन उल्लसित हो उठा एवं आत्मविश्वास प्रबल हो गया। मेरी ऐतिहासिक साहित्य के प्रति रूचि जब शोधकार्य की ओर परिणत हुई तो मन में आत्मतोष की तृप्ति महसूस हुई। मैंने इसी विषय पर शोध करने का निश्चय कर लिया। पर्यवेक्षक महोदया डॉ मनीषा शर्मा के कुशल मार्गदर्शन में यह शोध कार्य पूर्ण किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को सुविधा की दृष्टि से उपसंहार सहित आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय में उपन्यास एवं इतिहास के अर्थ को विभिन्न परिभाषाओं के माध्यम से स्पष्ट करते हुए ऐतिहासिक उपन्यास का अर्थ भी स्पष्ट किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यास का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके उद्भव, विकास–क्रम एवं परम्परा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकारों एवं उनके द्वारा रचित उपन्यासों का भी उल्लेख किया गया है।

द्वितीय अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विशिष्टताओं को वर्णित किया गया है। शत्रुघ्न प्रसाद की जन्मकालीन पारिवारिक स्थिति, वर्तमान पारिवारिक स्थिति, उनके जीवन संघर्ष एवं उनकी प्रेरणाओं का उल्लेख करते हुए उनके व्यक्तित्व के विविध पहलुओं का वर्णन किया गया है। उनके कृतित्व का विवरण देते हुए उनके द्वारा रचित रचनाओं का परिचय दिया गया है। विभिन्न संस्थाओं द्वारा उनको मिले सम्मानों एवं पुरस्कारों का भी उल्लेख इस अध्याय में किया गया है।

तृतीय अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों की कथ्यगत एवं शिल्पगत विशेषताओं का विवेचन किया गया है। आलोचकों द्वारा निर्धारित मापदण्डों के अनुसार शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों का मूल्यांकन किया गया है। उपन्यासों में व्यक्त मूल संवेदना एवं औपन्यासिक संरचना को विस्तारपूर्वक विवेचित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में व्यक्त इतिहास एवं कल्पना तत्वों पर आधृत है। इस अध्याय में इतिहास और कल्पना को परिभाषित करते हुए उपन्यासों में निहित ऐतिहासिक तथ्यों एवं कल्पनात्मक प्रसंगों का अलग–अलग विवरण प्रस्तुत किया गया है। ऐतिहासिक तथ्यों की सत्यता इतिहास ग्रन्थों के उद्धरण देकर सिद्ध एवं प्रमाणित की गई है। इतिहास एवं कल्पना के कलात्मक संयोजन को भी दर्शाया गया है।

पंचम अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में व्यक्त राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं मूल्यपरक चेतना का वर्णन किया गया है। विभिन्न कालखण्डों के यथार्थ से उपजी सजगता एवं आधुनिक प्रगतिशील चेतना का सामंजस्य स्थापित कर इतिहास के माध्यम से सजग होने की प्रेरणा प्रदान की गई है।

षष्टम अध्याय में समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासकारों के साथ शत्रुघ्न प्रसाद का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, शरद पगारे, मनमोहन सहगल, भगवती शरण मिश्र, मेवाराम, राजेन्द्र मोहन भटनागर एवं लक्ष्मीनारायण नन्दवाना का साहित्यिक परिचय देते हुए कथ्य, शिल्प, युगबोध, इतिहास दृष्टि व आधुनिक उपयोगिता के आधार पर तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

सप्तम् अध्याय में ऐतिहासिक उपन्यास परम्परा में शत्रुघ्न प्रसाद के योगदान को दर्शाते हुए इस परम्परा में उनका स्थान निर्धारित किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यासों को समृद्ध करने के साथ–साथ एक सुस्पष्ट एवं परिष्कृत इतिहास दृष्टि देने, प्रगतिशील विचारधारा को पुष्ट करने व वैचारिक परिवक्वता प्रदान करने की दृष्टि से उनका इस परम्परा में अद्वितीय योगदान रहा है, इसी तथ्य को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है।

अष्टम अध्याय उपसंहार है जिसमें सभी अध्यायों के सार तत्व को दर्शाते हुए समापन संदेश दिया गया है। उपन्यासकार की मूल प्रेरणा को अभिव्यक्त करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय के अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची दी गई है।

इस शोध कार्य को पूर्ण करने में माँ करणी की असीम कृपा एवं अनेक मनीषियों एवं सहृदयी सहयोगियों का आशीर्वाद साथ रहा है। इस कृपा एवं सहयोग ने ही मेरे लिए असम्भव से इस कार्य को सम्भव बनाया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने पर सर्वप्रथम मैं अपनी शोध–पर्यवेक्षक महोदया डॉ मनीषा शर्मा, सह–आचार्या–हिन्दी, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा राजस्थान का हृदय की अतल गहराइयों से अनन्त आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके कुशल मार्गदर्शन एवं आत्मीय व्यवहार से ही यह कठिन कार्य मेरे द्वारा सम्भव हो पाया है। आपने अपनी सूक्ष्म अन्वेषण दृष्टि एवं धैर्यशील स्वभाव द्वारा मुझे प्रोत्साहन एवं विवेचन दृष्टि प्रदान की जिससे मैं इस लगभग अछूते से विषय पर काम करने में सक्षम बन सका। आपकी विवेकशीलता, विश्लेषणात्मक मेधा, विषय विशेषज्ञता एवं सुस्पष्ट अवधारणा से मेरी बुद्धि मार्ग प्राप्त करती रही और आपके कुशल दिशा निर्देशन से मैं इस दुष्कर मार्ग पर आगे बढ़ता रहा और अन्ततः सफल हुआ। मैं आपके प्रति शुद्ध अन्तःकरण से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के दौरान मेरे परिजनों ने स्वयं कष्ट भोगते हुए मुझे सहयोग प्रदान किया है। मेरे पिता श्री किशोरदान एवं माता श्रीमती उच्छब कँवर द्वारा प्रदत्त संस्कारों तथा उनके अपार स्नेह एवं सहयोग से ही मैं सम्बल पाता रहा हूँ। मैं मेरी समस्त उपलब्धियाँ उनको अर्पित करता हूँ। उनका ऋण तो कभी चुका नहीं सकूँगा पर यह उपलब्धि अर्पित कर हृदय को थोड़ा हल्का महसूस कर सकूँगा। मैं मेरे हृदय की समस्त शुद्ध भावनाओं से उनका आभार व्यक्त करता हूँ।

मेरे भाई–बहनों एवं बहनोइयों का भी आर्थिक एवं मानसिक सम्बल मिलता रहा है। विशेषकर मेरी बड़ी बहन प्रेम कँवर एवं अनुज पाबूदान सिंह का सहयोग शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता। मेरे भानजे–भानजियों का भी आत्मिक सहयोग मिलता रहा है। उन सबके प्रति भी मैं पवित्र मन से आभार व्यक्त करता हूँ।

मेरी सहधर्मिणी प्रिय पत्नी प्रेम कँवर, मेरे आत्मज दुष्यन्त सिंह एवं आत्मजा अनन्या कँवर के योगदान को तो कभी भुलाया नहीं जा सकता है। उनको आर्थिक कठिनाइयों में रखते हुए, उनकी इच्छाओं का दमन करते हुए, उनकी पढ़ाई के हिस्से को मेरे शोध कार्य पर खर्च करते हुए मैंने इस शोध कार्य को पूर्ण किया है। मैं पूर्ण पवित्र आत्मिक भावनाओं से उनका आभार व्यक्त करता हूँ।

मेरे अनुज हिम्मत सिंह की पुत्रियों ने अपनी मधुर मुस्कान एवं मीठी बोली से हमेशा मुझे प्रेरित किया है। मैं उनको आत्मिक एवं स्नेहिल आभार व्यक्त करता हूँ।

इस शोध कार्य के दौरान मुझे मेरे परिजनों, रिश्तेदारों, पड़ोसियों का सम्बल एवं प्रेरणा समय–समय पर मिलती रही है। मेरे ननिहाल पक्ष एवं ससुराल पक्ष से भी प्रेरणात्मक प्रोत्साहन मिलता रहा है। उनका आशीष एवं दुआएँ मेरी शक्ति बनती रही है। बसन्त सिंहजी, मानसिंहजी,

योगेश, प्रीतम, जितेन्द्र, दिलीप ने हमेशा मेरी हिम्मत बढ़ाई। उन सबका भी मैं अनन्त आभार व्यक्त करता हूँ।

मेरे ग्रामवासियों व मेरे पड़ोसियों ने भी मुझे इस कार्य में सहयोग एवं साहस प्रदान किया है। विशेषतः अरूण कुमार–गीता शर्मा, सत्यनारायण–कृष्णा शर्मा व सन्तोष कुमार–मोनिता शर्मा ने समय–समय पर सहयोग किया। उनके प्रति मैं सदैव कृतज्ञ बना रहूँगा।

अनेक गुणी एवं सुधीजनों ने भी प्रेरित किया। ओमप्रकाश सोलेत, डॉ बी.डी. वर्मा, श्री रामलाल यादव, ओमपाल कालावत, अशोक मेहरानियाँ, अनिल बड़सरा, सुशील स्वामी, शीशराम यादव, भानीराम, सुरेशकुमार, सुनील गुप्ता, रणसिंह, जितेन्द्र बीका, राजकुमार दूधवाल, नवीन सिंह भाटी, चन्द्रप्रकाश सैनी, ओमप्रकाश सैनी एवं रामावतार मेघवाल का भी मैं सदैव आभारी रहूँगा।

शत्रुघ्न प्रसाद एवं उनकी पुत्री महिमा श्री व प्रोफेसर अरूण भगत ने सामग्री संकलन में मेरी सहृदयता से मदद की। उनका मैं आत्मिक भावना से आभार व्यक्त करता हूँ। मैं सदैव कृतज्ञ बना रहूँगा।

प्रसिद्ध उपन्यासकार राजेन्द्र मोहन भटनागर, मेवाराम, लक्ष्मीनारायण नंदवाना, भगवती शरण मिश्र, शरद पगारे, मनमोहन सहगल का भी पूरे मन से आभार व्यक्त करता हूँ।

मेरे साहित्यिक गुरू प्रेममोहन लखोटिया एवं श्रीमती सविता लखोटिया, साहित्यकार मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ व सवाई सिंह शेखावत का अपार श्रद्धा भाव से आभार व्यक्त करता हूँ। आप सभी मनीषियों से मुझे सद्प्रेरणा एवं नवदृष्टि मिलती रही है। मैं इनका सदैव ऋणी रहूँगा।

इस शोध प्रबन्ध के कलात्मक एवं त्रुटिरहित मुद्रण कार्य के लिए मैं कम्प्यूटर ऑपरेटर श्री सागर कुमावत एवं सुन्दर सिंह भाटी को भी हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिनके अथक परिश्रम एवं सहयोग से मैं इस शोध प्रबन्ध को इच्छित समय पर प्रस्तुत करने में सफल हो सका हूँ।

पुनः मैं अपनी पर्यवेक्षक महोदया डॉ मनीषा शर्मा का आत्मिक आभार व्यक्त करता हूँ। आपकी सहृदयता, मधुरता एवं स्नेहिल व्यवहार का ही प्रभाव रहा है कि मैं इस दुष्कर कार्य को पूर्ण कर पाया हूँ।

अन्त में सभी गुरूजनों, परिजनों, पड़ोसियों, रिश्तेदारों, मित्रों, परिचितों का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मुझे प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया है। संबल प्रदान किया है। साहस दिया है। सभी का शुद्ध अन्तःकरण एवं पवित्र मनोभावों से आभार।

रघुवीर सिंह

शोधार्थी

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय – हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्भव एवं विकास 1–73

1.1 इतिहास

1.2 उपन्यास

1.3 इतिहास एवं उपन्यास

1.4 इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास

1.5 ऐतिहासिक उपन्यास

1.6 हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्भव

1.7 हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों का विकास

1.7.1 प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास

1.7.2 प्रेमचन्द युगीन ऐतिहासिक उपन्यास

1.7.3 प्रेमचन्दोत्तर ऐतिहासिक उपन्यास

1.7.4 समकालीन ऐतिहासिक उपन्यास

सन्दर्भ सूची

द्वितीय अध्याय – शत्रुघ्न प्रसाद का व्यक्तित्व एवं कृतित्व 74–110

2.1 जीवन क्रम

2.1.1 जन्मस्थान

2.1.2 परिवार एवं पारिवारिक स्थिति

2.1.3 शिक्षा, शिक्षण, संस्कार, प्रेरणाएँ

2.1.4 जीवन संघर्ष

2.1.5 रूचि–अभिरूचि

2.1.6 विविध दायित्व

2.1.7 पुरस्कार एवं सम्मान

2.2 व्यक्तित्व

2.3 कृतित्व

2.3.1 सम्पादन

2.3.2 कविता, कहानी, जीवनी

2.3.3 समीक्षा एवं आलोचना

2.3.4 ऐतिहासिक उपन्यास

सन्दर्भ सूची

तृतीय अध्याय – शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यास : कथ्य एवं शिल्प 111–178

3.1 कथ्य एवं शिल्प का अर्थ

3.2 शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में कथ्य
3.3 शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की कथ्यगत विशेषताएँ
3.4 शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की शिल्पगत विशेषताएँ
सन्दर्भ सूची
चतुर्थ अध्याय – शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास एवं कल्पना 179–261
4.1 इतिहास
4.2 कल्पना
4.3 इतिहास एवं कल्पना का समन्वय
4.4 शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों का काल–विभाजन
4.5 ऐतिहासिक उपन्यासों के अनिवार्य तत्व
4.6 पुरा ऐतिहासिक या वैदिककालीन उपन्यास
4.7 प्राचीन भारतकालीन उपन्यास
4.8 पूर्व मध्यकालीन उपन्यास
4.9 उत्तर मध्यकालीन या मुगलकालीन उपन्यास
सन्दर्भ सूची
पंचम अध्याय – शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में युगीन चेतना 262–303
5.1 युगीन चेतना का अर्थ एवं महत्व
5.2 राजनैतिक युगीन चेतना
5.3 सामाजिक युगीन चेतना
5.4 धार्मिक–सांस्कृतिक युगीन चेतना
5.5 जीवनमूल्यपरक युगीन चेतना
सन्दर्भ सूची
षष्टम अध्याय – शत्रुघ्न प्रसाद का समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासकारों के साथ तुलनात्मक अध्ययन 304–371
6.1 समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासकारों का परिचय
6.2 शत्रुघ्न प्रसाद का विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के साथ तुलनात्मक अध्ययन
6.3 शत्रुघ्न प्रसाद का शरद पगारे के साथ तुलनात्मक अध्ययन
6.4 शत्रुघ्न प्रसाद का मनमोहन सहगल के साथ तुलनात्मक अध्ययन
6.5 शत्रुघ्न प्रसाद का भगवतीशरण मिश्र के साथ तुलनात्मक अध्ययन
6.6 शत्रुघ्न प्रसाद का राजेन्द्रमोहन भटनागर के साथ तुलनात्मक अध्ययन
6.7 शत्रुघ्न प्रसाद का मेवाराम एवं लक्ष्मीनारायण नंदवाना के साथ तुलनात्मक अध्ययन
सन्दर्भ सूची

सप्तम अध्याय – शत्रुघ्न प्रसाद का ऐतिहासिक उपन्यासों में योगदान 372–394

7.1 ऐतिहासिक साहित्य की वृद्धि

7.2 द्रष्टा एवं स्रष्टा

7.3 युग धर्म स्थापना

7.4 गतिशील जीवन प्रदाता

7.5 अतीत–वर्तमान–भविष्य की कड़ी

सन्दर्भ सूची

अष्टम अध्याय – उपसंहार 395–402

सन्दर्भ सूची

शोध सारांश 403–414

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 415–423

प्रकाशित शोध पत्र 424–444

साक्षात्कार 445–455

चित्र सारणी

चित्र संख्या	चित्र	पेज संख्या
1	'अरावली का मुक्त शिखर' उपन्यास का विमोचन	66
2	'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' उपन्यास का विमोचन	66
3	राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी द्वारा गणेश शंकर विद्यार्थी साहित्य सेवी सम्मान प्राप्त करते हुए शत्रुघ्न प्रसाद	82
4	राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी द्वारा गणेश शंकर विद्यार्थी साहित्य सेवी सम्मान प्राप्त करते हुए शत्रुघ्न प्रसाद	82
5	शत्रुघ्न प्रसाद एवं उनकी पुत्री महिमाश्री के साथ शोधार्थी रघुवीर सिंह बातचीत करते हुए।	445

शब्द संक्षिप्तिकरण

क्रम संख्या	शब्द संक्षेप	शब्द
1	पं.	पंडित
2	डॉ	डॉक्टर
3	अ.भा.रा.सा.	अखिल भारतीय राजस्थान साहित्य
4	एम.ए.	मास्टर ऑफ आर्ट्स
5	एल.एल.बी.	बैचलर ऑफ लेजिस्लेटिव लॉ
6	पीएच.डी.	डॉक्टरेट ऑफ फिलोसफी
7	क.मा. मुंशी	कन्हैयालाल माणिक्यलाल मुंशी
8	प्रा.लि.	प्राइवेट लिमिटेड
9	वि.सं.	विक्रम संवत्
10	प्रो.	प्रोफेसर
11	सं.	सम्पादक
12	रा.सा.अ.	राजस्थान साहित्य अकादमी

प्रथम अध्याय

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्भव एवं विकास

प्रथम अध्याय

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्भव एवं विकास

आधुनिक काल की सशक्त, लोकप्रिय, रोचक एवं मानव जीवन का विविध आयामी चित्रण करने वाली गद्य–विधा उपन्यास का अध्ययन–मनन करते हुए आलोचकों ने इसे विभिन्न प्रवृत्तियों के विकास की ओर अग्रसर पाया है। उमेश शास्त्री[1] एवं शशि भूषण सिंहल[2] ने ऐतिहासिक प्रवृत्ति के आधार पर उपन्यास साहित्य का एक भेद ऐतिहासिक उपन्यास भी स्वीकार किया है। शशिभूषण सिंहल का मानना है कि ''औपन्यासिक प्रवृत्ति का तात्पर्य–उपन्यास में निरूपित मानव जीवन विधि और उसकी दिशा।....... मनुष्य के सामाजिक जीवन या सामाजिक सम्बन्धों को प्रस्तुत करना उपन्यास की सामाजिक प्रवृत्ति है। जीवन की संवेदना का अंकन, पात्रों के चेतन–पट पर प्रस्तुत करना मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति है और सामाजिक जीवन को अतीत भूमि पर प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति ऐतिहासिक है।... प्रवृत्ति की दृष्टि से उपन्यास के – सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक रूप हैं। अतः ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिक प्रवृत्ति पर आधारित उपन्यास है। यह एक सामासिक–पद है जिसका विग्रह करने पर जो अर्थ अभिव्यंजित होता है वह है– ऐसी औपन्यासिक विधा जिसकी मूल कथा इतिहास से संदर्भित हो अर्थात् इतिहास एवं उपन्यास का रोचक एवं कलात्मक सम्मिलन ऐतिहासिक उपन्यास हैं।[3] मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ के अनुसार–'' इतिहास की कलात्मक प्रस्तुति का नाम ऐतिहासिक साहित्य है। यह प्रस्तुति काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक किसी भी रूप में हो सकती है।''[4] इतिहास विगत, अतीत, या बीते काल के तथ्यों का संकलन है तथा उपन्यास मानव जीवन का समग्र, व्यापक एवं यथार्थ चित्रण है। किसी भी ऐतिहासिक रचना में जीवन के शाश्वत सत्यों के साथ किसी देश, समाज, व्यक्ति या कालखण्ड विशेष की विगत या अतीत कालीन राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक स्थितियों का उद्घाटन होता है और अतीतकालीन मनुष्य अपनी सम्पूर्ण भावनाओं व मनोदशाओं यथा– राग–द्वेष, प्रेम–करूणा, सुख–दुख, क्रोध–घृणा, वीरता–पराक्रम, उदारता–अनुदारता, सबलता–दुर्बलता, जय–पराजय, आशा–निराशा, आकांक्षा – निराकांक्षा के साथ अभिव्यक्त होता है। अतः स्पष्ट है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में औपन्यासिक विधान में इतिहास कथा की प्रधानता होती है। ऐतिहासिक उपन्यास के विवेचन–विश्लेषण के लिए इतिहास एवं उपन्यास के अर्थ एवं स्वरूप को समझ लेना आवश्यक एवं अपेक्षित है।

1.1 इतिहास –

संस्कृत शब्द 'इतिहास' की व्युत्पत्ति इति+ह+आस से हुई जिसका शाब्दिक अर्थ है – निश्चित रूप से ऐसा हुआ।[5] अर्थात् भूतकाल में घटित घटनाओं का वर्णन अर्थात् जो घटनाएँ व

गतिविधियाँ घटित हो चुकी उन्हीं का प्रस्तुतीकरण इतिहास कहलाता है। डॉ. नगेन्द्र[6] ने लिखा है कि ''इसमें दो बातें स्पष्ट होती हैं– एक तो यह कि इतिहास का सम्बन्ध अतीत से है, दूसरे यह कि उसके अन्तर्गत केवल वास्तविकता या यथार्थ घटनाओं का समावेश किया जाता है।''

भारत में पुराकाल से व्यापक अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त होता है। यास्क के अनुसार 'ऋक संहिता' में इतिहास शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख किया गया है, जहाँ त्रिविध ब्रह्म के अन्तर्गत 'इतिहास–मिश्र' मंत्र पाए जाते हैं। श्रीधर स्वामी द्वारा 'विष्णु पुराण' की टीका में ऋषियों के विभिन्न व्याख्यानों से युक्त देवताओं और ऋषियों के चरित्र से सम्बद्ध रचना को इतिहास माना गया है जो भविष्य में विलक्षण धर्म की सृष्टि करता है। महाभारत के शान्ति पर्व में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपदेश से समन्वित पूर्ववृत्त इतिहास है।[7] अमरकोश के अनुसार इतिहास और पुरावृत्त पयार्य है। इस पर सर्वानन्द ने अपने 'टीका–सर्वस्व' में लिखा है कि परम्परा से जो कहा जा रहा है कि ऐसा हुआ था, यह इतिहास है। आचार्य चाणक्य के अनुसार पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र को मिलाकर इतिहास होता है।[8] इस प्रकार भारतीय चिंतकों ने इतिहास का तात्पर्य कोरा इतिहास न मानकर उसके साथ एक दृष्टिकोण का होना आवश्यक माना है। इतिहास की भारतीय अवधारणा सत्यं, शिवं, सुन्दरम की रही है।

इतिहास शब्द के अंग्रेजी समानार्थक शब्द 'हिस्ट्री' का उद्‌गम 'हिस्टोरिया' से हुआ जिसका अर्थ है– ''वास्तविक रूप में क्या घटित हुआ है अर्थात् जो कभी वास्तव में घटित हुआ था, वही इतिहास है।''[9] इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग यूनानी इतिहासकार 'हिरोडोट्स' ने किया जिसका अर्थ है– जानना या ज्ञात करना। जर्मन भाषा में इसके समानार्थक शब्द है–'गेशिष्ट' जिसका अर्थ है– घटित होना।[10]

इतिहास के समानार्थी 'हिस्ट्री' शब्द का अंग्रेजी भाषा में प्रवेश कहानी, किस्सों या घटनाओं के सम्बन्ध में हुआ। फ्रांसीसी व जर्मन भाषाओं में इतिहास के लिए प्रयुक्त शब्द 'इत्स्वार' व 'गेशिष्ट' शब्द का प्रयोग कहानी के लिए किया जाता है..... इतिहास में वर्णित कहानी वास्तव में घटित अतीत पर ही आधारित होती है।[11]

इतिहास के जनक 'हेरोडोट्स' इतिहास का प्रयोजन महान कार्यों को भावी पीढ़ी के लिए संरक्षित रखना एवं युद्ध के कारणों का आलोकन करना तथा 'थ्यूसीडाइडीज' ने भावी इतिहासकारों के लिए सूचनाएँ प्रदान करना तथा भविष्य के राजनीतिज्ञों के लिए मार्गदर्शन मानते हैं। रांके तथ्यों को इतिहास का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हुए 'अतीत कैसा था' दिखाना ही मुख्य उद्देश्य मानते हैं। वे अपनी पुस्तक 'हिस्टोरिज ऑफ द लैटिन एण्ड जर्मनिक पीपल'

में लिखते हैं कि ''इतिहास को अतीत का मूल्यांकन करने का अधिकार दिया गया है और साथ ही वर्तमान को भविष्य के लाभ के लिए निर्देशित करने का उत्तरदायित्त्व भी दिया गया है। यह पुस्तक इस उदात्त लक्ष्य की अपेक्षा मात्र 'वास्तव में क्या हुआ था' ही बताना चाहती हैं।''[12]

इतिहास का अर्थ एवं उद्देश्य 'हेरोडोट्स' के अनुसार अतीत की घटनाओं को रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत करना, 'थ्यूसीडाइडीज' के अनुसार अतीत की घटनाओं से मार्गदर्शन ग्रहण करना, रांके के अनुसार तथ्यों का प्रामाणिक संकलन व यथार्थ चित्रण है।[13] इस प्रकार 'हेरोडोट्स' ने कथात्मक इतिहास को जन्म दिया; थ्यूसीडाइडीज ने शिक्षात्मक पहलू पर बल दिया और रांके ने तथ्यों की निष्पक्षता व यथार्थता की संकल्पना प्रदान की। रांके ने ही सर्वप्रथम वैज्ञानिक इतिहास लेखन पर जोर दिया। इस प्रकार इतिहास की अवधारणा निरन्तर विकसित होती गई।[14]

कालान्तर में क्रोचे एवं कालिंगवुड की आदर्शवादी, हीगल की द्वन्द्वात्मक, मार्क्स की भौतिकवादी एवं इ.एच.कार की आधुनिक संकल्पना प्रस्तुत हुई जिसके माध्यम से इतिहास लेखन का व्यापक मानवीय उद्देश्य स्पष्ट हुआ। क्रोचे के अनुसार ''वर्तमानकालिक जीवन में अभिरूचि ही किसी को अतीत का अन्वेषण करने को प्रेरित कर सकती है।''[15] कालिंगवुड के मतानुसार '' इतिहास दर्शन न तो एकान्तरूपेण अतीत से और न ही एकान्तरूपेण इतिहासकार के चिन्तन से सम्बद्ध है अपितु यह अपने पारस्परिक सम्बन्धों में दोनों से ही सम्बद्ध है।... सभी इतिहास विचार का इतिहास होता है।''[16] ''हीगल की दृष्टि इतिहास की घटनाओं में युक्ति संगत अर्थ पर बल देती है। गोविन्द चन्द्र पाण्डेय के अनुसार ''हीगल की दृष्टि से इतिहास की प्रक्रिया एक तर्क संगत द्वन्द्वात्मकता का अनुसरण करते हुए विकास की प्रक्रिया है।... सम्पूर्ण इतिहास को एक आध्यात्मिक तीर्थ–यात्रा कहा जा सकता है। ''आत्मा से आत्मा तक।'' [17] इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के प्रमुख प्रतिपादक कार्ल मार्क्स थे जिन्होंने इतिहास की संकल्पना में भौतिकवादी दृष्टि का समावेश कर क्रान्ति द्वारा ऐतिहासिक विकास की धारणा को विकसित किया।[18] इतिहास की आधुनिक संकल्पना की व्याख्या इ.एच.कार ने अपने ग्रन्थ 'इतिहास क्या है' में की है। उनके शब्दों में–''इतिहासकार और उसके तथ्यों की परस्पर क्रिया–प्रतिक्रिया, जिसे मैं वर्तमान और अतीत के बीच संवाद की संज्ञा देता हूँ, एकाकी व्यक्ति और अमूर्त के बीच संवाद नहीं है, बल्कि मौजूदा समाज के साथ बीते हुए समाज का संवाद है।''[19]

इतिहास अतीत के तथ्य, अतीत के सत्य एवं अतीत की वास्तविकता का यथार्थ लेखन है परन्तु वर्तमान संदर्भ में इतिहासकार एवं इतिहास तथा अतीत एवं वर्तमान की पारस्परिक

अनुभूति है। क्रोचे ''समस्त इतिहास को समसामयिक इतिहास मानते हैं।''[20] अर्थात् वर्तमान का यथार्थ अतीत के यथार्थ में देखा–समझा जाता है। कालिंगवुड युगानुरूप इतिहास लिखने का समर्थन करते हुए कहते हैं कि–''प्रत्येक युग को इतिहास पुनः लिखना चाहिए।... इतिहासकार अतीत को स्वयं के अनुभवों के सन्दर्भ में अपने मस्तिष्क में पुनः जीता है।''[21] अभिप्राय यह है कि इतिहास इतिहासकार के विचारों से प्रभावित होता है व समय की समस्याओं व आवश्यकताओं के अनुरूप इतिहास से मार्गदर्शन लिया जा सकता है। 'हीगल' तथ्यों में कार्य–कारण सम्बन्धों की खोज करते हुए तथ्यों की व्याख्या को इतिहास मानते हैं। उनका मानना है कि '' इतिहास मात्र तथ्यों की प्रस्तुति की अपेक्षा इस रूप में समझा जाना चाहिए कि तथ्य जिस तरह घटित हुए तो क्यों हुए।''[22] इतिहास वास्तव में इतिहासकार के विचारों की स्वीकृति है। बारावलो कहते हैं– ''जिस इतिहास का हम अध्ययन करते हैं तथ्यों पर आधारित होते हुए भी वह महज स्वीकृत निर्णयों का क्रम है।''[23] अर्थात् इतिहासकार तथ्यों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए अपनी विचारधारा के अनुसार निष्कर्ष प्रदान करता है। 'फूको'[24] का यह कथन भी इसी तथ्य को बल प्रदान करता है कि–''जब हम इतिहास का अध्ययन करते हैं तो अतीत के बजाय इतिहासकार द्वारा रचित अतीत का अध्ययन करते हैं। इतिहास को समझने के लिए इतिहासकार के मस्तिष्क को समझना अधिक रचनात्मक कार्य है।'' इ.एच.कार[25] के अनुसार इतिहास के द्वारा अतीत के समाज के साथ–साथ वर्तमान समाज पर दक्षता प्राप्त करने का दोहरा कार्य किया जाता है। इतिहास इतिहासकार एवं तथ्यों के बीच सम्बन्ध की सतत प्रक्रिया है। वर्तमान एवं अतीत के मध्य अंतहीन संवाद है।'' हॉब्स के माध्यम से इ.एच. कार ने कहा है कि ''इतिहास में नामों के अतिरिक्त कुछ भी सार्वभौमिक नहीं हैं।''

संक्षेप में इतिहास को हिरोडोट्स ने खोज या गवेषणा के अर्थ में ग्रहण किया है। थ्यूसीडाइडीज ने शिक्षाप्रद कहा है। विको ने अतीत को विशेष महत्त्व दिया है। काण्ट के अनुसार ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे प्राकृतिक नियमों की प्रवृति को समझने का प्रयास किया जाना चाहिए। हीगेल इतिहास की घटनाओं में कार्य–कारण श्रृंखला को स्वीकार करते हैं। इतिहास की मूल प्रक्रिया का लक्ष्य मानव–चेतना का विकास है जो द्वन्द्वात्मक पद्धति पर आधारित है। डार्विन ने विकासवाद के आधार पर विकास क्रम के विवेचन को इतिहास कहा है। स्पेंगलर, टायनबी, टर्नर आदि ने विकासवादी नियमों को स्वीकार किया है।[26] इतिहासकारों, आलोचकों एवं उपन्यासकारों ने इतिहास को भिन्न–भिन्न मतों से व्याख्यायित किया है जिसके आधार पर इतिहास के स्वरूप को व्यापक रूप में समझा जा सकता है ये मत निम्न प्रकार हैंः–

बर्कहार्ट–''इतिहास एक युग द्वारा दूसरे युग की उल्लेखनीय विशेषताओं का अभिलेख है।''[27]

कार्लाइल–''इतिहास कुछ नहीं बस महान् व्यक्तियों की सूची है।''[28]

जवाहर लाल नेहरू–''इतिहास युगों में वन्य जीवों और वनों से प्रकृति के तत्वों से और अपनी ही जाति के शोषकों से मानव संघर्ष की कहानी है।''[29]

रैपसन–''इतिहास घटनाओं का क्रम और विचारों की प्रगति का तारतम्यपूर्ण लेखा–जोखा है।''[30]

हेनरी पायरेने–''इतिहास समाजों में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी है।''[31]

जी.के.क्लार्क–''इतिहास अतीत काल में जो कुछ घटित हो चुका है उसका अभिलेख है, यह प्रत्येक घटना का अभिलेख है जो अतीतकाल में घटित हुई वे चाहे पहले घटी हों अथवा हाल ही में घटी हो।''[32]

जॉनसन–''जो घटना पहले घटी है, वही व्यापक रूप में इतिहास है।यह स्पष्ट रूप से भूतकाल ही है।''[33]

जॉर्ज ह्यूजिंगा–''इतिहास एक बौद्धिक स्वरूप है जिसमें सभ्यता अपने अतीत को चित्रित करती है।''[34]

गैरोन्सकी–''इतिहास मानव अतीत के उस बिन्दु के प्रारम्भ काल का अभिलेख है जब से लिखित अभिलेख प्राप्त होता है। इतिहास मानवीय सभ्यता का अभिलेख है।''[35]

बी.जे घाटे–''इतिहास हमारे सम्पूर्ण भूतकाल का मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा ज्ञात प्रमाण है।''[36]

डॉ. के. एस. लाल–''इतिहास मानव जीवन के महान् कार्यों का अध्ययन है। यह मानव जाति की महान् और असाधारण सफलताओं का संकलन है।''[37]

आर. बाजरेश्वरी–''इतिहास अतीत की घटनाओं का महत्त्वपूर्ण लेखा तथा मानव की अर्थपूर्ण कहानी है जो हमें बताती है कि मनुष्य के साथ क्या घटना घटित हुई तथा क्यों घटित हुई।''[38]

रेनियर–''इतिहास अतीत का आकलन नहीं, विधिवत संचयन है।''[39]

बेग्बी–''असंख्य मानवों से सम्बन्धित या उन्हें प्रभावित करने वाली घटनाएँ इतिहास है।''[40]

कन्हैयालाल माणिक्यलाल मुंशी– ''इतिहास अपने सच्चे अर्थों में किसी देश के वासियों की कथा है। यह उनके युग–युगीन जीवन का लेखा है। जो महान् कृत्यों द्वारा परम्पराओं की

नींव डालने वाले मनुष्यों का जीवन और देन में........ जो लोगों द्वारा अभिन्नता, एकता के लिए किए गए लोगों के प्रयत्नों में प्रत्यक्ष है।''[41]

शशिभूषण सिंहल– ''इतिहास बाह्य तत्त्वों पर आधारित होने के कारण नियति पर निर्भर रहता है किन्तु नियति का पल्ला पकड़कर मानव स्वभाव के आश्रित रहता है।''[42]

इतिहास में अतीत की राजनीति, मानवीय जीवन की कहानी, समाज–जीवन का वृतान्त चित्रित होता है। इतिहास अतीत की महत्त्वपूर्ण स्थितियों का चयनात्मक एवं कौशलपूर्ण अध्ययन है। किसी देश व समाज के महत्त्वपूर्ण अंग होते है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इतिहास को प्रभावित करते हैं; जिनके विशिष्ट अध्ययन बिना किसी देश का इतिहास लिखना असंभव लगता है। ये महत्त्वपूर्ण अंग काल, घटना, स्थान एवं व्यक्ति होते हैं।[43] ऐसे व्यक्ति जिन्होंने किसी काल विशेष में समाज एवं देश को प्रभावित किया, समाज का नेतृत्व किया, नवीन दिशा प्रदान की हो, वे इतिहास में स्थान पाते हैं। अशोक, विक्रमादित्य, महाराणा प्रताप, महात्मागाँधी इसी कारण ऐतिहासिक या इतिहास निर्माता कहलाते हैं। किसी विशिष्ट परिस्थितियों, प्रवृत्तियों से प्रभावित, उन्नत एवं पतनशील अवस्था का काल–खण्ड भी ऐतिहासिक काल विभाजन का निर्धारक बनता है। देश समाज में घटित वे घटनाएँ जो व्यापक रूप से मानव समाज को प्रभावित करती हैं, एक नवीन मोड़ सिद्ध होती है व समाज वहाँ से एक परिवर्तन प्राप्त करता है। ऐसी घटनाएँ शाश्वत रूप में व्याख्यायित होती रहती हैं। संभावनाएँ व्यक्त की जाती है कि–''ऐसा नहीं होता तो देश या समाज कैसा होता।'' ये घटनाएँ ही इतिहास का संचित कोष बनती हैं। मानव जीवन को विशेष रूप से प्रभावित करने वाली घटनाओं, व्यक्तियों, काल–खण्ड विशेष से सम्बन्धित स्थान व मानव सभ्यता एवं संस्कृति की उन्नत एवं अवनत दशा के प्रतीक स्थान भी इतिहास की धरोहर हैं। सिंधुघाटी सभ्यता, सरस्वती नदी, मोहनजोदड़ो नगर, हल्दीघाटी, सोमनाथ, नालन्दा, विजयनगर आदि स्थान इसी दृष्टिकोण से इतिहास के आलेख बने हुए हैं। इतिहास निर्माण में व्यक्ति, स्थान, घटना एवं काल आदि अंगों का विशिष्ट योगदान रहता है। साथ ही इतिहासकारों–आलोचकों का दृष्टिकोण भी प्रधान भूमिका निभाता है। इतिहास का अर्थ इतिहासकारों व आलोचकों की दृष्टि पर भी निर्भर करता है। शशिभूषण सिंहल के अनुसार '' इतिहास का अर्थ युद्ध या राजनीति नहीं है। वह वास्तव में मानव जाति के अनुभवों एवं आन्तरिक उपलब्धियों का द्योतक है। इतिहास की गति धर्म, कला, संगीत, साहित्य, विज्ञान, दर्शन और सबसे बढ़कर मानव–मानव के मध्य बौद्धिक एवं हार्दिक सम्बन्धों में सहज द्रष्टव्य है।... इतिहास हमारे लिए केवल खंडित पाषाणों का संग्रहालय नहीं है। स्फूर्ति एवं प्रेरणा का स्रोत है।.... इतिहास का सम्बन्ध मुख्यतः समाज और सामाजिक प्रवृत्तियों से है।''[44]

इतिहास मानव जीवन की कहानी है जिसमें आदि काल से वर्तमान काल तक के मानव, समाज व देश के उत्थान–पतन एवं विकास का काल–क्रमानुसार, व्यवस्थित एवं तथ्यपूर्ण वैज्ञानिक अभिलेखन होता है। यद्धपि ईसा पूर्व छः सौ वर्षों के काल को ही ऐतिहासिक काल कहा जाता है परन्तु–पुरा काल का वर्णन सम्भाव्यता के साथ इतिहास की तरह स्वीकार्य हो जाता है। हरिशंकर शर्मा ने लिखा है कि विश्वसाहित्य में इतिहास एक ऐसा साधन है जो किसी देश व राष्ट्र को अपने पुरातन गौरव की स्मृति का स्मरण कराता है। इतिहास के माध्यम से ही देश व जाति में नवजीवन का संचार होकर कर्त्तव्य–पथ का बोध होता है इतिहास मानव के अतीत को समझने का सार्थक प्रयास है।[45]

मानव के लिए अतीत का ज्ञान भविष्य की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। अतः इतिहास लेखन सत्य के साथ सजगता की अपेक्षा रखता है। ''अतीत की घटनाओं को इतिहास रूप में सुरक्षित रखने के प्रति सजगता ही ऐतिहासिक बोध है।[46] इतिहास को देखने का दृष्टिकोण इतिहास बोध या इतिहासदर्शन है। दर्शन शब्द अधिक गहन खोज एवं शोध के लिए प्रयुक्त होता है। इतिहास एवं उसकी समस्याओं की गहन एवं अवकाश पूर्ण जाँच इतिहास दर्शन है।[47] हेरोडोटस ने चक्रवत दर्शन प्रस्तुत करते हुए मानवीय जीवन को एक चक्र के रूप में घटित होना बताया। घटनाएँ वैसे ही घटित होती है। नाम, स्थान, समय बदलता है। सन्त आगस्टीन ने 'ईश्वर का नगर' की कल्पना की है। ईश्वरीय दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक घटना ईश्वरीय इच्छा के रूप में घटित होती है। शुभ–अशुभ का संघर्ष जिसमें शुभ विजय होता है। लेबनीन ने प्रगति का दृष्टिकोण दिया। उनके अनुसार मानव भाग्य व परिवेश पर नियन्त्रण रखने में सक्षम है। मानव जाति निरन्तर श्रेष्ठ होती जाएगी। अधिक सभ्य होती जाएगी। प्रगति कर रही है। हीगल ने द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त प्रदान किया जो आगे चलकर कार्ल–मार्क्स के साम्यवाद में प्रतिफलित हुआ। मार्क्स ने अनुसार 'इतिहास वर्ग–संघर्ष' की कहानी है।'' स्पेन्सर ने डार्विन के विकासवाद को अपनाया।[48] स्पेंगलर के अनुसार सभी संस्कृतियाँ प्रगति और पतन के एक जैसे स्वरूप का अनुगमन करती है। टायनबी मानते हैं कि सभ्यता अतीत की उपलब्धियों के आधार पर प्रगति कर सकती है। सारांशतः इतिहास को संघर्ष एवं प्रगति के रूप में अवलोकित किया जाना चाहिए।[49] डी.वी. गैरोन्सकी का कथन समीचीन जान पड़ता है। वे कहते हैं– इतिहास का दर्शन मानवीय अतीत को इस रूप में संगठित और अभिलेखित करने का प्रयास है कि यह अर्थपूर्ण तथा उपयोगी बन जाए।''[50] इतिहास वर्तमान को मजबूत संकल्प एवं भविष्य को प्रकाशित मार्ग प्रशस्त करता है। 'द हिस्टोरिकल एसोसियशन ऑफ लंदन' इतिहास का उद्देश्य अतीत की खोज, जो हमें वर्तमान को समझने एवं भविष्य को संभालने में सहायता देती है, स्वीकार करती है।[51] बीता हुआ जीवन अनुभव होता है। अनुभव जीवन को परिपूर्ण एवं परिपक्वता देता है। इतिहास भी अनुभव

का कोष है। जोन्स ने विचार व्यक्त करते हुए कहा है–''इतिहास हमें पूर्ण अनुभवों का एक अक्षय कोष प्रदान करता है यह कोष वर्तमान स्थिति को समझने में बहुत सहायता प्रदान करता है।''[52]

इतिहास हमें मानवीयता की ओर अग्रसर करने में सक्षम है। मानवीयता की दृष्टि से इतिहास को परखना एवं समझना मानव जाति के लिए श्रेयस्कर है। महात्मा गाँधी कहते हैं कि–''यदि हम अपनी दृष्टि उस काल से जिसका इतिहास पता लगा पाया है, अपने युग तक घुमाएँ तो हमें ज्ञात हो जाएगा कि मनुष्य अहिंसा की ओर नियमित प्रगति कर रहा है।''[53] अर्थात् मानव की सभ्य ओर विकसित होती प्रगति का आलेखन इतिहास है।

हेरोडोटस ने इतिहास को खोज, गवेषणा एवं अनुसंधान का रूप ग्रहण करते हुए भी इतिहास को वैज्ञानिक, मानवीय, तर्कसंगत, शिक्षाप्रद एवं प्राकृतिक एवं भौतिक लक्ष्य की प्रक्रिया का परिर्वतन करने वाली विधा बताया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के आलोचक नलिन विलोचन शर्मा ने इतिहास को घटनाओं की क्रमिक प्रक्रिया, परम्परा का आकलन एवं आलेखन, गवेषणा से प्राप्त जानकारी एवं इतिवृत्त कहा है। डॉ सुमन राजे ने आधुनिक इतिहास दर्शन की निम्न विशेषताएँ स्पष्ट की हैं:–

(1) आधुनिक इतिहास तिथियों एवं व्यक्तियों के स्थान पर मूलचेतना तथा उपलब्धियों पर बल देता है।
(2) आज का इतिहास व्यापक क्षेत्र को अपनाते हुए मानव के पूर्ण अतीत से सम्बन्ध रखता है।
(3) स्मृति से जोड़े जाने के कारण आज का इतिहासकार तथ्यों का अध्ययन अपनी भीतरी प्रतिध्वनि के आधार पर करता है।
(4) आधुनिक इतिहास दर्शन की प्रवृत्ति विश्व का एकीकरण है।....वह सम्पूर्ण इतिहास को मानव एकता की दृष्टि से देखता है।
(5) आधुनिक इतिहास दर्शन विश्लेषणात्मक एवं तर्क पूर्ण विवेचन के छोरों को स्पर्श करता है तथा संश्लिष्ट प्रभाव का सृजन करता है।
(6) मानव समाज के असंख्य घात–प्रतिघात में आधुनिक इतिहासकार ऐसे चिरंतन नियमों का अन्वेषण करता है, जिनका सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से न होकर मानव सभ्यता के चिरंतन एवं शाश्वत सत्यों से है।[54]

इतिहास निरंतरता का आलेख है तथा भविष्य को उज्ज्वलता प्रदान करने का सशक्त एवं बोधात्मक माध्यम है। इतिहासकार श्री नेत्र पाण्डेय के वक्तव्य से इतिहास की उपयोगिता को और स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है–

इतिहास एक सरिता है, जिसका जल है बहता रहता।
मानव के कृत्यों का उसमें रूप झलकता रहता।
मानव आता–जाता पर वह है चलता रहता।
उसके यश–अपयश की गाथा, यह है कहता रहता। – श्री नेत्र पाण्डेय [55]

निष्कर्षत इतिहास अतीत का तथ्यपरक एवं इतिहासकार के विचार से प्रभावित यथार्थ आलेख है जो वर्तमान एवं भविष्य के मार्ग को उज्ज्वल प्रकाश प्रदान करता है।

1.2 उपन्यास –

नवजागरण के प्रभावस्वरूप आधुनिक काल में हिन्दी–साहित्य के जिन गद्य–रूपों का आविर्भाव हुआ, उनमें उपन्यास सर्वाधिक सक्षम एवं विकसित विधा है। उपन्यास शब्द 'उप' और 'न्यास' शब्द से बना है, जिसका अर्थ लघु जीवन की स्थापना या चित्रण करना है।[56] धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार उपन्यास का अर्थ मनुष्य के निकट रखी हुई वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि वह हमारी ही है। इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है।[57] हरदेव बाहरी ने लिखा है कि ''उपन्यास कल्पित एवं लम्बी कहानी है, जो अनेक पात्रों और घटनाओं से युक्त हो।''[58] उन्होंने उपन्यस्त शब्द का अर्थ धरोहर स्वरूप रखा हुआ व उपनिहित माना है।[59] प्राचीन संस्कृत काव्यों में उपन्यास शब्द नाटक की संधियों के उपभेद के रूप में मिलता है। 'उपन्यास प्रसादनम' एवं 'उपपत्ति कृतोह्यर्थ संकीर्तितः' अर्थात् प्रसन्न करने एवं किसी अर्थ को युक्तिसंगत एवं सम्यक रूप से उपस्थित एवं विन्यस्त करने को उपन्यास कहा गया है।[60] साहित्य दर्पणकार ने समुचित रूप से विन्यस्त सामग्री का नाम उपन्यास तथा मालती–माधवकार ने कथनमूलक व्यवस्था का नाम उपन्यास बताया है।[61]

उपन्यास को अंग्रेजी 'नॉवेल' का पर्याय माना जाता है। 'नॉवेल' शब्द प्रत्यक्षतः इतालवी शब्द 'नॉवेला' से प्रभावित है जो 'NOVUS' से व्युत्पन्न है। 'नॉवेला' का अर्थ उस कहानी के लिए प्रयुक्त होता है जो वर्तमान में घटित हो अथवा जिसे घटित हुए अधिक समय न हुआ हो। 'नॉवेल' नवीनता का द्योतन तो कराता ही है, साथ ही वह इस तथ्य का भी द्योतन कराता है कि उसका सीधा सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वर्तमान जीवन से है। 'नॉवेल' की नवीनता की विशिष्टता के कारण ही नवीन गद्य कथा रूप को उपन्यास नाम दिया गया। नवीन अर्थ को प्राधान्य देने के कारण गुजराती के विद्वान 'नॉवेल' को नवल कथा कहते हैं।[62] अंग्रेजी के 'नॉवेल' को गुजराती में 'नवल कथा' मराठी में 'कादम्बरी' और बंगला तथा हिन्दी में 'उपन्यास' कहते हैं।[63] इस प्रकार उपन्यास ऐसी लम्बी एवं कल्पनात्मक कहानी है जो वर्तमान जीवन से सम्बन्धित है तथा मनुष्य के समीपतम चित्र को मूर्त रूप प्रदान करते हुए मानव जीवन की धरोहर है।

उपन्यास का उद्भव –

हिन्दी उपन्यास के उद्भव के बारे में विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत प्रचलित हैं। उपन्यास को संस्कृत में प्रचलित आख्यान परम्परा, अंग्रेजी के 'नॉवेल', महाकाव्य, मशीनीकरण एवं आधुनिक जीवन की देन माना जाता है।

संस्कृत साहित्य में कथा की समृद्ध परम्परा रही है। कथा एवं आख्यायिका संस्कृत गद्य में रचित प्राचीन दृष्टि की आख्यान विधा है। 'कथा सरित् सागर' पंचतंत्र, कादम्बरी, हर्षचरित, दशकुमार चरित, आदि संस्कृत कथा–साहित्य में जीवन की कहानी सुनायी गयी है।[64] संस्कृत कथा साहित्य में कथा और आख्यायिका का आरम्भ साथ–साथ हुआ। इस शुरूआत का श्रेय बाणभट्ट को है। 'मिथ' का गढ़ना कथा है जिसका उत्कर्ष बाणभट्ट रचित 'कादम्बरी' में मिलता है।

बाणभट्ट की रचना 'हर्षचरित' की कादम्बरी से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि 'हर्षचरित' रोमांस और काव्यात्मक कल्पनाशीलता के बावजूद यथार्थ की नींव पर आधारित है। संस्कृत साहित्य में ही दंडी के प्रसिद्ध उपन्यास 'दशकुमार चरित' में उत्तम पुरूष का प्रयोग मिलता है और इसका कथानक अपेक्षाकृत यथार्थपरक वातावरण में चलता है.... दण्डी ने अपने गैर पारम्परिक उपन्यास 'दशकुमार चरित' के अलावा भी एक उपन्यास 'अवन्ति सुन्दरी कथा' नाम से लिखा था।[65] यद्यपि बाणभट्ट की 'कादम्बरी' सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। संस्कृत कथा के तीन प्राचीन और प्रौढ़ लेखक दण्डी, सुबाहु, बाणभट्ट – अपनी कथावस्तु के लिए वृहत्कथा के ऋणी हैं।[66] डॉ शान्ति भारद्वाज का मत है कि – ''औपन्यासिक कौशल की दृष्टि से इन कथानकों में कुतूहल और शुष्क उपदेश की प्रधानता है। न इनमें उपन्यास की सी भावशीलता है, न जीवन को व्यापक रूप से देखने की दृष्टि। इनमें शैली की सहज रोचकता का भी अभाव है। औपन्यासिक तत्वों की दृष्टि से बाणभट्ट की 'कादम्बरी' तथा दण्डी की 'दशकुमार चरित' अवश्य ही ऐसी कथा कृतियाँ हैं जिनमें घटना, चरित्र और शैली तीनों की रमणीयता है जो उन्हें उपन्यास के अधिक निकट पहुँचाती है।[67]

प्राचीन संस्कृत आख्यान साहित्य में यूरोपीय रोमांस के से तत्व पाए जाते हैं। यह विडम्बना ही रही है कि आधुनिक हिन्दी उपन्यास का संस्कृत आख्यानों से सीधा जुड़ाव नहीं रहा। गोपाल राय का मत है कि – ''कथा संरचना की दृष्टि से बाणभट्ट रचित 'कादम्बरी' अपवाद है। बाणभट्ट ने अपने कथा–संसार को अपने विजन के अनुरूप बिल्कुल नया रूप दे दिया है। इसका कथा विन्यास अद्भुत रूप से नवीन और आश्चर्यचकित करने वाला है। 'दशकुमार चरित' के बारे में लिखा है कि समकालीन सामन्ती राजनीति और समाज के चित्रण, व्यावहारिक ज्ञान, चौर शास्त्र, प्रेम, रमणी हरण और साहसाभिनय से भरी यह कथा यूरोपीयन रोमांस के सारे गुणों से सम्पन्न है।''[68] परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ऐतिहासिक कारणों से

ही सही खड़ी बोली के आधार पर विकसित 'हिन्दी गद्य' का विकास हुआ और उसके साथ ही 'गद्य–कथा' भी नए अन्दाज में प्रकट हुई। इसी ने उपन्यास का भी रूप ग्रहण किया। पर आश्चर्य की बात यह है कि गुणाढ्य, विष्णु शर्मा, सुबन्धु, बाणभट्ट, दण्डी आदि की भारतीय कथा परम्परा से इसका सीधा सम्बन्ध नहीं जुड़ा। इसे एक साहित्यिक त्रासदी ही समझना चाहिए।[69]

अनेक विद्वानों का मानना है कि हिन्दी उपन्यास अंग्रेजी उपन्यासों से प्रभावित विधा है। रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है कि– ''भारतेन्दु युग के लेखकों को उपन्यास रचना की प्रेरणा बंगला और अंग्रेजी के उपन्यासों से प्राप्त हुई। अंग्रेजी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास लाला श्री निवासदास का 'परीक्षा गुरू (1882) माना जाता है।''[70]

इसी सन्दर्भ में डॉ. शान्ति भारद्वाज का मत है कि– ''अंग्रेजी साहित्य में भी उपन्यास साहित्य अन्य विधाओं के उपरान्त जन्मा। अंग्रेजी उपन्यास की उत्पत्ति उन रोमांसों, नॉवलों और कथा काव्यों से हुई जो उन दिनों यूरोपियन भाषाओं में प्रचलित थे। इटली के कथाकार 'बोकेसियो' के बाद पूरी दो शताब्दियों तक इटली में भारी संख्या में ऐसी पुस्तकें लिखी गई जिन्हें नॉवेल कहा गया। आधुनिक विधा उपन्यास की पृष्ठभूमि में अंग्रेजी उपन्यास ही हेतु है। संस्कृत साहित्य में उपन्यास का जो स्वरूप मिलता है। वह गद्य काव्य का स्वरूप है।''[71] परन्तु नामवर सिंह जी के शोधार्थी ज्ञानेन्द्र कुमार ने लिखा है कि ''कहना न होगा कि हिन्दी में भारतेन्दु, प्रेमचन्द, अज्ञेय और द्विवेदी जी द्वारा अपनाई गई आत्मकथात्मक शैली की शुरूआत बहुत पहले 'बाणभट्ट' द्वारा की गई थी।''[72] संस्कृत की कथा परम्परा को आधुनिक युग में नए रूप में विकसित होने का अवसर मिला। आधुनिक हिन्दी उपन्यासों का प्रारम्भ जीवन के उपदेशमूलक यथार्थ चित्रण द्वारा होता है।''[73] गोपाल राय अपना संयमित एवं गहन विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए अपना मत व्यक्त करते हैं कि– ''हिन्दी उपन्यास संरचना की दृष्टि से अंगरेजी उपन्यास का एकमात्र ऋणी नहीं है, जैसी आम धारणा है। हिन्दी उपन्यासकारों को अपनी कथा–परम्परा का भी ज्ञान था और उन्होंने कथा संरचना के संस्कृत मॉडल को भी उतना ही अपनाया जितना अंग्रेजी के मॉडल को। उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम चरण औपन्यासिक प्रयोग का समय था जिसमें मॉडल की खोज स्वाभाविक थी। यह दूसरी बात है कि यह खोज अठारवीं शताब्दी के यूरोपीय उपन्यास के मॉडल पर हुई।''[74]

उपन्यास महाकाव्यात्मक विधा है। संस्कृत काव्यों की निकटता एवं अनुप्रेरणा का संकेत है। परन्तु आधुनिक जीवन की निकटता के कारण आधुनिक महाकाव्यात्मक अनुप्रेरणा कहा जा सकता है। डॉ बच्चन सिंह ने लिखा है कि– ''एक कला विधा के रूप में देखें तो वस्तुतः उपन्यास महाकाव्य का आधुनिक रूप है, जिसमें नाटक के तत्व भी आकर मिल गए हैं।''[75] फिल्डिंग ने उपन्यास को गद्य का आनन्ददायक महाकाव्य[76] तथा डॉ देवीप्रसाद गुप्त ने

'गद्य–युग का महाकाव्य' कहा है।[77] इसी तथ्य को और स्पष्ट करते हुए मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि– ''आधुनिक काल में महाकाव्यों की रचना सम्भव नहीं रही। महाकाव्य एक स्तर पर अपने समय और समाज के मनुष्य की स्थिति और नियति की पहचान और अभिव्यक्ति के प्रयत्न करते थे। आधुनिक काल में यह काम उपन्यास के माध्यम से होने लगा। इसीलिए उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जाता है।''[78] महाकाव्य और उपन्यास की समानता दर्शाते हुए डॉ रामदरश मिश्र कहते हैं कि– ''उपन्यास अपने मूल में यथार्थवादी है। जब हम कहते हैं कि उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है, तो इसका अर्थ है कि जैसे महाकाव्य में जगत जीवन की विराटता अपने समस्त वैविध्य, गहरे भाव–बोध, विशिष्ट दर्शन, मानव मूल्य और प्रश्नों के साथ अंकित होती है, उसी प्रकार उपन्यासों में भी।''[79] रैल्फ फाक्स ने कहा है कि– '' उपन्यास को अनुप्राणित तो महाकाव्य ने ही किया, किन्तु इसका लक्ष्य था नए मानव की आवश्यकताओं को पूरा करना। उसकी आशा–आकांक्षाओं को व्यक्त करना और उसकी तूफानी दुनिया को चित्रित करना।''[80]

उपन्यास का उद्‌भव मशीनी युग के मानव जीवन की जटिलताओं की उपज है। हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि– ''उपन्यासकार तुच्छता को तुच्छता मानकर ही कारबार करता रहा है। यह सम्पूर्ण रूप से नए यंत्र युग की उपज है और इस युग के सम्पूर्ण गुण–दोषों को लेकर ही उसका जन्म हुआ है। उपन्यास परिस्थितियों के सच्चे चित्रण से विमुख नहीं हो सकता। परन्तु उसका उद्‌देश्य केवल फोटोग्राफी नहीं है, वह कलाकार है। यथार्थवाद चित्र का एक पहलू है।''[81] उपन्यास मानव जीवन की निकटतम साकार मूर्ति है। प्राचीन कथा परम्परा से सम्बद्ध होकर भी यह आधुनिक जगत का साक्षात् चित्रण है। विजयशंकर मल्ल ने स्पष्ट किया है कि– ''यों भारतीय कथा साहित्य की लम्बी परम्परा से उपन्यास का सम्बन्ध सपष्ट है लेकिन उपन्यास शब्द आज जिस अर्थ (नॉवेल) में प्रवृत्त होता है वह आधुनिक सभ्यता की देन है। बाह्ंय जीवन की आवश्यकताओं को समग्र रूप में चित्रित करने वाला एक ऐसा साहित्य रूप है जो अपने पूर्व की कई साहित्यिक परम्पराओं को आत्मसात् करते हुए भी अभिनव आकर्षण के साथ प्रकट हुआ। उसने मनुष्य के क्रियाकलापों को चित्रित करते समय यह भी दिखलाया कि किसी चरित्र के जीवन में घटित होने वाले कार्य व्यापारों को रोचकता प्रदान करने वाला वह जीवनोद्‌देश्य है जिसके लिए मानव जी रहा है और मर रहा है।''[82] डॉ शान्ति भारद्वाज का कहना है कि– ''उपन्यास आधुनिक मानव जीवन के जितना निकट है उतनी सम्भवतः साहित्य की अन्य कोई विधा नहीं। आज उपन्यास की परिधि में डायरी, पत्र, भ्रमण, जीवन चरित्र, आत्मकथा तथा सामाजिक शास्त्र सभी आ जाते हैं। फलतः वह हिन्दी गद्य का पर्यायवाची बन गया है। हिन्दी गद्य की सभी विधाओं का समाहार उपन्यास में होता है।''[83] उपन्यास पूँजीवादी समाज की समस्याओं से ग्रस्त मानव जीवन का लेखा है। डॉ रामदरश मिश्र ने कहा है कि– ''पुरानी कथा परम्परा का उपन्यास में रूपान्तरण आकस्मिक

नहीं है। बल्कि यह नए व्यक्ति की नई खोज है। वस्तुतः उपन्यास पूँजीवादी समाज की अनिवार्य उपज है।''[84] उपन्यास साहित्य की सभी विधाओं का समाहार है। राजेश अनुपम ने लिखा है कि– ''आधुनिक उपन्यास साहित्य का एक नया रूप है जिसमे यूनान और रोम की प्राचीन गद्य–कथाओं, मौखिक रूप से प्रचलित वीराख्यानों, मध्ययुगीन गद्यरोमांसों, प्रारम्भिक सूत्रों और इतिहास ग्रन्थों तथा बहुत कुछ पद्य साहित्य से भी प्रेरणा, उपकरण और सामग्री ग्रहण करके विकास किया है।''[85] निष्कर्ष रूप में शत्रुघ्न प्रसाद लिखते हैं कि– उपन्यास शब्द भारतीय है। इसका अर्थ नया है। भाषा का गद्य रूप अपना है पर इसकी उपयोगिता और क्षमता आधुनिक युग की देन है। भारतीय समाज का जीवन प्राचीनतम है। इसके प्रति यथार्थ दृष्टि एवं इसकी उत्थान भावना आधुनिक नवजागरण की परिणति है। अतः कहा जा सकता है कि नयी जीवन दृष्टि के साथ कथा लेखन की नयी शैली अंग्रेजी उपन्यास से अनुप्राणित है।''[86] हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि– ''उपन्यास वस्तुतः ही 'नॉवेल' अर्थात् नया और ताजा साहित्यांग है परन्तु फिर भी जिस मेधावी ने कथा, आख्यायिका आदि शब्दों को छोड़कर 'नॉवेल' का प्रति शब्द उपन्यास माना था, उसकी सूझ की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। जहाँ उसने इस नए शब्द के प्रयोग से यह सूचित किया कि यह साहित्यांग पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं से भिन्न जाति का है, वहीं इसके शब्दार्थ के द्वारा यह भी सूचित किया कि इस विशेष साहित्यांग द्वारा ग्रन्थकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात या कोई अभिनव मत रखना चाहता है। इसलिये यद्यपि यह शब्द पुरानी परम्परा के प्रयोग के अनुकूल नहीं पड़ता तथापि उसका प्रयोग उपन्यास की विशिष्ट प्रकृति के साथ बिल्कुल बेमेल नहीं कहा जा सकता है।''[87]

अतः स्पष्ट है कि हिन्दी उपन्यास संस्कृत कथाख्यानों, अंग्रेजी नॉवेलों, महाकाव्यों से प्रभावित परन्तु आधुनिक जीवन की जटिलताओं, समस्याओं, विषमताओं एवं वास्तविकताओं से प्रेरित है। संस्कृत कथाख्यानों का सीधा जुड़ाव चाहे न हो परन्तु हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में प्राचीन कथाख्यानों के तत्व दिखाई पड़ते है। कथा तत्व तो समानता रखता ही है। अंग्रेजी उपन्यास शैलीगत रूप में मुख्य हेतु माना जा सकता है। यथार्थ चित्रण या जीवन की वास्तविकता की अभिव्यक्ति सामयिक चेतना के रूप में प्रमुख पहचान है। हिन्दी उपन्यास यथार्थवाद से ही अनुप्रेरित है। गोपालराय ने कहा है कि– ''हिन्दी उपन्यास अंग्रेजी की नकल या बांग्ला की कलम न होकर समकालीन भारतीय परिस्थितियों में स्वतः पैदा हुआ था।''[88]

नॉवेल के लिए उपन्यास का प्रयोग तो हिन्दी को बांग्ला की देन है ही। बांग्ला में भी उपन्यास पद का प्रयोग भूदेव मुखोपाध्याय ने 1862 ई. में अपनी ऐतिहासिक उपन्यास नाम की कथापुस्तक के लिए किया था। वस्तुतः उपन्यास पद को 'नॉवेल' के अर्थ में स्थापित करने का श्रेय बंकिमचन्द्र चटर्जी को ही है। हिन्दी में 'नॉवेल' के अर्थ में उपन्यास पद का प्रथम प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1875 ई. में 'हरिश्चन्द्र–चन्द्रिका' के फरवरी मार्च के अंकों में

प्रकाशित अपूर्ण कथा 'मालती' के लिए किया था। भारतेन्दु के बाद उपन्यास शब्द का प्रयोग करने वाले दूसरे लेखक राधाकृष्णदास ने 'नाटकोपन्यास' नामक असफल पाक्षिक पत्र निकालने का असफल प्रयास किया। 'रहस्य कथा' उपन्यास नाम देकर बालकृष्ण भट्ट ने इसे आगे बढ़ाया।''[89]

उपन्यास की परिभाषाएँ :–

प्रेमचन्द – ''मैं उपन्यास को मानवचरित्र का चित्रण मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।''[90]

श्यामसुन्दर दास – ''उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।''[91]

गुलाब राय – ''उपन्यास कार्य–कारण श्रृंखला में बँधा हुआ वह गद्य–कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार और पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक–काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्‌घाटन किया जाता है।''[92]

डॉ देवराज – ''उपन्यास गद्य–साहित्य का अन्यतम रूप है जिसका आधार कथा है चाहे वह सीधे मनुष्यों की हो या मनुष्येतर जीव और निर्जीव प्रकृति की चाहे वह सच्ची हो या कल्पित।''[93]

ई.एम. फास्टर – जीवन के गुप्त रहस्यों को अभिव्यक्त करने की विशेषता जितनी उपन्यास में है उतनी अन्य किसी कला में नहीं।[94]

लज्जाराम शर्मा – ''उपन्यास समाज का वह इतिहास है जो उपन्यासकार की कला के सहयोग से कांता–सम्मित उपदेश के द्वारा पाठक का चरित्र शोधन कर समाजोत्थान का कार्य करता है।''[95]

ब्रजनन्दन सहाय – चरित्र–चित्रण प्रधान और न्यायिक प्रतिभा से परिमार्जित, समकालीन यथार्थ से गर्भित तथा शिक्षाप्रद कथा उपन्यास है।''[96]

त्रिभुवन सिंह – ''उपन्यास गद्य–साहित्य का वह समर्थ रूप है जिसमें प्रबंध काव्य का सा सुसंगठित वस्तु–विन्यास, महाकाव्य की सी व्यापकता, गीतों की सी मार्मिकता, नाटकों का सा प्रभाव गाम्भीर्य तथा कहानियों की सी कलात्मकता एक साथ मिल जायेगी।''[97]

भगीरथ मिश्र – युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवनी की पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्य–काव्य उपन्यास कहलाता है।''[98]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – ''मानव जीवन के अनेक रूपों का परिचय कराना उपन्यास का काम है। यह उन सूक्ष्म घटनाओं को प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न करता है जिनमें मनुष्य जीवन बनता है और जो इतिहास आदि की पहुँच के बाहर है।''[99]

भगवती प्रसाद वाजपेयी – ''उपन्यास साहित्य की वह अविकल अक्षुण्ण विधा है जो जीवन के अधिकाधिक निकट पहुँचकर उसमें नव–नव प्राणसंचार ही नहीं करती उसको सतत् प्रबुद्ध और अक्षरणशील बनाती रहती है। इसलिए जीवन का जैसा सम्पूर्ण उद्घाटन उपन्यास में सम्भव है वैसा अन्यत्र नहीं।''[100]

सुदर्शन – ''उपन्यास एक शिक्षा या चित्र है जिसके चारों ओर बहुत से पात्र घूमते रहते हैं।''[101]

उपेन्द्रनाथ अश्क – उपन्यास को जीवन के ही समान यथार्थ, रूढ़िमुक्त, निर्बन्ध, व्यापक एवं विराट होना चाहिए। उपन्यास जीवन की पूरी गहमागहमी को अंक में संजोए ठाठें मारता हुआ महानद है।''[102]

रामलखन शुक्ल – उपन्यास एक ऐसा साहित्य रूप है जिसके माध्यम से महान् चिन्तक और विचारक जागतिक व्यवस्थाओं और अनुभूयमान जीवन के सम्बन्ध में अपनी मानसिक प्रतिक्रिया अत्यन्त व्यवस्थित और विशद रूप में अभिव्यक्त कर सकते है।[103]

राल्फ फॉक्स – ''उपन्यास केवल काल्पनिक गद्य नहीं है, यह मानव जीवन का गद्य है। यह प्रथम कला है जिसने मानव को सम्पूर्णता में लेने और उसे अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है।''[104]

गोपाल राय – ''उपन्यास पर्याप्त आकार की वह मौलिक गद्य–कथा है जो पाठक को एक काल्पनिक पर यथार्थ संसार में ले जाती है। जो लेखक द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभूत और सर्जित होने के कारण नवीन होता है।''[105]

ज्ञानेन्द्र कुमार सन्तोष – ''समय और समाज की समस्याओं, प्रश्नाकुलताओं, चुनौतियों, अन्तर्विरोधों, विसंगतियों, विद्रूपताओं और आधुनिक समाज की जटिलताओं, यन्त्रणाओं को व्यक्त करने के लिए उपन्यास अच्छा माध्यम हो गया है।''[106]

लार्ड डेविड सिसिल – ''उपन्यास एक ऐसी कलाकृति है जो हमें जीवित जगत से परिचित कराती है। यह जगत बहुत कुछ हमारे यथार्थ जगत के समान होता है किन्तु उसका विशिष्ट व्यक्तित्व होता है।''[107]

प्रिस्टले – ''उपन्यास गद्य में लिखित कथा है जिसमें प्रधानतः काल्पनिक पात्र और घटनाएँ रहती हैं। यह जीवन का अत्यन्त विस्तृत तथा विशद दर्पण है और साहित्य की अन्य विधाओं

की तुलना में इसका श्रेय व्यापक होता है। उपन्यास को हम ऐसे कथानक के रूप में ले सकते है जो सरल और शुद्ध वर्णन मात्र हो, मानवीय व्यवहार का चित्र हो या चरित्रों का प्रकाशन हो अथवा किसी जीवन दर्शन का माध्यम हो।''[108]

डॉ मूलर – ''उपन्यास मूलतः मानवीय अनुभव का निरूपण है चाहे वह यथार्थ हो अथवा आदर्श और इस प्रकार उपन्यास में अनिवार्यतः जीवन की आलोचना रहती है।''[109]

जार्ज मूर – ''उपन्यास समकालीन इतिहास के सिवा और कुछ नहीं है। जिस युग में हम जी रहे हैं, वह उसके सामाजिक परिवेश का बिल्कुल पूर्ण और सही–सही पुनः निर्माण है।''[110]

क्रास – ''उपन्यास उस गद्य आख्यान को कहा जाता है जो यथार्थ जीवन का आदर्शवादी दृष्टि से अध्ययन करे।''[111]

क्लारारीव – ''उपन्यास यथार्थ जीवन तथा तत्कालीन सामाजिक व्यवहार का चित्र है। उपन्यास की कसौटी यह है कि वह हमारी परिचित वस्तुओं और दृश्यों का चित्रण इस ढंग से करे कि वह सामान्य हो जावे और कम से कम उपन्यास पढ़ते समय पाठक के यथार्थ का भ्रम उत्पन्न हो जाए, पाठक उन्हें अपना समझने लगे।''[112]

न्यू इंग्लिश डिक्शनरी – ''वृहद आकार का गद्य–आख्यान या वृत्तान्त जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पात्रों और कार्यों को कथानक में चित्रित किया जाता है।''[113]

उमेश शास्त्री – ''उपन्यास एक व्यक्ति का जीवन है, एक परिवार का संघर्ष है, एक समाज का यथार्थ रूप तथा संस्कृति का पृष्ठ है। साथ ही कला का उत्कृष्ट स्वरूप है।''[114]

समग्रत उपन्यास एक व्यक्ति, परिवार, समाज, देश, परिवेश एवं काल विशेष का ऐसा निकटतम एवं यथार्थ चित्रण है जो कल्पनापरक होने पर भी सत्य के निकट है। जीवन का सच्चा दस्तोवज होकर भी जीवन का मार्गदर्शक है, समाज का दर्पण होने पर भी सामाजिक परिमार्जन का माध्यम है। जीवन की समस्त समस्याओं, जटिलताओं, विद्रूपताओं, विषमताओं की मार्मिक अभिव्यक्ति के साथ–साथ जीवन के आनन्द का प्रकटीकरण है। मानव–मन की समस्त गुत्थियों का सुलझा हुआ चेतन स्वरूप है। उपन्यास समकालीन जीवन का ऐसा चित्र है जो भविष्य का इतिहास एवं वर्तमान का भविष्य है।

1.3 इतिहास एवं उपन्यास –

इतिहास एवं उपन्यास का सारगर्भित अध्ययन करने पर जो निष्कर्ष प्राप्त होता है उसके अनुसार इतिहास बीते हुए युग का उपलब्ध सामग्री के आधार पर किया गया काल क्रमानुसार

एवं व्यवस्थित लेखन है। प्राचीन शिलालेखों, सिक्कों, ताम्रपत्रों, स्मारकों, दस्तावेजों, यात्रियों के विवरणों, प्राचीन स्थानों एवं खुदाई में प्राप्त वस्तुओं पर आधारित लेखन होता है – इतिहास। जबकि उपन्यास समकालीन जीवन का कल्पनाजनित यथार्थ अंकन करता है। उपन्यास में प्रत्यक्ष मानव एवं समाज की वास्तविक अभिव्यक्ति होती है। इतिहास सत्य को प्रमाणित करवाता हुआ सत्य लेखन है जबकि उपन्यास सत्य घटना पर आधारित होने पर भी कथात्मक एवं रसात्मक कल्पना प्रतीत होता है। कथा उपन्यास एवं इतिहास दोनों का तत्व है परन्तु उपन्यास लेखन की कल्पना शक्ति का प्रतिफलन होता है और इतिहास इतिहासकार की अनुमानजन्य शक्ति का। यथार्थ चित्रण दोनों ही विधाओं का मूल हैं। वीणा गौतम के अनुसार ''उपन्यास यथार्थ समाज का दर्पण है जिसमें मानव जीवन के प्रत्येक क्रिया–कलापों का प्रतिबिम्ब रहता है।''[115] और हरदेव बाहरी के अनुसार ''इतिहास व्यक्ति, समाज, देश की महत्वपूर्ण, विशिष्ट एवं सार्वजनिक क्षेत्र की घटनाओं का काल क्रम से लिखा हुआ विवरण या तथ्यों एवं घटनाओं का कालक्रमानुसार विवेचन है।''[116] दोनों विधाओं में घटनाएँ कथानक का निर्माण करती हैं, अर्थात् कथा तत्व की प्रमुखता है। हरदेव बाहरी के अनुसार ''उपन्यास कल्पित एवं लम्बी कहानी है तो अनेक पात्रों एवं घटनाओं से युक्त है।''[117] कालिका प्रसाद ने इतिहास को ''अबतक घटित घटनाओं या उससे सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों का काल–क्रमानुसार वर्णन बताया है।''[118] जी.एम. ट्रेवेल्यान ने कहा है कि ''इतिहासकार का पहला कर्तव्य कहानी कहना है और इतिहास अपने अपरिवर्तनीय मूल तत्व में एक कहानी है।''[119]

इतिहास एवं उपन्यास में प्राचीन आख्यान शैली के तत्व निहित हैं। इस स्थिति में इतिहास लेखन एवं उपन्यास लेखन समानधर्मा हो गया है। परन्तु इसमें असमानता भी पायी जाती है। मैनेजर पाण्डेय स्पष्ट करते हैं कि – ''इतिहास के आख्यान और उपन्यास के आख्यान में बुनियादी फर्क है। इतिहास में आख्यान का अन्वेषण होता है। उस अन्वेषण का अर्थ एवं प्रयोजन है। घटनाओं की सच्चाई का अन्वेषण। उपन्यास में आख्यान के माध्यम से पात्रों के क्रिया–व्यापार और उनकी मनोदशाओं की अभिव्यक्ति होती है। इतिहास में घटनाओं और पात्रों की खोज होती है, उपन्यास में घटनाओं और पात्रों का सृजन होता है।''[120] उपन्यास और इतिहास में सत्यं एवं शिवम् के साथ सुन्दरम् का अन्तर भी होता है। मैनेजर पाण्डेय ने दर्शाया है कि ''उपन्यास में लोकप्रवृत्ति की खोज, समझ और पहचान का जैसा प्रयत्न होता है, वैसा इतिहास में नहीं। इतिहास और उपन्यास में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि इतिहास लेखन में केवल एक स्वर होता है। वह स्वर इतिहासकार का होता है जबकि उपन्यास में स्वरों की अनेकता या बहुलता होती है। इतिहास का प्रयोजन तथ्यों का ज्ञान कराना होता है। उपन्यास का लक्ष्य सौन्दर्य बोध जगाना भी है।'' [121] इसी तथ्य को लक्षित करते हुए लज्जाराम शर्मा ने लिखा है कि – ''उपन्यासकार एवं इतिहासकार में यही अन्तर है।

इतिहासकार को प्रभाव की कोई चिन्ता नहीं रहती है। समाज का यथार्थ मात्र प्रस्तुत कर देना उसका कर्तव्य है। उपन्यासकार को समाज का यथार्थ भी प्रस्तुत करना है तथा शिवेतर का नारा भी।''[122] अशोक वाजपेयी ने उपन्यास और इतिहास के अन्तर्सम्बन्ध पर गहन विवेचन करते हुए अपने लेख 'साहित्य, इतिहास और इतिहास की राजनीति' में लिखा है कि – ''स्मृति, साहित्य और इतिहास दोनों का महत्वपूर्ण घटक है। सामान्यतः स्मृति को यथार्थ के अतीत हो चुके अंश को अभिगम्य बनाने के स्थान के रूप में देखा जाता है।[123] सम्पूर्ण की तलाश उपन्यास एवं इतिहास दोनों में निहित रहती है। अशोक वाजपेयी ने कहा है कि – ''साहित्य एवं इतिहास दोनों में एक पूर्णता की महत्वाकांक्षा है। दोनों की महत्वाकांक्षा अपने में एक सम्पूर्णता को समेटने की है। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि दोनों कुछ–कुछ सहजात रकीब हैं। दोनों का इष्ट एक ही है। लेकिन दोनों में एक महत्वपूर्ण भेद है कि जहाँ इतिहास लेखन में जीवन की बारीकियाँ, उसके विवरण आदि प्रवेश नहीं पा सकते हैं, वहीं साहित्य इन्हीं बारीकियों और विवरणों पर आधारित है। इतिहास एक ओर तो एक संघटना की तरह है और दूसरी ओर एक विधा या अनुशासन की तरह है जबकि साहित्य संघटना और विधा के इस भेद को बहुत मानकर नहीं चलता है। साहित्य अपनी रचना या हैसियत का विधान ही उस संघटना में करता है।[124] इतिहास आशावादिता पर केन्द्रित है जबकि साहित्य का मार्ग चहुँमुखी है। अशोक वाजपेयी के अनुसार – ''इतिहास का दिशा–निर्देश हमेशा आशा की ओर होता है, उसकी सड़क आशावादिता की ओर ले जाती है। साहित्य की सड़क हर ओर जाती है, किसी एक ब्रह्माण्ड की ओर नहीं जाती। इसीलिए साहित्य का मर्म मनुष्य के होने का आश्चर्य है जबकि इतिहास यदि मार्ग है तो साहित्य आरण्य है। साहित्य में हजारहा रास्ते खुले हुए हैं।''[125] इतिहास और उपन्यास भिन्नता के बारे में उनका कहना है कि इतिहास सत्तापक्षीय विवरण है जबकि उपन्यास मानवीय संवेदना का विश्लेषण है। लिखा है कि – ''इतिहास में बाह्य घटनाओं अर्थात् राजनैतिक उत्थान पतन की घटनाओं का महत्व रहता है। इतिहास मानवीय चेतना के लिए प्रतिबद्ध नहीं रहता है जबकि उपन्यास मानवीय चेतना की आन्तरिक एकता के लिए प्रतिबद्ध होता है। इतिहास के लिए संसार एक है। उसका केन्द्र बल्कि उसकी कील सत्ता है जबकि साहित्य की अन्तश्चेतना में अनेक सृष्टियों का वास है। इतिहास का यथार्थ इहलौकिक प्रवचन है जबकि साहित्य उसका पारलौकिक प्रवचन भी है। पारलौकिक उस अर्थ में जिसमें वह इसी लोक में, इसी लोक के जड़–चेतन के अदृश्य रूप में विद्यमान हैं।''[126]

इतिहास और उपन्यास में मनोरंजन एवं मानसिक तृप्ति के स्तर पर भी पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है। राजनाथ शर्मा ने लिखा है कि – ''इतिहासकार का उद्देश्य अपने पाठकों का मनोरंजन करना न होकर केवल प्राप्त तथ्यों का एक क्रमिक लेखा–जोखा प्रस्तुत कर देना होता है जबकि उपन्यासकार मनोरंजन को सोद्देश्य मनोरंजन को अधिक महत्व

देता हुआ अपने उपन्यास की रचना करता है।''[127] उपन्यास एवं इतिहास में समानता–असमानता कल्पना–शक्ति एवं साक्ष्यों के आधार पर भी दिखाई पड़ती है। वी.वी. जोशी ने स्पष्ट किया है कि – ''उपन्यासकार के कल्पनात्मक चित्र एवं इतिहासकार के कल्पनापरक चित्र दोनों के सफल सम्पादन के लिए एक ही सृजनात्मक विवक्षा की आवश्यकता है। इतिहास एवं उपन्यास के पात्र एक सामूहिक इकाई के अभिन्न अंग के समान सुनिश्चित रीति से कार्य करते हैं।''[128] साथ ही ये भी कहा है कि – इतिहास लेखन के निर्णयों, अनुमानों, स्वीकारोक्तियों तथा विवरणों की सहायता को बाह्य साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध करना होता है इसके विपरीत उपन्यास आन्तरिक साक्ष्यों पर आधारित होता है तथा उसकी एक समस्त कार्य कारण श्रृंखला स्वयं में पूरी होती है।''[129] समस्त भिन्नताओं के बावजूद उपन्यास एवं इतिहास एक–दूसरे की निटकतम विधाएँ भी हैं। गुरदीप सिंह खुल्लर ने विश्लेषण करते हुए लिखा है कि – ''इतिहासकार तथा उपन्यासकार दोनों घटनाओं का क्रमिक वर्णन करते हैं, स्थितियों का विवरण देते हैं, उद्देश्य का प्रदर्शन तथा चरित्रों का विश्लेषण करते हैं। इस प्रकार उपन्यास लेखन एवं इतिहास लेखन में अन्यान्य समानताएँ हैं तथा एक–दूसरे के निकटतम हैं।''[130]

इतिहास तथ्यपरक, तटस्थ दृष्टि, राष्ट्रीय एवं सत्यनिष्ठ होता है जबकि उपन्यास वैयक्तिक कल्पनाश्रित, मानवीय संवेदना ये युक्त संभावित सत्य का चित्रण करता है। भगीरथ मिश्र ने इस भिन्नता को अधिक स्पष्टता के साथ व्यक्त किया है। (1) इतिहासकार की दृष्टि राष्ट्रीय है। उसके लिए राष्ट्र प्रधान है व्यक्ति गौण। वह चरित्रों को राष्ट्र की पृष्ठभूमि में देखता है। अतः व्यक्ति की निजी भावनाओं का उसके लिए महत्व नहीं वरन् बाह्य घटनाएँ उसके लिए अधिक महत्व की हैं। जबकि उपन्यासकार के लिए व्यक्ति ही सबकुछ है उसकी परिस्थितियों की सृष्टि और आवश्यकता व्यक्ति के लिए होती है। उसके लिए व्यक्ति प्रधान है, राष्ट्र गौण। बाह्य घटनाएँ व्यक्ति के उत्कर्ष–अपकर्ष और व्यक्तित्व के विकास के लिए ही महत्वपूर्ण होती है। वह एक विश्वासपात्र की भाँति पात्रों के आन्तरिक रहस्य का उद्घाटन करता है। (2) इतिहास में मौलिकता और कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं। लाख जनश्रुति होने पर भी वह ठोस प्रमाण के बिना कोई भी तथ्य स्वीकार नहीं कर सकता जबकि उपन्यासकार कल्पना पर ही आश्रित है। अपने कल्पित पात्र के अनुकूल वह परिस्थितियों का निर्माण करता है। इतिहास का कार्य घटना की खोज करना होता है व उपन्यास का कार्य खोज नहीं, निर्माण करना है। (3) इतिहासकार प्रामाणिक तिथियों, तथ्यों और यथार्थ नामों के रूप में सत्य को ग्रहण करता है उपन्यासकार तिथियों और नामों की कल्पना कर संभावित सत्य का चित्रण करता है। (4) इतिहासकार सत्य का साररूप इतिवृत ग्रहण करता है। भावना और संवेदना की अपेक्षा तटस्थ, अभावुक दृष्टिकोण इतिहासकार के लिए आवश्यक है। उपन्यासकार सारभूत सत्य को जीवन की घटनाओं के ढांचों और भावों, अनुभूतियों, आशाओं के रक्त–मांस से युक्त कर

सजीव और साकार रूप में प्रस्तुत करता है। भावुकता और संवेदना उपन्यासकार की प्रेरक शक्तियाँ हैं। वह सत्य के बीज को कल्पना की मिट्टी में भावना के जल से सींचकर पल्लवित एंव पुष्पित करना है।[131]

अतः कहा जा सकता है कि इतिहास भूतकालिक समाज का घटना केन्द्रित वर्णन है जो अपनी तटस्थ, निरपेक्ष, तथ्यनिष्ठ व सत्यनिष्ठ दृष्टि के कारण यथार्थवादी लेखन है जबकि उपन्यास भूतकाल, वर्तमान काल एवं भविष्य काल को समेटे हुए ऐसे वर्तमानकालिक समाज का चित्रण है जिसमें केवल घटनाओं का महत्व नहीं, व्यक्ति व समाज का सम्पूर्ण चित्रण होता है।

उपन्यास में इतिहास की तरह केवल महत्वपूर्ण व्यक्तियों एवं घटनाओं का नहीं, वरन् सामान्य जन–जीवन का भी सम्पूर्ण चित्रण होता है। इतिहास का यथार्थ तथ्यों एवं प्रमाणों पर आधारित होता है जबकि उपन्यास का कल्पनात्मक यथार्थ समाज के प्रत्यक्ष दर्शन एवं चिंतन पर आधृत होता है। अतः ऐतिहासिक पात्रों एवं धटनाओं का कल्पनापरक यथार्थवादी सामाजिक दृष्टि से किया गया सृजनात्मक लेखन ऐतिहासिक उपन्यास है। ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास केन्द्रीय विषय वस्तु के रूप में विद्यमान होता है। अतः इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास के अन्तर्सम्बन्ध को भी स्पष्ट कर लेना अपरिहार्य लगता है।

1.4 इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास –

कल्पनात्मक–यथार्थ से संयुक्त इतिहासपरक कथालेखन ऐतिहासिक उपन्यास कहलाता है। इतिहास एवं कथात्मक समानधर्मिता रखते हुए भी ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास से अपनी अलग सत्ता एवं पहचान रखता है। इतिहास के साथ–साथ प्राचीन कथारूपों से भिन्नता रखते हुए भी कथातत्व एवं मानव जीवन का देशकाल मिश्रित चित्रण उपन्यास को इतिहास से निकटता भी प्रदान करता है। समाज और इतिहास का गहरा नाता ऐतिहासिक उपन्यास व इतिहास दोनों में प्रकट होता है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए मिशेल जेराफा ने लिखा है कि – ''उपन्यास कथा की वह पहली कला है जिसमें ऐतिहासिक एवं सामाजिक रूप से निरूपित मनुष्य व्यक्त होता है। उपन्यास के साथ समाज इतिहास में और इतिहास समाज में प्रवेश करता है।''[132] कहा जाता है कि आज का इतिहास–लेखन व्याख्यापरक एवं आख्यानपरक हो जाने के कारण यथार्थवाद एवं तथ्यवाद से मुक्त हो गया है। इस रूप में भी इतिहास औपन्यासिक शैली ग्रहण करता जा रहा है। इस निकटता के बावजूद इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास में आख्यान की बुनियाद एवं सच के साथ सम्बन्धों की भिन्नता का अन्तर है। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार – ''इतिहास में आख्यान का अन्वेषण होता है जबकि उपन्यास में आख्यान का आविष्कार होता है। इतिहास में घटनाओं और पात्रों की खोज होती है जबकि उपन्यास में घटनाओं और पात्रों का सृजन होता है। ऐतिहासिक सच एवं कलात्मक

सच का अन्तर ही इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास को एक–दूसरे से अलग करता है और जोड़ता भी है। इतिहास का दायित्व सच का ज्ञान कराना है तो ऐतिहासिक उपन्यास का काम सच की प्रतीति और उसका अनुभव कराना है, ऐतिहासिक उपन्यासकार कलात्मक सच को अधिक महत्व देता है जबकि इतिहासकार ऐतिहासिक सच को खोजने और सामने लाने का प्रयत्न करता है।''[133] इतिहास और उपन्यास में घटना का चित्रण होता है। आख्यान एवं घटना इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास में भिन्न–भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होती हैं। मैनेजर पाण्डेय ने स्पष्ट किया है कि – ''इतिहासकार घटनाओं का व्याख्याकार होता है। आख्यान व्याख्या का माध्यम होता है जबकि ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए घटना का महत्व उतना नहीं है जितना घटना की प्रक्रिया का। इसीलिए उपन्यास में आख्यान के माध्यम से घटना की प्रक्रिया की अभिव्यक्ति होती है।''[134] इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास में बुद्धि एवं कल्पना तथा क्रियात्मक पद्धति एवं सृजनशीलता का अन्तर भी पाया जाता है। मैनेजर पाण्डेय ने स्पष्ट किया है कि – ''इतिहास लेखन में मुख्यतः ऐतिहासिक बुद्धि तथ्य संग्रह, विश्लेषण तथा व्याख्या में लगी रहती है जबकि ऐतिहासिक कल्पना संश्लेषण एवं सृजन में।''[135] इतिहास पुनरावलोकन एवं पुनः अभिव्यक्ति में ही सफलता देखता है जबकि उपन्यास रचनात्मक सफलता चाहता है। पात्रों एवं चरित्रों की सृष्टि एवं चित्रण में भी इतिहासकार एवं उपन्यासकार अलग–अलग सामर्थ्य का उपयोग करते है। शशिभूषण सिंहल ने लिखा है कि – ''इतिहासकार पात्र विशेष का चरित्र घटनाओं के संदर्भ में चित्रित करता है और उपन्यासकार सशक्त, कल्पना कर उसमें रचनात्मक वृत्ति उभारता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास के पात्रों के मूल चरित्र की रक्षा करते हुए उसके मनोवैज्ञानिक एवं द्वन्द्वित चरित्र को उभारता है। उसके व्यक्तित्व को नवीन दृष्टिकोण से दर्शाता है।''[136] इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास में काल चित्रण एवं कालगत गतिशीलता के लक्ष्य भी भिन्नता के रूप में भी अलग–अलग महत्व रखते हैं। शशिभूषण सिंहल ने लिखा है कि – ''इतिहास भूतकाल में विचरण करता है जबकि उपन्यास भूत वर्तमान एवं भविष्य तीनों में गतिशील रहता है। ऐतिहासिक उपन्यास भूतकाल से वर्तमान और भविष्य की ओर विचरण करता हुआ गतिशील रहता है।''[137] इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास दोनों में मानव जीवन, समाज एवं राष्ट्र के वास्तविक चित्रण के साथ–साथ मानवीय सत्य के उद्घाटन की चेष्टा भी होती है। इतिहास विगत घटनाओं का अध्ययन एवं स्पष्टीकरण है, भौतिक उपलब्धियों एवं सांस्कृतिक विकास का साक्षी है; समाज व राष्ट्र में व्यक्ति के प्रतिनिधित्व को निश्चित करता है, इस रूप में इतिहास में प्रयोग और परीक्षण की संभावनाएँ बनी रहती है तथा इतिहास में विगत घटनाओं के अर्थ की अभिव्यंजना ही मुख्य ध्येय है जबकि ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास की प्रवृत्तियों को सहजता से स्वीकार कर अपनी रूचि एवं प्रतिभानुसार उनका उपयोग करता है और इतिहास को रस–सृष्टि का माध्यम बनाकर पाठक के चित्र को एकाग्रता प्रदान करता है। प्रचलित तथ्यों को नित–नूतन प्रयोगों से मंडित करता है। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहासकार से सामीप्य

रखते हुए भी उद्देश्यगत भिन्नता रखता है। उपन्यासकार ऐतिहासिक वृत्त को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करते हुए वर्तमान के लिए ग्राह्य रूप में अभिव्यक्त करता है।

वह इतिहास को युग–विशेष की परिधि से ऊँचा उठाकर सार्वकालिक मानवीय सत्य की स्थापना करता है। शशिभूषण सिंहल ने कहा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी दृश्यांकन शैली एवं कल्पना प्रयोग की दृष्टि में इतिहासकार से भिन्न है। उसका कलाकार घटना के अंकन–विवेचन से आगे बढ़कर, चित्रण द्वारा उसे बिम्बात्मक रूप प्रदान करता है। बिम्बांकन में वह समाज व राष्ट्र को गौण स्थान देकर व्यक्ति को प्रमुखता देता है। उपन्यासकार पात्रों के व्यक्तित्व खड़े करके, उनके अन्तर में पैठकर उनके मनोविज्ञान को प्रत्यक्ष करता है। मनुष्य व्यक्ति के वास्तविक जीवन का अधिकांश इतिहास में अव्यक्त रहता है, उपन्यासकार उसके जीवन के अनपेक्षित व्यक्त को त्यागकर उल्लेखनीय अव्यक्त को व्यक्त करता है।''[138]

इतिहासकार एवं ऐतिहासिक उपन्यासकार दोनों घटनाओं एवं उनके बीच के कार्य–कारण सम्बन्ध को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखते है। दोनों को ही विषय–वस्तु पात्रों, युग व समाज के साथ एक बौद्धिक एवं हार्दिक साम्यता प्रतिष्ठित करनी होती है। वी.वी. जोशी को उद्धृत करते हुए गुरदीप सिंह खुल्लर ने स्पष्ट किया है कि – ''इतिहासकार एवं ऐतिहासिक उपन्यासकार के अध्ययन की वस्तु अनुपस्थित रहती है। लेखक वर्तमान में उपलब्ध सामग्री की सहायता से ही मानवीय अतीत का अध्ययन कर उसका पुनः प्रस्तुतीकरण करते हैं। उनकी सामग्री में दस्तावेज संस्मरण, आर्थिक संगठन के अवशेष, कानून परम्पराएँ, विश्वास, संस्थाएँ, मिथक तथा साहित्य आदि मुख्य हैं। ऐतिहासिक घटनाओं की श्रृंखला एवं प्रवृत्ति जानने के लिए इन साक्ष्यों का आश्रय लेना पड़ता है। परन्तु इतिहासकार तथा ऐतिहासिक उपन्यासकार दोनों का तथ्यों के चुनाव के प्रति दृष्टिकोण भिन्न होगा। इतिहासकार को अपने समस्त निर्णयों, अनुमानों तथा विवरणों को बाह्य साक्ष्यों द्वारा सिद्ध करना होता है जबकि ऐतिहासिक उपन्यासकार की रचना स्वयं में मुकम्मल होती है और उसका अपना एक विधान होता है। उपन्यासकार कई बार कई घटनाओं को छोड़ भी सकता है। इनके स्थान पर वह कल्पना परक घटनाओं का निर्माण भी करता है जो बहुधा ऐतिहासिक सत्यों के उद्घाटन के लिए किया जाता है। ऐसा करते हुए वह अनैतिहासिक पात्रों का सृजन भी करता है।''[139] इस प्रकार इतिहासकार सत्य को प्रामाणिकता प्रदान करने की चेष्टा करता है तो ऐतिहासिक उपन्यासकार ऐतिहासिक सत्य का सृजन करता है। गुरदीप सिंह खुल्लर के अनुसार इतिहासकार एवं ऐतिहासिक उपन्यासकार दोनों ही अतीत खोज की प्रक्रिया के समय अध्ययन किए जाने वाले युग की मुख्य प्रवृत्तियों का निश्चयन करते हैं। एलेन दुग्गन को उद्धृत करते हुए लिखा है कि – ''इतिहासकार अक्सर मनुष्यों के कार्यों को उनकी योजनाओं, स्कीमों व इरादों के संदर्भ में जाँचते है तथा इनको लागू करने पर क्या उपलब्धि होगी के आधार पर वे अक्सर इनकी व्याख्या करते हैं जबकि ऐतिहासिक उपन्यासकार युग की प्रवृत्तियों के गहन

अध्ययन के पश्चात् अपनी कलात्मक प्रतिभा द्वारा ऐतिहासिक सत्यों का उद्घाटन करते हैं। इस सृजनात्मक कल्पना की सहायता से वे ऐतिहासिक युग की विशिष्ट प्रवृत्तियों को ऐतिहासिक, अर्द्ध–ऐतिहासिक अथवा बहुधा अनैतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं के अन्यान्य क्रियाकलापों तथा विवरणों द्वारा युग का एक चित्र उपस्थित करते हैं। यही अतीत का पुनः प्रस्तुतीकरण तथा पुनः सृजन है।''[140]

इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास में उनकी स्वायत्त शक्ति, पात्र एवं परिवेश चित्रण की प्रविधि एवं विचार–दर्शन की कुशलता के आधार पर भी पर्याप्त वैभिन्य मिलता है। गुरदीप सिंह खुल्लर ने विश्लेषण करते हुए लिखा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यास का एक स्वायत्त–तंत्र स्वयं में मुकम्मल होता है इसलिए वे एक सुनिश्चित थीम वाले कथानक का निर्माण करने के लिए घटनाओं का चयन करते समय अपने कौशल, प्रतिभा तथा युग दृष्टि को भी दृष्टिगत रखते है तथा पात्रों की सृजना के बारे में कार्ल मार्क्स को उद्धृत करते हुए कहते है कि प्रयोजनवादी, निश्चयवादी तथा शैक्षणिक इतिहासकार पात्रों को ऐतिहासिक परिस्थितियों का निर्माण समझते है जबकि उपन्यासकार अतीत के पुनः सृजन की प्रक्रिया में वह अपने पात्रों द्वारा ही अन्यान्य ऐतिहासिक सत्यों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है। परिवेश चित्रण की भिन्नता स्पष्ट करते हुए वे आगे कहते है कि ''इतिहासकार केवल एक पूर्ण निश्चित ऐतिहासिक कालखण्ड का अन्यान्य दृष्टियों से अध्ययन ही करता है, परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासकार ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों, विचारों, समस्याओं तथा परिस्थितियों का चित्रण करने के साथ–साथ उस निश्चित कालखण्ड के परिवेश का जीवंत चित्रण करता है। इतिहासकार एवं उपन्यासकार के वैचारिक दर्शन के बारे में कहते है कि इतिहासकार सामान्यतः एक निश्चित इतिहास दर्शन के आधार पर इतिहास लेखन के कार्य में प्रवृत्त होते हैं। यह दर्शन उनके पूरे अध्ययन में एकरूप एवं अपरिवर्तनीय रहता है। जबकि ऐतिहासिक उपन्यासकार को इसाया बर्लिन के अनुसार अपने 'विचार' अथवा बोध को निश्चयीकरण करने के लिए अपने युग–बोध तथा विवेच्ययुग की युगदृष्टि में तारतम्य स्थापित करना होता है। साथ ही समस्या निवारण के दृष्टिकोण से भी दोनों विधाओं में शैलीगत अन्तर देखा जा सकता है। ऐतिहासिक उपन्यास का प्रणयन करते समय उपन्यासकार ऐतिहासिक परिस्थितियों को एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं जिससे वे घटनाएँ परिणाम के रूप में परिणत हो सके।''[141]

निष्कर्षतः इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास में व्यक्ति, समाज व राष्ट्र का अतीतकालीन चित्रण होता है परन्तु वैचारिक एवं शैल्पिक स्तर पर वैसी ही स्वरूप–भिन्नता पाई जाती है जैसी कंकाल और प्राणयुक्त शरीर, सूखे ठूँठ एवं हरे–भरे वृक्ष तथा अनगढ़ पाषाण खण्ड एवं कलाकृत मूर्ति में पाई जाती है। इतिहास यदि मृत अतीत है तो ऐतिहासिक उपन्यास जीवंत अतीत है।

1.5 ऐतिहासिक उपन्यास –

इतिहास और उपन्यास के अन्तर्सम्बन्ध को समझने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास को अभिव्यक्त करने की शैली एवं ढंग मात्र नहीं है बल्कि अतीतकालीन मानव जीवन की सूक्ष्म, व्यापक, विविध एवं प्रभावशाली अभिव्यंजना है। यह एक विशिष्ट एवं शक्तिसम्पन्न योजना व कलात्मक प्रस्तुति है जो इतिहास एवं अन्य औपन्यासिक रूपों से अधिक जिम्मेदारी को वहन करती है। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यास के लेखक को रचना प्रक्रिया के स्तर पर दोहरे दायित्व का निर्वाह करना होता है। उसे इतिहासकार की सामाजिक दृष्टि और उपन्यासकार की कला–दृष्टि के बीच सामंजस्य स्थापित करना होता है।''[142] ऐतिहासिक उपन्यास का जन्म इतिहास में कला के संयोग से होता है जिसमें अनेक विधाओं का रूप–विधान समाविष्ट होता है। डॉ गोविन्द जी ने ऐतिहासिक उपन्यास की विवेचना करते हुए लिखा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यास ऐसी कलाकृतियों में से एक है, जो विभिन्न कलाओं के पारस्परिक संयोग से उत्पन्न होती है। जिस प्रकार संगीत, कविता तथा नाट्यकला आदि के पारस्परिक सम्मिलन से एक नई कला गीति–नाट्य की उत्पत्ति होती है। जो रूपाभिव्यक्ति में अपने तीनों पूर्ववर्ती कला रूपों से भिन्न होती है। उसी प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास भी उपन्यास कला तथा इतिहास का विलयन है। ऐतिहासिक तथ्य एवं घटनाएँ जब मनःकल्पना के पंखों पर चढ़कर उपन्यास कला के क्षेत्र में प्रविष्ट होती है तो ऐतिहासिक उपन्यास का जन्म होता है।''[143]

ऐतिहासिक उपन्यास प्राचीन तथ्यों के प्रकाश में वर्तमान के अंधकार को दूर करने का प्रयास है। इसमें वर्तमान कालीन समस्याओं को अतीत के आलोक में सुलझाने की चेष्टा की जाती है। गोपीनाथ तिवारी ने ठीक ही लिखा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यासकार नवीन समस्याओं का उद्घाटन प्राचीन इतिहास के प्रकाश में करता है। लेखक एक विशेष समस्या को उठाता है, फिर इतिहास में उसी के अनुकूल घटना ढूंढता है, ठीक है यदि मिल गई तो बहुत ठीक। यदि नितान्त साम्य रखने वाली न भी मिली तब भी प्राचीन घटना का विश्लेषण नवीन समस्या के प्रकाश में कर देता है।''[144]

ऐतिहासिक उपन्यास किसी काल विशेष के ऐतिहासिक यथार्थ का उद्घाटन करता है तथा उसकी तर्कसंगत व्याख्या प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक उपन्यासों का औपन्यासिक संसार ऐतिहासिक तथ्यों से जुड़ा रहता है। डॉ रामस्वरूप खरे के अनुसार – ''जिन ग्रन्थों में ऐतिहासिक दृष्टि को ध्यान में रखकर प्रामाणिक रूप से इतिवृत्त का विश्लेषण किया जाता है और जिसका ढाँचा, कथावस्तु, पात्र, चरित्र–चित्रण, कथोपकथन, भाषा शैली एवं उद्देश्य के साथ–साथ शीर्षक भी इतिवृत्त पर आधारित होता है उसको ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।''[145] किसी विशेष हेतु या प्रयोजन से प्रेरित होकर इतिहास की

ओर उन्मुख होना भी ऐतिहासिक रचना को जन्म देता है। डॉ सरोज सिंह का मानना है कि – ''उपन्यासकार जब किसी विशेष प्रयोजन से अनुप्रेरित होकर इतिहास की किसी घटना या व्यक्ति को केन्द्र में रखकर अपनी कथावस्तु का ताना–बाना बुनता है तब ऐतिहासिक उपन्यास की सृष्टि होती है।''[146]

ऐतिहासिक उपन्यास का सत्य इतिहास है और सत्याभास कल्पना। कल्पना की प्रतिभा इतिहास के सत्य को सरस एवं रूचिकर बनाती है। यद्धपि इतिहास एवं कल्पना का मात्रात्मक अनुपात अनिश्चित है फिर भी यह अनिवार्य तत्व है। डॉ जगदीश गुप्त ने लिखा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कथा की पुरातन समीपता की नूतन समन्वयात्मक अभिव्यक्ति है। जिसके पीछे युग–युग के अतीतोन्मुखी संस्कार निहित हैं। उसकी उत्पत्ति विगत आत्मविस्तार की आन्तरिक मानवीय वृत्ति से हुई है। कथा की कोई भी कल्पना विगत अथवा ऐतिह्य से उसी प्रकार अपने को सर्वथा मुक्त नहीं कर सकती जिस प्रकार इतिहास अपने को कल्पना से अलग नहीं कर सकता।''[147] इसी तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसमें अतीतकालीन पात्र, वातावरण एवं घटनाओं के ज्ञात तथ्यों को कल्पना से जीवंत बनाने का प्रयास होता है।[148] वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यास में ऐतिहासिक यथार्थ की तर्कसंगत वैज्ञानिक व्याख्या होती है, गोपाल राय विश्लेषण प्रदान करते हुए कहते है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास की पुनः प्रस्तुति है जिसमें उपन्यासकार इतिहास की भूली कड़ियों को जोड़ने के साथ–साथ उसकी कल्पना शक्ति से ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र का पुनः निर्माण करता है। पर उसका मुख्य लक्ष्य होता है किसी काल विशेष के ऐतिहासिक यथार्थ का उद्घाटन तथा उसकी तर्कसंगत व्याख्या।''[149]

ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक एवं काल्पनिक पात्रों का यथा तथ्य इतिहास एवं पुनः निर्माण विशेष शैली में किया जाता है। कार्ल बेकसन एवं आर्थर गैज के अनुसार – ''ऐतिहासिक उपन्यास एक विवरण है जो काल्पनिक अथवा ऐतिहासिक अथवा दोनों प्रकार के पात्रों का प्रयोग करते हुए घटनाओं के कल्पनात्मक पुनः निर्माण के लिए इतिहास का प्रयोग करता है,. ... वह सामान्यतः कई बार पर्याप्त शोध की सहायता लेता हुआ कुछ यथातथ्यात्मकता के साथ उन घटनाओं का अलंकृत एवं नाटकीय ढंग से पुनः सृजन करता है जो उसके विषय से सम्बन्धित है।[150] ऐतिहासिक उपन्यासों में बीते हुए काल का चित्रण रहता है। रामलखन शुक्ल ने कहा है कि – ''उपन्यास जो सुदूर भूत के समय का चित्रण करता है, उसे ऐतिहासिक उपन्यास कहते हैं।''[151] शत्रुघ्न प्रसाद के अनुसार ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास के किसी कालखण्ड की घटनाओं से निर्मित कथानक पर प्रस्तुत यथार्थपरक उपन्यास है।''[152] अतीतकालीन उपन्यासों में अतीत की घटनाओं एवं पात्रों का चित्रण किया जाता है। निर्जीव अवशेषों से ही अनुभूति लेकर लेखन अतीतकालीन जीवन का जीवंत चित्रण करते है। अतः

संवेदना के स्तर पर ये उपन्यास अधिक महत्वपूर्ण होते है। शशिभूषण सिंहल ने लिखा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यास में अतीत का चित्रण रहता है, यह चित्रण ऐसे अतीत का होता है जो पर्याप्त पूर्व घट चुका होता है और उपन्यासकार के व्यक्तिगत अनुभव की पहुँच से परे होता है।''153

निष्कर्षतः ऐसे उपन्यास जिनमें उपन्यासकार के युग से सुदूर अतीतकालीन घटना, पात्र तथा परिस्थितियों के बारे में उपलब्ध तथ्यों पर आधारित तत्कालीन वातावरण का कलात्मक पुनर्निर्माण किया गया हो, ऐतिहासिक उपन्यास कहलाते है। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास में अतीतकालीन कालखण्ड से गृहीत कथावस्तु को व्यवस्थित एवं प्रवाहपूर्ण कथानक में पुनः निर्मित किया जाता है। उसी कालखण्ड के मुख्य पात्रों का सजीव चरित्रांकन करते हुए उनकी समस्त मनोभावनाओं का उद्घाटन किया जाता है। परिवेश का कलात्मक चित्रण करते हुए अतीतकालीन समाज को वर्तमान दृष्टिकोण के साथ उपस्थित किया जाता है। ऐतिहासिक यथार्थ इतिहास कल्पना का समन्वय, वातावरण प्रधान चित्रण एवं इतिहास–रस के आस्वादन के साथ–साथ उपन्यासकार के युग की विचारधारा को आधार बनाकर ऐतिहासिक उपन्यास की रचना होती है। अतः स्पष्ट है कि मूल कथा है – इतिहास, चाहे वह यथार्थपरक हो, चाहे इतिहास रस से परिपुष्ट, ऐतिहासिक उपन्यास अतीतकालीन कथा ही है जिसमें वर्तमान कालीन जीवन–दर्शन का भी समावेश रहता है।

1.6 हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्भव–

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का लेखन भी नवोत्थान एवं नवचेतना से प्रेरित आधुनिक काल में भारतेन्दु के समय में ही सामाजिक, जासूसी एवं तिलस्मी उपन्यासों के साथ–साथ ही हुआ। पाश्चात्य संस्पर्श, नवीन ज्ञान–विज्ञान के प्रचार–प्रसार, विभिन्न सुधारवादी आन्दोलनों एवं समाज–सुधारकों के विचारों के प्रभावस्वरूप जिन नवीन परिस्थितियों एवं प्रेरणाओं ने आकार ग्रहण किया, उन्हीं के परिणामस्वरूप हिन्दी उपन्यास का भी सृजन हुआ। इन प्रेरणाओं का प्रभाव बंग–भाषा के साहित्य पर पहले आया। बंग–भाषा के उपन्यासों के अनुवाद रूप में हिन्दी उपन्यासों की रचना होने लगी और शीघ्र ही इस विधा ने हिन्दी में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि –''नाटकों और निबन्धों की ओर विशेष झुकाव रहने पर भी बंग भाषा की देखा–देखी नये ढंग के उपन्यासों की ओर ध्यान जा चुका था। इस समय तक बंग भाषा में बहुत से अच्छे उपन्यास निकल चुके थे। अतः साहित्य के इस विभाग की शून्यता शीघ्र हटाने के लिए उनके अनुवाद आवश्यक प्रतीत हुए।''[154] हिन्दी उपन्यासों के अन्य रूपों की तरह ऐतिहासिक उपन्यास का प्रारम्भ भी बंग–भाषा के अनुवाद रूप में प्रारम्भ हुआ। डॉ रामचन्द्र तिवारी ने डॉ नगेन्द्र द्वारा सम्पादित ''हिन्दी

साहित्य का इतिहास'' में लिखा है कि – ''इस युग में ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखे गए। इस क्षेत्र में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम उल्लेख्य है। किन्तु उनके 'लवंगलता' को ऐतिहासिक उपन्यास की मर्यादा देना उचित नहीं है। वस्तुतः इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की आकांक्षापूर्ति बंकिम के ऐतिहासिक उपन्यासों के अनुवादों में हुई।

इस काल में ठाकुर गदाधर सिंह ने 'बंग विजेता' एवं 'दुर्गेशनन्दिनी' प्रतापनारायण मिश्र ने 'राजसिंह' मुंशी हरित नारायणलाल ने 'दीप–निर्वाण' आदि अनुदित उपन्यासों की रचना की। इसके अतिरिक्त रामकृष्ण वर्मा ने 'चित्तौर–चातकी' कार्तिक प्रसाद खत्री ने इला, प्रमीला, जया, मधुमालती नामक उपन्यासों का भी अनुवाद किया।''[155] गोपालराय के अनुसार श्यामाकुमारी, माधवी–कंकण, शिवाजी विजय, जीवन–संध्या, अकबर, सच्चा सपना, मरहठा सरदार एवं रोशन आरा, मुद्राकुलीन आदि अनुदित उपन्यासों व महाराणा विक्रमादित्य का जीवन चरित्र, महाराजा छत्रपति शिवाजी का जीवन चरित्र, वीर नारायण, अनारकली, बारहवीं सदी का वीर जगदेव परमार आदि इतिहास आश्रित कथा–पुस्तकें भी प्रकाशित हुई।[156] सारांशतः हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्‌भव अनुदित उपन्यासों के साथ–साथ मौलिक उपन्यासों के रूप में हुआ। आधुनिक चेतना के साहित्यकार भारतेन्दु ने भारत के प्राचीन गौरव को याद दिलाते हुए अपने साथी साहित्यकारों को ऐतिहासिक नाटक लिखने हेतु प्रेरित किया था। गोपाल राय ने ज्ञानचन्द जैन को उद्‌धृत करते हुए लिखा है कि भारतेन्दुजी ने राधा कृष्ण दास से कहा था कि – ''भारत वर्ष में अब ऐसे नाटकों की आवश्यकता है जो आर्य सन्तानों को अपने पूर्व–पुरूषों के गौरव का स्मरण करावें ... कि उनके पूर्व पुरूष कैसे उदार, कैसे वीर, कैसे धीर, दृढ़ अध्यवसायी थे और उनकी वीर पत्नी पतिव्रत धर्म और कुल–मर्यादा की रक्षा हेतु अपने अमूल्य जीवन को कैसा तृणवत् त्याग देती थी।''[157] ऐतिहासिक नाटकों के सम्बन्ध में ऐसा आह्वान करने वाले भारतेन्दुजी ने 'हमीर–हठ' नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया था परन्तु प्रथम परिच्छेद लिखकर ही वे परलोक सिधार गए। ऐसा नहीं होता तो 'हमीर–हठ' प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास होता।[158] फलतः उन्नीसवीं सदी की परिस्थितियों, बांग्ला के ऐतिहासिक उपन्यासों एवं भारतेन्दु जैसे साहित्यकारों के प्रेरणास्वरूप उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में हिन्दी के मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन होने लगा। किशोरीलाल गोस्वामी को प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार होने का श्रेय प्राप्त है। इन्होंने युग की आवश्यकता को महसूस करते हुए तथा प्रतापनारायण मिश्र के अनुरोध पर व स्वतः स्फूर्त भावों की प्रेरणा से ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन किया। किशोरीलाल गोस्वामी से प्रारम्भ यह परम्परा निरन्तर प्रवहमान है।

प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा 1890 ई. में हृदयहारिणी, लवंगलता एवं कुसुमकुमारी नामक ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की गई।[159] इनमें से प्रथम उपन्यास का दर्जा प्राप्त करने की दृष्टि से आलोचकों में मत वैभिन्य मिलता

है। माताप्रसाद गुप्त[160] एवं जयकिशन खण्डेलवाल[161] लवंगलता को प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास मानते हैं। जयकिशन खण्डेलवाल ने लिखा है कि – ''हिन्दी के ऐतिहासिक मौलिक उपन्यास का प्रारम्भ पं. किशोरीलाल के सन् 1980 ई. में लिखे गए 'लवंगलता' उपन्यास से होता है। गोस्वामीजी हिन्दी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं।'' 'कुसुम–कुमारी' को प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास मानने वालों में श्री कृष्णलाल एवं रामनारायण सिंह 'मधुर' प्रमुख हैं। श्री कृष्णलाल का मानना है कि – ''नागरी प्रचारिणी सभा–काशी में 'कुसुम–कुमारी' का प्रथम संस्करण उपलब्ध है जिसका रचनाकाल 1889 ई. का है। इस प्रति के अनुसार हिन्दी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'कुसुम–कुमारी' ही सिद्ध होता है।[162] रामनारायण सिंह 'मधुर' आगरा विश्वविद्यालय में उपलब्ध 'भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास' नामक पुस्तक के आधार पर रचनाकाल की दृष्टि से 'कुसुम–कुमारी' को ही प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास मानते हैं।[163] डॉ. गोपीनाथ तिवारी एवं डॉ. सुरेश सिन्हा ने 'हृदयहारिणी' को प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास स्वीकार किया है।[164] गोविन्दजी 'कुसुम–कुमारी' को 1889 ई. की रचना मानते हुए रचना–तिथि के अनुसार तो प्रथम मानते हैं परन्तु सामाजिक तत्व की प्रधानता के कारण उसे ऐतिहासिक श्रेणी का उपन्यास नहीं मानते। उनका मानना है कि – ''ऐतिहासिक अनुक्रम की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में 'हृदय–हारिणी' एवं लवंगलता का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास के सन्दर्भ में दोनों का नाम लिया जाता है परन्तु 'लवंगलता' का रचनाकाल 1890 ई. है अवश्य किन्तु पहली जून 1904 ई. से पहले यह प्रकाशित नहीं हो सका जबकि 'हृदय–हारिणी' उपन्यास सन् 1890 ई. में ही लिखा गया था और उसी वर्ष 'हिन्दोस्तान' नामक दैनिक पत्र के कई अंकों में प्रकाशित हुआ था। उल्लेखनीय है कि 'लवंगलता' उपन्यास 'हृदय–हारिणी' का उपसंहार है।''[165]

शत्रुघ्न प्रसाद 'हृदय–हारिणी' में व्यक्त निवेदन का प्रमाण देते हुए इसी मत को स्वीकार करते हैं। उद्धृत है कि किशोरीलाल गोस्वामी ने 'हृदय–हारिणी' के प्रथम संस्करण में निवेदन किया है कि – ''उन्हीं दिनों प्यारे प्रताप की प्रेरणा से हमने 'हृदय–हारिणी' उपन्यास लिखा और वह 7वीं अक्टूबर सन् 1890 ई. के 'हिन्तोस्तान' में छपना आरम्भ होकर कई संख्याओं में समाप्त हुआ।''[166] आगे वे लिखते है कि वैसे 'हृदय–हारिणी' उपन्यास पुस्तक रूप में 1904 ई. में प्रकाशित हुआ। 'हृदय–हारिणी' से लेकर 'लाल कुँवर' तक उनके पन्द्रह उपन्यास प्रकाशित हुए। किशोरीलाल गोस्वामी इस प्रकार हिन्दी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में मान्य हैं।[167] इस मत वैभिन्य पर गोपाल राय का कहना है कि – 'स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी' के आरम्भिक कुछ अंश 1889 ई. में ही 'सार–सुधानिधि' एवं 'विज्ञ–वृन्दावन' में प्रकाशित हुए थे पर पूरा उपन्यास पुस्तकाकार 1901 ई. में ही प्रकाशित हुआ। निष्कर्षतः 'कुसुम कुमारी' प्रथम लिखित उपन्यास हो सकता है परन्तु ''हृदय–हारिणी वा आदर्श रमणी' प्रथम प्रकाशित उपन्यास होने के नाते प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास कहलाने का अधिकारी है।[168]

अतः स्पष्ट है कि 'हृदय–हारिणी वा आदर्श रमणी' को ही प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास होने का गौरव प्राप्त है और यह तो सर्व–स्वीकृत है कि किशोरीलाल गोस्वामी ही प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो किशोरीलाल गोस्वामी को दूसरा मौलिक उपन्यासकार एवं साहित्य की दृष्टि से पहला उपन्यासकार कहा है।[169] जयकिशन खण्डेलवाल एवं शत्रुघ्न प्रसाद के कथनों से तो वे प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार ठहरते ही हैं। डॉ रामचन्द्र तिवारी[170] एवं गोपालराय[171] ने भी क्रमशः उन्हें उस युग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यासकार एवं हिन्दी का सर्वस्वीकृत प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार माना है। निष्कर्षतः किशोरीलाल गोस्वामी हिन्दी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार एवं उनके द्वारा रचित 'हृदय–हारिणी वा आदर्श रमणी' प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास की प्रतिष्ठा के अधिकारी हैं।

1.7 हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों का विकास –

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना सामाजिक आदि उपन्यासों के साथ ही प्रारम्भ हुई तथा उनके समानान्तर ही विकासरत है। कुछ आलोचकों ने ऐतिहासिक उपन्यासों का विकास–क्रम इतिहास प्रवृत्ति या ऐतिहासिक उपन्यासकारों के आधार पर दर्शाया है। शत्रुघ्न प्रसाद[172] ने भी कालचेतना व ऐतिहासिक उपन्यासकारों को केन्द्र में रखकर वर्गीकरण किया है परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनमें ऐतिहासिक प्रवृत्ति की विशिष्टता के होते हुए भी तद्‌युगीन उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ भी समाहित हो जाती हैं तथा यह भी सच है कि विभाजन की कोई निश्चित सीमा–रेखा तय नहीं की जा सकती है और निरन्तर प्रवाहित औपन्यासिक धारा को बाधित या खण्डित नहीं किया जा सकता है। अतः गोपालराय[173], डॉ त्रिभुवन[174] व डॉ उर्वशी शर्मा[175], उमेश शास्त्री[176], राजनाथ सिंह[177], डॉ रामचन्द्र तिवारी[178] एवं डॉ शान्तिस्वरूप द्वारा किए गए उपन्यासों के वर्गीकरण का अध्ययन करके तथा डॉ शान्तिस्वरूप के इस कथन कि – ''मानव जीवन में घटित घटनाओं को अनन्तता के आधार पर उपन्यासों को गिने–चुने कठघरों में बन्द नहीं किया जा सकता और कोई भी वर्गीकरण आन्त्यन्तिक सिद्ध नहीं होता है'', को स्वीकार्य करते हुए ऐतिहासिक उपन्यासों को भी प्रेमचन्द को केन्द्र में मानकर वर्गीकृत किया जाना ही उचित लगता है जो निम्नानुसार है –

1.7.1 प्रेमचन्द–पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास

1.7.2 प्रेमचन्द युगीन ऐतिहासिक उपन्यास

1.7.3 प्रेमचन्दोत्तर ऐतिहासिक उपन्यास

1.7.4 समकालीन ऐतिहासिक उपन्यास

1.7.1 प्रेमचन्द–पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास –

प्रेमचन्द से पूर्व काल में ऐतिहासिक उपन्यासों का श्रीगणेश किशोरीलाल गोस्वामी ने किया तथा उनके समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासकारों गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, बृजनन्दनसहाय आदि ने इस श्रेणी के उपन्यासों में भी वृद्धि की। रचनाकाल क्रम की दृष्टि से गोपाल राय[180] के अनुसार हृदय–हारिणी व आदर्श रमणी–1890, लवंगलता–1904, तारा व क्षात्र कुल कमलिनी–1902, कनक–कुसुम वा मस्तानी–1904, हीराबाई वा बेहयायी का बोरका – 1904, सुल्ताना रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल–1904–05, मल्लिका देवी वा बंग सरोजिनी–1905, गुलबहार वा मातृ–स्नेह–1906, लखनऊ की कब्र वा शाही महलसारा–1906 सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई–1909, लाल कुँवर वा रंगमहल–1909, किशोरीलाल गोस्वामी के प्रमुख उपन्यास हैं। हृदय–हारिणी एवं लवंगलता को ये एक ही उपन्यास के दो नाम मानते हैं। ज्ञानप्रकाश मिश्र[181] ने राजकुमारी, चन्द्रावली, इन्दुमती, याकूबी तख्त, गुप्त–गोदना उपन्यासों को भी ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में रखकर उल्लेख किया है। अन्य आलोचक इन्हें सामाजिक व तिलस्मी श्रेणी में रखते है।

गोस्वामी जी रचित हृदय–हारिणी और लवंगलता उपन्यासों की कथा बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के काल की है। सिराजुद्दौला को एक विलासी एवं अनाचारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'सोना और सुगन्ध' में अकबर को चालाक शासक के रूप में चित्रित किया है। वह स्वार्थपरायण, धोखेबाज, व्यभिचारी एवं कूटनीतिज्ञ शासक है, ऐसा दर्शाया गया है। 'तारा' में दाराशिकोह को भी ऐसे इश्कबाज की तरह दर्शाया गया है कि वह अपनी बहन जहाँनारा से भी ऐसी प्रेमभरी बातें करता है, जैसे कोई प्रेमी–प्रेमिका करते हो।

गोस्वामी जी के उपन्यास मध्यकालीन इस्लामी शासकों के काल पर रचे गए हैं जिनमें मुस्लिम शासकों को विलासी, स्वार्थी, कूटनीति से परिपूर्ण राजनीतिज्ञ एवं इश्कबाज चित्रित किया गया है। जबकि हिन्दू गौरव को प्रतिष्ठा दिलाने के निमित्त हिन्दू पात्रों को श्रेष्ठ एवं उदात्त दर्शाने का प्रयास किया है। गोपालराय ने कहा है कि – ''गोस्वामी के उपन्यासों में तत्कालीन जीवन का स्पष्ट चित्र सामने नहीं आता। पात्रों के भावजगत के चित्रण में भी उन्होंने विशेष रूचि नहीं दिखाई। इसके विपरीत उनमें बादशाहों और नवाबों के अन्तपुरीय षड़यन्त्रों, काम–व्यापारों, साहसिक कार्यों तथा तिलिस्मी ढंग की गुफाओं, सुरंगों, कोठरियों आदि का वर्णन प्रधान हो गया है। इन उपन्यासों को पढ़ते समय हमें किसी यथार्थ संसार में विचरण करने का बोध नहीं होता। पात्रों के नाम ऐतिहासिक हैं, पर कथा में इतिहास की प्रायः उपेक्षा की गई है। इस कारण कतिपय विद्वानों ने गोस्वामी जी के उपन्यासों को ऐतिहासिक रोमांस कहना अधिक संगत समझा है।''[182]

गोस्वामी को मुसलमान विरोधी रचनाकार समझना भी असंगत है। हिन्दू पराभव काल में हिन्दुत्व की खोयी शक्ति को प्राप्त कर स्वाधीनता के लिए प्रेरित करने की भावना उनका हेतु रहा है और यथार्थ दर्शाना अभीष्ट। वे दोनों के एकत्व के भी समर्थक हैं। रजिया बेगम में उनका उदार साम्प्रदायिक दृष्टिकोण भी सामने आया है। स्वामी ब्रह्मानन्द रजिया से कहते हैं – ''खुदा के सामने हिन्दू और मुसलमान दोनों बराबर हैं। हिन्दू उसे राम कहकर पूजते हैं और मुसलमान उसे खुदा कहकर।''[183]

आचार्य शुक्ल ने गोस्वामी जी के उपन्यासों के बारे में कहा है कि – ''गोस्वामी जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में भिन्न–भिन्न समयों की सामाजिक और राजनीतिक अवस्था का अध्ययन और संस्कृति के स्वरूप का अनुसंधान नहीं सूचित होता है।''[184] उमेश शास्त्री ने मक्खनलाल शर्मा को उद्धृत करते हुए गोस्वामी जी का विवेचन करते हुए कहा है – ''यों वे जीवन को नजदीक से देखने वाले भावुक कलाकार थे, अतः अतिरंजनाओं के बावजूद भी कहीं–कहीं बड़े ही सुन्दर, व्यवस्थित और भावपूर्ण शब्द मिल जाते हैं, जो तत्कालीन समाज की वास्तविक स्थिति और जन–मानस की कुछ स्थितियों को प्रस्तुत करने में सफल सिद्ध होते हैं।''[185] डॉ नरेन्द्र कोहली ने किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों 'तारा' व 'रजिया बेगम' के निवेदन को उद्धृत करते हुए लिखा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए इतिहास के सत्यांश के साथ तो कल्पना की थोड़ी आवश्यकता भी पड़ती है पर जहाँ इतिहास की घटना जटिल, सत्याभास मात्र और कपोल कल्पित भासती है वहाँ लाचार हो इतिहास को बाधा कर कल्पना ही अपना पूरा अधिकार फैला लेती है। .... ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के कारण देश काल में कुछ व्यापकत्व अवश्य है, किन्तु इतिहास में से भी राष्ट्र के उत्थान–काल के चित्रण का अभाव ही है। पतोन्मुख काल को ही उन्होंने अधिक ग्रहण किया है। ... किशोरीलाल गोस्वामी ने इतिहास का यथार्थ ज्ञान उपलब्ध करवाने वाले उपन्यासों की रचना की है।''[186] गोपालराय ने गोस्वामी के 'लखनऊ की कब्र' को उनका सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास माना है जिसमें नवाबी शासन के पतनशील सामन्ती समाज का यथार्थ चित्र देखने को मिलता है।[187] किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यास किस्सागो शैली के उपन्यास हैं। कथा की घटना या परिच्छेद की समाप्ति पर उपन्यासकार अपनी व्याख्या या टिप्पणी देकर शंका का समाधान प्रस्तुत कर देते हैं। पाठकों को सम्बोधित कर परिच्छेद का प्रारम्भ करते हैं। प्रारम्भिक उपन्यासकार होने के नाते वे कुछ कमियों के लिए क्षम्य हैं। वास्तव में ऐतिहासिक उपन्यासों की नींव डालने का गौरव प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

गोस्वामी जी के ही पथ के पथिक समकालीन रचनाकारों में गंगाप्रसाद गुप्त एवं जयरामदास गुप्त प्रमुख हैं। गंगाप्रसाद गुप्त नूरजहाँ वा संसार सुन्दरी–1902, पूना में हलचल वा वनवासी कुमार–1903, वीर पत्नी–1903, कुँवर सिंह सेनापति–1903, वीर जयमल वा कृष्णकान्त–1903 तथा हम्मीर – 1904 आदि ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की तो जयरामदास गुप्त ने

काश्मीर पतन–1907, किशोरी वा वीरबाला–1907, मायारानी–1908, नवाबी परिस्तान वा वाजिद अली शाह–1908, कलावती–1909, प्रभात कुमारी–1909, वीर वारांगना–1909, रंग में भंग–1907, मल्का चाँद बीबी–1909, रानी–पन्ना वा राजललना–1910, आदि प्रमुख उपन्यासों की रचना की। एक और उपन्यास 'रोशन आरा वा चाँदनी और अँधेरा' का भी ज्ञानप्रकाश मिश्र ने उल्लेख किया है। इन उपन्यासों में भी कोई विशिष्ट नवीनता दर्शनीय नहीं है। गोस्वामी जी का अनुकरण ही लगता है। परन्तु कहीं–कहीं ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण एवं पात्रों के विश्वसनीय चरित्र–चित्रण का यथेष्ट प्रयास हुआ है। युद्ध, प्रेम, साहस, श्रृंगार के अनैतिहासिक एवं अविश्वसनीय घटना–व्यापार ही केन्द्रीय कथ्य है।

इस काल की अन्य उल्लेखनीय रचनाओं में मथुराप्रसाद शर्मा रचित – 'नूरजहाँ बेगम' व 'जहाँगीर–1905, बलदेवप्रसाद मिश्र रचित – अनारकली–1900 व पृथ्वीराज चौहान–1902, पानीपत–1902, हरिचरण सिंह चौहान कृत वीर नारायण–1894, पृथ्वीराज–परमाल–1909, बृजबिहारी सिंह कृत – कोटारानी–1902, बाबूलाल सिंह जी कृत – बीरबाला–1903, गिरजानन्द कृत – पद्मिनी–1905, बसन्तलाल शर्मा कृत – महारानी पद्मिनी – रूपनारायण कृत सोने की राख वा पद्मिनी–1917, मुंशी देवीप्रसाद कृत रूठीरानी–1906, बलभद्रसिंह कृत जयश्री वा वीरबाला–1911, सौन्दर्य – कुसुम वा महाराष्ट्र का उदय–1909, रामनरेश त्रिपाठी कृत वीरांगना–1911, रामप्रताप गुप्त कृत महाराष्ट्र वीर–1913, चन्द्रशेखर पाठक कृत भीम सिंह–1915, युगलकिशोर नारायण सिंह कृत राजपूत रमणी–1916, बृजनन्दन सहाय कृत लाल चीन – 1916, मिश्र बंधु कृत वीरमणि–1917, रामजीवन नागर कृत – जगदेव परमार–1912, बाबू सिद्धनाथ सिंह कृत – प्रणपालन–1915, अखौरी कृष्णप्रकाश सिंह कृत वीर चूड़ामणि, श्यामलाल गुप्त कृत – रानी दुर्गावती, शेर सिंह कश्यप कृत आदर्श वीरांगना दुर्गा–1912, मेहता लज्जाराम शर्मा कृत – जुझार तेजा, बाबू जयराम लाल रस्तौगी कृत ताजमहल वा फतहपुरी बेगम आदि है। इन रचनाओं की जानकारी गोपालराय कृत हिन्दी उपन्यास का इतिहास एवं गुरदीप सिंह खुल्लर रचित शोध प्रबन्ध 'ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस' से प्राप्त की गई है।

गुरदीप सिंह खुल्लर[188] ने प्रेमचन्द–पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास से रोमांस की ओर जाना, जनता से कटकर अन्तपुर व राजसभाओं में जाना, काल की धार्मिक धारणा, हिन्दू राष्ट्रीयता एवं हिन्दू पुनरूत्थानवादी दृष्टिकोण की ओर काम (सेक्स) के माध्यम से मनोरंजन, पुराण आदि के उपदेश की ओर, रीतिकालीन श्रृंगार एवं प्रकृति चित्रण की ओर, रासोकालीन शौर्य एवं युद्धों का वर्णन आदि प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है, जिससे इन उपन्यासों का मूल उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि – "विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में अन्तःपुर, राजसभाएँ, युद्ध स्थल एवं मंत्रणा–गृह ऐतिहासिक एवं राजनैतिक घटनाओं को नियोजित करने वाले निकाय के स्थान पर शासक के नितान्त व्यक्तिगत मामलों को जो कि

किसी नारी को प्राप्त करने से सम्बन्धित होते थे, को ही मुख्य स्थान दिया गया है।''[189] वे लिखते है कि – ''विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस स्वर्णिम हिन्दू अतीत के आदर्शों की भारतीय मध्ययुगों में प्रक्षेपित करने की मूल प्रवृत्ति तथा मध्ययुगीन सामन्ती सभ्यता एवं संस्कृति के पुनर्निर्माण एवं पुनर्व्याख्या के साहित्यविचार द्वारा नियोजित है। अन्तःपुर एवं राज्यसभाएँ, उनका ऐतिहासिक एवं रोमांसिक पद्धति से वर्णन, हिन्दू धर्म के सनातन स्वरूप का मध्य युगों में प्रक्षेपण एवं पुनःस्थापन, सैक्स, अपराध तथा उपदेश के विरोधाभास विवेच्य ऐतिहासिक कथापुस्तकों की प्रवृत्तियाँ हैं। मध्य युगों के चित्रण की प्रक्रिया में स्वामीभक्ति, राजभक्ति, रीतियुगीन श्रृंगार एवं प्रकृति चित्रण तथा रासोयुगीन वीरता एवं शौर्य का वर्णन मुख्य रूप से उभरे हैं।''190

गोपालराय का मानना है कि – ''बृजनन्दन सहाय कृत 'लाल चीन' को छोड़कर किसी उपन्यास को सही मायने में उपन्यास नहीं कहा जा सकता है। इन कथाकृतियों में 'लाल चीन' का विशेष महत्व है। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें चरित्र–चित्रण को सर्वोपरि महत्व दिया गया है।''[191] इस उपन्यास में सुल्तान गयासुद्दीन अपने गुलाम लाल चीन द्वारा अन्धा कर दिया जाता है। बन्दी बना लिया जाता है। गयासुद्दीन के छोटे भाई द्वारा लाल चीन का वध होता है। इसमें पात्रों का विश्वसनीय व प्रभावशाली चरित्र–चित्रण हुआ है तथा अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्रण है।

रामदरश मिश्र ने प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों के बारे में लिखा है कि – ''इन उपन्यासों में अभिप्रेत काल के समाज का यथार्थ बोध नहीं प्राप्त होता। इनमें उस काल की जटिल सामाजिक स्थितियों, मानव मन की आकांक्षाओं, प्रश्नों, व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों का तो सूक्ष्म निरीक्षण नहीं प्राप्त होता। सामान्य ऐतिहासिक सत्यों का निर्वाह भी लक्षित नहीं होता। इनमें इतिहास और कल्पना का समन्वय भी दिखाई नहीं पड़ता।[192]

प्रेमचन्द–पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यासों की गति एवं स्वरूप पर विवेचन व्यक्त करते समय यूरोपीय ऐतिहासिक उपन्यासों का सन्दर्भ देख लेना भी समीचीन लगता है। लूकाच के अनुसार – ''ऐतिहासिक उपन्यास का उदय उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में नेपोलियन के पतन के साथ हुआ। स्कॉट का 'वैवर्ली' 1814 में प्रकाशित हुआ। ऐतिहासिक थीम के उपन्यास हमें सत्रहवीं और अठारवीं शताब्दियों में भी मिलते हैं। ...... सत्रहवीं सदी के तथाकथित ऐतिहासिक उपन्यासों को उनकी थीम तथा परिधानों के आधार पर ही ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है। पात्रों का मनोविज्ञान ही नहीं बल्कि चित्रित तौर–तरीके भी लेखक के अपने युग के हैं। अठारवीं सदी के सबसे प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'वालपोल के 'आटरेंटो का किला' में इतिहास का चित्रण सरसरे ढंग से ही किया गया है। इसमें समकालीन जीवन की अनियमितताएँ तथा जिज्ञासाएँ तो हैं, परन्तु ऐतिहासिक युग का सच्चा कलात्मक चित्रण नहीं

है।''[193] अतः प्रारम्भिक उपन्यासकार होने के नाते किशोरीलाल गोस्वामी एवं उनके समकालीन उपन्याकारों से भी श्रेष्ठ कलात्मकता की अपेक्षा रखना युक्तिसंगत नहीं लगता। प्रारंभ ही महत्व है।

1.7.2 प्रेमचन्द–युगीन ऐतिहासिक उपन्यास –

प्रेमचन्द के आगमन एवं उनकी रचनात्मक प्रतिभा से इस काल में उपन्यास एक नया एवं उत्कृष्ट आकार ग्रहण करता है। ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए भी यह तथ्य पूर्ण सत्य सिद्ध होता है। इसी काल में वृन्दावनलाल वर्मा की लेखनी से निसृत 'गढ़ कुण्डार' एवं 'विराटा की पद्मिनी' उपन्यासों से सही अर्थों में ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन होता है। यूरोपीय उपन्यासों के सन्दर्भ में जार्ज लूकाच का कथन है कि – ''सर वाल्टर स्कॉट के पहले के तथाकथित ऐतिहासिक उपन्यासों में उस विशिष्ट ऐतिहासिकता का अभाव है, जिसमें व्यक्ति चरित्रों को उनके युगीन इतिहास की विशिष्टता से उभारा जाता है।''[194] वैसे ही वृन्दावनलाल वर्मा के लिए बच्चनसिंह ने लिखा है कि – ''ठीक–ठिकाने के पहले ऐतिहासिक उपन्यासकार वर्मा जी ही ठहरते है।''[195] यद्यपि इस काल में इनसे पहले भी ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना हुई है। परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों के मापदण्डानुसार यहीं से श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन होना प्रारम्भ होता है। इस काल में शेरसिंह द्वारा 'आदर्श वीरांगना'–1918, लक्ष्मीसहाय माथुर द्वारा 'वीर–बाला'–1921, गोविन्द बल्लभ पंत द्वारा 'सूर्यास्त'–1922, रामनाथ पाण्डेय द्वारा 'सुहराब रूस्तम'–1924, मातासरन मालवीय द्वारा 'नरेन्द्र भूषण'–1925, विश्वम्भरनाथ द्वारा 'तुर्क रमणी'–1925, रामचन्द्र मिश्र द्वारा 'प्रेम–पथिक'–1926, भगवतीचरण वर्मा द्वारा 'पतन'–1927 एवं 'चित्रलेखा'–1934, जगदीश विमल द्वारा 'वीर बादल'–1929, ऋषभचरण जैन द्वारा 'गदर'–1930, कृष्णानन्द गुप्त द्वारा 'केन'–1930, चतुरसेन शास्त्री द्वारा 'खवास का ब्याह'–1933, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला द्वारा 'प्रभावती'–1936, बृजनन्दन सहाय द्वारा 'विस्मृत सम्राट'–1936 तथा वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा 'गढ़–कुण्डार'–1929 एवं 'विराटा की पद्मिनी'–1936 आदि उपन्यासों की रचना होती है। प्रेमचन्द रचित 'रूठी–रानी' उपन्यास भी एक ऐतिहासिक रचना है, जो उनकी सामाजिक रचनाओं जितना उल्लेखनीय नहीं बन पायी। जयशंकर प्रसाद का अधूरा उपन्यास 'इरावती'–1936 इसी काल की देन है, जो पूरा होता तो संभवतः श्रेष्ठ उपन्यासों में मान्य होता।

प्रेमचन्द रचित 'रूठी रानी' जैसलमेर के राजा लोनकरण की अद्धितीय सुन्दर पुत्री उमादे एवं मारवाड़ के साहसी एवं वीर राजा राव मालदेव के बीच घटित प्रसंगों पर आधारित है। जयशंकर प्रसाद रचित 'इरावती' शुंग वंश के उदय काल की कथा है। 'इरावती' देवदासी है। इसमें अग्निमित्र एवं इरावती बीच उपजे प्रणय की कहानी है, जिसमें अनेक आरोह–अवरोह है। 'इरावती' में पतनोन्मुख मौर्यकाल की आन्तरिक दुर्बलताओं एवं बौद्ध धर्म की पतनशीलता

का चित्रण मिलता है। डॉ प्रेमदत्त शर्मा ने लिखा है कि – ''उपन्यास का वातावरण ऐतिहासिक दिखाई देता है। इसमें मौर्यकालीन राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। इरावती में मौर्यकालीन साम्राज्य की पतनोन्मुख शासन व्यवस्था को बताया गया है, जो मौर्यों की आनतरिक दुर्बलता के कारण नष्ट हो गयी है।..... बौद्ध धर्म अपने पतन की चरम अवस्था व्यतीत कर रहा था। .... उपन्यासकार ने इसी मौर्य साम्राज्य के पतन और शुंग वंश के प्रादुर्भाव को बतलाने का प्रयास किया है।''[196] इस उपन्यास में नारी जीवन को विवशता एवं पीड़ा का निदर्शन है।

'प्रभावती' सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला द्वारा रचित ऐतिहासिक रोमांस है। निवेदन में स्वयं निराला जी ने स्वीकार किया है। कान्यकुब्ज के महाराज जयचन्द के सामन्तों से जुड़ी कथा में युद्ध, प्रेम, वीरता, विवाह आदि भावों की अभिव्यक्ति हुई है। सामान्य जनता का दुख, सामन्तों की विलासिता, अकारण युद्ध करने की भावना, राजनैतिक षड़यन्त्र, पीढ़ीगत शत्रुता एवं प्रतिशोध जैसी प्रवृत्तियों का उल्लेख कर मुहम्मद गौरी की विजय के कारणों की पड़ताल की गई है। गोविन्द बल्लभ पंत के 'सूर्यास्त' उपन्यास में महाराणा प्रताप के जीवन की कहानी सामान्य ढंग से कही गई है। बृजनन्दन सहाय कृत 'विस्मृत सम्राट' भी उल्लेखनीय उपन्यास है। इन्द्रविद्यावाचस्पति कृत 'शाहआलम की आँखें'–1918 एवं हरिदास भाविक कृत 'चौहानी तलवार'–1918 उपन्यासों को भी इसी काल में माना जायेगा।

भगवतीचरण वर्मा रचित 'पतन' एवं 'चित्रलेखा' उपन्यासों में 'चित्रलेखा' उपन्यास ने साहित्य जगत में हलचल मचा दी थी। 'पतन' वर्माजी का पहला उपन्यास है, जिसमें वाजिद अलीशाह के विलासी एवं पतनशील दरबारी जीवन का चित्रण है। ऐतिहासिकता, सामाजिकता एवं शिल्प की दृष्टि से कमजोर कृति कही जा सकती है परन्तु विषयवस्तु का धरातल ठीक है। डॉ बृजनारायण सिंह ने लिखा है कि – ''वाजिद अली शाह के दरबार में विलासी जीवन तथा दैनन्दिन प्रक्रिया और बेगमों के महलों की शोचनीय दशा का जो मार्मिक चित्रण उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है। उसका भी कोई ठोस ऐतिहासिक आधार नहीं प्रतीत होता। ..... लेखक ने विलासी जीवन का चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, वहाँ भी पर्याप्त भयभीत और सचेत है।[197]

'चित्रलेखा' पाप एवं पुण्य के प्रश्न को परिस्थिति प्रभावित सिद्ध करने का प्रयास है। इसमें जीवन को परिस्थितिजन्य व्याख्या की गई है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं वह परिस्थितियों का दास है, यही उपन्यास का मूल कथ्य है। संसार में पाप कुछ नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है, यही सिद्ध करना मंतव्य है। यह मूलतः वातावरण प्रधान उपन्यास है। करूणा उमरे ने लिखा है कि – ''चित्रलेखा का विषय, उसकी समस्या का समाधान, उसका कला सौष्ठव, आधुनिकता एवं नवीनता लिए हुए है। .... लेकिन ऐसा

लगता है कि लेखक की दृष्टि अत्यन्त आधुनिक होते हुए भी उसके संस्कार पुरातन है। .... पाप और पुण्य का निराकरण करते हुए भी जैसे लेखक भारतीय कर्मवाद को अपनाकर इन दोनों की प्रतिष्ठा बनी रहने देता है।[198]

वृन्दावनलाल वर्मा के 'गढ़ कुण्डार' एवं 'विराटा की पद्मिनी' उपन्यास इस काल की सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ है तथा ऐतिहासिक उपन्यास रचना का आधार निश्चित करने वाली रचनाएँ है। ये रचनाएँ बुन्देलखण्ड की मुस्लिम शासनकाल की पृष्ठभूमि पर आधृत हैं। 'गढ़ कुण्डार' का कथ्य खंगारों एवं बुन्देलों का जातिगत संघर्ष एवं सामन्तों का मिथ्या जातिगर्व परिभाषित होता है। जिसके तहत वे एक–दूसरे के ही विनाशक बने रहते हैं। 'विराटा की पद्मिनी' में अव्यक्त प्रेम की मार्मिकता के साथ–साथ राज परिवारों में होने वाले संघर्षों एवं षड़यन्त्रों का चित्रण किया गया है। इन उपन्यासों में वर्माजी ने इतिहास, लोक–कथाओं, जनश्रुतियों, ध्वंश अवशेषों के रूप में गढ़ों से जुड़ी कहानियों से संभावित इतिहास ग्रहण कर कल्पना द्वारा समन्वित करने का प्रयास किया है। न तो इतिहास को विकृत होने दिया है और न ही आवश्यकता से ज्यादा महत्व दिया है। इस प्रकार रोमांस की प्रवृत्तियों से बचते हुए उन्होंने ऐतिहासिक यथार्थ को स्थापित किया है। 'गढ़ कुण्डार' वर्मा जी का तो प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है ही, सही अर्थों में ऐतिहासिक परम्परा का भी प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है। घटनाओं के संयोजन–कौशल, चरित्र सृष्टि एवं ऐतिहासिक परिवेश के सजीव निर्माण के कारण एक पौढ़ कृति के रूप में मान्य है। गणेश शंकर विद्यार्थी ने इसकी प्रशंसा करते हुए वर्मा जी को लिखा था – ''मुझे तो इस पुस्तक को पढ़ने में बहुत आनंद आया। ...... सर वाल्टर स्कॉट के अच्छे उपन्यासों की टक्कर का अच्छा उपन्यास है।''[199] गढ़ कुण्डार एवं विराटा की पद्मिनी दोनों की संवेदना यद्यपि भिन्न है, परन्तु इतिहास एवं कल्पना संयोजन व ऐतिहासिक यथार्थ की प्रस्तुति में दोनों प्रौढ़ रचनाएँ हैं। गढ़ कुण्डार कथानक–कौशल, चरित्र, शील निरूपण, ऐतिहासिक यथार्थ और उसके प्रभावस्वरूप ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा का सुन्दर, सुदृढ़ और अद्भुत शिल्पन्यास है। वहीं विराटा की पद्मिनी ऐतिहासिक वातावरण की सजीवता, सामंतीय जीवन के संघर्षों एवं अन्तर्द्वन्द्वों, अंतपुरीय षड़यन्त्रों, युद्ध की विभीषिकाओं एवं उसके दुष्प्रभावों के साथ–साथ अव्यक्त से प्रेम–संवेदन के मार्मिक चित्रण के साथ मानवीय स्वभाव की स्वाभाविक कलात्मक अभिव्यक्ति है। प्रेमचन्द युग में गढ़ कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, चित्रलेखा एवं इरावती ऐतिहासिक उपन्यासों की उल्लेखनीय उपलब्धि हैं।

1.7.3 प्रेमचन्दोत्तर युग–

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास विस्तार एवं विविधता की ओर अग्रसर होता है। इसे आगे चलकर स्वातन्त्र्योत्तर एवं साठोत्तर उपन्यास में भी विभाजित किया गया है। गोपालराय ने

नयी दिशाओं की तलाश एवं विमर्श के नए क्षितिज नाम दिए है। वास्तव में इस काल में उपन्यास अनेक नए मार्ग अर्थात् नई विचारधाराएँ खोजता है एवं अनेक विमर्श आधारित उपन्यासों की रचना भी होती है। ऐतिहासिक उपन्यास भी भिन्न–भिन्न विचारधाराओं के साथ अभिव्यक्त होता हुआ इतिहास को भिन्न–भिन्न दृष्टियों से प्रस्तुत करता है। वृन्दावनलाल वर्मा, यशपाल, रांगेय राघव, हजारीप्रसाद द्विवेदी, मिश्र बंधु, अमृतलाल नागर, राहुल सांकृत्यायन, गुरूदत्त, चतुरसेन शास्त्री, शिवसागर मिश्र रूद्र, बालाशौरि रेड्डी आदि उपन्यासकारों ने अनेक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की हैं। वृन्दावनलाल वर्मा ने प्रेमचन्द युग में ही ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना कर इस क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था। परन्तु उनके मुसाहिब जू–1946, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई–1946, कचनार–1947, माधवजी सिंधिया–1948, टूटे काँटे–1949, मृगनयनी–1950, भुवन विक्रम–1957, अहिल्या बाई–1955, महारानी दुर्गावती–1964, रामगढ़ की रानी–1961, सोती आग–1967, आदि के अलावा कीचड़ और कमल–1964, ललित्यादित्य–1973, देवगढ़ की मुस्कान–1973 प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर युग की देन है। वृन्दावनलाल वर्मा ने बुन्देलखण्ड की धरती की मध्यकालीन घटनाओं एवं तथ्यों को आधार बनाकर अधिकांश उपन्यासों की रचना की है। 'भुवन–विक्रम' उत्तर–वैदिक कालीन इतिहास की रचना है। वर्मा ने अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा, राष्ट्रीय दृष्टि से इतिहास की परख, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दशाओं का यथार्थ चित्रण, आदर्शवादी भावना का समन्वय, वीरता एवं शौर्य के उदात्तस्वरूप, सृजनात्मक कल्पना एवं इतिहास का सामंजस्य, कल्पना द्वारा इतिहास के रिक्तांश भरना, नाटकीय संवाद, प्रेम एवं सौन्दर्य के मधुसिक्त चित्र दर्शाकर इतिहास को गौरवशाली रूप में व्यक्त किया है। 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' वर्मा जी का ब्रिटिशकालीन अनाचारों को उद्घाटित कर राष्ट्रीय चेतना प्रदान करने वाला उपन्यास है। गोपाल राय इस उपन्यास को ब्रिटिशकालीन भारतीय इतिहास पर रचित प्रथम उपन्यास की संज्ञा देते हैं।[198] वर्मा जी ने इतिहास को पुररूद्धार के रूप में लिखा है। यह पुनरूद्धार इतिहास एवं भारतीय जीवन दोनों का है। इतिहास को विदेशियों की भ्रान्त धारणाओं से मुक्त कर सत्यान्वेषी दृष्टि से यथार्थ के निकट पहुंचाया है तथा इतिहास द्वारा जागृत एवं चेतन होने का संदेश दिया है। कहते हैं – ''परदेशियों के तोड़–मरोड़कर लिखे हुए इतिहास पटके खाए हुए उस चमकते हुए टीन के कनस्तर के समान हैं जिसमें सुन्दर से सुन्दर चेहरा अपने को कुरूप और विकृत पाता है किन्तु परम्परा अतिशयता की गोद में खेलती हुई भी सत्य की ओर संकेत करती है। मुझको परम्परा इतिहास से भी आकर्षक जान पड़ती है।''[199] इतिहास से प्रेरणा के सम्बन्ध में लिखते है कि – ''उनकों (पाठकों) मैं पुराने वातावरण में ले जाकर पुरातन की ग्राह्य और अग्राह्य दोनों मूर्तियाँ दिखाता हूँ जिससे वे वर्तमान में लौटकर पुरातन के सड़ियलपन को वहीं छोड़ आये और सशक्त को अपने साथ रखकर वर्तमान की समस्या से भिड़ने में अपने आपको समर्थ पावें।''[200] उपन्यासों

का सम्पूर्ण निचोड़ नरेन्द्र कोहली[201] के निम्न कथनों में व्यक्त होता है। वे कहते है कि – ''वर्मा जी के उपन्यासों तथा रोमांसों के चार प्रयोजन हो सकते हैं। 1. ऐतिहासिक सत्य का अनुसंधान एवं विभिन्न लेखकों द्वारा प्रसारित ऐतिहासिक भ्रान्तियों का निराकरण 2. इतिहास के माध्यम से समस्त राष्ट्र के अतीत का गौरव गान (बुन्देलखण्ड) 3. जनता में स्फूर्ति का संचार 4. इतिहास के माध्यम से आधुनिक समस्याओं का समाधान..... वर्माजी के गंतव्यों का अनुशीलन स्पष्ट करता है कि वे वर्तमान जीवन की समस्याओं के समाधान हेतु ऐतिहासिक सत्यानुसंधान पर अधिक बल देते है। उनके उपन्यासों में अतीत गौरव के गान द्वारा जब सामान्य में अतीतकाल के प्रति मोह जागृत कर स्फूर्ति लाने का गहरा प्रयास दिखाई पड़ता हैं।

प्रेमचन्दोत्तर ऐतिहासिक उपन्यासकारों में राहुल सांकृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव एवं अमृतलाल नागर आदि के नाम विशिष्ट उल्लेखनीय हैं। साथ ही अनेक ऐसी और ऐतिहासिक उपन्यास रचनाएँ भी लिखी गई हैं, जिनका विवेचन भी आवश्यक हो जाता है। इनमें यशपाल, राहुल सांकृत्यायन एवं रांगेय राघव मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने इतिहास को मार्क्सवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया है। यशपाल का 'दिव्या' (1945) इस काल की एक विशिष्ट रचना है, जो 'चार्वाक–दर्शन' पर आधारित है। यह उपन्यास इतिहास न होकर ऐतिहासिक कल्पना ही है। दिव्या के प्राक्कथन में लिखा है – ''दिव्या इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है। अपने अतीत का मनन और मंथन हम भविष्य के लिए संकेत पाने के प्रयोजन से करते हैं। मनुष्य केवल परिस्थितियों को सुलझाता नहीं, वह परिस्थितियों का निर्माण भी करता है। सामाजिक परिस्थितियों का वह स्रष्टा है। इतिहास विश्वास की नहीं विश्लेषण की वस्तु है। मनुष्य से बड़ा है, केवल उसका विश्वास और उसका ही रचा हुआ विधान। इसी सत्य को अपने चित्रमय अतीत की भूमि पर कल्पना में देखने का प्रयत्न है – दिव्या'' ।[202] इस उपन्यास में युग–युग से हो रहे नारी अत्याचार के विरोध में नारी–मुक्ति का उद्घोष ही मुखरित हुआ है। गोपाल राय ने लिखा है – ''पुरूष प्रधान समाज में नारी का शोषण और उस पर होने वाला अत्याचार सहस्राब्दियों से चला आ रहा है। उनकी 'दिव्या' अन्त में अपने अभिजात वर्ग के प्रेमियों का तिरस्कार करके चार्वाकधर्मी मारिश को आत्मसमर्पण करती है जो स्त्री–पुरूष के मुक्त, नैसर्गिक सम्बन्धों में विश्वास करता है। वस्तुतः यही यशपाल का नारी दर्शन है।''[203]

यशपाल का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास 'अमिता' है जिसकी रचना 1956 में हुई। इसमें भी इतिहास कम और कल्पना की अधिकता है। यह उतना प्रसिद्ध नहीं हो पाया या कहें कि सामान्य उपन्यास ही रह गया। भगवती शरण मिश्र ने कहा है कि – ''इतिहास बोलता है, तो केवल इस अर्थ में कि इसमें कलिंग पर अशोक का अतिप्रचारित एवं प्रसिद्ध आक्रमण

वर्णित है। अमिता इस रूप में इस उपन्यास में प्रवेश करती है कि वह घायल कलिंगपति की बेटी है। अमिता उसके (अशोक) समीप पहुँचती है और उससे पूछती है, तुम यहाँ क्यों पहुँचे हो? तुम सम्राट अशोक हो? तुम्हें किस चीज की कमी है? तुम प्रजा से क्यों छीनते हो? अमिता पूछती है कि क्या तुम्हारे पास खिलौने नहीं है? मैं तुम्हें दूँगी। अशोक बोलता है, मुझे यहाँ का राजसिंहासन चाहिए। अमिता कहती है, ले जाओ, राजसिंहासन दूसरा बन जाएगा। बच्ची के इस भोलेपन से अशोक प्रभावित होता है, और वह प्रतिज्ञा करता है कि वह अब किसी का कुछ नहीं छीनेगा। यहाँ यशपाल की विचारधारा ने मोड़ लिया है। वे सामाजिक क्रान्ति का तो समर्थन करते हैं, किन्तु अनैतिकता, हिंसा एवं बल प्रयोग को उचित नहीं समझते। इस कृति में अगर किसी का चरित्र सर्वाधिक सराहनीय बन पड़ा है, तो वह अमिता का है।''[204] यशपाल के दोनों ही ऐतिहासिक उपन्यास दिव्या और अमिता नारी की मुक्ति व उज्ज्वलता के प्रतीक हैं। शशिभूषण सिंहल ने लिखा है कि – ''दिव्या में नारी की समाज में दलित अवस्था तथा जीवन एवं धर्म सम्बन्धी अन्ध विश्वासों पर प्रश्नचिह्न लगाकर एक तर्क सम्मत उपयुक्त हल प्रस्तुत करने का प्रयत्न है। जीवन क्या? व्यक्ति और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा हो? नारी और पुरूष एक दूसरे के लिए क्या है? इन्हीं प्रश्नों के रूप में दिव्या का जीवन दर्शन प्रस्तुत है। अमिता में देश पर युद्ध की मँडराती विभीषिका का चित्रण है। सम्पूर्ण उपन्यास विदेशी आक्रमण के वातावरण में विकसित होता है। उसमें युद्धकालीन स्थिति के प्रकाश में जीवन के स्वरूप, उसकी मान्यताओं तथा आवश्यकताओं का सहृदयतापूर्वक रचनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया गया है।''[205] अमिता और दिव्या दोनों ही उपन्यास जीवन को संतुलित एवं विश्लेषित दृष्टि से प्रस्तुत करते हुए मुक्त जीवन की प्रेरणा प्रदान करते है। धर्म हो चाहे युद्ध जीवनदायक होने पर ही श्रेष्ठ है। यही संदेश देता है यशपाल का उपन्यास साहित्य।

स्वातन्त्र्योत्तर युग के सर्वाधिक चर्चित एवं प्रभावशाली ऐतिहासिक उपन्यासकार हजारीप्रसाद द्विवेदी रहे हैं, जिन्होंने बाणभट्ट की आत्मकथा–1946, चारूचन्द्र लेख–1963, पुनर्नवा–1973 एवं अनामदास का पोथा–1976 आदि चार उपन्यास लिखे है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' ऐतिहासिक उपन्यासों में सर्वाधिक चर्चित उपन्यासों में से एक है। डॉ शिवशंकर त्रिवेदी के अनुसार – ''द्विवेदी जी की भारतीय सांस्कृतिक निष्ठा, मानवतावादी दृष्टिकोण तथा मानव कल्याण की भावना उनके कथा साहित्यों में स्पष्ट लक्षित होती है। प्रथम औपन्यासिक कृति 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में इतिहास के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक समाज की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया गया है। हर्षकालीन समाज जिन रूढ़िगत विसंगतियों अन्धमान्यताओं, दूषितपरम्पराओं एवं जड़ आस्थाओं में जकड़ा हुआ था, द्विवेदी ने उन विसंगतियों को समाप्त कर जड़ीभूत परम्पराओं पर तीव्र प्रहार करते हुए व्यक्ति स्वातंत्र्य, बुद्धिवाद तथा सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित मानवतावादी प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है।

'चारूचन्द्रलेख' में मध्ययुगीन समाज का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है। क्षुद्रता के मिथ्यादर्प, वैयक्तिक सिद्धियों के व्यामोह, पारस्परिक भेदभाव तथा जनसामान्य में आत्मबल के अभाव से तत्कालीन समाज निस्तेज और निर्वीय सा होता जा रहा था और इधर मध्यकालीन आक्रान्ताओं द्वारा बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव मठों व मन्दिरों का विध्वंस और निरीह जनता पर अत्याचार बढ़ता जा रहा था। परिणामतः सामाजिक शक्तियों के प्रतिकार के लिए सात्विक शक्तियों का संगठित होना आवश्यक था। 'पुनर्नवा' में ऐतिहासिक संदर्भों को जोड़ने का प्रयास है। छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त भारत राजतन्त्रात्मक प्रणाली द्वारा शासित था। मथुरा एवं उज्जयिनी पर शकवंशीय राजाओं का शासन था। पाटलीपुत्र में गुप्तवंशीय तथा हलद्वीप में नागवंशीय राजा राज्य करते थे। राजा लम्पट एवं दुर्वृत्त थे। राजाओं का दुराचरण नारियों की शीलरक्षा तथा प्रजा का त्रास भी एक प्रश्न चिह्न बन गया था। बौद्ध–जैन धर्मों पर ब्राह्मणधर्म हावी हो रहा था। गणिका नगर श्री की उपाधि से सम्मानित होने पर लोकापवादों से लांछित तथा क्रय–विक्रय के व्यापारों से दूषित थी। समाज में व्यक्ति कुंठा, भेद–भाव, नारी–अपमान, सामाजिक असंतुलन जैसी बुराइयाँ व्याप्त थी। द्विवेदी जी ने पात्रों के संघर्ष के माध्यम से दूषित सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित एवं परिवर्धित करने का संदेश देते हुए कहा है कि – ''निरन्तर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा, तो एक दिन व्यवस्थाएँ तो टूटेंगी ही, अपने साथ धर्म को भी तोड़ देंगी।'' 'पुनर्नवा' में यही नवीनीकरण है 'अनामदास का पोथा' में उपनिषदकाल की सामाजिक व्यवस्था को प्रस्तुत करने का प्रयास है। ऋषि परम्परा विकसित थी। सामन्तीय व्यवस्था तथा छोटे–छोटे राज्य थे। सामन्ती व्यवस्था में अनेक दोष होते हुए भी तत्कालीन समाज में सामूहिक विद्रोह की स्थिति नहीं थी। तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति थी। पारिवारिक सम्बन्ध अत्यन्त सात्विक, सुदृढ़ और शिष्टाचारपूर्ण होते थे। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' यद्यपि पुरूष प्रधान उपन्यास है, फिर भी नारी पात्रों द्वारा नारी समस्याओं को उभारा गया है। नारी की मानसिक मुक्ति के लिए लेखक ने उदारता से प्रेम की उदात्तता को स्वीकार किया है। 'चारूचन्द्रलेख' में सामन्ती विलास एवं नारी शोषण की कथा कही गई है। मध्यकालीन सामन्ती वैभव में नारी को ही सर्वसुन्दर उपभोग्य माना गया है। प्रेम का उदात्तस्वरूप ही समाजसेवा और लोक कल्याण के लिए प्रेरक शक्ति है, किन्तु प्रेम का विभक्त होना अभिशाप है। चन्द्रलेखा के उदाहरण द्वारा लेखक ने आकस्मिक प्रेम की विफलता को भी सिद्ध किया है। 'पुनर्नवा' में रूढ़ सामाजिक व्यवस्था में तिरस्कृत नारी और सामन्तीय विलास के मनोरंजन का साधन रूप में चित्रण हुआ है। साथ ही प्रेम भावना को जन्म–जन्मान्तर व्यापी सम्बन्ध सिद्ध करने का भी प्रयास किया गया है। देवरात का दिवंगता शर्मिष्ठा की प्रतिकृति मंजुला के प्रति अनुराग तथा लोकोत्तरित मंजुला का देवरात के मोह में आबद्ध रहना जन्मान्तर व्यापी मोह को सिद्ध करता है। 'अनामदास का पोथा' में औपनिषदिक संस्कृति का चित्रण है। कथावस्तु छान्दोक्य एवं वृहदारण्यक उपनिषदों से संकलित की गई है। नारी प्रतिष्ठा के उच्च आसन पर विराजमान

थी। ऋषि पत्नियाँ समाज की आदर्श और प्रेरणास्त्रोत थी। इसमें तापस कुमार रैक्व एवं तत्वज्ञानी राजा जानश्रुति की तत्वान्वेषणी पुत्री जाबाला के लोकोत्तर प्रेम का चित्र प्रस्तुत किया है।

सप्तम शताब्दी की ऐतिहासिक और राजनीतिक स्थिति की झाँकी प्रस्तुत करने वाला 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास तत्कालीन सांस्कृतिक संक्रान्ति को सूचित करता है। महाराज हर्षदेव के होते हुए भी सामन्तों और राजाओं की निरंकुश प्रवृत्ति तथा अतृत्व भोग की निर्बाध लालसा समाज को दूषित किए थी। 'चारूचन्द्रलेख' में ऐतिहासिक कथानक राजतन्त्रात्मक पद्धति को दूषित बताते हुए जनतान्त्रिक सत्ता के लिए जन–जागृति को आवश्यक बताया है। 'पुनर्नवा' उपन्यास में हलद्वीप, उज्जयिनी के शासकों में अत्याचारी प्रवृत्ति का चित्रण कर समुद्रगुप्त के धर्म शासन स्थापित करने का विवरण प्रस्तुत है। 'अनामदास का पोथा' उपन्यास में शिथिल राजतन्त्र के अविकसित रूप का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास इस श्रेणी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में एक है। इस उपन्यास की विवेचना करते हुए इसे प्रभाकर माचवे ने सामन्ती जीवन का उत्सवी चित्रण, देवराज उपाध्याय ने इतिहास और कवि कल्पना, नलिन विलोचन शर्मा ने परकाय प्रवेश का उदाहरण, रामदश मिश्र ने समय से तनी हुई प्रेम कथा, चौथी राम यादव ने क्लासिकी से फूटती आधुनिक रचनाशीलता कहा है।[207] गोपालराय का कहना है कि – ''बाणभट्ट की आत्मकथा का केन्द्रीय विषय वह उदात्त प्रेम है जो वासनाजन्य न होकर सम्पूर्ण आत्मसमर्पण, आत्मदान, लोकमंगल और तपस्या से परिचालित और पुष्ट होता है। द्विवेदी जी के अनुसार यह भारतीय दृष्टि है। इसमें बाणभट्ट और भट्टिनी, निपुणिका और बाणभट्ट, अघोर भैरव और महामाया तथा सुचरिता और विरतिवज्र के प्रेम प्रसंगों से इसी विचार की पुष्टि होती है।''[208]

शिवानी विद्यालंकार[209] के अनुसार – 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यासकार की कल्पना की उर्वर कल्पना और रचनात्मक प्रतिभा की उपज है। इसके साथ–साथ वह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की सृष्टि करने में भी सफल हुई है। इस उपन्यास की कथा भूमि का आधार 'कादम्बरी' के रचयिता बाणभट्ट के जीवन चरित्र पर आधारित है। कल्पना का सहारा लेते हुए द्विवेदी जी ने आस्ट्रियन महिला मिस कैथराइन का प्रवेश इसमें इस प्रकार किया कि पाठक को भ्रम हो जाता है कि उपन्यास द्विवेदी जी ने नहीं लिखा अपितु मिस केथराइन ने उसकी प्रति उन्हें दी है। बाणभट्ट आवारा हो जाता है। भटकता है। घूमते–घूमते स्थाण्वीश्वर पहुँचता है। मौखरिवंश के छोटे महाराज के यहाँ राजकुमारी चन्द्रदीधिति कैद है। स्त्रीवेश में प्रवेश कर उन्हें मुक्त करता है। अन्त में पुरूषपुर जाने को कहा जाता है। यही कथाभूमि इस आत्मकथा की है। 'चारूचन्द्रलेख' में बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी की शासन व्यवस्था, आन्तरिक कलह, तांत्रिक साधनाओं आदि का वर्णन है। व्योमकेश शास्त्री सूचित करते हैं कि अघोरनाथ नामक

औघड़ को राजा सातवाहन और उनकी पत्नी चन्द्रलेखा के विषय में एक कथा का हिस्सा मिला है। इसी भ्रम को उत्पन्न कर द्विवेदी ने सातवाहन एवं चन्द्रलेखा की कथा परिवेश काल अनुसार व्यक्त की है। इसमें राजा, रानी एवं मैना को ज्ञान, इच्छा और क्रिया का प्रतीक सिद्ध किया है।

'पुनर्नवा' उपन्यास के सूत्रधार देवरात है। पुनर्नवा की वस्तुसंघटना का आधार लोरिकचन्द्रा की प्रसिद्ध लोकगाथा तथा ब्रज की लहुरावीर एवं मैना–मौजरदेई की दन्तकथाएँ हैं। इसकी कथा को 'मृच्छकटिकम्' की कथा से जोड़कर ऐतिहासिक बनाने का प्रयास किया गया है। 'अनामदास का पोथा' का कथानक छान्दोग्यपनिषद के चतुर्थ अध्याय के माध्यम से काम पर विजय पाकर मोक्ष की ओर उन्मुख होने की कथा का वर्णन है।

निष्कर्षतः 'बाणभट्ट की आत्मकथा' हर्षकालीन राज व्यवस्था की अनाचार प्रवृत्ति के मध्य उदात्त प्रेम की गाथा है। नारी देव मन्दिर की तरह पूजनीय है। 'चारूचन्द्रलेख' में सामन्ती पतनशीलता के साथ–साथ राष्ट्रीय चेतना के भावों को भी चित्रित किया है। 'पुनर्नवा' में तप नहीं जीवन सत्य को स्वीकार किया गया है। इसमें विधानों तथा रूढ़ियों, परम्पराओं आदि को चुनौती देने वाले प्रेम की उदात्तता का चित्रण हुआ है। 'अनामदास का पोथा' में उपनिषदों के कठिन उपदेशों को कथा के माध्यम से सरल बनाकर प्रस्तुत किया गया है। चारों उपन्यासों में जीवन–दर्शन का प्रतिपादन किया गया है।

राहुल सांकृत्यायन इस काल के ऐसे ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं, जिन्होंने पुरा–ऐतिहासिक काल पर आधृत मार्क्सवादी दृष्टि के उपन्यास लिखे हैं। सिंह सेनापति–1944, जय यौधेय–1944, मधुर स्वप्न–1950, विस्मृत यात्री–1954, दिवोदास–1961 आदि आपके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। राहुल जी इतिहास को वर्तमान निर्माण की प्रेरणा मानते हुए ऐतिहासिक उपन्यास की रचना समाजवादी भावना के अनुरूप करते हैं, जिनमें गणराज्य व्यवस्था की स्थापना का प्रयास दिखता है। 'सिंह सेनापति' की कथा ईसापूर्व पाँच सौ वर्ष के लगभग लिच्छवि गणराज्य पर तथा 'जय यौधेय' में यमुना, सतलज, हिमालय के मध्य स्थित यौधेय गणराज्य पर आधारित ऐतिहासिक यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। इन उपन्यासों में गणराज्यीय व्यवस्था के यथार्थ को मूर्त करने का प्रयास है। सिंह सेनापति में गणराज्य व्यवस्था की प्रारम्भिक अवस्था तथा जय–यौधेय में पतनशील अवस्था का चित्रण किया है। 'सिंह सेनापति' में समृद्ध एवं मुक्त समाज का चित्रण है, जिसमें स्त्री–पुरूष को समानता है। पूँजी का संग्रह नहीं है। शासनाधीश निर्वाचित होता है। बिना भेद स्त्री–पुरूष मिलते–जुलते, साथ काम करते हैं। 'जय यौधेय' में किसी घर में कुछ कम, किसी में कुछ ज्यादा आमदनी हो सकती थी। किसी के घर काले–भूरे दास–दासियाँ भी मिलते थे। शिल्प की दृष्टि से 'सिंह सेनापति' बाणभट्ट की आत्मकथा का पूर्वगामी है। भूमिका में लिखा है कि वैशाली की

खुदाई के काम में मिली ईंटों को जोड़ने पर ब्राह्मी लिपि एवं संस्कृत लिपि में एक आत्मकथा मिली जिसका अनुवाद ही यह उपन्यास है तथा ये ईंटे पटना म्यूजियम में सुरक्षित हैं, कहकर विश्वसनीयता प्रदान की गई है।[210] 'मधुर स्वप्न' की कथा छठवीं सदी के मध्य एशिया से ग्रहण की हैं। मज्दक मत के अनुयायी अन्दर्जगर के जीवन दर्शन के माध्यम से मार्क्सवादी मधुर स्वप्न देखा गया है। 'विस्मृत यात्री' एक ऐसे बौद्ध यात्री की यात्रा–गाथा है, जिसका जन्म पाकिस्तान में 518 ई. में तथा मृत्यु 589 ई. में चीन में हुई है। 500 मील की यात्रा करने वाला यह नरेन्द्र यश नामक यात्री राहुल जी का ही प्रतिरूप प्रतीत होता है। 'दिवोदास' आरम्भिक आर्यों के उन्मुक्त, कुण्ठारहित, कर्मठ जीवन का समग्र चित्र प्रस्तुत करता है, जिसमें आर्यों, पणियों और किरातों के सांस्कृतिक टकराव एवं समन्वय की ध्वनि मुखरित हुई है। ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्ट करते हुए विश्वसनीय बनाने के प्रयास करते हुए भी ऐतिहासिक यथार्थवादी व्याख्या की गई है। डॉ. शशिभूषण सिंहल के अनुसार – ''राहुल के अतीत चिन्तन में तर्क–वितर्क तथा पुनरवलोकन का तत्व प्रमुख है। उनका मत है कि चिरपरिवर्तन विश्व का अटल नियम है, और उस अनिवार्य नियम को स्वाभाविक रूप से ग्रहण करना उचित है। विगत में मनुष्य अपने पाम्परिक रूढ़ निस्सार चिंतन के कारण जीवन की व्यर्थता का जो भार ढोता रहा है। वह उन्हें असहय है। वे इतिहास को सामने रखकर पाठक को अपनी सही चिन्तन और मनन की दृष्टि देकर, उसे अतीत की आलोचना करने की प्रेरणा देते है। राहुल इस दृष्टि से अतीतकालीन जीवन को पढ़ते हैं और उनमें से प्राप्य बहुजन हिताय पक्ष को उभारकर, निखार कर उसे वर्तमान का दिग्दर्शक बनाना चाहते हैं। इनके पात्र असाधारण आत्मबल से युक्त, अन्वेषी, मेधावी, विचारक और अपने–अपने क्षेत्र में क्रान्तिकारी नेता अवश्य हैं। इन्हें जीवन में स्वाभाविकता, स्वच्छन्दता और श्रम परमप्रिय है। इनकी दृष्टि में जीवन का अर्थ है गति। वे निरन्तर संघर्षरत रहते है।''[211] राजतन्त्र को गणतन्त्र में बदलने की भावना, संघर्ष एवं क्रान्ति की भावना, शोषण का अन्त, सामन्तवाद का विरोध, जीवन को नयी गति एवं चिन्तन देना राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों का ध्येय है। वे इतिहास का पुनरावलोकन करने के पक्षपाती हैं। यह उनके उपन्यासों में निहित है।

रांगेय राघव ने मुर्दो का टीला–1948, प्रतिदान–1950, चीवर–1951, अंधेरे के जुगनू–1953, पक्षी और आकाश–1957, राह न रूकी–1958 आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर अपनी मार्क्सवादी प्रगतिशील विचारधारा का परिचय दिया है। इनमें प्रतिक्रियावादी एवं प्रगतिशील शक्तियों का संघर्ष दर्शाते हुए मानव जीवन की समता, नारी–स्वतंत्रता, दासता का विरोध, शोषण से मुक्ति का संदेश दिया गया है। गोपालराय ने लिखा है कि – ''रांगेय राघव ने इतिहास की वास्तविकता, वर्ग संघर्ष के यथार्थ, दार्शनिकता के विकास पर समकालीन परिस्थितियों के प्रभाव आदि के अंकन तथा अतीत के मोह को दूर करने, अतिराष्ट्रीयतावाद और सनातनवाद पर आघात करने आदि को ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्देश्य माना है।''

1943 ई. में लिखित 'विषादमठ' भी ऐतिहासिक आभासित उपन्यास है, जो बंकिम के 'आनन्दमठ' से प्रभावित लगता है। बंगाल के इतिहास प्रसिद्ध अकाल का भयावह चित्रण करते हुए इसे साम्राज्यवादी और महाजनी लोभ का परिणाम बताया है।[212]

'मुर्दों का टीला' सर्वप्रसिद्ध उपन्यास है, जो मोहनजोदड़ो या सिन्धु घाटी सभ्यता को रेखांकित करता है। इस उपन्यास में आर्यों की पशुपालक सभ्यता से द्रविड़ सभ्यता को अधिक उन्नत एवं विकसित दर्शाया है। आर्यों को विनाशक एवं शोषणकारी दर्शाया गया है। 'अंधेरे के जुगनू' में कुलीन वर्ग द्वारा दास प्रथा को बनाए रखने के उद्देश्य से गणतन्त्र व्यवस्था की स्थापना एवं ब्राह्मणों की सत्ता को कमजोर करने के लिए क्षत्रियों तथा वैश्यों द्वारा किए गए प्रयत्नों का चित्रण किया है। 'चीवर' में हर्षकालीन सामन्ती पतनशीलता को दर्शाकर ब्राह्मण–बौद्ध संघर्ष एवं बौद्ध धर्म की मान्यता को स्वीकार करने की कथा ऐतिहासिक शुद्धता के साथ व्यक्त की गई है। 'प्रतिदान' में महाभारतकालीन ब्राह्मण–क्षत्रिय संघर्ष दर्शाया गया है।

'रांगेय राघव' द्वारा रचित देवकी का बेटा–1954, यशोधरा जीत गई–1954, लोई का ताना–1954, रत्ना की बात–1954, भारती का सपूत–1954 तथा लखिमा की आँखें–1957, जब आवेगी कालघटा–1958, धूनी का धुँआ–1959, मेरी भवबाधा हरो– 1960 आदि उपन्यास भी उल्लेखनीय है तो जीवनपरक ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा से अभिहित किए जाते हैं। मधुरेश ने लिखा है कि[213] – "रांगेय राघव के सृजन का सर्वश्रेष्ठ रूप उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में मिलता है। जीवन दर्शन को उन्होंने भारतीय इतिहास और संस्कृति की विशाल पटभूमि पर देखा–परखा था। जगदीश गुप्त ने भी लिखा था – रांगेय राघव का दृष्टकोण व्यक्तिगत रूप से मुझे अधिक संयत और मोहनजोदड़ों की सभ्यता को अपेक्षाकृत तटस्थ भाव से देखने का संकल्प अधिक श्लाद्य प्रतीत हुआ।" जनहित एवं स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण का सामंजस्य ही उन्हें प्रिय है और उनके समस्त ऐतिहासिक उपन्यासों का मूल इसी सत्य में निहित है। यही स्वस्थ और शुभ दृष्टि उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की मौलिक और आधारभूत विशेषता है। इसके कारण ही विल्लभित्तूर, हर्ष, राज्यश्री, दधिवाहन जैसे उदात्तपात्रों की सृष्टि कर सके हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों का ही एक किंचित भिन्न रूप रांगेय राघव के जीवन–चरितात्मक उपन्यासों में मिलता है। जहाँ ऐतिहासिक उपन्यासों में अधिकांश पात्र महत्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्ति और युग निर्माता है, इन उपन्यासों में कोई विशिष्ट पुरूष, लोकनायक या साहित्यकार ले लिया गया है। देवकी का बेटा में श्री कृष्ण, यशोधरा जीत गई में बुद्ध एवं यशोधरा, भारती का सपूत में भारतेन्दु हरीशचन्द्र, लोई का ताना में कबीर, रत्ना की बात में तुलसीदास, लखमा की आँखें में विद्यापति, धूनी का धुँआ में गोरखनाथ, मेरी भव बाधा हरो में बिहारी के जीवन व तत्कालीन इतिहास का चित्रण मिलता है। शत्रुघ्न प्रसाद ने लिखा है कि[214] – "चरित्र किन्हीं सिद्धान्तों में बँधे–बँधाये स्थिर चित्र नहीं हैं, अपितु इनका विकास प्रवृत्ति और परिवेश के घात प्रतिघात से होता है। इन चरित्रों की प्रमुख विशेषताएँ –

विद्रोह, स्वतंत्र्य चेतना और मानतावादी भावना। इनमें यशोधरा, गोरखनाथ, चर्पटनाथ कबीर और भारतेन्दु प्रमुख हैं। रांगेय राघव ने नाथपन्थ के 500 वर्ष के उत्थान–पतन मय जीवन को प्रस्तुत कर एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। राघव ने उस पंथ के आरम्भ, मध्य और अन्त का सजीव चित्र धूनी का धुँआ, जब आवेगी, कालघटा, लखिमा की आँखें एवं लोई का ताना में अंकित कर दिया है।'' द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने 'आँधी की नींवें' व 'महायात्रा' का भी उल्लेख किया है। 'आँधी की नींवें' में महाराणा प्रताप एवं उनकी पत्नी महारानी लक्ष्मी के जीवन चरित्र को आधार बनाया गया है। लेखक ने सिद्ध किया है कि अकबर की साम्राज्यवादी नीति ने ही भारतीय ढ़ाँचे को जर्जर बना दिया था। ''रांगेय राघव 'महायात्रा' लिखकर मानव समाज के इतिहास को गाथाओं के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहते थे। परन्तु परिसमाप्ति से पूर्व ही स्वयं महायात्रा पर चले गए 'महायात्रा' अंधेरा रास्ता में प्रागैतिहासिक काल से लेकर पंद्रहवीं ईस्वी. पूर्व तक की गाथा प्रस्तुत की गई है। यह तीन भागों में विभक्त है। पहला भाग इन्द्र तक, दूसरा भाग मान्धाता तक एवं तीसरा भाग जनमेजय तक है। महायात्रा ' रैन और चंदा में प्रागैतिहासिक काल से 1200 ई. तक की मानव विकास कथा कही गई है। पहले भाग में प्रागैतिहासिक काल से 1500 ई. पू. तक तथा दूसरे भाग में 1500 ई.पू. से 1200 ई. पू. तक की कथा कही गई है। इनमें मानव सभ्यता का विकास, भविष्य की चेतना एवं तत्कालीन सामन्ती व्यवस्था का चित्रण किया गया है।''[215]

चतुरसेन शास्त्री स्वातन्त्र्योतर काल में इतिहास के गौरवमयी एवं असाधारण पक्ष का चित्रण कर ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करने वाले प्रमुख हस्ताक्षर हैं। इनके द्वारा रचित पूर्णाहूति (खवास का ब्याह)–1932, वैशाली की नगर वधू–1948, रक्त की प्यास–1951, मन्दिर की नर्तकी(देवांगना)–1951, सोमनाथ–1954, आलमगीर–1954, वयंरक्षाम–1955, सोना और खून–1958, लालपानी–1959, सह्याद्रि की चट्टानें–1961, बिना चिराग का सहर–1961, हरण–निमंत्रण(रक्त की प्यास)–1961 आदि प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इसके अलावा इनके गोली और लाल किला उपन्यासों का भी उल्लेख मिलता है। वैशाली की नगर वधू, सोमनाथ, वयंरक्षाम और सोना और खून इनकी विशिष्ट एवं बहुचर्चित कृतियाँ हैं, जो वृहद्काय होने के साथ–साथ रचनात्मक स्तर पर असाधारण है।

संक्षेप में रांगेय राघव प्रगतिशील चेतना के ऐतिहासिक उपन्यासकार रहे हैं। जिन्होंने विभिन्न कालखण्डों एवं विभिन्न महत्वपूर्ण चरित्रों को लेकर इतिहास को अपनी विशिष्ट दृष्टि से प्रस्तुत किया है। चतुरसेन शास्त्री ने ऐतिहासिक कथाओं के माध्यम से समाज एवं जीवन की विसंगतियों को उद्घाटित करते हुए रूढ़िवादिता पर करारे व्यंग्य किए हैं। युग उपेक्षित पात्रों को लेकर जीवन की रिक्तताभरी मान्यताओं का खण्डन कर यथार्थ से परिचित करवाने की महत चेष्टा की है। बौद्ध साहित्य के प्रसिद्ध पात्र 'आम्रपाली को केन्द्रीय पात्र बनाकर गणराज्यीय व्यवस्था के पतनशील स्वरूप तथा नारी की त्रासद स्थिति का चित्रण किया है।

'वैशाली की नगरवधू' उपन्यास में स्वयं उपन्यासकार ने भूमिका में व्यक्त किए उद्‌गार इस कृति की महनीयता को स्पष्ट करते हैं। लिखते हैं – ''इस बीच मैंने छोटी–बड़ी लगभग 84 पुस्तकें विविध विषयों पर लिखीं... और यह घोषणा करता हूँ कि यह एक गंभीर रहस्यपूर्ण संकेत है जो उस काले पर्दे के प्रति है जिसकी ओट में आर्यों के धर्म, साहित्य, राजसत्ता और संस्कृति की पराजय और मिश्रित जातियों की प्रगतिशील संस्कृति की विजय सहस्राब्दियों से छिपी हुई है। इस अनिर्दिष्ट 'इतिहास रस' उदय का एक और कारण भी है, इसमें रस का एक स्त्रोत मिश्रित है। वह है नारी प्रणय, जहाँ इतिहास रस का प्रादुर्भाव होता है। वहाँ प्रायः यही देखने को मिलता है कि हृदय विप्लव के बाद राष्ट्र विप्लव हुआ। इतिहास के अनेक नरवरों ने नारी की माया के वशीभूत होकर जीवन भंग किया है। लेखक जब जीवनभंग की इन घटनाओं पर विप्रलंभ श्रृंगार और इतिहास–रस का मिश्रण करके भैरवसंहार की भेरी बजाता है, तो कोटि–कोटि जनपद, उन्मत्त, उद्‌भ्रान्त होकर लोट–पोट हो जाते है।''[216]

शशिभूषण सिंहल ने इस उपन्यास की कथा के बारे में लिखा है कि – ''इस उपन्यास की कथावस्तु का आधार बौद्ध ग्रन्थों में उल्लिखित वैशाली की गणिका अम्बपाली है। मेरी दृष्टि इस गणिका से सम्बन्धित एक बौद्ध उपाख्यान पर पड़ी जिसमें इस बात का उल्लेख था कि गणिका अम्बपाली ने वैशाली में आने पर बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण दिया था और उस पर वैशाली के राजपुरूषों ने ईर्ष्या की थी। यह भी मैंने सुना कि वैशाली गणतन्त्र में एक ऐसा कानून था, जिसके आधार पर राज्य की सर्वश्रेष्ठ सुन्दर कन्या को अविवाहित रखकर उसे वेश्या बना दिया जाता था।'' 'सोमनाथ' चतुरसेन शास्त्री की संतुलित एवं सफल रचना है। सोमनाथ की कथा का मूल सूत्र है महमूद का सोमनाथ पर आक्रमण के लिए बढ़ना, हिन्दू राजाओं द्वारा उसका क्रमशः असफल विरोध, महमूद की सफलता और उसका वापस लौटना। इस महान् दुर्घटना के मुख्यतः दो कारण है – हिन्दू जाति का पतन और मुसलमानों का आत्मबल। हिन्दू शक्ति के प्रतिनिधि के रूप में जो क्रमशः महमूद के मार्ग में आते हैं– अजयपाल, घोघा बापा, चामुण्डराय, धर्मगजदेव, दुलर्भराय एवं दुर्लभदेव। देश के रक्षक राजाओं के इस विस्मयजनक शैथिल्य, असामर्थ्य, पतन और पराजय का उत्स हिन्दू जाति का सार्वजनिक पतन है। वे इस सत्य को भूल बैठे हैं कि देवता की सच्ची महत्ता साधकों के चरित्र और पौरूष पर निर्भर है। सोमनाथ चतुरसेन की महान् कृति है। यह अपनी अनुपम चित्रण कला, भाषा के प्रबल प्रवाह तथा मार्मिक अनुभूति के कारण अविस्मरणीय रहेगी। इसके वातावरण तत्व में पाठक की कल्पना को भली–भांति सम्मोहित कर लेने की क्षमता है। 'वयंरक्षाम' में चतुरसेन का दृष्टिकोण स्वच्छन्दतावादी है। उपन्यास का नायक रावण है। वह रक्ष संस्कृति की स्थापना कर उसके अन्तर्गत सभी जातियों के संगठन द्वारा देवताओं से संघर्ष करता है और विजयी होता है। राम से संघर्ष होने पर अन्ततोगत्वा वह पराजित होता है। 'सोना और खून' में इतिहास रस पर नहीं, इतिहास पर बल दिया गया है। भूमिका में इस

उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट होता है– सोने का रंग पीला होता है और खून का रंग सुर्ख। पर तासीर दोनों की एक है। खून मनुष्य को जीवन देता है, सोना उसके जीवन पर खतरा लाता है। पर आज के मनुष्य का खून पर मोह नहीं है, सिर्फ सोने पर है। आज के सभ्य संसार का यह सबसे बड़ा कारोबार है। सबसे बड़ा लेन–देन है। खून देना और सोना लेना।''[217] सोना और खून में अंग्रेजों और भारतीयों का संघर्ष चित्रित है। 'सह्याद्रि की चट्टानें' शिवाजी की शक्ति एवं शौर्य की गाथा है। 'आलमगीर' एवं 'लाल किला' में शाहजहाँ एवं औरंगजेबकालीन इतिहास को चित्रित किया गया है। 'गोली' सामन्तवादी विकृतियों का सच्चा लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है। डॉ पदमजा शर्मा ने लिखा है कि – ''आचार्य चतुरसेन के साहित्य में वैचारिक उग्रता, भाषा का तीखापन, स्पष्ट, सीधी तीर सी चुभने वाली वाणी और दृढ़ चरित्र बल के कारण चिर सत्य के दर्शन होते है।''[218] उमेश शास्त्री ने चतुरसेन जी को उद्धृत करते हुए लिखा है कि – ''साहित्य से क्या अपेक्षाएँ हो? एक वह आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करे, दो वह मानवता के धरातल को ऊँचा करे। कहते हैं कि – ''लेखक ने ऐतिहासिक कथाओं के माध्यम से समाज की विकृतियों का परिचय दिया तथा जीवनोन्मुखी दिशा देने का सराहनीय प्रयास किया। विकृतियों पर प्रहार करते हुए मंगल पक्ष की प्रतिष्ठा के लिए उपन्यासकार ने सतत संघर्ष किया और भारतीय संस्कृति के मूलभूत उद्देश्यों की स्थापना के लिए चेतना प्रदान की।''[219] इस प्रकार चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यास समाज के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को पूरी विषमताओं एवं विकृतियों के साथ चित्रित करते हैं।

अमृतलाल नागर स्वातन्त्र्योत्तर काल में प्रेमचन्द के बाद सर्वाधिक ख्याति प्राप्त रचनाकार है। ये प्रेमचन्द की परम्परा की रचनात्मक प्रतिभा रखने वाले विशिष्ट कथाकार हैं। शतरंज के मोहरे–1959, सुहाग के नूपुर–1960, सात घूँघट वाला मुखड़ा–1968, एकदा नैमिषारण्ये–1972, मानस का हंस–1972, खंजन नयन–1981, करवट–1985, चैतन्य महाप्रभु आदि ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना कर ऐतिहासिक उपन्यासकारों में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान निर्धारित किया है। एकदा नैमिषारण्ये पौराणिक श्रेणी का उपन्यास है। मानस का हंस, खंजन नयन एवं चैतन्य महाप्रभु इनके जीवनीपरक ऐतिहासिक उपन्यास हैं। पीढ़ियाँ–1990 ई. में लिखा गया उपन्यास है जिसमें 1905 से 1942 ई. तक की घटनाओं का चित्रण किया गया है, तथा करवट–1985 में लिखा गया है, जिसमें 1805 से 1905 तक की अवधि का इतिहास निहित है। ये समकालीन दौर के उपन्यास हैं। परन्तु इनका वृतान्त साथ ही दर्शा देना उचित है।

गोपालराय के अनुसार – ''करवट भारत में सामन्ती व्यवस्था के अवशेषों पर पनपते ब्रिटिश उपनिवेशवाद के घिनौने चेहरे के उद्घाटन, भारतीय मध्य वर्ग के विकास और नयी चेतना के सामाजिक बदलाव की प्रेरणा के रूप में स्वीकार करने वाली पुनर्जागरण कालीन मानसिकता

का ऐतिहासिक दस्तावेज है। पीढ़ियाँ में इसी इतिहास गाथा का अगला चरण प्रस्तुत किया गया है।''[220]

'एकदा नैमिषारण्ये' पौराणिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है, जिसमें नैमिष में हुए एक महान् सांस्कृतिक आन्दोलन को दर्शाया गया है तथा अवतारवाद द्वारा परस्पर विरोधी संस्कृतियों को मिलाकर अनेकता में एकता लाने वाली संस्कृति का उदय दिखाया गया है। भार्गव सोमाहुति, हज्या, प्रज्ञा एवं सरयू वशिष्ठी प्रमुख पात्र हैं, जिनके माध्यम से भारतीय जीवन पद्धति की दुर्बलताओं, शक्तियों, प्रदूषणों को भारतीय जीवन गंगा में शुद्ध करने की चेष्टा की गई है।

'मानस का हंस' रामभक्त कवि तुलसीदास की सम्पूर्ण अहंविगलित समर्पण भाव से परिपूर्ण भक्त बनने की यात्रा में आए अन्तर्द्वन्द्वों, दुर्बलताओं, संघर्षों की कथा कही गई है। इन अन्तर्द्वन्द्वों का उद्घाटन इतिहास एवं कल्पना प्रतिभा के माध्यम से चित्रित किया गया है। अत्यन्त चर्चित एवं सराहनीय उपन्यास है, मानस का हंस। 'खंजन नयन' में कृष्ण कवि सूरदास एवं चैतन्य महाप्रभु के जीवन के माध्यम से भक्ति आन्दोलन के माध्यम से हिन्दू जाति में अभय और आनन्द का मंत्र फूँकते हुए दिखाकर भक्ति चेतना प्रदान करने का सफल प्रयास हुआ है।

'शतरंज के मोहरे' लखनऊ के दो नवाबों गाजीउद्दीन हैदर एवं नसीरूद्दीन हैदर के माध्यम से अवध के नवाबी शासन एवं अंग्रेजी शासन के कुचक्रों का कल्पना एवं इतिहास समन्वित चित्रण किया गया है, जिसमें नवाबों में व्याप्त विलासिता, सनकीपन, निर्वीयता, कुचक्र, अंग्रेजी रेजीमेन्टों के षड़यन्त्रों का पर्दाफाश किया गया। अवध की अतीतकालीन सम्पूर्ण झाँकी दर्शनीय है। यह उपन्यास 1857 के विद्रोह की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने के उद्देश्य से रचा गया है। डॉ शशिभूषण सिंहल ने कहा है कि – ''नसीरूद्दीन के जीवन की व्यर्थता, उसकी मर्मान्तक पीड़ा तथा उसके व्यक्तित्व की पारदर्शिता उसे हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों का अविस्मरणीय पात्र बना देती है। अधम, असफल, मृतप्राय शासकों का यह जीवंत प्रतिनिधि उपन्यासकार द्वारा मानव के रूप में चित्रित हुआ है। नसीरूद्दीन का चरित्र शतरंज के मोहरे उपन्यास की विशेष उपलब्धि है।[221]

'सुहाग के नूपुर' तमिल महाकाव्य 'शिलप्पदिकारकम' की कथावस्तु पर आधृत उपन्यास है, जिसमें कावेरी पट्टनम नगर के धनी सेठ मासात्तुवान के पुत्र कोवलन और मानाइहन सेठ की पुत्री कन्नगी के विवाह के माध्मय से दोनों सेठों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की चर्चा की गई है। इसमें नागर जी ने तत्कालीन समाज व्यवस्था की असंगतियों, उसके कर्णधारों, धर्म, कानून, न्याय आदि की विद्रूपताओं को उजागर किया है। वातावरण का सजीव चित्रण है।

कोवलन, माधवी एवं कन्नगी अत्यन्त जीवन्त पात्र हैं। समाज एवं कर्णधारों के प्रति व्यंग्यपरक क्षोभ प्रकट किया है, जो अपनी विलास तृप्ति के निमित्त वेश्याओं की सृष्टि करते है।

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' में अठारवीं शताब्दी के संघर्ष कालीन भारत का चित्रण है। दिल्ली सम्राट शाह आलम की दुर्बलता, अंग्रेजों, नवाब मीर कासिम एवं शुजाउद्दौला के संघर्ष के दौरान फ्रांसीसी अधिकारी रेनहार्ड 'समरू' के नाम से जाना जाता है। नवाब समरू के राजनैतिक एवं व्यक्तिगत जीवन को अद्भुत रूप से प्रभावित करने वाली 'बेगम समरू' को केन्द्रीय पात्र बनाकर किम्वदन्तियों एवं कल्पना के माध्यम से रोचक कथा का निर्माण किया गया है।

उमेश शास्त्री ने नागर जी के उपन्यासों की विवेचना करते हुए लिखा है कि – ''नागर जी ने अपने हरेक उपन्यास को ऐतिहासिकता का रंग दिया किन्तु यह ऐतिहासिकता सांस्कृतिक परिवेश के प्रस्तुतीकरण के साथ–साथ सामाजिक विसंगतियों पर टिप्पणियाँ देती एवं रूढ़िग्रस्त चिन्तन पर तीक्ष्ण प्रहार करती रही। प्राचीन कथानक को इस शैली के साथ प्रस्तुत किया गया कि वर्तमान परिस्थितियों से परे न हो। वस्तुतः नागर जी आधुनिक युग के समर्थ उपन्यासकारों में निजी वैशिष्ट्य रखते हैं। 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' वर्तमान पीढ़ी के लिए बहुचर्चित उपन्यास रहे हैं।''[222] डॉ सरोज सिंह ने डॉ सुदेश बत्रा को उद्धृत करते हुए लिखा है कि – अमृतलाल नागर एक प्रतिभाशाली एवं प्रबुद्ध सर्जक है। फलतः उनकी कृतियों में करवट बदलते और सिसकते भारत के समाज, इतिहास, संस्कृति की तस्वीरें उजागर होती चली गई है। कथ्य की सजगता, शिल्प की नवीनता और अनुभव की प्रौढ़ता ने उन्हें जीवन के बारीक से बारीक रेशों को पकड़ने की गहरी अन्तर्दृष्टि प्रदान की है। आगे 'एकदा नैमिषारण्ये' पर लिखती हैं कि – ''ऐतिहासिक–पौराणिक संदर्भों पर आधारित इस उपन्यास में लेखक ने भारशिवों और वाकाटकों के शासनकाल में हुए महान् सांस्कृतिक–धार्मिक आन्दोलन का उल्लेख किया है। यह उपन्यास सम्पूर्ण आर्यावर्त के इतिहास में मानवतावाद की प्रतिष्ठा करता है। वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना इस समग्र ऐतिहासिक चेतना का मूल स्वर है। यह मूलस्वर ही प्राचीनता को नवीनता का संदेश देता है।''[223]

'गुरूदत्त' इस युग के ऐसे ऐतिहासिक उपन्यासकार रहे, जिन पर हिन्दुत्ववादी लेखक होने की छाप लगने से सही सम्मान नहीं मिल पाया। विश्वासघात–1951, देश की हत्या–1953, उमड़ती घटाएँ–1954, लुढ़कते पत्थर–1957, पत्रलता–1957 आदि उपन्यास लिखकर इतिहास के पृष्ठों को नई दृष्टि प्रदान की है। जमाना बदल गया, गंगा की धारा, खण्डहर बोलते हैं, पुण्यमित्र शुंग, दिग्विजय, विक्रमांक साहसांक, बहती रेता उपन्यासों का भी उल्लेख मिलता है। 'उमड़ती घटाएँ' उपन्यास में भारत से बाहर गए आर्यों की एक शाखा को सूर्यवंशी दर्शाकर कश्मीर में आते हुए और देवताओं के सहयोग से प्रतिष्ठित होते दिखाया गया है। आर्यों के

दूसरे समूह के चन्द्रवंशी राजानहुष ने देवलोक में जाकर इन्द्र को झुकाना चाहा तथा इन्द्राणी को अधिकार में लेना चाहा। पलायन करना पड़ा, देवता पुनः प्रतिष्ठित हुए।

'बहती रेता–1951' में इतिहास का क्षीण आधार लेकर कल्पना से अवध के राजतन्त्र और विशालपुरी (वैशाली) के गणतन्त्र में संघर्ष दर्शाया है। तक्षशिला विश्वविद्यालय की छात्रा मल्लिका कश्मीरी छात्र भानुमित्र के प्रेम को ठुकराकर मगध के राजा मुरहारि विक्रम के आग्रह को स्वीकार करती है। बौद्ध राजनीति के विरूद्ध ब्राह्मण–क्षत्रिय एक होकर वैश्य–समूहों के विरूद्ध हो गए, कल्पनाजनित दर्शाया गया है।

'लुढ़कते पत्थर' में गुरूदत्त ने मौर्यवंश के कुणाल एवं उसके पुत्र सम्प्रति के आपसी विरोध और बौद्ध स्थविर की राजनीति को चित्रित किया है। 'पत्रलता' की रचना हर्षवर्द्धन के युगजीवन की वैदिक–पौराणिक दृष्टि एवं बौद्ध असहमति के रूप में की है। गुरूदत्त ने इसमें बौद्धों के प्रभाव स्वरूप हर्षवर्द्धन के साम्राज्य में बढ़ती दुर्बलता को चित्रित किया है। 'दिग्विजय–1958' शंकराचार्य के जीवन पर रचित प्रगतिशील दृष्टिकोण की रचना है। अद्वैतवादी शंकर ने शैव, वैष्णव, शाक्त मतभेदों को दूर करते हुए एकात्म दर्शन प्रस्तुत किया। दक्षिण की परम्परा देवदासी प्रथा की समस्या को रखा गया है।

गुरूदत्त के उपन्यासों का विवेचन करते हुए शत्रुघ्न प्रसाद ने लिखा है कि – ''गुरूदत्त ने राहुल के समान पूर्वाग्रह के साथ वैदिक–बौद्ध द्वन्द्व को दिखाया है। राहुल जी में बौद्धों के प्रति आग्रह है, तो गुरूदत्त में वैदिकों के प्रति। कथानक में जटिलता है एवं कल्पना से गठित है।''[224] भगवती शरण मिश्र ने लिखा है कि – ''गुरूदत्त मूलतः हिन्दूवादी उपन्यासकार थे और उनकी कृतियों में यह हिन्दुत्व–प्रेम स्पष्ट होने से नहीं रहा है। उन्होंने समाजवादी एवं साम्यवादी विचारधारा का खुलकर विरोध किया। भारतीय संस्कृति के प्रति इनका लेखन पूर्णतया समर्पित रहा। समीक्षकों ने उन्हें अप्रगतिशील एवं रूढ़िवादी तथा परम्परावादी कहने में कोई हिचक नहीं दिखाई। लेकिन उन्होंने मानवीय मूल्यों की रक्षा की वकालत ही नहीं की है अपितु उन्हें अपने जीवन में उतार कर भी दिखाया है। गुरूदत्त निश्चित ही पांक्तेय उपन्यासकारों में एक महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं।''[225] इन प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकारों के अलावा भी कुछ महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे गए जिनका उल्लेख किया जाना भी आवश्यक है।

गोविन्द बल्लभ पंत द्वारा रचित एक सूत्र–1946, अमिताभ–1946, ऐतिहासिक उपन्यास हैं, जिनमें अकबर एवं महात्मा बुद्ध के जीवन को कथावस्तु बनाया गया है। ऐतिहासिक घटनाओं एवं किंवदन्तियों का आश्रय लेकर घटना बहुल कथासृष्टि की गई है। नूरजहाँ–1949 एवं कोहिनूर का हरण–1965 दो अन्य इतिहास आभासित उपन्यास हैं, जिनकी विशेष चर्चा नहीं हुई है।

प्रतापनारायण मिश्र द्वारा रचित बेकसी की मजार–1957 एवं वन्दिता–1968, इसी काल की ऐतिहासिक रचनाएँ हैं। जिनमें इतिहास का यथार्थ चित्रण मिलता है। 'बेकसी की मजार' की रचना बहादुर शाह जफर को केन्द्र में रखकर 1857 की क्रान्ति को राष्ट्रीय क्रान्ति के रूप में चित्रित किया गया है। मिश्र बन्धुओं द्वारा पुष्यमित्र–1945, विक्रमादित्य–1946 एवं चन्द्रगुप्त मौर्य–1947 नामक उपन्यासों की रचना प्राचीन इतिहास के प्रमुख ऐतिहासिक पात्रों को लेकर की गई जिनमें पहले के उपन्यासों की अपेक्षा इतिहास का सच्चा, प्रामाणिक एवं प्रौढ़ रूप अपनाया गया है।

'चित्रलेखा' जैसा उपन्यास लिखकर प्रसिद्ध हुए उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा ने इस काल में युवराज चूण्डा और चाणक्य नामक उपन्यासों की रचना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर की। 'युवराज चूण्डा–1978 की रचना चित्तौड़ के राजा लाखा के ज्येष्ठ पुत्र चूण्डा के विलक्षण व्यक्तित्व को केन्द्र में रखकर की गई है। मध्यकालीन मनोवृत्ति का उद्‌घाटन एवं राजपूतों में एकत्व की कमी का निदर्शन किया गया है। ये उपन्यास सामान्य श्रेणी के ही सिद्ध हुए हैं। 'चाणक्य' मरणोपरान्त प्रकाशित हुआ था।

आनन्द प्रकाश जैन कृत कठपुतली के धागे–1957, तीसरा नेत्र–1957, पलकों की ढाल–1961 और कुणाल की आँखें–1967 ऐतिहासिक सामग्री पर आधृत उपन्यास हैं, जिनमें 'कुणाल की आँखें' महत्वपूर्ण उपन्यास है। अशोककालीन इतिहास को नवीन दृष्टि से देखा–परखा गया है। 'कठपुतली के धागों' में अवध की नवाबी के साथ अद्‌भुत तत्व की सृष्टि पर केन्द्रित विचार प्रभावी रहा है। ताँबे के पैसे–1972 ई. में एक और अन्य ऐतिहासिक उपन्यास की रचना भी की गई है।

रघुवीर शरण मिश्र ने आग और पानी–1954, पहली हार–1955, सोने की राख–1957, तप का तेज रूप के जाले–1965 जैसे प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों के अलावा ढाल–तलवार, ओस के आँसू, उजला कफन, बलिदान, रंग–बिरंगे चेहरे आदि इतिहास आश्रित उपन्यासों की रचना की है, जिनमें इतिहास की सच्चाई को व्यक्त करते हुए राष्ट्रीय गौरव, स्वतन्त्रता, स्वाभिमान, ओज एवं दीप्ति को स्वर प्रदान किए है।

उमा शंकर रचित नाना फड़नवीस–1955, पेशवा की कंचनी–1957, कावेरी के किनारे–1951, भुवन विजयम्–1962, दिल पर एक दाग–1964 भी उल्लेखनीय उपन्यास हैं। इनमें 'पेशवा की कंचनी' ने विशेष ख्याति प्राप्त की है। अमर बहादुर अमरेश द्वारा राना बेनी माधव–1952, हिना के हाथ–1960, राजकलश–1960, प्राचीन राय–1960 नामक ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की गई, जिनमें इतिहास की अपेक्षा जनश्रुति का अवलम्बन लिया गया है।

यादवचन्द्र जैन रचित असीम की सीमा–1956, मल्ल मल्लिका–1956, ललितांगी–1957, उत्तरापथ–1957, आदिसम्राट–1959, शिवनेर केशरी–1959, अवंतीराज–1963 प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास है। आदिसम्राट चर्चित उपन्यास रहा है। मनहर चौहान रचित सूर्य का रक्त–1956 एक प्रौढ़ ऐतिहासिक रचना है परन्तु पठनीयता की दृष्टि से भी रोचक रचना है। कवि बेनी प्रसाद वाजपेयी मंजुल ने राजेश्वरी–1946, पाटलिपुत्रक–1949, महाकवि गुणाढ्य–1949, हव्यागंधा–1950, सुमंगला–1951, आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर इतिहास को पहचान दिलाने का प्रयास किया है।

प्यारेलाल बेदिल रचित प्यारा भारत–1952, अब तुम ही बताओ–1956, लहरों से पूछिए–1959 तथा प्रो. धर्मेन्द्र रचित रजिया–1947 व तैमूर–1951 भी कल्पना प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास हैं, जिनमें जीवनी परक तत्व अधिक हैं। जगदीश कुमार निर्मल रचित–साका–1959, विदिशा की देवी–1961, क्रमशः चन्देरी नगरी के मेदिनीराय एवं अशोक की प्रणयिनी असन्धिमित्रा की जीवनी रेखाओं को लेकर रची गई महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। हिमांशु श्रीवास्तव रचित सिकन्दर–1962 एवं नानाराव पेशवा–1966 में सिकन्दर के जीवन काल की घटनाओं एवं 1857 की क्रान्ति के चित्र उपस्थित किए गए है।

कंचनलता सब्बरवाल रचित पुनरूद्धार–1953, शत्रुघ्नलाल कृत सम्राट गुहादित्य–1965, यज्ञदत्त शर्मा रचित देवयानी–1962 एवं रजनीगंधा–1964, रमेशचन्द्र झा कृत वत्सराज–1956, दुर्ग का घेरा–1958, श्रीयुत पथित रचित तथागत–1955, प्रतापी आल्हा–ऊदल–1963, विद्रोही सरदार बाबू कुँवर सिंह–1963, सुनामी रचित भगवान एकलिंग–1965, हेमचन्द्र विक्रमादित्य–1960, आनन्दसागर श्रेष्ठ रचित वाजिद अली शाह–1950, मोहनलाल महतो रचित–महामन्त्री–1962, श्रीकृष्ण मायूस रचित चित्रलेखा–1962, शिवकुमार कौशिक रचित सम्राट चन्द्रगुप्त–1956, सम्राट हर्षवर्धन–1956, हरिभाऊ उपाध्याय कृत प्रियदर्शी अशोक–1956, गिरजाशंकर पाण्डेय कृत चेतसिंह का सपना–1956 एवं अठारह वर्ष बाद–1958, आरिगपूडि रचित धन्य भिक्षु–1958, सत्यकेतु विद्यालंकार रचित आचार्य चाणक्य–1956, राजबहादुर सिंह रचित जब आकाश रो पड़ा–1950, सत्यदेव चतुर्वेदी कृत अमित का वेग–1958, रानी तिष्य रक्षिता–1960, किरण प्रभा–1962, डॉ यतीन्द्र रचित आचार्य चाणक्य–1956, रणवीर जी वीर रचित महामन्त्री चाणक्य, चन्द्रशेखर शास्त्री रचित श्रेणिक बिम्बसार, अवध प्रसाद वाजपेयी कृत दाराशिकोह–1962, लक्ष्मीनारायण बिरला कृत सुल्तान और निहालदे–1965, रामरतन भटनागर कृत जय वासुदेव–1959, वीरेन्द्र पाण्डेय सिन्धु की बेटी–1966, श्रीनाथ सिंह सोमनाथ–1955, सन्तोष व्यास कालिदास–1960, गोविन्द सिंह रचित अठारह सौ सत्तावन–1956, लाल कुँवर और जय मेवाड़, ब्रजरत्न दास इरावती–1947, रघुनाथ सिंह रचित संस्मरण–1962, शान्तिनारायण रचित झाँसी की रानी–1949, सम्पतलाल पुरोहित रचित मालवा की माटी–1965, श्रीराम वात्स्यायन रचित गण रणथम्भौर परदेशी रचित त्याग का देवता–1963 व जयमहाकाल–1961, देवीप्रसाद

रचित दिल्लीश्वरी–1949, रामअवतार चौरसिया कृत वीतशोक–1960, वीरेन्द्रकुमार जैन कृत भक्तिदूत–1947, राधेश्याम विगत रचित दुरभिसंधि–1958, जगन्नाथ प्रभाकर रचित वत्सराज–1959, श्री शरण रचित बुन्देला–1958 एवं नारी का प्रतिशोध, ओमप्रकाश शर्मा रचित सांझ का सूरज–1948, बनकाम सुनील कृत सामन्त बीजगुप्त–1956, धूलि और नर्तन आदि ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास है, जो विशिष्ट चर्चा में नहीं रहे या आलोचकों द्वारा उपेक्षित रहे हैं। इन सभी उपन्यासों का उल्लेख ज्ञानप्रकाश मिश्र रचित ऐतिहासिक उपन्यासों में सांस्कृतिक चिंतन पुस्तक से लिया गया है।

कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु' कृत महाश्रमण सुनें–1963 एक उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें ऐतिहासिक तथ्यात्मकता एवं औपन्यासिक रसात्मकता दोनों का कलात्मक चित्रण है। लिखा है – आदरणीय बन्धु लक्ष्मीचन्द जैन का आग्रह था कि मैं राहुल कथा का कुछ ऐसा आख्यान करूँ जिससे ऐतिहासिक तथ्यात्मकता और औपन्यासिक रसात्मकता दोनों ही उसमें सुलभ हो सके। कथा कहनी राहुल की थी किन्तु बुद्ध का व्यक्तित्व इतना विराट रहा है कि उस युग की हर कथा उनके व्यक्तित्व की ही पार्श्व छाया है। लेखक ने बुद्ध अंगुलिमाल एवं अम्बपाली को नया आयाम दिया है।''[226]

राजीव सक्सेना रचित पणिपुत्री सोमा–1972 ई. और रमैनी–2000 उपन्यासों में क्रमशः आर्य–अनार्यसंघर्ष को एवं 1857 की क्रान्ति को प्रगतिशील चेतना की दृष्टि से स्पष्ट किया गया है। 'पणिपुत्री सोमा' में दिया गया है कि यह संघर्ष उत्पादक शक्तियों का संघर्ष था न कि कुछ प्रेम कथाओं का संघर्ष था। डॉ भगवत शरण उपाध्याय ने लिखा है कि – ''अनजाने अतीत का इतना साक्षात् निरूपण वैदिक प्रसंग के उपन्यास में मैंने अन्यत्र नहीं देखा। अंग्रेजी में किसी यूरोपीय ने कभी 'रूद्राज' नाम का उपन्यास लिखा था। जिसे सम्भवतः सन् 31 में मैंने पढ़ाया और प्रभावित हुआ था। यह अब मुझे 'पणिपुत्री सोमा' के सामने तुच्छ लगता है। आर्यों का जीवन साफ खुल चुका है, पोर–पोर किस प्रकार बन्दी बनाए दस्युओं अथवा पणियों से आर्य काम लेते हैं, किस प्रकार दास और अयस्कर विद्रोह करते हैं। चाहे प्रसंग कल्पित सत्य हो। विद्रोह स्वामियों और दासों–पणियों में ही नहीं, बल्कि सचेत आर्यतरूण के अन्तर में जाग्रत होता है और अन्तर में वह वृद्ध रूढ़िवादियों को भी अपने सत्य से प्रभावित कर मजबूर कर देता है कि वे दोनों विवाह को स्वीकार कर लेते हैं।''[227]

शिवसागर मिश्र रचित राजतिलक–1961 और मगध की जय–1962 इस काल के विशिष्ट ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इनमें लेखक ने मगध साम्राज्य के निर्माण की भूमिका निभाने वाले तत्वों को उभारने की चेष्टा की है। रामविलास शर्मा ने लिखा है कि – ''यह कहना अनुचित न होगा कि श्री शिवसागर मिश्र ने यहाँ प्राचीन इतिहास का नया मूल्यांकन करते हुए एक प्रगतिशील कथा लेखन परम्परा का सूत्रपात किया है।''[228]

बालाशौरि रेड्डी कृत 'शबरी–1959' ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें दण्डकारण्य के महावन में रहने वाली शबर जाति के जीवन का सफल चित्रण किया है। शिवप्रसाद 'रूद्रकाशिकेय' रचित 'बहती गंगा–1952' में काशी की जिंदगी से जुड़ी अनेक कथाओं को अतीत और वर्तमान जीवन के साथ सम्बद्ध कर औपन्यासिक शिल्प में उतारा गया है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र ने संन्यासी और सुन्दरी–1954, खून का टीका–1959, मरूकेसरी–1966, खम्मा अन्नदाता–1957, ठकुराणी–1964, रानी–महारानी–1976, सिंहासन और हत्याएँ–1976, रनिवास की रूपसी–1996 आदि उपन्यास लिखकर मुख्यतः राजस्थान के राजपरिवारों की विसंगतियों एवं विकृतियों का चित्रण किया है। गीता मा. बेणचेकर ने लिखा है कि – 'संन्यासी और सुन्दरी' चन्द्र का प्रथम उपन्यास ही नहीं बल्कि गुजराती, मराठी व उर्दू में अनुदित एवं पुरस्कृत एक अविस्मरणीय कृति है। यह उपन्यास वासवदत्ता एवं भिक्षुक उपगुप्त के प्रेम एवं वैराग्य की कथा है। प्यार और वासना की चिरन्तन समस्या पर आधारित यह उपन्यास हिन्दी में 'चित्रलेखा' जैसे उपन्यासों की श्रेणी में आकर राष्ट्रभाषा की श्रीवृद्धि करता है। खून का टीका 'राणा हमीर' द्वारा खोए राज्य को वापस प्राप्त करने की कथा है। 'रानी–महारानी' में रानी चम्पादे अपनी काम–पिपासा मिटाने के लिए किस–किस तरह के षड़यन्त्र करती है, यह दर्शाया गया है। 'रनिवास की रूपसी' में कथानायक हनुमान गढ़ रियासत का भावी राजा और नायिका पातुर पुत्री खुर्शीद जहाँ की कहानी है।''[229] वीरेन्द्र कुमार जैन रचित अनुत्तर योगी–1974 में महावीर स्वामी को महामानव के रूप में चित्रित करते हुए जननायक व जनपक्षधर बनकर सामने आते है।

इकबाल बहादुर देवसरे रचित 'ओरछा की नर्तकी–1970' सुल्तान–ए–मालवा– 1972, बेगम हजरत महल–1973, जाने आलम–1974, नवाब बेमुल्क–1976, तानसेन–1978 व गुलफाम मंजिल विशेष ख्याति प्राप्त उपन्यास हैं। इतिहास के ऐसे पात्रों का चयन किया है, जो विस्मृत या लुके–छिपे से हैं। परन्तु मर्म छूने वाले हैं। ऐतिहासिक साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए इतिहास को आधुनिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। रामकुमार भ्रमर रचित फौलाद का आदमी–1969 रोचक ऐतिहासिक उपन्यास है। 1857 ई. के स्वतन्त्रता संग्राम के नायक अजीमुल्लाखाँ के शौर्य एवं चारित्रिक दृढ़ता को दर्शाकर जनसंघर्ष के रूप में चित्रित किया है।

पौराणिक काल के उपन्यासों को यदि ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी माना जाए तो नरेन्द्र कोहली एवं मनु शर्मा के उपन्यास विशिष्ट एवं ख्याति प्राप्त हैं। इनका विशिष्ट लेखन समकालीन युग में सामने आता है। परन्तु साठोत्तर काल में अनेक उपन्यासों की रचना कर दी गई है। मनु शर्मा रचित द्रोपदी की आत्मकथा–1974, द्रोण की आत्मकथा–1976, कर्ण की आत्मकथा–1978 प्रमुख है। पौराणिक पात्रों के मध्य से ऐसे पात्र खोजना एवं संदर्भ खोजना जिनके द्वारा आधुनिक चेतना व्यक्त की जा सके। 'कर्ण की आत्मकथा' में लिखा है कि –

''अब युग बदल गया, अंगराज! वे मान्यताएँ और मूल्य इतिहास में खो गए जिन्हें आप छाती से चिपकाए बैठे हैं। जहाँ का बुद्धिजीवि स्वर्ण खण्डों पर खरीदा जाता रहेगा, वहाँ का शासन निरंकुश हो जाए तो आश्चर्य क्या?''[230] यही संदेश इनके पौराणिक उपन्यासों में दिया गया है।

नरेन्द्र कोहली ने आलोच्य काल में रामायण पर आधारित दीक्षा–1975 ई., अवसर–1976 ई., संघर्ष की ओर–1978 ई. तथा युद्ध–1979 ई. नामक उपन्यास लिखे जिनमें राम को ऐसे व्यक्तित्व के रूप में दर्शाया गया है, जो चरित्र और मानवीयता की हर अग्नि–परीक्षा में खरा उतरता है। डॉ विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है कि – डॉ नरेन्द्र कोहली के समक्ष अनेक चुनौतियाँ रही हैं। जिनका समाधान खोजने का प्रयास 'दीक्षा' में है। एक तरफ रामायण की मूल कथा से संश्लिष्ट पौराणिक आख्यानों का मर्म पकड़ना और दूसरी तरफ आज के युग सन्दर्भ में वैसी ही परिस्थितियों से जूझते हुए मानव की नियति को समझना और उसका समाधान खोजना कोहली के लिए इस उपन्यास की प्रेरणा का मूल बीज रहा है।''[231]

1.7.4 समकालीन ऐतिहासिक उपन्यास :–

गोपाल राय ने 1980 के बाद के उपन्यासों को समकालीन परिदृश्य कहकर विभाजित किया है। सुविधा की दृष्टि से विवेच्य अध्याय में यही विभाजन सीमा स्वीकार कर ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन किया जा रहा है।

'नरेन्द्र कोहली' इस काल के सशक्त उपन्यासकार हैं जिन्होंने पौराणिक संदर्भ के ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन किया है। रामायण पर आधारित उपन्यासों का प्रकाशन 1980 से पहले हो चुका था। सुदामा और श्रीकृष्ण को केन्द्र में रखकर उनका एक उपन्यास 'अभिज्ञान–1981' श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों में गणनीय है। 'महाभारत' की कथा पर आधृत 'बंधन–1988, अधिकार–1990ई., कर्म–1991ई., धर्म–1993ई., अन्तराल–1995ई., प्रच्छन्न–1997, प्रत्यक्ष–1998ई. तथा निर्बन्ध–2000ई. शीर्षक से आठ उपन्यासों की रचना की है, जो 'महासमर' नाम से श्रृंखला रूप में प्रस्तुत किया है। स्वामी विवेकानन्द के जीवन को कोहली ने निर्माण–1992, साधना–1993, परिव्राजक–2003, निर्देश–2004, संदेश–2005 व प्रसार–2006 नाम से छः खण्डों में प्रस्तुत किया है। इनका सम्मिलित रूप 'तोड़ो कारा तोड़ो' नाम से अभिहित है। इस प्रकार महासमर, अभिज्ञान एवं तोड़ो कारा तोड़ो क्रमशः महाभारत, कृष्ण–सुदामा एवं विवेकानन्द को नवीन दृष्टि से प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयत्न है। गीता पर आधारित उनका 'शरणम्–2015' उपन्यास इक्कीसवीं सदी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। शत्रुघ्न प्रसाद ने लिखा है कि – ''पाँच संवादों तथा अनेकानेक कथा–प्रसंगों के द्वारा अर्जुन का विषाद, द्वन्द्व, मानवीय मनोवृत्ति, जिज्ञासा तथा सन्देह का समाधान, निष्काम कर्म का प्रतिपादन, द्वन्द्व से मुक्त होकर अर्जुन का श्रीकृष्ण से अद्वैत होना व आत्मविश्वास के साथ

उठ खड़ा होना ही उपन्यास का कथ्य है। संजय एवं धृतराष्ट्र का नवीन व्यक्तित्व सामने आता है। यह उपन्यास आनन्द प्रदान करता है।[232] विवेकी राय ने 'बंधन' खण्ड पर विवेचना करते हुए लिखा है कि – ''कुल मिलाकर 'बंधन' को एक विश्लेषणात्मक उपन्यास के रूप में निखार मिला है। वह व्यक्ति, समाज और समय के अन्तस् का विश्लेषण करता है। आरोपण से मुक्त प्रस्तुत महाभारत कथा वास्तव में कथा रस के प्रति प्रतिबद्ध बन गई है। पाठकों को अनुभव होता है कि विशाल कथा–जाल'जटित महाभारत की कथा का यह उपन्यास के रूप में एक सरल भाष्य हो गया है, जो आधुनिक मन को छूने वाला है।[233] गोपाल राय ने लिखा है कि – ''यह महाभारत की पुनः प्रस्तुति या पौराणिक मानवेत्तर प्रसंगों की व्याख्या मात्र नहीं है। वरन एक जीवन्त रचना संसार है, जिसके प्राणी मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण हैं..... 'तोड़ो कारा तोड़ो' स्वामी विवेकानन्द की जीवनी पर आधारित एक उल्लेखनीय उपन्यास है, जिसमें चरितनायक के अन्तर्द्वन्द्व, अदम्य आत्मविश्वास और लोकनिष्ठा की प्रखर अभिव्यक्ति हुई है।'' उनका कहना है कि .... पौराणिक कथाओं के प्रति जनता का जो रूझान व्यक्त हुआ है। उसे 'तथाकथित' प्रगतिशील सोच के बुद्धिजीवी और आलोचक साम्प्रदायिकता का उन्मेष मानते है। पर वस्तुतः यह अपनी जड़ों से जुड़ने का प्रयास है।''[234] वसुदेव–2007, मत्स्यगंधा–2012, हिडिम्बा–2012, कुंती–2012 भी इनकी रचनाएँ हैं। राजीव सक्सेना ने 1857ई. की घटना पर आधृत उपन्यास 'रमैनी–2000' में सिद्ध किया है कि यह संघर्ष केवल असंतुष्ट सामंतों एवं सैनिकों का विद्रोह नहीं था बल्कि किसानों एवं आमजनता द्वारा स्वाधीनता के लिए किया गया प्रयास था। हिन्दू–मुसलमान एक होकर लड़े थे। यह उपन्यास प्रगतिशील राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से लिखा गया था।

मनु शर्मा भी पौराणिक संदर्भों को नवीन दृष्टि से प्रस्तुत करने वाले उपन्यासकार है। इनके द्वारा रचित अभिशप्त कथा–1982, शिवाजी का आशीर्वाद–2004, गांधारी की आत्मकथा–2004 एवं कृष्ण की आत्मकथा–आठ भाग–2004 उल्लेख योग्य उपन्यास हैं।

शिवप्रसाद सिंह इस काल के विशिष्ट ऐतिहासिक उपन्यासकार है। नीला चाँद–1988, कुहरे में युद्ध–1992ई., दिल्ली दूर है–1993ई., वैश्वानर–1996ई. आदि उपन्यासों की रचना कर भारतीय इतिहास के अनेक प्रसंगों को उद्घाटित किया है। अलग–अलग वैतरणी–1967, गली आगे मुड़ती है'1974 तथा शैलूष–1989 भी ऐतिहासिक आभाषित उपन्यासों की श्रेणी में रखे जा सकते है। 'नीला चाँद' इनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है। 'नीला चाँद में 1060ई. के काशी को सम्पूर्ण वैभव के साथ चित्रित किया है। कलचुरी राजा कर्णदेव एवं गाहड़वाल राजा चन्द्रदेव का काशी पर अपना–अपना हक है। कर्णदेव द्वारा देववर्मा का वध कर दिया जाता है। देववर्मा का छोटा भाई कीर्तिवर्मा गोविन्दचन्द को संरक्षण में लेकर जन–शक्ति को संगठित कर कर्णदेव को पराजित कर अपनी वंश मर्यादा की पुनः प्रतिष्ठा करता है। कीर्तिवर्मा को जननायक के रूप में दर्शाया गया है। 'कुहरे में युद्ध' व 'दिल्ली दूर है' एक ही उपन्यास के

दो भाग है। इनमें 1233ई. से 1305 तक के भारतीय इतिहास के सम्पूर्ण परिदृश्य को दर्शाया गया है। 'वैश्वानर' में काशी को केन्द्र में रखकर भारतीय संस्कृति के धन और ऋण दोनों पक्षों को प्रत्यक्ष किया है। द्युलोक का सूर्य पृथ्वी की नाभि, धावा, पृथिवी और रोदसी(अन्तरिक्ष) का स्वामी है, जिसे देवता विश्वनेता कहते हैं। जिसने भारतीय जाति–आर्यों को सदा मार्ग दिखाया है। यही संदेश दिया है। रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है – ''लेखक का विश्वास है कि आगामी मानवता के विकास में भारतीय धर्मों, वेदांत केन्द्रित हिन्दू धर्म तथा बुद्ध–गाँधी की अहिंसा प्रमुख तत्व बनेगी। वसुधैव कुटुम्बकम् का मंत्र सारे विश्व में गूँजेगा।[235] भगवतीशरण मिश्र ने 'नीला चाँद' पर विवेचन करते हुए कहा है कि – ''नीला चाँद निस्संदेह एक श्रेष्ठ औपन्यासिक कृति है। लेखक का स्वाध्याय, अन्वेषण, अनुसंधान एवं गवेषणा को तो यह प्रतिबिम्बित करता है ही, लेखक का औपन्यासिक कौशल भी इसमें परवान चढ़ा है। वस्तुतः 'नीला चाँद' सदृश क्लासिक कृतियाँ किसी भाषा में कभी–कभी ही आ पाती है। 'नीला चाँद' एक काल्पनिक कृति है, जिसके माध्यम से शिवप्रसाद सिंह ने समय की शिला पर अपना अमिट हस्ताक्षर छोड़ दिया है।''[236]

गिरिराज किशोर रचित 'पहला गिरमिटिया–1999' 1894 से 1914 तक के सत्याग्रह आन्दोलन पर आधारित महत्वपूर्ण उपन्यास है जो गाँधीजी द्वारा दक्षिण अफ्रीका में चलाया गया था। इस उपन्यास में अफ्रीका में व्याप्त रंगभेद नीति तथा गोरे उपनिवेशवादियों की स्थानीय एवं भारतीय मूल के निवासियों के प्रति घृणा एवं क्रूरता का मार्मिक निदर्शन है। गाँधी जी को ही लेखक पहला गिरमिटिया दर्शाता है। इन्द्रसुने, लोग, यथा प्रस्तावित, जुगलबन्दी, ढाई घर आदि में अतीतकालीन जीवन को दर्शाकर अतीत का आभास दिया गया है। जयशंकर द्विवेदी ने 'महाकवि कालिदास की आत्मकथा–1987' में कालिदास के जीवन, भारतीय आध्यात्मिक तपस्या, तत्व ज्ञान और भारतीय सांस्कृतिक उच्चता के उज्ज्वल पक्षों का उद्‌घाटन किया है। यह उपन्यास 'बाणभट्‌ट की आत्मकथा' की परम्परा का महत्वपूर्ण उपन्यास है।

मायानन्द मिश्र रचित प्रथम शैलपुत्री च–1990, मन्त्रपुत्र–1990 व पुरोहित–1999ई. ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास हैं जिनमें पुराकालीन तथ्यों को सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा भारतीय संस्कृति की विश्वसनीय कहानी कही गई है। 'प्रथम शैलपुत्री च' में लगभग 2000ई.पू. के भारत की कथा कही गई है तथा 'मन्त्रपुत्र' में आर्य–अनार्य संघर्ष, सरस्वती नदी से यमुना तक आर्यों के प्रसार एवं सांस्कृतिक समन्वय की चेष्टा करते हुए ऋग्वैदिक जीवन का चित्र उपस्थित किया गया है। 'पुरोहित' में लगभग 1000–1200ई.पू. की कहानी उस काल के जीवन–दर्शन को मूर्त रूप में चित्रित करते हुए व्यक्त की गई हैं। मायानन्द मिश्र ने लिखा है कि – ''मैंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्थितियों–परिस्थितियों में गहरे उतरने के साथ ही उनके भविष्योन्मुखी स्वरूपों के रेखांकन की भी चेष्टा की है। .... 'मंत्रपुत्र' नामक ऋैग्वैदिककालीन उपन्यास में वर्ण–व्यवस्था में

शूद्र शब्द रखने के पीछे की अवधारणा तथा उत्तरवैदिक कालीन 'पुरोहित' नामक उपन्यास में सरस्वती पूजन को विकास परम्परा का जन्म एवं सूत्र–स्मृतिकालीन 'स्त्रीधन' नामक उपन्यास में अवतारवाद की पूर्व भूमिका की कल्पना को देखा जा सकता है। .... 'प्रथम शैलपुत्री च' में मैंने सैन्धव सभ्यता के निर्माण एवं ध्वंस की कथा कही है।''[237] इनका 'स्त्रीधन' नामक और उपन्यास है जो स्मृतिकाल का चित्रण करता है। शम्भु गुप्त ने 'प्रथम शैलपुत्रीच' उपन्यास को भारतदेशीय विविधता के आदिमतम स्त्रोत की तलाश कहा है तथा साथ ही लिखा है कि – ''इसमें भारतीय उदारता के शान्तिमूलक सह–अस्तित्व के चिन्तन की धरती खोजी गई है।''[238] इस उपन्यास में आर्यों को बर्बर एवं सिन्धु निवासियों को शान्तिप्रिय कहा गया है।

कमलाकांत त्रिपाठी के दो उपन्यास 'पाहीघर–1991' एवं 'बेदखल–1997' हैं जो निकट अतीत पर आधारित हैं। 'पाहीघर' में कथा की पृष्ठभूमि बसौली गाँव का पाहीघर है। 1857 की क्रान्ति को जनक्रान्ति के रूप में दर्शाया गया है। 'बेदखल' अवध के किसानों द्वारा बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में किए गए किसान आन्दोलन का चित्रण है, जिसमें दर्शाया है कि किसान हमेशा बेदखल ही रहा है। वीरेन्द्र यादव ने 'समकालीन दौर के इतिहास' लेख में लिखा है कि – '' 'पाहीघर' और 'बेदखल' की विशिष्टता के मूल में इनकी इतिहास गाथा उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी इतिहास दृष्टि। इतिहास के इस कालखण्ड को प्रभुत्वकारी विमर्श से बाहर निकालकर सतह से शिखर देखने की जो इतिहास दृष्टि कमलाकान्त त्रिपाठी अपनाते हैं। उसी के परिणामस्वरूप 'पाहीघर' 1857 की जनक्रान्ति की अवधारणा को प्रश्नों के घेरे में खड़ा करता है। इसी इतिहास दृष्टि के चलते स्वतन्त्रता आन्दोलन की मुख्यधारा से 'बेदखल' अवध के किसान आन्दोलन को पहली बार औपन्यासिक केन्द्रीयता प्राप्त होती है।''[239]

निकट अतीत कालखण्ड विशेष को माध्यम बनाकर लिखे गए उपन्यासों में अमृतलाल नागर रचित करवट–1985 और पीढ़ियाँ–1990 तथा कामतानाथ रचित कालकथा–1998, अमरकान्त रचित इन्हीं हथियारों से 2003, असगर वजाहत रचित सात आसमान–1996 एवं महीप सिंह रचित – अभी शेष है–2004 प्रमुख हैं। वीरेन्द्र यादव के अनुसार स्वतन्त्रता आन्दोलन की लम्बी समयावधि को समेटे अमृतलाल नागर के उपन्यास करवट और पीढ़ियों के बाद कामतानाथ का उपन्यास 'काल–कथा' एवं अमरकान्त का 'इन्हीं हथियारों से' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। गाँधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन से लेकर लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य तक के दौर में सम्पन्न कांग्रेस अधिवेशनों से सजीव चित्रण, कारवाईयों के विवरण, राष्ट्रीय नेताओं की जीवन्त उपस्थिति ने उपन्यास को दस्तावेजी महत्व प्रदान किया है।.... कामतानाथ राष्ट्रीय आन्दोलन का क्रिटिक रचने के बजाय उसकी गौरवगाथा के सृजनहार की भूमिका तक सीमित रह गए। काश उपन्यासकार इतिहासग्रस्त न होकर हाशिए की इन आवाजों को उनकी चरम परिणतियों तक पहुँचा सका होता। सन् 1942 के आन्दोलन पर सम्पूर्ण रूप से स्वतन्त्र उपन्यास यशपाल रचित 'देशद्रोही' के बाद अमरकान्त का उपन्यास

'इन्हीं हथियारों से' है। भारत छोड़ो आन्दोलन के सन्दर्भ में बलिया के घटनाक्रम को एक मिथक के रूप में याद किया जाता है।........ बलिया की पृष्ठभूमि में सन् 1942 के घटनाक्रम को ऐतिहासिक सन्दर्भ प्रदानकर उन्होंने अपने गृहनगर का जो ऋण शोध किया है। वह उनके श्रमसाध्य समर्पण की फलभूति ही है।....... असगर वजाहत अपने उपन्यास 'सात आसमान' में इतिहास का भिन्न धरातल प्रस्तुत करते हैं। वे प्रत्यक्ष इतिहास गाथा न रचकर उस परजीवी सामन्त समाज के नियन्ताओं का आख्यान प्रस्तुत करते है, जो इतिहास की गति के समक्ष स्वयं को लुटा–पिटा, बेबस और असहाय पाते हैं।''[240]

वेदकालीन कथानकों पर आधारित उपन्यासों में सन्हैयालाल ओझा रचित सम्भवामि–1987 एवं रामनाथ नीखरा रचित 'महामुनि अगस्त्य–1998 महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। 'सम्भवामि' में आर्यों को कैस्पियन सागर तट का वासी दिखाया है। सिन्धु घाटी के दुर्योण और सरस्वती के पास के हरयूपिया–हरप्पा को भारतीय पणिकों की व्यापारिक सभ्यता के रूप में प्रस्तुत किया है। 'सम्भवामि' की विवेचना में विवेकी राय ने लिखा है कि – ''पौराणिक पुनर्लेखन और इस पुनर्लेखन में भी लोकतांत्रिक, समाजवादी, वैज्ञानिक और आधुनिक मानवीय दृष्टि का समावेश, समायोजन। वस्तुतः यह आर्यों–अनार्यों के संघर्ष की महागाथा है, और अनार्यों के विषय में प्रचलित आम धारणाओं को परिष्कृत करने वाली कृति है।''[241] रामनाथ नीखरा ने 'महामुनि अगस्त्य' नामक उपन्यास में दर्शाया है कि सांस्कृतिक एवं राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित करने के उद्देश्य से युद्ध होते रहे हैं। वेद–पुराणों में वर्णित असुरों के साथ संघर्ष को दर्शाते हुए वैदिक आर्यों को भारतीय रूप में व्यक्त किया है।

भगवान सिंह ने महाभिषग–1990 एवं अपने–अपने राम–1992 नामक दो ऐतिहासिक उपन्यास लिखे है। गोपालराय ने महाभिषग का रचनाकाल 1973 माना है। 'महाभिषग' में गौतम बुद्ध के चरित्र को अश्वघोष रचित बुद्धचरित के आधार पर चित्रित किया है। गौतम बुद्ध को बुद्धिसंगत रूप में मानवीय व्यक्तित्व में उभारता है। 'अपने–अपने राम' में रामकथा को पूर्णतः नवीन अभिप्रायः के साथ प्रस्तुत किया गया है। वशिष्ट एवं विश्वामित्र के वैयक्तिक संघर्ष, वर्णगत अहं एवं राजप्रासाद के षड़यन्त्रों के परिणामस्वरूप रामकथा का दिग्दर्शन कराया गया है। शम्बूक के चरित्र को विशिष्ट उभारा गया है। रमानाथ त्रिपाठी रचित रामकथा–1998, राजेश्वरी अग्रवाल रचित आभीरा–1995, चित्रा चतुर्वेदी रचित वैजयंती–1996 पदमा सचदेव रचित भटको नहीं धनंजय–1999 चन्द्रमोहन प्रधान रचित एकलव्य भी इस काल में रचित विशिष्ट उपन्यास हैं। 'रामगाथा' में रमानाथ त्रिपाठी ने शुद्ध रामगाथा कही है। राम–रावण संघर्ष को दो संस्कृतियों के संघर्ष के रूप में दर्शाया गया है। राजेश्वरी अग्रवाल ने 'आभीरा' उपन्यास में राधा–कृष्ण की प्रेमकथा को नवीन कल्पना के साथ उदात्त, हृदय–स्पर्शी चरित्र के साथ अभिव्यक्त किया है। चित्रा चतुर्वेदी ने 'वैजयन्ती' में महाभारत एवं भागवत में वर्णित कृष्ण जीवन को मनोवैज्ञानिक एंव सांस्कृतिक आधार पर प्रस्तुत किया है। राधाकृष्ण के

उज्ज्वल प्रेम के साथ श्रीकृष्ण के योगी रूप को अभिवयक्त किया है। पदमा सचदेव रचित 'भटको नहीं धनंजय' में दर्शाया है कि स्त्री को तो त्रासदी सहने का अभ्यास होता है। परन्तु वीर पुरूष के लिए स्त्री बाँटने से बड़ा अपमान दूसरा नहीं हो सकता। अन्य प्रसंग के माध्यम से स्त्री द्रोपदी एवं पुरूष अर्जुन दोनों को अन्तर्मुखी और बहुर्मुखी पीड़ा सहते हुए प्रेमपरक यातना की अभिव्यक्ति करवाई गई है। चन्द्रमोहन प्रधान रचित 'एकलव्य' में एकलव्य की पीड़ा के साथ–साथ सामाजिक तथा राजनीतिक प्रश्नों को उभारा गया है। पोद्दार रामावतार अरूण कृत 'गौतम बुद्ध की आत्मकथा–1984' एवं अम्बिका प्रसाद दिव्य कृत 'असीम की सीमा–1998' में क्रमशः गौतम बुद्ध एवं भगवान बाहुबली के जीवन को चित्रित किया है। रामावतार अरूण ने इस उपन्यास की भूमिका में इसका कथ्य स्पष्ट करते हुए कहा है – ''विश्व इतिहास में भारतीय आलोक पुरूष गौतम बुद्ध का स्थान अग्रगण्य है। जब–जब अतिशय स्वार्थ के वशीभूत होकर पृथ्वी के किसी कोने में महायुद्ध के बादल उमड़ने लगते हैं, हम मानवीय समानता और शान्ति के मनुजदेवता बुद्ध का स्मरण करते है। तथा 'असीम की सीमा' में अम्बिका प्रसाद ने लिखा है कि – ''भगवान बाहुबली तीर्थंकर भी नहीं थे, परन्तु उनका त्याग, उनकी तपस्या और साधना किसी तीर्थंकर से कम नहीं थी। वे तीर्थंकर के समान ही पूजित हुए और उनकी विशाल प्रतिमा स्थापित हुई।''[242]

इसी प्रसंग पर नीरज जैन रचित 'गोमटेश गाथा–1989' अत्यन्त उत्कृष्ट उपन्यास है। जिसमें कलाकार को लोभमुक्त साधना से परिपूर्ण कला की साधना का संदेश दिया गया है। श्रवण बेलगोला में चन्द्रगिरि पर्वत को काटकर भगवान बाहुबली की एक पाषाण की सत्रह मीटर ऊँची अनोखी प्रतिमा बनाई गई है। इसी प्रसंग पर आधारित श्रेष्ठ उपन्यास है। आर्यिका विशुद्धमती ने लिखा है – जिस प्रकार एक चतुर शिल्पकार पूर्वभवों के संस्कार एवं परम्परा से प्राप्त अनुभवों, अडिग संकल्प एवं एकान्त चिंतन .... दुर्भेद्य शिलाखण्डों में भी अपने साहस को साकार कर लेता है। उसी प्रकार साहित्यकार भी पूर्व पुण्य के योग से दृढ़ इच्छाशक्ति और आन्तरिक श्रद्धा भक्ति के बल पर पौराणिक कथाओं के शब्द–पात्र में भावाभिव्यंजना भरकर उन्हें जीवन्त सदृश सुग्राह्य और सुश्रुत बना देता है। श्री नीरज ऐसे ही शब्द चितेरे है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर 'गोमटेश गाथा' की यह आख्यान धारा सुचारू रीत्या अतीव रोचक ढंग से लेखक ने प्रवाहित करायी है।''[243]

विष्णुचन्द्र शर्मा कृत ''चाणक्य की जयगाथा–1992', शिवसागर मिश्र कृत 'अभियान–1986', कृष्णानंद कृत कोशा–1998, जानकीवल्लभ शास्त्री कृत कालिदास भी इतिहास के मौर्य गुप्तकाल को अभिव्यक्त करती उत्तम रचनाएँ हैं। 'अभियान' में वैशाली के नन्दिवर्धन (शिशुनाग) द्वारा संघर्षशीलता के साथ भारत की राजनैतिक एकता के लिए साम्राज्य निर्माण की कथा कही गई है। मार्क्सवादी विष्णुचन्द्र शर्मा ने चाणक्य को लोकायतवादी सिद्ध करने का प्रयास करते हुए 'चाणक्य की जयगाथा' की रचना की है। श्री कृष्णानन्द ने 'पाटलिपुत्र की

राजनर्तकी–कोशा' एवं 'मस्तानी' में घनानंदकालीन एवं मुगलकालीन साम्राज्य में नारी की त्रासदी को चित्रित किया है। कोशा में लेखक की मान्यता है कि नारी पर कलंक लगाकर ही पुरूष अपनी विलासिता और कामुकता के दोष पर आवरण ओढ़ने की चेष्टा करता है। 'मस्तानी' में बाजीराव और मस्तानी की प्रेमकथा को तत्कालीन जीवन परिस्थितियों में चित्रित करते हुए दर्शाया है कि मस्तानी ने कैसे प्रेम की बलिवेदी पर अपने को उत्सर्ग कर अपने जीवन को सार्थकता प्रदान की। शालिग्राम मिश्र रचित 'खजुराहो की नगरवधू–1993' भी वैशाली की नगरवधू की परम्परा की कृति है जिसमें गुप्तचरी करती रत्नमाला प्रेम भाव में नगरवधू का कार्य त्याग सोमेश्वर के प्रणय वशीभूत गुप्तचरी भी त्याग देती है और दोनों का गान्धर्व विवाह होता है। इसी प्रकार का उपन्यास 'खजुराहो की अतिरूपा–1991' अम्बिका प्रसाद दिव्य रचित है जिसमें शीलभद्र एवं अतिरूपा के प्रेम समर्पण को दिखाया गया है। गजनवी का संघर्ष और राष्ट्रीयता का भाव भी मुखर है।

कृष्ण भावुक रचित 'हरा दर्पण–1983' रामनाथ नीखरा कृत 'प्रवीण राय–2000', श्यामसुन्दर भट्ट रचित चेतक घोड़े का सवार–1998 एवं मेवाड़ का सूर्यपुत्र–1996' मध्यकालीन इतिहास पर केन्द्रित उपन्यास हैं जिनमें क्रमशः कल्हणकालीन कश्मीर, अकबरकालीन ओरछा के राजकुमार इन्द्रजीत की प्रेमिका प्रवीण राय एवं अकबर–महाराणा प्रताप संघर्षकालीन मेवाड़ का चित्रण किया गया है। इन सभी उपन्यासों का विवरण शत्रुघ्न प्रसाद रचित हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में काल चेतना एवं संस्कृति में उपलब्ध है। चन्द्रकान्ता रचित 'कथा–सतीसर–2001' तथा क्षमा कौल रचित 'दर्दपुर–2004' में कश्मीर के इतिहास को आधुनिक आतंकवादी घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में व्यक्त किया गया है। 'कथा'–सतीसर' में 1931 से 2000 तक की कालावधि की मूलकथा लेकर पिछले वर्षों की आतंकवादी छाया में घुटते कश्मीर को पौराणिक–ऐतिहासिक संदर्भों के साथ चित्रित किया है तथा उम्मीद जताई है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के जैनुल आबदीन (बड़शाह) जैसे शासक की वापसी हो जिसने कश्मीरी पंडितों को आदरपूर्वक बुलाकर वापस बसाया था। 'दर्दपुर' में भी कश्मीर की पीड़ा ही चित्रित हुई है।

'चित्रा चतुर्वेदी' ने 'महाभारती–1986', 'तनया–1989', वैजयन्ती–1996ई.' 'अम्बानहीं मैं भीष्मा–2004' उपन्यास लिखकर द्रोपदी की अन्तर्व्यथा, ययाति पुत्री माधवी की पीड़ा एवं अम्बा से शिखण्डी बनने की आहत वेदना के माध्यम से पुरूष वर्चस्व के विरूद्ध नारी के विद्रोही स्वरों को मुखरित किया है।

मैत्रेयी पुष्पा रचित 'कहे इसुरी फाग–2004' बुन्देलखण्ड में प्रचलित इसुरी रजऊ की प्रणय कथा को इतिहास एवं वर्तमान के संश्लेषण से सार्थकता प्रदान की है। 1857 की क्रान्ति में रजऊ को दर्शाकर एक नवीन आकर्षण भी जोड़ दिया है।

वीणा सिंह ने भी 'पथ प्रज्ञा–1998' उपन्यास में ययाति पुत्री माधवी को अयोध्या, काशी, भोजनगर के राजाओं के यहाँ घोड़ों के बदले बिकते हुए दिखाकर नारी जीवन की विडम्बनापूर्ण व्यथा उपजी एक ऊर्जावान नारी की सृष्टि की है।

जया जादवानी ने 'मीठो पाणी खारो पाणी–2013' लिखकर सिन्ध प्रदेश के पाँच हजार साल के सांस्कृतिक इतिहास को टुकड़ों–टुकड़ों में संजोकर सिन्धु नदी से अरब सागर तक की सभ्यता एवं संस्कृति की यात्रा गाथा कही हैं। सिन्धु नदी ही उपन्यास का प्रमुख पात्र है।

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने 'जागमछन्दर गोरख आया – 1983', 'जोगी मत जा–1989', 'विश्वबाहु परशुराम–1997', 'सिद्ध सरहपा–2008' एवं 'विद्याधर बेताल आख्यान–2009' लिखकर ऐतिहासिक उपन्याकारों में अपना प्रतिष्ठित स्थान निर्धारित किया है। उपाध्याय जी मूल रूप से मार्क्सवादी विचारधारा के लेखक रहे हैं। 'विश्वबाहु परशुराम' में परशुराम को सत्यवादी, न्यायप्रिय, उदारहृदय, दार्शनिक एवं विवेकशील चरित्र का धनी दर्शाकर ऐसे युग नेता के रूप में चित्रित किया है जिसने अनार्यों से पीड़ित आर्य संस्कृति की रक्षा के लिए जीवन समर्पित रखा है। जाग मछन्दर गोरख आया, जोगी मत जा एवं सिद्ध सरहपा में बौद्ध एवं नाथ पंथ की साधना को आधुनिक क्रान्ति के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है। गोरखनाथ को धार्मिक रूढ़ियों से संघर्ष करते हुए दर्शाया गया है। गोरख, भर्तृहरि, सरहपा के माध्यम से नव–क्रान्ति को प्रेरित किया है। काशीनाथ सिंह 'उपसंहार–2014' महाभारत के नायक श्रीकृष्ण के अन्तिम दिनों की कथा कहकर जीवन–मृत्यु के दार्शनिक प्रश्नों का हल खोजने का प्रयास करते है।

शरद पगारे इतिहास के विद्यार्थी एवं इतिहासकार होने के साथ–साथ ऐतिहासिक उपन्यासकार भी हैं। गुलारा बेगम–1984, गंधर्वसेन–1987, बेगम जैनाबादी–1996, पाटलिपुत्र की साम्राज्ञी–2009 इनके द्वारा रचित ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास हैं, जिनमें ऐतिहासिक प्रेम कथाओं को कथानक बनाकर रचना की है। औरंगजेब जैसे रूखे संत स्वभाव बादशाह को भी रोमांस नायक के रूप में चित्रित किया है। 'गुलारा बेगम' में शहजादा खुर्रम एवं बोरवाड़ी की हसीन नृत्यांगना गुलारा की प्रेमकथा, 'गंधर्वसेन' में ईसापूर्व के उज्जयिनी शसक गर्दभिल्ल एवं जैन साध्वी सरस्वती की प्रेमकथा, बेगम जैनाबादी में औरंगजेब एवं बुरहानपुर की हीराबाई अर्थात् जैनाबादी की प्रेमकथा को सम्पूर्ण परिवेश के साथ चित्रित किया गया है।

पत्रकारिता के पेशे में रहकर आनन्द शर्मा ने इतिहास के नूपुर–1995, रसकपूर–1995, एक और भीष्म–2003, नरवर–सुप्यारदे–2003, अमृतपुत्र–2006 आदि ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। 'रसकपूर' ख्याति प्राप्त उपन्यास है जिसमें जयपुर के राजा जगतसिंह एवं तवायफ रसकपूर की प्रेमकथा का वृतान्त है। महाराज द्वारा उसे आधामहल एवं आधा राज्य दे देना एवं बाद में सुदर्शनगढ़ में कैद करवा देना, सामंतों द्वारा राजा को विष दे देना,

रसकपूर द्वारा महाराज के साथ जल जाना आदि प्रसंगों के माध्यम से रसकपूर के प्रेम–समर्पण को दर्शाया गया है।

पौराणिक ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में बच्चन सिंह रचित 'सूतो वा सूत पुत्रों वा–1998ई.' तथा 'पांचाली–2001' भी पठनीय उपन्यास हैं। इनमें कर्ण व कुन्ती को माध्यम बनाकर कर्ण को मानवीय धार्मिक चेतना का प्रतिनिधि व द्रोपदी को अग्निशिखा की भाँति प्रज्ज्वलित नारी जीवन की प्रतिनिधि दिखाया है। इतिहासकार मेवाराम ने दाराशिकोह–2009, रजिया सुल्तान–2011 एवं बदनसीब बादशाह हुमायूँ–2004 नामक मुगलकालीन जीवन पर आधारित उपन्यास लिखकर सम्पूर्ण मुगलकाल को चित्रित कर दिया है। 'दाराशिकोह' एक वृहत् उपन्यास है। 'दाराशिकोह' की त्रासदी को लेकर भोलाशंकर व्यास रचित 'समुद्र संगम–2004' एवं लक्ष्मीनारायण नंदवाना रचित 'प्रीतपसारे पंख–2011' भी उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

'प्रीत पसारे पंख' आकार में लघु परन्तु मानवीय संवेदनाओं की गहराई में विशाल भाव व्यक्त करने वाला उपन्यास है। पंडित जगन्नाथ एवं लवंगी बेगम की प्रणय कथा अत्यन्त गहराई के साथ हृदय पर छाप छोड़ती सी प्रतीत होती है। 'समुद्र–संगम' अत्यन्त उत्कृष्ट और आकार में भी विशाल ग्रन्थ है। इसमें भी पंडितराज जगन्नाथ एवं शहजादे दारा शिकोह के प्रेम के माध्यम से उस युग की पूरी कहानी कही गई है। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि – 'समुद्र–संगम' में मुगल राजसत्ता के लिए युद्ध में दारा की पराजय और औरंगजेब की विजय की कथा है जो धार्मिक बहुलतावाद पर धार्मिक एकान्तवाद की, उदारता पर कट्टरता की, सहिष्णुता पर संकीर्णता की और अनेकान्तवादी राष्ट्रीय चेतना पर एक राष्ट्र–एक धर्म के आग्रह की विजय है। ऐसे में समुद्र–संगम हमें सीखने की सलाह देता है।[244]

लक्ष्मीकान्त वर्मा रचित 'टेराकोटा–1971' एवं 'मुंशी रायजादा–2000' नामक उपन्यास भी इतिहासपरक उपन्यासों में गणनीय हैं। 'मुंशी रायजादा' में अठारवीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं उन्नीसवीं सदी के पूर्वाद्ध के बनते–बिगड़ते भारतीय समाज के पूर्वी प्रदेशवासी गोरखपुर की कायस्थ जाति के टूटते–बिखरते राजनीतिक सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन का चित्रण है। ऐतिहासिक समय ही वास्तविक नायक है। यह वर्माजी की सांस्कृतिक चेतना और समावेशी सामाजिक दृष्टि की देन है।

रंगनाथ तिवारी का सरधना की बेगम–2005, द्रोणवीर कोहली का वाह कैम्प–1998, रमाकान्त पाण्डेय का कीर्ति सागर–1994, ब्रजेश के वर्मन का विश्वामित्र–2010, महुआ मांझी का मैं बोरिशाइल्ला–2006, मधुकर सिंह का चाणक्य–1989, गोविन्द मिश्र का हुजूर दरबार–1981, बलवन्त सिंह का काले कोस–1982, हंसबर रहबर का बोले सो निहाल–1990, मिथिलेश कुमारी का कबीर–2001, रघुवीर शरण मिश्र का पहली हार–1987, विद्यासागर नौटियाल रचित

भीम अकेला–1994 व सूरज सबका है–1997, मृणाल पांडेय का पटरंगपुराण–1983, रमेशचन्द्र सिंह रचित सोमाचरित–1980, रामदेव धुरन्धर का छोटी मछली बड़ी मछली व पूछो इस माटी से–1983, सुरेशकान्त का धम्मंशरणम्–1989 आदि भी उल्लेखनीय उपन्यास है।

डॉ शशिभूषण सिंहल द्वारा लिखित सार–निस्सार–2012, युगद्रष्टा शिवाजी–2014, चाणक्य और चन्द्रगुप्त–2014 भी चर्चित ऐतिहासिक उपन्यास है। जिनमें इतिहास के साथ उचित कल्पना का समावेश है। 'सार–निस्सार' औरंगजेब कालीन दर्शन प्रधान उपन्यास है। 'युगद्रष्टा शिवाजी' में दर्शाया गया है कि मध्यकाल में रूढ़िवादिता और धर्मान्धता के छाए घने अंधेरे के बीच शिवाजी ने मानव स्वतंत्रता का जो दीप जलाया था, वह आज भी प्रज्ज्वलित है। 'चाणक्य और चन्द्रगुप्त' में चन्द्रगुप्त के यशस्वी सम्राट रूप एवं चाणक्य के प्रेरक एवं निर्माता व्यक्तित्व को वर्तमान संदर्भों में जोड़ने का प्रयास किया गया है।

इस विवेचन में भगवतीशरण मिश्र रचित हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार, रामचन्द्र तिवारी रचित हिन्दी का गद्य साहित्य, मैनेजर पाण्डेय रचित उपन्यास और लोकतन्त्र, गोपालराय रचित हिन्दी उपन्यस का इतिहास, उमेश शास्त्री रचित हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास, नामवर सिंह रचित आधुनिक हिन्दी उपन्यास एवं शत्रुघ्न प्रसाद रचित हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में काल चेतना एवं संस्कृति पुस्तकों से सहायता ली गई है। मनमोहन सहगल, भगवतीशरण मिश्र, राजेन्द्र मोहन भटनागर, मेवाराम एवं लक्ष्मीनारायण नंदवाना इस काल के प्रमुख उपन्यासकार हैं जिन्होंने भारतीय इतिहास के विभिन्न कालखण्डों एवं विभिन्न ऐतिहासिक पात्रों को लेकर नवीन दृष्टि का सर्जनात्मक लेखन किया है। पौराणिक ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना कर ऐतिहासिक उपन्यासों की विकास परम्परा निरन्तर गतिशील रखे हुए है। इनकी कृतियों का विवेचन तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत किया जाएगा।

इसी कड़ी में शत्रुघ्न प्रसाद का नाम प्रतिष्ठा के साथ लिया जाता है, जिन्होंने अबतक नौ उपन्यासों की रचना कर भारतीय इतिहास के गौरवमयी एवं प्रेरणादायी पक्षों का चित्रण विशिष्ट ऐतिहासिक दृष्टि से किया है। वैदिक काल से लेकर मध्यकाल के जीवन तक विभिन्न कालखण्डों को साकार किया हैं। निरन्तर लेखनरत हैं, इनका अध्ययन आगे के अध्यायों में किया जा रहा हैं।

निष्कर्षतः किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा ऐतिहासिक रोमांस रूप में प्रारम्भ ऐतिहासिक उपन्यासों का लेखन वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा प्रौढ़ रूप ग्रहण करता है। राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, रांगेय राघव, चतुरसेन शास्त्री, हजारीप्रसाद द्विवेदी, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर आदि के द्वारा प्रगतिशील चेतना को प्राप्त कर विभिन्न दृष्टियों से इतिहास का अवलोकन औपन्यासिक कला में अभिव्यक्त होता है। इतिहास नवीन दृष्टियों से पाठक के सामने प्रस्तुत होता है। नरेन्द्र कोहली एवं मनु शर्मा जैसे उपन्यासकार पौराणिक प्रसंगों को आधुनिक चेतना

के इतिहास रूप में व्यक्त करते है। पुरा–ऐतिहासिक काल को भी नवीन दृष्टि एवं सर्जनात्मक प्रतिभा के बल पर प्रभृति लेखकों ने साकार कर दिया है। आनन्द शर्मा, शिवप्रसाद सिंह, भगवतीशरण मिश्र, मेवाराम, शरद पगारे, राजेन्द्रमोहन भटनागर, मनमोहन सहगल आदि के साथ–साथ शत्रुघ्न प्रसाद जैसे सर्जकों की प्रतिभा से इतिहास अपने नवीन एवं सर्जनात्मक रूप में व्यक्त होकर भारतीय संस्कृति के उदार, समन्वयशील एवं परिष्कृत रूप में चित्रित होकर राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना का मार्ग प्रशस्त कर रहा है, जो भारतीय जीवन के लिए श्रेयस्कर है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों का इसी दृष्टिकोण पर आधारित अध्ययन अगले अध्यायों में किया जा रहा है।

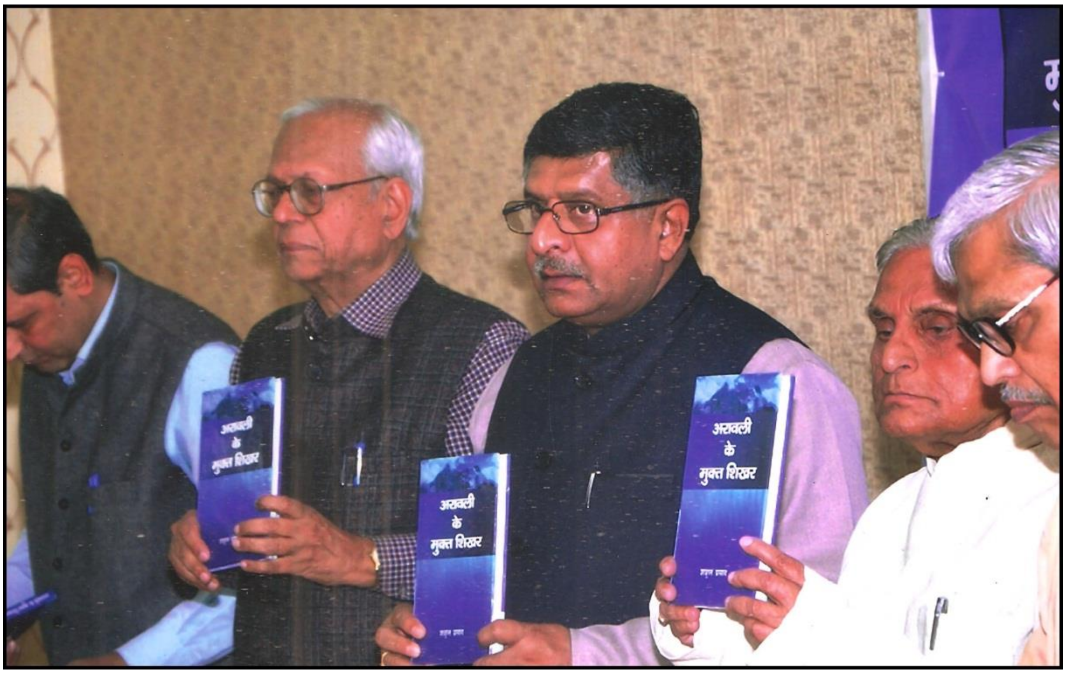

चित्र 1 – 'अरावली का मुक्त शिखर' ऐतिहासिक उपन्यास के विमोचन के अवसर पर शत्रुघ्न प्रसाद।

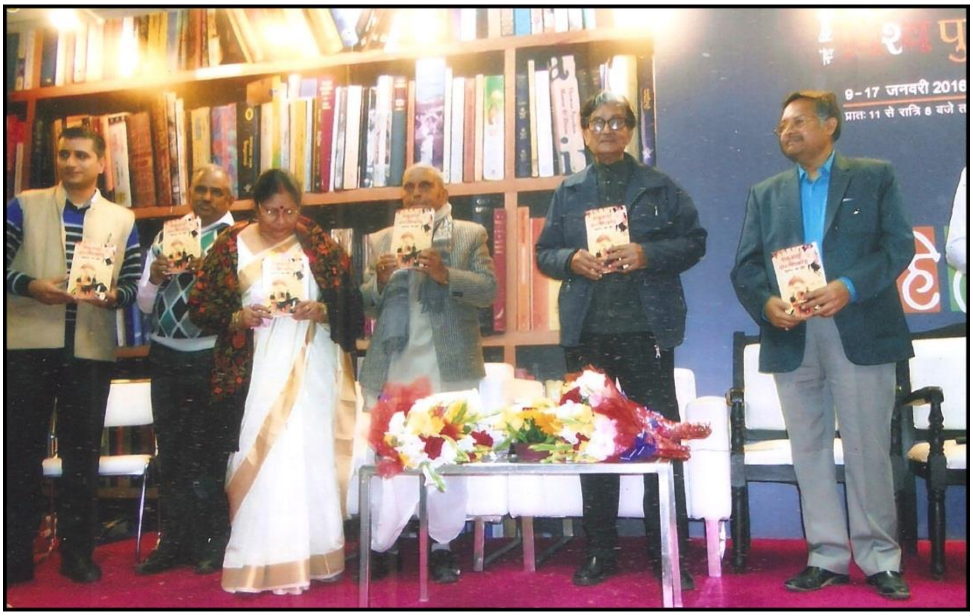

चित्र 2 – 'शहजादा दाराशिकोह : दशहत का दंश' ऐतिहासिक उपन्यास के विमोचन के अवसर पर शत्रुघ्न प्रसाद।

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–16

2. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – डॉ शशिभूषण सिंहल, पेज–28–29

3. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – डॉ शशिभूषण सिंहल, पेज–28–29

4. हमारा दृष्टिकोण – डॉ मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ, पेज–1

5. इतिहास के सिद्धान्त एवं पद्धतियाँ – डॉ एच.सी. पांचाल, पेज–252

6. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ नगेन्द्र, पेज–21

7. राहुल सांकृत्यायन के कथा साहित्य में ऐतिहासिक दृष्टि – डॉ संगीता श्रीवास्तव, पेज–20

8. ऐतिहासिक उपन्यासों में समाज जागृति – प्रो. रामेश्वर मिश्र, पेज–9

9. इतिहास के सिद्धान्त एवं पद्धतियाँ – डॉ एच.सी. पांचाल, पेज–252

10. इतिहास के सिद्धान्त एवं पद्धतियाँ – डॉ एच.सी. पांचाल, पेज–252

11. भारत का इतिहास – हरिशंकर शर्मा, पेज–5

12. भारत का इतिहास – हरिशंकर शर्मा, पेज–3,4

13–19. इतिहास के सिद्धान्त एवं पद्धतियाँ – डॉ एच.सी. पांचाल, पेज– 34, 252, 36, 37, 38,39,40

20–25. भारत का इतिहास – हरिशंकर शर्मा, पेज–4,5,5,6,6,7

26. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ नगेन्द्र, पेज–23

27–30. भारत का इतिहास – हरिशंकर शर्मा, पेज–8

31–38. इतिहास के सिद्धान्त एवं पद्धतियाँ, डॉ एच.सी. पांचाल, पेज–4, 5, 252, 253, 253, 253

39–42. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – डॉ शशिभूषण सिंहल, पेज–274, 275, 281, 25, 26

43. राहुल सांकृत्यायन के कथा साहित्य में ऐतिहासिक दृष्टि – डॉ संगीता श्रीवास्तव, पेज–24

44. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – डॉ शशिभूषण सिंहल, पेज–279

45–46. भारत का इतिहास – हरिशंकर शर्मा, पेज–1,30

47–52. इतिहास के सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियाँ – डॉ एच.सी. पांचाल, पेज–17,18,23,18,298,260

53. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – डॉ शशिभूषण सिंहल, पेज–282

54. राहुल सांकृत्यायन के कथा साहित्य में ऐतिहासिक दृष्टि – डॉ संगीता श्रीवास्तव – पेज–27, 28, 29

55. भारत का इतिहास – हरिशंकर शर्मा, पेज–2,3

56. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – डॉ शशिभूषण सिंहल, पेज–23

57. हिन्दी साहित्य कोश – धीरेन्द्र वर्मा, पेज–139

58. हिन्दी शब्दकोश – हरदेव बाहरी, पेज–116
59. हिन्दी शब्दकोश – हरदेव बाहरी, पेज–116
60. हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–43
61. हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–43
62–63. हिन्दी के प्रमुख उपन्यास एवं उपन्यासकार – राजेश अनुपम, पेज–9,2
64. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कालचेतना एवं संस्कृति – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज–7
65–66. आत्मकथा और उपन्यास – ज्ञानेन्द्र कुमार सन्तोष, पेज–19,20,56
67. हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–14
68–69. उपन्यास की संरचना – गोपाल राय, पेज–26,29
70. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ नगेन्द्र, पेज–472
71. हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–1
72. आत्मकथा और उपन्यास – ज्ञानेन्द्र कुमार सन्तोष, पेज–20
73. आत्मकथा और उपन्यास – ज्ञानेन्द्र कुमार सन्तोष, पेज–27
74. उपन्यास की संरचना – गोपाल राय, पेज–62
75. उपन्यास का काव्य शास्त्र – डॉ बच्चन सिंह, पेज–13
76. हिन्दी के प्रमुख उपन्यास एवं उपन्यासकार – राजेश अनुपम, पेज–4
77. साहित्यिक निबन्ध – डॉ रेणु वर्मा, पेज–276
78. उपन्यास और लोकतन्त्र – मैनेजर पाण्डेय, पेज–11
79. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा – रामदरश मिश्र, पेज–13
80. आत्मकथा और उपन्यास – ज्ञानेन्द्र कुमार सन्तोष, पेज–63
81. हजारी प्रसाद ग्रन्थावली – साहित्य का साथी – मुकुन्द द्विवेदी, पेज–207
82–83. हिन्दी उपन्यास उद्भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–11,12
84. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा – रामदरश मिश्र, पेज–13
85. हिन्दी के प्रमुख उपन्यास एवं उपन्यासकार – राजेश अनुपम, पेज–3
86. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कालचेतना एवं संस्कृति – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज–89
87. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली – साहित्य का साथी सं. – मुकुन्द द्विवेदी, पेज–83
88. उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–36
89. उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–39
90. उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – शशिभूषण सिंहल, पेज–49
91. हिन्दी उपन्यास कला – रामलखन शुक्ल, पेज–13
92. हिन्दी उपन्यास उद्भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–10
93. हिन्दी उपन्यास एवं कहानी–एक विश्लेषण – उर्वशी शर्मा, पेज–3
94. हिन्दी उपन्यास एवं कहानी–एक विश्लेषण – उर्वशी शर्मा, पेज–10

95–96. हिन्दी उपन्यास सृजन एवं सिद्धान्त – नरेन्द्र कोहली, पेज–23, 32

97. हिन्दी उपन्यास एवं कहानी–एक विश्लेषण – उर्वशी शर्मा, पेज–2

98. काव्य शास्त्र – भगीरथ मिश्र, पेज–79

99. साहित्यिक निबन्ध – रेणु वर्मा, पेज–276

100–102. हिन्दी उपन्यास सृजन एवं सिद्धान्त – नरेन्द्र कोहली, पेज–96, 11, 187

103–104. हिन्दी उपन्यास कला – रामलखन शुक्ल, पेज–12, 14

105. उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–24

106. आत्मकथा और उपन्यास – ज्ञानेन्द्र कुमार सन्तोष, पेज–4

107–108. हिन्दी उपन्यास कला – रामलखन शुक्ल, पेज–14

109–112. साहित्यिक निबन्ध – डॉ रेणु वर्मा, पेज–277

113. हिन्दी के उपन्यास एवं उपन्यासकार – राजेश अनुपम, पेज–2

114. हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–1

115. उपन्यासकार रामेश्वर शुक्ल अंचल – वीणा गौतम, पेज–10

116–117. हिन्दी शब्दकोश – हरदेव बाहरी, पेज–99

118. वृहद् हिन्दी कोश – कालिका प्रसाद, पेज–147

119. भारत का इतिहास – हरिश्चन्द्र शर्मा, पेज–4

120–121. उपन्यास और लोकतन्त्र – मैनेजर पाण्डेय, पेज–63,67

122. हिन्दी उपन्यास सृजन एवं सिद्धान्त – डॉ नरेन्द्र कोहली, पेज–23

123–126. साहित्य और सामाजिक परिवर्तन – सं.बद्रीनारायण, पेज–79,65,72,76

127. साहित्यिक निबन्ध – राजनाथ शर्मा, पेज–744

128–130. ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस – गुरदीप सिंह खुल्लर, पेज–21,22,20

131. काव्य शास्त्र – भगीरथ मिश्र, पेज–81,82

132–135. उपन्यास और लोकतन्त्र – मैनेजर पाण्डेय, पेज–63,64,65,66

136. उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा – शशिभूषण सिंहल, पेज–48

137–138. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – शशिभूषण सिंहल, पेज–283,284

139–141. ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस – गुरदीप सिंह खुल्लर, पेज–45, 46, 47, 48, 52, 54, 55

142. उपन्यास और लोकतन्त्र – मैनेजर पाण्डेय, पेज–68

143–144. ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस – गुरदीप सिंह खुल्लर, पेज–148,177

145. ऐतिहासिक उपन्यासों में समाज जागृति – क्रान्ति कनाटे, पेज–142

146. अमृतलाल नागर की कथा दृष्टि के समाज शास्त्रीय आयाम – डॉ सरोज सिंह, पेज–100

147. बाणभट्ट की आत्मकथा : पाठ एवं पुनर्पाठ – मधुरेश, पेज–1

148. ऐतिहासिक उपन्यासों में समाज जागृति– क्रान्ति कनाटे, पेज–179

149. हजारी प्रसाद द्विवेदी – विश्वनाथ तिवारी, पेज–150,151
150. ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस – गुरदीप सिंह खुल्लर, पेज–66
151. हिन्दी उपन्यास कला – रामलखन शुक्ल, पेज–9
152. ऐतिहासिक उपन्यासों में कालचेतना एवं संस्कृति – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज–13
153. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – शशिभूषण सिंहल, पेज–288
154. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पेज–455
155. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ नगेन्द्र, पेज–473,474
156–157. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–79,78
158. हिन्दी उपन्यास एवं कहानी – एक विश्लेषण – उर्वशी शर्मा, पेज–4
159–160. हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास में वस्तु एवं शिल्प – वेदप्रकाश वेदालंकार, पेज–16
161. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ – जयकिशन खण्डेलवाल, पेज–682
162. ऐतिहासिक उपन्यासों में सांस्कृतिक चिन्तन – ज्ञानप्रकाश मिश्र, पेज–29
163. हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास में वस्तु एवं शिल्प – वेदप्रकाश वेदालंकार, पेज–16
164. ऐतिहासिक उपन्यासों में सांस्कृतिक चिन्तन – ज्ञानप्रकाश मिश्र, पेज–29
165. हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास में वस्तु एवं शिल्प – वेदप्रकाश वेदालंकार, पेज–17
166–167. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कालचेतना एवं संस्कृति – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज–41
168. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–100
169. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पेज–296
170. हिन्दी का गद्य–साहित्य – रामचन्द्र तिवारी, पेज–178
171. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–89
172. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कालचेतना एवं संस्कृति – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज–1
173. उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय – विषय वस्तु,विषय क्रम
174–175. हिन्दी उपन्यास एवं कहानी एक विश्लेषण – उर्वशी शर्मा, पेज–5
176. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–16
177. साहित्यिक निबन्ध – राजनाथ शर्मा, पेज–490
178. हिन्दी का गद्य–साहित्य – डॉ रामचन्द्र तिवारी, पेज–173
179. साहित्यिक निबन्ध – डॉ शान्तिस्वरूप गुप्त, पेज–299
180. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–79
181. ऐतिहासिक उपन्यासों में सांस्कृतिक चिन्तन – ज्ञानप्रकाश मिश्र, पेज–29
182–183. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–90
184. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पेज–478
185. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–19

186. हिन्दी उपन्यास सृजन एवं सिद्धान्त – नरेन्द्र कोहली, पेज–8,10

187. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–88

188–191. ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस, गुरदीप सिंह खुल्लर, पेज–3, 230, 125, 94

192. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा – रामदरश मिश्र, पेज–23

193–194. इतिहास दृष्टि और ऐतिहासिक उपन्यास–जार्ज लूकाच – अनु. कर्ण सिंह चौहान, पेज–19

195. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – बच्चन सिंह, पेज–410

196. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–45

197–198. भगवती चरण वर्मा का गद्य–साहित्य – डॉ करूणा उमरे, पेज–33–35

199. वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों का पुनर्मूल्यांकन – डॉ राम प्यारे तिवारी, पेज–18

200. वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों का पुनर्मूल्यांकन – डॉ राम प्यारे तिवारी, पेज–269

201. हिन्दी उपन्यास सृजन एवं सिद्धान्त – नरेन्द्र कोहली, पेज–74

202. दिव्या – यशपाल – प्राक्कथन

203. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–185

204. हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार – डॉ भगवतीशरण मिश्र, पेज–112

205. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – डॉ. शशिभूषण सिंहल, पेज–369,372

206. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना – डॉ शिवशंकर त्रिवेदी, पेज–65,66,69,70,71, 77,78,80,83,84

207. बाणभट्ट की आत्मकथा पाठ एवं पुनर्पाठ – सं. मधुरेश – अनुक्रम

208. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–189

209. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी पात्रों की भूमिका– शिवानी विद्यालंकार, पेज–19,20,23,25,29

210. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज– 186

211. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – डॉ शशिभूषण सिंहल, पेज–348,351

212. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–212,213

213. रांगेय राघव एक अन्तर्यात्रा – सं. कल्याणप्रसाद शर्मा, आलेख–मधुरेश, पेज–100–104

214. रांगेय राघव एक अन्तर्यात्रा – सं. कल्याणप्रसाद शर्मा, आलेख–शत्रुघ्न प्रसाद, पेज–128,129,131

215. हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यास एंव उपन्याकार – डॉ द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, पेज–159, 160

216. वैशाली की नगर वधू – चतुरसेन शास्त्री – भूमिका

217. हिन्दी उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ – डॉ शशिभूषण सिंहल, पेज– 301, 318, 320, 321, 324
218. आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ पद्मजा शर्मा, पेज–33
219. हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–53
220. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–224
221. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – डॉ शशिभूषण सिंहल, पेज–417
222. हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, पेज–135
223. अमृतलाल नागर की कथा दृष्टि के समाज शास्त्रीय आयाम – डॉ सरोज सिंह, पेज–40,60
224. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कालचेतना एवं संस्कृति – डॉ शत्रुघ्न प्रसाद, पेज–88
225. हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार – भगवतीशरण मिश्र, पेज–404, 406
226. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कालचेतना एवं संस्कृति – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज–78
227. आधुनिक हिन्दी उपन्यास – 1 सं. भीष्म साहनी, लेख – पणिपुत्री सोमा का सन्दर्भ – डॉ भगवतशरण उपाध्याय, पेज–351
228. हिन्दी का गद्य–साहित्य – डॉ रामचन्द्र तिवारी, पेज–247
229. यादवेन्द्र शर्माचन्द्र : व्यक्तित्व और कृतित्व – गीता मा. बेणचेकर, पेज–24,26,35
230. हिन्दी का गद्य साहित्य – डॉ रामचन्द्र तिवारी, पेज–248
231. आधुनिक हिन्दी उपन्यास –1 डॉ भीष्म साहनी (विजयेन्द्र स्नातक – लेख – दीक्षा जनवादी राम एवं रामकथा के नये आयाम), पेज–484

232. सरस्वती–सदानीरा, फरवरी अप्रैल–2016 – शत्रुघ्न प्रसाद – प्रथम निवेदन, पेज–4
233. आधुनिक उपन्यास : विविध आयाम – डॉ विवेकी राय, पेज–28,29
234. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पेज–347,48
235. हिन्दी का गद्य साहित्य – डॉ रामचन्द्र तिवारी, पेज–250
236. हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार – डॉ भगवतीशरण मिश्र, पेज–237
237. आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2 नामवर सिंह, पेज–100–106
238. आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2 नामवर सिंह, पेज–111
239. आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2 नामवर सिंह, पेज–262
240. आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2 नामवर सिंह, पेज–28,29,30,31
241. आधुनिक उपन्यास विविध आयाम – विवेकी राय, पेज–31
242. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में काल चेतना एवं संस्कृति – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज–78, 81

243. गोमटेश गाथा – नीरज जैन, पेज–3

244. उपन्यास और लोकतन्त्र – मैनेजर पाण्डेय, पेज–76

द्वितीय अध्याय

शत्रुघ्न प्रसाद का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

द्वितीय अध्याय

शत्रुघ्न प्रसाद का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रत्येक रचनाकार का व्यक्तित्व एवं कृतित्व एक–दूसरे का पूरक होता है एवं एक–दूसरे की निर्मिति का कारक होता है। रचना–कर्म में रचनाकार की प्रवृत्तियों की पहचान स्पष्ट परिलक्षित होती है। सच यह है कि रचना कर्म के साथ–साथ व्यक्तियों का परिष्कार एवं निर्माण भी होता है। राजेन्द्र यादव का कहना है कि– ''सारा ईमानदार कथा लेखन औरों के यानी पात्रों के बहाने अपनी ही बात कहता है। कहीं बात घटनाओं, वार्तालापों और चरित्रों के स्तर पर होती है तो कभी अनुभवों, स्थितियों और उनकी प्रतिक्रियाओं के रूप में.........होता है सब अपना या आत्मकथ्य ही है .... कलाकार का व्यक्तित्व, उसका परिचय, उसका विश्वास और उसकी प्रतिबद्धता सभी कुछ उसकी कला होती है।''[1] जैनेन्द्र का भी मानना है कि – ''साहित्य कृतिकार के मन का प्रतिबिम्ब होता है।''[2] अर्थात् रचनाकार के व्यक्तित्व का आकलन उसके जीवन निर्माण की पृष्ठभूमि और कृतित्व के आधार पर किया जाना समुचित होता है। व्यक्तित्व की छाप रचना–कर्म में दिखाई तो पड़ती है पर इस व्यक्तित्व की निर्मिति में जन्मजात प्रतिभा, परिवेशगत प्रभाव, वंश परम्परा से प्रदत्त संस्कार एवं अनुभवजन्य संवेदना का योग होता है। साथ–ही–साथ रचनाकार अपनी अध्ययनशीलता, संवेदना एवं दर्शन सम्बन्धी संकल्पना से अपने व्यक्तित्व को वैशिष्ट्य प्रदान कराता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कृतित्व व्यक्तित्व से तथा व्यक्तित्व जीवनानुभवों से प्रभावित एवं निर्मित होता है। अतः किसी भी रचनाकार का मूल्यांकन जीवन–क्रम,व्यक्तित्व और कृतित्व के स्तर पर किया जाना समुचित है। आलोच्य अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद का मूल्यांकन क्रमशः जीवन–क्रम, व्यक्तित्व एवं कृतित्व के स्तर पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

2.1 जीवन–क्रम :–

2.1.1 जन्म–स्थान – ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में ख्याति प्राप्त एवं सारस्वत साधना के धनी शत्रुघ्न प्रसाद का जन्म बिहार राज्य में पावन सरयू नदी के तट पर स्थित छपरा नगर के साहेबगंज मुहल्ले के निवासी कश्यपगोत्रीय कमलापुरी वैश्य श्री जगन्नाथ प्रसाद एवं श्रीमती मानकी देवी के घर में 12 फरवरी 1932 ई. में हुआ।''[3] यह छपरा नगर पुरातात्विक–सांस्कृतिक महत्व रखता है। इस नगर के पूर्व में चिरांद नामक पुरातात्विक स्थल के पास ही गंगा–सरयू का संगम होता है। व्यवसाय प्रधान यह नगर राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है। साहेबगंज मुहल्ला भी सोनार पट्टी होने के बावजूद उक्त वातावरण से ओत–प्रोत है। मुहल्ले में पाँच ठाकुर बाड़ी वैष्णव मन्दिर स्थित हैं, जिनकी भव्यता अत्यन्त दर्शनीय है। विजयादशमी पर दुर्गा की प्रतिमा का भव्य जुलूस निकाला जाता था एवं पूजन–आयोजन होता था। रामलीला मण्डली द्वारा रामलीला का आयोजन व रामकथा का प्रवचन होता ही रहता था। मुहल्ले के पास ही 'आर्य–समाज' संस्थान

स्थित था, जिसके वार्षिकोत्सव में शत्रुघ्न प्रसाद भी शामिल हुआ करते थे।"[4] नगर एवं मुहल्ले के धार्मिक–सांस्कृतिक वातावरण से शत्रुघ्न प्रसाद का हृदयअनुप्राणित होता रहा है।

2.1.2 परिवार एवं पारिवारिक स्थिति :–

(1) संयुक्त परिवार– शत्रुघ्न प्रसाद का जन्म संयुक्त परिवार में हुआ। बचपन एवं किशोरावस्था का जीवन संयुक्त परिवार में व्यतीत हुआ। यह कृषक–व्यवसायी परिवार सनातनधर्म में आस्था रखने वाला परम्परागत भारतीय संस्कारों से परिपूर्ण रहा है। शत्रुघ्न प्रसाद के पितामह श्री नन्दलाल साह व्यवसाय एवं खेती बाड़ी की जिम्मेदारी संभालने के साथ – 2 धार्मिक एवं सामाजिक हित के कार्यों में भी अग्रसर रहते थे। समाज हित में अग्रसर रहने के कारण इस परिवार को नगर में विशिष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त थी। श्री नन्दलाल साह के तीन पुत्र थे–श्री रामचन्द्र प्रसाद, श्री लक्ष्मण प्रसाद एवं श्री जगन्नाथ प्रसाद। नामकरण से ही सिद्ध होता है कि यह परिवार सनातन धर्म में अटूट आस्था रखने वाला रहा है। यह परम्परा आगे भी विकसित रही। तीनों भाई श्रीराम, श्री हनुमान एवं श्रीकृष्ण के उपासक थे। श्रीरामचन्द्र प्रसाद रामायण का तथा श्री जगन्नाथ प्रसाद श्रीमद्भागवत का सरस–सुमधुर प्रवचन किया करते थे। परिवार रामायण मण्डली से जुड़ा हुआ था।[5] श्री नन्दलाल साह के तृतीय पुत्र श्री जगन्नाथ प्रसाद के पुत्र हैं – शत्रुघ्न प्रसाद। शत्रुघ्न प्रसाद के कोई भाई नहीं था। कुसुम देवी नाम की एक बहिन थी जिसका विवाह के कुछ वर्षों बाद ही निधन हो गया था। दैवयोग से शत्रुघ्न प्रसाद को अल्पायु में ही माता–पिता के स्नेह से वंचित होना पड़ा। 7–8 वर्ष की उम्र में ही इनके पिता और फिर माता का निधन हो गया। युवा पुत्र एवं पुत्रवधु के असामयिक निधन से आहत पितामह का भी थोड़े दिन बाद निधन हो गया।[6] पितामह माता–पिता, एवं बहन के विछोह का विषाद शत्रुघ्न प्रसाद के हृदय पर आज भी अंकित है। संवेदना के स्तर पर इन घटनाओं का प्रभाव शत्रुघ्न प्रसाद के हृदय पर देखा जा सकता है। यद्धपि संयुक्त परिवार में इन्हें कष्ट नहीं हुआ।[7] यही कारण हो सकता है कि इनके उपन्यासों में परिवार के प्रति विशेष आग्रह दिखाई पड़ता है। 1950 में लम्बी बीमारी के बाद इनके बड़े चाचाजी का भी निधन हो गया। इसके बाद संयुक्त परिवार का विघटन हो गया। परिवार संकट की स्थिति में आ गया। शत्रुघ्न प्रसाद को स्नात्तकोत्तर (एम.ए.) की पढ़ाई अपने बल पर करनी पड़ी।

(2) विवाह एव दाम्पत्य जीवन– शत्रुघ्न प्रसाद का विवाह 20 जून 1957 ई. को उर्मिला देवी के साथ हुआ। श्रीमती उर्मिला देवी साधारण शिक्षित थी। विवाह के बाद स्नातक शिक्षा सम्पन की। श्रीमती उर्मिला देवी धार्मिक आस्था रखने वाली आदर्श भारतीय नारी का प्रतिरूप है। विवाह के कुछ वर्षों बाद ही शत्रुघ्न प्रसाद उदर रोग से पीड़ित हुए। श्रीमती उर्मिला देवी की सेवा और सहयोग का उनके रोग निवारण में महत्वपूर्ण योग रहा। आपातकाल के दौरान मीसाबन्दी के तहत जब शत्रुघ्न प्रसाद जेल में रहे तो बड़े साहस और धैर्य के साथ निराधार परिवार को संभाला। शत्रुघ्न प्रसाद कहते हैं कि –"जेलबन्दी के दौरान इन्होंने जिस साहस

के साथ निराधार परिवार को संभाला, उसे देखकर अद्‌भुत लगता है।"[8] तुलसीदास जी की चौपाई बरबस याद आ जाती है– "धीरज, धरम मित्र अरू नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी।''[9] इसके अलावा शत्रुघ्नप्रसाद की राष्ट्रीय–साहित्यिक विचारधारा में सहयोग देना परिवार में अनुशासन एवं संस्कार बनाए रखना, और संतान को उच्च संस्कार देना आदि में उर्मिला देवी की महती भूमिका रही है। शत्रुघ्न प्रसाद का दाम्पत्य जीवन सुखद एवं सफल रहा है। 'शिप्रा साक्षी है' में 'मातृत्व महोत्सव' संभवत इन्हीं की प्रेरणा की उपज है।[10]

(3) संतान– शत्रुघ्न प्रसाद और उर्मिला देवी को तीन पुत्र एवं तीन पुत्रियों की प्राप्ति हुई। जिनका विवरण निम्न प्रकार है :–

रणेन्द्र कुमार – शत्रुघ्न प्रसाद की प्रथम संतान रणेन्द्र कुमार प्रशासनिक सेवा में उच्च पदाधिकारी हैं। ये प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थान–राँची में संयुक्त निदेशक के पद पर कार्यरत हैं। इनकी धर्मपत्नी श्रीमती भारती कुमारी शिक्षित महिला है। रणेन्द्र कुमार कवि, कहानीकार एवं उपन्यासकार के रूप में विख्यात हैं एवं अब भी सृजनरत हैं। इन्होंने 'काँची' नामक पत्रिका का 1999 से 2005 तक सम्पादन भी किया है। ''रात बाकी एवं अन्य कहानियाँ'' नामक कहानी संग्रह तथा 'थोड़ा–सा स्त्री होना चाहता हूँ'' कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'रात बाकी' कहानी 'कथादेश' पत्रिका की 'अखिल भारतीय प्रतियोगिता – 2005' में प्रथम स्थान पर पुरष्कृत है। इनका चर्चित उपन्यास 'ग्लोबल गाँव का देवता' आदिवासी (मुण्डा) जनजीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है।"[11] उपन्यास के प्राक्कथन में संजीव ने लिखा है कि "उपन्यास समाज के संकट, शोषण, लूट, पीड़ा और प्रवंचना का इतिवृत्त है।''[12] प्रसिद्ध स्त्री विमर्शकार मैत्रेयी पुष्पा ने कहा है कि –'' आधुनिक विकास की तमीज के हिसाब से रातों–रात गुम हो जाती बस्तियों के बाशिन्दों की दर्दनाक दास्तान.....जिन पर कागजी खजाना तो बरसाया गया लेकिन पाँव तले की जमीन छीन ली..........उपन्यास साहित्य में मुकम्मल जगह बनाएगा।"[13] समालोचक युगलकिशोर प्रसाद[14] शीर्षक का औचित्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि – यह ग्लोबल गाँव है........यह भूमंडलीकरण–वैश्वीकरण का विश्व–ग्राम नहीं है। यह उससे भिन्न उपेक्षित, अविकसित, ज्ञान और विकास की रोशनी से दूर कष्ट भोगते असुर समुदाय का गाँव है।''[14] उपन्यासकार ने उपन्यास में आदिवासी समाज की पीड़ा दर्शाते हुए कहा है कि '' आग और धातु की खोज करने धातु पिघलाकर उसे आकार देने वाले कारीगर, असुर जाति को सभ्यता संस्कृति, मिथक और मनुष्यता सबने मारा है।" निष्कर्षतः उपन्यासकार ने 'ग्लोबल गाँव का देवता' उपन्यास में ब्राह्मणवाद द्वारा सतत अपमानित असुर जनजाति को प्रतिष्ठा दिलाने का रचना–धर्म निभाया है। मैनेजर पाण्डेय ने इस उपन्यास को यथार्थ से मिथक बनते समुदाय की व्यथा–कथा कहा है।[15] तथा टॉनी मारीसन की परम्परा का उपन्यास बताया है।[16]

डॉ. विजेन्द्र कुमार –शत्रुघ्न प्रसाद की द्वितीय संतान विजयेन्द्र कुमार एम.बी.बी.एस एवं एम. एस की उपाधि प्राप्त 'बाल शल्य चिकित्सक है। 'इंस्टिट्यूट ऑफ मेडिकल साइंस–बाराणसी' में चिकित्सक के पद पर कार्यरत रहे हैं। सम्प्रति स्थानान्तरित होकर पटना आ गए है। इनकी पत्नी डॉ गीतारंजन भी एम.बी.एस डॉक्टर हैं, जो निजी क्लिनिक चलाती है।–[17]

ज्ञानेन्द्र कुमार–शत्रुघ्न प्रसाद की तृतीय संतान ज्ञानेन्द्र कुमार जिला कोर्ट कटिहार में सहायक अभियोजक' (ए.पी.ओ) पद पर कार्यरत हैं। इनकी पत्नी डॉ संगीता गुप्ता होमियो पैथी चिकित्सक हैं।[18]

श्रीमती उपमा –शत्रुघ्न प्रसाद की चतुर्थ संतान श्रीमती उपमा स्नातक शिक्षा प्राप्त कुशल एवं सफल गृहिणी हैं। इनके पति श्री विजय कुमार सिविल इंजीनियर हैं। फतुहा (पटना) में सीमेंट फैक्ट्री के संचालक हैं।[19]

श्रीमती अणिमा –शत्रुघ्न प्रसाद की पंचम संतान श्रीमती अणिमा भी स्नातक शिक्षा प्राप्त सफल गृहिणी है। इनके पति श्री राजेन्द्र गुप्ता कॉलेज ऑफ कॉमर्स–पटना के वाणिज्य विभाग में प्रोफेसर हैं। ये विधान परिषद के सदस्य भी रह चुके हैं।[20]

सुश्री महिमा श्री –शत्रुघ्न प्रसाद की षष्टम संतान महिमाश्री स्नातक एवं एम.सी.ए . की उपाधि प्राप्त हैं। अब पत्रकारिता का अध्ययन कर रही है। दिल्ली में एक निजी कम्पनी में कार्य करने का अनुभव भी प्राप्त कर चुकी है।[21] इनका एक कविता संग्रह 'अकुलाहटें मेरे मन की' प्रकाशित हो चुका है। इस काव्य संकलन को समीक्षक युगलकिशोर प्रसाद ने 'नई संवेदना की दस्तक' कहा है। उन्होंने लिखा है कि "व्यष्टि चेतना में अनुभूत उनकी अकुलाहटें समष्टि मन की अकुलाहटें बनकर व्यक्त हुई है ' ....अनुभूति के दर्पण में प्रेम, समाज, नैतिकता, जीवनादर्श, राष्ट्रीय चेतना और मानवता को स्थापित करने की उनकी उदात्त भावना के प्रतिबिम्बन से अभिव्यक्ति महार्थ हो गई है।[22] समीक्षक शत्रुघ्न प्रसाद ने इसे ''नई पीढ़ी की काव्य संवेदना'' कहा है। प्राक्कथन में लिखा है कि ''यह निजत्व से अनुप्राणित समष्टि चेतना के स्फुरण की बेचैनी है। इस संकलन की 79 कविताओं में निजत्व की खातिर, त्रासदी, चेतावनी, नदी–सी मैं, स्मृतियाँ, कैसे करूं मैं प्रेम, मैं सफर में हूँ, ठगा–सा मैं, मैं जीना चाहती हूँ, आदि मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने वाली श्रेष्ठ कविताएं हैं।[23] संतान की ओर से शत्रुघ्न प्रसाद संतुष्ट एवं सुखी हैं। इनका परिवार सुखी, संस्कारी, योग्य एवं सफल है। जीवन की सार्थकता इसी को कहते हैं।

2.1.3 शिक्षा, शिक्षण, संस्कार एवं प्रेरणाएँ :–

(1) शिक्षा :– शत्रुघ्न प्रसाद की प्राथमिक शिक्षा साहेबगंज मुहल्ले के प्राथमिक विद्यालय, उच्च प्राथमिक शिक्षा 'लोकमान्य मिडिल स्कूल, माध्यमिक शिक्षा (1994)' 'राजपूत हाई स्कूल–छपरा' तथा इन्टरमिडियट (1951) एवं स्नातक शिक्षा (1954) राजेन्द्र कॉलेज–छपरा से

सम्पन्न हुई। हिन्दी विषय में स्नातकोत्तर उपाधि पटना विश्वविद्यालय से 1956 में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। इस परीक्षा में चित्रगुप्त मंगल प्रथम स्थान, प्रसिद्ध समालोचक गोपाल राय द्वितीय स्थान तथा शत्रुघ्न प्रसाद तृतीय स्थान पर रहे थे। पटना विश्वविद्यालय से ही 1967 ई. में ''द्विवेदी युगीन हिन्दी नाटक'' विषय पर पीएच.डी उपाधि प्राप्त हुई। भारत सरकार संस्कृति विभाग के वरिष्ठ फेलोशिप के अन्तर्गत सन् 2000–2002 में 'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में हिन्दू संस्कृति' विषय पर विशेष शोध किया। महाविद्यालयी जीवन में राजेन्द्र कॉलेज के प्राचार्य कवि एवं विद्वान डॉ. मनोरंजन प्रसाद सिंह तथा आचार्य शिवपूजन सहाय व प्रो. मुरलीधर श्रीवास्तव जैसे राष्ट्रवादी एवं निर्भीक शिक्षकों से अध्यापन का लाभ मिला। इन्हीं से प्रभावित–प्रेरित होकर शत्रुघ्न प्रसाद ने हिन्दी विषय में ही उच्च शिक्षा (एम.ए.) प्राप्त करने का संकल्प किया था।[24] विश्व विद्यालयी जीवन में 'कामायनी ' के विद्वान प्रो. विश्वनाथ प्रसाद एवं आचार्य नलिन विलोचन शर्मा जैसे विद्वान आचार्यों द्वारा अध्ययन का सौभाग्य व सुअवसर मिला। शत्रुघ्न प्रसाद ने अपनी शोध–उपाधि (पी.एच.डी.) आचार्य नलिन विलोचन शर्मा एवं प्रो. केशरी कुमार के निर्देशन में पूर्ण की। आचार्य नलिनविलोचन शर्मा के देहावसान के कारण प्रो. केशरी कुमार के निर्देशन में शोध–ग्रन्थ पूर्ण करना पड़ा।[25]

(2) शिक्षण– शत्रुघ्न प्रसाद ने महाविद्यालयी शिक्षा के समय से ही मन में कहीं संकल्प कर रखा था कि अध्यापक बनकर हिन्दी की सेवा कर सकूँ। स्नात्तकोत्तर करने के उपरान्त शीघ्र ही उनके मन की साध पूर्ण हुई। वे 1957 ई. में हिन्दी प्राध्यापक पद पर नियुक्त हो गए। मगध विश्वविद्यालय की अंगीभूत इकाई किसान कॉलेज–सोहसराय में 1957 से 1992 ई. तक प्राघ्यापक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष पद पर आसीन रहे और हिन्दी भाषा की समृद्धि में योगदान दिया। 1992 ई. में सेवानिवृत्त होकर सम्प्रति पटना में पेंशनवृत्ति से आनन्दपूर्वक जीवन–यापन कर रहे हैं।[26]

(3) संस्कार एवं प्रेरणाएँ– हवा, पानी, खाद एवं प्रकाश पाकर जिस प्रकार पौधे प्रफुल्लित–पल्लवित होते हैं वैसे ही मानव हृदय के जन्मजात भाव भी अनुकूल संस्कार एवं परिवेश पाकर उच्च आदर्श के रूप में प्रकाशित होते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद की जन्मजात प्रवृत्ति, परिवेशगत अनेक प्रेरणाओं से बोध प्राप्त करती हुई राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना के उपन्यासों के रूप में उद्घाटित हुई है। सनातन धर्मी परिवार, धार्मिक वातावरण से युक्त छपरा शहर, सरयू तट पर त्रिदण्डी जी महाराज के प्रवचन, आर्यसमाज, कबीरमठ, विवेकानन्द के व्याख्यानों का अध्ययन, डॉ मनोरंजनप्रसाद, आचार्य शिवपूजन सहाय, आचार्य नलिन विलोचन शर्मा, प्रो. केशरी कुमार, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद एवं गोपाल जी स्वर्णकिरण प्रभृति विद्वानों का सान्निध्य, पराधीनता की पीड़ा, 1942 की अगस्त क्रान्ति, 1945 के आजाद हिन्द फौज का आन्दोलन, मुस्लिम लीग की तुष्टीकरण नीति, नोआखाली के दंगे, भारत–विभाजन, कश्मीर में अलगाववादियों का आन्दोलन आदि ऐसी प्रेरणाएँ थी, जिन्होंने शत्रुघ्न प्रसाद के संवेदनशील

हृदय में उथल–पुथल मचायी। सनातनी आर्यसमाजी विवेकानन्द के विचारों को बल मिला और राष्ट्रीय भावों का जागरण–प्रस्फुटन होने लगा। राष्ट्रीय चेतना का साहित्य पढ़ने के लिए मन लालायित होने लगा। परिणामस्वरूप ऐतिहासिक उपन्यासों का पठन–मनन होने लगा। वृन्दावनलाल वर्मा, हरिनारायण आप्टे, क.मा. मुंशी, चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर प्रसाद आदि के ऐतिहासिक साहित्य ने प्रभावित किया और राष्ट्रीय विचारों में मजबूती आती गई। राजेन्द्र कॉलेज के समय से ही छपरा शहर के साहित्यिक–काव्यमयी वातावरण ने भी शत्रुघ्न प्रसाद के हृदय को प्रेरित किया।[27] किसान कॉलेज–सोहसराय में प्राध्यापक बनने पर नालन्दा–उदन्तपुरी के खण्डहरों को निकट से देखने का अवसर मिला। हृदय उद्वेलित हुआ, द्रवित हुआ, प्रेरित हुआ। गोपालसिंह नेपाली एवं दिनकर जी की राष्ट्रीय कविताओं ने भी प्रेरित किया। 1962 के चीनी आक्रमण, पाकिस्तान से संघर्ष, 1975 के आपातकाल ने भी संवेदना को और ज्यादा झकझोरा। 1975 में आपातकाल के दौरान 'मीसाबन्दी' के तहत फुलवारी शरीफ जेल में 14 माह कारावास भोगना भी पीड़ा से उपजी चेतना का माध्यम बना। जेल में नालन्दा कॉलेज के प्रो. शंभु प्रसाद एवं प्रो. ललितकुमार सिंह भी साथ रहे। अध्ययन–मनन–लेखन हुआ। नालन्दा एवं उदन्तपुरी के खण्डहरों, 1962 के चीनी आक्रमण, 1975 के आपातकाल एवं जेल–यात्रा की पीड़ा ने 'आह से उपजा होगा गान' की काव्य–पंक्ति को चरितार्थ किया। शत्रुघ्न प्रसाद के राष्ट्रीय विचारों को प्रबल प्रेरणा प्राप्त हुई–इन पीड़ादायी क्षणों से। भारतीयतावादी विचारधारा का प्रस्फुटन इन्हीं अनुभवजन्य प्रेरणाओं की देन है, जिस की अभिव्यक्ति कविता, कहानी, ऐतिहासिक उपन्यास, पिनाक व सदानीरा पत्रिकाओं में देखने को मिल रही है। राजेन्द्र परदेसी के द्वारा लिए साक्षत्कार में वे स्वीकार करते हुए कहते हैं –'' सन् 1946 में मुस्लिम लीग द्वारा अभिप्रेरित कलकत्ते एवं नोआखाली के दंगो ने मुझे सोचने पर विवश किया। विभाजन ने विचार को पूरी तरह बदल दिया। सन 1947 ई. में ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखा में पहुँच गया। प्रखर राष्ट्रीय चेतना की प्रेरणा से प्रेरित ऐतिहासिक उपन्यासों का अनुशीलन करने लगा। जिसके कारण राष्ट्रीय चेतना और प्रगाढ़ होती रही।"[28] चीनी आक्रमण व नालन्दा के खण्डहरों ने उन्हें अनुप्रेरित किया है। इस तथ्य को स्वीकारते हुए वे कहते हैं–चीनी आक्रमण के बाद दिनकर और नेपाली की कविताओं को सुनकर–पढ़कर, कॉलेज में अपने पास कवियों को पाकर, उदन्तपुरी की काव्य गोष्ठियों में बैठकर कविता लिखने लगा। ....आपातकाल में बन्दी बनने के बाद फुलवारीशरीफ कारागार के एकान्त कक्ष में उपन्यास पढ़ते–पढ़ते लेखन के लिए सोचने लगा। .... कारागार से मुक्ति के बाद 1980 ई. से संकल्पित होकर मैंने उपन्यास लेखन प्रारम्भ किया। कारण था कि नालन्दा के खण्डहर भारत के इतिहास को समझने के लिए प्रेरित कर रहे थे।"[29]

2.1.4 जीवन संघर्ष– शत्रुघ्न प्रसाद के जन्म के समय ही एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी करते हुए कहा था कि ''यह बालक संघर्षशील, पर यशस्वी होगा।'' यह भविष्यवाणी अक्षरशः

चरितार्थ हुई है। शत्रुघ्न प्रसाद स्वभावतः संघर्षशील हैं। संघर्ष का मार्ग चुनते हैं। बचपन में ही इनको अपने पितामह, माता पिता एवं बड़ी बहिन कुसुम देवी के स्नेह से वंचित होना पड़ा। इस विछोह के विषाद की रेखा उनके हृदय पर आज भी अंकित है। इस विछोह की वेदना उनके साहित्य में हर कहीं दिखाई पड़ जाती हैं। 'कश्मीर की बेटी' में कोटा देवी व शर्वरीश तथा 'दाराशिकोह' में पं. जगन्नाथ के पुत्र भवनाथ व दाराशिकोह की पुत्री आलमआरा की पीड़ा लेखक के जीवन की पीड़ा से मेल खाती है। संयुक्त परिवार की टूटन ने इनके संघर्ष को नया आयाम दिया। कुछ दिन 'कबीर मठ' में रहकर ट्यूशन पढ़ाकर अपने बल पर संघर्ष करते हुए स्नातकोत्तर की पढ़ाई करनी पड़ी। 1942 ई. से 1945 ई. तक के स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी निभाकर संघर्ष का मार्ग ही अपनाया। 1953 में शेखअब्दुल्ला की मनमानी के विरोध में हुए आन्दोलन में भाग लेने के कारण दिल्ली की जेल में रहना पड़ा। ये कष्ट, साहस एवं संघर्ष का कर्म था पर राष्ट्रीयता से अनुप्राणित था। 1957 ई. में प्राध्यापक पद पर नियुक्ति जीवन का सुखद पहलू था, परन्तु 1958 ई. में ही भयंकर उदर–रोग ने संघर्ष बढ़ा दिया। गोरखपुर में प्राकृतिक चिकित्सा व पत्नी के स्नेहमयी सहयोग से स्वास्थ्य लाभ मिला।[30] 1975–76 में आपातकाल के विरोध के कारण 'मीसाबन्दी' के तहत चौदह माह तक फुलवारीशरीफ जेल में कैदी के रूप में रहना पड़ा। राष्ट्रीय संघर्ष जीवन का प्रमुख विचार रहा।[31] मित्रों के अनुरोध–परामर्श से भारतीयतावादी पत्रिका 'पिनाक' का प्रारम्भ किया। सहयोगी मित्रों ने भिन्न–2 कारणों से साथ छोड़ दिया अब अकेले ही इस दायित्व को निभा रहे हैं। राष्ट्रीयता के प्रसार का काम बन्द क्यों कर दिया जाए ? इसी प्रेरणा के वशीभूत अब तक प्रकाशन किए जा रहे हैं। अब यह पत्रिका 'सदानीरा' के नाम से निकल रही है। आर्थिक संघर्ष भी सहन करना पड़ा है। 'द्विवेदी युगीन नाटक' विषय पर शोध करना भी संधर्ष अपनाने के समान रहा। इस युग में नाटक कम लिखे गए और प्रसिद्ध कम हुए। अतः इस काल के नाटकों की खोज एवं अध्ययन में अधिक संघर्ष होना स्वाभाविक ही था। ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ प्राध्यापक बने रहना भी अपने आप में संघर्ष का हेतु है। इस युग में कर्तव्यनिष्ठ बने रहना कठिन काम है। सम्पूर्ण प्राध्यापकीय जीवन में कमजोर वर्ग की बस्ती में खपरैल के मकान में रहना कर्तव्यनिष्ठता एवं ईमानदारी से उपजे संघर्ष का ही परिचायक है।[32] मुख्य धारा में डुबकी लगाने का मोह त्याग कर आलोचकों की दृष्टि में उपेक्षित ऐतिहासिक लेखन करना धारा के विपरीत तैरने के समान है। इन सब कारणों की परवाह किए बिना दृढ़ संकल्प के साथ निरन्तर ऐतिहासिक लेखक किए जा रहे हैं। सम्भवतः शत्रुघ्न प्रसाद एकमात्र लेखक हैं जो केवल ऐतिहासिक विषयों पर लेखन कर रहे हैं। शत्रुघ्नप्रसाद को प्रकाशकों के व्यवहार ने कठिनाइयाँ प्रदान की है। विनयशील स्वभाव भी इसका कारण हो सकता है। शत्रुघ्नप्रसाद अपने प्रति उत्तरात्मक पत्र में लिखते हैं कि प्रत्येक लेखक प्रकाशकों के व्यवहार से दुखी है। मैं कुछ ज्यादा ही इस संकट से ग्रस्त रहा हूँ। 'सरस्वती–सदानीर' लगभग दस वर्ष पड़े रहने पर प्रकाशित हो पाया। स्वीकृत रचना को भी कई वर्ष प्रकाशित न करना व रायल्टी की राशि

का भुगतान आदि के लिए संघर्ष करना ही पड़ता है, पर रचना का आनन्द ही मुझे सर्वोपरि है।[33] अतः ऐसे संघर्ष वे आसानी से सहन कर लेते हैं। वामपंथी प्रभाव की आलोचना के कारण भी इन्हें कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी है। वामपंथी प्रभाव के कारण इनके ऐतिहासिक उपन्यासों का समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया। पर उनका सहनशील स्वभाव अधिक परेशानी नहीं देता। आलोचकों की परवाह किए बिना वे निरन्तर प्रगतिशील–राष्ट्रीय चेतना के उपन्यासों के लिए सृजनरत हैं। प्रख्यात पत्रकार अरूण भगत भी इस सत्य को स्वीकार करते हैं कि "हिन्दी के आलोचकों ने ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य की उपेक्षा की है। इसलिए ये (शत्रुघ्नप्रसाद) भी उपेक्षित हुए हैं। पर इनकी साधना अनवरत चल रही है।"[34] राजेन्द्र परदेशी के साथ बातचीत में शत्रुघ्न प्रसाद स्वीकार करते हैं कि – ''भारतीयता से असहमत तथा विखण्डनवादी प्रगतिवादी–जनवादी अपनी रचनाओं के कौशल तथा कटु आलोचनाओं से सांस्कृतिक धारा की रचनाओं के दमन का प्रयत्न करते रहे हैं। वाम के लिए सांस्कृतिक राष्ट्रीय चेतना फासीवादी चेतना है। यह द्वन्द्व चल रहा है।[35] राष्ट्रीय विचार हमेशा संघर्ष झेलता है। छद्म धर्मनिरपेक्षतावादी एवं वामपंथी विचार से प्रभावित इस देश में राष्ट्रीय चेतना के संकल्प को दमन एवं संघर्ष झेलना ही पड़ता है। इस सत्य को आत्मसात कर धैर्य, साहस एवं संकल्प के साथ इस दुष्कर मार्ग पर अग्रसर हैं – शत्रुघ्न प्रसाद।

2.1.5 रूचि–अभिरूचि – सादा जीवन ही शत्रुघ्न प्रसाद की रूचि रही है। भारतीय संस्कारों में आस्था, साधारण वेशभूषा एवं सामान्य भोजन तथा अनुशासित जीवन में ही उन्हें विशेष आनन्द की अनुभूति होती है। छाया–चित्र भेजने के प्रतिउत्तर में उनका यह लिखना कि –"छायाचित्र बनवाने में कभी रूचि ही नहीं रही"[36] उनकी साधारण रूचिधर्मिता को दर्शाता है। अध्ययनशीलता, भ्रमण एवं भारतीय राष्ट्रीय अदर्शों का प्रचार–प्रसार ही उनकी विशिष्ट अभिरूचि मानी जा सकती है। नियमितअध्ययन उनकी दिनचर्या का हिस्सा है। आज भी वे नियमित अध्ययन के अभ्यस्त हैं। साहित्य, इतिहास एवं सम–सामयिक पत्र–पत्रिकाओं के अध्ययन में उनका मन रमता है। 'काठमांडो की यात्रा' निबन्ध उनकी यात्रा रूचि को प्रमाणित करता है[37]। ऐतिहासिक स्थलों की यात्रा का मोह भी वे त्याग नहीं पाते। संघ के कार्यक्रमों में यात्रा करते रहे हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों के केन्द्रीय स्थलों का खोजपूर्ण अध्ययन करने के निमित्त भी यात्रा करते रहे हैं। जब उन्होंने बातचीत में नालन्दा एवं उदन्तपुरी के खण्डहरों को देखने, हम्पी (विजयनगर के ध्वंशावशेष), चित्तौड़, उदयपुर (हल्दीघाटी) एवं कश्मीर आदि की यात्रा के रोचक संस्मरण सुनाए तो उनकी यात्रा रूचि का गहरा परिचय प्राप्त हुआ। भारतीय पर्वों को उल्लास के साथ मनाना, प्रसाद तैयार कर मुहल्लेवासियों, मित्रों, परिचितों आदि में वितरित करना भी उनकी स्वभावगत स्वाभाविक अभिरूचि है। साहित्यिक गोष्ठियों में भाग लेना भी उनका स्वभाव रहा है। महाविद्यालयी एवं विश्वविद्यालयी जीवन में भी साहित्यिक वातावरण से प्रभावित रहे । प्राध्यापकीय जीवन में श्री 'गोपालजी स्वर्ण किरण ' के कवित्व

से प्रभावित हुए और काव्य–गोष्ठियों के प्रभावस्वरूप कविता लेखन में रूचि हुई। काव्य–रूचि उनका संस्कार बन गई। अपने घर पर भी वे महीने–दो–महीने में काव्य गोष्ठी का आयोजन कर लिया करते हैं। अर्थात साहित्य रूचि ही उनकी प्रमुख रूचि है। निष्कर्षतः भारतीय राष्ट्रीय मूल्यों का प्रचार–प्रसार, ऐतिहासिक स्थलों पर भ्रमण, भारतीय पर्वों में आस्था, साहित्य का अध्ययन –मनन–लेखन ही उनकी रूचि–अभिरूचि है। उनकी अध्ययन प्रवृत्ति के लिए यह कथन सार्थक सिद्ध होता है कि "अध्ययनशीलता के लिए किसी विशिष्ट पाठ्यक्रम या निश्चित कार्यक्रम का होना बहुत आवश्यक नहीं हेता है। रूचि और लगन अपना मार्ग प्रशस्त कर लेती है। 'साधनहीनता' जैसे शब्द अनायास ही अपना अर्थ खो देते हैं।"[38]

2.1.6 विविध दायित्व – शत्रुघ्न प्रसाद प्राध्यापक, सम्पादक, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में सक्रिय सदस्य व बिहार साहित्य परिषद के साहित्य मंत्री आदि के रूप में अनेक दायित्वों का सफल निर्वाह करते रहे हैं।

2.1.7 पुरस्कार एवं सम्मान –

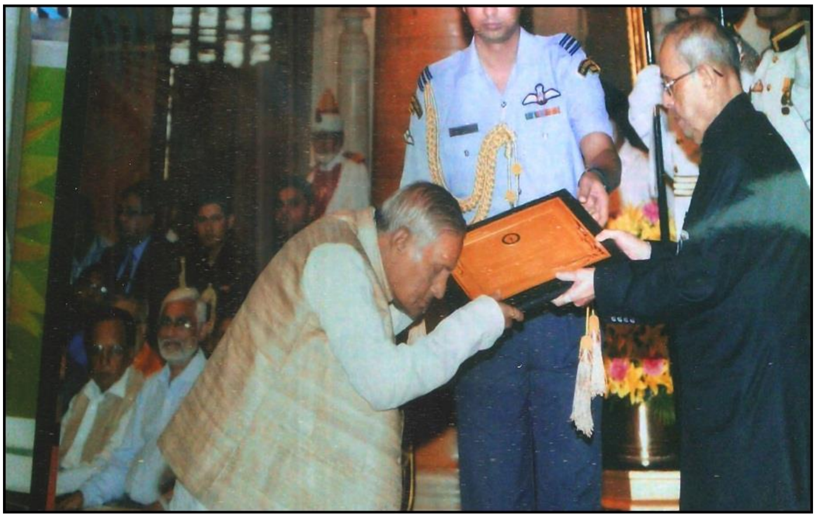

चित्र 3 एवं 4 – पूर्व राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी द्वारा गणेश शंकर विद्यार्थी साहित्य सेवी सम्मान प्राप्त करते हुए शत्रुघ्न प्रसाद।

शत्रुघ्न प्रसाद वामपंथी आलेचकों द्वारा उपेक्षित रहने पर भी चर्चित रहे हैं। यह अलग बात है कि उनका समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है। वे अनेक संस्थाओं द्वारा सराहे एवं नवाजे गए हैं। शत्रुघ्न प्रसाद को प्राप्त पुरस्कारों एवं सम्मानों का विवरण निम्न प्रकार है[39] :–

(1) शान्ति प्रियदर्शी रचना पुरस्कार – नालन्दा जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन बिहार शरीफ – शिप्रा साक्षी है – 1987

(2) शान्ति प्रियदर्शी रचना पुरष्कार – नालन्दा जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन बिहार शरीफ – हेमचन्द्र विक्रमादित्य – 1989

(3) आर.सी. साहित्य सम्मान – महाकवि आर. सी. साहित्य परिषद पटना – 1996

(4) भारतीय संस्कृति एवं शब्द–ब्रह्म उपासना सम्मान – संत बालीनाथ शिक्षा समिति – उज्जैन – 1996

(5) पं. हीरालाल शुक्ल रामेश्वरी देवी स्मृति सम्मान – अखिल भारतीय साहित्य परिषद बीकानेर – 2004

(6) श्री प्रभाकर स्मृति अक्षर–कुंभ पुरस्कार – सिंहभूम जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन जमशेदपुर – 2005

(7) राष्ट्रीय मैथिलीशरण गुप्त सम्मान – मध्यप्रदेश संस्कृति विभाग भोपाल – 2008

(8) स्व. अर्चना स्मृति कथा सम्मान – गोरखपुर – 2013

(9) गणेश शंकर विद्यार्थी साहित्य सेवी सम्मान – केन्द्रीय हिन्दी संस्थान – 2014

(10) अवंती बाई साहित्य सम्मान –उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान – 2018

(11) भारतीय संस्कृति संस्थान सम्मान – भारतीय संस्कृति संस्थान चण्डीगढ़ द्वारा मानव मूल्य विश्वकोष के निर्माण में सहयोग हेतु भी प्राप्त हो चुका है।

शत्रुघ्नप्रसाद जी का मानना है कि रचना या रचनाकार के लिए सबसे बड़ा पुरस्कार पाठकों की संतुष्टि ही है। पुरस्कार रचना के लिए उत्साहित–प्रेरित करने का माध्यम तो बनता है परन्तु पुरस्कार प्राप्ति की लालसा में लेखन करना आत्म–प्रवंचना ही है। लेखन की असली प्रेरणा पाठक, आत्म–परिष्कार एवं आत्माभिव्यक्ति ही होना चाहिए।[40] ये उनकी उदात्त विचारधारा का भी परिचायक है। शत्रुघ्नप्रसाद को मिले पुरस्कारों की संस्तुतियों का भी उल्लेख कर देना विश्वनीयता की दृष्टि से उचित है जो इस प्रकार है –''मध्यप्रदेश शासन डॉ शत्रुघ्नप्रसाद को हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उपन्यास लेखन एवं समालोचना के माध्यम से इतिहास एवं समय के गम्भीर प्रश्नों के रेखांकन तथा विश्लेषणात्मक विवेचन के लिए राष्ट्रीय मैथिलीशरण गुप्त सम्मान 2007–08 से सादर विभूषित करती है।''[41] ''मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग द्वारा स्थापित 'राष्ट्रीय मैथिली शरण गुप्त सम्मान' वर्ष 2007–08 की चयन समिति की बैठक दिनांक 20 अप्रेल 2008 को नई दिल्ली में सम्पन्न हुई। बैठक में निम्न सदस्य उपस्थित हुए :– (1) श्री कैलाशचन्द पन्त, भोपाल (2) श्री मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ,

जयपुर (3) श्री जगदीश तोमर, ग्वालियर (4) डॉ बलवन्त जानी, राजकोट (5) श्री श्रीधर पराडकर ग्वालियर

चयन समिति ने लक्ष्य किया कि डॉ शत्रुघ्न प्रसाद ने बारहवीं शताब्दी से मुगलकाल के अन्त तक के इतिहास के छः उपन्यासों का लेखन किया है जिनमें वे आज के प्रश्नों से जूझते दिखाई देते हैं। वे अच्छे समालोचक भी हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों पर उनका एक शोध ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है। वे लेखन में सत्त सक्रिय हैं। अतएव समिति सर्वसम्मति से वर्ष 2007–08 का यह सम्मान डॉ शत्रुघ्न प्रसाद को प्रदान किए जाने की अनुशंसा करती है।[42]

2.2 व्यक्तित्व –

सामान्यत व्यक्ति के बाह्य स्वरूप स्वभावगत आदतों एवं योग्यताओं को व्यक्तित्व कहा जाता है और साहित्यिक भाषा में व्यक्तित्व की परख शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं बौद्धिक अवस्थाओं के आधार पर की जाती है। डॉ एस.पी. चौबे ने लिखा है कि– ''व्यक्तित्व के गठन में मूल प्रवृत्तियाँ, संवेग, संवेदनाएँ, प्रत्यक्षीकरण, कल्पना, स्मृति, बुद्धि, शारीरिक क्षमता और विवेक आदि सार रूप में काम करती हैं। इन्हीं का सार व्यक्तित्व है। जो दूसरों को अनुक्रिया के लिए प्रभावित करता है।''[43] व्यक्ति के जन्मगत, वंशगत एवं परिवेशगत संस्कारों अनुभवजनित विकसित मानसिक दशाओं, शारीरिक स्वरूप, स्वभावगत प्रवृत्तियों, आवश्यकताओं, प्रेरणाओं का योग व्यक्तित्व कहलाता है। डॉ मनोहर देवलिया कहते हैं कि– ''कोई व्यक्ति ऐसा नहीं होता जिसमें आकार–प्रकार, योग्यता, गुण और रचना शक्ति की निजता न हो तथा यह भी संभव नहीं कि व्यक्तित्व की निजता में सामाजिक सारवस्तु मौजूद हो।''[44] तथा फ्लायज एल. रूक का मानना है कि वास्तव में किसी व्यक्ति की वे समस्त योग्यताएँ, अभिवृत्तियाँ और दूसरी बाह्य एवं आन्तरिक विशेषताएँ जो उसे अन्य व्यक्तियों से विलग करती है उसका व्यक्तित्व कही जा सकती हैं।'' समग्रत व्यक्तिगत जीवन की आचरण शैली अर्थात व्यक्ति के स्वयं, समाज, देश के प्रति दृष्टिकोण या विचारों के व्यवस्थित रूप को व्यक्तित्व कहते हैं। व्यक्तित्व की व्याख्या व्यक्ति के बाह्य एवं आन्तरिक स्वरूप के आधार पर की जाती है। बाह्य व्यक्तित्व के अन्तर्गत रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा, आकृति आदि तथा आन्तरिक व्यक्तित्व के अन्तर्गत गुणों, प्रवृत्तियों, मनोवृत्तियों का अध्ययन किया जाता है।[45] अपनी जन्मजात मूल प्रवृत्ति, वंशगत एवं परिवेशगत प्रभाव, जीवन परिस्थितियों एवं जीवन संघर्षों के प्रभावस्वरूप शत्रुघ्नप्रसाद के व्यक्तित्व ने जो आकार ग्रहण किया है, उनकी उल्लेखनीय विशिष्टताएँ निम्न प्रकार हैं :–

(1) सादगीपूर्ण आदर्श व्यक्तित्व – शत्रुघ्न प्रसाद 'सादा जीवन–उच्च विचार' के सिद्धान्त का अक्षरशः पालन करते दिखाई पड़ते हैं। सादगी उनके हृदय की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, सिद्धान्ततः ओढ़ी हुई कृत्रिमता का आवरण नहीं है। पहनावे के रूप में साधारण धोती–कुर्ता ही उनकी चिर–परिचित पहचान है। दाल–चपाती ही उनका प्रिय भोजन हैं। गायत्री मंत्र एवं

मृत्युंजय मंत्र का मौन स्मरण ही उनकी उपासना पद्धति है। महिमा श्री कहती हैं कि–''पिताजी प्राध्यापकीय जीवन में भी खपरैल वाले साधारण मकान में ही रहे। एक ही धोती–कुर्ता रखने के अभ्यस्त पिताजी की इस आदत से हम परेशान हो जाया करते थे। फटी गंजी से कई दिन तक काम चलाते रहते थे।''[46] फटी हुई गंजी पहनते रहने वाली प्रवृत्ति अनायास ही 'प्रेमचन्द के फटे जूते' संस्मरण की याद दिला देती है। सादा जीवन जीने वाले शत्रुघ्न प्रसाद के विचार उच्च रहे हैं। राष्ट्र के प्रति समर्पण, साहित्य के प्रति अटूट लगन, भेदभाव रहित समभाव, सामाजिक एकत्व का भाव, सामान्य–कमजोर वर्ग के प्रति सहानुभूति व सम्मान का भाव, धन लोभ से मुक्त संतोषी वृत्ति, कर्तव्यनिष्ठता, ईमानदारी आदि गुण उनके वैचारिक औदात्य का ही निदर्शन है। 'शिप्रा साक्षी है' में कुमार विषमशील से 'कोई भूखा क्यों रहे' कहलाना शत्रुघ्न प्रसाद की ही आत्माभिव्यक्ति है,[47] यह आदर्श का उच्च प्रतिमान है। साक्षात्कार में उन्होंने कहा–'' अपनी प्रवृत्ति के अनुसार नगर के सांस्कृतिक–राष्ट्रीय संस्कार ही मैंने प्राप्त किए। सनातन धर्म, आर्य समाज, विवेकानन्द, आदि से प्रभावित रहा। अतः जीवन सादा ही रहा। विवेकानन्द ने कहा था – 'भारत में व्यक्ति की पहचान वेश–भूषा से नहीं, विचारों से होती है।'' ऐसा ही मेरी आत्मा कहती है।[48]

(2) प्रखर राष्ट्रचेता व्यक्ति – शत्रुघ्न प्रसाद राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत राष्ट्रवादी व्यक्ति हैं। राष्ट्रवाद का अर्थ राष्ट्रीय उन्नयन एवं राष्ट्रीय एकता से है। इस शब्द की साम्राज्यवादी या फासीवादी व्याख्या देश में भ्रम पैदा करने का प्रयास है, जैसा कि वामपंथी विचारधारा के समर्थक किया करते हैं। भारत विभाजन, नोआखाली के दंगो आदि से आहत शत्रुघ्न प्रसाद राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की विचारधारा से जुड़ते हैं। शेख अब्दुल्ला की मनमानी के विरोध में हुए आन्दोलन व 1975 के आपातकाल के विरोध में कारावास का कष्ट भोगते हैं। दिनकर एवं नेपाली की कविताओं से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। राष्ट्रीय चेतना को समझने के लिए ऐतिहासिक साहित्य एवं इतिहास का अध्ययन करते हैं। उक्त तथ्य ही उन्हें राष्ट्रचेता विचारक सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है परन्तु उनका राष्ट्रचेता व्यक्तित्व तो उनके ऐतिहासिक उपन्यासों, पिनाक और सदानीरा पत्रिकाओं के सम्पादकीयों, साहित्यिक सम्मेलनों व संघ के आयोजनों में व्यक्त विचारों में ही देखने को मिलता है। वे कोई ऐसा काम नहीं करना चाहते जिससे राष्ट्र की स्थिति कमजोर होती हो। समाज की एकता को राष्ट्र की एकता मानते हैं। अतः सामाजिक वर्गभेद या विसंगतियों का विरोध कर समरस समाज की स्थापना पर बल देते हैं। धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग, वर्ण, जाति भेद मिटाकर अद्वैत समता भाव की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। महिमा श्री कहती हैं– '' पिताजी राष्ट्र एवं साहित्य के प्रति लगन के कारण अन्य कामों (गृहस्थी) पर कम ही ध्यान दे पाते थे। कॉलेज जीवन में खपरैल वाले घर में ही रहे। हिन्दी भाषा को वे राष्ट्र एकता के लिए आवश्यक समझते हैं। अंगेजी के विरोधी रहे। उनके विचारों में व्यक्तिगत जीवन से पहले राष्ट्र रहा है।''[49] वे स्वयं कहते हैं – ''सन्

1946 में मुस्लिम लीग द्वारा अभिप्रेरित नोआखाली के दंगाो ने मुझे सोचने पर विवश कर दिया। विभाजन ने मेरे विचार को बदल दिया। सन् 1947 में ही रा.स्.से. संघ की शाखा में पहुँच गया। उस प्रखर राष्ट्रीय चेतना के कारण इतिहास, संस्कृति तथा ऐतिहासिक उपन्यासों को पढ़ने लगा। विचारों में अपनी संस्कृति, अपनी भूमि, अपने देशवासी की स्वतन्त्रता तथा समृद्धि की भावानुभूति प्रबल होती गई"[50] शत्रुघ्न प्रसाद ने कुमार विषमशील, कुमार महेन्द्र, हेमचन्द्र विक्रमादित्य, हरिहर–बुक्का महाराणा प्रताप व कोटा देवी आदि पात्रों के द्वारा जिस राष्ट्रीय विचारधारा को प्रकट किया है, वस्तुतः वह उनकी ही आत्माभिव्यक्ति है। उनके राष्ट्रचेता चरित्र का प्रकाशन है।

(3) संवेदनशील – शत्रुघ्न प्रसाद का हृदय मानव–मात्र के लिए, समाज के लिए, देश के लिए संवेदना के गहरे अतल में डूबा जान पड़ता है। नोआखाली के दंगों और भारतविभाजन की त्रासदी ने उसके हृदय को अथाह पीड़ा से भर दिया। 'आहों का उल्लास' नामक अप्रकाशित उपन्यास में यह पीड़ा व्यक्त हो रही हैं। 'नालन्दा के खण्डहरों' ने द्रवित कर दिया। 'कश्मीर की बेटी' कोटा देवी की पीड़ा ने हृदय को झकझोर दिया। कश्मीर की घाटियों की चीत्कार उनके रोम–रोम को कँपकँपा देती है। 'दाराशिकोह' के साथ हुए अन्याय से आहत हो उठते हैं। महाराणा प्रताप के संघर्ष के प्रति भी संवेदना जाग्रत होती है। हेमचन्द्र की अचानक पराजय उनके मर्म को बेंध देती है। मध्यकालीन भारत की दयनीय अवस्था के प्रति वे गहरी वेदना से भर उठते हैं। यह पीड़ा उनमें समष्टि चेतना को जागृत करती है। शत्रुघ्नप्रसाद का हृदय संवेदना की अतल गहराइयों में डूबकर समष्टि चेतना के मोती निकाल कर लाता है। उनका उपन्यास साहित्य इसका साक्षी है।

(4) ओजस्वी, गम्भीर एवं प्रभावशाली वक्ता – शत्रुघ्न प्रसाद की व्याख्यान शैली, ओजमयी, चिंतनप्रधान एवं संतुलित है। ओजस्वी वक्ता के लिए विचारों में संतुलन रख पाना कठिन होता है। शत्रुघ्न प्रसाद अपवाद हैं। उनके अनुसार अधिकतर व्याख्यान साहित्यिक एवं संघीय समारोह में ही हुए हैं। उनका राष्ट्रवादी चिंतन ही उनके व्याख्यान का केन्द्रीय विचार रहता है एवं ओजस्विता प्रखर हो जाती है। ओज उनकी प्रकृति है परन्तु विचारों की संतुलित व्याख्या ओर प्रभावशाली प्रेषणीयता उनका वैशिष्ट्य है। प्रसिद्ध पत्रकार व लेखक अरूण भगत उनकी वक्तव्य कला से प्रभावित रहे हैं। वे अपने संस्मरण में लिखते हैं कि – ''वर्ष 1993 ई. में महाकवि आर.सी.साहित्य परिषद् के तत्वावधान में आयोजित समारोह में प्रमुख वक्ता के रूप में शत्रुघ्न प्रसाद का बड़ा ओजस्वी भाषण हुआ था। उनके पांडित्यपूर्ण व्याख्यान को सुनकर पटना का साहित्यिक समाज बहुत प्रभावित हुआ था और मुझे ऐसे लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार की खोज करने के लिए साधुवाद दिया था।"[51] दिल्ली में आयोजित पुस्तक मेले के अवसर पर भारतीय साहित्य एवं संस्कृति न्यास की ओर से 11 जनवरी 2016 को एक परिचर्चा का आयोजन हुआ था जिसमें शत्रुघ्न प्रसाद का वक्तव्य सुनने का अवसर मुझे प्राप्त

हुआ। मैंने खुद उस प्रभाव एवं गाम्भीर्य को महसूस किया, जिसकी चर्चा अरूण भगत ने की है। जब शत्रुघ्न प्रसाद अपनी धीर–गम्भीर–ओजस्वी वाणी में– ''बड़ा विचित्र देश है यह। यहाँ राम के विरोध में सभा होती हे। यहाँ राम के समर्थन में सभा होती है। रामराज्य की कल्पना वाले देश में राम का विरोध करके समाज का परिष्कार व उन्नयन कैसे कर सकेंगे। राम को राम क्यों नहीं रहने दिया जाता। '' कहकर उद्‌घोष किया तो तालियाँ बजाने वाली सभा में मौन गम्भीर छा गया था और मुख–मुद्रा कह रही थी कि इन विचारों को पूरी तरह आत्मसात कर लिया गया था। इस उद्धरणों से स्पष्ट है कि वे ओजस्वी एवं गम्भीर वक्ता हैं।

(5) कर्तव्यनिष्ठ, ईमानदार एवं सत्यनिष्ठ व्यक्ति – शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं राजकीय सभी कर्तव्यों का ईमानदारी के साथ पालन किया है। एक सफल शिक्षक, कुशल सम्पादक, ईमानदार लेखक, कर्तव्यनिष्ठ स्वयंसेवक के साथ–साथ पारिवारिक व सामाजिक दायित्वों का भी पूर्ण निर्वाह किया है। सम्पूर्ण अध्यापकीय जीवन में अपने कर्तव्य व ईमानदारी का पूर्ण ध्यान रखते हुए छात्र–हित को ही सर्वोपरि मानकर कर्म किया। पुस्तकालय विकास के लिए प्रयासरत रहे। पुस्तकालय की समृद्धि में विशेष योगदान रहा। इनके निर्देशन में केवल दो शोधार्थियों ने शोध किया उन्हें 'नीर–क्षीर' शोध करने के लिए प्रेरित किया। वे प्रभातकुमार एवं लक्ष्मणप्रसाद थे। महिमा श्री कहती है कि–आज के अर्थलोलुप युग में सम्पूर्ण प्राध्यापकीय जीवन में इन्होंने अर्थलोभी की तरह काम नहीं किया। अपने बच्चों को राजकीय विद्यालयों में ही शिक्षा दिलवाई। धन कमाने का कोई अनुचित माध्यम नहीं अपनाया।"[52] उनके जीवन से ही स्पष्ट होता है कर्तव्यनिष्ठ, ईमानदार एवं सत्यनिष्ठ रहे हैं। सत्य बोलने पर विशेष जोर देते हैं। सत्य को जीवन का आधार माना है। कभी झूठ का सहारा नहीं लिया।

(6) अतीत के प्रति आस्थावान – शत्रुघ्न प्रसाद की प्रवृत्ति इतिहासोन्मुखी है। यह प्रकृतिस्थ है। शत्रुघ्न प्रसाद प्रेमचन्द की सादगी और यथार्थ को अपनाते हैं परन्तु उन्हीं की आलोचना को दरकिनार करते हुए जयशंकर प्रसाद के इतिहास प्रेम को अपनाये हुए हैं। इनकी अतीत दृष्टि वर्तमान एवं भविष्य से जुड़ी हुई है। अतीत, वर्तमान, भविष्य को वे अनिवार्य कड़ी के रूप में देखते हैं।[53] उनका इतिहासबोध आधुनिक बोध से प्रेरित हैं। उनका सम्पूर्ण साहित्य इसका प्रमाण है। अतीत की दुर्बलताओं से बचने व सबलताओं को अपनाने की सीख देकर भविष्य को सुन्दर बनाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इतिहास की पीड़ा उनके हृदय को द्रवीभूत करती है। इतिहास के प्रति संवेदना मानव मात्र की संवेदना बन जाती है। वे इतिहास की पीड़ा से पलायन की ओर अग्रसर न होकर प्रगतिशील चेतना से उन्मुख होते हैं। उनके सारे उपन्यास इतिहास की विभिन्न घटनाओं पर आधारित हैं। इतिहास के यथार्थ के माध्यम से वर्तमान के प्रश्नों से जूझते दिखाई पड़ते हैं। सम्पूर्ण साहित्य इतिहास आधारित लिखना सिद्ध करता है कि वे अतीत के प्रति आस्थावान हैं।

(7) उदार हिन्दुत्ववादी – शत्रुघ्न प्रसाद रूढ़िमुक्त उदार हिन्दुत्व के प्रतिष्ठापक के रूप में पहचाने जाते हैं। हिन्दुत्व की व्याख्या उदारमना सर्व समावेशी के रूप में करते हैं। उदारता हिन्दुत्व में स्वभाविक व प्रकृतिस्थ है। भारतीय राजाओं ने उदार प्रवृत्ति को ही मूल धर्म माना और उदारता की रक्षा में छल के शिकार हुए और राज्य तक खोया। वास्तविकता यह थी कि हिन्दुत्व का केन्द्र सत्ता नहीं मूल्य रक्षा रही है। शत्रुघ्न प्रसाद का मानना है कि ''हिन्दुत्व कोई पंथ या सम्प्रदाय नहीं है। इसकी व्याख्या की जरूरत ही नहीं है। जिस हिन्दू राष्ट्र में जन्मे, पले एवं बड़े हुए हैं, उस देश–भूमि के साथ माँ–पुत्र का सम्बन्ध होता है। उस देश–भूमि की परम्परागत विचारधारा हिन्दुत्व है। प्रत्येक नागरिक अपने देश की विचारधारा को अपनाकर ही गौरवशाली बनता है। अपने देश व देश–भूमि की जय बोलकर व जय की इच्छा रखते हुए गौरव का अनुभव करता है। जो ऐसा नहीं करना चाहते वे स्वार्थी, लोलुप, संकीर्ण, सम्प्रदायवादी एवं कर्तव्यच्युत है। विखण्डनवादी हैं। हिन्दुस्तानी होते हुए भी हिन्दुत्व को नकारकर अपना छद्म प्रस्तुत करते हैं।[54] शत्रुघ्न प्रसाद द्वारा मुस्लिम शासकों को दुष्ट एवं क्रूर प्रवृत्ति वाला दिखाना सम्प्रदायवाद से प्रेरित नहीं है। सच्चाई है! यथार्थ है! सबक है ! यह कि जिस देश में रह रहे हैं उसी देश की जय न बोलना कहाँ का धर्म है? कौनसा धर्म सिखाता है ? उनके हिन्दू नायक उदारता एवं सम भाव के पोषक हैं। महाराणा प्रताप द्वारा रहीम की बेगम के साथ किया सद्व्यवहार सच्चा हिन्दुत्व है। शत्रुघ्न प्रसाद का हिन्दुत्व उदार–समता भाव का पोषक है। महिमा श्री कहती है कि ''पिताजी मेरे मुस्लिम मित्रों का भी उतना ही आदर करते हैं जितना हिन्दू मित्रों का।"[55]

(8) प्रगतिशील भारतीय – शत्रुघ्न प्रसाद भारतीय जीवन मूल्यों को प्रगतीशील चेतना के साथ स्वीकार करते हैं। वामपंथी प्रगतीशीलता को वे विखण्डनवादी मानते हैं क्यों कि यह विचार धारा एक बहुसंख्यक वर्ग की विचारधारा व आत्मा का हनन करती है। स्पष्ट विचारधारा नहीं है। निरपेक्ष नहीं है। वे भारतीय मूल्यों को रूढ़िमुक्त प्रगतिशीलता के साथ अपनाने की आवश्यकता पर बल देते हैं। ऐसी स्थिति में आज भी भारतीय मूल्य विश्व के श्रेष्ठ मूल्य हैं। अतिथि सत्कार, परदुख कातरता, सत्य, करूणा, दया, त्याग, तपस्या, राष्ट्रीय प्रेम, स्त्री सम्मान, उदारता, विश्व–बन्धुत्व, समभाव आदि भारतीय मूल्य विश्व के लिए अनमोल उपहार व धरोहर हैं। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों, पिनाक व सदानीरा पत्रिका तथा अपने जीवन के माध्यम से इन्हीं प्रगतिशील भारतीय मूल्यों का प्रकाशन करते रहे हैं। 'शिप्रा साक्षी है' का 'मातृत्व–महोत्सव'[56] स्त्री सम्मान का श्रेष्ठ संदेश है। पश्चिमी स्त्रीवाद ने स्त्री को शोषण की ओर धकेला है। शत्रुघ्न प्रसाद ने भारतीय जीवन पद्धति यथा जल्दी उठना, अनुशासन रखना, योगाभ्यास, शाकाहारी भोजन, देशी व्यंजन, भेदभावमुक्त समभाव रखना आदि प्रवृत्तियों का पालन करते हुए अपने बच्चों को भी ऐसे ही संस्कार प्रदान किए। प्रेम, दाम्पत्य का ही नहीं, मानवता का भी मूल आधार है; ऐसा मानते हैं। दाम्पत्य में सहज स्नेह, त्याग, समर्पण, व

विश्वास को महत्व देते हैं। वात्सल्य–प्रेम की महिमा भी व्यक्त करते हैं। अपने उपन्यासों में आश्रम व्यवस्था की जीवन–पद्धति, वात्सल्य–भाव, काम के श्रेयस्कर मर्यादित रूप, राष्ट्र–प्रेम, दाम्पत्य में सहज विश्वास, भेदभाव मुक्त समभाव, अद्वैत समता भाव आदि को दर्शाकर उन्होंने प्रगतिशील भारतीयता का निदर्शन किया है। अपने जीवन में भी ऐसा व्यवहार आत्मसात किए हैं। अरूण भगत के अनुसार 'अतिथि को भोजन या अल्पाहार बिना नहीं जाने देते'[57]। महिमा के अनुसार देशी व्यंजन खिलाने पर जोर देते हैं व भारतीय पर्वों पर सारे मुहल्लेवासियों, मित्रों व परिचितों को प्रसाद वितरण करते हैं। शनीचर का उदाहरण देकर उनके क्षमाशील, विनम्र व कमजोर वर्ग के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का उदाहरण दिया है। बार–बार कपड़े जला देने व खुद के उपयोग में ले लेने पर भी पिताजी हमेशा शनीचर को माफ कर देते थे।[58] प्रगतिशील भारतीय की प्रतिमूर्ति हैं – शत्रुघ्न प्रसाद।

(9) अध्ययनशीलता – शत्रुघ्न प्रसाद छात्र जीवन से अध्ययनशील रहे हैं। नियमित दो घण्टे सुबह और दो घण्टे शाम को अध्ययन करने के अभ्यस्त हैं। अध्ययन को आत्म–परिष्कार का माध्यम मानते हैं। ऐतिहासिक लेखन इस बात का पुख्ता प्रमाण है। इसके लिए इतिहास एवं संस्कृति का अध्ययन आवश्यक होता है। इतिहास, संस्कृति, साहित्य, सम–सामयिक पत्रिकाओं का अध्ययन निरन्तर करते रहते हैं। ''अध्ययनशीलता को विद्वानों ने सुसंस्कृत व्यक्तित्व का प्रधान लक्षण माना है। न केवल परम्परागत अर्थों में अपितु व्यावहारिक दृष्टि से भी अध्ययन–अध्यवसाय व्यक्तित्व के संस्कार–परिष्कार के साथ उनके मानसिक क्षितिज को व्यापकत्व प्रदान करता है।''[59] शत्रुघ्न प्रसाद ने यह गुण पूरी लगन के साथ अपनाया हुआ है। यह उनके व्यक्तित्व को वैशिष्ट्य प्रदान करता है।

(10) विनयशील, सहृदयी एवं निश्छल – शत्रुघ्न प्रसाद विनम्र और आत्मीय व्यक्ति हैं। आज के मानव जगत में व्याप्त चतुरता का लेशमात्र भी उनमें निहित नहीं है। सहृदयी व्यवहार उनकी परिचिति है। अपने परिचितों, साहित्यकारों, मित्रों, प्रकाशकों सब के साथ उनका सहृदयी व्यवहार हैं। उनके व्यवहार में कृत्रिमता व बनावटी गम्भीरता कभी दिखाई नहीं देती है। सीधी, सरल व निष्कपट बात ही करना जानते हैं। प्रकाशक उनके उपन्यासों को कई–कई वर्ष तक प्रकाशित नहीं करते फिर भी कभी नाराजगी या क्षोभ व्यक्त नहीं करते। दूरभाष पर जब भी मैंने बात की उन्होंने ठहाका लगाकर मन प्रफुल्लित कर दिया। छोटे–बड़े सबके साथ यही व्यवहार उनके व्यक्तित्व को उच्चता प्रदान करता है।[60]

(11) कर्मठ एवं कर्मशील – शत्रुघ्न प्रसाद लगन के पक्के व परिश्रमी व्यक्ति है। अपना काम स्वयं करने में विश्वास रखते हैं। भाग्य व नियति को स्वीकार करते हुए भी कर्म में पूर्ण विश्वास रखते है। यह कैसा भाग्यचक्र हैं, दुर्भाग्य है। यह कहते हुए दिखाई पड़ते हैं परन्तु उस विचार पर रूकते नहीं। कर्म से प्रेरित संकल्पित होकर जीवन–समर में आगे बढ़ जाते हैं। महाराणा प्रताप, हरिहर–बुक्का, विषमशील, कुमार महेन्द्र व कोटा देवी सभी पात्र विषम

परिस्थितियों में भी अपना मार्ग खोज लेते है। संघर्ष, संकल्प और कर्म में विश्वास रखते हैं। यह शत्रुघ्न प्रसाद द्वारा कर्मशीलता का संदेश या प्रेरणा देना ही है। शत्रुघ्न प्रसाद का स्वयं का जीवन भी कर्मशीलता का अनुपम उदाहरण है। संयुक्त परिवार की टूटन की स्थिति में ट्यूशन पढ़ाकर एम.ए. की पढ़ाई करना, निरन्तर अध्ययन कर 83–84 वर्ष की उम्र में भी सृजनरत रहना कर्मशीलता व लगन का अद्भुत संदेश है।

(12) स्वावलम्बी एवं स्वाभिमानी – शत्रुघ्न प्रसाद अपना काम स्वयं करने में विश्वास रखते हैं। आत्माभिमान बनाए रखने की भावना प्रकृतिस्थ है, पर विनम्रता से परिपूर्ण। अहं या अभिमान से प्रेरित नहीं है। अपने उपन्यासों का प्रकाशन भी वे स्वाभिमान के साथ ही करवाना चाहते हैं। प्रकाशकों से बार–बार आग्रह नहीं करते। वृद्धावस्था में भी अपने समर्थ एवं सक्षम पुत्रों से भी कोई माँग नहीं करते। प्रकाशकों से रॉयल्टी की मांग करने में भी संकोच ही करते रहते हैं। प्राध्यापकीय जीवन में कभी अपनी संतान की भी सिफारिश नहीं की। कोई भी महत्वपूर्ण काम अटका रहे चतुराई से बनाने में विश्वास नहीं रखते। अपना पाखाना भी स्वयं साफ करते रहे हैं।[61] इस प्रकार शत्रुघ्न प्रसाद स्वावलम्बी और स्वाभिमानी सिद्धांतों के धनी रहे हैं।

(13) प्रभावशाली बाह्य व्यक्तित्व – आन्तरिक व्यक्तित्व की तरह शत्रुघ्न प्रसाद बाह्य स्वरूप में भी असाधाराण लगते हैं। जहाँ धोती–कुर्ता की साधारण वेशभूषा सामान्य दर्शनीय रूप देती है, वही उनका उन्नत चौड़ा ललाट, लम्बी नासिका, बड़ी–बड़ी सूक्ष्मद्रष्टा चमकदार आँखे, नुकीली ठुड्डी, मोटे से ओष्ठ, लम्बा सांचेदार मुख, सांवला–सा रंग, मझोला कद, सांचे में ढला गठीला बलिष्ठ शरीर बरबस आँखे रोक लेता है। साधारण धोती–कुर्ता पर जॉकिट पहने या चादर डालकर दोनों हाथ पीछे बांधकर मंथर–मंथर चलते दिखाई पड़ते हैं तो धीर–वीर तपस्वी चिंतक का आभास दिलाते हैं। आन्तरिक गुणों की तरह ही शत्रुघ्न प्रसाद का बाह्य आकार भी सादा से उच्च और साधारण में विशिष्ट का आभास दिलवाता है।

2.3 कृतित्व –

कर्तव्यनिष्ठ प्राध्यापक, ऐतिहासिक कहानीकार एवं उपन्यासकार, आस्थावादी कवि, भारतीयतावादी सम्पादक, गंभीर–विचारवान चिंतक, पूर्वाग्रहमुक्त समीक्षक एवं आलोचक व निरपेक्ष जीवनी लेखक शत्रुघ्न प्रसाद का रचना कर्म विविध आयाम लिए हुए है। 1957 में शत्रुघ्नप्रसाद प्राध्यापक बनकर किसान कॉलेज–सोहसराय रहने लगे। यहाँ विभाग के साथी गोपाल जी स्वर्ण किरण के साथ सोहसराय के साहित्यिक वातावरण में रमने लगते है। 1962 में चीनी आक्रमण से उद्वेलित हो जाते हैं। दिनकर एवं नेपाली की कविताओं से प्रेरित होकर कविता व लेख लिखने लगते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद की सृजन–यात्रा यहीं से प्रारम्भ होती है। 1963 के आसपास कवि गोष्ठियों में कविता पाठ करने लगते हैं और पटना से प्रकाशित – नई धारा, ज्योत्सना, योगी, उत्तर बिहार पत्रिकाओं तथा आगरा के साहित्य संदेश, इन्दौर की

वीणा व कटक के राष्ट्रभाषा पत्र में उनकी रचनाएँ प्रकाशित होने लगी। द्विवेदी युगीन नाटक (1967) एवं हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में हिन्दू संस्कृति (2002) एवं 'लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक ' समीक्षा ग्रन्थ 1968 में प्रकाशित हुए। 1971 में इनका प्रथम काव्य संग्रह 'अनास्था के आसपास 'प्रकाशित हुआ। यहाँ से शत्रुघ्न प्रसाद की लेखनी निरन्तरता ग्रहण करती है। 1983 ई. में सिद्धियों का खण्डहर, 1986 ई. में शिप्रासाक्षी है, 1987 ई. में कहानी संग्रह 'अनथके चरण', 1989 ई. में 'हेमचन्द विक्रमादित्य', 1993 ई. में 'देशभक्त सन्यासी विवेकानन्द' जीवनी, 1999 ई. में 'सुनो भाई साधो', 2001 ई. में तुंगभद्रा पर सूर्योदय',2002 में कश्मीर की बेटी, 2007 में 'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में काल चेतना एवं संस्कृति' नामक समीक्षा ग्रन्थ, 2014 ई. में अरावली का मुक्त शिखर, 2015 में सरस्वती–सदानीरा, 2015 में शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश – आदि रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 200–250 समीक्षात्मक आलेख भी प्रकाशित हो चुके हैं।[62] शत्रुघ्न प्रसाद के रचना–कर्म का अध्ययन सुविधानुसार निम्न प्रकार किया जा सकता है : – 1. सम्पादन 2. कविता, कहानी एवं जीवनी 3. समीक्षा एवं आलोचना 4. ऐतिहासिक उपन्यास

2.3.1 सम्पादन – शत्रुघ्न प्रसाद एक कुशल संपादक की पहचान रखते हैं। पिनाक पत्रिका (2007 ई. 2012 ई. तक) तथा 2013 से 'सदानीरा नामक पत्रिका का निरन्तर सम्पादन प्रकाशन करते आ रहे हैं। अपने ओजस्वी व चिंतनीय सम्पादकीयों के माध्यम से भारतीयतावादी विचारों का प्रकाशन–प्रसारण कर रहे हैं। सम–सामयिक प्रश्नों से जूझते, आधुनिक सन्दर्भों को अभिव्यक्त करते इतिहास एवं राष्ट्रीय–सांस्कृतिक विचारधारा प्रस्तुत करते, अनेक चिंतनीय एवं गम्भीर विवेचनात्मक आलेख, साहित्य समीक्षाएँ, कविता–कहानी आदि का श्रेष्ठ संकलन 'सदानीरा' में प्रस्तुत करते हैं। 'विवेकानन्द विशेषांक' जैसे विशिष्ट अंक निकालकर इस पत्रिका के महत्व को द्विगुणित कर देते हैं। विवेकानन्द विशेषांक में अनेक श्रेष्ठ आलेख प्रस्तुत कर विवेकानन्द के 'अद्वैतसमता' चिंतन को भारत में प्रतिष्ठा दिलवाने व उनके विचारों को सुधीजनों के सामने रखकर पुनः वैचारिक क्रान्ति लाने का प्रयास किया है। इस प्रकार यह पत्रिका महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं धर्मयुग की परम्परा को आगे बढ़ा रही है। सम्पादन क्षेत्र में शत्रुघ्न प्रसाद जी महत् योगदान दे रहे हैं। अनेक आलेखों के साथ स्वयं की टिप्पणी देकर पत्रिका की विशिष्टता बढ़ा देते हैं। ''कुछ पत्र–सम्मतियों'' के माध्यम से' पिनाक व सदानीरा के संपादकीय विचारों से अवगत हुआ जा सकता हैः–

(1) जीवन सिंह ठाकुर ने 'चिट्ठी–पत्री' में लिखा है– ''पत्रिका बड़ी मेहनत एवं परिश्रम से निकाल रहे हैं। वर्तमान सांस्कृतिक चुनौतियों के लिए सम्पूर्ण रचनाधर्मिता से यह पत्रिका मुखर है। इन दिनों संस्कृति, सभ्यता, भाषा के सवाल उठाते ही कथित तबका इसे साम्प्रदायिक कहने लगता है। ....आप इन लंगड़ी आलोचनओं की चिन्ता न करते हुए समग्र 'प्रतिरोध'

आन्दोलन' का विकास कर रहे हैं। इस समय भाषा, संस्कृति, साहित्य, समाज को बचाने की सर्वाधिक आवश्यकता है।

संदर्भ –पिनाक – जनवरी–मार्च–2011, पेज – 78 सं.– शत्रुघ्नप्रसाद

(2) सुन्दरलाल कथूरिया कहते हैं कि– ''भारतीय अस्मिता, जीवन–मूल्यों एवं राष्ट्रीयता के प्रति शत्रुघ्न प्रसाद की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। ''

संदर्भ – पिनाक – जनवरी–मार्च–2011 – वेज – 78 सं – शत्रुघ्न प्रसाद

(3) आनन्दप्रकाश सारस्वत लिखते हैं''– आपका विचारोत्तेजक सम्पादकीय ''देवियों का महात्म' पढ़ा। राष्ट्रवादी विचारधारा को बनाए रखने के लिए और इस दिशा में मार्गदर्शन के लिए ऐसे विचारों का प्रकटीकरण अति आवश्यक है। ....आपने 'छदम् सेक्यूलरवादी' और 'वाम–इस्लाम जुगलबन्दी' के मधुर संगीत का जो वर्णन किया है वह आँख खोल देने वाला है।

संदर्भ –पिनाक–जनवरी मार्च – 2011 – पेज – 79 – सं. शत्रुघ्न प्रसाद

(4) रामस्वार्थ सिंह लिखते हैं –हिन्दी की पहली पत्रिका जिसे मैं आद्यन्त पढ़ गया। धर्म युग, कल्पना, सारिका, सरिता, माध्यम से लेकर क ख ग तक पढ़ता था। कुछ ही सामग्री सुपाठ्य होती थी, शेष भरती के रहते थे। 'पिनाक' में 'संपादकीय' से लेकर प्रेम, फिल्म और राजनीति तक कई बार पढ़ा। ....अगर में अतिशयोक्ति से लांछित न हो जांऊँ, तो यही कहना अलम् होगा कि 'सरस्वती' के बाद पिनाक ही काल के गाल पर अमिट हस्ताक्षर होगा। ''

संदर्भ –पिनाक – जनवरी–मार्च – 2011, पेज – 80 – सं. शत्रुघ्न प्रसाद

(5) चन्द्रसेन विराट ने लिखा है कि ''आपका प्रथम निवेदन ध्यान खींच गया। दो बार पढ़ा है। शिविरबद्धता ने साहित्य का कितना नुकसान किया है, यह सब देख–सुनकर भी सोनेवाले नहीं जाग रहे। एक सही लेखनी की कैसे टाँग खिंचाई की जाती है, स्पष्ट हुआ। विशिष्टता यह है कि यह लेखनी रूकी नहीं।

संदर्भ सदानीरा – नवम्बर–जनवरी 2016, पेज–72, सं.– शत्रुघ्न प्रसाद

(6) खुर्शीद शेख कहते हैं कि –सम्पादकीय के प्रथम में आपने 'संस्कृति और यथार्थ' में भारत की प्रकृति से जुड़ी कलात्मक संस्कृति 'एक अंग–स्त्री एवं पुरूषों के पुष्प श्रृंगार' के वर्णन से अपनी बात आरम्भ कर भारत की तर्कशीलता, बौद्धिकता एवं चिंतन की स्वतन्त्रता पर प्रकाश डाला है। जो अनुपम है। ''

संदर्भ –सदानीरा – फरवरी – अप्रैल – 2016, पेज – 72 सं. शत्रुघ्न प्रसाद

(7) डॉ. जनार्दन यादव ने लिखा है –''आजकल सेक्यूलर कहलाने के लिए हिन्दू संगठनों एवं हिन्दू दृष्टि की आलोचना तथा गंदी गालियों का प्रयोग रचनाकारों का फैशन हो गया है। इसका अपेक्षित विरोध आवश्यक है। पुरस्कार वापसी पर अरूण भगत का चिन्तन सराहनीय है। वस्तुतः पुरस्कार वापसी में ऐसे लोग शामिल हैं जो काँग्रेस और कम्युनिष्ट की जड़ों से जुड़े हैं। ''

संदर्भ – सदानीरा, – फरवरी – अप्रेल – 2016, पेज – 72 सं.– शत्रुघ्न प्रसाद

(8) डॉ. एन. सुन्दरम ने लिखा – 'सदानीरा' का भारतरत्न महामना मालवीय का विशेषांक प्राप्त हुआ। ..... यह महामना मालवीय को सच्ची श्रद्धांजलि है। वे संस्कृति के जनक हैं तथा भारतीयों में भारतीयता की चेतना के सफल उन्नायक हैं। .... यह अंक 'सदानीरा' का महत्वपूर्ण योगदान है। .....संपादकीय अद्वैत समतादर्शन और हिन्दी साहित्य श्लाघनीय है।

संदर्भ – सदानीरा, अगस्त–अक्टूबर – 2015, पेज – 76 सं.– शत्रुघ्न प्रसाद

(9) डिगबोई महिला महाविद्यालय के प्रो. हरेराम पाठक ने 'विवेकानन्द विशेषांक' के सन्दर्भ में कहा है कि –''यह वृहदकाय विशेषांक विद्वान लेखकों के मौलिक चिंतन एवं स्वामीजी ने प्रति भारतीय मनीषा की दृढ़ आस्था एवं पूज्य भाव को दर्शाता है। मार्क्सवाद का छद्म सिद्धान्त हमें सांस्कृतिक धरोहर से चाहे जितना भी विचलित करने का प्रयास क्यों न करे......... हममें हमारे पूर्व पुरूषों का संस्कार इतना गहरा समाया हुआ है कि हम उससे अलग हो ही नहीं सकते। .... सदानीरा का यह विशेषांक आपके कुशल एवं यशस्वी संपादन का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है।

संदर्भ – सदानीरा, जनवरी–मार्च–2014, पेज 62, सं. शत्रुघ्न प्रसाद।

(10) कमल किशोर गोयनका ने लिखा है कि 'सदानीरा' का 'विवेकानन्द विशेषांक' विवेकानन्द के प्रति श्रदांजलि हैं। 'सदानीरा' का यह बड़ा योगदान है। आपने इसे निकाला और अकेले निकाला ये बड़े साहस की बात है। किसी पत्रिका का ऐसा सुन्दर विशेषांक इससे पूर्व नहीं निकला।

संदर्भ–सदानीरा –जनवरी–मार्च–2014– पेज 63 – सं. शत्रुघ्न प्रसाद

(11) डॉ. मधुर नज्मी कहते हैं कि '' पत्रिका का प्रवेशांक वह भी विवेकानन्द जी को केन्द्र में रखकर आपकी वैचारिक बुलंदियों का निनाद तो करता ही है साथ ही साथ भारतीय संस्कृति की महत्तम शीर्षता तक ले जाता है। ....इक्कीसवीं सदी का यह महत्वपूर्ण प्रश्न है कि भारतीय साहित्य वामपंथ की ओर चले या विवेकानन्द के अद्वैत समता चिंतन के सांस्कृतिक–सामाजिक मानवीय पथ पर अग्रसर हो ....भारत के संस्कृति चिन्तकों तथा साहित्य साधकों को भी गंभीरता से विचार करना है। ''इस अंक की संयोजना में आपका सदाशयी चिंतन, मंजे–कसे साहित्यकारों के विचार–पूरित आलेख सदानीरा को अक्षर गति प्रदायित करते हैं।"

संदर्भ–सदानीरा – जनवरी – मार्च – 2014 – पेज 64– सं. – शत्रुघ्न प्रसाद

(12) मधुकर गंगाधर –इस अंक में बहुत सी सामग्रियाँ पठनीय हैं। पर आप द्वारा लिखे सम्पादकीय ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया। मैं भी भारतीय राष्ट्रीयता को सदा 'नई दृष्टि' से देखना चाहता हूँ। ....भारतीय राष्ट्रवाद को सर्वथा एक नवीनस्वरूप चाहिए – जहाँ विवेकानन्द, अरविन्दो तथा अन्य महान् साहित्यकारों, इतिहासकारों और विचरकों का 'नव्य समन्वित रूप' उपलब्ध हो।

संदर्भ–सदानीरा – अप्रेल जन – 1914 पेज – 79 सं. – शत्रुघ्न प्रसाद

(13) श्रीरंजन सूरिदेव कहते हैं कि –कोई भी साहित्यिक पत्रिका तत्सम्बद्ध सम्पादक की वैदुषी प्रतिभा एवं साहित्य की या साहित्य जगत की सर्वांगीण गतिविधि को आकलित करने की संपादकीय बौद्धिक तत्परता का संकेतक होती है। कहना न होगा कि सम्पादकीय वाड्;मय तप से दीप्त यह पत्रिका अपने आप में अद्वितीय है।

संदर्भ– सदानीरा –नवम्बर–जनवरी–2016, पेज – 72 सं. शत्रुघ्न प्रसाद

(14) त्रिपाठी सियारमण लिखते हैं कि –आपके सारस्वत अधियज्ञ का पुण्य प्रसाद 'सदानीरा' के रूप में प्राप्त कर कृतकृत्य हुआ। इसके शीतल सुधाजल में अवगाहन कर तृप्त, आप्यायित एवं आप्तकाम हो उठा। वस्तुतः सदानीरा आपकी राष्ट्रधर्मिता, राष्ट्रभाषा के प्रति समर्पणशीलता, प्रखर मनीषा तात्विक चिन्तन एवं लेखन कौशल का अक्षय प्रतिमान है।

सदानीरा – अक्टूबर–दिसम्बर – 2014 – पेज 71 सं. शत्रुघ्न प्रसाद

'सदानीरा' के प्रथमनिवेदन में शत्रुघ्न प्रसाद विचारोत्तेजक सम्पादकीय लिखकर मानवतावादी – भारतीयवादी विचार को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयासरत रहते हैं। उनकी संपादकीय वैचारिकता के कुछ संकेत निम्न है : –

(1) कुर्रतुल–एन–हैदर का उपन्यास 'आग का दरिया' भारत में सम्मानित और पुरष्कृत हुआ। कारण – भारत विभाजन के मूल कारणों को मौन में छिपा लेना एवं विभाजन को मुसलमानों के लिए आग का दरिया दर्शाना। 'कलिकथा वाया बाईपास' अलका सरावगी का श्रेष्ठ उपन्यास माना गया इसलिए कि जो मुस्लिम लीगी प्रान्तीय शासन से आयोजित थे उन कलकत्ते के दंगो को सरदारपटेल व हिन्दू संगठनों की देन बताया।

(2) कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' को वाह–वाही इसलिए मिली कि रथयात्रा, रामजन्मभूमि विवाद एवं पोखरण विस्फोट को अनुचित सिद्ध कर रहा था। जबकि श्री एस. एल भैरप्पा के उपन्यास 'आवरण' और शिवप्रसाद सिंह के 'दिल्ली दूर है' को साम्प्रदायिक घोषित किया गया है। वे लिखते हैं कि – '' यह सच है कि भारत की मूलधारा दस सहस्र वर्षों की ऊँची संस्कृति का उत्तराधिकारी जातिवाद, क्षेत्रवाद, व व्यक्तिवादी स्वार्थ से भयानक रूप से पीड़ित है। तभी तो बिहार में उन्माद जगाकर (पुरस्कार वापसी) चुनावी विजय प्राप्त की गई। 800 वर्षों की सच्चाई को रखना भी अपराध माना जाता है।

संदर्भ– सदानीरा –नवम्बर – जनवरी– 2016 – सं. शत्रुघ्न प्रसाद– प्रथम
निवेदन पं.– 4–5

(3) तस्लीमा नसरीन का प्रश्न है कि '' क्या गलती की है मैंने? धर्मान्धता, कुसंस्कार, उत्पीड़न, दमन के खिलाफ बात करना अन्याय हैं; मानवता के पक्ष में खड़ा होना जुर्म है ? इन्हीं प्रश्नों को आगे बढ़ाते हुए सम्पादक कहते हैं – तसलीमा, सुष्मिता (सईदा) और मलाला के साथ दुर्व्यवहार व क्रूरता हुई पर नारी अधिकारों व मानवाधिकार के लिए लड़ने वाली शबाना आजमी, ...तिस्ता सीतलबाड़, वृन्दाकरात, मैत्रेयी पुष्पा ..... किसी ने तसलीमा, सुष्मिता तथा

मलाला के लिए कुछ नहीं कहा। ..... इनकी नारी चेतना ओर मार्क्सवादी चेतना क्यों मौन रही है ?

संदर्भ सदानीरा –प्रथम निवेदन –अक्टूबर –दिसम्बर 2013 –सं. शत्रुघ्न प्रसाद, पेज–4–5

(4) शत्रुघ्न प्रसाद कहते हैं कि –अद्वैत क्रान्तिदृष्टा विवेकानन्द का अद्वैत समता दर्शन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से अधिक व्यापक, अधिक मानवीय तथा अधिक ग्राहय है .... विवेकानन्द ने अपने दर्शन से भारत की चेतना को पूर्ण विकसित रूप से प्रस्तुत कर सुषुप्त खंडित तथा कुंठित राष्ट्रवाद को जाग्रत किया था। ....द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त को वामपंथी राजनीति ने समर्थन किया था। फलतः अखंड भारत का खंड होना बड़ा त्रासद सिद्ध हुआ। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित वामपंथी राजनीति, साहित्य, इतिहास और पत्रकारिता ने भारतीय राष्ट्रवाद, भारतीय संस्कृति, भारत के गतिशील साहित्य तथा भारतीय इतिहास पर प्रहार करते हुए आहत करने का निरन्तर प्रयत्न किया हैं। सम्पादक प्रेरित करते हुए कहते हैं कि – "अद्वैत समता दृष्टि के साहित्य में दलित तथा वनवासियों की पीड़ा की अभिव्यंजना हो। यह साहित्य की मुख्य धारा के रूप में स्वीकृत हो। क्यों कि समाज का जुड़ना युगधर्म है।"

संदर्भ – सदानीरा –सं. शत्रुघ्न प्रसाद – जनवरी–मार्च – 2014 – प्रथमनिवेदन, 4–5

(5) स्त्री विमर्श की वास्तविकता पर चिंतन करते हुए संपादक ने लिखा है कि अवश्य ही कुछ लेखिकाओं ने चिंता व्यक्त की है। यह तो देह से चलकर देह तक पहुँचना हुआ। स्त्री का स्वतन्त्र मानवीय व्यक्तित्व प्रतिष्ठित नहीं हुआ। उसकी विद्या, बुद्धि, प्रतिभा, कला और उसकी अस्मिता की रक्षा नहीं हो सकी। क्या इसी लिए स्त्री–विमर्श आरंभ हुआ था। प्रतिभा के विकास का अवसर चाहिए। अर्द्धनारीश्वर की स्थति विश्व संस्कृति में अभिनन्दनीय है। स्त्री–पुरूष दोनों का जीवन संयमित और संतुलित होना आवश्यक है।

संदर्भ – सदानीरा – सं. शत्रुघ्न प्रसाद – जुलाई – सितम्बर – 2014 – प्रथम निवेदन – 5–6

2.3.2. कविता, कहानी एवं जीवनी –

शत्रुघ्न प्रसाद का सृजन कविता से ही आरम्भ होता है। कथाकार वे बाद में बनते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद का एक काव्यसंग्रह 'अनास्था के आस पास', एक कहानी संग्रह 'अनथके चरण' व एक जीवनी 'देशभक्त संन्यासी विवेकानन्द प्रकाशित हुए हैं।

कविता संग्रह – 'अनास्था के आस–पास' – 1971 ई. प्राध्यापक जीवन में शत्रुघ्न प्रसाद जी को सोहसराय में काव्यमयी परिवेश प्राप्त हुआ। गोपाल जी स्वर्ण किरण जैसे निर्भीक व राष्ट्रवादी कवि विभाग में साथ रहे। ऐसे काव्य–प्रेमी साथियों व काव्यमयी वातावरण 1962 ई. के चीनी आक्रमण के क्षोभ व दिनकर और नेपाली की राष्ट्रीय कविताओं से प्रेरित होकर

शत्रुघ्न प्रसाद ने कविता लेखन प्रारम्भ किया। इनका प्रथम काव्य संग्रह 'अनास्था के आस–पास' 1971 ई. में प्रसाद प्रकाशन – सोहसराय से प्रकाशित हुआ जिसमें कुल बयालीस (42) कविताएँ संकलित हैं। जिनमें पुरानी एवं नयी संस्कृति का टकराव, भारत की अस्मिता एवं अस्तित्व, स्वातंत्र्य रक्षा व मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं को अनास्था के आस–पास दर्शाकर आस्था का संदेश दिया गया है।[63] 'हम' कविता में पाले हुए पशु' पराधीनता के प्रतीक हैं। 'बोध' कविता अनास्था के पागलपन व बनावटी जीवन का संकेत देती है – और तुम उस वेनिटी बेग के समान हो जिसमें केवल लिपस्टिक और शीशा है एक डिबिया नकली मुस्कराहटें हैं।"[64] ये नकली मुस्कराहटें जीवन की विवशता है। कभी–कभी कवि अनास्था में विश्वास भी करने लगता है। – "ऐसा न हो सूरज का रथ रूक जाय"[65] ऐसी ही 'प्रतीती' है। पर 'धैर्य' बना हुआ है। तुरन्त कवि कह उठता है कि ''आस्था का धैर्य भी टूट नहीं पाता। ..... लहूलुहान उंगलियाँ / शीश तथा पृष्ठ को / सहलाती रहती है / जब तक कि काँटे / मुलायम न हो जाए।'' समय की मार से लहूलुहान उँगलियाँ धैर्यपूर्वक विषमता के काँटो को मुलायम बनाती रहती है।[66]

कभी–कभी मानवीय असहायता व दमनीयता को देखकर कवि अपनी आँखे बन्द करना चाहता है परन्तु चाहकर भी दृश्यों को ओझल नहीं कर पाता। अपने को बंदीगृह"[67] में पाता है। 'संभावना'[68] कविता में आक्रमण की संभावना पहाड़ों के पंख उगााकर व्यक्त की है। राजनीति नंगी हो गई हैं। अब 'मुखौटों' की राजनीति है।[69] और धीरे–धीरे सब इस कला में पारंगत होते जा रहे हैं। नकली वचनबद्धता और बनावटी राजनीति पर करारा व्यंगय किया गया है ''एक खोई हुई डायरी में।"[70] "अब मैं / किस मुखौटे में / अपने को छिपाऊँ / यह भी पता नहीं है– '' कहकर कवि प्रहार करते हैं कि अब राजनीति के पास बनावट नहीं बच पाई है। सम्पूर्ण बनावटी खेल, खेल चुके हैं। स्थिति यह हो गई है कि अनास्था सम्पूर्ण निगल जायेगी। आस्था–अनास्था में द्वन्द्व है। लगता है आस्था के बदले अनास्था के लोथड़े भिनकते रहेंगे। 'द्वन्द्वग्रस्त'[71] कविता में यही द्वन्द्व है। वादों की राजनीति ने सम्पूर्ण आस्था खो दी है। विश्वास खो दिया है। मोह भंग हो गया है। 'प्रयोग' कविता में"[72] दर्शनीय है कि –वादों की आलपिनों से / बिंध दी गई है / उसकी स्वाधीनता, रोटी और सपनीली आकांक्षाएँ। 'दंश' कविता में कहा है कि ''हम नागफनी के जंगल में घिर गए हैं[73] अर्थात कपट और छल की राजनीति में व्यक्तिवाद का दंश भोग रहे हैं। समाज इतना विषम होता जा रहा है कि ''सम्बन्धों का सागर उथला हो गया है'' ।[74] सारी इच्छाएँ मृग–मरीचिका है। प्राणों में शून्यता छायी हुई है। इसी 'अर्न्तदाह' में मानव जल रहा है। मानव की जीवन–सरिता का स्रोत क्षीण हो चला है। 'उत्तरित क्षण'[75] कविता यही कहती है। तभी 'आश्वासन' कविता में ''जिज्ञासु चंचल मन आश्वस्त हो जाता है।''[76] अनास्था का अन्धकार, निराशा की दीनता इतनी बढ़ गई है कि कवि को रोशनी की एक किरण के लिए 'याचना'[77] करनी पड़ रही है। ''बन्द दरवाजों के भीतर से झाँकती हुई आँखों में, एक किरण की याचना है।'' कवि इस अनास्था

में 'प्रतिबद्धता' अपनाते हुए अस्मिता के गौरव शिखर पर चढ़ जाते हैं। कहते है – ''मैं हर क्षण आस्था से प्रतिबद्ध हूँ।"[78] और ''शिखर की नवरचना करो, शक्ति की साधना और अस्मिता की अर्चना करो। '' कवि मानव परिश्रम में विश्वास व्यक्त करते हुए कहते हैं कि परिश्रम से ही मानवता की प्रतिष्ठा होती है। "नयी भूमिका"[79] की प्रेरणा देते हुए कवि कहते हैं –

आज भी/खेत की हर क्यारी/नदी को हर विद्युत धारा/और श्रम की हर मुक्ता कणिका/आस्था की भूमिका निर्मित करेगी/जिस पर/नयी मानवता की मुस्काराती/क्षण–क्षण वरदहस्त फलाती/जीवन प्रतिमा की/सचमुच प्रतिष्ठा होगी।

कवि को आशा है कि बर्बर क्रूर अट्टहास बन्द होगा और मानवता में आस्था की प्रतिष्ठा होगी। ''महफिल में आखिरी रात ''कविता में कहते हैं कि – '' महफिल की आखिरी रात है, मानवता की नयी सुबह आयेगी/सूरज की नयी किरण इठलायेगी।''[80] भूमिका में शत्रुघ्नप्रसाद स्वयं कहते हैं कि अन्धी आस्था और जर्जर परम्परा आस्था को प्रवंचित करती है। अस्वस्थता को बढ़ाती है पर चिन्तक कवि इस माया को छिन्न कर और अनास्था की भटकन को खत्म कर स्वस्थ व्यक्ति, राष्ट्र और विश्व मानव की रचना करना चाहता है।[81] शत्रुघ्न प्रसाद की कविताओं की विवेचना करते हुए डॉ विमला सिंहल कहती है कि –"शत्रुघ्न प्रसाद की कविताओं में पद–पद पर चुभते नागफनी के विशैले दंश का अनुभव अंकित है। इस विशैले वातावरण से मुक्त होने के लिए प्रत्येक भारतीय को संकल्प एवं निष्ठा पूर्वक खड़ा होना होगा। इस रचनाकार का आह्वान है कि ' शूलों के नीचे हरी होती घास को शपथपूर्वक रक्ततपर्ण और आत्मार्पण से हरी बनाये रखना होना।"[82] निष्कर्षतः शत्रुघ्नप्रसाद का यह काव्य संग्रह अनास्था के आस–पास आस्था की आशा जगाकर निराशा में आशा का संचार करता है। 'निराला' के गीत गाने दो मुझे तो गीत की पंक्तियाँ यहाँ साम्य रखती है '' बुझ गई है लो पृथा की/जल उठो फिर सींचने को। ''

कहानी संग्रह – शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'अनथके चरण' एवं 'अनरूके पाँव' कहानी संग्रहों में नौ कहानियाँ संकलित हैं। 'अनरूके पाँव' व 'अनथके चरण' कहानी संग्रह जाग्रति प्रकाशन–नोएडा से 1987 ई. में प्रकाशित हुए। 'अनरूके पाँव' अप्राप्य है। 'अनथके चरण' संकलन में खंडित दृष्टि, शील, समझौता, हिरण्य प्रभात, ताना–भरनी, विश्वास की राह, गोकुल के गीत, अनथके चरण एवं रक्त–पुष्प आदि नौ कहानियाँ संकलित हैं जिनमें राष्ट्रीय जीवन के निरन्तर संघर्षमयी प्रवाह को दर्शाया गया है। भारतीय जीवन संघर्षशील रहा है पर निरन्तर आगे बढ़ता रहा है। प्राचीन एवं मध्यकालीन जीवन के यथार्थ का चित्रण करते हुए आदर्श को भी प्रस्तुत किया गया है। 'खण्डित दृष्टि' कहानी में सम्पूर्ण भारत की दृष्टि प्रदान करते हुए चाणक्य के माध्यम से कहलावाया है कि –"केवल मगध या मालव की चिन्ता खण्डित दृष्टि है............मगध ....मालव, गांधार.......सब तो भारत वर्ष के अंग हैं। भारत को सम्पूर्ण दृष्टि चाहिए।"[83] भारतीय एकता का सार्थक प्रयास ही कहानीकार का कथ्य है। 'शील' नामक

कहानी में आर्यश्रेष्ठता, भारतवर्ष की एकता एवं आश्रम व्यवस्था की शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से राष्ट्रीय एकता एवं सार्थक शिक्षा की महत्ता को मुख्य कथ्य बनाया गया है। शिक्षा आचरण में उतरने पर ही सार्थक होती है। यह आदर्श प्रस्तुत किया गयाहै। 'समझौता' कहानी कुषाण सम्राट कनिष्क एवं चीनी सम्राट पान चाउ के मध्य संघर्ष एवं दोनों के मध्य संधि होने की घटना को मुख्य विषयवस्तु बनाया गया है। चीनी राजकुमारी का कनिष्क से विवाह समन्वय की स्थापना है। कहा गया है कि –"सामान्य जीवन के लिए समन्वय ठीक मालूम पड़ता है। सबको भिक्षु बनाना ठीक नहीं है।"[84] इस कहानी का यही मूल कथ्य है जो संन्यास से कर्म की ओर प्रेरित करता है। 'हिरण्यप्रभात' कहानी में 12 वीं सदी के भारत के यर्थाथ व नालन्दा व उदन्तपुरी जैसे नगरों के पतन का चित्रण है। महाराज गोविन्दपाल के अनुसार सिद्ध धोरपा की दिव्य शक्ति, इख्तियार खिलजी के आक्रमण से रक्षा करेंगी परन्तु लेखक महेन्द्रपाल और सेनापति से ही रक्षा सम्भव मानते हैं। महाराज गोविन्दपाल और सिद्ध धोरपा की सिद्धियाँ चूर–चूर हो जाती है। उद्न्तपुरी और हिरण्यप्रभात का विनाश होता है यही यथार्थ चित्रित हुआ है। 'ताना–भरनी' कहानी में कबीर दास की अद्वैत चेतना, व राम–रहीम की एकता के प्रयासों के मध्य सिकन्दर लोदी के क्रूर शासन की वास्तविकता का चित्रण है। रामानन्द द्वारा कबीर को दिया मंत्र ही कहानी का मूल कथ्य है –"राम की दृष्टिमें सभी समान है। ....कोई भेदभाव नहीं .....जहाँ भेद है, वहाँ द्वैत है ....वहाँ राम नहीं।"[85] समानता की स्थापना ही कहानी का ध्येय है। 'विश्वास की राह' कहानी मुगल –सूर वंश के संघर्ष काल के भारत की दयनीय दशा का चित्रण करती है। शाहों सुल्तानों के मध्य संघर्ष, जजिया कर, धर्मान्तरण, युद्ध, विध्वंश, स्त्रियों का अपमान जैसे यातनामय जीवन में भी हेमू द्वारा विश्वास का मार्ग प्रशस्त करना ही कहानी की सारवत्ता है। विश्वास की राह पर चलकर पराधीनता की पीड़ा को दूर किया जा सकता है।"[86] का यही कथन कहानी का मर्म है। 'गोकुल के गीत' कहानी औरंगजेब कालीन धर्मान्ध राजनीति के अभिशाप को दर्शाती है। गोकुल जाट मथुरा में मुगलों से विद्रोह ठाने हुए है। गोस्वामी दामोदर गोवर्धन पर्वत पर स्थित 'श्रीनाथ जी की मूर्ति' लेकर मेवाड़ आते है और महाराणा राज सिंह के सहयोग से बनास नदी के किनारे सिहाड़ गाँव में श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा होती है। वहीं सिहाड़ आज नाथद्वारा कहलाता है। इसी गोकुल और दामोदरस्पामी के संघर्ष एवं श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा ही इस कहानी की केन्द्रीय कथा है। ''अनथके चरण' कहानी निरन्तर बलिदान की प्रेरणा में बढ़ते भारतीय चरणों की गाथा है। संघर्ष आते रहे हैं और भारतीय निरन्तर आगे बढ़ते रहे है। गुरू अर्जुनदेव, गुरूतेगबहादुर एवं गुरूगोबिन्द सिंह के बलिदान को दर्शाकर गुरू गोविन्दराय द्वारा बलिदान मार्ग को अपनाए जाना अनथके चरण है। दयाराम खत्री, धरमदास, मोहकचन्द, हिम्मत राय एवं साहेब चन्द नामक पाँचो शिष्य गुरूजी के सामने बलिदान को तैयार हैं। सिक्ख संगत की दृष्टि में उनका बलिदान हो गया है। परन्तु यह परीक्षा है। अब ये देश पर बलिदान के लिए तैयार है। यही अनथके चरण है। 'रक्त–पुष्प' कहानी 1857 की क्रान्ति के स्वाधीनता सेनानी बाबू कुँवरसिंह

के संघर्ष एवं राष्ट्रीय चेतना की कथा कहती है। कुँवर सिंह लखनऊ, अयोध्या, नागौर को जीतकर जगदीशपुर जाना चाह रहे हैं। तोप का गोला रणदलन सिंह के शरीर को क्षत–विक्षत कर देता है और कुँवर सिंह का हाथ जख्मी कर देता है। परन्तु जगदीशपुर से फिरंगी झण्डे को उतार फेंकना है। अपना जख्मी हाथ काटकर गंगाा को अर्पित कर देते हैं और जगदीशपुर की ओर बढ़ जाते हैं। "आकाश देखा कि गंगाा की लहरों में रक्तपुष्प लहरा रहा है"[87] इस कथा संकलनकी सभी कहानियाँ एकता का आदर्श प्रस्तुत कहती है। त्याग, बलिदान एवं साहस की कथा कहलाती हैं।

जीवनी– आध्यात्मिक गुरू रामकृष्ण परमहंसके शिष्य एवं वेदान्त दर्शन के व्यापक रूप को विश्व के सामने प्रकाशित करने वाले स्वामी विवेकानन्द के जीवन को नव दृष्टि एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से शत्रुघ्न प्रसाद ने 'देशभक्त संन्यासी विवेकानन्द' में प्रस्तुत किया है। विवेकानन्द की यह जीवनी सूर्यभारती प्रकाशन नई दिल्ली द्वारा 1993 ई. में प्रकाशित हुई। इस जीवनी परक पुस्तक में शत्रुघ्न प्रसाद ने विवेकानन्द के द्वन्द्व भारतीय जीवन के युगचित्रण, एवं विवेकानन्द के भारतीय वेदान्त दर्शन को व्यापक रूप से व्याख्यायित करने के प्रयासों को दर्शाया है। यह जीवनी दस शीर्षकों में विभक्त है जो निम्न प्रकार है :– 1.युग परिवेश 2. बचपन 3.नरेन्द्र का द्वन्द्व 4.संन्यासी का द्वन्द्व 5.दिग्विजय यात्रा 6.दिग्विजय का शंखनाद 7. मातृभूमि की गोद में 8.भारत दर्शन 9.बहुजन हिताय–बहुजन सुखाय 10.यात्रा–यात्रा–महायात्रा[88]

(1) युग का परिवेश –18वीं 19वीं सदी के पराजित एवं पतनशील भारत के यथार्थ चित्रण के साथ–साथ राजा राम मोहनराय के ब्रह्मसमाज (1828), दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज (1875) व देवेन्द्रनाथ ठाकुर व केशवचन्द्र सेन के विचारों से प्रभावित–प्रेरित भारत का दर्शन इस अध्याय में किया गया है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस का दर्शन इस अध्याय में व्यक्त किया गया है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस दक्षिणेश्वर में रहस्यमय संत के रूप में ख्याति प्राप्त कर रहे है। ऐसे वातावरण में नरेन्द्र (विवेकानन्द) का जन्म 12 जनवरी 1863 ई. होता है। इस युग का सम्पूर्ण परिवेश इस अध्याय में चित्रित हुआ है।

(2) बचपन –विश्वनाथ दत्त एवं भुवनेश्वरी देवी की स्नेह–छाया में पालित नरेन्द्र के बचपन का वर्णन इस अध्याय में प्रस्तुत है। विरेश्वर को 'बिले' नाम से पुकारना, नरेन्द्र दत्त नामकरण होना व पढ़ाई के साथ – साथ खेल–कुश्ती, मुक्केबाजी आदि का अभ्यास कर शरीर को सुदृढ़ बनाने की भावना को भी बालकोचित स्वभाव के अनुरूप दर्शाया गया है सन्देश है –"नये भारत की नयी पीढ़ी को पाथेय मिल सके।"[89]

(3) नरेन्द्र का द्वन्द्व – नरेन्द्र दत्त पढ़ाई में मेधावी होने के साथ जिज्ञासु प्रवृत्ति के बालक थे। प्रेसीडेन्सी कॉलेज की पढ़ाई के साथ–साथ उनके मन में अध्यात्म की जिज्ञासा बनी रही। देश–सेवा व मानव सेवा जैसे भाव भी उद्वेलित करते। परिवार एवं देशसेवा का द्वन्द्व रहने लगा। रामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क में आए। प्रभावित हुए। 1886 ई. में रामकृष्ण परमहंस की

बीमारी बढ़ी उन्होंने नरेन्द्र को ही अपना मूल ध्येय प्रदान किया। पुत्र के प्रति परिवार की आशा एवं बालक की स्वाभाविक वृत्ति के बीच द्वन्द्व में ही नरेन्द्र का बचपन व किशोरावस्था व्यतीत हुई। यह द्वन्द्व इस अध्याय में वर्णित है। रामकृष्ण परमहंसने कहा –"नरेन्द्र तुझे मैं सर्वस्व देकर फकीर बन गया।"[90]

(4) संन्यासी का द्वन्द्व –नरेन्द्र रामकृष्ण परमहंस के बताए मार्ग एवं प्रवृत्तिनुसार त्याग का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। परिवार पिता की मृत्यु के कारण संकट में है। सम्पत्ति पर मुकदमे चल रहे हैं। संन्यास धर्म को अपनाकर त्याग पूर्वक देश की सेवा में लगे रहना चाहते हैं। युवा संन्यासियों को भी अनुप्राणित रखते हैं। इस अध्याय में संन्यासी बने नरेन्द्र के त्याग एवं परिवार–धर्म का द्वन्द्व चित्रित हुआ है।

(5) द्विग्विजय की यात्रा–इस अध्याय में विवेकानन्द द्वारा 11 सितम्बर 1893 ई. को अमेरिका के शिकागो शहर में धर्म महासभा को सम्बोधित करने और सर्वश्रेष्ठ वक्ता सिद्ध होने की यात्रा का वृतान्त वर्णित है। अमेरिका एवं अन्य देशों में भारतीय दर्शन का प्रभावशाली प्रचार–प्रसार करने एवं विश्व को हिन्दू धर्म से परिचित कराने का सरस वर्णन किया गया है। इस अध्याय का मूल कथ्य स्वामी विवेकानन्द का यह कथन है कि –बौद्धों को वैदिकों का मस्तिष्क एवं वैदिकों को बौद्धों का हृदय चाहिए।

(6) दिग्विजय का शंखनाद –इस अध्याय में इंग्लैंड आदि यूरोपीय देशों में स्वामी जी द्वारा वेदान्त दर्शन एवं भारतीय धर्म के प्रचार–प्रसार का वर्णन किया गया है। इंग्लैंड में उन्हें 'बवंडर पैदा करने वाला हिन्दू' कहकरप्रचारित किया जाने लगा। न्यूयार्क के 'हर्डीमैन' हॉल में निशुल्कव्याख्यान देना प्रारम्भ करने व हिन्दू धर्म की पुरजोर व्याख्या कर भारत को पुनः विश्वगुरू सिद्ध करने के प्रयासों का चित्रण इस अध्याय में किया गया है।

(7) मातृभूमि की गोद में – अमेरिका और इंग्लैंड में भारत के वेदान्त दर्शन की प्रतिष्ठा करके व इंग्लैंड की प्रतिभा, साहस और कर्मठता को उनके विकास के हेतुओं के रूप में पहचान करके, स्वामी जी वापस भारत आए। इंग्लैंड की साम्राज्य लिप्सा, धनलिप्सा विलासलिप्सा से क्षुब्ध भी हुए। भारत भ्रमण कर स्वामीजी मानव सेवा व देश मुक्ति के संदेश देते रहे। भारत कल्याण की कामना से संन्यासी संघ बनाने और मानव सेवा का व्रत लेने का संकल्प दोहराते हुए विश्व मानव के कल्याण की कामन व्यक्त करते रहे। हमारे चरित्रनायक ने ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग का अर्थ–दीन दुखी की सेवा, शिक्षा का प्रचार, वेदान्त धर्म का प्रसार, स्वदेश का उद्धार और विश्वमानवता की नव्य रचना [88] बताते हुए इन विचारों को आत्मसात करने का संदेश दिया।[91] इस अध्याय में स्वामी जी द्वारा भारत भर में भ्रमण करते हुए इन विचारों के उद्‌घाटन का वर्णन किया गया है।

(8) भारत–दर्शन –इस अध्याय में स्वामी जी के भारत–भ्रमण के दौरान अस्वस्थ हो जाने, अल्मोड़ा रहकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने, पुनः बरेली जाकर धर्म चर्चा करने और पुनः धर्म प्रचार निमित्त भारत भ्रमण करते रहने का वृतान्त वर्णित है। प्रो. रामतीर्थ, कुमारी मार्गरेट एवं

कुमारी नोबुल (भगिनी विदिता) द्वारा स्वामी जी का शिष्यत्व स्वीकार करने का भी वर्णन किया गया है। कलकत्ता में प्लेग की बीमारी फैल जाने पर अस्वस्थ स्वामीजी द्वारा रोगियों की सेवा कर मानव सेवा का उदाहरण प्रस्तुत करने का भी वृतान्त किया गया है।

(9) बहुजन हिताय–बहुजन सुखाय –स्वामी जी का श्रीनगर आकर हिन्दू धर्म के 'बहुजन हिताय–बहुजन सुखाय' के संदेश को व्यक्त करने व गृहस्थ द्वारा अन्याय सहन न करने के सिद्धान्तों का वर्णन इस अध्याय के अन्तर्गत किया गया है। उन्होंने कहा ''हाँ अन्याय न करो, अत्याचार न करो, जहाँ तक हो सके परोपकार करो, परन्तु अन्याय को सहन करना गृहस्थ के लिए पाप है।"[92]

(10) यात्रा–यात्रा–महायात्रा –दमा से परेशान स्वामी जी द्वारा धर्म–चर्चा करते रहने की निरन्तर यात्रा का वर्णन करते हुए 39 वर्ष की उम्र में जून 1902 ई. में स्वामी के महाप्रयाण का वृतान्त इस अध्याय में किया गया है। "उठो जागो और जब तक लक्ष्य प्राप्त न कर लो, कहीं मत ठहरो" उनका यह अमर संदेश अमृत वर्षा करता रहेगा।[93]

2.3.3. समीक्षा एवं आलोचना –

शत्रुध्न प्रसाद नीर–क्षीर विवेकी समीक्षक–आलोचक के रूप में भी अपनी पहचान रखते हैं। 1967 ई. में द्विवेदी युगीन नाटक, एवं 2002 में 'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में हिन्दू संस्कृति' नामक शोध ग्रन्थ पी.एच.डी. एवं वरिष्ठ फेलोशिप के अन्तर्गत लिख चुके हैं। "लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक' समीक्षा–ग्रन्थ 1968 ई. में प्रकाशित हुआ, जो अब अप्राप्य है। आपके लगभग 200–250 आलेख एवं पुस्तक समीक्षाएँ देश की शीर्षस्थ पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके है जिनमें आपका विवेचनात्मक एवं विश्वलेषणात्मक चिन्तन, कथ्य एवं शिल्प को समझने की दृष्टि का परिज्ञान होता है। "हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कालचेतना एवं संस्कृति" शत्रुघ्न प्रसाद रचित समीक्षा–ग्रन्थ विशिष्ट महत्त्व रखता है। यह ग्रन्थ समीक्षा दृष्टि का नवीन आयाम प्रस्तुत करता है। आलोच्य अध्याय में उपर्युक्त समीक्षा ग्रन्थ एवं आलेख चिन्तन का अध्ययन–अवलोकन प्रस्तुत किया जा रहा है।

(1) आलेख – विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ आलेखों का वर्णन निम्नप्रकार है :–

(1) ऐतिहासिक उपन्यासों में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना –[94] इस आलेख में वृन्दावन लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, रांगेयराघव, हजारी प्रसाद द्विवेदी, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, मनु शर्मा, रामनाथ नीखरा, गोविन्द वल्लभ पंत, भगवती चरण वर्मा आदि के उपन्यासों की मूल संवेदना व्यक्त करते हुए कालचेतना के आधार पर विश्लेषण किया गया है।

(2) ऐतिहासिक उपन्यासों में चित्रित नारी –[95] इस आलेख में ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रमुख नारी पात्रों के माध्यम से नारी की नियति, नारी की अस्मिता, नारी अस्तित्व, प्रेम एवं संघर्ष के अनेक रूपों को दर्शाया गया है। शबरी, सीता, अहिल्या, अम्बिका, दिव्या, अम्बपाली कोशा,

चन्द्रलेखा,निपुणिका, आदि ऐतिहासिक नारी पात्रों के दर्द व पीड़ा के साथ–साथ अपनी अस्मिता के लिए प्रश्न करती विद्रोही भावना की अभिव्यक्ति का विवेचन किया है।

(3) भाषा और रचना विधान –[96] ऐतिहासिक उपन्यासों के रचना विधान एवं भाषा सौष्ठव की व्याख्या करते हुए 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के भाषा कौशल एवं भाषा के सर्जनात्मक रूप की विवेचना की गई है। आचार्य द्विवेदी अपनी कला में विरोधाभास उत्पन्न करके भी नए जीवन का आभास देते है। अतः शिल्प विशिष्ट है। ऐसा निष्कर्ष दिया गया है।

(4) पौराणिक देववाद और तुलसीदास –[97] डॉ मंजुला सक्सेना के शोध प्रबन्धकी अनुशीलनात्मक समीक्षा की गई है। शत्रुघ्न जी ने शोध में मध्ययुगीन पराधीनता के यथार्थ चित्रण को समुचित बताया है परन्तु तुलसी के सन्तुलित चरित्र में विशेषता है तथा आधुनिक समालोचकों के उद्धरण अधिक है जो अनिवार्य नहीं थे कह कर सार्थक समालोचना की है।

(5) आचार्य द्विवेदीका इतिहास–दर्शन और उपन्यास –[98] इस आलेख में शत्रुघ्नप्रसाद ने डॉ विश्वनाथ प्रसाद रचित "आचार्यहजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में अभिव्यक्त इतिहास दर्शन" ग्रन्थ की विवेचना इतिहास दर्शन एवं उपन्यास की भारतीय अवधारणा के आधार पर प्रस्तुत की है।

(6) भारतीय काव्य दृष्टि नई व्याख्या –[99] इस आलेख में डॉ विश्वनाथ प्रसाद रचित काव्य और संस्कृति का अन्तःसमबन्ध' नामक ग्रन्थ को काव्य दृष्टि की नयी व्याख्या कहा है। इस ग्रन्थ में काव्य को 'सत्यं, शिवम, सुन्दरम' एवं सत्य प्रिय हितं मानते हुए समग्रता से अपनाने का सफल प्रयास माना है।

(7) व्यंग्य और लघु कथा साहित्य [100]– इस आलेख में शत्रुघ्न प्रसाद ने भारतेन्दु, जयशंकर प्रसाद, निराला, अज्ञेय आदि की व्यंग्य रचनाओं से प्रारम्भ कर शरदजोशी, हरिशंकर परसाई, नरेन्द्र कोहली, ओंकार नाथ चतुर्वेदी, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, ज्ञान चतुर्वेदी आदि के व्यंग्य लेखन की व्याख्या करते हुए कहा है कि इसके लिए पैनी दृष्टि, तटस्थता ,सहजता एवं भाषा की शक्ति की अपेक्षा है। साथ ही डॉ सतीशराज पुष्करणा, डॉ स्वर्णकिरण, बालेन्दु शेखर तिवारी, मुकेश साहनी की लघुकथाओं का विवेचन करते हुए बताया है कि लघुकथा यथार्थ एवं मूल्यबोध को संक्षिप्तता एवं मार्मिकता के आधार पर प्रभावित कर सकती है।

(8) डॉ रामविलास विलास शर्मा की आर्य दृष्टि–[101] शत्रुघ्न प्रसाद विभिन्न उदाहरण देकर रामविलास शर्मा की आर्य दृष्टि को स्पष्ट करते हैं। उन्होंने कहा कि रामविलास शर्मा द्वन्द्वात्मक–भौतिकवाद पर आधारित आलोचना करते हुए भी भारतीय अद्वैतवाद को अस्वीकार नहीं करते। डॉ शर्मा ने आर्यों को सप्तसिन्धु का निवासी मानकर भारतीय राष्ट्रीयता को बल प्रदान किया है।

(9) दाराशिकोह की एकात्म चेतना और साहित्य –[102] डॉ मैनेजर पाण्डेय, इतिहासकार मजूमदार, रायचौधरी, के.के.दत्त, ईश्वरीप्रसाद, रामविलास शर्मा की कविता, उपन्यासकार भोलाशंकर व्यास आदि के उद्धरण देकर शत्रुघ्न प्रसाद ने दाराशिकोह की एकात्म साधना

औरंगजेब की महजबी कट्टरता के सामने असफल होती है। भारतीय जीवन की इस त्रासदी को दर्शाया गया है।

(10) अम्बपाली का दर्द–[103] वैशाली की नगरवधू अम्बपाली की पीड़ा एवं पुरूष द्वारा नारी शोषण के विभिन्न–आयोजनों का पर्दाफास करते हुए इस लेख में नारी अस्मिता की पहचान का प्रश्न उठाया गया है तथा उपभोक्तावादी मानसिकता के प्रति विद्रोह की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

(11) काठमांडो की गोद में –[104] इस यात्रा–निबन्ध में काठमांडो के रत्नपार्क, प्रभुपति नाथ मन्दिर, बागमती नदी, दक्षिण काली मन्दिर, स्वयंभू शिखर, भक्तपुर नगर, संग्रहालय आदि का चित्रण करते हुए वहाँ की समन्वयी संस्कृति का चित्रण किया है।

(12) कबीर का व्यंग्य सन्दर्भ –[105] आलेख में लेखक ने पन्द्रहवीं सदी की स्थितियों के वर्णन के साथ कबीर द्वारा समाज, ब्राह्मणवाद, ईस्लाम आदि की विसंगतियों पर किए व्यंग्य प्रहारों के उद्धरण देते हुए कहा कि क्रान्तिकारी कवि को समझने की पूर्ण चेष्टा नहीं हुई।

(13) हिन्दी उपन्यास और भारत विभाजन –[106] इस आलेख में भारत विभाजन पर आधारित झूठा सच, तमस, काले कोस, आधागाँव, प्रसव वेदना, जुलूस, विश्वासघात, देश की हत्या, धर्म पुत्र आदि उपन्यासों के कथ्य की भिन्नता स्पष्ट करते हुए विवेचना की गई है।

(14) अद्वैत क्रान्ति दृष्टा विवेकानन्द और निराला –[107] यूरोप से लौटने पर स्वामी जी ने कहा "हमारे उच्चवंशीय पूर्वज भारतीय सर्वसाधारण जनता को पददलित करने लगे। निराला ने गीतिका, अणिमा, कुकुरमुत्ता, जागो फिर एक बार आदि कविताओं में इसी भाव को व्यक्त किया है। दोनो की एकात्म चेतना एक है। यही दर्शाया है, इस आलेख में।

(15) ऐतिहासिक उपन्यासों में वृद्ध –[108] इस विमर्श में शत्रुघ्नप्रसाद ने ऐतिहासिक उपन्यासों के वृद्ध पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रदान किया है। अपने उपन्यासों के पात्रों की भी विवेचना प्रस्तुत की है। कुछ वृद्ध पात्र अपनी संतुलित मानसिकता से मार्गदर्शन का दायित्व निर्वाह करते हैं। कुछ वृद्ध अहंकार या रूढ़ धारणाओं से ग्रस्त होकर समाज की प्रगतिशील धारा को अवरूद्ध करते हैं। यही दर्शाया गया है।

(2) हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में काल–चेतना एवं संस्कृति – यह समीक्षात्मक ग्रन्थ 'विभोर प्रकाशन – इलाहाबाद से 2007 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें सर्वथा नयी दृष्टि एवं नये ढंग से समीक्षा की गई है। ऐतिहासिक उपन्यासों का कालचेतना के अनुसार विकास–क्रम दर्शाने का सर्वथा अभिनव प्रयोग हुआ है। कथ्य एवं कथावस्तु पर भी काल–चेतना एवं ऐतिहासिकता के आधार पर नवीन दृष्टिकोण से विचार हुआ है। यह ग्रन्थ पाँच अध्यायों में विभक्त हैः–1 ऐतिहासिक उपन्यास का स्वरूप 2 संस्कृति का स्वरूप 3 ऐतिहासिक उपन्यासों का विकास–क्रम 4 ऐतिहासिक उपन्यासों की काल चेतना 5 ऐतिहासिक उपन्यासों में संस्कृति बोध –[109]

(1) ऐतिहासिक उपन्यास का स्वरूप – इस अध्याय में उपन्यास को जीवन मूल्यों से समन्वित यथार्थ चेतना का कथाशिल्प बताया गया है। संस्कृत गद्य में रचित कथा सरित सागर, पंचतंत्र, कादम्बरी, हर्षचरित, दशकुमार चरित आदि में कथारूप का बीज दर्शाते हुए भी आधुनिक उपन्यास को अंग्रेजी नॉवेल से अनुप्राणित बताया गया है। उपन्यास के स्वरूप व इतिहास के स्वरूप को विभिन्न विचारकों की परिभाषा एवं कथनों के माध्यम से विवेचित किया गया है।

(2) संस्कृति का स्वरूप – इस अध्याय में संस्कृति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए संस्कृति और अर्थ, संस्कृति और काम, संस्कृति और समाज, संस्कृति और साहित्य, संस्कृति और कला संस्कृति एवं राष्ट्रबोध एवं विश्वबोध के मानकों के आधार पर संस्कृति के अन्त संबंधों एवं स्वरूप को समझाने का सफल प्रयास किया गया है।

(3) ऐतिहासिक उपन्यासों का विकास क्रम– इस अध्याय में उपन्यास के उद्भव एवं विकास को मुख्यतः ऐतिहासिक उपन्यास के विकास को सुस्पष्ट ढंग से दर्शाया गया है। ऐतिहासिक उपन्यास का प्रथम उत्थान काल किशोरीलाल गोस्वामी युग कहा गया है। सत्यपाल चुघ ने भी इस काल को यही नाम दिया था। दूसरा उत्थानकाल वृन्दावन लाल वर्मा युग, तृतीय, उत्थान युग को हजारी प्रसाद–चतुरसेन युग, चतुर्थ उत्थान युग को शिवप्रसाद सिंह – नरेन्द्र कोहली युग नाम देकर प्रमुख उपन्यासों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

(4) ऐतिहासिक उपन्यासों की कालचेतना – इस अध्याय में काल चेतना का अर्थ एवं स्वरूप स्पष्ट करते हुए काल चेतना के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यासों का वर्गीकरण करके उनमें व्याप्त कालचेतना का विवेचन गहन–गम्भीर दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। कालक्रम के अनुसार–वेदकालीन उपन्यास, राम–कृष्ण कालीन, श्रमणकालीन, चाणक्य–पुष्यमित्र युगीन, प्रथम सदी से दसवीं सदी कालीन, ग्यारहवीं सदी से सत्रहवीं सदी कालीन, अठारवीं से बीसवीं सदी कालीन नाम देकर उपन्यासों का विभाजन किया गया है। यह श्रमसाध्य एवं दुष्कर प्रयास रहा है। लेखक का वर्गीकरण महत कर्म है। साथ ही यह भी विवेचन किया गया है कि एक ही युग व कथानक पर आधारित कथा भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण व विचारधारा के अनुसार कैसे प्रस्तुत की जाती है। व्यापक अर्थ एवं सन्दर्भ निकालने में सुगमता रहती है। समग्र दृष्टि निर्मित होती है।

(5) ऐतिहासिक उपन्यासों में संस्कृति बोध – इस अध्याय में प्रकृति और संस्कृति, युग–युग के सांस्कृतिक द्वन्द्व, आत्मा–परमात्मा, उपासना, मानव जीवन का प्रयोजन एवं पुरूषार्थ, प्रेम, विवाह, नारी आस्मिता, समाज, दलित, राष्ट्रबोध, साहित्य एवं कला, पर्वोत्सव, चरित्रगत सांस्कृतिक भूमि, आदि भावों एवं विचारों के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन–विवेचन प्रस्तुत किया गया है। समग्रतः यह ग्रन्थ ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य पर मौलिक, गम्भीर, गहन विवेचन प्रस्तुत करता है। नवीन दृष्टि के साथ कालगत विवेचन का प्रयत्न किया गया है जिसमें ऐतिहासिक उपन्यासों की भाव–भूमि को भिन्न दृष्टियों से समझने की सुलभता व सहजता उपलब्ध है।

3.3.4. ऐतिहासिक उपन्यास –

शत्रुघ्न प्रसाद की अक्षय ख्याति का आधार उनके ऐतिहासिक उपन्यास ही हैं। ऐतिहासिक सृजन में ही उनका मन सबसे ज्यादा रमा है एवं उनकी सृजनात्मक क्षमता ने व्यापक आकार ग्रहण किया है। नालन्दा एवं उदन्तपुरी के खण्डहरों से उपजी संवेदना, वृन्दावनलाल वर्मा आदि के उपन्यासों के अध्ययन, स्वतन्त्र भारत के द्वन्द्वित जीवन आदि ने ऐतिहासिक यर्थाथ को अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित किया। परणिामस्वरूप ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना होने लगी। प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास निम्न हैः–

(1) सिद्धियों का खण्डहर – शत्रुघ्न प्रसाद रचित प्रथम उपन्यास का लघुसंस्करण 1983 ई. में साहित्य संसद–नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ। 2009 ई. में यह सम्पूर्ण रूप में प्रकाशित किया गया। 256 पृष्ठों का यह उपन्यास 66 परिच्छेदों में विभाजित है। इस उपन्यास में 12 वीं सदी के भारत के यर्थाथ – चित्रण के साथ–साथ नालन्दा, उदन्तपुरी और पाटलिपुत्र जैसे गौरवमयी केन्द्रों के खण्डहरों में बदलने की गाथा कही गई है। बौद्ध धर्मावलम्बी पालवंश के शासक गोविन्दपाल की अन्ध आस्था एवं सैनिक दुर्बलता, बौद्ध सिद्धों की सहजसाधना में आई आचरणहीनता, तन्त्र शक्ति पर अतिशय विश्वास, ब्राह्मण–बौद्ध संघर्ष आदि कमजोरियों से ग्रस्त मगध साम्राज्य के उदन्तपुरी, पाटलिपुत्र, मणिमती (मुनेर) नगरों एवं नालन्दा एवं विक्रमशीला जैसे के विद्यापीठों इख्तियार – बिन बरिव्तयार खिलजी द्वारा नष्ट किए जाने की मर्मान्तक पीड़ा है –सिद्धियों का खण्डहर [110]

(2) शिप्रा साक्षी है– शकारि विक्रमादित्य द्वारा शकों के पराभव की कथा 'शिप्रा साक्षी है', शत्रुघ्नप्रसाद रचित दूसरा उपन्यास है जो साहित्य संसद – नई दिल्ली द्वारा 1986 ई. प्रकाशित हुआ। इकसठ परिच्छेदों में विभक्त यह उपन्यास 256 पृष्ठों में लिखा गया है। यद्धपि इस उपन्यास की रचना 'सिद्धियों के खण्डहर' से पूर्व हुई, परन्तु प्रकाशन बाद में हुआ। ईसवी पूर्व प्रथम सदी के भारत का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। महाराज गंधर्वसेन (गर्दभिल्ल) द्वारा राजमद में राजकर्तव्य की मर्यादा का हनन करते हुए जैन साध्वी सरस्वती का अपहरण करने, साध्वी के भाई कालकाचार्य द्वारा क्षुब्ध होकर शकों को आमंत्रित करने, शकों द्वारा उज्जयिनी पर अधिकार कर लेने और गंधर्वसेन के पुत्र विषमशील (विक्रमदित्य) द्वारा शक्ति संचित कर शकों के पराजित करने की कथा 'शिप्रा साक्षी है' में उपन्यस्त की गई है।[111]

(3) हेमचन्द्र–विक्रमादित्य – सत्साहित्य प्रकाशन–नई दिल्ली से 1989 में प्रकाशित 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' शत्रुघ्नप्रसाद द्वारा रचित तीसरा उपन्यास है। सड़सठ परिच्छेदों में विभक्त यह उपन्यास 366 पृष्ठों में लिखा गया है। यह उपन्यास 'हेमू की आँखे' नाम से प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में सोलहवीं सदी के पूर्वार्द्ध के राजनैतिक–सांस्कृतिक–सामाजिक द्वन्द्व को चित्रित किया गया है। अफगान–मुगल संघर्ष की

उथल–पुथल में रेवाड़ी का व्यापारी पुत्र हेमू अफगान सेनापति बन जाता है और 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' के नाम से शासन की बागडोर हाथ में ले लेता है अफगान–मुगलों को जोड़कर एक करने का सपना देखता है। पानीपत के दूसरे युद्ध में पराजय होती है। इतिहास में उपेक्षित नायक 'हेमचन्द्र' को केन्द्र में रखकर उस काल की त्रासद राजनैतिक उथल–पुथल का यथार्थ चित्रण आधुनिक संचेतना के साथ किया गया है।[112]

(4) सुनो भाई साधो – भक्तिकाल के निर्गुण सन्त कबीरदास के जीवन एवं उस काल के युगीन यथार्थ को अभिव्यक्त करता हुआ शत्रुघ्न प्रसाद का चौथा उपन्यास 'सुनो भाई साधो' 1999 ई. में 'नेशनल पब्लिशिंग हाउस' नई दिल्ली से प्रकाशित है। 280 पृष्ठों में लिखित यह उपन्यास पैंसठ परिच्छेदों में विभक्त है। इस उपन्यास में पन्द्रहवीं सदी के सांस्कृतिक द्वन्द्व के साथ–साथ जातिगत एवं धर्मगत द्वन्द्व, धर्मान्तरण की समस्या, मजहबी सियासत, शूद्र व सामान्य वर्ग की दयनीय अवस्था, शासन की क्रूरता आदि का साक्षात् चित्रण हुआ है। इस ऐतिहासिक यथार्थ को प्रत्यक्ष करने का सफल प्रयास हुआ है कि कबीर और समकालीन शासक निजामशाह यानी सुल्तान सिकन्दर लोदी दोनों हिन्दू माँ की सन्तान हैं परन्तु दोनों का चरित्र एक दूसरे के विपरीत। एक मजहबी सियासत्त की असहिष्णुता के बल पर सत्तासीन बनता है और दूसरा समता भाव लेकर एकात्म मानवता का पक्षधर बनकर निर्भीक एवं क्रान्ति द्रष्टा महात्मा बन जाता है। यही यथार्थ व्यक्त किया गया है।[113]

(5) तुंगभद्रा पर सूर्योदय – पुस्तक भवन–नई दिल्ली से 2001 ई. में प्रकाशित शत्रुघ्न प्रसाद रचित यह पाँचवा उपन्यास है। तिरेसठ परिच्छेदों एवं 304 पृष्ठों में चौदहवीं सदी के भारत का परिवेशगत सम्पूर्ण यथार्थ पूरी मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। मुहम्मद तुगलक द्वारा सम्पूर्ण दक्षिण भारत को पद–दलित करने, हरिहर–बुक्का द्वारा अथक संघर्ष का सामना करते हुए अद्वैतवादी आचार्य माधव के प्रयास से सभी धर्मगत एवं पंथगत भेदों को भुलाकर एकत्व भाव की प्रतिष्ठा कराना ही इस उपन्यास की मूल चेतना है।[114]

(6) कश्मीर की बेटी – कश्मीर की मर्मान्तक पीड़ा को अभिव्यक्त करता शत्रुघ्न प्रसाद रचित छठवाँ उपन्यास 'कश्मीर की बेटी' सत्साहित्य प्रकाशन – नई दिल्ली द्वारा 2002 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में 1320 ई. से 1339 ई. के बीच कश्मीर में व्याप्त राजनैतिक उथल–पुथल के मध्य कश्मीर की अन्तिम शासिका कोटा देवी की आत्महत्या एवं अफगान शरणार्थी शाहमीर द्वारा कश्मीर की सत्ता पर अतिक्रमण करने की मार्मिक कथा उपन्यस्त की गई है। कश्मीर का आज इस विगत का परिणाम है ऐसे संदेश के साथ कश्मीर का सम्पूर्ण दर्द इस उपन्यास में अभिव्यक्त हुआ है।[115]

(7) अरावली का मुक्त शिखर – स्वातन्त्र्यवीर महाराणा प्रताप और साम्राज्यलिप्सु अकबर के मध्य हुए सोलहवीं सदी के स्वातन्त्र्य संघर्ष की गाथा 'अरावली का मुक्त शिखर' शिवांक प्रकाशन – नई दिल्ली से 1914 में प्रकाशित हुआ। शत्रुघ्न प्रसाद रचित सातवाँ उपन्यास

226 पृष्ठों में लिखित एवं तैयांलीस परिच्छेदों में विभक्त है। इस उपन्यास में शत्रुघ्न प्रसाद ने मेवाड़ एवं मुगल दरबार के यथार्थ चित्रण को नूतन दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इसमें जोधाबाई की विवशता, अकबर का विलासमयी साम्राज्यवादी व्यक्तित्व, महाराणा प्रताप के स्वतंत्र, बलिदानी एवं उदार चरित्र का गरिमामयी चित्रण हुआ है।'[116]

(8) शहजादा दाराशिकोह : दशहत का दंश – मजहबी सियासत की कट्टरता का दशहतपूर्ण परिवेश दर्शाता यह उपन्यास शत्रुघ्न प्रसाद की आठवीं प्रस्तुति है। यह उपन्यास वाणी प्रकाशन–दिल्ली से 2015 में प्रकाशित हुआ है। 75 परिच्छेदों में विभक्त 291 पृष्ठों में लिखित यह उपन्यास औरंगजेब कालीन धर्मान्ध राजनीति की भयानकता का निदर्शन है। उदारचेता दाराशिकोह एवं संत सरमद को कट्टर मजहबी सियासत का दुष्परिणाम भोगते हुए पराजय एवं जीवन का अंत भोगना पड़ता है। जहाँ आरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा, दारा की पुत्री आलमआरा, पंडित जगन्नाथ, मथुरा का गोकुल जाट, सिक्ख गुरू हरेकिशन एवं तेगबहादुर सतनामी सभी को संघर्ष एवं दहशत में जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। सम्पूर्ण उपन्यास महजबी (धर्मान्ध) कट्टरता के भय और आतंक की छाया में काँपती कहानी कहता है। सत्रहवीं सदी का दहशतपूर्ण यथार्थ अभिव्यक्त है – दाराशिकोह : दहशत का दंश में।[117]

(9) सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद रचित नवम् उपन्यास 'सरस्वती–सदानीरा' नेशनल पब्लिशिंग हाउस–नई दिल्ली द्वारा 2015 में प्रकाशित हुआ। 70 परिच्छेदों में विभक्त यह उपन्यास 279 पृष्ठों में लिखा गया है। वैदिक युग के तत्वचेता ऋषि याज्ञवल्क्य द्वारा की गई सरस्वती नदी से सदानीरा (गण्डक) नदी तक की सांस्कृतिक यात्रा का संघर्षमयी चित्रण सांस्कृतिक द्वन्द्व के साथ प्रस्तुत हुआ है। यहाँ आर्य–अनार्य संघर्ष विभिन्न संस्कृतियों के द्वन्द्व के रूप में दर्शाया गया है। इस उपन्यास में महासैन्धव पणिक संस्कृति एवं आर्य कृषक संस्कृति, सप्तसिंधु प्रदेश की यज्ञीय संस्कृति, विभिन्न क्षेत्रों में विकासित नाग, यक्ष, किन्नर संस्कृति, विदेह जनपद की आध्यात्मिक संस्कृति एवं कीकट प्रदेश की व्रात्य संस्कृति का चित्रण एवं आपसी द्वन्द्व वैचारिक टकराहट के साथ व्यक्त हुआ है। वैदिक–व्रात्य समन्वय एवं जन्मना के स्थान पर कर्मणा समाज व्यवस्था की स्थापना इस उपन्यास की मूल चेतना है।[118]

शत्रुघ्न प्रसाद निरन्तर ऐतिहासिक उपन्यास लेखन में लगे हुए हैं। 'तख्ते ताउस की छाया में' 'श्रावस्ती का विजय पर्व' एवं 'आहों का उल्लास' उपन्यास प्रकाशनाधीन है। 'आहों का उल्लास' भारत–विभाजन की त्रासदी पर आधारित है। 'तख्ते–ताउस की छाया में 'औरंगजेब के शासनकाल में हुए सतनामी विद्रोह (1673ई.), शिवाजी के राज्याभिषेक (1674ई.) एवं कश्मीरी ब्राह्मणों की रक्षा में गुरूतेगबहादुर जी के बलिदान (1675) का वृतान्त है। 'श्रावस्ती का विजयपर्व' श्रावस्ती (कौशल) के इतिहास की एक महत्वपूर्ण एवं गौरवशाली ऐतिहासिक घटना पर आधारित उपन्यास है। इसमें सुहेलदेव द्वारा गजनवी के सेनापति को पराजित करने की घटना उपन्यस्त है।"[119]

संदर्भ सूची –

1. औरों के बहाने – राजेन्द्र यादव, पेज – 132–133

2. साहित्य का श्रेय व प्रेय – जैनेन्द्र कुमार, पेज – 317–318

3–4. राजेन्द्र परदेशी के साथ शत्रुघ्न प्रसाद की बातचीत – शीघ्र प्रकाश्य

5. ललित फुलारा के साथ शत्रुघ्न प्रसाद की बातचीत – शीघ्र प्रकाश्य

6–8. राजेन्द्र परदेसी के साथ शत्रुघ्न प्रसाद की बातचीत – शीघ्र प्रकाश्य

9. रामचरित मानस तुलसीदास, पेज – 609

10. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 8

11–13. ग्लोबल गाँव का देवता – रणेन्द्र कुमार – आमुख

14. सदानीरा – सं. शत्रुघ्न प्रसाद अगस्त अक्टूबर – 2015, पेज – 54–55

15–16. उपन्यास और लोकतंत्र – मैनेजर पाण्डेय, पेज – 208, 216

17–21. पत्रव्यवहार द्वारा ज्ञात

22. सदानीरा – सं. – शत्रुघ्न प्रसाद – अगसत – अक्टूबर 2015, पेज – 64

23. अकुलाहटें मेरे मन की – महिमा श्री, पेज –5

24–27. पत्र व्यवहार द्वारा ज्ञात

28. राजेन्द्र परदेशी के साथ शत्रुघ्न प्रसाद की बातचीत – शीघ्र प्रकाश्य

29. साक्षात्कार पत्रिका – अरूण भगत के साथ शत्रुघ्न प्रसाद की बातचीत, पेज – 10

30–33. राजेन्द्र परदेशी के साथ शत्रुघ्न प्रसाद की बातचीत – शीघ्र प्रकाश्य

34. साक्षात्कार पत्रिका – अरूण भगत के साथ शत्रुघ्न प्रसाद की बातचीत, पेज – 8

35–36. राजेन्द्र परदेशी के साथ शत्रुघ्न प्रसाद की बातचीत – शीघ्र प्रकाथ्य

37. मधुमती – अक्टूबर – 1991, पेज – 49

38. वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन– डॉ. कृष्ण अवस्थी, पेज– 110

39–40. पत्र व्यवहार

41–42. राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय सम्मान अलंकरण समारोह – साहित्य अकादमी भोपाल – 2007–08, पेज – 25–27

43. अमृतलाल नागर की कथा दृष्टि के समय शास्त्रीय आयाम –डॉ सरोज सिंह, पेज– 21

44. हरिशंकर परसाई व्यक्तित्व एवं कृतित्व – डॉ मनोहर देवलिया, पेज – 30

45. आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. पद्मजा शर्मा – उद्धृत, पेज – 28

46. महिमा श्री से रघुवीर सिंह की बातचीत
47. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज –12
48. शत्रुघ्नप्रसाद से रघुवीर सिंह की बातचीत
49. महिमा श्री से रघुवीर सिंह की बातचीत
50. राजेन्द्र परदेशी के साथ शत्रुघ्नप्रसाद की बातचीत – शीघ्र प्रकाश्य
51. संस्मरण – अरूण भगत लिखित अप्रकाशित संस्मरण
52. महिमा श्री से रघवीर सिंह की बातचीत
53. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्नप्रसाद – अपनी बात, पेज – 5
54. पत्र व्यवहार से ज्ञात
55. महिमा श्री से रघुवीर सिंह की बातचीत
56. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 8
57. संस्मरण – अरूण भगत लिखित संस्मरण – शीघ्रप्रकाश्य
58. महिमा श्री से रघुवीर सिंह की बातचीत
59. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन –डॉ कृष्णा अवस्थी, पेज–110
60. पत्र व्यवहार से ज्ञात
61. महिमा श्री से रघुवीर सिंह की बातचीत
62. पत्र–व्यवहार से ज्ञात
63–80. अनास्था के आस–पास – शत्रुघ्न प्रसाद , पेज – 1, 3, 5, 4, 6, 7, 8, 10, 12, 14, 15, 18, 19, 23, 2, 41, 40, 39
81. वही – भूमिका
82. हमारा दृष्टिकोण – डॉ विमल सिंहल, पेज – 25
83–87. अनथके चरण – शत्रुध्न प्रसाद, पेज – 12, 28, 44, 58, 83
88–93. देशभक्त संन्यासी विवेकानन्द – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 1, 4, 30 82, 97, 107
94. समन्वय – डॉ सदानन्द गुप्त – अप्रैल 2009, पेज – 17
95. साहित्येतिहास में स्त्री–विमर्श – प्रज्ञा प्रकाशन – पटना – 2010, पेज– 314
96. बाणभट्ट की आत्मकथाः पाठ एवं पुनर्पाठ – सं. मधुरेश – 2015, पेज – 265
97. मधुमती –रा.सा.अ. उदयपुर – जुलाई – 1998, पेज – 97
98. मधुमती – जनवरी – 2005, पेज – 39
99. मधुमती – जनवरी – 2006, पेज – 39
100. मधुमती – जून – 2008, पेज – 130
101. मधुमती – अक्टूबर – 2006, पेज – 9
102. मधुमती – फरवरी – 2007, पेज – 38
103. मधुमती – सितम्बर – 2007, पेज – 32

104. मधुमती – अक्टूबर – 1991, पेज – 49

105. मधुमती – अगस्त – 1993, पेज – 9

106. मधुमती – अगस्त – 1998, पेज – 108

107. मधुमती – फरवरी – 1997, पेज – 18

108. विभाषा संसृति – प्रज्ञा परिषद् पटना–अक्टूबर–दिसम्बर–2015, पेज–109

109. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कालचेतना एवं संस्कृति – शत्रुघ्नप्रसाद, विषयसूची

110. सिद्धियों के खण्डहर – शत्रुघ्नप्रसाद

111. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्नप्रसाद

112. हेमचन्द विक्रमदित्य – शत्रुघ्नप्रसाद

113. सुनो भाई साधो – शत्रुघ्नप्रसाद

114. तुंगभद्रा पर सूर्योदय – शत्रुघ्नप्रसाद

115. कश्मीर की बेटी – शत्रुघ्नप्रसाद

116. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्नप्रसाद

117. शहजादा दारशिकोहः दहशत का दंश – शत्रुघ्नप्रसाद

118. सरस्वती सदानीरा – शत्रुघ्नप्रसाद

119. शत्रुघ्नप्रसाद के साथ पत्र व्यवहार से ज्ञात

.

तृतीय अध्याय

शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यास : कथ्य एवं शिल्प

तृतीय अध्याय

शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासः कथ्य एवं शिल्प

साहित्यकार समाज को देखता, समझता और महसूस करता है। अपनी इस अनुभूति को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। साहित्य के माध्यम से लेखक समाज को जो कुछ कहना चाहता है, वह कथ्य कहलाता है। साहित्यकार समाज के प्रति अपनी संवेदना को घटनाओं एवं पात्रों के माध्यम से नियोजित कर अपनी रचना के माध्यम से सम्प्रेषित करता है। साहित्यिक भाषा का अर्थ सन्दर्भों के आधार पर सामने आता है। उसका यह समस्त नियोजन रचना का 'शिल्प विधान' कहलाता है। अतः कथ्य एवं शिल्प का शब्दकोषीय अर्थ साहित्यिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं होता, इनका संदर्भित अर्थ महत्वपूर्ण होता है।

साहित्य में व्यक्त समाज ही साहित्य का कथ्य होता है। अयोध्या सिंह उपाध्याय के अनुसार "साहित्य समाज का जीवन है। यह उसके उत्थान–पतन का साधन है। साहित्य वह आलोक है जो देश को अन्धकार रहित, जाति–मुख को उज्जवल और समाज के प्रभावहीन नेत्रों को सप्रभ रखता है।"[1] हिन्दी साहित्य के युगनेता एवं कथा सम्राट प्रेमचन्द ने इसे और स्पष्ट करते हुए लिखा कि– "लिखते वे लोग हैं जिनके अन्दर कुछ दर्द है, अनुराग हैं, लगन है, विचार है।.........हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो , स्वाधीनता का भाव हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष एवं बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं।"[2] साहित्य को मानवतावादी दृष्टि से परखते हुए जयशंकर प्रसाद ने कहा है कि– "साहित्य समाज की वास्तविक स्थिति क्या है, इसको दिखाते हुए भी उसमें आदर्शवाद का सामंजस्य स्थिर करता है। दुख–दग्ध जगत् और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है।.........उसमें विश्व मंगल की भावना ओत–प्रोत रहती है।"[3] साहित्य को बहुजन हिताय के लिए निष्ठारत सिद्ध करते हुए रांगेय राघव ने व्यक्त किया है कि– "साहित्य रचना का उद्देश्य है मानव के यथार्थ सत्य में छिपे आत्मा के सौन्दर्य को खोजकर भाव के माध्यम से, विचार से समन्वय करके प्रस्तुत करना। इस उद्देश्य को साहित्यकार तभी प्राप्त कर सकता है, जब वह युग के प्रति ईमानदार हो और बहुजन हिताय को ही अपना समपर्ण करे।"[4] हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य द्वारा मानव को सच्चा मनुष्य बनाने का माध्यम स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार– "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और पर मुखापेक्षिता से न बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न कर सके, जो उसके हृदय को संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।"[5] इस प्रकार साहित्य मानवीय सत्य एवं संवेदना की अभिव्यक्ति करता है। उपन्यास भी साहित्य का विशिष्ट एवं आधुनिक रूप है। धीरेन्द्र वर्मा ने स्पष्ट किया है कि– "उपन्यासकार कलाकार होने के अतिरिक्त सामाजिक प्राणी भी होता है। जब वह किसी कथा को उपन्यास के रूप में कहने का निश्चय करता है,

तभी उसके मन में कथा सूत्र के साथ वह जीवन दृष्टि मूर्त होने लगती है जो उसने अपने सांसारिक जीवन के अनुभव स्वरूप उपलब्ध की है।.......विश्व के अनेक महान् चिन्तकों ने गम्भीर मनीषा से उपलब्ध स्थायी सत्यों और मानव मूल्यों को इसी माध्यम से प्रचारित किया है जिससे उपन्यास केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं रहा, वह महान् सत्यों और नैतिक आदर्शों का अत्यन्त मूल्यवान साधन बन गया है।"[6] इस प्रकार सिद्ध होता है कि देश, समाज एवं मानव जीवन सत्य एवं जीवन दर्शन का जो चित्रण साहित्य में होता है वही कथ्य होता है। कथ्य, शिल्प तथा इनके अर्न्तसम्बन्ध को समझ लेना भी आलोच्य अध्याय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

3.1 कथ्य एवं शिल्प का अर्थ –

वृहद हिन्दी कोश,[7] नालन्दा विशाल शब्द सागर[8] एवं हिन्दी शब्द कोश[9] में कथ्य का अर्थ कहने योग्य एवं कथनीय दिया गया है तथा शिल्प का अर्थ कला आदि कर्म, शैली से ज्यादा वह उपादान जिसके द्वारा रचनाकार अपनी भावनाओं को विशेष ढंग से व्यक्त कर पाता है, कला सम्बन्धी व्यवसाय व कारीगरी तथा साहित्य रचना का ढंग बताया गया है।

समान्तर कोश[10] में कथ्य का अर्थ अभिधेय, अभिप्राय, आशय, तात्पर्य, भावार्थ, भाव आदि तथा शिल्प का अर्थ कथा शैली, रचना विन्यास, निर्मिति, बनावट रचना शैली आदि दिए गए हैं। सामान्यतः कथ्य कथाकार का अभिप्राय या विचार है तथा शिल्प वह पद्धति या तरीका है जिसके माध्यम से लेखक अपना मंतव्य समाज में संप्रेषित करता है। डॉ उषा लाल ने लिखा है कि– "शिल्प शब्द की उत्पत्ति 'शील' धातु में 'प' प्रत्यय जोड़ने से हुई है जिसका अर्थ है– शैली, कार्यपद्धति, विशेष उपाय, यंत्र, चातुर्य, प्रविधि। 'शिल्पविधि' स्थूलतः अंग्रेजी के टैकनीक की रूपान्तर है जिसका अर्थ रचना पद्धति एवं रचना तंत्र से है।" डॉ प्रेम भटनागर ने कथ्य एवं शिल्प का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि– "शिल्प किसी कलाकार की कला द्वारा अभिव्यक्त भाव एवं चिंतन धारा को स्पष्ट करने का साधन या विधा है।......शिल्प वस्तुतत्व से कहीं अधिक शक्तिमान एवं समृद्धि विधा है क्यों कि इसके अन्तर्गत वस्तुगठन योजना, चरित्रांकन विधि, संवाद परिकल्पना वातावरण नियोजन विचार संचालन तथा भाषा एवं शैली तत्व का नियोजन होता है।"[12] शैली एवं शिल्प को स्पष्ट करते हुए कहा है कि– शैली अभिव्यक्ति का विशिष्ट अंग है। शैली तो शरीर है और विचार इसकी आत्मा है, इसके माध्यम से ही यह अभिव्यक्त होती है। ....शैली से अभिप्राय उस विशिष्ट एवं वैयक्तिक अभिव्यक्ति विधि से है– जिसके द्वारा हम किसी लेखक को पहचानते है......शिल्प विधा का सम्पूर्ण ढाँचा है तो शैली उस ढाँचे की अभिव्यक्ति की रीति..........शिल्प शैली का स्वामी है।......शिल्प कथा कैसे नियोजित हो, पात्र कैसे नियोजित हो, जीवन दर्शन कैसे समायोजित हो, यह निश्चित करने की विधि है।"[13] परन्तु यह शिल्प कथाकार के दृष्टिकोण या उसके विषय पर निर्भर करता है, वस्तुतः यह बाहरी रूप है। पर्सी लुब्बक को उदघृत करते हुए प्रेम भटनागर ने

लिखा है कि– "उपन्यास कला की शिल्प विधि अथवा कारीगरी की जटिलता का निर्धारण मूलतः कथाकार के दृष्टिकोण पर निर्भर है। कथाकार का कथा के साथ जो दृष्टि वाचन संबंध होता है, वही आखिर में उपन्यास का शिल्प निर्धारण करता है।...........स्कॉट जेम्स ने तो यहाँ तक कहा है कि– यह(रूपाकर) तो कलाकार के मन द्वारा विषयवस्तु पर आरोपित बाह्म रूप है।"[14] कहीं–कहीं सर्जना–शक्ति को ही महत्वपूर्ण मानते हुए शिल्प की अनिवार्यता को अस्वीकार भी किया गया है या माना जाए कि विचारों का अभिव्यक्तिकरण शिल्प स्वतः ही निर्मित कर लेता है। जैनेन्द्र ने माना है कि– "शिल्प अनावश्यक नहीं है। कारीगरी को किसी तरह छोटी चीज नहीं समझा जा सकता, लेकिन उससे किनारे बनते हैं, नदी का पानी नहीं बनता।......शरीर शास्त्रविद् हुए बिना भी जैसे प्रेम के बल पर माता–पिता बनकर शिशु सृष्टि की जा सकती है वैसे ही बिना टेकनीक की मदद से साहित्य सिरजा जा सकता है।"[15] भाव और कला मिलकर ही सर्जना सम्भव होती है। प्रमुखता भाव की हो चाहे कला की। रामदरश मिश्र ने स्पष्ट कहा है कि– "आखिर सर्जना है क्या? वह मनुष्य के भावों, संवेदनाओं और विचारों की एक कलात्मक अन्विति है।.......सर्जना ही बड़ा सत्य है।"[16] कला कृति को सौन्दर्य बोध देती है। शिल्प और कला को पर्याय माना जाता है। कथा रस को कला उत्कर्ष प्रदान करती है। धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है– "कला मानव संस्कृति की उपज है। निसर्ग से युद्ध करते हुए मानव ने श्रेष्ठ संस्कार के रूप में जो कुछ सौन्दर्य–बोध प्राप्त किया है, कला शब्द से उसका अन्तर्भाव है।...........कलाएँ अनेक हैं परन्तु ध्येय सर्वत्र एक है, सौन्दर्य का अनुसंधान एवं रसानुभूति।"[17] रचनात्मक सर्जन में रचनाकार के विचार के साथ–साथ कला का समावेश भी रचना की श्रेष्ठता का परिमाण माना ही जाता है मैनेजर पण्डेय ने लिखा है कि– "यथार्थ के अनुभव, चयन, व्याख्या, मूल्यांकलन, रूपान्तरण और अभिव्यक्ति की प्रक्रिया स्वतः चालित प्रक्रिया नहीं होती। इसमें रचनाकार की विश्व दृष्टि के साथ–साथ कला–दृष्टि की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।"[18] उपन्यास की रचना केवल विचारों का परिणाम नहीं होती उसमें अनेक उपदानों का योगदान रहता है। गोपालराय ने उल्लेख किया है कि– "उपन्यास को ध्यान में रखे तो कथ्य, विजन, संवेदना, अनुभव, विचार, कथा, पात्र, परिवेश, भाषा आदि उसके प्रमुख उपादान है। इन्हीं से उपन्यास बनता है। इन्हीं का संयोजन संरचना है।"[19] विचारों, भावों और संवेदनाओं के प्रस्तुतीकरण में शिल्प अनायास या सायास निर्मित होता रहता है। सदाशिव द्विवेदी ने लिखा है कि– "रचना के दो पक्ष हमेशा रचना प्रक्रिया के ठोस स्वरूप का गठन करते हैं कथ्य और शिल्प। शिल्प निर्माण है, कथ्य उसका आश्रय।.....
.कथा शिल्प के अन्तर्गत आ सकती है जिनका सम्बन्ध कथ्य से है। कथ्य की भंगिमा, भाषा, शैली, उद्देश्य, रूप, रीति, रचनाकार, पात्र और परिवेश।........ये सारी चीजें जब रचना उत्पादन के अनुकूल अपने आवश्यक परिणाम की रचना के लिए सन्नद्ध होती है तब शिल्प का जन्म होता है।"[20] विचारों का कारीगरी के साथ संयोजन आन्तरिक और बाह्म सौन्दर्य का मेल है। धीरेन्द्र वर्मा ने स्पष्ट किया है कि– "साहित्य तथा काव्य का अन्तरंग उसका बोध पक्ष है और

बहिरंग कला पक्ष। बहिरंग काव्य को उत्कर्षमय बनाते है तो अन्तरंग कलापक्ष अर्थात् बहिरंग को सार्थकता प्रदान करते हैं।"[21] डॉ उषा लाल के कथनानुसार अच्छी कलाकृति वही है जिसमें कथ्य एवं रूप का सामंजस्य हो। "अच्छी कलाकृति वह है जिसमें विषय और रूप एकरूप और अभिन्न हो। जिसमें सारा विषय शिल्पित हो जाए और सारा शिल्प विषयाभिव्यक्ति करे।"[22] कथ्य और शिल्प की अन्तरंगता को उपन्यास के ही लिए व्याख्यायित करते हुए शशिभूषण सिंहल ने कहा है कि– उपन्यासकार देखे सुने जीवन को अपने व्यक्तिगत सामर्थ्य के अनुसार समझता है। उसकी जीवन सम्बन्धी यह समझ या धारणा उसकी रचना की मूल दृष्टि है। यह दृष्टि उपन्यास का कथ्य है और कथ्य को 'जीवन–चित्र' में परिणत करने की विधि उपन्यास का शिल्प है। उपन्यास में पात्र अपने मूल स्वभाव के अनुसार गतिशील रहते हैं। गतिविधि के परिणामस्वरूप उसके जगत में जो परिस्थिति सूत्र विकसित होता है वह कथा है। अतः उपन्यास का आकार कथा है। गति पात्र है और आत्मा कथ्य है।"[23] निष्कर्षतः किसी भी रचना में रचनाकार की अनुभूति और संवेदना को वस्तु तत्व से अलग करके नहीं देखा जा सकता है क्यों कि उसमें केवल वस्तु और संवेदना ही नहीं बल्कि भाषा, शिल्प व विचार का भी समावेश संरचनात्मक होता है। संरचना का अर्थ विभिन्न वस्तु तत्वों एवं रूप सम्बन्धित भिन्न–भिन्न गुणों को एकरूप प्रदान करना होता है। अतः रचना की पाठालोचना में संरचना के स्वरूप को समझना आवश्यक होता है जिसमें कथ्य एवं शिल्प दोनों का मूल्यांकन अपेक्षित है।

3.2 शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में कथ्य–

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास अतीतकालीन जीवन की कथा लेकर अतीत को वर्तमान और भविष्य को जोड़ने का प्रयास है। ये उपन्यास अतीत–वर्तमान एवं भविष्य को अनवरत कड़ी के रूप में दर्शाने की चेष्टा है। इन उपन्यासों में उपन्यासकार ने अतीतकालीन गौरवमयी प्रसंगों के साथ–साथ पतनशील कालखण्डों को भी विषय वस्तु बनाकर अतीतकालीन सत्य का चित्रण किया है। अतीत की सभी सबलताओं एवं दुर्बलताओं को निरपेक्ष दृष्टि एवं बिना पूर्वाग्रह से सत्य स्वरूप अभिव्यक्त कर वर्तमान स्थिति में विचार करने पर विवश किया है और संकेत दिया है कि अतीत आज भी मौजूद है और उससे मुक्त होने के लिए एक साफ शुद्ध विचार–दृष्टि की जरूरत है। अतीतकालीन यथार्थ, अतीत बोध, प्रगतिशील राष्ट्रीय दृष्टि, नारी का गरिमामयी चरित्र, राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना, जीवनमूल्यों की स्थापना, स्वाधीनता का भाव एवं आधुनिक चेतना का दर्शन करवाते हुए उपन्यासकार ने मानव समाज को परिष्कृत विचार दृष्टि से सम्पन्न बनाने की सार्थक चेष्टा की है।

3.2.1 सिद्धियों का खण्डहर का कथ्य –

अन्ध आस्था का दुष्परिणाम भोगता भारतीय अतीत चित्रित है सिद्धियों के खण्डहर में। शत्रुघ्न प्रसाद रचित इस उपन्यास में 12 वीं सदी के पतनशील समाज एवं पराभव भोगते देश का

यथार्थ अंकित हुआ है। ऐतिहासिक यथार्थ के माध्यम से वर्तमान को समझने का संकेत दिया गया है। परमसौगत महाराजा गोविन्दपाल की सहजयानी साधकों में अन्ध आस्था एवं शक्ति संचय का प्रयास न होना, उदन्तपुरी एवं नालन्दा विद्यापीठ जैसे बौद्ध केन्द्रों में तंत्रशक्ति का चमत्कार प्रदर्शन एवं पंचमकार एवं गुह्य साधना की आड़ में किए जा रहे व्यभिचार एवं नारी भोग, वैधत्य की पीड़ा भोगती नारी और सिद्ध साधकों द्वारा महामुद्रा बनाकर शान्ति प्रदान करने के छद्म आमंत्रण, बख्तियार खिलजी का आक्रमण और उदासीन शासक वर्ग, कुमार महेन्द्र का शस्त्र शक्ति बढ़ाकर संघर्ष का आह्वान और सिद्धेश अमात्य व सिद्ध धोरपा द्वारा तंत्रशक्ति से रक्षा हो जाने की आस्था में अन्तर्द्वन्द्व दिखाना और अहिंसा के अतिरेक से बचते हुए सभी वर्गों का एक व संगठित होकर संघर्ष करने का राष्ट्रीय विचार प्रदान करना ही उपन्यासकार का ध्येय है। महाराजा गोविन्दपाल एवं लक्ष्मण से न उदासीन, रूढ़ एवं अहंकारी शासक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। सिद्ध धोरपा, आचार्य कमल रक्षित एवं अमात्य बिन्दु एवं सिद्धेश तंत्र शक्ति के बल पर संघर्ष करने एवं सहज साधना के नाम पर नारी भोग करने की लालसा रखते हैं..............सुभद्रा एवं सुवर्णा उस नारी विवशता की यथार्थ स्थिति का चित्रण करवाती नारियों की प्रतिनिधि पात्र हैं जो वैधव्य के अभिशाप को भोगती है और समाज और धर्म की छलनाओं का शिकार होने से किसी तरह बच पाती हैं। समाज की संकीर्ण एवं विकृत मानसिकता का निदर्शन है। इब्राहिम एवं गुलामरसूल गुप्तरी एवं व्यापार की आड़ में धर्मान्तरण के एवं गुप्तचरी के कर्म को पूर्ण करते हैं। शोभन शास्त्री एवं देवीदत्त सम्प्रदाय भेद के केन्द्रीय पात्र हैं। इस उपन्यास के द्वारा उपन्यासकार ने 12 वीं सदी के उस यथार्थ का चित्रण करना चाहा है जिसने भारत को विध्वंश एवं विनाश दिया। उस रूढ़िग्रस्त धर्म, समाज एवं राजनीति ने भारत को पराभव ही नहीं दिया बल्कि इस्लामी आक्रमणकारियों को जमने का अवसर भी प्रदान किया। तांत्रिक शक्ति, शान्ति एवं अंहिसा के अतिरेक ने शक्ति संग्रह के मार्ग रोक दिए और दुर्बलता की ओर अग्रसर कर दिया। आपसी वैमनस्य ने समाज को विकृत कर दिया। समाज में खण्डित विचारधारा ने घर कर लिया। कुमार महेन्द्र के शक्ति संचित करने के प्रस्ताव पर समय रहते ध्यान न देकर तंत्र शक्ति एवं अभिमंत्रित सरसों के दानों से रक्षा कर लेने की अन्ध आस्था ने पराजय और विध्वंश प्रदान किया, यहीं मूल संवेदना लेखक अभिव्यक्त करना चाहता है। जाति भेद से त्रस्त समाज एवं धर्म परिवर्तन भी एक कारण है। रमेश चन्द्र शुक्ल ने लिखा है– आखिर वह कौनसी स्थिती थी जिसने इस्लाम के आगमन का भारत में स्वागत किया, इसकी विवेचना का ही नाम है– सिद्धियों का खण्डहर। बात स्पष्ट है कि देश का जवान कभी नहीं हारा, हारा है तो नेतृत्व, उसके अन्धविश्वास, उस की अदूरदर्शिता, समय रहते न जगने की आदत ने हमें हरवाया है।"[24] इस उपन्यास में उपन्यासकार के कथ्य का वाचक कुमार महेन्द्र का कर्मशील एवं राष्ट्र–समर्पित व्यक्तित्व है। नाथ योगी एवं भानुदत्त शर्मा के माध्यम से भी लेखकीय विचार व्यक्त होते हैं। इस उपन्यास में प्रेम का उदात्त रूप है। नारी पीड़ा की विवेचना है। सम्प्रदाय व जाति भेद की भर्त्सना है।

अहिंसा–शान्ति एवं तन्त्र साधना के अतिरेक पर प्रश्नचिह्न है। धर्म के परिष्करण एवं न्याय की स्थापना का प्रयास है। श्री रंजन सूरिदेव ने लिखा है कि– "कथ्य की दृष्टि से एक ओर धर्म और न्याय के समन्वयात्मक पर्यावरण की सृष्टि और दूसरी और अधर्म और अन्याय की उद्दामता, फिर दो तरह की विचारधारा के पात्रों की संरचना तत्पश्चात् धर्म और न्याय को विजयी बनाने का प्रयत्न इस उपन्यास की विशेषता या गुणात्मक संसिद्धि है।"[25] कुमार महेन्द्र एवं भानुदत्त शर्मा के माध्यम से उपन्यासकार ने अपना मंतव्य स्पष्ट किया है– "कुमार ने सोचा है कि– मगध, अंग, बंग, कलिंग, मिथिला– सबसे जुड़कर खड़ा हो। इख्तियार के आक्रमण का प्रतिकार हो जिससे अपनी धरती, संस्कृति और जन की रक्षा हो सके। सुरक्षित धरती पर कुछ नया रचा जा सके। जहाँ सम्प्रदायों का आपसी विरोध न हो। वर्णों और जातियों की विषमता न हो।".......भानुदत्त शर्मा सोच रहे थे– काश ! हम सम्प्रदाय, जाति और प्रदेश को भूलकर इस धरती को माँ मानकर एक साथ खड़े हो जाते। हम संगठित हो जाते। अहिंसा के अतिरेक से बचते। हम खड्.ग हस्त हो जाते।"..............अहिंसा और तंत्र ने हमें शिथिल कर दिया। ब्राह्मण बौद्धों को हीन समझने लगे। बौद्ध आलोचना करते रहे।.........और ये तुर्क आक्रमणकारी कितने भयानक हैं..............कितने क्रूर और बर्बर हैं और इनके आक्रमण की राजनीति में नये धर्म की कट्टरता भी.........यह तो खण्डप्रलय है।"[26] कुमार महेन्द्रपाल के राष्ट्र रक्षा के विचार एवं नालन्दा–विक्रमशिला व पाटलिपुत्र, उदन्तपुरी के विध्वंश से सबक लेकर चेतन होने का संदेश देना ही लेखक का मंतव्य है। नालन्दा वापस नहीं लाया जा सकता। इतिहास की उस घटना को बदला नहीं जा सकता। पर नालन्दा से सीखा जा सकता है। नया इतिहास बनाया जा सकता है। रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि– पुरातन के प्रति मोह का अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि मैं सदैव नालन्दा को ही वापस बुलाना चाहता हूँ। बल्कि यह है कि जिस जिज्ञासा की बलवत्ता ने नालंदा को संभव किया था, मैं उसी जिज्ञासा का ही जागरण चाहता हूँ।"[27] ऐसी ही जिज्ञासा का संदेश देना शत्रुघ्न प्रसाद की कृति 'सिद्धियों का खण्डहर' की मूल संवेदना है।

3.2.2 'शिप्रा साक्षी है' का कथ्य–

'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास में ईसा से पूर्व पहली सदी में घटित भारतीय इतिहास के उन प्रसंगों को उपन्यस्त किया है जिनसे अहंकारपूर्ण एवं राजमद से ग्रस्त राजतंत्र के दुष्परिणाम एवं गणतन्त्रात्मक गणसंघ की एकता का सुफल प्राप्त होता है। गणतन्त्र से राजतंत्र की ओर एक निरंकुश शासन में निहित शक्ति देश को विनाश की ओर ले जाती है तथा एकता के भाव से जुड़कर गणतन्त्रात्मक संगठन में संगठित शक्ति देश को स्थिर व मजबूत बनाती है, यही भाव इस उपन्यास में प्रदान किया गया है। उज्जयिनी के शासक गंधर्वसेन अहंकार एवं राजमद से ग्रस्त होकर गणभाव भूलकर निरंकुश हो जाते हैं। अहंकारी एवं विलासी प्रवृत्ति के कारण कर्तव्य का उचित पालन नहीं करते हैं। जैन साध्वी सरस्वती के अपहरण पर किसी की सलाह

को भी स्वीकार नहीं करते हैं। क्रोधित सरस्वती भ्राता कालकाचार्य प्रतिशोध भाव लेकर पारस्य देश के शकों को सहायता देकर उज्जयिनी पर आक्रमण के लिए आमन्त्रित करते हैं। परिणाम स्वरूप उज्जयिनी पर शकों का आधिपत्य होता है। अहंकार एवं प्रतिरोध की भावना देश को विनाश देती है, यही दर्शाना अपन्यासकार का अभीष्ट है। गंर्धवसेन का पुत्र विषमशील भारत के भिन्न–भिन्न गणराज्यों को संगठित कर शकों को पराजित करते हैं और एक संगठित शासन की स्थापना करते हैं। यहीं से विक्रम संवत का प्रारम्भ होता है। शक कन्या हला एवं विषमशील (विक्रमादित्य) का विवाह सम्पन्न करवाकर दोनों संस्कृतियों में समन्वय दर्शाना भी उपन्यास की विशेष उपलब्धि है। मालव गणपति विषमशील 'विक्रमादित्य' सोच रहे थे– पहले शकों की पराजय और फिर भारत की धरती, भारत की संस्कृति तथा भारत जन में सम्मिलन. ......हला की अनुभूति द्वारा नये युग का आरम्भ.................होना है। विदेशी शकों का आतंक मिटाना है और उन्हें इस धरती के साथ जोड़ना है।.......वे हला के साथ इस संकल्प को पूरा करेंगे तभी वे विक्रमादित्य कहला सकेंगे।"[28] समीक्षक रमेश शर्मा इस उपन्यास के कथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि– 'शिप्रा साक्षी है' का लेखक एक समरस किन्तु स्वावलम्बी समाज की संरचना का पक्षधर है।...........लेखक अपने कथन में यह भाव भी प्रतिबिम्बित करता है कि वह एक संगठित समाज, शक्तिशाली और स्वाभिमान सम्पन्न राष्ट्र निर्माण का पक्षधर है।...........पुस्तक में राष्ट्र है, संकल्प है, शिक्षा है, समाज है और उसके सरोकार भी। यह एक स्त्री के वात्सल्य और पतिभक्ति का अद्भुत समन्वय है और क्रोध व प्रतिशोध के अतिरेक में विदेशी आक्रान्ता को आमंत्रित करने की त्रासदी है।............लेखक ने बड़ी सहजता से यह बात प्रमाणित कर दी है वास्तव में भारतवर्ष ही एक मात्र सत्य है।"[29] यही इस उपन्यास की मूल संवेदना है।

3.2.3 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' का कथ्य–

इतिहास में उपेक्षित पानीपत के द्वितीय युद्ध में वीर गति प्राप्त योद्धा हेमू के उज्ज्वल चरित्र के माध्यम से राष्ट्रीय विचारों को अभिव्यक्त करना एवं हेमू को इतिहास में न्यायपरायण स्थान दिलवाना ही उपन्यासकार का अभीष्ट है। मुगल एवं सूर शासन में हिन्दू जनता की त्रासदी दर्शाकर शासक–धर्म, राष्ट्रीय भावना, भेदभाव मुक्त समाज एवं मानवता की भावना का संदेश दिया गया है। हेमचन्द्र एवं नाथपंथी योगी के माध्यम से उपन्यासकार स्वाधीनता की अलख जगाने का प्रयास करता है। मुस्लिम शासन में हिन्दू जनता पर हो रहे अत्याचारों एवं उन से उपजी पीड़ा, धर्मान्तरण की समस्या और उस नव धर्मान्तरित वर्ग की उलझन व द्वन्द्व, धार्मिक विद्वेष से लगाए गए करों के बोझ से दबी हिन्दू जनता की दयनीय स्थिति, मन्दिरों एवं भारतीय संस्कृति के प्रतीकों के ध्वंस से उपजी आत्मा की पुकार ने हेमू के मन को देशोद्वार की भावना से उद्वेलित किया। परिणामस्वरूप स्वातन्त्र्य भावना से प्रेरित राष्ट्र–धर्म यज्ञ की ओर अग्रसर एवं अन्त में हेमू की शहादत द्वारा मातृभूमि एवं राष्ट्र भूमि प्रेम का भाव प्रेषित

करना ही उपन्यास का ध्येय है। हेमचन्द्र कहता है– "यदि लक्ष्य अपना देश हो.............यदि विदेशी बर्बरों की पराधीनता स्वीकार न हो, गाँव–घर के विध्वंस को देखना न हो, और पद्मिनी–पारो को राख बनने से बचाना हो तो अशांत होना पड़ेगा...........हर कदम पर रक्त टपकेगा, फिर भी मुस्कराना होना.........तलवार की धार पर चलने में सुख है पारो!............गुरू रामानन्द, कबीरदास, नानकदेव, वल्लभाचार्य– सभी इसी अंशाति और अनास्था में एक नया विश्वास जगा रहे हैं। मैं भी चाहता हूँ कि नये विश्वास को बल मिले।............सफल होने पर दोयम दर्जे की जिन्दगी से छुटकारा हो सकता है.........गाँव उजड़ने से बच सकेंगे। सभी मिलकर रह सकेंगे।......एक बूढ़े ने कहा– हुजूर ! आज से 27 वर्ष पहले बाबर ने एक फकीर–हजरत फजल अब्बास की सलाह पर मन्दिर को तोड़ डाला................रानी जयराज कुमारी ने बाबर के बेटे हुमायूं से युद्ध किया।.......रानी ने वीरगति पायी। संन्यासी महेश्वरानन्द ने गाँव के साहसी वीरों को लेकर मन्दिर के उद्धार के लिए अपना बलिदान दिया।........... सबको बलिदान की कथा सुनाता हूँ। बलिदान की परम्परा कायम रहे। मन्दिर का उद्धार हो, मन्दिर जैसे ही अपने देश का भी उद्धार हो।.........साईंदास ने कहना आरम्भ। किया– सद्गुरू ने सभी मामलों के लिए एक राम–रहीम की बात की है। मानव–मानव के बीच के भेदभाव को मिटाने का यत्न किया है। दिव्य सन्देश फैल रहा है।............हिन्दू राम–रहीम की बात को मान लेते हैं– पर शूद्रों और अछूतों के प्रति इनका व्यवहार बुरा है.............राज की ओर से भी कोशिश हो कि मानव–मानव के बीच फर्क दूर हो।"[30] सम्पूर्ण उपन्यास में यही मूल संवेदना व्याप्त है। समीक्षक श्रीमती बाला मेहरोत्रा ने उपन्यास के कथ्य को प्रत्यक्ष करते हुए लिखा है कि– " 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' में सोलहवीं शताब्दी की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक स्थितियों का वर्णन है। सामाजिक विसंगतियों और अस्थिर राजनैतिक स्थितियों के बीच आशा की क्षीण–सी किरणों के समान कबीर पंथी साधु और कुछ सूफी संत आदि प्रजा को विषमता के भँवर से निकाल कर समता और उदारता की ज्ञान–ज्योति प्रदान करने में संलग्न थे। सांस्कृतिक जागरण आरम्भ हो चुका था।...............कथानायक हेमू के माध्यम से लेखक ने तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों, पुरातन कुप्रथाओं व मान्यताओं के प्रति आक्रोश भी प्रकट किया है।"[31] मध्यकालीन भारतीय जीवन की त्रासदी में राष्ट्रीय अस्मिता की तलाश एवं इतिहास के उपेक्षित नायक हेमू के माध्यम से समदर्शी मानवतावादी विचारधारा अभिव्यक्त करना ही इस उपन्यास की मूल संवेदना है।

3.2.4 'सुनोभाई साधो' का कथ्य–

मध्यकालीन संत कवि कबीरदास के समय की बहुआयामी द्वन्द्वग्रस्त स्थितियों का चित्रण करते हुए कबीर के अद्वैतवादी चिन्तन को उपन्यासकार ने 'सुनो भाई साधो' उपन्यास के माध्यम से व्यक्त किया है। भारतीय इतिहास में सल्तनकालीन अतीत सांस्कृतिक पराभव, संक्रमण एवं चेतना काल रहा है। लोदी सल्तनत की कट्टर धर्मान्ध शासन नीति के काल में व्याप्त

सांस्कृतिक द्वन्द्व के युग में कबीर एकात्मवादी, एकेश्वरवादी, समरस मावनतावादी विचारधारा का संकल्प लेकर अडिग विश्वास के साथ डटे रहते हैं। जिस अद्वैतवादी चिंतन को जन–जन तक पहुँचाने के लिए कबीर ने संघर्ष किया उसी को आज प्रतिष्ठित करने के लिए शत्रुघ्न प्रसाद प्रयासरत हैं। इसी विचारधार की अभिव्यक्ति 'सुनो भाई साधो' उपन्यास का कथ्य है। स्वयं उपन्यासकार ने भूमिका में लिखा है कि– "आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर–तुलसी के कालखण्ड को सांस्कृतिक द्वन्द्व का युग माना है। उन्होंने उस युग के द्वन्द्व पूर्ण जीवन की व्यापक भूमि पर कबीरदास के व्यक्तित्व एवं वाणी को समझने की दृष्टि प्रदान की है। मैंने कबीर को इसी परिवेश में समझने का प्रयत्न किया है। इस युग के सम्पूर्ण परिवेश – धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक – में कबीर के फक्कड़ जीवन का चित्रण ही उपन्यास हो गया है। कविवर पद्य श्री रामावतार अरूण के शब्दों में कबीर क्रान्ति हंस हैं। इसी क्रान्ति हंस का नीर–क्षीर विवेक यहाँ पाठकों को दिखाई पड़ेगा।"[32] उपन्यासकार ने इस उपन्यास में लोदी वंश की क्रूर एवं निर्मम राजनीति में पिसती भारतीय जनता की आहत पीड़ा, धर्मान्तरण की संघर्षमयी यातना का निदर्शन करवाते हुए रूढ़िग्रस्त एवं कट्टर ब्राह्मणों एवं मुल्लाओं के पाखण्डों पर करारी चोट करते हुए कबीर के संकल्प को वाणी प्रदान की है। भेदभाव मुक्त एकात्म चेतना ही कबीर की आस्था है। धर्मदास ने समझाया– "संत कबीरदास ने आपस के मतभेद को गलत माना है।..........कुछ लोग बाहर से आकर राज कर रहे है। सभी तो बाहर के तुरूक नहीं है।.......सभी तो इसी धरती के हैं।.....एक ही गाँव में रहना है..........जीने के लिए एक साथ काम धंधा करना है। मिलकर रहना है................अलगाव नहीं..........अपनाव हो।....... ....'वही महादेव, वही मुहम्मद, ब्रह्मा आदम कहिए। कोई हिन्दू कोई तुरूक कहावै, एक जमीं पर रहिए।.....यह कबीरदास की वाणी है।................सबको इसी धरती पर रहना है। एक राम को पहचानना है। राम और रहीम में फर्क नहीं मानना है। कबीर ने मुल्ला से कहा– "इस देश के लोगों ने साधु और फकीरों में फर्क नहीं माना है। ये सबका सत्कार करते हैं। हर पंथ के सच के आगे सर झुकाते हैं।......मैं काफिर और नफरत की दीवार को नहीं मानूँगा।... ......मैं तो भगत हूँ। इंसानियत का पुजारी हूँ। राम और रहीम को एक मानता हूँ। ढाई आखर प्रेम का संदेश देता हूँ।[33]

3.2.5 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' का कथ्य–

चौदहवीं सदी में स्वामी विद्यारण्य के निर्देश एवं हरिहरराय एवं बुक्का राय की वीरता से मुहम्मद–बिन–तुगलक के क्रूर, अत्याचारी, सनकी एवं दमनपूर्ण शासन से मुक्ति प्राप्त कर तुंगभद्रा नदी के तट पर विजयनगर नामक हिन्दू राज्य की प्रतिष्ठा की जाती है, यही नया सूर्योदय है। यही उपन्यासकार का मंतव्य है। चौदहवीं सदी में खिलजी शासन को समाप्त कर व अपनी पिता की षड़यन्त्रपूर्वक हत्या कर मुहम्मद–बिन–तुगलक दिल्ली सल्तनत पर अधिकार करता है। सम्पूर्ण दक्षिण भारत पर भी अधिकार कर लेता है। कर्नाटक की तुंगभद्रा

नदी के तटीय नगर कंपिली, देवपुर्म, होयसल क्षेत्र तथा वारंगल सुल्तान के अधीन हो जाते हैं। द्वारसमुद्र के बल्लालदेव भी तुगलक का स्वामित्व स्वीकार कर लेते हैं। तुगलक दिल्ली को तुगलकबाद और देवगिरि को दौलतबाद में बदल देता है तथा हरिहरराय एवं बुक्का राय को हक्का खाँ व बुक्का खाँ में बदल देता है। धर्म परिवर्तन का यह उन्माद सम्पूर्ण भारत को निगल रहा है। यह उपन्यास धर्म परिवर्तन के उन्माद, क्रूर, कठोर, निर्दयी, निर्मम एव विलासिता पूर्ण शासन में पिसती भारतीय जनता के यथार्थ को अभिव्यक्त करता है। देवलदेवी के माध्यम से नारी उत्पीड़न से साक्षात्कार करवाता है। इन्दु और षण्मुखम की प्रेम–कथा द्वारा देवदासी जैसी रूढ़ प्रथाओं से अवगत करवाता है। भारतीय जगत में व्याप्त विभिन्न साम्प्रदायिक विभेदों एवं ऊँच–नीच की स्थिति को स्पष्ट करते हुए स्वामी विद्यारण्य द्वारा किए गए सांस्कृतिक ऐक्य और हरिहर एवं बुक्का द्वारा की गई हिन्दू राज्य की प्रतिष्ठा को दर्शाकर भारतीय जीवन के गौरवमयी पृष्ठ को खोलता है। राष्ट्रीय–सांस्कृतिक एकत्व ही इस उपन्यास का मूलकथ्य है। उपन्यास में विभिन्न पात्रों के कथन उपन्यास की मूल संवेदना को अभिव्यक्त करते है। भद्रबाहु जैन ने कहा– हाँ कम्पिली, अनेगोन्दी और कुछ–कुछ हम्पी नगर श्मशान से लगने लगे हैं।..........अनेगोन्दी दुर्ग की महिलाओं ने अग्नि समाधि ले ली।......पर इस स्थिति में भी हम शैव हैं, वैष्णव हैं, जैन हैं और फिर अनेकानेक ऊँच–नीच जातियाँ हैं। माधव ने सोचा– वर्ण व्यवस्था और मानवीय समता में विरोध है। इससे समाज में विषमता आई है।..........हम जन्म से किसी को छोटा क्यों मान लें।........तुर्क सेना आ रही है। इन्होंने सबको आतंकित कर दिया है। इस राजनिति का यही अर्थ है। सभी को आतंकित कर दो। सभी के शीश झुक जाएँ। कोई शीश न उठाएँ।.........विदेशी शासक.....भयानक आतंक.......महाभयानक आतंक।....... .....तुर्क सिपाही ने कहा– ये हारते–हारते कट मरते है। औरतें जलकर खाक हो जाती है।... ....लेकिन बगावत से बाज नहीं आते। गनीमत है कि ये तमाम लोग एक साथ बागी बनकर शमशीर नहीं उठाते।”...........देवल सोचती है...........यदि पिता श्री राय कर्ण देव देवगिरि के राजा रामचन्द्र से मिलकर शक्ति की रचना करते........मेरा विवाह राजकुमार शंकरदेव से कर देते, तो गुजरात और देवगिरी मिलकर मुकाबला कर लेते। यह दिन न देखना पड़ता........... आह!...........आज हिंसा और अहिंसा का प्रश्न नहीं है। त्रिशूल और सुदर्शन चक्र के प्रतीकार्थ को हम समझते रहेंगे। विध्वंस और दारिद्रय की धूल में लौटते जनजीवन के हाहाकार पर विचार करना है।...........वेदान्तदेशिक ने कहा– भक्ति का अधिकार सबको मिल रहा है। अब भक्ति में वर्ण जाति का भेद नहीं है।.........सायण ने शाह अनीस से कहा– हमारा विरोध नहीं है। पर सुलतान का सहारा लेकर धर्म प्रसार और दमनचक्र से धर्म परिवर्तन कर व्यक्ति के भारतीय रूप को मिटा देना सही नहीं है। उसे अरब के रंग में रंग देना उचित नहीं है......... ....क्या हम पुरूषार्थ से कालचक्र को अनुकूल बना सकते है............स्वाधीनता के लिए विद्रोह एवं संघर्ष आवश्यक है............स्वामी विद्यारण्य समाज में अद्वैत भाव देखना चाहते हैं।.......... व्यक्ति, वर्ण, कुल की प्रखर प्रबलता ने देश और स्वराज्य के विचार को दुर्बल कर दिया है...

.......सम्प्रदाय और सम्प्रदाय के द्वन्द्व और स्पर्धा ने भी देश के भाव को दबाया है।..........देश की अखण्डता और स्वराज्य की चेतना का जागरण नहीं।.........कैसी विडम्बना है।.............. तरूण सैनिक प्रमुख ने सूचना दी– हरिहर, बुक्का, मरप्पा, जम्बुकेश्वर सभी विजयोत्सव यात्रा के साथ आ रहे हैं।..........अब विजयोत्सव होगा। नये नगर में नये स्वतन्त्र राज्य का शिलान्यास होगा।

सभी आचार्यों को आना है। सबकी आशीष से स्वराज्य और सुराज्य की घोषणा होगी।.......... यही नया नगर विजय नगर कहलायेगा।.................स्वामी जी ने घोषणा की– आप सबके समक्ष मरप्पा राय का विवाह देवलदेवी की पुत्री श्री देवी (रूखसाना) के साथ सम्पन्न होगा।.....इस अनुरागमयतप को सार्थक–सफल हो जाना है।.......विजयनगर का शिल्यान्यास और यह विवाह–दोनों इतिहास के महत्वपूर्ण अध्याय होंगे।[34].......... डॉ शंकर लाल स्वामी ने इस उपन्यास के कथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– इस उपन्यास के मुख्य कथानक के साथ सहायक कथानक जुड़े हैं जिनमें दक्षिण के समस्त धार्मिक सम्प्रदायों का एक स्थान पर इकट्ठा होकर एकमत होकर देश की भूमि को विदेशियों के शासन से आजाद कराने के लिए आह्वान करना अपने आप में महत्वपूर्ण सूत्र है। इस कार्य की प्रेरणा तथा आत्मा आचार्य माधव इस उपन्यास के प्राण हैं। ये अद्वैतवादी माधव देश को परिवार से ही नहीं अन्य समस्त उपलब्धियों से भी ऊँचा मानते हैं।"[35] इस उपन्यास में चौदहवीं सदी का नग्न यथार्थ का चित्र है। एकता की प्रेरणा है। राष्ट्रीयता की स्थापना है। अद्वैतवादी समरस समाज का संदेश है। योगेन्द्र स्वामी ने लिखा है कि– अफगान, तुर्क, मंगोल आदि से निरन्तर आक्रान्त भारत भूमि में रक्तपात, लूट, धर्मान्तरण, स्त्रियों और बालकों के प्रति अमानुषिक अत्याचार, बलात्कार, शोषण के एक लम्बे सिलसिले का इतिहास रहा है। लेखक ने इस उपन्यास में इसी यथार्थ को नग्न रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ दो संस्कृतियों के बीच चलने वाले संघर्ष का चित्रण किया गया है।......वेदभाव्यकार सायणाचार्य और उनके भाई जो विद्यारण्य स्वामी के नाम से विख्यात हुए इस संघर्ष में अपने धर्म की रक्षा करने और सामाजिक जीवन के त्रास और आतंक से मुक्ति दिलाने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ होकर समस्त भारतीय धर्माचार्यों को एकजुट होकर विरोध करने हेतु संगठित करते हैं– विदेशी धार्मिक आतंकवाद का सामना करने की चेष्टा करते है.................समस्त दक्षिण भारत का समाज जागृति की लहर में तुगलक वंश को उच्छिन्न करने में सफल होता है...........इस महत्वपूर्ण उपन्यास को भारतीय राष्ट्रवाद का प्रेरणादायक कृतित्व मानकर सम्मानित किया जाना चाहिए।"[36] निष्कर्षतः राष्ट्र धर्म की स्थापना ही मूल कथ्य है।

3.2.6 'कश्मीर की बेटी' का कथ्य–

विश्व प्रसिद्ध कश्मीर की सुरमणीय घाटी के अंधकार और हाहाकार में बदल जाने की मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी कथा 'कश्मीर की बेटी' उपन्यास में प्रस्तुत की गई है। 1320ई. से 1339ई. के

बीच विदेशी आक्रान्ताओं एवं देशी दुर्बलताओं के कारण कश्मीर को ऐसी त्रासदी भोगनी पड़ती है जिसका दर्द आज तक साल रहा है। उन कारणों की पड़ताल करते हुए अब उनसे सजग रहने की चेतना प्रदान करना ही उपन्यासकार का ध्येय है। मंगोल दस्युओं के आक्रमण से त्रस्त कश्मीर को राजा सहदेव की कमजोर शासन शक्ति एवं पंडित प्रवर देवस्वामी की रूढ़ एवं अंहग्रस्त मान्यताओं के कारण ऐसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है जिसका परिणाम आज का कश्मीर भी भोग रहा है। उमेश दीक्षित ने लिखा है कि– "इस उपन्यास में चौदहवीं सदी के कश्मीर प्रदेश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक उथल–पुथल का चित्रण हैं।......जहाँ एक ओर कश्मीर नरेश सहदेव एवं उदयनदेव की अपनी दुर्बलताएँ हैं तो वहीं पंडित प्रवर का अंहग्रस्त दुराग्रह भी। मंगोलों के आक्रमणों के बाद एक ओर से साम्राज्य को ध्वस्त करने को आतुर हैं तो दूसरी ओर विदेशी घुसपैठिए सिंहासन हथियाने के लिए नाना प्रकार के षड़यन्त्र कर रहे हैं।..........आनन्द भिक्षु भट्ट, महारानी कोटादेवी निषादराज, अंत्यज चाँदनी तथा सर्वदेव प्रदेश की मान रक्षा में प्राण–पण से जुटे हैं।......कश्मीर की बेटी कोटा देवी भी हाथ में तलवार लेकर समरांगण में उतरती हैं किन्तु तब तक षड़यन्त्रकारियों का हाथ सत्ता तक पहुँच चुका होता है। वीरबाला के उत्सर्ग से कश्मीर की घाटियाँ चीत्कार कर उठती हैं और झेलम नदी का हाहाकार ही सुनाई पड़ता है।.........यह उपन्यास बड़ा मर्मस्पर्शी बन पड़ा है साथ ही हमें इतिहास से कुछ सीखने तथा उससे अपने वर्तमान तथा भविष्य को सुदृढ़ बनाने की प्रेरणा भी देता है।"[37] इस उपन्यास में लेखक ने चौदहवीं सदी के कश्मीर के यथार्थ का अंकन करते हुए दर्शाया है कि शासक वर्ग की दुर्बलता, ब्राह्मणवादी संकीर्ण विचारधारा एवं स्वार्थ भाव, विदेशी घुसपैठियों के षड़यन्त्र, धार्मिक संकीर्णता एवं रूढ़ मान्यताओं ने कश्मीर को हमेशा के लिए विदेशी हाथों में सौंप दिया और आज भी उससे सबक नहीं लिया जा रहा है। विदेशी शरणार्थियों पर जब षड़यन्त्रकारी राजनीति सहयोगार्थ निर्भर हो जाती है तब उसके दुष्परिणाम भोगने पड़ते है, यह यथार्थ इस उपन्यास का संदेश भी है। कोटादेवी ने कहा– राजा सहदेव ने रिच्छेन और शाहमीर को शरण दी थी। आज रिच्छेन से सहायता माँगी जा रही है। शाहमीर से भी माँगी जाएगी। यह देश कल्याण की राजनीति नहीं है। घुसपैठिए शरणार्थियों का मूल्य बढ़ रहा है, क्यों कि राजभवन में सत्ता का संघर्ष चल रहा है।"[38] आनन्द भिक्षु के माध्यम से भारतीय देश निष्ठा भी व्यक्त की गई है। शिवत्व का संदेश दिया है कहते हैं– पर मेरी दृष्टि में दोनों इस भूमि की पुत्रियाँ हैं। मैं तो अपने चिंतन के अनुसार अतिश्रेष्ठ और अतिहीन की बात नहीं मानता। सब में शिव हैं।"[39] शासक दुर्बल है। ब्राह्मणवादी रूढ़ विचारधारा है। मंगोल आक्रमण है। शरणार्थी शक्तिसम्पन्न होते जा रहे हैं। राजनीति में सहयोग करते हैं। समाज में ऊँच–नीच है। धर्म का भेद है। इस्लाम में स्वागत है। धर्मान्तरण है। सूफी फकीर एवं घुसपैठिए पाँव मजबूत करते हैं। कश्मीर का पतन हो जाता है। 'कश्मीर बेटी' में व्यक्त कथन इसके कथ्य को स्पष्ट करते हैं– राजा और सेनापति सैनिकों के साथ अग्रसर हो। प्रजा का त्राण करें। यही राज धर्म है। देवस्वामी

ने कहा।........यदि मंत्रिमण्डल ने ऐसा निर्णय किया है तो करें। पर हमसे कर लेना तो दुस्साहस है.......आपने कर लेना आरंभ कर दिया है। इस अन्याय और अधर्म का विरोध तो करना है.... ....इधर देवस्वामी का विरोध........यह क्रोध और असहयोग..........राज्य में विकलता......उधर दुल्चा का अट्टहास..........क्या होगा?..........आनंदभिक्षु ने कहा— वे तो अपने को श्रेष्ठ मानते हैं। उनकी दृष्टि में यही ब्राह्मणत्व है। मेरी दृष्टि में निरन्तर अध्ययन और समाज के लिए समपर्ण ही ब्राह्मणत्व है..............वर्ण का अहंकार समाज विरोधी है..........मंगोल विचारधारा— खान! मौका मिलने पर कमजोर मालिक को क्यों छोड़ दिया जाए? इस हसीन वादी पर जॉनिसार हूँ। दरया शाह ने कहा................आनन्दभिक्षु राष्ट्र धर्म का विचार रखते हुए कहते हैं— हमें अपने वर्ण के विशेषाधिकार की चिंता थी। अपनी मातृभूमि की चिंता नहीं थी। .... जन चेतना की भावना वरूण के शब्दों में व्यक्त होती है— यह तो मेरा दुःख है भीखन! हमारे सहस्रों भाई—बंधु बंदी बनाए गए, दास बनाए गए। यह सबका दुःख है।......................कश्मीर के राजभवन में राजपद पर डामर सामंत। कैसा परिवर्तन!! राजतरंगिणी की नई तरंग!!........ .....अली शेर के कथन में भारतीयता का यथार्थ अभिव्यक्त है.........इन्होंने हमें जमीन दी है। हम पर ऐतबार किया है।...........यह इनकी सीरत है। ये आपस में लड़ लेते हैं। इनमें जाँत—पाँत का जीना बना हुआ है। कोई बड़ा है, कोई छोटा है।...........लेकिन ये सब पर मेहरबानी करते हैं।........रिच्छेन ने कहा— राजा का धर्म तो प्रजा का पालन है।.................रिच्छेन को पंडित देवस्वामी ने शैवधर्म में स्वीकार नहीं किया। उसने बुलबुल शाह से प्रभावित होकर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। बुलबुलशाह ने रिच्छेन को कलमा पढ़ा दिया। फकीर ने कहा— "अब आप सदरूद्दीन है। दीन या मजहब के आप सदर हैं। आपकी सदारत में कश्मीर आगे बढ़ेगा।" आनन्द भिक्षु कह रहे थे— यदि पंडित जी आशीष दे देते तो रिच्छेन का क्षोभ शांत हो जाता। शाहमीर से दूरी बढ़ जाती। उचित होता।.........आनंद भिक्षु ने उदयनदेव से कहा— "कभी सुय्या ने नदी और जलप्रपात को बाँधकर कश्मीर को बाढ़ के त्रास से मुक्त किया था। सुय्या उच्च वर्ण के नहीं थे, निम्न वर्ण के थे। आज वे सबके पूज्य हैं। अतः आज आवश्यक है कि हम क्षुद्रताओं, स्वार्थों और जाति—पाँति को छोड़कर सूय्या के समान बुद्धि से परिश्रम करें।.................देवस्वामी ने रिच्छेन से उत्पन्न पुत्र चन्द्रदेव को शाहमीर को ले जाने की अनुमति दिलवा दी। रिच्छेन सदरूद्दीन बन गया था। उसका पुत्र भी इस्लाम रीति से पलेगा। वह हैदर होगा। कोटादेवी ने उदयनदेव से कहा— प्रजा आजीविका और सुरक्षा के लिए चिंतित है। प्रजा को चिंता से मुक्त करना राजधर्म है। इसी राजधर्म के लिए राजदण्ड का धारण होता है। कोटादेवी ने पुत्र से कहा— "पुत्र, न अपनी माँ को भूलना है। न अपनी मातृभूमि को और न अपनी मातृभाषा को।........चिंतन उभर आया— सबमें कोई—न—कोई हीन ग्रन्थि है। कोई भी ग्रन्थि से मुक्त नहीं है। निर्ग्रन्थ होना साधना है। कुंठामुक्त होना चाहिए। चन्द्रदेव की विवशता— मैं राजकुमार हूँ? शाहजादा हूँ? हैदर हूँ? मैं क्या हूँ?.................कोटादेवी सोच रही है— अपनी भूमि माँ के लिए, इस पवित्र सतीसर के लिए रक्त का बिन्दु—बिन्दु समर्पित होना

है। आत्म शक्ति है, आत्म विश्वास है, बुद्धिरूपिणी देवी साथ दे रही है। वह संकटों से जूझ लेगी।............आनन्द भट्ट जू की हत्या.........उधर प्रिय की रोग शय्या........ये संकट हमें तोड़ना चाहते हैं।.........शाहमीर एक घुसपैठिया, एक आतंककारी इतना प्रबल हो जाएगा। इतना बड़ा षड़यन्त्र कर बैठेगा।........वह धीरे–धीरे अपनी शक्ति बढ़ाता गया है। हमारी उदारता, हमारी मूर्खता, हमारी स्वार्थपरता से लाभ उठाकर वह शक्ति संचित करता रहा है।.......और अंत में कोटादेवी और चाँदनी दोनों ने खुदखुशी कर ली। राजभवन पर झण्डा बदल गया।........सूरज स्याह बादलों से घिर गया।"[40]

इस उपन्यास में हमारी दुर्बलताओं, हमारी उदारनीतियों, हमारे रूढ़िग्रस्त संकीर्ण विचारों, स्वार्थ एवं अहंग्रस्त भावों ने हमें पतन दिया है इसी यथार्थ के साथ आनन्द भिक्षु के नीतिगत एवं समरस व समानतावादी आदर्शों व कोटादेवी के साहस, संकल्प, राजधर्म से परिपूर्ण व्यक्तित्व के माध्यम से उपन्यासकार ने राष्ट्रीयता व मानवता का संदेश दिया है। धर्मप्रकाश विकल ने लिखा है– डॉ. शत्रुघ्नप्रसाद इतिहास की पड़ताल करते हुए तत्कालीन समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था, अंधविश्वास, रूढ़ियों को तथा उसके विखण्डनकारी परिणामों को अभिव्यक्त करने में पूर्णतया सफल रहे हैं। बलिदान, त्याग और भक्ति में डूबा उपन्यास का कलेवर प्राचीन गौरव व संस्कृति की कद्र करने वाले पाठकों को गहरे तक छू जाता है।"[41] यह स्पर्श करवाना लेखक का ध्येय है।

3.2.7 'अरावली का मुक्त शिखर' का कथ्य –

इस उपन्यास में प्रातः स्मरणीय मेवाड़ वीर महाराणा प्रताप की स्वाधीन भावना, संघर्ष गाथा व मुक्ति चेतना को राष्ट्रीय चेतना के रूप में उद्घाटित किया है। सम्पूर्ण उपन्यास दो विचारधाराओं के संघर्ष की गाथा है। साम्राज्यवादी सत्ता लोलुप शक्ति और स्वातन्त्र्य भाव युक्त राष्ट्र भक्ति की धाराओं का टकराव ही क्रमशः अकबर और महाराणा प्रताप का टकराव है। और मूल ध्येय है– राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा के लिए संकल्प, संघर्ष त्याग और बलिदान का कष्टपूर्ण जीवन। डॉ. अमरनाथ सिन्हा ने लिखा है कि 'अरावली का मुक्त शिखर' में इतिहास के इसी जीवितानुभव से साक्षात्कार होता है। दो समानांतर कथाएँ हैं– महाराणा प्रताप की स्वाधीनता–स्वातंत्र्य रक्षण गाथा और अकबर की साम्राज्यवादिता के लिए जनस्वत्व के अपहरण एवं कुचलने की कथा।...............महाराणा प्रताप और अकबर वस्तुतः धर्म और सत्ता के प्रतीक हैं। रणसन्नद्ध दोनों हैं पर एक स्वाधीनता के लिए तो दूसरा स्वत्व हरण के लिए। उपन्यास में यह वर्णक्रम भली भाँति, ससिद्ध प्रमाण रेखांकित है।"[42] उपन्यास की केन्द्रीय भावना राष्ट्रीय एकता ही है। अकबर को महान् कहने वाले इतिहासकारों के पास शायद शत्रुघ्न प्रसाद जैसी राष्ट्रीयता की परिभाषा न हो या ऐसी तटस्थ, निरपेक्ष व पूर्वाग्रह मुक्त स्पष्ट सोच न हो। महान् वो है जिसमें त्याग, बलिदान, संकल्प, संघर्ष, वैराग्य, चारित्रिक उज्ज्लता, उदारता, नारी सम्मान, राष्ट्र–भक्ति और जन का जन–हित है। वही राष्ट्रीय चरित्र

है। जिसकी हर नीति चालाकी और चतुराई से भरी है। जो दुनिया को अपने कदमों में झुकाने के लिए बेताब है। हर नीति में दोहरापन है। नारी सम्मान नहीं है। सामान्य जन का साथी नहीं है। वह महान् कैसे हो सकता है। महाराणा प्रताप ने घोषणा की – मैं एकलिंगनाथ का दीवान हूँ।........मेवाड़ भूमि सदा स्वतन्त्र रही है। मुझे सदा स्मरण रहेगा।......कवि चक्रपाणि ने कहा– आप इस भूमि माँ के संरक्षक हैं। आप अरावली के मुक्त शिखर हैं। मेवाड़ के सूर्य हैं............राणा पुंजा ने कहा– आप हिन्दुआँ सूरज हैं।...........रूकैया बेगम ने कहा– सलीमा हमारे सरताज जंग में शेरदिल हैं। दारूल सल्तनत में कामयाब सियासतदाँ है।............और शाही हरम में खुशदिल गुलफाम ऐयाश है।........मैं क्या करूँ सलीमा! उस मिर्जा की बेगम पर मैं जानिसार हो रहा था.......प्रताप मूँछो पर ताव दे रहा है। वह राजस्थान की शान बन गया है। सभी हिन्दुआँ सूरज कह रहे हैं.................जोधा बाई सोच रही थी– वह माँ बन गई है। पर अम्मी जान है। वह क्षत्रिय राजकुमार नहीं, मुगल शहजादा है।.......राणा कीका ने कहा– हाँ राणापुंजा ! जीवन युद्ध नहीं आनन्द की साधना है। प्रेय और श्रेय की साधना है। युद्ध तो आपद्धर्म है।...........जोधाबाई ने सोचा– हमारे राजपरिवार ने हमें डोले में भेज दिया है। हमें मुगल बादशाह से बँध जाना पड़ा। स्त्री जीवन की पराधीनता।.................महाराणा ने कहा– भगवन्त सिंह जी! आपकी एकता मुगलसम्राज्य को फैलाने के लिए है। मेरा अनुरोध है कि राजाओं के ऐक्य का नेतृत्व आप करें और स्वाधीनता के लिए आमरण संघर्ष हो......... महाराणा ने कहा– ये अस्पृश्य क्यों हैं? कहीं विधान है क्या? हम सभी मनुष्य है। हम सभी मेवाड़ी है। हम सभी हिन्दू हैं......यह कैसा समाज है। उधर भील और लुहारों के मानवीय सम्बन्ध को लेकर द्वन्द्व हैं इधर भील और क्षत्रिय सैनिकों के भेदभाव पर वार्ता है। पूरे समाज से सवर्ण और अस्पृश्य की समस्या है.......भील बंधुओं से नहीं कहना पड़ेगा। ये तो शिव की संतान है। ये तो सर्वदा संघर्ष करते रहे हैं.........जंगल–पहाड़ के इन्हीं वनवासियों ने श्रीराम की सहायता की थी। ....पृथ्वीराज बुदबुदाये–टोडरमल ने विदेशी शासन की ओर से देश पर विदेशी भाषा को थोप दिया।– दुरसा आढ़ा का कथन ही मूल कथ्य है– भारतवर्ष के स्वातन्त्र्य संघर्ष की पृष्ठभूमि में मेवाड़ के संघर्ष का स्वर गूँजना चाहिए।.............जी महाराणा जी! हम घर के बाहिर तुर्क हैं। घर के अन्दर हिन्दू हैं। यह हमारी पीड़ा है।..........आसफ खाँ ने जवाब दिया– तवारीखनवीस! तीर चलाते जाओ, चाहे जिस तरफ के राजपूत मारे जाये, इस्लाम को फायदा ही होगा।........झाला मान ने कहा– मैं आपके स्थान पर महाराणा के रूप में लडूँगा। आप अपना छत्र और मुकुट दे दें। मैं तो आपका ही प्रतिरूप हूँ।.............किशन कह रहा था– हाँ टिकोरी ! भूमि माता की स्वाधीनता और सबका सम्मान ही बड़ी बात है।.. ....हम सभी एक भूमि माँ की सन्तान हैं। हम सभी राणा कीका की अगुवाई में स्वाधीनता की लड़ाई लड़ रहे हैं..........वह आखिर बार जियारत कर ले। फिर बेगम तो बनना ही है....... ...काफिरों के मुल्क पर मुकम्मल फतह की निशानी है।...............जुगनी ने सोचा– महाराणा जी के परिवार की स्त्रियाँ कैसे जीती होंगी। बच्चे कैसे बिलखते होंगे। !! सम्भवत यही

स्वाधीनता का मूल्य है।.............जैन मुनि ने कहा— मनुष्य..............आदमी सुख और शान्ति से जीना चाहता है। शंहशाहा वह अपनी आत्मा, रूह को पहचानना चाहता है। वह सभी बंधनों से छुटकारा पाकर आत्मा का उत्कर्ष चाहता है। प्रताप ने कहा— भगवान एकलिंग नाथ। मेरे मुख से तो अकबर तुर्क ही कहलायेगा। सूर्य का उदय जहाँ होता है। वहाँ पूर्व दिशा में होता रहेगा। हे वीर पृथ्वीराज राठौड़। जब तक प्रताप की तलवार तुर्कों के सिर पर है, तब तक आप अपनी मूछों पर ताव देते रहिए।..........भामाशाह ने स्पष्ट किया— सेठ पहले धरती माँ मुक्त हो। तभी लक्ष्मी की साधना हो सकती है।.........भामाशाह का शीश उठा। हाथ की तलवार ऊपर उठी। सर पर की पगड़ी मानो मुस्करा उठी— अरावली का शिखर मुक्त रहेगा। स्वतन्त्रता का संग्राम रूक नहीं सकेगा।...........प्रताप ने कहा— हम मेवाड़ की स्वाधीनता के लिए युद्ध कर रहे हैं।........मेरा जीवन तो पहाडों और जंगलों में बीतता रहा हैं।............हार नहीं मानूँगा।. ....राणा ने कहा— अमर यह तूने क्या किया? यह हमारा धर्म नहीं है। तुमने मुगल कुल वधू को कैद कर लिया है। यह तो अधर्म है।....अभी जाकर इस कुलवधू को सादर समर्पित करो।. .... रहीम ने लिखा— धर्म रहेगा। धरती रहेगी किन्तु शाही सत्ता सदा नहीं रहेगी। भगवान निष्ठा रखते हुए महाराणा ने अपने सम्मान और गौरव को अमर बना दिया है।"[43] इन कथनों में उपन्यास की केन्द्रीय भावना उद्घाटित होती है कि उपन्यासकार महाराणा और अकबर की समान्तर कथाओं में चरित्रोद्घाटन के द्वारा व्यक्ति चरित्र नहीं राष्ट्र चरित्र उभारता है। महाराणा प्रताप भारतीय चरित्र के प्रतीक बनकर उद्घाटित हैं। यह राष्ट्रीयता का संकल्पित ध्येय है। इन उपन्यास को सदानन्द गुप्त ने 'राष्ट्रीय अस्मिता की गाथा'[44] एवं अमरनाथ सिन्हा ने 'स्वातन्त्र्य यज्ञ की आहूति'[45] की संज्ञा दी है। जो अक्षरशः समुचित है व उपन्यास की मूल संवेदना की परिचायक है।

3.2.8 शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश का कथ्य—

औंरगजेब कालीन धर्मान्ध राजनीति के सन्नाटे में घुटे हुए प्राणों के साथ जीवित भारतीय जनता की निर्मम दशा का चित्रण ही आलोच्य उपन्यास का प्राण तत्व है। भारत का सम्पूर्ण जनमानस औरंगजेब के कट्टर मजहबी उन्माद में सिसकता—सिमटता उदारवादी समरस विचारकों का हृदयावर्जक हनन तो सहन करता ही है हृदय में उपजे नैसर्गिक प्रेम की कोपलों को भी बेरहमी से कुचलते हुए देखता है। हिन्दू उपनिषदों के तत्वचिन्तन में रूचि रखने वाले अद्वैतवादी एवं समरस विचारक दारा का निर्ममता से कत्ल करवाता है। मुल्लाशाह बदख्शी एवं सूफी फकीर सरमद को भी मरवा देता है। सरमद के शिष्य अमीचन्द का भी वध करवा देता हैं सिक्ख गुरू हरे किशन एवं बाबा बक्काला गुरू तेगबहादुर भी इसी धर्मान्धता की झोंक में झुलसा दिए जाते है। उधोदास बैरागी का भी यही हश्र होता है। दारा की चहेती उदयपुरी बेगम को भी मजबूरन औरंगजेब की बेगम बनना पड़ता है। सतनामियों का कत्ल बेरहमी का जीता—जागता नमूना है। पंडित जगन्नाथ को पलायन करना पड़ता है। लवंगी इसी घुटन में

प्राण त्याग देती है। काशी में रूढ़िवादी ब्राह्मणों और इस्लामी खौफ में जगन्नाथ 'गंगालहरी' की रचना करते हुए गंगा में जल–समाधि लेते हैं। इसके अलावा औरंगजेब के पिता शाहजहाँ एवं बहन जहाँनारा को कैद कर लिया जाता है। वे कैद में तड़पते रहते हैं। दारा की पुत्री आलमआरा एवं जगन्नाथ पुत्र भवनाथ तथा औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा व अकिल खाँ के प्रेम का भी दर्दनाक अवसान होता है। मथुरा के गोकुल जाट को परिवार सहित टुकड़े–टुकड़े करके मार दिया जाता है। मंदिरों का ध्वंस करवा दिया जाता है। सामान्य जनता पर अनेक तरह के कर लगा दिए जाते है। सम्पूर्ण उपन्यास दहशत के साए में मानवीय चिंतन के साथ गति करता है। सम्पूर्ण उपन्यास में व्याप्त पीड़ा एवं भय का दहशतपूर्ण वातावरण उपन्यास के प्रारम्भिक शब्दों में ही अभिव्यक्त हो जाते है। वर्णन है– दिल्ली के चाँदनी चौक के पास एक गली के मोड़ पर पक्का मकान चन्द्रभवन है।

"सड़क के दोनों ओर की दूकानें नाम के लिए खुली दिख रही है।...................सबके चेहरे पर उदासी है। होठों पर पीड़ा में डूबे शब्द आ जाते हैं। आँखों में विषाद झलक उठता है।......... .चन्द्रभवन के भीतरी कमरे में सूफी फकीर सरमद, मुल्लाशाह बदख्शी और पंडितराज जगन्नाथ बैठे हैं।........अमीचन्द आकर बैठ गया। दो क्षण बाद उसने सामने की खिड़की से बाहर देखा। फिर उसने सबके चेहरों पर दृष्टि डाली। उसे लगा कि जो बेचैनी सड़क पर है, वहीं तीनों की आँखों में गहरा रही है।"[46] उपन्यासकार ने उदारचेता, अद्वैतवादी, समदर्शी विचारों के प्रणेता दाराशिकोह की हत्या एवं कट्टर मजहबी औरंगजेब की विजय के माध्यम से अमृत पर जहर एवं उदारता पर कट्टरता धर्मान्धता की जय को राष्ट्रीयता एवं मानवता के लिए दुर्भाग्य एवं विडम्बना के रूप में दर्शाकर संकेत दिया है कि हम आज भी कहीं–न–कहीं उस अतीत से पीड़ित हैं। रामविलास शर्मा का अभिमत है कि– "दारा की पराजय किसी एक व्यक्ति की पराजय नहीं थी। औरंगजेब की विजय किसी एक व्यक्ति की विजय नहीं थी। दारा पर औरंगजेब की विजय लोकधर्म पर रूढ़िवादी कर्मकाण्ड की विजय थी। यह पतनशील सामंतवाद की विजय थी। वह भारतीय समाज की प्रगति को रोकने वाली थी और उसके दूरगामी परिणाम हुए।"[47] इन्हीं दूरगामी परिणामों को दर्शाना उपन्यासकार का मंतव्य है। शत्रुघ्नप्रसाद को यह उपन्यास लिखने की प्रेरणा भी रामविलास शर्मा की 'दाराशिकोह' कविता से मिली है। ऐसा उन्होंने बातचीत में स्वीकार किया। उपन्यासकार ने यह दर्शाना चाहा है कि इस भय एवं पीड़ा के वातावरण में भी भारतीय अद्वैतवादी चिंतन, एकात्मभाव, प्रेम, उदारता, मानवता, साहित्य प्रेम व राष्ट्रीयता का बीज पनपता रहता है। बेबसी में निकले कथन एवं विद्रोह की भावना इसके प्रमाण है। राजकुमारी जया का हरम से निकलकर राजा रामसिंह की शरण में चले जाना और बचना तथा रामसिंह से विवाह एक आशावाद का संकेत देने के निमित्त दर्शाया गया है। शिवाजी का बच निकलना सुखद अहसास दिलाता है। डॉ कृष्णगोपाल ने लिखा है कि– निर्दोष दारा की हत्या ने हिन्दू–मुसलमान के मध्य निर्माण हो रही समन्वय की सांस्कृतिक धाराओं को तार–तार कर दिया। हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य आध्यात्मिक

एकता हेतु प्रयत्नशील दारा मार डाला गया। इस नृशंस हत्या से सामरस्य के सूत्र ढूढ़ने वाली शक्तियाँ न केवल दुखी थी वर्‌न वे निराशा एवं हतोत्साह के गहरे सागर में समाने लगी। यह असहिष्णुता का पाशविक प्रदर्शन था जिसका नेतृत्व औरंगजेब कर रहा था।......... .....दाराशिकोह वेदान्त दर्शन एवं इस्लाम के विचारों के समन्वय का पुरजोर प्रयासी भी था। यदि दारा अपने विचारों में सफल हो जाता तो देश के इतिहास की दिशा कुछ और ही होती। उसके प्राणों का बलिदान मानव समाज के समन्वय की वेदी पर हो गया।"[48] उक्त विचार विवेच्य उपन्यास में अक्षरशः दिखाई पड़ रहे हैं और उपन्यासकार ने इन्हीं विचारों को अभिव्यक्त करना चाहा है। डॉ रंजन सूरिदेव ने लिखा है कि– ईसा की सत्रहवीं शती के यथार्थ का चित्रण इतिहास विद् लेखक ने दाराशिकोह जैसे अद्‌भुत पात्र के माध्यम से उपन्यस्त किया है।............यह उपन्यास पंडित राज की जीवन गाथा तो बन गया है तत्सम्बद्ध मुस्लिम शासकों की स्थिति–परिस्थिति का मार्मिक कथेतिहास के रूप में अपना स्वतन्त्र अभिज्ञान भी उपन्यास करता है।.......इतना ही नहीं तत्कालीन सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक चेतनामूलक गतिविधि का भी हृदयहारी चित्रण करता है।...........हिन्दू–मुस्लिम दोनों संस्कृतियों के संगम का अन्तःसाक्ष्य भी इस उपन्यास से प्रस्तुत हुआ है। इसके अतिरिक्त औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा तथा दाराशिकोह की पुत्री आलमआरा की असफल प्रेम की कथा भी हृदयद्रावक रूप में उपन्यस्त करने में लेखक के भाषिक प्रयोग की प्रतिभा विस्मित करती है।"[49] कथ्य की मार्मिकता सुरेश गौतम के शब्दों मुखर हुई है। वे लिखते हैं– सर्वधर्म समभाव के पुरस्कर्ता दाराशिकोह, मुल्लाशाह बदख्शी, सूफी फकीर सरमद की श्लोक वाणी दसों दिशाओं में प्रतिध्वनि बनकर गुँजती हैं। उनकी मृत देह औरंगजेब की बेचैन आत्मा को इंसानियत के कठघरे में अपराधी बनाकर प्रत्येक क्षण कोंचती हैं।.....न्यायमूर्ति इतिहास बहुत बेरहम है जो कृष्ण बनकर कालियानाग की तरह औरंगजेब को मथता है तथा इतिहास के घटनापरक पन्नों को दस्तावेज बना देता है। यह इतिहास की वंशी–तान है, जिसे शत्रुघ्न प्रसाद ने अपनी संयमित लेखनी के अनुशासन में बाँधा है।"[50]

3.2.9 'सरस्वती–सदानीरा' का कथ्य–

यह उपन्यास वैदिक ऋषि याज्ञवल्क्य द्वारा सरस्वती नदी के तट से सदानीरा नदी तक सांस्कृतिक समन्वय हेतु की गई यात्रा–गाथा है जिसमें वैदिक संस्कृति के साथ नागों, पणियों, यक्षों, किन्नरों, गंधर्वों, किरातों एवं कीकटों की जीवन शैली को भी समाहित करने का प्रयास है तथा जन्मना व्यवस्था से कर्मणा व्यवस्था की प्रतिष्ठा की चेतना है। उपन्यास का केन्द्रीय पात्र याज्ञवल्क्य है परन्तु केन्द्रीय विचार सांस्कृतिक सम्मिलन है। जन्मनावर्ण व्यवस्था की जगह कर्मणा वर्ण व्यवस्था की प्रधानता सिद्ध करते हुए याज्ञवल्क्य विभिन्न जन समूहों की संस्कृति को सम्मिलित करते हुए वैदिक–व्रात्य समन्वय करते हुए सांस्कृतिक प्रगतिशीलता का परिचय देते हैं। सांस्कृतिक समन्वय एवं कर्मणा व्यवस्था का विचार ही उपन्यास का प्राण

तत्व है। साथ ही उपन्यासकार ने आर्य–अनार्य द्वन्द्व या इस सम्बन्द्ध में उपजे अनेक प्रश्नों एवं धारणाओं का उन्मूलन करते हुए इसे भारतीय संस्कृति की अनवरत धारा कहकर एक ही संस्कृति सिद्ध करने की सफल चेष्टा की है। उपन्यासकार ने सिंधुघाटी सभ्यता एवं वैदिक सभ्यता को समकालीन व अनवरत दिखाकर आर्य–अनार्य भेद को अनावश्यक मत–मतान्तरों के पूर्वाग्रह से मुक्त एकत्व में ही सम्पूर्ण आर्य संस्कृति को दर्शाने का प्रयास किया है। वैदिक रूद्र और एक व्रात्य शिव का एकत्व कर समन्वय की सफल चेष्टा की है। धन–लोभ से मुक्त सादाजीवन व कर्म वाद का भी संदेश दिया गया है। यज्ञ संस्कृति एवं आश्रम संस्कृति के साथ–साथ आर्य भूमि के प्रति निष्ठा का भाव भी व्यक्त किया गया है। उपन्यासकार ने भूमिका में लिखा है कि– "सप्तसिंधु, ब्रह्मवर्त, मध्यदेश, आर्यावर्त और पश्चिम से पूर्व तक विस्तृत उत्तर भारत के विभिन्न भागों में अनेकानेक जन समूहों का निवास रहा है। इनकी अपनी मान्यताएँ, धारणाएँ, जीवन शैलियाँ रही है।............ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में प्रमाण है कि किस प्रकार वैदिक ऋषियों ने यज्ञ संस्कृति, कृषि सभ्यता तथा वैदिक जीवन शैली को शनैः शनैः विकसित किया है संशोधन, समन्वयन एवं परिवर्द्धन द्वारा भारतीय संस्कृति तथा समाज की क्रमिक रचना हुई। पुराकालीन इस समन्वयी रचना की यथासंभव प्रामाणिक एवं रसमयी कथा ही इस उपन्यास में वर्णित हुई है। याज्ञवल्क्य पूर्व की ओर बढ़ते हुए विभिन्न जन समूहों से मिलते है। विदेह जनपद पहुँच कर शास्त्रार्थ में सत्य की अभिव्यक्ति करते है। कीकट के व्रात्यों से टकराव होता है। याज्ञवल्क्य विनम्रता, आत्मीयता, समन्वय की चेतना द्वारा वैदिक–व्रात्य का समन्वय सम्पन्न करते हैं।............विश्व संस्कृति में भारत की समन्वयी संस्कृति की यह प्रतिष्ठा सर्वोच्य है।"[51] विवेच्य उपन्यास में नगरीय जीवन एवं ग्रामीण जीवन में अन्तर स्पष्ट करते हुए बताया है कि नगरीय जीवन लोभ–लालच एवं अनैतिक मार्ग का भी कारण बनता है। जनक विदेह की सभा में आध्यात्मिक उच्चता एवं सत्यता का भी निष्कर्ष प्रदान किया जाता है। मानवता व प्रेम की भावना पग–पग पर दर्शायी गयी है। मूर्ति पूजा व मूर्तिकरण भी नगरीकरण की देन है, ऐसा स्पष्ट किया गया है। ग्राम सभ्यता सदाचार का पालन करती है। ग्रामीण ने कहा– द्यूत अनुचित है। श्रम का निषेध है। अतः अधर्म है। हम धरती की सेवा से अन्न, फल, शाक, स्वर्ण, ताम्र, लौह–सब पा लेते हैं।...............महासिंधुज महानगर और सप्तसिंधु क्षेत्र का अच्छा सम्बन्ध है। तुम अपने पड़ोसी वैश्यों से वैदिक जीवन दृष्टि को समझकर अपनाओ। पर इधर मदिरा, जुआ, ऋण का लोभ मत दिखाओ। ....ऋषि वैषम्पायन कह रहे हैं कि अब आगे चयन और वरण नहीं होगा। आगे आचार्य और पुरोहित के पुत्र आचार्य और पुरोहित बनेंगे।.............हे अग्ने! तुम दिव्य हो, तुम अनुष्ठानों के रक्षक हो। सब यज्ञों में तुम्हारी स्तुति की जाती है।...........विश्वास और स्नेह से ही घर परिवार सुखी रहता है...........श्रम से अर्जित करना और अंश देकर ग्रहण करना मनुष्यत्व है। यही आर्यत्व है।..........आप सत्य कह रहे है किन्नर नायक! एक पाषण रूप है, निराकार विराट का प्रतीक और यह ज्योति रूप है। दोनों ही अपने–अपने रूप में रूद्र हैं...............याज्ञवल्क्य ने सत्य का संधान किया– इसी अविनाशी

'अक्षर' को 'ब्रह्म' कहा जा सकता है..............वृद्ध तपस्वी ऋषभदेव ने चेतना को ही महत्त्वपूर्ण माना।..........जीव की चेतना को मुक्त करना ही उनके तप का उद्देश्य है।.........हम नदियों के संगम का अभिनंदन करेंगे। इसी से प्रेरणा लेकर जनसमूहों को जोड़ना है। यह जनसमूहों का संगम होगा। याज्ञवल्क्य ने अपनी विराट कल्पना को प्रस्तुत किया।........सरस्वती से सदानीरा तक एक भूखंड है। एक देश है। हम विभिन्न जनसमूहों के साथ एक साथ मिलकर रहना चाहेंगे। एक दूसरे के विचारों को समझना चाहेंगे।............जनक वैदेह प्रधान गृहपति के साथ शिव की पूजा कर रहे हैं। आर्य–अनार्य का भेदभाव समाप्त हो रहा है।.........याज्ञवल्क्य ने कहा– जन्मना और कर्मणा व्यवस्था में एक समन्वय लाया जा सकता है। विषमता को दूर करने के लिए एक परम चेतना, एक सदाशिव, एक समाज–पुरूष का भाव संस्कार लाना होगा। वर्णगत अंह और दंभ को पाप माना जायेगा।"[52] यही भाव इस उपन्यास का मूल संवेदन है। यही विचार प्रतिष्ठा है। श्री रंजन सूरिदेव ने औपन्यासिक श्रेष्ठता को सिद्ध करते हुए लिखा है कि– इस उपन्यास में मनीषी लेखक ने कल्पना, भावना और चेतना की हृदयावर्जक त्रिवेणी संगम का विनियोग किया है।...............डॉ शत्रुघ्न प्रसाद ने वैदिक सभ्यता और व्रात्य सभ्यता के एकीकरण का जो साहित्यिक प्रयत्न किया है वह अपनी महनीय महत्ता आयत्त करता है।............यही समन्वयी संस्कृति की साधना इस उपन्यास में चरितार्थ हुई है।"[53] डॉ शिवकुमार गुप्त का कथन उपन्यास के कथ्य से मेल खाता है। लिखते है कि– भारत के ऐतिहासिक युग में जो भी सांस्कृतिक मूल्य और आदर्श विकसित हुए उनका मूलाधार वैदिक विचार हैं। वैदिक संस्कृति भारतीय इतिहास में सनातन रूप में जीवन्त हैं।.............इस सम्पूर्ण काल की उपलब्धि राजनीतिक विजयें न होकर सांस्कृतिक मूल्य और आदर्श हैं जिनकी स्थापना वैदिक युग में हुई थी और जो सम्भवतः सैन्धव युग में भी बीज रूप में विद्यमान थे।"[54] इन्हीं शाश्वत सनातन मूल्यों एवं सांस्कृतिक मूल्यों के समन्वय की चेष्ठा 'सरस्वती–सदानीरा' का समन्वय है।

3.3 शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की कथ्यगत विशेषताएं–

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में वैदिक युग से मध्यकालीन युग तक के भारत के विभिन्न कालखण्डों के जीवन की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनितिक, धार्मिक एवं मानवीय स्थितियों का अंकन आधुनिक प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। इनके उपन्यासों में निम्न प्रमुख प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं :–

3.3.1. अतीतकालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति–

ऐतिहासिक उपन्यास मात्र इतिहास का पुनः सृजन या पुनः प्रस्तुति नहीं होता है इसमें इतिहास की विस्मृत कड़ियों को जोड़ने के साथ–साथ अतीतकालीन पात्रों का नवीन निर्माण करता है। यद्धपि अतीतकालीन उपन्यासों से यह होता है तथापि प्रमुख लक्ष्य किसी विशेष कालखण्ड के अतीतकालीन यथार्थ का उद्घाटन करते हुए उसकी तर्कपूर्ण व्याख्या करना होता है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार को यथार्थ चित्रण के प्रति प्रतिबद्ध रहते हुए तथ्यों एवं सत्यों के साथ निष्ठापूर्ण रहना पड़ता है। शत्रुघ्न प्रसाद अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में तथ्यों के प्रति निष्ठावान बने रहकर ऐतिहासिक जीवन का यथार्थ रूप प्रस्तुत करते है। उनके उपन्यासों में वैदिकालीन, विक्रमसंवत प्रवर्तक शकारि विक्रमादित्य कालीन एवं मध्यकालीन भारत का सम्पूर्ण यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है।

वैदिककालीन रूढ़ मान्यताओं से विभक्त जनसमूह, ऋषि–मुनियों की संस्कृति की उच्चता से विरोध रखता कोल, किरात, व्रात्य जनसमुदाय है। राजमद के अंहकार से पिड़ित होता गणतन्त्र है। वैदिक काल में यदि विभिन्न जनसमूहों में विभक्त भारत है तो इतिहासकाल में गण संघों में विभाजन है।

अपने–अपने क्षेत्र या प्रदेश को ही राष्ट्र समझकर एक–दूसरे के विरोध में रहना या सहायता न करना मध्यकालीन यथार्थ है। आर्य–अनार्य, वैदिक–व्रात्य, अनेक गण–संघों एवं अनेक प्रदेशों के साथ–साथ अनेक धर्मों, सम्प्रदायों, पंथों एवं जातियों का ऊँच–नीच भाव भारत की अतीतकालीन खण्डित दृष्टि है। इसी खण्डित दृष्टि या द्वन्द्व ने भारत को बार–बार आहत किया है। इसी ऐतिहासिक खण्ड बोध का सत्यान्वेषण आलोच्य उपन्यासों में हुआ है। अपनी आर्ष साधना, बौद्ध एवं जैन धर्म की पराकाष्ठा से विश्वगुरू कहलाने वाले इस देश में वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन एवं बौद्ध धर्म और मध्यकाल में आए इस्लामी धर्म के बीच का वैमनस्य तथा कालान्तर में आई विकृतियों एवं दुराग्रहों ने इस देश को बार–बार पतनशील बनाया है। जातियों के दम्भ एवं धर्म की विकृति ने साधनाओं ने समाज की एकता एवं समरसता को चोट पहुँचाई है फलतः देश बार–बार पराजित और पतित हुआ है। वैषम्पायन रूढ़ मान्यताओं के पक्षधर हैं। शैव आचार्य धवल जैन कालकाचार्य का न्यायसंगत साथ नहीं देते है। सिद्ध धोरपा शक्ति सम्पन्न नहीं होने देते और सिद्धियों के प्रयोग पर ही विजय प्राप्त करने का विश्वास देते हैं। बौद्ध–शाक्त विरोध प्रबल है। कबीर को ब्राह्मणों एवं मुल्लाओं की कट्टरता का सामना करना पड़ता है। पंडित प्रवर देवस्वामी की रूढ़ एवं स्वार्थ की भावना कश्मीर के पराभव का कारण बनती हैं। इस्लामी धर्मान्तरण के क्रूर एवं अमानवीय चरित्र को उजागर करती है। शासकों की दुर्बलता एवं एकत्व की कमी, ब्राह्मण–बौद्ध संघर्ष, वामाचारी साधकों की अतिशय अनाचार वादिता, खोखली सिद्धियों पर विश्वास, अहिंसा का अतिरेक, झूठा जात्याभिमान, इस्लामी कट्टरता एवं धर्मान्तरण करवाना, नारी का शोषण, समाजिक विषमता के बीच पनपा गहरा जातिगत विभेद व छूत–अछूत की भावना, हिन्दू राजाओं का संगठित न होना आदि ऐसे कटु सत्य हैं जिनके कारण याज्ञवल्क्य को भटकना पड़ता है, उज्जयिनी का पतन और शकों का आधिपत्य होता है, हेमचन्द्र, हरिहर राय, बुक्का राय एवं कबीर को संघर्ष करना पड़ता है, नालन्दा एवं पाटलिपुत्र का ध्वंस होता है, भारत पर इस्लामी शासकों का आधिपत्य होता है, महाराणा प्रताप को वन–वन भटकना पड़ता है, कोटा देवी व कश्मीर का पतन होता है। देश में धर्मान्ध शासन की नींव पड़ जाती है जो आज तक जमी हुई है तथा

राजमद एवं विलासिता ने शासक एवं धर्म दोनों को कर्तव्यच्युत किया था जिसके परिणाम स्वरूप विद्युत्लेखा, सरस्वती साध्वी, शहनाज बेगम, देवलदेवी, उदयपुरी बेगम, कोटा देवी चाँदनी जैसी स्त्रियों का शोषण हुआ, यह भी एक कठोर सत्य है। वामाचारी सहज साधकों की व्यभिचारी धर्म पद्धति ने भी नारी शोषण को प्रश्रय दिया । देवी सुवर्णा जैसी विधवाओं को साधना के नाम पर महामुद्रा बनाए जाने के प्रयास एवं ग्रामवधू का वहाँ आकर्षित होना इसके प्रमाण हैं। भारतीय इतिहास का यह कठोर सत्य है, जिसके मध्य सिद्धि सम्पन्न पाटलिपुत्र, नालन्दा एवं विक्रमाशिला एवं उदन्तपुरी खण्डहर में बदल जाते हैं, कश्मीर की घाटियाँ चीत्कार करती हैं, उज्जयिनी पतनशील हो जाती है, सारा भारत इस्लामी धर्मान्धत की दहशत से भर जाता है। सारी भारतीय मानवता दुःख और पीड़ा से कराह उठती है। जयशंकर प्रसाद का कथन है कि– वेदना से प्रेरित होकर जनसाधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न यथार्थवादी साहित्य करता है।.......... व्यापक दुःख संवलित मानवता को स्पर्श करने वाला साहित्य यथार्थवादी हो जाता है। इस यथार्थवादिता में अभाव, पतन व वेदना के अंश प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।"[55] इसी वेदना एवं दुःख दग्ध जनमानस का चित्रण शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में हुआ है या यूँ कहे कि नालन्दा और हम्पी के खण्डहरों की वेदना ने उपन्यासों का रूप धारण किया है। भारतीय अतीत जीवन की अपूर्ण खण्डित दृष्टि ही भारतीय इतिहास का यथार्थ है।

"उपन्यास उस गद्य– आख्यान को कहा जाता है जो यथार्थ जीवन को यथार्थवादी दृष्टि से अध्ययन करे।"[56] क्रास द्वारा प्रदत्त इस परिभाषा को आधार माने तो शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। इस दृष्टि से ये उपन्यास सफल एवं सार्थक हैं।

3.3.2 अतीत के प्रति चेतन भाव–

ऐतिहासिक उपन्यासों में घटनाओं और पात्रों की भूमिका के साथ–साथ उपन्यासकार द्वारा पात्रों में करवाया गया संवाद ऐतिहासिक दृष्टि को व्यक्त करता है। पात्रों और घटनाओं से संगत ऐतिहासिक वातावरण काल विशेष की जीवनधारा का चिन्तन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसी से इतिहास बोध व इतिहास चेतना उद्घाटित होती है। उपन्यासकार की इतिहास के प्रति विशेष दृष्टि या समझ होती है। वही उसके 'विजन' या कथ्य को निर्मित करती है। शत्रुघ्न प्रसाद इतिहास को निरन्तरता में देखने के आग्रही हैं। काल अखण्ड प्रवाह है। वे अपने उपन्यासों में तत्कालीन जीवन और संस्कृति का विश्वसनीय चित्रण प्रस्तुत करते हुए, यथार्थ का विश्लेषण करते हुए निष्कार्षात्मक रूप में चेतना भाव प्रकट करते है। इतिहास के खण्ड बोध या खण्डित दृष्टि को दर्शाकर पूर्ण एवं परिपक्व दृष्टि निर्मित करने वाली चेतनाशील इतिहास दृष्टि का निर्माण करने की अभीप्सा रखते हैं। याज्ञवल्क्य, विद्यारण्य स्वामी, हेमू, महाराणा प्रताप, हरिहर बुक्का, कबीर, विक्रमादित्य आदि ऐतिहासिक पात्र हो चाहे कुमार महेन्द्र व भालचन्द्र जैसे काल्पनिक पात्र हो, ये राष्ट्र के प्रति सम्पूर्ण निष्ठा व समपर्ण

का भाव व्यक्त करते है। जाति, सम्प्रदाय, धर्म, संस्कृति एवं प्रदेश स्तर पर बँटा देश का भिन्न–भिन्न विचारधाराओं से ग्रस्त द्वन्द्वग्रस्त एवं खण्डित दृष्टिकोण जिसने देश की प्रगतिवादिता को अवरूद्ध किया तथा जिसके कारण देश को ध्वंस, विनाश, पतन और पराभव देखना पड़ा और जिसके कारण देश इस्लामी धर्मान्धता का शिकार हुआ, उस दंश को नग्न एवं यथार्थ रूप में दर्शाकर उपन्यासकार इतिहास के प्रति चेतना का भाव जागृत करना चाहता है। उपन्यासकार का ध्येय है कि आज की पीढ़ी इतिहास के प्रति लगाव रखते हुए उसे आज की संवेदना के साथ जोड़कर देख सके। अतीत की दुर्बलताओं से बचते हुए और अच्छाईयों को ग्रहण करते हुए सचेत होकर आगे का जीवन तय करे। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि– "उपन्यास में लोकतन्त्र के पीछे यह मान्यता है कि मानव और मानव स्वभाव परिवर्तनशील है। इस परिवर्तनशीलता की पहचान और अभिव्यक्ति उपन्यास का प्रयोजन है। परिवर्तन की चिन्ता ही उपन्यास को द्वन्द्वात्मक चिन्तन से जोड़ती है जिसमें डेविड हार्वे के शब्दों में प्रक्रियाओं, प्रवाहों और परिवर्तनों की समझ को विशेष महत्त्व दिया जाता है। इसी बोध के कारण उपन्यास इतिहास से जुड़ता है और ऐतिहासिक चिन्तन से भी जिसके परिणाम स्वरूप उपन्यास में यथार्थवाद का विकास हुआ।"[57] जयशंकर प्रसाद ने लिखा है कि जाति में जो धार्मिक और साम्प्रदायिक परिवर्तनों के स्तर आवरण स्वरूप बन जाते हैं, उन्हें हटाकर अपनी प्राचीन वास्तविकता को खोजने की चेष्टा भी साहित्य में तथ्यवाद की सहायता करती है।"[58] विवेच्य उपन्यासों में इन आवरणों एवं परिवर्तनों की सतत प्रक्रिया को दर्शाकर आवरणों को हटाने की ही चेष्टा की गई है।

3.3.3 राष्ट्रीय–सांस्कृतिक प्रगतिशीलता–

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में राष्ट्रीयता एवं संस्कृति का प्रगतिशील रूप दिखाई देता है। शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने उपन्यासों में सिंधु संस्कृति, सरस्वती संस्कृति एवं कीकट प्रदेश की संस्कृति को सरस्वती सदानीरा में एक सूत्र में पिरोकर एक ही राष्ट्र बना दिया है। सप्त सैन्धव प्रदेश, आर्यावर्त, भारतवर्ष एक ही है। कलिंग, बंग, मथुरा, उज्जयिनी, लाट मगध एक ही राष्ट्र के भाग है। ऐसा दिखाकर उन्होंने एक राष्ट्र के भाव को बलवत्ता प्रदान की है। राष्ट्रीय एकता को दर्शाया है। वैदिक संस्कृति, व्रात्य संस्कृति, नाग संस्कृति, जैन संस्कृति एवं किन्नर–गंधर्व संस्कृति का भिन्न–भिन्न स्वरूप ही व्रात्य शिव का रूप है। शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध भेद व्यर्थ है। अद्वैतवादी चिन्तन के माध्यम से एकत्व प्रदान कर संस्कृति के निरन्तर प्रगति रूप को दर्शाया है। राष्ट्र भाव एवं सांस्कृतिक विचार निरन्तर प्रगतिशील है। समय गतिशील है। राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक विचार गतिशील है। याज्ञवल्क्य का ही प्रतिनिधित्व कबीर और स्वामी विद्यारण्य करते है। वैदिक–व्रात्य समन्वय ही शैव–वैष्णव समन्वय है। अद्वैतवादी समन्वय है। राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक एकता का वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक निरन्तर प्रगतिशील रूप दर्शाना उपन्यासकार का प्रगतिशील रूप है। उपन्यासकार की प्रगतिशीलता

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित नहीं है। राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक परिष्करण को प्रगतिशील विचारों के साथ प्रस्तुत करने में है। राष्ट्रीयता एवं संस्कृति के बाधक तत्वों को दूर कर मूल भित्ति पर आधारित नवीन प्रगतिशील चेतना का राष्ट्रीय सांस्कृतिक भवन खड़ा करना लेखक का उद्‌देश्य है। डॉ नगेन्द्र ने लिखा है कि चेतना परिस्थिति के प्रभावस्वरूप अस्तित्व में आती है। जो व्यक्ति समाज, राष्ट्र या देश को गतिशील करती है। चेतना के तीनों स्तर भावात्मक, ज्ञानात्मक, क्रियात्मक स्थायी रूप से पाए जाए वही चेतना कालजयी एवं सार्वभौमिक बनती है।..............चेतना व्यक्ति के विचारों की वाहक बनती है। चेतना की प्रेरणा से ही मनुष्य अपने व समाज के लिए कार्य करने को प्रवृत्त होता है।"[59] प्रगतिशीलता मूलतः प्रगति की चेतना है। राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक प्रगति से सम्पन्न बनाने की दृष्टि, भाव या विचार राष्ट्रीय–सांस्कृतिक प्रगतिशीलता है। शत्रुघ्न प्रसाद ने अतीत से वर्तमान को जोड़कर भविष्य की ओर ले जाने वाली विचार दृष्टि से राष्ट्रीयता एवं संस्कृति को अपने उपन्यासों में व्यक्त किया है। रामचन्द्र शुक्ल के दृष्टिकोण के अनुसार राष्ट्र भाव को अतीत में देखते हैं। शुक्ल जी ने लिखा है– अतीत के प्रति भी दृष्टि फैलाओ। राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, विक्रम, कालिदास, भवभूति इत्यादि का स्मरण करो जिससे यह सब नाम तुम्हारे हो जाएँ। इस नाते भी यह भूमि और इस भूमि के निवासी तुम्हें प्रिय होंगे।"[60] शत्रुघ्न प्रसाद के पात्र याज्ञवल्क्य, विक्रमादित्य, हरिहरराय–बुक्का राय, स्वामी विद्यारण्य, कबीर, महाराणा प्रताप, दाराशिकोह, सरमद, उधोदास, हेमू, कुमार महेन्द्र, कोटादेवी, आनन्द भिक्षु आदि इसी प्रकार अपने राष्ट्र भाव से प्रिय होते हुए भारत को प्रिय बनाने की चेतना प्रदान करते है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास राष्ट्रीय–सांस्कृतिक विचारों के साथ प्रगतिशीलता की विचारधारा प्रस्तुत करते हैं।

3.3.4 समन्वयवाद की प्रतिष्ठा–

शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने उपन्यासों में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक समन्वय का पुरजोर प्रयास किया है। समन्वय और ग्रहण भारतीय संस्कृति की उदारशया प्रवृत्ति का प्रतीक है, जो हमेशा से रहा है। 'सरस्वती–सदानीरा' में वैदिक–व्रात्य समन्वय वैदिक रूद्र और व्रात्य शिव को एक शिव रूप में स्वीकार करने और बुझावन–पाटली का विवाह सम्पन्न करवाने में दिखाई देता है। 'शिप्रा साक्षी है' में कुमार विषमशील द्वारा गण–संघों को जोड़ना राजनैतिक एकता व संगठित शक्ति का प्रतीक है। 'तुगभद्रा पर सूर्योदय' में सभी सम्प्रदायों के आचार्यों का एक मंच पर उपस्थित होकर स्वामी विद्यारण्य के अद्वैतवादी चिन्तन को स्वीकार करना और मरप्पा एवं हिन्दू माँ व मुस्लिम पिता की संतान श्री देवी का विवाह भी सांस्कृतिक–सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात होना ही माना जायेगा। महाराणा प्रताप द्वारा किशन–टिकोरी का विवाह करवाना भी इसी प्रक्रिया की कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। शत्रुघ्न प्रसाद ने अनेक गौण एवं मुख्य प्रसंगों में समन्वय को सामाजिक–राष्ट्रीय प्रगति के रूप में देखते हुए ऐसी समन्वय प्रक्रिया को सम्पन्न करवाकर सामाजिक–सांस्कृतिक क्रान्ति

का सचेष्ट प्रयास किया है। क्रियाशक्ति यतीश्वर ने कहा– "यह एक सामाजिक–सांस्कृतिक क्रान्ति है।" स्वामी विद्यारण्य ने कहा– विजयनगर का शिलान्यास और यह विवाह दोनों इतिहास के महत्वपूर्ण अध्याय होंगे।"[61] मुनि कौषीतकि ने कहा– आज इस संगम पर व्रात्य–वैदिक मिलन सम्पन्न हो रहा है। प्रयोग रूप में कोशल के कृषक बुझावन एवं गृहपति की कन्या पाटली का विवाह संस्कार होगा।...........सबसे पहले हम सभी एक साथ एक व्रात्य महादेव शिव की पूजा करेंगे।.....आज इस संगम पर आर्य–अनार्य भेद भुलाकर यज्ञ और पूजा दोनों करेंगे।"[62] मानव गणपति विषमशील विक्रमादित्य सोच रहे थे– पहले शकों की पराजय फिर उनका भारत की धरती, भारत की संस्कृति तथा भारत जन में सम्मिलन.........हला की अनुभूति द्वारा एक नये युग का आरम्भ।..........विदेशी शकों का आतंक मिटाना है और उन्हें इस धरती के साथ जोड़ना है........वे हला के साथ इस संकल्प को पूरा करेंगे।"[63] शत्रुघ्न प्रसाद द्वारा समन्वय की व्यापक चेष्टा की गई है।

3.3.5 अद्वैतवादी चिन्तन–

शत्रुघ्न प्रसाद समरसतावादी एकात्म चेतना के प्रबल समर्थक है। सामाजिक समरसता एकात्मवादी अद्वैतवाद से ही लायी जा सकती है। उन्होंने ऐतिहासिक अध्ययन एवं मनन से अनुभव किया कि जाति एवं सम्प्रदाय भेद ने सामाजिक विभेद पैदा किया जिससे समाज एवं राष्ट्र एकत्व को प्राप्त नहीं कर सका। परिणामस्वरूप राष्ट्र को पददलित होना पड़ा। कबीर, स्वामी विद्यारण्य, नाथपंथी योगी, दाराशिकोह आदि उनके ऐसे पात्र है जिनके माध्यम से वे समाज में समतावादी अद्वैतभाव की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। वैदिक ऋषि याज्ञवल्क्य भी इसी भावना के प्रतिनिधि पात्र है माधवाचार्य बोल उठे– "यदि अद्वैत का चिन्तन चाण्डाल में भी ब्रह्म का दर्शन कर सकता है तो विषमता की भावना कब तक कष्ट देगी।"[64] रामकुमार निराला से बातचीत में स्वयं लेखक ने स्वीकार किया है कि– " 'सुनो भाई साधो' उपन्यास में मैंने दिखाया। वर्ण व्यवस्था से पीड़ित बुनकर समुदाय ने इस्लाम को कबूल कर लिया था। कबीर ने समतावादी अद्वैत चिन्तन के आधार पर निर्गुण भक्ति द्वारा हीनता को दूर करने का प्रयत्न किया। दोनों धर्मों की निर्भीक आलोचना की। काफिर शब्द की नयी व्याख्या कर हिन्दू और मुसलमानों को ह्रदय से जोड़ने की कोशिश की।"[65] उपन्यासकार ने अपने सभी उपन्यासों में इस विचार को स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

3.3.6 राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय एकता की प्रतिष्ठा–

शत्रुघ्न प्रसाद को राष्ट्र अति प्रिय है। अपने जीवन में उन्होंने राष्ट्र को सर्वोपरि माना है। उनके उपन्यासों में राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रवादी विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। याज्ञवल्क्य, कुमार महेन्द्र, विक्रमादित्य, हेमू, दारा, हरिहरराय एवं बुक्काराय, स्वामी विद्यारण्य, महाराणा प्रताप आदि पात्रों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रवादी विचारों को प्रस्तुत किया है साथ

ही अनेक गौण पात्रों एवं प्रसंगों में भी इन विचारों को स्थापित करने की चेष्टा की है। भारतवर्ष, भारत–भूमि, भारतीय एकता, हिन्दू प्रजा के प्रति प्रेम आदि विचार बार–बार आए हैं। हरिहरराय–बुक्काराय द्वारा स्वामी विद्यारण्य के निर्देश से हिन्दू राज्य विजयनगर की स्थापना की जाती है। कुमार विषमशील राष्ट्र की एकता के प्रयत्न में गणराज्यों को एक करता है। इसी में है। महाराणा प्रताप राष्ट्र–रक्षा के लिए संकल्प लेकर संघर्षशील रहते हैं। कोटा देवी अपना प्राणोत्सर्ग कर देती है। हेमचन्द्र विक्रमादित्य का संघर्ष भी इसी दिशा में रहता है और इसी हेतु उसका बलिदान होता है। 'शिक्षा साक्षी है' के कालतरूण, 'तुंगभंद्रा पर सूर्योदय' के मरप्पा के सैनिक, 'सुनो भाई साधो' के जमींदार, 'दाराशिकोह' का गोकुल जाट, कश्मीर की बेटी का सर्वदेव, 'अरावली का मुक्त शिखर' का राणापुंजा, संभा, भामाशाह आदि सामान्य जन पात्र हैं जो राष्ट्र पर बलिदान एवं सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर है। आचार्य भास्वर ने समझाया– "सत्य तो यह है कि अवन्ती, सुराट, लाट, आन्ध्र आदि इस विशाल भारत के छोटे–छोटे प्रदेश हैं। ये सभी भारत के अंग है। आसेतु हिमालय एक देश है।..........इन्द्र, भरत, राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, चन्द्रगुप्त ये सभी महापुरूष राष्ट्रीय एकात्मकता के आधार है।..... अपनी मातृभूमि के विराट् रूप के दर्शन तथा नित्य स्मरण आवश्यक है।"[66] आचार्य के ये शब्द राष्ट्रीयता की उद्घोषणा है। सभी उपन्यासों में मातृभूमि पर बलिदान होने का संदेश दिया गया है। आनन्द भिक्षु कहते हैं– हमें अपने वर्ण के विशेषाधिकार की चिंता थी। अपनी मातृभूमि की नहीं। कुमार महेन्द्र कहते हैं– मुझे धरती माँ के लिए रक्ततर्पण करना है। ऐसे कथन शत्रुघ्न प्रसाद जी के सभी प्रमुख पात्रों के मुख से निसृत होकर राष्ट्रवादी भावों का उन्मेष करते हैं। सदानन्द प्रसाद गुप्त के कथन से और अधिक स्पष्टता से इस तथ्य को रेखांकित किया जा सकता है। उन्होंने लिखा है कि– "लेखक का स्वप्न व्यापक हिन्दू समाज को एकजुट करने का इस इक्कीसवीं शताब्दी का सबसे बड़ा स्वप्न है। लेखक छोटी–बड़ी जाति के भेद को मिटाना चाहता है। वह इस भेद को राष्ट्रीय एकता के लिए घातक मानता है।"[67] इस प्रकार उपन्यासकार राष्ट्रीय गौरव, राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रवाद के भावों को प्रतिष्ठित करने का महत् कर्म निभाकर राष्ट्र निष्ठा दर्शाता है।

3.3.7 आधुनिक विमर्श चेतना–

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद का साहित्य वादों एवं विमर्शों का रहा है। प्रत्येक युग का साहित्य युगीन प्रवृत्तियों से प्रभावित रहता है या यूँ कहा जाए कि प्रत्येक साहित्यकार की प्रवृत्ति विशेष के प्रति अपनी–अपनी भिन्न दृष्टि रहती है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि के प्रति एक स्वस्थ विचार दृष्टि विवेच्य उपन्यासों में देखी जा सकती है। स्त्री जीवन के ज्वलंत प्रश्न एवं स्त्रीजीवन की पीड़ा को उपन्यासकार ने गहरी शिद्दत से उठाया है पर पश्चिमी सोच व नजरिया न रखते हुए भारतीय दृष्टि से परखा है। याज्ञवल्क्य की पत्नी कात्यायनी के मन में ईर्ष्या का भाव दिखाकर स्त्री स्वभाव का रोचक भावगत चित्रण

किया है। मैत्रेयी एक शाश्वत प्रश्न है– क्या तरूणी कन्या मात्र सुन्दर शरीर है? क्या वह केवल कामिनी है? उसके पास मन मस्तिष्क नहीं है।"[68] सुभद्रा एवं सुवर्णा ऐसे नारी पात्र हैं जिन के माध्यम से विधवा नारी की पीड़ा का मार्मिक अंकन हुआ है। सहजयानी व्यभिचारी लोलुपता को भी दर्शाया गया है। शोषण का स्वरूप चित्रित हुआ है। विद्युत्लेखा एवं मृणाल जैसी राजनर्तकियों के माध्यम से वेश्या जीवन एवं पुरूष विलासिता की शिकार नारी की व्यथा का अंकन हुआ है। देवल देवी, शहनाज बेगम, उदयपुरी बेगम आदि के माध्यम से पीड़ा की दयनीय दशा का चित्रण है। चाँदनी–सर्वदेव का विवाह, मरप्पा–श्रीदेवी का विवाह, सामश्रवा–मणिप्रभा विवाह, बुझावन–पाटली विवाह, मोहन(जमाल)–नूरी का विवाह, प्रेम किशन–टिकोरी विवाह, सुभद्रा–सुमन्त विवाह, सुवर्णा–महेन्द्र विवाह, हमीद–गजाला विवाह आदि ऐसे प्रसंग हैं जिसमें नारी पीड़ा एवं रूढ़िवादी नारी विचारों से मुक्ति का उद्घोष किया गया है। नारी विमर्श की भारतीय प्रगतिवादी स्वस्थ विचार धारा प्रस्तुत हुई है। दासी पुत्र गजमुख, अतिशूद्रा चाँदनी व सर्वदेव, कबीर–लोई, किशन–टिकोरी, भील समुदाय आदि प्रसंगों में तथा अनेक स्व विचारणीय कथनों के माध्यम से उपन्यासकार ने ऊँच–नीच व छूत–अछूत के भेद को समाप्त करने का संदेश दिया है। वृद्ध कहीं मार्गदर्शक की भूमिका में आए हैं कहीं रूढ़िवादी एवं संकीर्ण विचारों के पोषक बनकर आए है। तरूण विमर्श प्रभावी बन पड़ा है। युवा शक्ति को देश का भविष्य निर्माता दर्शाया है। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' उपन्यास की समीक्षा में लिखी गयी विवेचना उनके सभी उपन्यासों पर खरी उतरती है। वे कहते हैं कि– "यह एक ऐसी गद्य–कृति है जहाँ वर्ण–विमर्श, जाति विमर्श, स्त्री विमर्श और दलित विमर्श अर्थात् मानवीय आधार पर असमानता की जो भी कसौटियाँ हो सकती है इतिहास के संदर्भ में समझने की बहुत सुलझी हुई कोशिश नजर आती है।"[69] विवेच्य उपन्यासों में नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, वर्ण विमर्श आदि को स्वस्थ एवं सुलझी हुई दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। लेखक की प्रौढ़ विचारधारा का परिचायक है।

3.3.8 उदात्त एवं निर्मल प्रेम भावना–

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास यद्धपि किसी ऐतिहासिक प्रेम कथा को लेकर नहीं लिखे गए हैं परन्तु की उपन्यासकार ने प्रेम के उज्ज्वल व उदात्त स्वरूप को व्यक्त किया है। इनका प्रेम चित्रण दैहिक आकर्षण नहीं है, मन का पवित्र भाव है जिसमें समपर्ण है। उज्ज्वल एवं पवित्र भाव ही प्रेम की परिभाषा है। 'सरस्वती–सदानीरा' में बुझावन–पाटली व सामश्रवा–मणिप्रभा के माध्यम से प्रेम सांस्कृतिक समन्वय का हेतु सिद्ध होता है। 'शिक्षा साक्षी है' में कुमार विषमशील एवं शक कन्या हला के बीच पनपा प्रेम भी अन्ततः सांस्कृतिक मेल की प्रेरणा बनता है। 'सिद्धियों का खण्डहर' में कुमार महेन्द्र और सुवर्णा के मध्य मौन अनुराग निश्छल प्रेम का अनुपम उदाहरण है। सुमन्त और सुभद्रा तथा देवेन्द्र–मृणाल का प्रेम भी सामाजिक रूढ़ियों का प्रतिकार कर दो आत्माओं के मिलन का भाव देता है। 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' में

पारो का प्रेम देश–हित की प्रेरणा बन समष्टि चेतना में परिणत होता है। मोहन(जमाल)–नूरी एवं गजेन्द्र सिंह–चन्द्रा की प्रेम कथा भी पवित्र, निर्मल एवं शुद्ध प्रेम का भाव प्रदान करती है। 'सुनो भाई साधो' में कबीर और लोई का दाम्पत्य भी प्रेम–रस से परिपूर्ण कथा की तरह ही चलता है। लक्ष्मी चन्द्र–मधु का प्रेम बलिदानी समपर्ण को दर्शाता है। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' में देवदासी इन्दु एवं छात्रषण्मुखम् का प्रेम समर्पित भाव का सामाजिक रूढ़ियों का तिरस्कार करता मनोभाव है जो शुद्ध ह्रदय की नैसर्गिक भावना है जिसका अन्त निर्मम और ह्रदयद्रावक होता है। मरप्पा और श्रीदेवी तथा हरिनारायण(हमीद)–गजाला का प्रेम भी शुद्ध भावों की चरम मिलनसारिता को ही दर्शाता है। आचार्य माधव एवं पत्नी वैतीहोत्री का प्रेम भाव ह्रदय का पूर्ण शुद्धिकरण प्रकट करता है। 'दाराशिकोह' में आलमआरा–भवनाथ एवं जेबु–अकिल खाँ के माध्यम से प्रेम की विवश पीड़ा को अभिव्यक्ति दी गई है। 'अरावली का मुक्त शिखर' में अमर सिंह–राणकदे(जुगनी), संभा–फूला, किशन–टिकोरी एवं तानसेन–महरूख के माध्यम से प्रेम के भिन्न रूप प्रस्तुत किए गए है। विवेच्य उपन्यासों में निर्मलता और पवित्रता प्रेम है, समपर्ण और त्याग ही प्रेम है, ह्रदय का ह्रदयगत मिलन ही प्रेम है, आत्मा का सौन्दर्य ही प्रेम है, का अर्थ तो प्रदान करता ही है साथ ही प्रेम समष्टिगत चेतना है, की प्रेरणा प्रदान करता है। प्रेम का इतना सुन्दर एवं स्वच्छ रूप अन्यत्र दुर्लभ है। श्री रंजन सूरिदेव ने 'सरस्वती सदानीरा' के प्रेमी–युग्यकों के बारे में लिखा कथन शत्रुघ्न प्रसाद के सभी उपन्यासों के प्रेमी पात्रों के लिए सटीक है। लिखा है– "इनके जीवन जीने की प्रक्रिया में काम–कमनीय प्रेम की अन्तर्धारा प्रवाहित होती रहती है।.........इसमें जो रागात्मक तत्व है वह कामात्मकता की अपेक्षा सात्विक अनुभूति कराने में सक्षम है।"[70] यह सात्विक प्रेम की अनुभूति सर्वत्र व्याप्त है शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में।

3.3.9 इतिहास–रस का आस्वाद–

ऐतिहासिक साहित्य इतिहास रस से आप्लावित होता है। यद्धपि शत्रुघ्न प्रसाद चतुर सेन शास्त्री की तरह केवल इतिहास रस के आकांक्षी या प्रस्तुतकर्ता नहीं है। वे ऐतिहासिक उपन्यासों का लक्ष्य इतिहास–रस नहीं मानते हैं परन्तु लेखन कौशल स्वतः ही रस का संचार करता है। शशिभूषण सिंहल के अनुसार रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि– "रस की सृष्टि ही उद्देश्य है, अतएव उसको उत्पन्न करने के लिए ऐतिहासिक उपकरणों की जिस मात्रा में आवश्यकता होती है, कवि लोग उतनी ले लेने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते।.......... उपन्यासकार एक मात्र इसी ऐतिहासिक रस के लालची होते है। उन्हें सत्य की कुछ विशेष परवाह नहीं होती।" चतुरसेन शास्त्री का मानना है कि– "ऐसी रचनाएँ जो साहित्य संश्लिष्ट हैं और जिनका आरम्भ एक अनिर्दिष्ट रस है।.........यह इतिहास रस है।".......हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि– ऐतिहासिक पात्रों का सहारा लेकर मैंने रस की सृष्टि की है और रस से बड़ा कोई न्याय नहीं है।" रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार– विगत की स्मृति दो प्रकार की

होती है– विशुद्ध स्मृति और प्रत्यक्षाश्रित या प्रत्यभिज्ञान। ....बीती घटना या वैभव के प्रतीकस्वरूप कोई खण्डहर अवशेष सामने हैं, उनके सहारे जीवन की नश्वरता के प्रति उनके मन में गहरी टीस उपजती है। अतीत के अवशेषों के आश्रय से भावुक व्यक्ति की उर्वर कल्पनाशक्ति जब किसी पूरे प्रसंग या कथा की रचना स्वयं करने लगी है तो संक्षेप में यही स्मृत्याभास कल्पना है।"[71] नालन्दा के खण्डहरों, हम्पी के अवशेषों, कश्मीर की पीड़ा, कबीर और दाराशिकोह का चिन्तन, विक्रमादित्य, महाराणा प्रताप, हरिहर–बुक्का, स्वामी माधव अर्थात् स्वामी विद्यारण्य, हेमू, याज्ञवल्क्य, कोटादेवी आदि ऐसे प्रसंग हैं जिन्होंने शत्रुघ्न प्रसाद के मर्मस्थल को स्पर्श कर यथार्थ परन्तु अनायास ही कथा रस से ओत–प्रोत कथावितान रचने की प्रेरणा प्रदान की। कुमार महेन्द्र–सुवर्णा प्रसंग, बुझावन–पाटली प्रसंग, जोधाबाई का द्वन्द्व, हेमचन्द्र–पारो प्रसंग की पीड़ा, पंडित जगन्नाथ–लवंगी की मर्मकथा, दारा–सरमद, जहाँआरा, आलमआरा, जेबु की पीड़ा, देवलदेवी की जीवन–व्यथा, कोटा देवी, चांदनी का आत्मोत्सर्ग, इन्दु–षणमुखम का दर्दनाक हादसा, विषमशील–हला, बारबकशाह –शहनाज बेगम आदि प्रसंगों के साथ–साथ असम की राजकुमारी जया एवं रामसिंह आदि सभी प्रसंग अनायास ही इतिहास रस की सृष्टि करने में सफल हुए हैं। इतिहास रस को ऐतिहासिक उपन्यास का उद्देश्य न मानने पर भी शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में इतिहास–रस का पूर्ण आस्वादन प्राप्त होता है।

3.3.10 आदर्शवादी–मानवतावादी जीवन दर्शन–

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में पुरूषार्थ और कर्म का संदेश, मनुष्यता की स्थापना, दाम्पत्य, राजनीति, शासक, धर्म व जीवन का आदर्शमयी स्वरूप आदि विचारों की स्थापना दिखाई देती है। दाम्पत्य में एकात्मभाव, शासक का धर्म जनहित, धर्म का रूप, सर्वधर्म समभाव, मानव मात्र की सेवा मानवता, कर्म ही जीवन है, साहित्य का विनाश जीवन की बहुत बड़ी हानि है, मजहबी सियासत मानवता की शत्रु है, अहिंसा का अतिरेक देश व समाज की निर्बलता है, सामाजिक विषमता राष्ट्र को निर्बल करती है, शस्त्र शक्ति एवं संगठन शक्ति राष्ट्र की रक्षा के लिए आवश्यक है, तन–मन से स्वस्थ एवं बलवान होना आवश्यक है, तरूण शक्ति से ही देश का उद्धार है, देश धरती सर्वोपरि है, आत्मा की शुद्धता ही जीवन है, जीवन गतिशील है, परम तत्व की चेतना ही जीवन का सच्चा आनन्द है, जन्म महोत्सव मातृत्व महोत्सव है, जुल्म के प्रति आवाज उठाना ही सच्ची मनुष्यता है, दीन की सहायता धर्म है, धर्म के प्रतिनिधि निरंकुश राजा को संयमित नियन्त्रित करता है, आदि ऐसी अवधारणाएँ प्रस्तुत की गई है जो मानवता एवं आदर्शवाद को स्थापित करती है। त्याग, समपर्ण, बलिदान, मातृभूमि रक्षा, संकल्प शक्ति, सात्विक प्रेम, तपस्वी जीवन की महिमा आदर्शवादी स्थापनाएँ उपन्यासों की केन्द्रीय संवेदना बनी हुई है। उपन्यासकार ने अन्न सबको मिलना चाहिए, पराधीनता से बढ़कर पीड़ा नहीं है, राजमद गणतंत्र को कुचलता है, धर्मान्ध राजनीति जनजीवन के लिए घातक है, प्रेम

शक्ति है, आदि भावों को भी अधिष्ठित करने की सफल व सार्थक प्रयास किया है। वस्तुतः शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की मूल चेतना यथार्थवादी है परन्तु मानवतावादी जीवन–दर्शन साथ–साथ सहज ही में समाहित होता चलता है, और श्रेष्ठ साहित्य का सर्जन जिस आनन्दलोक या साधना की सर्जना करता है वैसी सृष्टि हो जाती है।

निष्कर्षतः शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थ, इतिहास चेतना, प्रगतिशील राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चिंतन, राष्ट्रीय गौरव व राष्ट्र धर्म की स्थापना, मानवतावादी–आदर्शवादी जीवन दर्शन, नारी महिमा, प्रेम की उदात्तता आदि भावों के दर्शन होते है। सामाजिक विषमता, साम्प्रदायिक भेद, ऊँच–नीच का प्रतिकार एवं राष्ट्रीय एकता का संदेश मिलता है। सुरेश गौतम ने लिखा है कि– "रचनात्मक दृष्टि बोध लेकर मरूस्थली इतिहास को साहित्य की विधा विशेष में ढालकर एक महत् उद्देश्य की पूर्ति करना, वर्णनात्मक प्रसंगों को रसात्मक बनाकर, जीवन का हिस्सा बनाना, विवेकशील तुर्कों को गुफाओं से निकालकर वर्तमान की शक्ति पीठ पर परखना प्रेम जैसे कोमल भावों को मनोविश्लेषणात्मक कसौटी पर कसना, मानवीय मूल्यों को इतिहास छननी में छानना, भारतीय संस्कृति की सामरस्य चेतना को उद्बोधित कर अस्मितामूलक प्रश्नों से जोड़ना, इन्हें वैचारिक परिधि में लाना, भारतीय दर्शन की रसगंगा–आर्ष ग्रन्थों के चिंतन, अध्यात्म को संवाद कलश में ओटना, राष्ट्रीयता, पुरूषार्थ, उदारता, आस्था, विश्वास, नारी स्वातंत्र्य को संगीतराग में ढालना, सियासत की दहशत और हाहाकार के बीच शब्द दीपों की रस गाँठ लगाकर जीवन के कठोर अग्नि यथार्थों को द्रवीय बनाना, उसमें नदी सा बहना किसी ऋतम्भरा मेघ का ही कार्य हो सकता है।"[72] शत्रुघ्न प्रसाद ही ऐसा ऋतम्भरा मेघ है जिन्होंने इस कार्य को सम्पन्न किया है। अपने उपन्यासों के माध्यम से उपन्यासकार ने उच्च चिंतंन, स्वाधीनता का भाव, बहुजन हिताय का विचार प्रस्तुत करते हुए समाज को प्रभापूर्ण आलोक एवं तेजोद्दीप्त हृदय प्रदान करने का प्रयास किया है। शत्रुघ्न प्रसाद का उपन्यास साहित्य लोक मंगल की भावना से युक्त तपःपूत तपस्या का परिणाम है जो समष्टि हित की प्रतिष्ठा करता है।

3.4 शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों का शिल्पगत विशेषताएं–

कथ्य, विचार या भाव को कहने का विधान शिल्प कहलाता है। साहित्यकार देखे–सुने जीवन को अपनी क्षमतानुसार समझता–महसूसता है। उसकी यह समझ या धारणा उसकी मूल दृष्टि है। यही साहित्य का कथ्य है। कथ्य को जीवन–चित्र में परिणत करने का विधान शिल्प कहलाता है। डॉ रेणुवर्मा ने शिल्प शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि– शिल्प विधि का शाब्दिक अर्थ हैं– "किसी चीज को बनाने या रचने का ढंग या तरीका। किसी वस्तु को रचने की जो विधियाँ अथवा प्रक्रियाएँ है उनके समुच्चय को ही शिल्प विधि के नाम से पुकारा जाता है। कैम्पवेल को उदघृत करते हुए कहा है कि– "अच्छी 'टेकनीक' का अर्थ है सही बात, सही ढंग से उपयुक्त समय पर कहना।"[73] प्रतीकात्मकता भी कथ्य के सम्प्रेषण में

सहायक है। उपन्यासकारों ने वर्तमान विसंगतियों को दशार्ने एवं कथ्य को प्रभावी बनाने की दृष्टि से प्रतीकों का सहारा भी लिया है। शिल्प का एक अंग बनता जा रहा है। प्रभाकर माचवे व अज्ञेय को उद्धृत करते हुए रेणुवर्मा ने लिखा है कि– 'प्रतीक कलाकार की परिकल्पना एवं चिंतन का वह पदार्थ बोध है जो मानव जीवन के प्राथमिक मूल्यों का उद्योतन कुछ–न–कुछ अंशों में करता है।' तथा "महत्त्व या मूल्य प्रतीक में नहीं होता वह उससे मिलने वाली अनुभूति की गुणात्मकता में होता है।"[74] मुख्यत उपन्यास में उपन्यासकार की सूझ–बूझ, उसकी कुशलता, कल्पना शक्ति, समयानुसार तात्विक परिवर्तन आदि से शिल्प का सम्बन्ध होता है। डॉ लक्ष्मीनारायण लाल को उद्धृत करते हुए हेतु भारद्वाज ने शिल्पविधान के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– "शिल्प–विधि का बोध अंग्रेजी के 'टेकनीक' शब्द से किया जाता है। टेकनीक का अर्थ है ढंग, विधान, तरीका जिसके माध्यम से किसी लक्ष्य की पूर्ति की गई हो। ....कला के क्षेत्र में इसका अभिप्राय है सम्पूर्ण भावाभिव्यक्ति का प्रकार। कथा के विभिन्न तत्वों अथवा उपकरणों की योजना का वह विधान, वह ढंग, जिसमें कलाकार की अनुभूति अमूर्त से मूर्त हो जाए।...........किसी भाव को निश्चित रूप देने के लिए जो विधान प्रस्तुत किए जाते हैं वही उस कला की शिल्प विधि है। इस रूप में शिल्प विधि वह साधन है जिसके द्वारा कलाकार अपने भाव, विचार, कल्पनाएँ व्यक्त करता है। वह साधन जितना ही पूर्ण और प्रभावशाली होगा, कलाकार के भाव, विचार और कल्पनाएँ उतनी ही स्पष्टता और प्रभविष्णुता से व्यक्त होंगी।"[75] शिल्प संरचना का आधार होता है। उपन्यास के मूल स्वरूप का निर्धारण शिल्प द्वारा होता है। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि– उपन्यास में एक संरचना के भीतर अनेक प्रकार के सम्बन्धों की क्रियाशीलता मौजूद रहती है। उसमें सामाजिक, ऐतिहासिक, वैयक्तिक, वैचारिक और पाठ से जुड़े सम्बन्ध परस्पर क्रिया– प्रतिक्रिया करते हुए उपन्यास के ढाँचे का निर्माण करते हैं।"[76] उपन्यास के तत्वों या उपादानों का कुशल नियोजन शिल्प है। रामचन्द्र वर्मा के अनुसार– "लाक्षणिक रूप में संरचना अमूर्त वस्तु का सारा ढाँचा प्रस्तुत करती है।........घटनाएँ, पात्र, चरित्र, आचरण, देशकाल निर्माण, शब्द योजना से विचार प्रस्तुति आदि का कुशल प्रयोग ही शिल्प विधान है।"[77] उपन्यास रचना में प्रायः शिल्प को 'टेकनीक' के पर्यायवची रूप में क्राफ्ट, स्ट्रक्चर तथा फार्म का समानार्थी मान लिया जाता है। परन्तु अध्ययन करने पर ये सब कलाकार की दृष्टि पर निर्भर जान पड़ते हैं। 'रूपाकार' शिल्प के नजदीक अर्थ में बैठता है परन्तु वह वस्तुनियोजन तक ही उचित माना जा सकता है। शिल्प कही अधिक शक्ति सम्पन्न शब्द है। शैली और शिल्प को भी एक मान लिया जाता है। शैली भाषा की प्रयोग विधि है। उपन्यास की रचना भी भाषा से ही होती है। भाषा का विधान शैली है और सम्पूर्ण औपन्यासिक विधान शिल्प है। डॉ लक्ष्मीदास वैरागी ने अनेक उद्धरण देते हुए शैली के अर्थ को स्पष्ट किया है कि– डॉ नगेन्द्र के अनुसार 'शील' का अर्थ स्वभाव, चरित्र, आचरण आदि है। इस आधार पर शील शब्द की व्याप्ति व्यक्ति के व्यवहार, चरित्र, मनोवृत्ति रूचि आदि तत्वों तक में है। श्री रामचन्द्र वर्मा ने 'प्रमाणित हिन्दी

शब्दकोश' में शैली का अर्थ चाल, रीति, प्रणाली, वाक्य रचना की विशिष्टता आदि बताया है।. ....अतः आधुनिक अर्थ में शैली भाषा की संरचना में रूपायित, रचयिता की भाषिक रूचियों, आभ्यासिक प्रयोगों और विशिष्ट संदर्भबद्ध संरचनाओं का समुच्चय है।"[78] शिल्प और शैली के अन्तर को स्पष्ट करते हुए डॉ प्रेम भटनागर ने लिखा है कि– किसी भी कथ्य को जिस शिल्प में प्रस्तुत किया जाता है वह शैली रूपी कारीगर द्वारा ही किया जाता है। इस दृष्टि से शिल्प और शैली का निकटस्थ और अटूट सम्बन्ध स्वतः ही सिद्ध हो जाता है।............शैली भाषा का रूप चमत्कार है शैली का सम्बन्ध कथाकार के व्यक्तित्व के साथ–साथ भावाभिव्यक्ति एवं भाषा के विशेष परिधान से है।.........शिल्प इस शैली का दिशान्यास करता है।..............क्यों कि शिल्पविधि का सम्बन्ध रूप रचना की समस्त प्रक्रियाओं से है।........शिल्प विधा का सम्पूर्ण ढाँचा है तो शैली उस ढाँचे की अभिव्यक्ति की रीति।........शिल्प शैली का स्वामी है। शिल्प का लक्ष्य यह नहीं होता कि कथा क्या है, पात्र क्या है? अपितु यह है कि कथा किस भाँति संयोजित हो, पात्र किस प्रकार नियोजित हो, जीवन दर्शन कैसे उडेला जाए आदि–आदि।"[79] अतः स्पष्ट है कि शिल्प उपन्यास का सम्पूर्ण नियोजन है। प्रेम भटनागर ने लिखा है कि– "शिल्प वस्तु तत्व से अधिक शक्तिमान एवं समृद्ध विधा है क्यों कि इसके अन्तर्गत वस्तुगठन योजना, चरित्रांकन विधि, संवाद परिकल्पना, वातावरण नियोजन, विचार संचालन तथा भाषा और शैली तत्व नियोजित होते है। रूचि का भी शिल्प में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। रूचि एवं संस्कार अनुरूप उपन्यासकार कथा रचता है।"[80] उन्होंने शिल्प क्षेत्र की भ्रान्तियों का निवारण करते हुए वर्णनात्मक विश्लेषणात्मक प्रतीकात्मक, नाटकीय, समन्वित, शिल्प–विधि के रूप में पाँच भाग नियत किए हैं। वर्णनात्मक शिल्प को – अन्य पुरूष शैली, आत्मकथात्मक शैली, पत्र शैली, डायरी शैली में विभक्त किया है तथा विश्लेषणात्मक शिल्प विधि को मनोविज्ञान प्रधान, दर्शन प्रधान, चेतना प्रवाहवादी एवं पूर्वदीप्ति शैली में विभाजित किया है। लिखा है– वर्णनात्मक शिल्प विधि वह है जिसके द्वारा उपन्यास में जीवन के विस्तृत क्षेत्र का चित्रण विवरण पूर्ण ढंग से बढ़ा–चढ़ा कर व्याख्या सहित प्रस्तुत किया जाता है। इस विधि को अपनाने वाले उपन्यासकार के पास इतिहासकार जितनी सुविधाएँ विद्यमान रहती है। वह जीवन के किसी भी क्षेत्र को अपनी कथा का माध्यम बना सकता है। घटना बाहुल्य, पात्र आधिक्य, लम्बे संवाद, भाषण योजना अनेक समस्याएँ इसी विधि द्वारा सरलतापूर्वक चित्रित हो सकती है। वातावरण के प्रसार और दार्शनिक विवेचना की पूर्ण सुविधा इस विधि को अपनाने वाले कथाकार को मिल जाती है।................विश्लेषणात्मक शिल्प विधि के उपन्यासों में मूल केन्द्र कथा, घटना, या समाजिक समस्या न होकर वैयक्तिक अन्तश्चेतना में वर्तमान कोई ग्रन्थि या स्थिति होती है जिसका सम्बन्ध अधिकतर हीनता या काम ग्रन्थि से होता है जो व्यक्ति विशेष के जीवन में विपर्यस्तता ला देती है।.........विश्लेषणात्मक उपन्यासकार कथा को सीमित कर प्रत्येक घटना के साथ–साथ चिंतनमय वातावरण का सृजन करता चलता है।.............प्रतीकात्मक शिल्प विधि के पीछे शब्द प्रतीक की अमोध शक्ति है। जब किसी

मनोद्गार को अभिधा–शक्ति द्वारा प्रस्तुत करना अवांछनीय प्रतीत होता है, तभी इसकी योजना की जाती है। प्रतीक योजना द्वारा वस्तु को अप्रत्यक्ष रखकर केवल अभिभावक के माध्यम से परोक्ष और अतीन्द्रियता की सीमा से खींचकर निकटस्थ ले आया जाता है।..............परिस्थिति, घटना और चरित्र एक दूसरे के संधात में अन्तर्गत आते हैं।............समन्वित शिल्पविधि प्रधानतया यथार्थ जीवन चित्रण को समग्र रूप में प्रस्तुत करने के निमित्त प्रयोग में आया है। एक से अधिक शिल्प विधियों का सम्मिलित प्रयोग रचना को समन्वित शिल्प प्रदान कर देता है।"[81] अतः स्पष्ट है कि औपन्यासिक शिल्प का मूल्यांकन उपर्युक्त शिल्प–विधियों के अन्तर्गत दिए गए शिल्प–तत्वों के आधार पर किया जाना ही समुचित है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों का शिल्पगत मूल्यांकन इन्हीं के आधार पर किया जा रहा है।

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास वर्णनात्मक शिल्प की सम्पूर्ण विशिष्टताओं से ओत प्रोत हैं उपन्यासकार अपनी कथा का प्रारम्भ पात्रों की उपस्थिति में चित्रात्मक ढंग से करता है। जीवन का चित्रण विवरण प्रस्तुत करते हुए सम्पूर्णता के साथ करता है। घटनाओं एवं पात्रों की बहुलता होते हुए भी सम्बद्धता एवं एक सूत्रता का समावेशन बना रहता है। वातावरण चित्रण के सरस रंग–रूप के साथ दार्शनिक विचारों को भी समाविष्ट किया गया है। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व के अवसरों पर विश्लेषणात्मक विधान भी दिखाई पड़ता है। अवसरानुकूल संवाद–कौशल में संवादात्मक अभिनयात्मक नाटकीय विधान का रस भी प्राप्त होता है। पर जीवन के विशद वर्णन को यथार्थ रूप देने में वर्णनात्मक पद्धति ही श्रेष्ठ कलात्मक पद्धति सिद्ध होती है। विवेच्य उपन्यासों में तथ्यों का चित्रात्मक वर्णन सरस पद्धति में प्रयुक्त हुआ है। गोपालराय ने लिखा है कि– "कथा का सर्वोत्तम रूप वह होता है जिसमें विषय का उपयोग सर्वोत्तम रूप में हुआ हो। सुनिर्मित उपन्यास वह है, जिसमें विषय और रूप अविभाज्य और परस्परावलम्बी होते हैं। जहाँ सामग्री 'रूप' में पूर्णत खप जाती है और 'रूप' समस्त सामग्री को अभिव्यक्त करता है।"[82] शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री के साथ कल्पनाप्रसूत सामग्री का उपार्जन भी किया है और उसे सहज कथा में व्यवस्थित एवं सहज गति के साथ इस तरह गतिशील किया है कि संवेदना एवं अनुभूति मन में व्याप्त होती जाती है। ध्यान देने पर एक व्यवस्थित वर्णन रूप एक प्रतिबिम्ब झलकता है जिससे वह संवेदना इतनी गहराई से पैठ पायी है। इन उपन्यासों के पढ़ते–पढ़ते इनके पात्रों से परिचय गहरा होता जाता है। मार्मिक प्रसंग एवं चरित्र मन में पैठते जाते हैं। अतीतकालीन जीवन पूरी तरह मूर्तिमंत हो जाता है। भाषा भावों, विचारों को तो व्यक्त करती है उसी से कथा–रस का आस्वादन मिलता है। परिवेश दिक्–काल में चित्रित हो उठता है और विचार सहजता से घुले–मिले, पर ग्रहणीय लगते हैं। यह सहजता वर्णन पद्धति का संकेत है। यह सहज वर्णनात्मक पद्धति इन उपन्यासों की शक्ति है। गोपाल राय[83] ने पर्सी लुब्बक को उद्घृत करते हुए अवलोकन पद्धति सम्बन्ध में दृश्यात्मक और परिदृश्यात्मक पदों का प्रयोग किया है तथा वस्तु निरूपण के चित्रात्मक एवं नाटकीय प्रकारों का उल्लेख

किया है। रूप आलोच्य उपन्यासों में भी पूर्ण रूपेण दिखाई पड़ते है। दृश्यों का प्रभाव चित्र रूप में दर्शनीय होता है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में इतिवृत्तात्मक पायी जाती है। घटनाओं की बहुलता के साथ–साथ दुसरी–तीसरी कथावस्तु में एक मुख्य विचार–दर्शन का समावेश रहता है। अतीत कालीन घटनाओं एवं पात्रों के माध्यम से राष्ट्रीय–सांस्कृतिक प्रगतिशील विचार का समावेश सहज कलात्मक कौशल में समाविष्ट किया गया है। रचना पद्धति के इन्हीं आधारों पर औपन्यासिक शिल्प का मूल्यांकन अपेक्षित है।

3.4.1 कथानक सुगठन–

रचना का मूल ढाँचा कथा होता है और ढाँचे का पूर्ण रूप कथानक होता है। कंकाल बिना शरीर रचना नहीं होती वैसे कथा बिना कथानक निर्मित नहीं होता। कथा और कथानक ऐतिहासिक समयानुक्रम में नियोजित की गई घटनाओं के समूह से निर्मित होते हैं। जिज्ञासा या कुतूहल कथा का मूल तत्व होता है। कथा का सुव्यवस्थित विन्यास कथानक कहलाता है। मुख्यत कथा प्रारम्भ मध्य और अन्त आदि तीन चरणों में गुजरती है। कथानक सरल और गुम्फित हो सकता है। सुसम्बद्धता, मौलिकता, संभाव्यता रोचकता आदि कथानक के अनिवार्य गुण आलोचकों ने स्वीकार किए हैं। डॉ शान्ति स्वरूप ने भगवत शरण उपाध्याय को उदृघृत करते हुए लिखा है कि– "घटना चक्र की एकता वस्तु घटना के रूप में उपन्यास के रस को कलात्व प्रदान करती है।......उन्होंने कथायक के तीन आवश्यक गुण माने हैं– रोचकता, स्वाभाविकता, प्रवाह या गतिशीलता।"[84] शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास इतिहास आधारित होने के कारण सम्पूर्ण पृष्ठभूमि अतीतकालीन है। कल्पना की सुसम्बद्धता भी कला कौशल द्वारा ही बन पाती है। कल्पना प्रसूत घटनाएँ या पात्र ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अनुकूल सिद्ध न होने पर कथानक औचित्य में बाधा पहुँच सकती है। मुख्य घटनाओं के साथ प्रासंगिक घटनाओं का तारतम्य काल कलात्मक कौशल बन सकता है। शत्रुघ्न जी के उपन्यासों में ऐतिहासिक युग दर्शन, घटनाओं की बहुलता का संयोजन, घटनाओं में मार्मिक प्रसंगों का नियोजन, सांकेतिक आभास युद्ध वर्णन, प्रेम एवं दाम्पत्य के चित्र, प्राकृतिक सौन्दर्य के अनेक चित्र, परिशिष्ट विभाजन आदि विशिष्टताएँ दिखाई देती है। उपन्यासों का प्रारम्भ किसी सामाजिक प्रक्रिया या राष्ट्रीय समस्या से प्रारम्भ होता है। मध्य तक वह समस्या अपना पूर्ण प्रभाव व संघर्ष दर्शा देती है और अन्त चरम उत्कर्ष में होता है। यह चरम उत्कर्ष सुखान्त एवं दुखान्त दोनों अवस्थाओं में मिलता है। जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति या विचार स्थापना राष्ट्रीय–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में प्रतिष्ठित होकर उपन्यास की समाप्ति पर पाठक को एक आत्मतोष या एक प्रश्न देकर होती है। पाठक के मन में प्रश्न या विचार पूरी तरह पैठ कर जाता है। कथानक की सफलता सिद्ध होती है। धीरेन्द्र वर्मा के कथानक एवं कथावस्तु को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– "अपने विशिष्ट अर्थ में इससे (कथानक) अभिप्राय है साहित्य के कथात्मक रूपों–लोककथा, महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि का वह

तत्व जो उनमें वर्णित कालक्रम से श्रृंखलित घटनाओं को रीढ़ की हड्डी की तरह दृढ़ता देकर गति देता है और जिसके चारों ओर घटनाएँ बेल की भाँति उगती–बढ़ती और फैलती है। सीधे तौर पर कथानक का अर्थ है– कार्य व्यापार की योजनाएँ।.................सम्पूर्ण उपन्यास की कहानी जिन उपकरणों से मिलकर बनती है वे कथावस्तु कहलाते हैं। ये उपकरण कथासूत्र (थीम), मुख्य कथानक, प्रासंगिक कथाएँ या अन्तर्कथाएँ, उपकथानक, पत्र, समाचार, प्रामाणिक लेख, डायरी के पन्ने आदि है........कथानक के संघटन और वस्तु विन्यास में सत्याभास वा विश्वसनीयता, कार्य–कारण सम्बन्ध, मनोवैज्ञानिक क्षण, उत्कष्ठा, संघर्ष, भविष्य संकेत और चरमोत्कर्ष का होना आवश्यक हैं।[85]

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों के कथानक सुसम्बद्ध, मौलिक, औचित्यपूर्ण एवं जिज्ञासा लिए हुए हैं। उनके अधिकांश उपन्यास ऐतिहासिक समस्या या घटना के संभावित संकेत से आरम्भ होते हैं। मध्य में ऐतिहासिक घटनाएँ कालक्रमानुसार घटित होती हैं। उन घटनाओं के प्रभावों का निदर्शन होता है। उपन्यासकार का सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक चिन्तन व्यक्त होता है। समस्या का चरमोत्कर्ष जय–विजय, सुख–दुख, स्थापना या विघटन के रूप में उपन्यासों के अन्त में व्यक्त होता है। ऐतिहासिक घटनाओं के साथ–साथ काल्पनिक घटनाएँ अवान्तर एवं गौण अन्तर्कथाओं एवं प्रासंगिक कथाओं का मेल कथा को सम्बद्धता एवं मौलिकता ही नहीं देता है, उन्हें रोचकता और औचित्यपूर्णता भी देता है। मार्मिक प्रसंगों की उद्भावना एवं प्रेम कथाएँ सरसता एवं करूण संवेदना प्रदान कर ह्रदय को इतिहास के साथ संवेदनात्मक लगाव से भर देती है। प्रत्येक उपन्यास घटनाओं, पात्रों एवं विचारों की तारतम्यता से युक्त है। 'सरस्वती–सदानीरा' का प्रारम्भ गुरू वैषम्पायन एवं याज्ञवल्क्य के गुरू–शिष्य रूप में सुखद आश्रम जीवन व्यतीत करने के रूप में होता है। और वहीं रूढ़िगत एवं प्रगतिशील विचारों का द्वन्द्व भी प्रकट हो जाता है। मध्य भाग याज्ञवल्क्य की यात्रा में गुजरता है। नाग, किन्नर, गंधर्व, ग्राम प्रान्तर एवं विदेह जनपद की संस्कृतियों के साथ मिलनानुभूति एवं चिन्तन के आदान–प्रदान के साथ गति करता है उपन्यास है। अन्त जन्मना की जगह कर्मणा व्यवस्था के उद्घोष एवं वैदिक–व्रात्य समन्वय से होता है। सामश्रवा–मणिप्रभा, बुझावन–पाटली आदि की प्रेम कथाएँ व गाएँ ले जाना, व्रात्यों से मिलन, पणिक शंख, इन्द्र की प्रतिमा बनाना, असित का पणिसभ्यता की ओर मोह, संभूति और विभा की पीड़ा आदि उपकथाएँ कथानक को मंतव्य की ओर ले जाते हुए गुम्फित है। अपाला आदि की कथाएँ अन्तर्कथाओं के रूप में जुड़ी हुई है। सिन्धु घाटी सभ्यता, वैदिक सभ्यता एवं उत्तर वैदिक सभ्यता के लम्बे कालखण्ड को एक गतिक्रम में दर्शाया गया है। कहीं कोई व्यवधान या अन्तराल नहीं है। यह कथानक सुगठन एवं सम्बद्धता की कुशल कसौटी पर खरा उतरना सिद्ध करता है।

'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास महाराजा गंधर्वसेन एवं सौम्यदर्शना के पुत्र कुमार विषमशील के नामकरण संस्कार से प्रारम्भ होकर उज्जयिनी पतन और उज्जयिनी की मुक्ति पर विषमशील का विक्रमादित्य बनकर राजसिंहासन पर आसीन होने तक की कथा है। विषमशील के

नामकरण संस्कार से विषमशील के राज्यारोहण तक उज्जयिनी के उत्थान–पतन की ऐतिहासिक घटनाओं के साथ प्रासंगिक एवं अवांतर कथाओं के माध्यम से कथानक गतिशील रहता है। यवन राजकुमारी हला और विषमशील के विवाह के साथ यवन–भारतीय संस्कृति के मेल को स्वीकार करते हुए उपन्यास अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचता है। सरस्वती अपहरण, कालकाचार्य का शकों को आमंत्रण, शकों का उज्जयिनी पर आधिपत्य एवं विषमशील द्वारा शकों के उन्मूलन की ऐतिहासिक घटना एवं मूल कथा के साथ विद्युत्लेखा–गंधर्वसेन, सुमना–शकराज, धनदत्त–सुमना विषमशील–षोडास आदि प्रसंगों का जुड़ाव कथा संयोजन में सरसता एवं औचित्यपूर्ति देता है। कथा का प्रारम्भ विलासिता एवं अहमन्यता से युक्त शासक के चरित्र से होता है। मध्य इसके परिणामस्वरूप पतन को प्राप्त करते दिखाया है और अन्त गणराज्य की स्थापना के रूप में सुखद अहसास देता है। विद्युत्लेखा, सरस्वती साध्वी, महारानी सौम्यदर्शना के जीवन क परिस्थितियों एवं उनके मुख से निकले संवाद मार्मिक उद्भावनाएँ हैं। घाट पर भूखों की भीड़ एवं 'कोई भूखा न रहें' का विषमशील द्वारा कहा गया कथन मार्मिक पीड़ा को उपजाता करूण स्वर है। यह उपन्यास ऐसे प्रसंगों से अधिक संवेदनाजन्य बन गया है।

'सिद्धियों को खण्डहर' का कथानक महाराजा गोविन्दपाल, सिद्ध घोरपा व कुमार महेन्द्र के वैचारिक द्वन्द्व में गतिशील रहता है। मूल कथा इख्तियार–बिन–बख्तियार खिलजी द्वारा नालन्दा, विक्रमशिला, मणिमती एवं पाटलिपुत्र के विध्वंश से सम्बद्ध है। महेन्द्र–सुवर्णा प्रसंग, सुमन्त–सुभद्रा प्रसंग, मृणाल–देवेन्द्र प्रसंग प्रेम कथाओं के भिन्न–भिन्न रूपों में साधकों की व्यभिचारी लिप्सा का आखेट होने से बचते हुए अनुराग प्राप्त करती है। इनका जीवन वैधव्य एवं गणिका का जीवन है। पीड़ा, विवशता एवं वेदना का जीवन है। शोभनशास्त्री एवं देवीदत्त तथा मुदितभद्र और गुलाम रसूल की कथाएँ भी गौण रूप में मूल कथा के साथ जुड़कर कथा को ऐतिहासिक यथार्थ प्रस्तुति के औचित्य को पूर्णता प्रदान करती है। इस उपन्यास की अमूल्यता इसका त्रासदीपूर्ण अन्त है। मध्य भाग मार्मिक प्रसंगों से भरा पड़ा है और मर्मवेदना का चरमोत्कर्ष। सम्पूर्ण उपन्यास मार्मिक प्रसंगों की सुसम्बद्धता एवं मौलिक उद्भावना के साथ गतिशील रहता है। हाँ सुवर्णा–महेन्द्र का अनुराग स्वीकार्य एवं सुमन्त–सुभद्रा का विवाह एक मधुर–मनोरम अहसास देता है। कथा को जिज्ञासा एवं रोचकता प्रदान करता है। अन्त ऐतिहासिक वेदना देता है। कथानक मौलिकता, सम्बद्धता, रोचकता एचं औचित्य पूर्ति के साथ–साथ घटनाओं, पात्रों एवं विचारों का समन्वय लिए है। मार्मिकता के साथ कलात्मक उत्कर्ष लिए हुए है, सम्पूर्ण उपन्यास।

'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' में मुहम्मद–बिन–तुगलक के कट्टर इस्लामीपन एवं सनकीपन से पिसती भारतीय जनता एवं स्वामी विद्यारण्य द्वारा संघर्षरत रहकर साम्प्रदायिक ऐक्य की स्थापना की कथा कही गई है। तुगलक द्वारा सम्पूर्ण दक्षिण भारत को रौंद देने, दिल्ली को तुगलकाबाद एवं देवगिरी को दौलताबाद बना देने, हरिहर–बुक्का को हुक्का खाँ–बुक्का खाँ

बना देने की घटनाओं के साथ अनेक अवान्तर घटनाएँ कथानक को गति प्रदान करती है। स्वामी विद्यारण्य साम्प्रदायिक वैभिन्य को एकत्व प्रदान करने के लिए प्रयासरत रहते हैं और सफल होते है। इन्दु–षणमुखम की प्रेम कथा एवं मार्मिक अन्त, देवलदेवी एवं श्रीदेवी(रूखसाना) की पीड़ा कथा को मार्मिक बना देती है। हमीद एवं गजाला की प्रेम कथा सरस मनोरम मधुरता देती है। स्वामी विद्यारण्य के निर्देश से हरिहर राय–बुक्का विद्रोह कर हिन्दू राज्य विजय नगर की प्रतिष्ठा करते हैं। गौरवमयी अहसास के साथ कथा का अन्त नयी अनुभूति प्रदान करता है। डॉ शंकरलाल स्वामी ने लिखा है कि– उपन्यास की कथा तुंगभद्रा नदी के उत्तरी तट पर स्थित अनेगोंदी नगर के दुर्ग के पतन से प्रारंभ होती है।..............हरिहरराय और बुक्का राय को कैद कर दिल्ली भेज दिया गया।.........मुख्य कथानक के साथ–साथ अनेक सहायक कथानक हैं जिनमें दक्षिण के समस्त धार्मिक सम्प्रदायों का एक स्थान पर इकट्ठा होकर, एकमत होकर देश की भूमि को विदेशियों के शासन से आजाद कराने के लिए आह्वान करना अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है। इस कार्य की प्रेरणा एवं आत्मा आचार्य माधव इस उपन्यास के प्राण हैं.............राजधानी दिल्ली से जुड़े अनेक सह कथानक है जिसमें शाही गायक हमीद और गजाला की कथा है।.......... एक विद्यार्थी षणमुखम द्वारा देवदासी इन्दु से प्रेम की कथा तथा नाले में गिरकर दर्दनाक मौत की कथा भी सम्मिलित है।...........उपन्यास में कथा का स्वाभाविक विकास होता नजर आता है। कहीं कुछ अप्रत्याशित नहीं है। कथानक सुखान्त है।"[86]

'कश्मीर की बेटी' उपन्यास की कथा 1320ई. से 1339ई. के मध्य की उथल–पुथल को लेकर ली गई है। मंगोल आक्रमण से भयभीत महाराजा सहदेव का पंडित प्रवर देवस्वामी द्वारा असहयोग करने एवं महाराजा सहदेव द्वारा पलायन कर जाने से कथा प्रारम्भ होती है। डामर सामन्त रामचन्द्र, भोट कुमार रिच्छेन, उदयनदेव व कोटादेवी के क्रमशः कश्मीर पर शासन करने एवं अन्त में अफगान शरणार्थी शाहमीर द्वारा धोखे से कश्मीर पर अधिकार कर लेने की घटनाएँ उपन्यास के कथानक को गति प्रदान करती है। उदयनदेव के साथ कोटादेवी कश्मीर के शासन को संभालती हैं। अन्त में बलपूर्वक शाहमीर अधिकार कर लेता है। कोटादेवी और चाँदनी को आत्माहत्या करनी पड़ती है। कश्मीर की बेटी आत्म बलिदान कर देती है। कथानक का अन्त इस दर्दनाक पीड़ादायी त्रासदी में होता है। रिच्छेन द्वारा धर्म परिवर्तन, रिच्छेन–कोटादेवी का बलात् विवाह एवं पुत्र प्राप्ति, पुत्र चन्द्रदेव का हैदर अली बनना, आनन्द भिक्षु की हत्या, चांदनी–सर्वदेव कथा, वरिंग मण्डलके मंडलेश कोटराज एवं शाहमीर पुत्री गुहरा का प्रसंग, लुस्त एवं लक्ष्म तथा नरगिस–शबनब के प्रसंग आदि सहायक उपकथाएँ है जो मुख्य कथानक को गति एवं औचित्य प्रदान करते हैं। आनन्द भिक्षु की हत्या, राजारामचन्द्र की हत्या, कोटादेवी के पुत्र चन्द्रदेव का हैदर अली बनाया जाना, उदयदेव की उदासीनता, अन्त में कोटादेवी व चाँदनी का प्राणोत्सर्ग इस कथा के वे मार्मिक प्रसंग है जो इतिहास के प्रति संवेदना एवं हार्दिक मार्मिकता पैदा करते हैं। उपन्यास का कथानक स्वाभाविक गति

बनाए रखता है। उमेश दीक्षित ने लिखा है कि–"मुख्य कथा में कई उपकथाएँ जुड़ गई हैं तथा घटनाओं का लेखक ने त्वरा में इतना सरलीकरण कर दिया है कि कभी–कभी पाठक को घटनाओं की गंभीरता समझ नहीं पड़ती। चरित्र भी इतने विचित्र है कि उनकी कसौटी ढूँढ़ना मुश्किल होता है। परन्तु इतना होते हुए भी आज की परिस्थिति में यह उपन्यास पठनीय है और मननीय भी। यह उपन्यास बड़ा मर्मस्पर्शी बन पड़ा है।"[87] मर्मस्पर्शी होना ही इस उपन्यास के कथानक की सफलता है।

'सुनो भाई साधो' कबीर के रामानन्द मठ की ओर जाने से प्रारम्भ होकर कबीर के जीवन संघर्ष को व्यक्त करते हुए सिकंदर लोदी द्वारा नदी में फिंकवा दिए जाने पर भी जीवित रह जाने तक वर्णित है। सिकन्दर लोदी की क्रूरता एवं धर्मान्धता का चित्रण है। कबीर की निर्भीकता एवं आस्था के सामने उसके अहंकार के पराजित होने के प्रसंग पर उपन्यास समाप्त होता है। यह उपन्यास का चरमोत्कर्ष है। कबीर की आस्था, उसका चिंतन, उसका क्रान्तिकारी संत विजयी होता है। लोई एवं शहनाज बेगम के प्रसंग ऐसी मार्मिक उद्भावनाएँ हैं जो केवल पाठक के हृदय को नहीं इतिहास के हृदय को बेधती हैं। लक्ष्मीचन्द्र–मधुवंती का प्रेम प्रसंग मधुरता एवं रोचकता तो देता है परन्तु अन्त वही मार्मिकता प्रदान करता है। सिकन्दर लोदी एवं बारबकशाह की कथा भी साथ–साथ चलती है। कथानक दो ऐसे चरित्रों के जीवन–कार्यों में गति ग्रहण करता है जो हिन्दू माँ का रक्त हैं। दोनों मजहबी हैं परन्तु एक मजहबी क्रूरता का पर्याय है दूसरा मजहबी सुधारक है। सम्पूर्ण कथानक सिकन्दर लोदी के निरंकुश सत्ता लोभी एवं धर्मान्ध क्रूरता एवं कबीर के फक्कड़ फकीरी जीवन दर्शन व अद्वैतवादी चिन्तन के मध्य गतिशील होता है। फकीरी दर्शन के सामने अहंकारी सत्ता अपना मिथ्याभिमान दर्शाते हुए चुपके से निकल जाती है। उपन्यास इसी चरम परिणति पर पहुँच कर समाप्त पर विचारों में जीवित रहता है। अनेक उपकथाओं के साथ–साथ दुहरी कथा का सुगठन भी कलात्मक कुशलता का श्रेष्ठ उदाहरण है।

'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' उपन्यास का कथानक सोलहवीं शताब्दी में हुए पानीपत के द्वितीय युद्ध के नायक हेमू के जीवन संघर्ष उसकी स्वातन्त्र्य चेतना एवं दुर्भाग्यपूर्ण पराजय को लेकर निर्मित है। कथानक रेवाड़ी के एक बक्काल पुत्र हेमू के राजा 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' में रूपान्तरित होने की कथा कहता है। अफगान सरदार द्वारा उपहृत हेमू की मंगेतर पारो द्वारा आत्महत्या कर लेने से उपजी पीड़ा, गाँवों की उजड़ी स्थिति से उपजा क्षोभ और पिता के संन्यासी बन जाने से आया एकाकीपन हेमू को देश, धर्म एवं समाज के प्रति विचारशील बना देता है। विचारों का प्रवाह कथानक का प्रवाह है। हेमू रेवाड़ी से आगरा आता है। शेरशाह सूरी के वंशजों के शासनकाल में किले में आना–जाना होता है। प्रतिभा उसे सेनापति बना देती है। 5–6 नवम्बर 1556ई. में पानीपत के संग्राम में अकबर एवं बैरम खाँ से सामना होने पर मुगल सेना को खदेड़ देता है। अचानक एक तीर आँख में लगता है। इसी दुर्भाग्यपूर्ण शहादत के साथ उपन्यास समाप्त होता है। कथानक मार्मिक घटनाओं के साथ–साथ विचारों

का प्रवाह लिए चलता है। पारो की कथा, नाथपंथी योगी से प्रेरणा, सेठ सोहन लाल के पुत्र मोहन लाल व नूरी का प्रसंग, गजेन्द्र सिंह–चंदा का प्रसंग, धर्मान्तरित खुदादीन का प्रसंग आदि मुख्य कथानक के साथ जुड़कर कथा को गति प्रदान करते हैं। कथानक में स्वाभाविकता, सम्बद्धता, रोचकता व औचित्य का मेल बना रहता है।

'अरावली का मुक्त शिखर' में महाराणा उदयसिंह की मृत्यु से लेकर महाराणा प्रताप और रहीम खानखाना के आक्रमण और शन्तिपूर्ण वापस लौट जाने तक की महाराणा–अकबर से सम्बद्ध घटनाओं को सूत्रबद्ध किया गया है। अकबर द्वारा किए गए समझौता प्रयास, हल्दीघाटी का प्रसिद्ध संग्राम एवं उसके उपरान्त अनेक सिपहसालारों के नेतृत्व में महाराणा को झुकाने के लिए किए गए प्रयासों के साथ–साथ तानसेन–महरूख प्रेम प्रसंग, जुगनी(राणकदे) – अमर सिंह प्रसंग, संभा–फूला प्रसंग एवं किशन–टिकारी प्रसंग कथा को गति ही नहीं देते हैं रोचकता एवं जिज्ञासा भी प्रदान करते हैं। लेखक का कथा–कौशल सहजता के साथ कथा–प्रवाह बनाए रखने में हैं। इतिहास सरस और रोचक प्रवाह के साथ कथात्मक गति करता है कि स्वाभाविक जीवन कथा प्रतीत होता है। यही उपन्यास की सिद्धि है। सदानन्द गुप्त ने लिखा है कि– शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास की विशेषता इस बात में निहित है कि जहाँ अनेक पूर्ववर्ती लेखकों ने केवल हल्दीघाटी युद्ध तक ही कथानक को सीमित रखा है वहीं प्रस्तुत उपन्यास के लेखक ने इसे आगे बढ़ाया है। संघर्ष के दौरान अनेक युद्धों में विजयी होने तथा क्रमशः मेवाड़ की भूमि मुगलों से मुक्त कराने की ओर प्रताप के अग्रसर होने का संकेत इसमें है।......उपन्यास में विभिन्न घटनाओं का समावेश है, पर सबका पर्यवसान महाराणा प्रताप और अकबर अर्थात् मुगल साम्राज्य के वर्चस्व और मेवाड़ की स्वतंत्रता के बीच संघर्ष में होता है।"[88]

'शहजादा दाराशिकोह दहशत का दंश' में औरंगजेब कालीन घटनाओं से निर्मित कथा कही गई है। दाराशिकोह के बंदी बनाए जाने व औरंगजेब के द्वारा शाहजहाँ को बंदी बनाकर मुगल सल्तनत का बादशाह बनने से लेकर शिवाजी के बच निकलने तक की घटनाओं को उपन्यस्त किया गया है। रोशनआरा तथा अंग्रेज विलियम के बीच सौदेबाजी असम के राजा की पुत्री जया का औरंगजेब के महलों से बचकर निकल जाना एवं राजा रामसिंह के साथ विवाह होना, पंडित जगन्नाथ का पलायन और काशी जाकर रहना व गंगा में जल समाधि लेना, अकिल खाँ–जेबु व भवनाथ–आलमआरा का प्रेम प्रसंग आदि काल्पनिक प्रसंगों के साथ कथानक रोचकता एवं मार्मिकता ग्रहण करते हुए स्वाभाविक गति करता है। औरंगजेब द्वारा दाराशिकोह, सूफी सरमद, मुल्लाशाह बदख्शी, अमीचन्द, सुलेमान शिकोह एवं सिपर शिकोह, गोकुल जाट, गुरू तेगबहादुर, उधवदास बैरागी आदि का वध करवा दिया जाता है। सतनामियों, जाटों। सिक्खों का दमन किया जाता है। निर्मम और क्रूरता का व्यवहार दहशत पैदा करता रहता है। बादशाह शाहजहाँ एवं जहाँआरा बेगम को कैद में रखा जाता है। उदयपुरी बेगम को भी विवश होकर हरम में आना पड़ता है। पंडित जगन्नाथ को पलायन

करना पड़ता है। इन ऐतिहासिक प्रसंगों के साथ–साथ राजकुमारी जया, जेबु व आलमआरा के प्रसंग मिलकर एक दहशत भरी मार्मिक कथा का निर्माण करते है। दहशत और दर्द से पसीजती रोचक एवं मार्मिक कथा जो स्वाभाविकता एवं सुसम्बद्धता लिए हुए औचित्य पूर्ण अवसान तक पहुँचाती है। मर्म को छेदता हुआ स्वाभाविक कथानक है दाराशिकोहः दहशत का दंश उपन्यास का।

निष्कर्षत शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों के कथानक औचित्यपूर्ण रोचकता लिए हुए स्वाभाविक गति करते हैं। प्रसंगोचित सुगठन एवं सुसम्बद्धता इनकी विशिष्ट कुशलता का परिचायक है। ऐतिहासिक घटनाओं के औचित्य पूर्ण उद्‌घाटन के साथ–साथ मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि संवेदनात्मक गांभीर्य की गहराई तक ले जाती है। इन उपन्यासों के कथानक केवल घटनाओं के सुगठन का कौशल ही नहीं दर्शाते हैं, संवेदना की रसमयता से आत्मा को आप्लावित भी करते हैं। इन उपन्यासों का कथानक कौशल अद्‌भुत है। इनमें कहीं भी अवास्तविकता एवं विश्रृंखलता नहीं आई है। गौण एवं अवान्तर कथाओं में भी रमणीयता, कुतूहल–संवर्धन क्षमता और पारस्परिक सम्बद्धता के साथ–साथ मार्मिकता का ऐसा समावेश है कि तथ्यपरकता पूर्णत रोचकता ग्रहण कर लेती है। प्रेमजनित आकर्षण एवं पारस्परिक विकर्षण के संयोजन से कथानकों में गतिशील तीव्रता आई हुई है। संवेदना के साथ जीवंत गातिशीलता, मार्मिकता, औत्सुक्य, स्वाभाविकता क्रम–विकास, औचित्यपूर्ण परिणति इत्यादि का समुचित समन्वय कथानकों की विशिष्टता है। उपन्यासकार ने कथानकों में एक विशिष्टता बनाए रखी है कि आरम्भ, विकास, चरमोत्कर्ष और समाप्ति में एक क्रम एवं सुगठन रहता है। आरम्भ होते ही कथानक विकास की स्थिति में फैल जाता है। चरमोत्मर्ष पर पहुँचते–पहुँचते सिमट कर समाप्ति पर फलागम का आनन्द प्रदान कर देता है। मुख्य कथानक के साथ उपकथाएँ भी किसी विशेष समस्या या विचार को लेकर निर्मित होती है। आगे पर बढ़ने कथा में समस्या का रूप निखरने लगता है। विचार अभिव्यक्त होने लगता है। धीरे–धीरे समस्या या विचार धनीभूत होकर अन्त में निश्चित बिन्दु पर जाकर परिणाम स्पष्ट कर देती है। कथा सम्पूर्ण सुगठन लिए रहती है।

3.4.2 चरित्र सृष्टि–

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों का चरित्र विधान भी वर्णनात्मक शिल्प का श्रेष्ठ स्वरूप दर्शाता है। यद्धपि पात्रों का विश्लेषणात्मक चित्रण भी हुआ है। उपन्यासकार ने ऐतिहासिक पात्रों को नवीन व्यक्तित्व दिया है कथानक यदि उपन्यास का आधार है अर्थात् मेरूदण्ड है तो चरित्र उसे जीवन्तता प्रदान करने वाला प्राणतत्व है। उपन्यास मानव मात्र का चित्र तभी सिद्ध हो सकता है जब चरित्र या पात्र मौलिक, स्वाभाविक, सजीव व परिवेशगत अनुकूलता का गुण लेकर व्यक्त हुए हों। पात्रों के माध्यम से ही कथ्य अभिव्यक्त होता है। पात्र–चित्रण के लिए आलोचकों ने बहिरंग या बाह्य अतरंग या आन्तरिक तथा नाटकीय तीन विधियाँ स्वीकार की

है। इनमें वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं नाटकीय विधान स्पष्ट होता हैं। पात्र स्थिर और गतिशील रूप में भी दिखाई पड़ते हैं या रचे जाते हैं।

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों के पात्र वर्ग के प्रतिनिधि हैं। ऐतिहासिक यथार्थ को व्यक्त करने वाले हैं। युग चेतना एवं विचार दर्शन को अभिव्यक्त करने में सक्षम एवं सामर्थ्यवान हैं। चरित्र अपने औदात्य से आदर्श प्रतिष्ठा में सहायक भी है और मार्मिक यथार्थ की स्वाभाविकता रखते हुए मर्म को स्पर्श करने वाले भी हैं। पात्र युगानुकूल, प्रगतिशील चेतना को भी जाग्रत करने में सक्षम हैं। गुरू वैषम्पायन जैसे पात्र रूढ़िगत विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं तो याज्ञवल्क्य, आनन्द भिक्षु, स्वामी–मध्वाचार्य, कबीर, नाथपंथी योगी एवं उधवदास वैरागी जैसे पात्र. प्रगतिशील सोच की प्रतिष्ठा करने वाले समदर्शी पात्र हैं व सूफी संत सरमद, गुरू तेगबहादुर, मुल्लाशाह बदख्शी एवं दाराशिकोह आदि पात्र भी सांस्कृतिक एकात्म भाव की स्थापना के लिए दृढ़ मत एवं समर्पण भाव का व्यक्तित्व रखते हैं। एकात्म चेता समदर्शी भाव इनकी मौलिक स्वाभाविकता है। सिकन्दर लोदी एवं औरंगजेब धर्मान्ध, निर्दयी, क्रूर और कट्टर सियासतदार हैं। विलासिता, कट्टरता एवं दमन की सियासत इनका स्वाभाविक गुण है। औरत इनके लिए केवल भोग एवं विलासिता की सामग्री है। क्रूरता ही इनकी वीरता है। धर्मान्ध राजनीति के प्रतिनिधि पात्र हैं। अकबर के चरित्र की नवीन सृष्टि की है। इतिहास के इस चर्चित पात्र को विशिष्ट दृष्टि से देखते हुए उपन्यासकार ने इसे रंगीन मिजाज इश्कबाज एवं चालाक साम्राज्य लिप्सु के रूप में चित्रित किया है जो न्यायसंगत एवं स्वाभाविक प्रतीत होता है। महाराज गंधर्वसेन अहंकारी एवं विलासी शासक, सहदेव एवं उदयनदेव कमजोर व दुर्बल शासक तथा गोविन्दपाल धर्मभीरू शासक के रूप में चित्रित किए गए हैं जो कहीं भी अस्वाभाविक एवं असंगत नही लगते हैं। कुमार महेन्द्र, विषमशील विक्रमादित्य, कोटा देवी, महाराणा प्रताप आदि राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा में तत्पर, मातृभूमि पर बलिदान होने की भावना रखने वाले त्यागी, उदार, साहसी, बलिदानी एवं संघर्षशील पात्र हैं जिनका चरित्र राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व करता है। ये राष्ट्र प्रेमी राष्ट्रीय चरित्र हैं। महारानी सौम्यदर्शना, व गुरू माता आश्रुति मातृत्व भाव से परिपूर्ण भारतीय आदर्श नारी का प्रतिरूप है। लोई, कोटादेवी, सुवर्णा, सुभद्रा व विद्युत्लेखा जैसी नारियाँ भारतीय कष्ट सहिष्णु उदारचेता, राष्ट्रीय भावों पर समर्पित वीर एवं साहसी महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये उस नारी–समुदाय की प्रतिनिधि पात्र हैं जो संघर्षशील रहकर राष्ट्रीय रक्षा एवं नारी अस्मिता के लिए प्राणोत्सर्ग करने को भी तैयार रहती हैं। गार्गी और मैत्रेयी विदुषी नारियों की अग्रणी बनकर नारी चेतना का स्वर मुखरित करने वाली स्त्री पात्र हैं। शहनाज बेगम, देवलदेवी, उदयपुरी बेगम, आदि नारियाँ उस वर्ग की प्रतिनिधि हैं जो पुरूष सत्ता या धर्मान्ध सत्ता द्वारा शोषित एवं पीड़ित हैं। गोकुल जाट एवं जमींदार कृषक चेतना के प्रतीक हैं। चांदनी–सर्वदेव, इन्दु–षण्मुखम, हमीद–गजाला, मोहन–नूरी, मृणाल–देवेन्द्र, तानसेन–महरूख, मधुवंती–लक्ष्मीचन्द्र, किसन–टिकोरी, संभा–फूला, सामश्रवा–मणिप्रभा, पंडित जगन्नाथ एवं लवंगी बेगम आदि प्रेमी

युग्मक उस प्रेम भाव को सहज और स्वाभाविक रूप में प्रतिष्ठित करते हैं जो जाति–धर्म से परे केवल मन और आत्मा का रिश्ता स्वीकार करते हैं। खुदादीन जैसे अनेक पात्र हैं जो धर्मान्तरण के द्वन्द्व को भोगते हैं। इनका मनोविश्लेषणवादी चित्रण आन्तरिक भावों को अभिव्यक्त करता है। जोधाबाई के चरित्र को भी विश्लेषणात्मक शैली में चरित्रांकित किया गया है। वे मन में सोचती रहती है। द्वन्द्व में रहती है। उदारता एवं स्वतंत्रता की क्या सीमा है। पूजा–पाठ की आजादी है, परन्तु माँ नहीं अम्मी है। उसका पुत्र राजकुमार नहीं, शहजादा है। चाँदनी जैसे पात्र अतिशूद्र वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद ने हर वर्ग के पात्र को स्वाभाविक, मौलिक, नवीन दृष्टि से रचा है। जो अपना स्वतन्त्र अस्तित्व एवं विचार प्रदान करता है।

शत्रुघ्न प्रसाद के चरित्रांकन में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग अधिक हुआ है। उनके अनेक पात्रों के विधाता या निर्माता स्वयं उपन्यासकार हैं। ये पात्र उपन्यासकार के राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक विचारों के प्रतिष्ठापक होकर आए हैं। विश्लेषणात्मक शैली में पात्रों के जीवन द्वन्द्व को चित्रित किया जाता है। अनेक ऐसे पात्रों को भी अपनी दृष्टि से जीवन्त किया है। याज्ञवल्क्य, कुमार विषमशील, महाराणा प्रताप, हरिहरराय–बुक्काराय, कबीर, स्वामी विद्यारण्य आदि पात्र उपन्यासकार के राष्ट्रीय विचारों को प्रतिष्ठा दिलवाने में सक्षम हैं। महाराजा जनक, कोटादेवी, महाराणा प्रताप, हेमचन्द्र–विक्रमादित्य जनहितकारी शासक की विचारधारा के प्रस्तोता हैं। जेबुन्निसा, आलमआरा, उदयपुरी बेगम, शहनाज बेगम, देवलदेवी, सुवर्णा, सुभद्रा, चाँदनी, नूरी, महरूख, जोधाबाई, कोटादेवी, गजाला आदि के साथ–साथ जगन्नाथ पंडित, सूफी सरमद, भवनाथ, मोहन उर्फ जमाल अहमद, हमीद उर्फ हरिनारायण आदि के जीवन संघर्ष, सुख–दुख, हर्ष–विषाद, मनोदशा का चित्रण विश्लेषणात्मक शैली में हुआ है। इनके अपने जीवन की अलग–अलग विडम्बनाएँ हैं। लेखक ने बड़ी कुशलता एवं मार्मिकता से इनकी द्वन्द्वात्मक स्थितियों को उभारने में सफलता अर्जित की है। जार्ज लूकाच ने बाल्जाक को उद्धृत करते हुए लिखा है कि– "ऐतिहासिक उपन्यासों के चरित्र ऐतिहासिक चरित्रों से अधिक ठोस होने चाहिए। इन चरित्रों को सजीव होना चाहिए क्योंकि इतिहास के चरित्र तो अपना जीवन जी चुके हैं। ....ऐतिहासिक युग तथा चरित्र जितने प्राचीन हैं उनका चित्रण भी उतना ही सजीव होना चाहिए। हमें उनके मनोविज्ञान, नैतिकता तथा ऐतिहासिक जिज्ञासा के साथ–साथ मानवी विकास में उनके योगदान का भी अनुभव होना चाहिए। जिनका हमसे सम्बन्ध हैं और जो हमें प्रोत्साहित करता है।............ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन उतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता है जितना कि उन पात्रों का सजीव काव्यात्मक जागरण जिनका सम्बन्ध इन घटनाओं से होता है।"[89] शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास इस तथ्य पर खरे उतरते हैं। उनके उपन्यासों में घटनाओं का वर्णन महत्त्वपूर्ण न दिखाया जाकर चरित्रों का सजीव चरित्रांकन ही अधिक हुआ है। पात्रों के क्रियाकलापों में ही उनका चरित्र उद्घाटित हो रहा है। टी. डब्लू बीच को उद्घृत करते हुए रेणु वर्मा ने लिखा है कि उपन्यास में पात्र के

आन्तरिक आत्मस्वरूप का ज्ञान कथा में वर्णित क्रियाकलापों द्वारा प्राप्त हो और क्रिया कलापों का उद्भव पात्र की आन्तरिक मनोभूमि पर हो।"[90] सुवर्णा, महेन्द्र, सुभद्रा, कोटादेवी, देवलदेवी, महाराणा प्रताप, भामाशाह आदि ऐसे पात्र हैं जिनके क्रियाकलाप और आन्तरिक मनोभूमि परस्पर प्रकट होती है। शशिभूषण सिंहल ने राबिन्सन एवं अरस्तू को उद्घृत करते हुए क्रमशः लिखा है कि– "चरित्र चित्रण से आशय है कि किसी कथा के पात्रों का अंकन कुछ इस प्रकार की स्वाभाविकता के साथ किया जाए कि वे निर्जीव पुस्तक के पृष्ठों से परे मूर्त होकर जीवन वैयक्तिकता कर ले।...........पात्रों को इस प्रकार अंकित करना है कि जिसमें वह जीवन के अनुरूप प्रतीत हो। यह गुण न भद्रता के अन्तर्गत आता है न औचित्य के। इसका तात्पर्य ये हो सकता है कि पात्र जीवन्त और स्वाभाविक हो जैसे कि यथार्थ जीवन में होते है।...... उपन्यासकार अपने पात्रों की सृष्टि कर उन्हें प्रेम के असाधारण रूप में प्रवृत्त करता है। पात्रों की यह प्रेमविषयक प्रखर संवेदना उपन्यासकार की देन होती है।"[91] शत्रुघ्न प्रसाद के पात्रों में राष्ट्रीय प्रेम, सांस्कृतिक प्रेम एवं व्यक्तिगत प्रेम की प्रखर संवेदना उनके चरित्र को स्वाभाविकता एवं जीवन्तता प्रदान करती है। चरित्रांकन की सफलता इसी में निहित है।

3.4.3 संवाद कौशल–

उपन्यास को रोचकता एवं सजीवता देने के दृष्टिकोण से पात्रों के मध्य वार्तालाप दिखाया जाता है जिससे कथावस्तु विकसित होती है तथा पात्रों की चरित्रगत विशिष्टताएँ भी प्रकट होती है। पात्रों के द्वन्द्व, उनकी मनोदशा, उनके क्रियाकलाप, उनका आन्तरिक मनोवेग संवादों के द्वारा ही अधिक स्पष्ट हो पाता है। किसी असम्बद्ध तथ्य या बात को सम्बद्ध बना देने में भी संवाद सहायक सिद्ध होते हैं। उपन्यासकार का विचार या विजन भी संवादों के द्वारा अधिक स्पष्टता से रखा जा सकता है। लेखक जीवन और जगत के चित्रण में संवादों के माध्यम से विचार रखता है तो आरोपित नहीं लगता है। संवादों के लिए स्वाभाविकता, रोचकता, उपयुक्तता, अनुकूलता, सम्बद्धता, संक्षिप्तता, सोद्देश्यता एवं नाटकीयता के गुण आलोचकों द्वारा स्वीकृत किए गए है। अर्थात् संवाद योजना संतुलित, सुव्यवस्थित, कार्यव्यापार को वास्तविकता प्रदान करने वाली, पात्र, परिस्थिति, घटना के उपयुक्त व अनुकूल, घटनाओं या प्रसंगों से सम्बद्ध, संक्षिप्त और मानवानुभूति के प्रकाशन में समर्थ, नाटकीय कलात्मकता से युक्त होने पर ही श्रेष्ठ कलात्मक लेखन संभव है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों के संवाद संक्षिप्त होते हुए भी प्रभावोत्पादक एवं चरित्रों के मनोभावों को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सक्षम है तथा रोचकता से युक्त हैं। ये संवाद सहज स्वाभाविक हैं। मनोवैज्ञानिक, पात्रानुकूल, आकर्षक एवं उद्देश्य परक संवाद अत्यन्त रोचकता प्रदान करते हैं। लम्बे संवाद कहीं नहीं हैं। इन संवादों के माध्यम से पात्रों का चरित्र, उनके मनोभाव व मनोवृत्तियाँ उद्घाटित हुई है साथ ही कथा को विस्तार मिला है तथा घटनाओं का सूच्य बनकर कथा सुगठन में भी सहायक बनते हैं। उनके उपन्यासों में वर्णित संवाद कथा विस्तार, कथा सुगठन, चरित्र

प्रवृत्ति के उद्घाटन एवं औचित्य सिद्धि की विशिष्टता दर्शाते हैं। एक उदाहरण से स्पष्ट होता है। – ''यह क्या हो गया? सूफीफकीर की दर्दीली आवाज आई।''

''बदकिश्मती....और क्या कहूँ! मलिक जीवन शैतान बन गया। और धोखे से एक इनसान कैद में.........। मुल्ला शाह बदख्शी का गला रूँध गया।''

''कभी–कभी लगता है यह संसार इनसान के लायक नहीं रह गया है, इतने लोग दुःखी हैं, पर इसका असर क्या हुआ? हम बन्द कमरों में आँसू पी रहे हैं। पंडितराज जगन्नाथ ने कहा।''

'सियासत का यही लक्षण है सरमद साहब! कभी गले में गजरा और सर पर ताज..........कभी लोहे की जंजीर! देवीचन्द ने राय दी।'

फकीर सरमद बोल उठे– 'मजहब तो खुदा तक पहुँचने का रास्ता बताता है। इस दुनिया में जीने का सही ढ़ंग भी बताता है। लेकिन ''मजहबी सियासत तो तख्तोताज का गलत रास्ता बता देती है।'' ''और तब इनसानियत के चेहरे पर मुर्दनी छा जाती है। ये मुल्ला शाह के शब्द थे।'

''सच यही है कि धर्म आदमी को इनसान बनाता है। राजाओं और शाहों को मानव कल्याण की याद दिलाता है। पर यहाँ तो मजहब सियासत है और सियासत ही मजहब'। ' पंडित जगन्नाथ ने अपनी बात कही।.................

अगर शहजादा दारा सिंहासन पर आ जाते तो एक नया हिन्दुस्तान बनता।........पर!' अमीचन्द के बोल थे।''[92]

'शहजादा दाराशिकोह दहशत का दंश' उपन्यास का यह वार्तालाप संवाद कला की विशिष्टता एवं उद्देश्यपरकता का श्रेष्ठ नमूना है। संवादों की उपयोगिता सिद्ध करता है ''अरावली का मुक्त शिखर' में भी संवादों की रोचकता एवं उपयुक्तता के अनेक दृश्य दिखाई देते हैं जो नाटकीयता एवं चरित्रोद्घाटन में सहायक सिद्ध हुए हैं।

अकबर और सलीमा बेगम, महाराणा प्रताप और चम्पाबाई, मान सिंह और महाराणा प्रताप तथा अकबर और भगवन्तदास का संवाद द्रष्टव्य है।[93] अकबर सलीमाः–

'लेकिन मैं आपको बेहोश नहीं करना चाहती। प्यार करना चाहती हूँ।'

'मैं तो माशूक हूँ आपका।..................................प्यार का फरिश्ता हूँ।'

'तभी तो कन्धे पर प्यार का निशान है।'

मैं क्या करूँ, सलीमा। उस मिर्जा की बेगम पर मैं जॉनिसार हो रहा था।................

'सुना है आपकी नजर सुलतान बाजबहादुर की रूपमती पर रही है।'

..........................महाराणा प्रताप–चम्पाबाईः–

''परन्तु व्यवहार में तो स्त्री के लिए पुरूष पति स्वामी है। चंपा बाई ने अपना विचार रखा।''

'चंपाबाई। अर्द्धनारीश्वर शिव ने ही बताया है कि पति–पत्नी के रूप में दोनों मिलकर एक हैं। आत्म रूप में एक हैं। स्वयं स्त्री सृष्टि की महत्त्वपूर्ण इकाई है। महाराणा ने कहा।''

"तात्पर्य है कि हम दासी नहीं हैं। आप स्वामी नहीं हैं।.......आप स्नान करने जाएँ। हमारी मंत्रणा है। आपको मानना होगा। फूलकुँवर बाई ने कहा।"

महाराणा प्रताप–मानसिंहः–

"आमेर के कुँवर का स्वागत मेवाड़ के कुँवर के द्वारा हो रहा है। यह सम्मान है।

'मैं मुगल सल्तनत का सेनापति हूँ। शहंशाह अकबर का प्रतिनिधि हूँ।..........मानसिंह का स्वर उग्र हुआ।

'मानसिंह ! आमेर विदेशी मुगल के हाथों आत्मसमपर्ण कर चुका है।................प्रताप के निर्भीक स्वर गूँज उठे।

मैं इस अपमान का प्रतिशोध लेकर रहूँगा। मैं मेवाड़ का सर झुका कर ही शान्त हो सकूँगा। ....मानसिंह ने घोषणा की।

'मुगलदरबार के मनसबदार! मेवाड़ ने स्वाधीनता के लिए रक्त दिया है। जौहर किया है। पर इसका शीश नहीं झुका है। यह शीश केवल एकलिंगनाथ के आगे झुकता है।"

महाराणा–भगवन्तदासः–

"राजस्थान तो निर्भीक वीरों की भूमि है। वीर न तो आत्मसमर्पण करता है और न आत्महत्या।' प्रताप ने स्पष्ट किया।

'आप तेजस्वी युवक हैं, महाराणा। क्या आप शांति, समृद्धि और बासंती मादकता के साथ जीना नहीं चाहते? क्या अपनी प्रजा का विनाश चाहते हैं? आप देखें, आमेर की प्रजा कितनी खुश है?

'राजा भगवन्त दास जी! आमेर की प्रजा खुश है या नहीं, आपका राज परिवार अवश्य ही प्रसन्न है। मेवाड़ की प्रजा ने तो स्वाधीनता का संकल्प ले लिया है।' प्रताप ने कहा

'मेरा आग्रह है कि आप शहंशाह से मिलकर आदर पाये। वे मान–सम्मान देंगे। हम सभी राजाओं की एकता बनें। हमारे अनुसार सल्तनत चले।

राजा भगवन्त दास जी। आपकी एकता मुगल साम्रज्य को फैलाने के लिए है। मेरा अनुरोध है कि राजाओं के ऐक्य का नेतृत्व आप करें और स्वाधीनता के लिए आमरण संघर्ष हो।

'सरस्वती–सदानीरा' में संवाद ही कथा विस्तार के वाहक हैं। उद्देश्य–सिद्धि, जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति, कथा–रस एवं रोचकता के साथ–साथ नाटकीयता व संक्षिप्तता के गुण दिखाई पड़ते हैं। याज्ञवल्क्य द्वारा ऋषि–मुनियों व महाराज से किया वार्तालाप श्रेष्ठ उदाहरण है।[94]

शाकल्य ने प्रश्न किया– 'वसु कौन है?'

'अग्नि, पृथ्वी, वायु, अंतरिक्ष, आदित्य, दो चन्द्रमा, और नक्षत्र– ये आठ वसु हैं। याज्ञवल्क्य का उत्तर था।

'आदित्य कौन है?'

'वर्ष के बारह मास ही द्वादश आदित्य हैं!'

'इन्द्र कौन है?'

'गर्जनशील मेघ ही इन्द्र है।'

'दो देवता कौन–कौन है?'

'अन्न और प्राण।'

'एक देव कौन है?'

प्राण। यह प्राण ही ब्रह्म है। शाकल्य संतुष्ट हुए।

...........जनक ने पूछा– प्राणवान पुरूष किस ज्योति से युक्त है।

'पुरूष सूर्य की ज्योति से युक्त है। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया।

"सूर्यास्त के बाद यह किस ज्योति से युक्त हो जाता है?"

'तब यह चन्द्र ज्योति से युक्त हो जाता है।'

'सूर्य और चन्द्र दोनों के अस्त होने पर..............?'

'अग्नि की ज्योति से..........।'

"अग्नि के बुझ जाने पर........?"

"वाणी ही इसकी ज्योति होती है।"

'यदि वाणी भी शांत हो गयी तो.........?'

"आत्मज्योति से ...."।

आत्मा का स्वरूप क्या है?

वह प्राण के मध्य स्थित है।

संक्षेप में शत्रुघ्न प्रसाद के संवाद सभी उपन्यासों के जीवन दर्शन को अभिव्यक्त कर कथ्य को स्पष्ट करने में पूर्ण सक्षम हैं। इनके संवादों की महत्ता या श्रेष्ठता परिवेश की यथार्थता व्यक्त करने में भी है और पात्रों के चरित्र का मूल्यांकन सिद्ध करने में भी है। धीरेन्द्र वर्मा ने संवाद कुशलता के जो गुण बताए हैं, उन पर शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों के संवाद खरे उतरते हैं। कहा है कि– संवाद के द्वारा कथावस्तु का विकास और पात्रों का चरित्र–चित्रण अभीष्ट होता है। अतः उपन्यासों में इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उसका उपयोग होना चाहिए। उसमें देश, काल और पात्र के अनुकूल स्वाभाविक मनोविज्ञान की उपयुक्तता, उपन्यास की रोचकता और आकर्षण को बढ़ाने वाली अभिनयात्मकता और सरसता आवश्यक है।"[95]

3.4.4 परिवेश चित्रण–

ऐतिहासिक उपन्यास में ऐतिहासिक यथार्थ या इतिहासकालीन सत्यता का आभास लाने के लिए उस काल के वातावरण का साक्षात् चित्रण आवश्यक है। लेखक जो रचना रचता है उसका सम्बन्ध किसी समय विशेष और स्थान विशेष से रहता है देश, स्थान और समय की विशेषताओं को समेटकर चलने वाला साहित्य ही सत्य का आभास दिलाने में सक्षम होता है। देश और काल से सम्बद्ध सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं भौगोलिक स्थितियों का चित्रण एवं अंकन उपन्यास की सफलता का विशिष्ट मापदण्ड होता है। मनुष्य के निर्माण

में परिवेश उत्तरदायी होता है। परिवेश का प्रभाव मनुष्य, समाज व देश पर होता है या कहें कि देश व समाज का परिवेशगत मूल्यांकन किया जाता है। धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है कि– "यह आवश्यक है कि कथानक की घटनाओं के घटित होने की सम्पूर्ण परिस्थिति, उनका स्थान और समय हमारे कल्पना पट पर अंकित कर दिया जाए जिससे कि हम पात्रों की सजीवता पर विश्वास कर सकें।.................देश काल के चित्रण का तात्पर्य यह हैं कि उपन्यास की घटनाएँ जिस स्थान और समय की हों उसका ज्यों का त्यों चित्र उपस्थित कर दिया जाए।...........लेखक को उसका धनिष्ठ परिचय आवश्यक है जिससे कि वह भौगोलिक विवरण, सामाजिक रीति–नीति, शिष्टाचार, भाषा प्रयोग आदि को उपन्यास में सम्मिलित करके उसकी घटनाओं में सजीवता ला सकें।"[95] देशकाल एवं परिवेश चित्रण में स्थानीय रंगों का चित्रण वास्तविकता, सूक्ष्मता, चित्रात्मकता, पात्रानुकूलता एवं घटनानुकूलता के गुणों को लेकर किया जाना उचित व सार्थक माना जाता है। परिवेश में ब्राह्य चित्रण एवं आन्तरिक चित्रण के दोनों दृश्य साक्षात् होते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद ने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। ऐतिहासिक वातावरण का जीवन्त साक्षात्कार प्रस्तुत करने में लेखक ने तत्कालीन भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यासों की मार्मीक संरचना इन सब परिस्थितियों के कलात्मक नियोजन में हुई है। वैदिककालीन जन–जीवन प्राचीन काल एवं मध्यकाल पर आधारित उनके उपन्यासों में भिन्न–भिन्न कालों एवं स्थानों का मनोरम चित्रण काल एवं स्थान के अनुरूप हुआ है। 'सरस्वती–सदानीरा' उपन्यास में वैदिककालीन यज्ञ संस्कृति, आश्रम व्यवस्था, पणि सभ्यता, कीकट क्षेत्र के व्रात्यों का जन–जीवन एवं नाग, किन्नर, किरात आदि का सम्पर्ण लोक–जीवन प्रकट हुआ है। सरस्वती किनारे ऋषि यज्ञ, हवन, प्रातः एवं संध्याकालीन मंत्रोच्चारण से जीवन की सार्थकता मानते हैं। नाग बस्ती नाग की पूजा में संलग्न हैं। कीकट प्रदेश में तंत्र का बोल बाला है। रूद्र की पूजा होती है। कृषि को महत्त्व दिया जाता है। जनक विदेह के यहाँ ज्ञान का चिन्तन एवं यज्ञ के स्वरूप पर विवेचना हो रही है। आर्य–अनार्य या वैदिक–व्रात्यों के जीवन का सम्पूर्ण परिवेशमयी चित्र उपस्थित हुआ है। 'शिप्रासाक्षी है' में भी आश्रम व्यवस्था में शिक्षा ग्रहण करने की परम्परा के साथ राजतंत्र के अहंकारी एवं विलासी जीवन का चित्रण हुआ है। उनके अन्य सभी उपन्यास मध्यकालीन भारत के ईस्लामी धर्मान्धता के बीच जनता की पीड़ा व नारी शोषण के साक्षात् चित्र इन उपन्यासों में प्रस्तुत है। युद्ध, संघर्ष, धर्मान्तरित समाज की पीड़ा, क्रूर राजनीति, दमन से दबता सामान्य जन समाज, नारी शोषण, मंदिरों एवं धर्म प्रतीकों का ध्वंस, धर्म व सम्प्रदायों का विभक्तिकरण, सामाजिक रूढ़ियों में जकड़ा समाज, आर्थिक दुर्दशा भोगती सामान्य जनता के दयनीय एवं दुर्दमनीय चित्रों के साथ–साथ लोक व्यवहार, पर्व–त्योहार, प्रकृति–सौन्दर्य, मंगल महोत्सव, मेले, आश्रम, किले, गाँव आदि के भी सम्पूर्ण चित्र उपन्यासों में यथार्थ रूप में समय व स्थान की सत्यता के आभास को जीवन्त कर देते है। 'सरस्वती–सदानीरा' के ये वृत्तान्त वैदिककालीन परिवेश को चित्रित करते हैं।...

..पत्थर के ऊँचे चबूतरे पर नाग देवता फण काढ़े विद्यमान थे। नागकुल की स्त्रियाँ नागदेवता को दूध और जौ का लावा समर्पित कर रही थी।................ग्रामीणों के ढोलक, बांसुरी, झर्झरी के स्वर गूंज उठे। कुछ क्षणों तक वाद्य यंत्रों का संगीत गूँजता रहा। फिर गीत की स्वर लहरी उसमें मिल गयी।.............ऋषि वैषम्पायन अग्निशाला में प्रातःकालीन होम कर रहे थे। साथ में आश्रुति थी। याज्ञवल्क्य भी कात्यायनी के साथ थे। सबका स्वर हवि देने के लिए गुंजित हुआ।........हे अग्ने! तुम दिव्य हो, तुम अनुष्ठानों के रक्षक हो। सब यज्ञों में तुम्हारी स्तुति की जाती है।..........यज्ञ मंडप से लगे क्षेत्र में क्रीड़ा का आयोजन हुआ। अंतेवासी छात्रों ने अपना प्रदर्शन किया। सामश्रवा इस प्रदर्शन में सम्मिलित हुआ। वह गीत–संगीत के समारोह में भी आगे था। उसका सामगीत सबको भा गया।.........दोनों के अन्तर में बसंत के अभिनंदन की विकलता थी। अन्तर की विकलता ने बसंत वृक्षों की छाया मे मिला दिया। नव किसलयों, नव पल्लवों और पुष्पों से सज–धज कर वृक्ष झूम रहे थे। लग रहा था कि प्रकृति ने बसंत वितान रच दिया है।............ईशर की पत्नी स्वस्थ हो गयी थी। इसलिए उसने पहले किरात रूप शिव की पूजा की। उसने डमरू बजाकर शिवलिंग पर दूध डाला। वह मंद स्वर में स्तुति करता रहा। "हे शिव! आप तो किरातों के देवता हैं। किरातों की वेशभूषा में अदृश्य रहकर पर्वतों–वनों में विचरण करते हैं। आप हमारी पूजा को स्वीकार कर कल्याण करें।........थोड़ी देर में बस्ती में देवी थान पर पूजा होने लगी। किरात समूह अपनी भाषा में देवी की महिमा का वर्णन झूम–झूम कर गाने लगे। स्त्रियाँ एक ऊँचे चत्वर पर देवी माँ की पिंडियों की दूध, अड़हुल, फूल और सिन्दूर से पूजा करने लगी।......द्योतक व्याघ्र चर्म पर बैठा हुआ था। शरीर अजचर्म से ढका हुआ था। शीश पर जटा थी। बायें हाथ में सर्पाकार लकड़ी थी। दाहिने हाथ की मुट्ठी में बालू रेत थी।.......मुट्ठी में बंद बालू को देखकर गुनगुना रहा था। फिर उसने दोनों ऋषियों पर बालू फेंक दी। वह अभिमंत्रित बालू का प्रभाव देखने लगा।.....आपका तपोमय.............चिंतनमय और कर्ममय जीवन ही यज्ञ है।.........आहुति आरंभ हो गयी। 'अग्नहे स्वाहा' का स्वर गुंजित होने लगा।"[96] वैदिक–व्रात्य, किरात आदि जनसमूहों की संस्कृति का पूर्ण चित्र उपस्थित है जो परिवेश की सच्चाई को अभिव्यक्त करता है, ऐसा लगता है जैसे वैदिक जन–जीवन को हम साथ–साथ जी रहे हैं। 'शिक्षाप्राक्षी है' में आश्रमकालीन शिक्षा व्यवस्था, राज व्यवस्था आदि का जीवन्त चित्रण हुआ है। "कुमार विषमशील का आगमन हुआ। प्रधान आचार्य भास्वर ने अन्तेवासी ब्रह्मचारी के रूप में स्वीकार किया। कुमार को कुश, मेखला, मृगचर्म, दण्ड, कमण्डल धारण करना पड़ा। उपनयन संस्कार हुआ। आचार्य, श्रोत्रिय, अध्यापकों का आशीर्वाद मिला। आचार्य ने कुमार की दक्षिण भुजा को ग्रहण कर शिष्य बना लिया। कुमार ब्रह्मचारी बन गए। विद्यापीठ उत्सव के स्वर में भर गया।...........महाराज गंधर्वसेन का आगमन हुआ। मुख्य द्वार पर दुन्दुभि बज उठी। महाराजा ने राजसभा में प्रवेश किया। सभी सभासद उठकर खड़े हो गए। ग्रामणीगण ने शीश झुकाकर प्रणाम किया।......महाराज गंधर्वसेन सिंहासन पर विराजमान हुए। चामर ग्रहिणी चामर डुलाने लगी। महामात्य भी बैठ गए थे।....

...राजपुरोहित ने मंगलपाठ किया। सब ने अपनी श्रद्धा समर्पित की। शंख बजने लगे। सबके शीश ऊपर उठे। महाराजा का अभिमान दीप्त मुख दिखाई पड़ा।"[97] 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास प्राचीन कालीन इतिहास की झाँकी प्रस्तुत करता है। 'सिद्धियों का खण्डहर' में बौद्ध महापीठों में सहज साधना का चमत्कार पूर्ण निदर्शन, तंत्र साधना का मोहजाल, महामुद्रा के रूप में व्यभिचार, शोभा यात्राओं का प्रदर्शन है परन्तु देशहित की चिन्ता नहीं है। यही चित्रण उस काल की परिवेशगत सच्चाई है। सिद्धेश ने सिद्ध घोरपा को नयी साधिका राजभवन की दासी के साथ पीठ के अन्तः कक्ष के भीतर जाते देखा।.............उसने देखा कि भगवान वज्रधर और भगवती वज्री के युगनद्ध स्वरूप के समक्ष हल्दी और कुंकुम से मंडल चक्र बना है। लाल फूल, लाल रंग में रंगा हुआ चावल, तिल, सरसों, धूप–सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान थी। सिद्ध ने मंडलचक्र के दूसरे छोर पर बैठने के लिए साधिका को निर्देश दिया। साधिका वेश में राज भवन की दासी युगनद्ध मूर्तियों का देखकर सहम गयी।........सिद्ध बीज मंत्र एवं मया' का जाप करने लगे थे।........अब वह भी बीजमंत्र का जाप करने लगी।......चारों हथेलियाँ एक साथ युगनद्ध मूर्तियों की ओर बढ़ीं। उसके चरणों पर चारों हथेलियों से फूल समर्पित हो गए।....... शोभायात्रा उदन्तपुरी की परिक्रमा करती दक्षिण की ओर बढ़ रही थी। सहस्र कण्ठों से जयध्वनि क्षण–क्षण गूंज रही थी। हर चतुष्पथ पर रजतरथ के स्वर्ण शिखर पर फूलों की वर्षा हो रही थी। पथ के किनारे, घर के द्वार, घर के दूसरे तल की अटारी पर खड़े लोगों की आँखों में श्रद्धा थी। होठों से 'संबुद्धाय नमः' के स्वर व्यक्त हो रहे थे। भिक्षुदल धम्म पद का पाठ कर रहा था। दूसरा दल सिद्ध सरहपा के पद गा रहा था।.......आचार्य कमल रक्षित, महास्थविर रत्नभद्र, सिद्ध घोरपा, सम्राट गोविन्द पाल देव, नगर श्रेष्ठि प्रकाम सभी इस शोभा यात्रा की सफलता से संतुष्ट थे।......ये तुर्क आक्रमणकारी कितने भयानक हैं। कितने क्रूर और बर्बर हैं।.....और इनके आक्रमण की राजनीति में नये धर्म की कट्टरता भी ......ओह ! ऐसा नहीं देखा गया।"[98] यही यथार्थ वातावरण शत्रुघ्न प्रसाद के मध्यकालीन इतिहास पर आधारित सभी उपन्यासों में चित्रित हुआ है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में वैदिककालीन जनजीवन, सरस्वती से सदानीरा तक का प्रदेश, दक्षिण भारत, हल्दी घाटी, कश्मीर, आदि के साथ–साथ वैदिककालीन भारत, ईसापूर्व 57 वर्ष पूर्व का भारत एवं मध्यकालीन भारत का खण्ड–बोध ग्रस्त भारत चित्रित हो उठा है। शत्रुघ्न प्रसाद ने सप्त सैधव, आर्यावर्त, भारतवर्ष के साथ–साथ मध्यकालीन सिसकते भारत के गढ़ों, किलों, पर्वतों, नदियों, आदि के साथ–साथ धर्मान्तरित समुदाय की पीड़ा, नारीदुर्दशा के चित्र, जन–जीवन की पीड़ा धर्म–सम्प्रदाय के भेद–भाव व अद्वैतवादी चिंतन आदि के अनेक जीवन्त चित्र उपस्थित कर युगीन परिवेश में घटनाओं एवं पात्रों का चित्रण किया है। युग का स्वाभाविक, सजीव एवं हृदयग्राही चित्रण कर परिवेश की अद्‌भुत सृष्टि की है।

3.4.5 जीवन्त–दर्शन का समावेश –

शत्रुघ्न प्रसाद ने अतीतकालीन यथार्थ का साक्षात् चित्रण करने के साथ अपने चिन्तन पक्ष को भी कथा और पात्रों के साथ समाहित कर दिया है या यह कहा जा सकता है कि अतीत कालीन कथा के साथ उपन्यासकार की चिन्तन कथा चलती रहती है। जीवन–दर्शन को यद्धपि कथ्य में समाहित किया जाता है परन्तु कथा के साथ जीवन चिन्तन को समावेशित करके दर्शाना कलात्मक क्षमता के अन्तर्गत ही आता है। वैदिक काल से ही भारतीय समाज जाति आधारित व्यवस्था से संचालित रहा। इस जाति आधारित व्यवस्था जिसे वर्ण–व्यवस्था का रूपान्तरण कहा जाता है, एक खण्डित दृष्टि का परिणाम है जिसने भारतीय समाज व देश को बड़ा आधात दिया है। धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर अनेक भेद–उपभेद और धारणाओं तथा परिणामस्वरूप उपजे वैमनस्य ने व्यक्तिगत स्वार्थ के महत्त्व को बढ़ाया, इसका भी देश दुष्परिणाम भोग रहा है। विलासी व अहंकारी शासन यदि देश को विनाश की ओर अग्रसर करता है तो मजहबी सियासत तो सम्पूर्ण जन की जीवन्तता का ही नाश कर देती है। विवश धर्मान्तरित समाज अपनी जड़ों को छोड़ नहीं पाता और नव परम्पराएँ ढोता है। यह अन्तर्द्वन्द्व उनके जीवन को अधिक विवशता प्रदान करता है। जड़ों से कटकर जीवन नहीं जीया जा सकता है, यह दर्शाकर जड़ों की ओर जीवन आकर्षित रहता है, का भाव व्यक्त किया गया है। राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक प्रगतिशीलता तो मुखर विचार के रूप में प्रवाहित है ही साथ–साथ जीवन के उन अंगों को खोजने और अनुभव जनित चिन्तन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जिनसे मानव निराश से आशा और अनास्था से आस्था की ओर यात्रा करता है। पात्रों के जीवन दर्शन से नव चिन्तन की धारा को सहज ही प्रवाहित किया गया है। जीवन कैसा होना चाहिए, यह तथ्य लेखक ने ऐतिहासिक एवं काल्पनिक पात्रों के क्रिया व्यापार द्वारा दर्शाया है। लेखक ने राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रीय एकता, साम्प्रदायिक व धार्मिक भेदभाव से मुक्ति, सामाजिक समानता, धार्मिक समरसता, धर्मान्ध राजनीति से मुक्ति, लोकहितकारी शासन व्यवस्था की प्रतिष्ठा आदि राष्ट्रीय आवश्यकताओं पर बल देते हुए मानव मात्र में राष्ट्र–प्रेम, त्याग, बलिदान, प्रेम, कर्म दाम्पत्य जीवन, मानवीयता आदि गुणों को कथा में इस रूप में समंजित किया है कि स्वाभाविकता से ह्रदय में उतर जाते है। यही लेखक की कलात्मक क्षमता है। विधवा जीवन की त्रासदी को व्यक्त करते हुए पुनर्विवाह का समर्थन किया है। बिना कुछ कहे ही सहज साधना के नाम पर होने वाले व्यभिचार का प्रतिरोध कर धार्मिक परिष्कार का मार्ग सुझाया है। शस्त्र शक्ति से ही राष्ट्र की सुरक्षा सम्भव है व अहिंसा का अतिरेक दुर्बलता देता है, का संकेत ऐतिहासिक कथा में ही कर दिया गया है। उद्घोषणा करने की आवश्यकता नहीं समझी गयी। महेन्द्र और सुवर्णा का मौन अनुराग जीवन में प्रेम की महत्ता को शान्त भाव से उजागर कर देता है। कबीर और लोई, याज्ञवल्क्य और कात्यायनी, मध्वाचार्य एवं वैतीहोत्री के माध्यम से काम के मंगलदायक स्वरूप का विवेचन और अद्वैत भावी दाम्पत्य का दर्शन प्रदान करने की कला लेखक का अद्भुत कौशल है। महरूख, गजाला, चन्दा, आलमआरा, जेबुन्निसा आदि पात्रों के माध्यम से प्रेम के उज्ज्वल स्परूप को दर्शाते हुए

यह सिद्ध किया गया है कि प्रेम तो दो हृदयों का पवित्र भावमयी मिलन है। आत्मा का सौन्दर्य है। ईश्वरीय अवदान है। सामाजिक बंधन से मुक्ति का संदेश इनके प्रेममयी भावों में ही दर्शनीय हो जाता है। साहस, संकल्प कर्म, आस्था के गुणों को भी समायोजित किया गया है। उपन्यासकार का जीवन–दर्शन को शब्द–ध्वनि द्वारा व्यक्त करने का प्रतीकात्मक कौशल उनकी शीर्षक कला में देखने को मिल जाता है। 'सिद्धियों का खण्डहर' तांत्रिक शक्ति पर विश्वास के दुष्परिणाम का संकेत देता है तो 'शिप्रासाक्षी है' अहंकार और विलासिता से आने वाले विनाश एवं संगठित शक्ति के सुपरिणाम को दर्शाता है। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' व 'अरावली का मुक्त शिखर' राष्ट्रीय स्वाधीनता की अभिव्यक्ति करता है। 'कश्मीर की बेटी' किसी साहसी वीरांगना का भाव जगाता है। 'सुनो भाई साधो' कबीर के चिंतनमयी वाणी व 'सरस्वती–सदानीरा' आध्यात्मिक जीवन यात्रा की दार्शनिक अनुभूति प्रदान करता है। हेमचन्द्र विक्रमादित्य अर्थात् हेमू की आँखे संकल्प शक्ति एवं राष्ट्रीय व्यक्तित्व का बोध देता है और 'शहजादा दाराशिकोहः दहशत का दंश' मजहबी सियासत के दंश एवं उदारता पर दहशत की विजय से उपजी संवेदना से हृदय को आप्लावित कर देता है। जीवन–दर्शन को व्यक्त करने की अभिव्यंजना या ध्वनि शक्ति उपन्यासकार का विशिष्ट कलात्मक व सर्जनात्मक अवदान है।

3.4.6 भाषा एवं शैलीगत विशिष्टता–

भाषा विचारों की वाहक होती है। भाषा का प्रस्तुति कौशल शैली कहलाता है। चिंतन एवं विचारों को मानसिक प्रक्रिया का स्वरूप देने में भाषा का अत्यधिक महत्त्व रहता है। भाषा एवं चिंतन का रागात्मक सम्बन्ध होता है। कथा साहित्य में चमत्कार, कौतूहल आकर्षण, सजीवता आदि की उद्भावना एव अनुभूत विचारों को सम्प्रेषणीय बनाने में भाषा का सचेत प्रयोग आवश्यक है। वस्तु की अभिव्यक्ति के प्रकार को शैली कहा जाता है। यह अभिव्यक्ति भाषा द्वारा संभव है। साहित्य में भाषा महत्त्वपूर्ण उपादान है। शैली में उपयुक्त शब्दों का प्रयोग आवश्यक है। साहित्यिक विधाओं में जो परिवर्तन देखने को मिलते हैं वे भाषागत ही होते हैं। रचना की मौलिकता शैली पर निर्भर करती है जो भाषा चमत्कार से प्रयुक्त होती है। कथानक, चरित्र, संवाद, परिवेश, विचार आदि के अभिव्यंजना चमत्कार में भाषा सौष्ठव के गुण निहित होते है। शैली सामान्य अर्थ में वैशिष्ट्य की प्रयुक्ति है। शैली सामान्य रूप से किसी कार्य की वह संपादन विधि है जिसमें ऐसा कौशल सौष्ठव एवं सौन्दर्य हो जो दूसरों को अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर सकें। उपन्यास साहित्य में भाषा स्थिर, गतिशील, अलंकृत और काव्यात्मक रूप में प्रयुक्त होती है। ऐतिहासिक उपन्यास में भाषा को ऐतिहासिक निरूपण में सत्यता दर्शानी होती है। इतिहास सत्य का बोध कराने वाली भाषा ही यथेष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। ऐतिहासिक उपन्यासकार को इतिहासज्ञ एवं ऐतिहासिक भाषा शास्त्री की तरह शब्द संचयन करना पड़ता है। युग चित्रण की सार्थकता इसी में निहित होती है। सफल

साहित्यकार की भाषा गत्यात्मक होती है। अभिव्यंजना शक्ति उसे और श्रेष्ठता प्रदान करती है। गतिशील भाषा में स्थिर, अलंकृत, काव्यात्मक सभी रूप समन्वित हो जाते हैं। उपन्यास की भाषा मुख्यतः भावमयी होना आवश्यक है। उपन्यास मानव जीवन की व्याख्या होती है अतः भाषा को भी मानव जीवन की तरह गतिशील होने में ही सार्थकता एवं सफलता निहित है। भाषा शब्द सम्पदा, वाक्य–विन्यास, अर्थ बोध, मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों से युक्त, अलंकृत स्वरूप में प्रयुक्त होने पर समृद्ध एवं सौन्दर्यवान बनकर प्रभाव स्थापित करती है। भाषा अपनी सहजता एवं गतिशीलता के साथ–साथ पात्रानुकूल, भावानुकूल, युगानुकूल बनकर साहित्य को विशिष्ट बना देती है।

शत्रुघ्न प्रसाद ने ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास काल के अनुरूप अपने जीवन दर्शन को सम्प्रेषित करने वाली भाषा का प्रयोग किया है। सहज भाषा की प्रयुक्ति शत्रुघ्न प्रसाद की शक्ति है। वे सहज शैली में सहज भाषा का प्रयोग उनके उपन्यासों को विशिष्ट आकर्षण प्रदान करते हैं। उनकी भाषा बोधगम्य परन्तु सरल है। सजीवता और सरसता उनकी भाषा का अनिवार्य अंग है। सरल व छोटे–छोटे वाक्यों और अभिधात्मक शैली से ही गहरी संवेदना मन में उतार देते हैं। यद्धपि नाटकीय, काव्यात्मक, अलंकार युक्त, लाक्षणिक भाषा का भी प्रयोग हुआ है। वैदिककाल, प्राचीन काल एवं मध्यकाल के अनेक कालखण्डों की घटनाओं एवं पात्रों को ऐतिहासिक यथार्थ परिवेश में चित्रित किया है जिसका माध्यम उनकी भाषिक क्षमता ही है। वे अपने मंतव्य के अनुकूल भाषा के प्रस्तुतीकरण में सफल हुए हैं। इनकी भाषा का शब्द संचयन व वाक्य–गठन, मुहावरेदार, लोकोक्तिपरक, सूत्रात्मक एव सूक्ति युक्त है। अलंकृत होकर सौन्दर्य एवं रसात्मकता में वृद्धि करने में भी पूर्ण सक्षम हैं। भाषा की पहली विशेषता देश, काल एवं पात्रों के अनुकूल होने में है। 'सरस्वती–सदानीरा' में वैदिक कालीन शब्दावली का प्रयोग दर्शनीय है। संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली प्रयुक्त हुई हैं। सोमभाग, ऋषि, सोमलता, पणि, मधुकार, वटुकों, अधोवस्त्र, ब्रह्मवर्त द्रोणिका, शतुद्रि, परूष्वी, पर्णशाला, गोधूम, मुद्रग, आवसथ, सप्त सिंधु, हिरण्य गर्भ, हवि, वासोवाय व्याघ्रचर्म, अंतेवासी आदि शब्द वैदिक युग के अनुकूल हैं। 'शिप्रासाक्षी है' प्राचीन कालीन इतिहास पर आधारित उपन्यास है। इसमें भारतीय राजशाही के अनुकूल शब्दों का प्रयोग ही द्रष्टव्य है। राजपुरोहित, राजनर्तक, मंगलपाठ, महामात्य, पारस्य देश, लाट प्रदेश, नगरश्रेष्ठि, शूल, अश्रुकण, शस्त्र, युद्ध परिषद् , राजवैद्य, नूपुर, सिंह द्वार, अवन्तिका, नवरात्रि, आचार्य देव, तल्प, तरूण, उपत्यका, स्वर्ण–यूथिका, शिखर, मण्डप, प्रांगण, अनुप्रणित, जनपद, स्वस्तिवाचन आदि शब्द भारतीय प्राचीन जीवन्त शैली में प्रयुक्त होने वाले हैं। उपन्यास में ऐसे ही शब्दों का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। मध्यकालीन इतिहास पर आधारित उपन्यासों में अरबी–फारसी के शब्दों का प्रयोग मुगलिया यथार्थ को प्रकट करने में पूर्ण सक्षम हुए हैं। रक्कासा, सुल्तान, फौज, हथियारबन्द, तसखुफ, सूफी खयालात, दोशीजा, मजहब, इनसानियत, खौफ, जहाँपनाह, मोती मस्जिद, निगाह, तख्तोताज, हकीम, नेस्तनाबूद, बादशाह–ए–गाजी आदि शब्द मुगलिया सल्तनत का चित्रण

करने में सार्थक सिद्ध हुए हैं। भिक्षुणि, सिद्धाचार्य, अवलोकितेश्वर, हिरण्य पर्वत, बुद्ध शरणं गच्छामि, महाविहार आदि शब्द बौद्ध जीवनचर्या का आभास दिलवाते हैं। हिमकर, राकेश, शीतल जल प्राकृतिक सौन्दर्य को व्यक्त करते हैं। श्रृंगार हाट, स्वर्ण–हाट, नृत्यमण्डप, अमात्यमण्डल आदि शब्द प्राचीन परिवेश को पूर्ण चित्रित कर देते हैं। चिदानन्दमय ब्रह्म, अद्वैत चिन्तन, भाग्य–चक्र, विशिष्टाद्वैतवाद आदि शब्द भारतीय भक्ति साधना को चित्रित करते हैं तो सूफी औलिया, फकीर, चिश्ती, सुहरावर्दी, पैगम्बर आदि सूफी दर्शन को अभिव्यक्त करते है। निरगुन, औतारी, बिशनु, सिख्य, भगति, ढाई आखर, गांगू, नत्थू, मरजादा, सरबनाथ, सुरतगोपाल, मानुषधर्म आदि शब्द कबीर की अनपढ़ ग्रामीण या अनपढ़ भाषा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। फूला, संभा, पूंजा, पूरबिया, पातल, पीथल, दीवाण, धूनी, आदिनाथ, तीर–धनुष, बनैले पशु गमेती, जवार, डोला आदि शब्दों में राजस्थानी–मेवाड़ी परिवेश झलक उठता है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा पूर्णत परिवेश के अनुकूल है। विवेच्य उपन्यासों में ऋषि, सम्राट, शकशाहि, दीन–कृषक, शहंशाह, प्रेमी पात्र, नगरश्रेष्ठि सभी पात्रों की अपनी–अपनी वर्ग विशिष्टता के अनुसार भाषा का प्रयोग मिलता है। बैरागी जी बोल गए कि गुरूजी की मंगलकामना पा लें।......लोभ–मोह, अभिमान से मुक्त सन्त अपने राम का सुमिरन करेगा, तख्तोताज का जयकार नहीं।– उधवदास एवं तेगबहादूर के चरित्रानुकूल भाषा है।..... भवनाथ ! बदनसीबी ने सबसे जुदा कर दिया। आँखों के अश्क साथी बन गए।......मुलाकात की कहाँ उम्मीद थी? विवश और पीड़ित आलमआरा के शब्द हैं।......बादशाह–ए–गाजी बेकरार नहीं होता। वह तो तेग तलवार से बातें करता है। देहली का जर्रा–जर्रा गवाह है। हाँ, रोशनआरा जरूर बेकरार है।........यह हरमसरा गवाह है। उदयपुरी ने चोट कर दी। ये शब्द औरंगजेब, रोशनआरा एवं उदयपुरी बेगम के चरित्र को उद्घाटित करता है।.............संकल्प में बड़ी शक्ति होती है। नया संघटन खड़ा करना होगा। संकल्प..........संघटन.......साहस........ निरन्तर संघर्ष। भुमिमाता की स्वाधीनता के लिए संघर्ष। यहाँ प्रताप का निर्भीक चरित्र प्रकट होता है।.........मेवाड़ का सौन्दर्य शौर्य का मार्ग नहीं रोकता, सर्वदा साथ देता है। यह क्षत्रिय नारी का चित्रण है। विधवा का जीवन ....एक तपस्वी के जीवन से अधिक कठोर.....अधिकतम यातनामय ! अमंगल रूप बनकर किस मंगल के लिए साधना करती रही है।...........सुभद्रा के ये शब्द विधवा नारी की मनोविश्लेषणात्मक स्थिति का मर्म प्रस्तुत करते हैं। इन उपन्यासों में राष्ट्रवादी चरित्रों की भाषा ओजमयी राष्ट्र भक्ति से परिपूर्ण है। धर्मान्ध शासकों की भाषा कट्टरता और दहशत पैदा करने वाली है। नारी चरित्रों की भाषा शोषण या दयनीयता से परिपूर्ण है परन्तु क्षत्रियत्व, वीरत्व एवं उदात्त चरित्र व्यक्त करने वाली भी है। मध्वाचार्य, कबीर, लोई, वैनीहोत्री, याज्ञवल्क्य, कात्यायनी, मैत्रेयी आदि के मध्य का वार्तालाप आध्यात्मिक उच्चता का उद्घाटन करता है। स्पष्ट होता है कि पात्रों या चरित्रों के मनोभावों, व्यक्तित्व एवं गुणों का साक्षात् करवाने वाली शब्दावली प्रयुक्त हुई है। भाषा चरित्रोद्घाटन में पूर्ण शक्तिसम्पन्न एवं समर्थ सिद्ध हुई है।

आलोच्य उपन्यासों का वाक्य गठन अत्यन्त ही सारगर्भित, अर्थाभिव्यंजित एवं सोद्देश्य है। सहज, सरल, छोटे–छोटे वाक्यों में ही जीवन चित्रण एवं इतिहास चित्रण कर दिया गया है। मुहावरेदार, लोकोक्तिपरक एवं सूक्तिपरक भाषा अत्यन्त सौन्दर्य सम्पन्न बनकर निखरे रूप में रसास्वादन देने वाली एवं हृदय स्पर्शी बनी हुई है। जहाँ–जहाँ अलंकार प्रयुक्त है वहाँ अत्यन्त शोभामयी लगती है। भाषिक वक्रता भाषा को कलात्मक बनाने में व कथ्य को प्रेषणीय बनाने में सफल हुई है। सूक्ति कथनों में लेखक मंतव्य एवं भाषिक चमत्कार देखते ही बनता है। सूक्तियाँ भावावेश दर्शाने की नैसर्गिक अभिव्यक्ति है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में सूक्तियाँ कहीं–कहीं पूर्व योजनानुसार और मुख्यतः स्वभावतः पात्रों का भावावेशमयी वार्तालाप दशार्ने के क्रम में प्रयुक्त हुई हैं। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

सरस्वती–सदानीरा :–

क. स्वच्छन्द कामुक समूह स्त्री को आखेट समझता है– पेज– 2

ख. औषिधियों की रानी सोम है। प्रेममय जीवन उचित है– पेज– 12

ग. आहार शरीर के लिए पौष्टिक हो। हृदय और मष्तिक के लिए पोषक हो।
वात्सल्य और प्रेम की मधुरता हो। पेज– 20

घ. अचेत हो जाना सुख नहीं है। पेज– 22

ड. फूल की सुरक्षा के लिए शूल चाहिए। पेज– 52

च. ग्राम जीवन में कोई अकेला नहीं होता। पेज– 37

छ. आत्मसम्मान और सबका सम्मान ही मनुष्यता है। – पेज– 53

ज. विश्वास और स्नेह से ही घर परिवार सुखी रहता है। – पेज– 71

झ. यदि काम उच्छृंखल हो गया तो वह ध्वसंक वन्य पशु वन जायेगा। पेज– 72
विवेक जहाँ जायेगा, अपना मार्ग निकाल लेगा। पेज– 92

ट. गुरू के आदेश का पालन शिष्य धर्म है। पेज– 98

ठ. जीवन भी यज्ञ है पेज– 105

ड. श्रम के बाद ही संगीत मधुर हो पाता है। पेज– 142

ढ. इच्छा ही तो जीवन की गति है। पेज– 170

सिद्धियों का खण्डहर :–

क. बुद्ध की स्तुति के साथ श्रम का संगीत – यही तो जीवन की पूर्णता है। पेज– 9

ख. आत्मारक्षा पहला धर्म है। पेज– 30

ग. बहता पानी और रमता जागी कभी कलुषित नहीं होते। पेज– 53

अरावली का मुक्त शिखर :–

क. जीवन जीने की कला है। सुख और शांति पाने का कौशल है। पेज– 36

ख. संगीत दिल की आवाज है। आत्मा का स्वर है।

परमात्मा की आराधना है। प्रेम आत्मा की ही लौकिक आकांक्षा है। पेज– 95

ग. राजभवनों में कामनीति एवं कूट नीति चलती रहती है। पेज– 149

घ. हर स्त्री शक्ति है। उसमें दुर्गा का अंश है,

शिप्रा साक्षी है :–

क. राजनीति सर्वदा नीति के पथ पर नहीं चलती। पेज– 148

ख. सद्धर्म सम्पूर्ण मानवता के लिए है। पेज– 149

ग. आत्माविश्वास और साहस ही जीवन के आधार है। पेज– 151

घ. आक्रोश पुरूष है। बधाई है नारी। पेज– 154

ड. स्नेह समपर्ण का प्रेरक है। आत्मीयता सेवा है। समदर्शिता मानवता है। पेज– 192

च. शस्त्र से सुरक्षित राष्ट्र में ही शास्त्र विज्ञान का अनुशीलन संभव है। –

साधना के साथ साध्य ऊँचा होना चाहिए। पेज– 38

छ. शक्ति के साथ विवेक आवश्यक है। पेज– 39

ज. राजपद मद तो उत्पन्न करता ही है। पेज– 40

सुनो भाई साधो :–

क. सोने की सेज पर सोने वालों की दुरगति होती है। पेज– 66

ख. सभी राम की संतान है। राम ही जीवन देता है और मरण भी। पेज– 98, 275

ग. उन्होंने मिट्टी को सोना बना दिया। पेज– 65

घ. सिर्फ राम–रहीम की भक्ति और संतान की सेवा में ही पुन्न है। पेज– 228

ड. फूल कुचलने के लिए नहीं हैं। पेज– 244

च. लोभ और भय को जीतना होगा। पेज– 262

छ. आप चिराग जलायें, अंधकार भागेगा। पेज– 277

मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषा की सजीवता के विधायक तत्व माने जाते हैं। भाषा को लाक्षणिकता एवं व्यंजनापरक सौन्दर्य प्रदान कर अर्थ सौन्दर्य एवं भावाभिव्यंजना में अभिवृद्धि करते है। भाषा को प्रवाहशीलता एवं सम्प्रेषणीयता से युक्त कर वांछित अनुभूति को सशक्त बनाने में सहायक होते है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में पात्रों के संवाद या वर्णनों में इनका प्रयोग हुआ है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रयुक्त मुहावरे भाषा के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करने का यथासाध्य प्रयास किया जा रहा है।

(क.) धनदत्त का मुख मुरझा गया। उसे महामात्य पर बड़ा क्रोध आया। पर उसे क्रोध को पी जाना पड़ा। महामात्य ने तिरछी दृष्टि से धनदत्त को देखा। उसके मुख पर क्रोध को छटपटाते देखा। उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। .....इसी अपवाद का सहारा लेकर उसे बन्दीगृह में रख दिया जाए।......साँप मरे और लाठी भी न टूटे।.....आपकी बुद्धि का लोहा मान गया, आचार्य धवल।. ......वात्सल्य की बेसुधी का सुख कपूर की भाँति उड़ गया। पलकों के द्वार खुल गए। रूप की झलकियाँ शून्य में विलीन हो गयी।[99]

(ख.) माँ हाय–हाय करती थी। बापू सर पीटते थे। साधु फकीरों पर रंज होता था। मैं लौट आता था। माँ के कदमों में झुक जाता था। बापू खुश हो जाते थे।....दगाबाज ! तूने, धोखे से दिल्ली पर कब्जा किया है। तूने अमानत में खयानत की है।........बहलोल ने एक बार में सर कलम कर दिया।.......कबीर ने हाथ जोड़कर दुआओं को सर आँखों पर लिया।[100]

(ग) दारा ने अपनी हथेलियों में अपने चेहरे को छुपा लिया। आँखों के सामने मौत और कैद के मंजर आते रहे। औरंगजेब के कहकहे सुनाई पड़ते रहे। बरसात की ठंडी हवा में दारा का रोआँ–रोआँ जल रहा था।.......सभी चौंक गयी। डर गयी। बाँसुरी का स्वर सहम गया। सितार के तार चुप हो गए। दो लम्हों ने जमीन को खून से रंग दिया। सरमद साहब की आह उभर आयी।.........फफक–फफक कर रोने लगे। ऐसा लगा कि आसमान सिसकने लगा है।......लोगों की आँखें भींग गई।.......औरंगजेब ने आँखों को बन्द कर लिया। मुल्लाशाह बदख्शी की आँखों की लपट बढ़ती दिखई दी। सूफी फकीर सरमद की आँखों की आग लहकती दीख पड़ी। ..
.....बादशाह पसीने–पसीने हो गए।[101]

इस उदाहरणों में द्रष्टव्य है कि मुहावरों और लोकोक्तियों के सहज, स्वाभाविक प्रयोग ने भाषा को भावमयी व अभिव्यंजना शक्ति से समृद्ध कर दिया है। सबल एवं सशक्त भावाभिव्यक्ति एवं भाव–सौन्दर्य में अभिवृद्धि के निमित्त कथाकर भी अलंकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग अभिव्यंजना के अप्रतिहत प्रवाह को सहज बनाकर भावोत्कर्ष में सहायक होते है। शत्रुघ्न प्रसाद ने अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में किया है। अलंकार भाषा के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैः–

(क) पंचानन नदी की लहरों में प्रकाश के साथ संगीत भी मुखर हो उठा। उदन्तपुरी नगर ने अँगड़ाई ली।..........नगर की नींद टूट गई।.................सूर्य की किरणों ने प्रभात की इस वेला में देखा कि उपासक उपास्य के सामने नतमुख है।........गंगा की उजली–उजली लहरों को सूर्योदय की लाली रंग रही थी। ऐसा लग रहा था कि रजत पत्रों में लाल कमल सजाकर रख दिये गए हैं। दूसरी कल्पना जगी कि लहरों पर श्वेतिमा और लालिमा की जलक्रीड़ा हो रही है। कभी ऐसा प्रतीत होता कि नौकाएँ इस जलक्रीड़ा को देखने के लिए उतर आयी हैं। ऐसा भी लगा कि श्वेतिमा और लालिमा मिलकर इन नौकाओं का स्वागत कर रही है।..........
.युवराज की करूणा उस करूणाकर के चरणों में समर्पित है। उषा–सी सुन्दर और तरंग–सी चंचल सुवर्णा विवाह के एक वर्ष बाद ही विधवा हो गयी।............शीतल स्पर्श से ह्रदय शीतल हो जाता है।.............इस क्षेत्र की आग से मुक्त हो जाओ, प्रिये! कपोल–किसलय झुलस जायेंगे।............वह युवक बोल पड़ा– कमलिनी कमल को देख रही है।[102]............................

(ख) खुलती हुई कलियों के समान आँखों का मदिर आकर्षण, कपालों का पाटलस्पर्श, रसाल खण्ड के समान अधरों का आसव और सरोवर के वक्ष पर खिले हुए शतदल के समान उद्दीपक उरोज...........यौवन की दीप्ति से उद्भाषित सौन्दर्य ....यही तो मन्मथ है।..........
उन्हें लगा कि बसन्त मन्दिर कब से उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।......उस मन्दिर का शिखर,

अटारी, स्तम्भ, अलिन्द द्वार सभी बसन्त के रंग में रंगे हुए हैं।..............बसन्त के रंग में रंगी बासन्ती देवी अपने कामदेवता का आवाहन कर रही है।..........द्वार पर विद्युत्‌लेखा पुष्प–माला और मुस्कान माला लिये खड़ी थी। गंधर्वसेन ने आगे बढ़कर बाहों की माला पहना दी।[103]
(ग) घोड़ों की हिन हिनाहट एवं सिपाहियों के कहकहों को सुनकर मानों लहरें सहम गई।.... .....ऐसा लगा कि सारा गाँव उत्सव मना रहा है। गोमती की लहरों में कलकल संगीत है। और मधु के रोम–रोम उत्सव की मुद्रा में मुस्करा रहे हैं। रक्त का कण–कण नृत्य कर रहा है।...........ऐसा लगा कि शाही महल में मस्जिदों तक चिरागों की कतार है। कहकशाँ का नजारा है। रोशनी का दरिया है।[104] उक्त उदाहरणों से स्पष्टतः सिद्ध होता है कि विवेच्य उपन्यासों में मानवीकरण, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, पुनरूक्तिप्रकाश एवं यमक अलंकारों का सौन्दर्य भावों को उत्कर्ष प्रदान कर भाषा को सरस एवं मनोरम रूप में चित्रमयी आकार में चित्रित कर रहा है। काव्यमयी शैली का सौन्दर्य अभिभूत कर प्राणों को पुलकित करने में पूर्ण सक्षम है।

भाषा का प्रस्तुतीकरण शैली कहलाता है। उपन्यासकार अपने भावों और विचारों को भाषा के जिस आकार में प्रवाहित करता है, वह शैली कहलाता है। आधुनिक अर्थ में शैली भाषा की संरचना में रचनाकार की भाषा सम्बन्धी रूचियों, नवीनतम प्रयोगों, विशिष्ट संदर्भ युक्त संरचनाओं का समुच्चय होता है। साहित्य के क्षेत्र में अभिव्यक्ति कौशल की पद्धति अथवा संरचनात्मक पक्ष को उद्‌देश्य परक लिखने का तरीका, ढंग व लेखक की अभिव्यक्ति विशिष्टता ही शैली होती है। लेखक का व्यक्तित्व उसकी शैली में उतरता है। श्री कृष्ण शर्मा को उद्‌घृत करते हुए लक्ष्मीलाल वैरागी ने लिखा है कि किसी कथ्य को व्यक्त करने की विशेष तकनीक या रीति को शैली कहा जाता है। इस मत के अनुसार कृतिगत विशेषताओं को शैली कहा जाएगा, जो कथ्य को एक विशेष भंगिमा अथवा विशिष्ट शब्दावली में व्यक्त करती हो।"[105] अर्थात् शैली भाषा का स्वरूप निर्धारक तत्व है। भाषा वस्तु को जो स्वरूप देती है उसका आकर्षक प्रभाव शैली प्रदत्त करती है। मिडल्टन मुरे को उद्‌घृत करते हुए रामप्यारे तिवारी ने लिखा है कि– "शैली से तात्पर्य उस वैयक्तिक प्रभावशाली अभिव्यक्ति प्रणाली से है, जिससे हम किसी लेखक को पहचानते हैं।"[106] शब्दों को सजा–सँवारकर रखने की कुशलता ही शैली है। शैली पर लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव रहता है। अतः शैली भिन्न–भिन्न प्रकार की होती है। वर्गीकरण में निश्चितता एवं स्पष्टता नहीं रहती है। डॉ श्याम वर्मा को उद्‌घृत करते हुए करूणा उमरे ने शैली को वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक, विश्लेषणात्मक एवं संकेतात्मक चार भागों में विभाजित किया है।[107] डॉ रामप्यारे तिवारी वर्णनात्मक, विचारात्मक, संवादात्मक, व्यंग्यात्मक एवं भावात्मक, पूर्वदीप्ति या स्मरण शैली, नाटकीय शैली आदि शैली रूप भी स्वीकार करते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में मुख्यतः वर्णनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है परन्तु अन्य शैली रूप भी स्थान–स्थान पर प्रयुक्त हुए हैं जिनका विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है।

(1) वर्णनात्मक शैली– सिद्धान्ततः घटनाओं का वर्णन, पात्रों का चरित्र चित्रण या पात्रों के कार्यों का उद्‌घाटन व वातावरण चित्रण करना वर्णनात्मक शैली का कार्य होता है। स्थान, पात्र एवं वस्तुओं का यथातथ्य वर्णन इस शैली में होता है। घटनाओं, कार्यों और परिस्थितियों के साथ–साथ चरित्रों का वर्णन एवं वातावरण का चित्रण भी इस शैली का प्रमुख कार्य होता है। शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में घटनाओं, परिस्थितियों, पात्रों, स्थानों एवं प्रकृति चित्रणों का मनोरम एवं रोचक वर्णन किया है। स्थानवर्णन में सजीवता की दृष्टि से वहाँ की सम्पूर्णता को दर्शाता है पात्रों के बाह्य एवं आन्तरिक गुणों का जीवन्त चरित्रोद्‌घाटन करते समय भी वर्णन का सहारा लिया है। वस्तुतः घटना प्रवाह में ही चरित्रों एवं पात्रों का चित्रण जीवन्त हो उठा है। वर्णनात्मक शैली में ही चित्रात्मकता, बिम्बात्मकता व्यंग्यात्मकता का निदर्शन इस वर्णन को सजीवता प्रदान करता है। कुमार विषमशील (आदित्य) एवं षोडास के मध्य संघर्ष का वर्णन कितना प्रभावी हुआ है– "द्वन्द्व का श्री गणेश हुआ। सारी रंग–भूमि स्तब्ध भाव से देखने लगी। आदित्य एवं षोडास का द्वन्द्व कौतूहल तथा उत्साह के साथ सामने आया। आचार्यगण, दर्शकगण, छात्रगण सभी धड़कते हृदय से इस अद्‌भुत द्वन्द्व को देखने लगे। दोनों की रण कला अपूर्व थी। दोनों का कौशल विस्मयकारी था। ऐसा लगा कि अनन्त आकाश में मण्डलाकार रूप में मेघ के टुकड़े एकत्र हो गए हैं और उनके मध्य में विद्युत का ज्योतिर्मयी नर्तन कड़कनाद के साथ चल रहा है। कभी ऐसा लगता कि द्वितीया के चाँद आपस में टकरा रहे है और टकराने से स्फुलिंग उत्पन्न होकर तारों के रूप में चतुर्दिक फैल रहे हैं।"[109] स्थान एवं प्रकृति वर्णन में भी चित्रमयी वर्णन देखने को मिल जाता है। – "वे धीरे–धीरे डल झील के पास पहुँच गए। कमल की लताओं में कलियाँ आ गई थी। ऊपर नीला आकाश, नीचे स्वच्छ जल का विशाल सर.......कमल दलों से शोभित तीन दिशाओं में पहाड़ियाँ। यही तो महापद्यसर का छोटा रूप है। यह डल झील है या दल झील, कमल दल की झील.......कश्मीर की राजतरंगों की साक्षी।"[110] शत्रुघ्न जी ने उपन्यासों में ऐसे अनेक वर्णनात्मक दृश्य ऐतिहासिक स्थलों, पात्रों, घटनाओं से सम्बद्ध चित्रमयी बिम्ब प्रस्तुत किए हैं।

(2) व्याख्यात्मक शैली– शत्रुघ्न प्रसाद जी ने अपने उपन्यासों में भारतीय दर्शन, प्राचीन जीवन एवं पात्रों के चित्रण में व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। पात्र कहीं–कहीं अपने मुख से अपनी व्याख्या करते हैं तो कही दूसरे पात्र के द्वारा चरित्रों के व्यक्तित्व की व्याख्या अभिव्यक्त की गई है। लोई के पिता कबीर के बारे में कहते हैं। "लोई की माँ! कोई कहता है कि ये पिछले जन्म के जोगी हैं। कोई कहता है बुद्ध के अवतार हैं। कोई कहता हैं कि राम के भक्त हैं। बड़े–बड़े साधु–फकीर इनके पास आते हैं"[111] 'कश्मीर की बेटी' में कोटा देवी का चरित्र भी इसी तरह व्याख्यायित होता है। "सामन्त रामचन्द्र को स्मरण आया कि पुत्री कोटा के लिए व्याकरण ग्रन्थ प्राप्त करना है। पुत्री कोटा में अध्ययन की विशेष रूचि दिखाई पड़ रही हैं।..........जब–तब वह सैनिकों का शस्त्राभ्यास देखने के लिए उतावली हो

जाती है। वह खड्ग भी उठा लेती है। ग्रन्थ और खड्ग दोनों के लिए आकर्षण विचित्र हैं।"[112] अनेक प्रसंगों में भारतीय संस्कृति, भारतवर्ष, आर्यावर्त, भारतीय चिंतन आदि की व्याख्या की गई है। आचार्य कालक ने स्वस्तिवाचन के साथ प्रवचन आरम्भ किया।......."आस्तिकाय द्रव्य दो प्रकार के होते हैं – जीव और अजीव। जीव चेतन द्रव्य है। इसे आत्मा भी कहा जाता है। चैतन्य जीव का अनिवार्य लक्षण है। चैतन्य के अभाव में जीव की कल्पना नहीं की जा सकती है। यह जीव नित्य हैं परन्तु शरीर नाशवान है। जीव अरूप है, शरीर रूपवान है।"[113] शत्रुघ्न जी ने पात्रों के लिए, जीवन दर्शन प्रस्तुत करने के लिए, प्राचीन भारत की महत्ता स्पष्ट करने के लिए व्याख्यात्मक भाषा शैली का प्रयोग बड़ी ही सहजता एवं स्वाभाविकता के साथ किया है।

(3) विचारात्मक शैली– शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक परिस्थितियों तथा ऐतिहासिक युगों से सम्बद्ध राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक स्थितियों एवं समस्याओं को विचारात्मक शैली में अभिव्यक्त हुआ है। विचारों का प्रतिपादन प्रश्नात्मक शैली में हुआ है। ये कैसा कालचक्र है, ये क्या हो गया, ऐसा कैसे हो गया आदि कथनों में भी विचार या चिंतन व्यक्त हुआ है साथ ही समस्या या जीवन सम्बन्धी स्थितियों पर विचार भी व्यक्त किए गए है। विवेच्य उपन्यासों में पात्रों की जीवन–दशा पर भी विचार अभिव्यक्त किया गया है। विचारात्मक वर्णनों की अधिकता से ये उपन्यास विचार प्रधान भी कहे जा सकते हैं। ऐसी शैली के अनेक उदाहरण मिलते हैं। एक उदाहरण हेमू के विचारों में देखा जा सकता है– "हेमू सोचता हुआ लौट रहा था कि छोटे सेठ कैसे द्वन्द्व में पड़ गए हैं। मंझधार में किनारा दीखता है, और छुप जाता है। इन्हें स्नेहपूर्ण सहयोग चाहिए। पुरोहित और परिवार दोनों के बहिष्कार के कारण उग्र प्रतिक्रिया हो सकती है।..........ऐसा क्यों हो जाता है? धर्म बदलने से हम अपने देश के विरूद्ध क्यों हो जाएंगे। हम गाँव–नगर, मन्दिर–मठ, कलामूर्तियों का विनाश क्यों करेंगे? यह उग्र प्रतिक्रिया है या कट्टर मजहबी बनने का भयानक प्रदर्शन हैं। .... सोहन लाल सोच रहे थे– सन्त जी का बेटा तो अद्भुत है।.......काश मोहन रहता तो दोनों मिलकर लक्ष्मी भवन की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा देते।" हेमू तीर्थ यात्रियों की बातचीत सुनकर विचार करने लगा कि जैसे बुनकर धागों को जोड़ता है, उसी तरह कबीरदास ने सबको जोड़ने का प्रयत्न किया है। जात–पांत और ऊँच–नीच की भावना की निदा की है। तभी तो सबको भक्ति–भजन करने को अधिकार मिला है। सचमुच वे महान् थे।"[114]

4. विश्लेषणात्मक शैली– पात्रों के आन्तरिक मनोभावों को दर्शाने वाली भाषा विश्लेषणात्मक कहलाती है। इस शैली में पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत किया जाता है। पात्रों के अन्तस्तल तक पहुँच कर पात्र का द्वन्द्व उभारा जाता है। इस शैली को मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणवादी, बौद्धिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि नाम भी दिए जाते हैं। यह शैली अनुभूति की सच्चाई, औत्सुक्य वृत्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण, बौद्धिकता की तर्कसंगत व्याख्या करती है। शत्रुघ्न प्रसाद

ने अनेक प्रसंगों में पात्रों के मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए उनके अन्तर्द्वन्द्वों का तार्किक निरूपण किया है। अकबर के हरम के दृश्यों में यह विश्लेषण स्पष्ट दिखाई पड़ता है।....."रूकैया बेगम ने अपने महल की अटारी पर चिलमन से झाँककर देखा कि उसके जवाँ मर्द शहंशाह शौहर घोड़े पर सवार होकर फौज के साथ आगे बढ़ रहे हैं। सोचा– ये फतहयाब लड़ाके हैं या हुस्न परस्त या इल्मुन्निसा के चाहक?.........उधर जोधाबाई का खानदान मुगल दरबार पर छा गया है। यह क्या मुनासिब है। मैं पहली खानदानी बेगम हूँ।........क्या मुगल हरमसरा में इन नई बेगमों की वजह से मेरा वजूद !! नहीं, नहीं !!! और वह बेचैन हो गई।. ......जोधाबाई अपने महल में करवट पर करवट बदल रही थी। इतना अपमान! सिसोदिया राणा ने आमेर के राजवंश का इतना अपमान किया!! वह एक विधर्मी म्लेच्छ के हरम में भेज दी गई है।.......उधर मेवाड़ में प्रतिष्ठा और मर्यादा के लिए अग्निस्नान–जौहर होता है।..... कछवाहा राजकुमारी का शाहीमहल में बेगम बनना उन्हें अनुचित लगा। यह अधर्म है ! नहीं, नहीं, वह महारानी है। बड़ी बेगम है।....पर सलीम क्षत्रिय कुल का नहीं रहा। हिन्दू नहीं रहा। वह मुगल शहजादा है।"[115] ऐसे अनेक चरित्रों का अन्तर्द्वन्द्व एवं आन्तरिक चित्रण विश्लेषणात्मक पद्धति में स्पष्ट हुआ है।

(5) संवादात्मक एवं नाटकीय शैली– संवादों के माध्यम से पात्रों के चरित्र का विश्लेषण एवं गति दर्शायी जाती है। इस वार्तालाप क्रम में नाटकीय, संवादात्मक एवं संलाप शैली का प्रयोग लक्षित होता है। रोचकता एवं गतिशीलता की दृष्टि से संवादों का प्रयोग अपेक्षित रहता है। उपन्यास को नाटकीय आस्वादयुक्त बनाता है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में यह शैली पात्रों के विवेचनात्मक एवं विचारात्मक परिपेक्ष्य में प्रयुक्त की है। कई लम्बे–लम्बे संवाद देखने को मिलते है। संवादात्मक शैली का उदाहरण द्रष्टव्य है।–

"प्रकृति में शक्ति की अनुभूति देवत्व की अनुभूति है, कात्यायनी।"

"हमारा जीवन प्रतिक्षण प्रकृति से जुड़ा हुआ है।...यह प्रकृतियाँ के समान है।"

"हाँ कात्यायनी ! प्रकृति प्रिया भी है।"

"यह क्या कह रहे है?"

प्रकृति की सुन्दरता, कोमलता और सरसता प्रिया में ही दीख पड़ती है।...........स्त्री प्रकृति की रम्य रचना है।"

"और पुरूष?"

"प्रकृति प्रिया का प्रणयी।"[116]

(6) हास्य– व्यंगयात्मक शैली– हास्य और व्यंग्य भाषा को अभिव्यंजना एवं सरसता प्रदान करते हैं। कई प्रसंगों में परन्तु अपेक्षाकृत कम ही प्रसंगों में इस शैली का प्रयोग दिखाई देता है। महरूख–तानसेन संवाद में बड़ा व्यंग्य है।[117] "महरूख ने कहा– अब आप चन्द्रमुख लग रहे हैं।"

"यह सब कहाँ से सीख लेती हो?"

'काफिर के साथ उठना–बैठना जो हो रहा है।'

हाँ, जी ! हिन्दू हूँ, ब्राह्मण हूँ, इसलिए काफिर हूँ।

नहीं जी! काफिर का दूसरे मायने माशूक भी होता है। शेरो शायरी में।.........."महरूख हम दोनों के बीच बड़ी दीवार है।" "जब बादशाह हिन्दू नाजनीन से शादी कर सकते हैं तो क्या मुझे हिन्दू नौजवान से शादी नहीं करने देंगे? महरूख ने सवाल किया।"[117]

(7) भावात्मक शैली– भावों का उत्कर्ष एवं प्रवाह दर्शाने में इस शैली का प्रयोग किया जाता है। शत्रुघ्न प्रसाद ने ऐसी मार्मिक घटनाओं एवं प्रसंगों का उद्घाटन किया है कि जहाँ मानवीय संवेदना आँसू बहाती है। ऐसी मार्मिक परिस्थितियों या चरित्रों के जीवन की दयनीय अवस्था के चित्रण में भावात्मक शैली प्रयुक्त हुई है। भावात्मक बहक का एक सुन्दर उदाहरण जेबु के चरित्र में देखा जा सकता है। "जेबुन्निसा पलंग पर लेट गयी। बन्द पलकों में वह गुलशन..........लाहौर का वह गुलशन झलक उठा। लाहौर के हाकिम खाँ साहब गुलशन की चहार दीवारी का मुआयना कर रहे थे। मैं उड़ती हुई तितली को देख रही थी। मैं गुनगुना रही थी।......वे इधर ही देख रहे थे। मैंने अन्दाज कर लिया था। जब मैंने उनकी ओर देखा, उनकी नजरें झुक गयी। वे रूक नहीं सकें मेरी आँखे उन्हें ढूँढ़ रही थी। कान उनके अल्फाज सुनना चाह रहे थे।.......उनका वह शरमान गुदगुदा गया। लगा कि वह खुद गजल बन गई है।.......वे पास आयें और इस गजल को तरन्नुम में सुना दें। मैं भी गजल सुना दूँ और वे बेसुध हो जायें। मैंने महसूस किया कि उनकी खूबसूरत शख्सियत; चेहरे का नूर, निगाहों का भोलापन और नाजनीन–सी शर्मो हया.....गजल के एक–एक शेर है।"[118]

(8) उपदेशात्मक शैली– शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में जीवन दर्शन, दार्शनिक चेतना, आध्यात्मिक एवं भक्ति चिंतन के अवसरों पर उपदेशात्मक शैली का प्रयोग किया है। राष्ट्र–भक्ति या आत्मबलिदान के लिए भी कहीं–कहीं इस रीति का प्रयोग देखने को मिलता है। उपदेशात्मकता का एक दृश्य देखा जा सकता है। साधु बोल रहा था– "शिव आदि पुरूष हैं। वह अप्रकट है। प्रकट भी हैं। शिव ही सृष्टि के सृष्टा हैं। पालक है। संहारक हैं।......वे अनादि हैं। अनन्त हैं। उत्तर से दक्षिण पूज्य हैं। उनकी सृष्टि में कोई छोटा या कोई बड़ा नहीं है।"[119]

(9) पूर्व दीप्ति व स्मरणात्मक शैली– पूर्व घटना या प्रसंगों को याद करते हुए चित्र को उपस्थित करना स्मरण, स्वप्न या संस्मरण कहलाता है। इस शैली को पूर्व दीप्ति शैली कहा जाता है। शत्रुघ्न प्रसाद के पात्र अनेक स्थलों पर पूर्व घटित प्रसंग को आगे जाकर स्मरण करते है। जीवन भी संगति जोड़ने का प्रयास करते हैं। ऐसे अनेक प्रसंग देखे जा सकते हैं।...........''कबीर ने मुड़कर देखा। रैदास जी जा रहे हैं।....मैं अभी तक यहीं हूँ। मठ की पूजा में बँधना नहीं हैं।.......उन्होंने नहीं बाँधा।......वह एक सुबह मुँह–अंधेरे आ गया था।....दूर से कई

बार देखा था। नजदीक से देखने का मन था। कुछ सुनने की इच्छा थी। दूर से कुछ सुना था।..........अन्दर से बेचैन हो गया।..........बापू डाँटते। माँ प्यार करती। अपनी बेचैनी छिपाए इधर आ जाने का मौका ढूँढ़ता। मुहल्ले–टोले में किस्म–किस्म के साधु–फकीर आते। उनके चेहरे–मोहरे अजीब होते। नजदीक जाकर सुनता था। दिल नहीं भरता।..........पंडित जी की बात सुनकर अच्छा लगा। तो रामानंदजी जात को नहीं, आदमियत को पसंद करते हैं।"[120]

(10) आत्मकथात्मक शैली– शत्रुघ्न प्रसाद के अनेक पात्र अपनी मनोभावनाएँ स्वयं अपने से ही व्यक्त करते है। अपनी पूर्व घटित परिस्थितियों का उद्‌घाटन करते है। ऐसे अवसरों पर प्रयुक्त आत्मकथन उनके चरित्र को, उनके जीवन संघर्ष को, उनके पूर्वकाल को अभिव्यक्त करते हैं। कबीर के जीवन का एक प्रसंग इस शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है।– "मैं सीढ़ी पर लेट गया। गुरू रामानन्द के चरन मेरे बदन को छू गए। उन्होंने नीचे देखा। मेरी पलकें बन्द थी। खुल गयीं। वे मुस्करा रहे थे। बोल उठे थे, "राम का नाम लो, बच्चा ! उठो, उजाला हो रहा है।" उनके बोल में कितनी मिठास थी। कितना अपनापन था।"[121]

शत्रुघ्न प्रसाद ने मुख्यतः वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। संवादात्मक, विचार प्रधान एवं विश्लेषणात्मक रीति रोचकता एवं प्रसंगानुकूलता की दृष्टि से प्रयुक्त हुई है। रोचक, सरस, प्रवाह पूर्ण शैली का प्रयोग उपन्यासों को श्रेष्ठ शिल्प प्रदान करता हैं।

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों का कथ्य राष्ट्रीय–सांस्कृतिक महत्त्व को प्रस्तुत करता है और वर्णनात्मक शिल्प इस कथ्य को प्रवाह पूर्ण एवं प्रभावीशाली बना देता है। समीक्षक सत्यपाल चुध ने 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' के बारे में लिखा था कि– "लेखक की भाषा में ऐतिहासिक वातावरण के विधान की क्षमता भी है और पात्र–प्रसंग के अनुकूल परिवर्तन की भी। पात्रों के अन्तरंग चित्रण के परिचायक परोक्ष अन्तर्विवादों का निर्वाह भी यह कर सकी है। यह उपन्यास लेखक के पर्याप्त अध्ययन, अनुसंधान, परिश्रम, सुलझी दृष्टि एवं परिकल्पना पूर्ण सर्जना का सुफल है। हेमचन्द्र के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का राष्ट्रीय दृष्टि से सम्पन्न प्रामाणिक एवं गरिमापूर्ण पुनस्सर्जन स्वयं में इस उपन्यास की उपलब्धि है।"[122] कथ्य और शिल्प की यह उत्तम कुशलता उनके सभी उपन्यासों में पायी जाती है। जगदीश तोमर ने लिखा है कि– "डॉ प्रसाद एक ध्येयनिष्ठ साहित्य सेवी है किन्तु उनका ध्येयवाद उनकी किस्सागोई को कहीं बाधित नहीं करता और न ही उसे नीरस अथवा बोझिल बनाता है। वे अपनी पूरी कथा बड़ी मोहकता और सुरूचि के साथ कहते हैं। उनके पात्र अपने संस्कारों एवं वृत्तियों को सहज स्वाभाविक रूप में जीते हैं। डॉ प्रसाद उन्हें तथा उनसे जुड़ी स्थितियों को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित करते हैं।"[123] भाषा का सजीव, मनोहारी, भावप्रवण रूप शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। श्री रंजन सूरिदेव ने लिखा है कि– "भाषा एवं रचना शैली की दृष्टि से यह कृति उपन्यास शिल्प का विकसित रूप आयत्त करता है। वर्णनात्मक शैली में मनोविज्ञान के समावेश के कारण वर्णन, चित्रण, संकेत, संवाद, देश, काल, परिस्थिति तथा

वातावरण के समन्वय से यथाप्रस्तुत पात्र पाठकों के समक्ष सहज रूप से सरलता के साथ प्रस्तुत हैं।"[124]

निष्कर्षतः शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में राष्ट्रीय गौरव की प्रतिष्ठा का ध्येय वर्णनात्मक मनोहारी शैली में प्रस्तुत है। कथ्य एवं शिल्प के सौन्दर्य परक सम्मिलन के उत्कृष्ट उदाहरण है। भाव एवं कला का सुन्दर समन्वय विशिष्ट उपलब्धि है।

सन्दर्भ सूचीः–

1. हिन्दी उपन्यासः सृजन एवं सिद्धान्त– नरेन्द्र कोहली, पेज–28
2. वही, पेज–37
3. वही, पेज–61
4. वही, पेज–193
5. वही, पेज–201
6. हिन्दी साहित्य कोश– धीरेन्द्र वर्मा, पेज– 144
7. वृहद् हिन्दी कोश– कालिका प्रसाद, पेज– 212, 1130
8. नालन्दा विशाल शब्द सागर– सम्पादक मण्डल, पेज– 195,1344
9. हिन्दी शब्द कोश– हरदेव बाहरी, पेज– 140, 770
10. समान्तर कोश– अरविन्द कुमार, पेज– 240, 292, 223
11. भाषा–परिचय– हिन्दी विशेषांक– सितम्बर–2016– ममता शर्मा, पेज– 64, 65
12. हिन्दी उपन्यास शिल्पः बदलते परिप्रेक्ष्य– डॉ प्रेम भटनागर, पेज– 28, 14
13. वही, पेज–12
14. वही, पेज– 30, 31
15. साहित्य का श्रेय एवं प्रेय– जैनेन्द्र, पेज– 355, 370
16. हजारी प्रसाद द्विवेदी– विश्वनाथ, पेज– 40
17. हिन्दी साहित्य कोश– धीरेन्द्र वर्मा, पेज– 199, 200
18. उपन्यास का लोकतन्त्र– मैनेजर पाण्डेय, पेज– 53
19. उपन्यास की संरचना– गोपालराय, पेज– 9
20. यशपाल और मानिक बंदोपाध्याय– सदाशिव द्विवेदी, पेज– 107, 108
21. हिन्दी साहित्य कोश– धीरेन्द्र वर्मा, पेज– 202
22. भाषा परिचय– हिन्दी विशेषांक– सितम्बर–2016– ममता शर्मा, पेज– 66
23. साहित्यिक विधाएँ– शशिभूषण सिंहल, पेज– 32
24. हमारा दृष्टिकोण– शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व– 2014 सं.– मधुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ, पेज– 3
25. वही, पेज– 58
26. सिद्धियों का खण्डहर– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 233, 256
27. साहित्यिक निबन्ध– दिनकर की काव्यकला– शान्तिस्वरूप गुप्त, पेज– 612
28. शिप्रा साक्षी है– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 256
29. हमारा दृष्टिकोण– शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व–2004, पेज– 7, 8
30. हेमचन्द्र विक्रमादित्य– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 245, 311, 326, 347

31. हमारा दृष्टिकोण– शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व–2004, पेज– 14
32. सुनो भाई साधो– शत्रुघ्न प्रसाद भूमिका
33. वही, पेज– 232, 233, 250
34. तुंगभद्रा पर सूर्योदय– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 21, 42, 59, 95, 120, 165, 166, 176, 273, 274, 301, 302, 304
35. हमारा दृष्टिकोण– शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व– 2004, पेज– 21
36. वहीं, पेज– 19
37. समकालीन भारतीय साहित्य– जुलाई–अगस्त–2003, पेज–161, 162
38. कश्मीर की बेटी– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 101
39. वही, पेज– 148
40. वही, पेज– 11, 12, 22, 23, 30, 36, 57, 81, 127, 206, 205, 222, 256, 281, 297, 303, 310, 347
41. हमारा दृष्टिकोण– शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व–2004, पेज– 24
42. सदानीरा– मई–जुलाई–2015, सं.– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 11
43. अरावली का मुक्त शिखर– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 7, 8, 9, 18, 20, 21, 24, 36, 54, 59, 76, 87, 98, 109, 121, 126, 129, 130, 147, 155, 189, 185, 207, 226
44. सदानीरा– फरवरी–अप्रैल–2017 सं.– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 58
45. सदानीरा– मई–जुलाई–2015, सं.– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 10
46. सरस्वती–सदानीरा– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 5
47. सदानीरा– जनवरी–मार्च–2004– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज–46
48. वहीं, पेज– 46
49. सदानीरा– नवम्बर–जनवरी–2016, शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 56
50. सदानीरा– अगस्त–अक्टूबर–2016, शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 57
51. सरस्वती–सदानीरा– शत्रुघ्न प्रसाद, भूमिका
52. सरस्वती–सदानीरा– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 19, 23, 29, 35, 131, 184, 195, 223, 227, 276, 279
53. सदानीरा– फरवरी–अप्रैल–2016, सं.– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 65
54. प्राचीन भारत का इतिहास– शिवकुमार गुप्त– प्राक्कथन, पेज 1, 2
55. प्रतिनिधि निबंध संग्रह– हेतु भारद्वाज, पेज– 71
56. साहित्यिक निबन्ध– रेणु वर्मा , पेज– 277
57. उपन्यास और लोकतन्त्र– मैनेजर पाण्डेय, पेज– 16
58. प्रतिनिधि निबन्ध संग्रह– हेतु भारद्वाज, पेज– 71
59. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना– डॉ राजेशरान, पेज– 3

60. प्रतिनिधि निबन्ध संग्रह– हेतु भारद्वाज, पेज– 26
61. तुंगभद्रा पर सूर्योदय– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 304
62. सरस्वती–सदानीरा– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 275
63. शिप्रा साक्षी है– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 256
64. तुंगभद्रा पर सूर्योदय– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 166
65. आज– 4फरवरी–2005 पटना, रामकुमार निराला की शत्रुघ्न प्रसाद से बातचीत, पेज–12
66. शिप्रा साक्षी है– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 20
67. सदानीरा– फरवरी–अप्रैल–2017, सं.– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज–60
68. सरस्वती–सदानीरा– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 201
69. समीक्षा– अक्टूबर–दिसम्बर–2005, पेज– 25
70. सदानीरा – फरवरी–अप्रैल–2016 शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 65
71. साहित्य विधाएँ– शशिभूषण सिंहल, पेज– 25
72. सदानीरा– अगस्त–अक्टूबर–2016 –शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 53
73. साहित्यिक निबन्ध– डॉ रेणु वर्मा, पेज– 289, 290
74. वहीं, पेज– 291
75. हिन्दी उपन्यास एवं उपन्यासकार– हेतु भारद्वाज, पेज– 37
76. उपन्यास और लोकतन्त्र– मैनेजर पाण्डेय, पेज– 16
77. मानक हिन्दी कोश– रामचन्द्र वर्मा, पेज– 232
78. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कृतित्व का शैली वैज्ञानिक अध्ययन– डॉ लक्ष्मीलाल वैरागी, पेज– 1
79. हिन्दी उपन्यास शिल्पः बदलते परिपेक्ष्य– डॉ प्रेम भटनागर, पेज– 31, 32
80. वही, पेज– 14
81. वही, पेज– 38, 40, 47, 52, 58, 59, 60
82. उपन्यास की संरचना– गोपाल राय, पेज– 70
83. वही, पेज– 108, 110
84. साहित्यिक निबन्ध– डॉ शान्तिस्वरूप, पेज– 296
85. हिन्दी साहित्य कोश– धीरेन्द्र वर्मा, पेज– 189, 142, 143
86. हमारा दृष्टिकोण– शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व–2004, पेज– 20, 21
87. समकालीन भारतीय साहित्य– जुलाई–अगस्त–2003, पेज– 162
88. सदानीरा– फरवरी–अप्रैल–2017, शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 58
89. इतिहास दृष्टि और ऐतिहासिक उपन्यास– जार्ज लूकाच, अनुवादक– कर्ण सिंह चौहान, पेज– 41

90. साहित्यिक निबन्ध– रेणु वर्मा, पेज– 277
91. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ– शशिभूषण सिंहल, पेज– 8
92. शहजादा दाराशिकोहः दहशत का दंश– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 56, 7
93. अरावली का मुक्त शिखर– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 20, 39, 43, 59
94. सरस्वती–सदानीरा– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 183, 195
95. हिन्दी साहित्य कोश– धीरेन्द्र वर्मा, पेज– 144
96. सरस्वती–सदानीरा– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 7, 13, 35, 115, 206, 226, 270
97. शिप्रा साक्षी है– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 14, 59, 60
98. सिद्धियों का खण्डहर– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 83, 188, 191, 256
99. शिप्रा साक्षी है– शत्रुघ्न प्रसाद पेज– 63, 85, 5
100. सुनो भाई साधो– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 152, 31, 67
101. शहजादा दाराशिकोहः दहशत का दंश– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 15, 18, 43
102. सिद्धियों का खण्डहर– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 1, 20, 21, 126, 140
103. शिप्रा साक्षी है– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 56, 95
104. सुनो भाई साधो– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 32, 176, 36
105. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कृतित्व का शैली वैज्ञानिक अध्ययन– डॉ लक्ष्मीलाल वैरागी, पेज– 11
106. वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों का पुनर्मूल्यांकन– डॉ रामप्यारे तिवारी– पेज– 327
107. भगवती चरण वर्मा का गद्य–साहित्य– डॉ करूणा उमरे, पेज– 254
108. वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों का पुनर्मूल्यांकन– डॉ रामप्यारे तिवारी, पेज– 327
109. शिप्रा साक्षी है– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 137
110. कश्मीर की बेटी– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 170
111. सुनो भाई साधो– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 162
112. कश्मीर की बेटी– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 13
113. शिप्रा साक्षी है– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 30
114. हेमचन्द्र–विक्रमादित्य– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 110, 113, 25
115. अरावली का मुक्त शिखर– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 52, 53
116. सरस्वती सदानीरा– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 147
117. अरावली का मुक्त शिखर– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 95
118. शहजादा दाराशिरोहः दहशत का दंश– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 129, 130
119. तुंगभद्रा पर सूर्योदय– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 42

120. सुनो भाई साधो– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 3
121. सुनो भाई साधो– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 4
122. हमारा दृष्टिकोण– शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व 2004 सं.–मथुरेश नन्दन कुल श्रेष्ठ, पेज–13
123. साक्षात्कार– जून–जुलाई–2010 सं.– त्रिभुवननाथ शुक्ल, पेज–110
124. सदानीरा– नवम्बर–जनवरी–2016, सं.– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 56

चतुर्थ अध्याय

शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास एवं कल्पना

चतुर्थ अध्याय

शत्रुध्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास एवं कल्पना

ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास एवं कल्पना के मेल से निर्मित कलात्मक सृजन है। यह सृजन इतिहास की वैज्ञानिक तथ्यपरकता एवं उपन्यास की कल्पनापरकता के कुशल संयोजन पर आधृत होता है। इतिहासपरक मूल कथ्य एवं कल्पना की सजीवता न का मेल इतिहास को संवेदनाशीलता, रोचकता एवं जीवन्तता प्रदान करता है। इतिहास के गहन एवं सम्यक अध्ययन–मनन के साथ उपन्यास–कला का समावेश करने पर ऐतिहासिक उपन्यास की रचना होती है, जिसमें इतिहास के यथार्थ को काल्पनिक रूप देकर वर्तमान के लिए ग्राह्य बनाने का प्रयास होता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास में कल्पना का योग देकर अपनी रचना को जीवन्तता एवं प्राणवत्ता प्रदान कर देता है जिससे इतिहास रूपी पाषाण सजीव मूर्ति में साकार होकर प्राणमय लगने लगता है। ऐतिहासिक उपन्यास केवल इतिहास को अभिव्यक्त करने का माध्यम या ढंग नहीं है बल्कि अतीत कालीन जीवन को विविधता, सूक्ष्मता, संवेदनशीलता एवं मार्मिकता के साथ अभिव्यंजित करने का ऐसा विधान है, जिसमें इतिहास का यथार्थ एवं अनुभूतिपरक कल्पना का उचित समावेश होता है। ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास एवं कल्पना के समुचित योग एवं समन्वय की महत्ता को समझने के दृष्टिकोण से विवेच्य अध्याय में इतिहास, कल्पना तथा इतिहास एवं कल्पना के समन्वय का अध्ययन अपेक्षानुरूप किया जा रहा है।

4.1 इतिहास– इतिहास शब्द का अर्थ इतिवृत्त, तवारीख, पुराकथा, पुरावृत्त, वृत्तान्त आदि के रूप में ज्ञात होता है।[1] वस्तुतः इतिहास बीते हुए काल का काल–क्रमानुसार व्यवस्थित लेखा–जोखा है। इतिहास तथ्यपरक होता है। तथ्य का अर्थ होता है– कार्य, घटना, प्रमाण, वास्तविकता, सत्य आदि।[2] अर्थात् घटनाओं की सत्यता के आधार पर लिखा गया इतिवृत्त इतिहास होता है। इतिहास शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है– इति (इस प्रकार से) + ह (निश्चय) + आस (था) अर्थात अतीत की निश्चित रूप से होने वाली घटना का नाम इतिहास है।[3] इतिहास के अन्तर्गत व्यक्ति, काल, स्थान एवं घटनाओं को प्रमुख तत्व के रूप में मान्य किया जाता है।[4] इतिहास अतीत की कहानी है। अतीतकाल में जो घटित हुआ उसका विवरण इतिहास प्रदान करता है। यह विवरण तथ्य आधारित या सत्य आधारित होता है। इतिहास के तथ्यों का वर्णन घटना, घटना के कारण एवं कारणों का अनुमान लगाकर किया जाता है। गेरोन्सकी के कथनानुसार "वस्तुपरकता का अर्थ बिना व्यक्तिगत पक्षपात या पूर्वागृह के ऐतिहासिक तथ्यों का प्रयोग करना है।[5] ई. एच कार ने स्पष्ट किया है कि "इतिहास के तथ्य शुद्ध वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकते क्योंकि वे इतिहास के तथ्य तभी बनते है जब इतिहासकार उनको महत्व देता है।....... तथ्यों की वस्तुनिष्ठता नहीं हो सकती, बल्कि सिर्फ सम्बन्धों की

वस्तुनिष्ठता होती है। तथ्यों और उनकी व्याख्या के बीच के सम्बन्ध अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच सम्बन्ध है।[6] कुछ व्यक्ति विश्व–इतिहास में प्रमुख भूमिका निभाते है। ऐतिहासिक घटनाओं को निर्णायक रूप से प्रभावित करते हैं या वे उसके केन्द्र में स्थित होते है। हीगल ने उन्हें विश्व ऐतिहासिक व्यक्ति कहा है।[7] वे व्यक्ति जिन्होंने किसी देश व समाज को गहरे में प्रभावित किया है और व्यवस्था को नवीनता प्रदान करने में निर्णायक भूमिका निभाई है, इतिहास के प्रमुख अंग होते हैं। सम्राट अशोक, विक्रमादित्य, महाराणा प्रताप, महात्मा गाँधी ऐसे ऐतिहासिक पात्र है, जिनका इतिहास में विशिष्ट अध्ययन–मनन–विश्लेषण किया जाता है। कार्लाइल ने भी कहा है– "इतिहास महान् व्यक्तियों की आत्मकथा है।[8] 'काल'–इतिहास का प्रमुख या विशिष्ट अंग है। किसी देश–समाज के लिए यह जानना कि घटना या व्यक्ति जो अतीत के लिए विशिष्ट रहा है– किस समय रहा है तथा वह समय किस तरह की प्रवृत्तियों का रहा है। भारतीयों के प्राचीन लेखन पर प्रश्न–चिह्न इसी आधार पर लगता आया है परन्तु काल–चित्रण ही प्राचीन भारतीय ग्रन्थों को इतिहास की साम्यता प्रदान करता है। प्रो. बार्डर ने कहा है कि "वैदिक काल से आधुनिक काल तक भारतीय इतिहास में तारतम्यता है। अभी भी प्राचीन भारत का इतिहास पांडुलिपियों में भरा पड़ा है।"[9] डॉ नगेन्द्र ने कहा है कि– "अतीत के किसी तथ्य, तत्व एवं प्रवृत्ति के वर्णन, विवरण, विवेचन व विश्लेषण को जो विशेष या कालक्रम की दृष्टि से किया गया है– इतिहास कहा जाता है।"[10] जाह्नसन के अनुसार तिथिक्रम तथा भूगोल इतिहास के नेत्र है......... बिना समय सम्बन्ध के तथ्य ऐतिहासिक नहीं होंगे।[11] डॉ देवकी तिवारी के कथन में समय के साथ इतिहास के स्थान–तत्व का महत्त्व भी स्पष्ट हो जाता है। वे कहते है – "इतिहास की दृष्टि से जीवन का सर्वप्रथम महत्त्व है फिर समय और स्थान का। समय और स्थान दो मूल तत्व हैं जिनके योग से जीवन के विकास की परिधि का मूल्यांकन किया जाता है। इतिहास को समझने के लिए समय का ज्ञान अनिवार्य है।"[12] घटनाएँ किस स्थल पर घटी, इसका भी तथ्यपूर्ण व तर्कसम्मत विश्लेषण आवश्यक होता है; इतिहास लेखन में। जाह्नस के अनुसार इतिहास तथा भूगोल का घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनके अनुसार – "भूगोल के बिना इतिहास का तथा इतिहास के बिना भूगोल दोनों की कल्पना करना असम्भव है।.......... मानव को अपनी भूमिका का अभिनय करने के लिए भूगोल एक रंगमंच प्रस्तुत करता है।"[13] घटनाएँ इतिहास का प्रमुख अंग है। घटनाएँ व्यक्ति, स्थान एवं समय से सम्बद्ध होती है। अतीतकाल की प्रमुख घटनाएँ ही इतिहास का लेखा है। आर. बारजेश्वरी ने लिखा है कि– " इतिहास अतीत की घटनाओं का महत्त्वपूर्ण लेखा तथा अर्थपूर्ण कहानी है जो हमें बताती है कि मनुष्य के साथ क्या घटना घटी तथा क्यों घटी।"[14] शशिभूषण सिंहल ने उद्घृत किया है कि–" इतिहास मानव समाज की विगत घटनाओं अथवा तथ्यों का सतर्क संकलन है।.................... इतिहास मनुष्य, एवं मानवता का सूचक है– प्रकृति–मनुष्य और समाज के मध्य सृष्टि के श्रीगणेश से आज तक द्वन्द्व चलता आया है। इस अनादि अनवरत द्वन्द्व का लेखा–जोखा मानव का इतिहास है।"[15] इतिहास राष्ट्र

के विगत का संचय होता है। अतीत की सम्पूर्ण एवं विविध जानकारी इतिहास से ही उपलब्ध होती है। डॉ राधाकृष्णन ने इसी दृष्टि से इतिहास को 'राष्ट्र की स्मरण–शक्ति' कहा है।[16] विगत के विशिष्ट का अध्ययन इतिहास है। गोविन्द चन्द्र पाण्डेय ने कहा है– "इतिहास का आग्रह आवृत्तिशील सामान्य घटनाओं पर न होकर उन घटनाओं पर होता है जो कि अपूर्व और अद्वितीय होती है .... इतिहास की विषयवस्तु विशेषात्मक होती है, न कि सामान्यात्मक।"[17] इतिहास केवल सूत्र–संचय ही नहीं मूल्य निर्धारक भी है। इतिहासकार का विचार भी यहाँ पर प्रमुखता रखता है। गेरोन्सकी के अनुसार – " इतिहासकार एक मूल्य व्यवस्था को प्राप्त किए बिना न तो इतिहास को स्पष्ट कर सकता है और न इसकी व्याख्या कर सकता है। किसी भी प्रकार का कोई निर्णय देने से पूर्व एक स्वीकृत सत्य संदर्भ सूत्र होना परम आवश्यक है।"[18] सम्पूर्ण अतीत, अपने वास्तविक रूप में इतिहास है। तथ्यनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ इतिहास का समर्थन होता है। उसे प्रामाणिक कहा जाता है। हेनरी जोनसन ने लिखा है– "इतिहास स्वयं विकास का रूप है। और इसलिए यह पूर्णतया नवीन कभी नहीं रहा। इतिहास अन्वेषक के रूप में प्रारम्भ हुआ और अब भी अन्वेषण है। इतिहास ने लेखा–जोखा का रूप धारण कर लिया था और अब भी वह एक लेखा है। इतिहास वह था जो वास्तविकता में घटित हुआ और अब भी वही है। हम सब अतीत के विषय में सोचते हैं इस प्रकार अतीत सदैव से इतिहास का विषय रहा है।"[19] गोर्थ के अनुसार "इतिहास की समय–समय पर पुनः रचना की जानी चाहिए क्यों कि प्रत्येक सन्तति नवीन रूचियों व वस्तुओं को नवीन ढंग से देखती है तथा उनके प्रति नवीन दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ती है।"[20] इतिहास का प्रारम्भिक लेखन राजपुरूषों व विशिष्ट समुदाय तक सीमित रहा परन्तु धीरे–धीरे सामान्य जन को भी समाविष्ट करने की संभावना तलाशी जाने लगी और इतिहास में समग्र मानव जाति को स्थान मिलने लगा। मानव को राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक सभी दृष्टिकोणों से चित्रित किया जाना ही इतिहासकार का अभीष्ट हो गया। रमेश कुन्तल मेघ के अनुसार "इतिहास मानवता का एक उज्ज्वल देवालय है, जहाँ जनता, राजवंश, घटनाएँ, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक संस्थाएँ उनका आदर्श, संस्कृति, रहन–सहन आदि मूर्तिवत स्थान पाते हैं।"[21] अतीत की चेतना को वर्तमान की चेतना से समाविष्ट करना आधुनिक इतिहास की चिन्तनधारा को प्रमुख देन है। अतीत को वर्तमान की दृष्टि से दिखाकर उसे वर्तमान एवं भविष्य के लिए उपादेय बनाना ही इतिहास का श्रेय पक्ष बन गया है। कालिंगवुड अतीत के बारे में कहते हैं कि –"जिस इतिहास का इतिहासकार अध्ययन करता है वह मूर्त अतीत नहीं है, अपितु ऐसा अतीत है जो कुछ अर्थों में वर्तमान में विद्यमान है।"[22] गोविन्दचन्द्र पाण्डेय अधिक स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त करते हैं कि – "इतिहासकार अतीतकाल की घटना के पीछे स्थित विचार को नहीं समझ सकता तो वह अतीत की घटना उसके लिए निरर्थक है। अतः अतीत को वर्तमान की दृष्टि से ही देखा जा सकता है।"[23] अतीत का लेखा ही नहीं, व्याख्या भी है इतिहास। हेनरीपिरेन के अनुसार– इतिहास की रचना का अर्थ है इसे

कहना। इतिहासकार का प्रमुख कर्तव्य अतीत की घटनाओं को प्रकाश में लाना, घटनाओं के परस्पर सम्बन्ध को दिखाना और उसकी व्याख्या करना। इस प्रकार अतीत में स्थित मानव समाजों के विकास का व्याख्यात्मक वर्णन हैं।[24] सामान्य जन भी इतिहास का निर्माण करने में अप्रत्यक्ष ही सही अपनी भूमिका दिखाता है। इतिहास में सबसे प्रभावित वर्ग सामान्य जन ही रहा है। इतिहास की आधुनिक व्याख्या सामान्य जन को दृष्टि में रखकर भी की जाने लगी। वृन्दावन लाल वर्मा कहते है कि –"इतिहास विकास के बड़े क्रम तत्वों की माला है, जिसमें साधारण अज्ञेय जन का भी बहुत हाथ रहता है।"[25] इतिहास का उद्देश्य एवं उपयोगिता केवल अतीत की यथातथ्य व्याख्या करना नहीं है। इतिहास वर्तमान एवं भविष्य के लिए प्रकाश स्तम्भ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अतीत की महत्ता स्पष्ट करते हुए लिखा है– "वर्तमान हमें अन्धा बनाए रखता है, अतीत बीच–बीच में आंख खोलता रहता है। मैं तो समझता हूँ कि जीवन का नित्य स्वरूप दिखलाने वाला दर्पण मनुष्य के पीछे रहता है। आगे तो बराबर खिसकता हुआ दुर्भेद्य परदा रहता है। 'बीती बिसारने वाले' 'आगे की सुधि' रखने का दावा किया करें, परिणाम अशान्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा।"[26] आर. सी. मजूमदार इतिहास लेखन का उद्देश्य सत्यनिष्ठा की दृष्टि से होना मानते हैं। वे कहते हैं – "हमारा उद्देश्य सत्य की मात्र सत्य की खोज होना चाहिए। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए हमें निश्शंक होकर पूर्वाग्रहों तथा पूर्वधारणाओं से मुक्त होकर प्राप्य सम्पूर्ण सामग्री का चिन्तन–मनन करना चाहिए। .... उसका प्रयोग वकील की पक्ष पुष्टि की दृष्टि से नहीं, न्यायाधीश की शोध वृत्ति से होना चाहिए।"[27] के. एम. मुंशी इसे युगीन चित्रण की दृष्टि से देखते हैं। वे कहते हैं– इतिहास का मुख्य लक्ष्य किसी देश के वासियों को युगों–युगों से प्रेरित एवं संगठित करने वाले और उनके जीवन की विभिन्न गतिविधियों को व्यक्त करने वाले मूल्यों की खोज एवं उद्घाटन का कार्य होना चाहिए।"[28] अतः निष्कर्ष रूप में इतिहास तथ्यपरक सत्यनिष्ठ लेखन है। अतीत का काल–क्रमानुसर विवरण है। प्रामाणिक घटनाओं का व्यवस्थित रूप है। इतिहास लेखन की आधुनिक दृष्टि यद्धपि सरस चित्रण की ओर झुकती जा रही है फिर भी तटस्थता की माँग रहती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार–"इतिहास जो जीवन्त मनुष्य के विकास की जीवन कथा होता है, जो काल प्रवाह से नित्य उद्घाटित होते रहने वाली नव–नव घटनाओं और परिस्थितियों के भीतर से मनुष्य की विजय–यात्रा का चित्र उपस्थित करता है और जो काल के परदे पर प्रतिफलित होने वाले नए–नए दृश्यों को हमारे सामने सहज भाव से उद्घाटित करता है।"[29] ऐसा इतिहास लेखन सजीवता और सरसता के साथ अतीतकालीन मानव के संघर्ष की विजय–यात्रा प्रस्तुत करता है। फिर भी तथ्यों का क्रम है ही। ऐतिहासिक उपन्यास भी इतिहासपरक लेखन है। इसमें इतिहास मूल कथा के रूप में विद्यमान रहता है। तथ्यपरकता एवं सत्यनिष्ठता की अपेक्षा यहाँ भी रहती है। ऐसा होने पर इतिहास और उपन्यास का अन्तर नहीं रह जाएगा। औपन्यासिक आस्वाद में बाधा पहुँचेगी। उपन्यासकार का मंतव्य स्पष्ट नहीं हो पाएगा। अतः ऐतिहासिक उपन्यासकार को इतिहास–कथा को

कथा–रस से आप्लावित कर कलात्मक परिपूर्णता के साथ इस रूप में व्यक्त करना चाहिए कि वह वर्तमान जीवन के लिए ग्राह्म बनते हुए मानव–जीवन के लिए सच्चा दर्पण भी बन सके और मार्ग आलोकित करने वाली प्रकाश किरण भी। प्रो.माखन लाल शर्मा का इतिहास को उज्ज्वलता प्रदान करने वाला कथन है कि – "इतिहास प्रकाश जैसा होता है, जो पीछे से आता है और आपको आगे की राह दिखाता है। यह वह प्रकाश नहीं जो आगे से आकर आँखे चौंधियाँ देता है। इसलिए उस इतिहास का पूरा ज्ञान लीजिए। उस इतिहास पर गर्व कीजिए और जिंदगी में आगे बढ़ने के लिए उस इतिहास की मदद लीजिए।"[30] ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास अपने सत्य रूप में उपन्यासकार की संवेदना के साथ अभिव्यक्त होता हुआ ही श्रेयस्कर होता है।

4.2 कल्पना – मानव मन में उपजी वह भावना जो उसे वास्तविक जीवन से परे या वास्तविक जीवन से संदर्भित सोच या सूझ द्वारा निर्मित नव–जीवन का दृश्य उपस्थित कर देती है, कल्पना कहलाती है। कल्पना मानव मन की एक वृत्ति है जो उसे जीवन–यथार्थ से भिन्न जीवन की प्रेरणा देती है। यह कल्पना बालू की भीत भी सिद्ध हो सकती है और संकल्पित व संयमित होने पर सफलता के सोपान निर्मित कर सकती है। विभिन्न शब्दकोशों में कल्पना का अर्थ अनुमान, उद्भावना, नयी बात सोचना, मनगढ़ंत, सूझ, मनोरचना, अटकल, रचना, उपज, ख्याल, कयास, भास, भावना आदि दर्शाया गया है। डॉ० संगीता श्रीवास्तव ने 'हिन्दी शब्दसागर' एवं 'ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' के आधार पर कल्पना का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि – "कल्पना शब्द 'क्लृप' धातु से बना है जिसका अर्थ निर्माण, सृष्टि, रचना या बनाना से लिया जाता है। 'हिन्दी शब्द सागर' के अनुसार कल्पना का अर्थ – एक वस्तु में अन्य वस्तु का आरोप या वह शक्ति जो अन्तकरण में ऐसी वस्तुओं का स्वरूप उपस्थित करती है जो उस समय इन्द्रियों के सम्मुख उपस्थित नहीं होता लिया जाता है। तथा अंग्रेजी में कल्पना का समानार्थी शब्द 'इमेजिनेशन' है जिसका अर्थ है – मन में धारण करना। 'ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' में 'इमेजिनेशन' शब्द के अर्थ दिए गए हैं–

(1) जो वस्तु इन्द्रियों के सम्मुख प्रत्यक्ष नहीं है, उसका मानसिक रूप विधान कल्पना है।

(2) अघटित घटनाओं तथा कार्यों का मानसिकचिंतन

(3) चिंतन में लीन मस्तिष्क अथवा चिंतन, विचार या मत

(4) वह मानसिक शक्ति जिसके द्वारा अप्रत्यक्ष बाह्य पदार्थों के बिम्ब और प्रत्यय निर्मित होते हैं।"[31] अर्थात कल्पना वह मानसिक वृत्ति है जो मानस–पटल पर अज्ञात, अव्यक्त व अप्रत्यक्ष जगत का चित्र उपस्थित करती है। हरदेव बाहरी[32] के अनुसार कल्पना का अर्थ नयी बात सोचना, मन की उपज व एक वस्तु में दूसरी वस्तु का आरोप हैं। रामचन्द्र पाठक[33] ने नये विषय की उद्भावना तथा उपन्यास व चित्र आदि की मन से रचना करना कल्पना का अर्थ बताया है। अरविन्द कुमार[34] ने प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष के ज्ञान को कल्पना कहा है। कालिका

प्रसाद [35] ने कल्पना को मन की वह शक्ति माना है जो परोक्ष विषयों का रूप चित्र उसके सामने ला देती है तथा उनके अनुसार आधुनिक कथा, काव्य, नाटक आदि में प्रयुक्त एक खास किस्म का काल्पनिक काव्यारोपण कल्पना है। धीरेन्द्र वर्मा[36] पूर्व अनुभितियों की पुनर्योजना से अपूर्व की अनुभूति करने की क्रिया या शक्ति को कल्पना कहते हैं। उनके अनुसार वर्तमान का अवगाहन करने वाला प्रत्यक्ष, अतीत का अवगाहन करने वाली स्मृति व अनागत का अवगाहन करने वाली कल्पना होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सृजन–शक्ति का नाम कल्पना है। ऐसी मानसिक क्रिया जो दृश्य जगत का अदृश्य जगत के साथ भावनात्मक सम्बन्ध खोजती है। यह ऐसी असाधारण आन्तरिक प्रक्रिया है जो नवीन एवं अभिनव जगत की सृष्टि करती है। कल्पना का अर्थ उस निर्माणात्मक प्रवृत्ति से हैं जिसके द्वारा किसी भाव, विचार या वस्तु को विशिष्ट विचारात्मक दृष्टि से देखती है और उसे अपनी इच्छानुसार नवीन आकार में प्रस्तुत करती है। हेतु भारद्वाज ने कहा है कि – "कल्पना हमारी उस मानसिक प्रक्रिया की द्योतक है जो अन्तरमन में अनेक चित्र बनाती है और उसका स्वरूप हमारी संदेनाजन्य परिस्थितियों पर निर्मित करती है।"[37]

मानव मन को बिना पंखों के अनेक लोकों में विचरण करवाने वाली मनोवृत्ति कल्पना कहलाती है। वह मन को आनन्दित करने वाली, स्वर्गीय जीवन के दर्शन करवाने वाली वास्तविकता से परे आदर्शमयी दुनिया बसाने वाली व जीवन को सम्पूर्ण सुखमयता की विचारणा प्रदान करने वाली मनः स्थिति होती है। कल्पना बादलों में चमकने वाली बिजली व सरिता में हिलोरें लेती लहरों के समान होती है। यह आयु में क्षणिक परन्तु जीवन–सौन्दर्य में शाश्वत होती है। अभिनव जगत की सृष्टि करती है। जड़ रूप स्थायी जीवन–भूमि में नव–सृजन का बीज अंकुरित करती है। कल्पना स्वप्न भी है और प्रेरणा भी। जीवन को ऊर्जा एवं स्फूर्ति प्रदान करने वाली प्रेरणा कल्पना–प्रसूत ही होती है। कल्पना वर्तमान जीवन की असंतुष्टि का परिणाम होती है। आधारहीन कल्पना मूर्त रूप ग्रहण करने पर सृजन के आयाम बनाती है। कला की प्रतिष्ठा करती है। किसी व्यक्ति की कल्पना कागज पर मूर्त होती है तो महान् कला–कृति की रचना होती है। साहित्य–सर्जन इसी कल्पनात्मक प्रेरणा की देन होता है। किसी साहित्यिक रचना में कल्पना का मूर्तिकरण ही भाव, विचार या बुद्धितत्व के रूप में पहचाना जाता है। कल्पना साहित्यिक प्रतिभा है। जीवन का यथार्थ चित्रण भी कल्पना के माध्यम से ही सम्भव होता है। अतः कल्पना साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है। श्यामसुन्दर दास ने साहित्यालोचन में लिखा है कि– "साहित्य में कल्पना हमेशा ही अनिवार्य तत्व के रूप में ग्रहण की गई है। काव्य के तीन प्रमुख उपादन होते हैं। – बुद्धितत्व, रागात्मक तत्व, कल्पना तत्व अर्थात मन में किसी विषय का चित्र अंकित करने की शक्ति जिसे वह अपनी कृति में प्रदर्शित करके पाठकों के हृदय–चक्षु के सामने भी वैसा ही चित्र उपस्थित करने का प्रयत्न करता है।" [38] ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना का महत्व इसलिए बढ़ जाता है कि इतिहास के प्रामाणिक तथ्यों को कल्पना–शक्ति के द्वारा ही औपन्यासिक कला रूप में परिणत किया

जाता है। ऐतिहासिक घटनाओं एवं ऐतिहासिक व्यक्तियों का चित्रमयी वर्णन एवं वातावरण का मूर्त चित्रण कल्पना द्वारा ही सम्भव होता है। डॉ० भगीरथ मिश्र ने लिखा है कि – "निराकार वस्तुओं और भावों को आकार देना, तथ्य को चित्रमय बनाना, चरित्र या पात्र के व्यक्तित्व को साक्षात् करना, घटना की पृष्ठ भूमि प्रस्तुत करना और भाव को जगाने वाले चित्र अंकित करना कल्पना द्वारा ही सम्भव है।"[39] ऐतिहासिक कल्पना ऐतिहासिक तथ्यों की अभावपूर्ति कर अतीतकालीन मानव जीवन को समग्र रूप में चित्रित करती है। नरेन्द्र कोहली ने लिखा है कि – "सामान्य रूप से कल्पना तथ्यों के अभाव के अर्थ में प्रयुक्त होती है, किन्तु पारिभाषिक रूप में परिचित तथ्यों में अपनी इच्छा अनुसार परिवर्तन की संज्ञा कल्पना है।...... ....कल्पना वह तत्व है जो विकृत इतिहास में से यथार्थ एवं सत्य का अनुसंधान करे। ....औचित्य के अभाव की पूर्ति लेखक अपनी कल्पना से करता है।"[40] ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना के अति महत्वपूर्ण तत्व के रूप में मान्य होने पर भी समुचित प्रयोग की अपेक्षा रहती है। अतिशय कल्पना कृति के ऐतिहासिक महत्व को कम कर सकती है। इतिहास आश्रित कल्पना के लिए विवेक की आवश्यकता होती है। जॉर्ज एलियट के अनुसार – "उपन्यास रचना में ऐतिहासिक कल्पना के दो रूप दिखाई देते है। एक है सत्यनिष्ठ कल्पना और दूसरी है – लोलुप कल्पना । सत्यनिष्ठ ऐतिहासिक कल्पना विवेकशील होती है। वह उपन्यास के लिए आवश्यक और अनावश्यक में अंतर करते हुए संग्रह और त्याग का काम करती है। जबकि लोलुप कल्पना में ऐसा विवेक नहीं होता। वह सब कुछ समेटने की कोशिश करती हैं।[41] ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना द्वारा ही इतिहास को कल्पनात्मक यथार्थवाद के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इतिहास को औपन्यासिक कला रूप प्रदान किया जाता है और पाठकों के लिए शुष्क इतिहास आस्वाद्य बन जाता है। टी. पी. शाजू कल्पना के महत्व को रेखांकित करते लिखते है कि – "इतिहास को उपन्यास का आधार बनाकर जब ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने कलात्मक कार्य में प्रवृत होता है तब वह अनुमानों की अपेक्षा कल्पना पर आधारित सम्भाव्य सत्य को ही प्रश्रय देता है। जैसे कि उपन्यासकार द्वारा मानव स्वभाव, उसके भावलोक और उसकी अन्यान्य विशिष्टताओं पर दृष्टि रखकर इतिहास सत्य के चारों ओर एक ऐसे कथानक की रचना करता है जिससे पाठकों को आस्वादन की एक नई भाव–भूमि प्राप्त हो जाती है।"[42]

निष्कर्षत : कल्पना मानव मन की नई उद्भावना है। एक वस्तु में दूसरी वस्तु का आरोपण कर नई सृष्टि करने वाली शक्ति है। साहित्यिक की सृजनात्मक कुशलता कल्पनात्मक प्रतिभा की ही देन है। इतिहास को सरस, गतिमय, संवेदनात्मक एवं आस्वाद्य रूप प्रदान करने के साथ–साथ औचित्य की पूर्ति में सहायक है। वेदनायुक्त एवं बंधनयुक्त मानव जीवन को आनन्दपूर्ण मुक्तिलोक में चित्रित करके आहत एवं निराशापूर्ण ह्रदयों में आशा एवं स्फूर्ति का संचार करने वाली प्रवृत्ति कल्पना है।

4.3 इतिहास एवं कल्पना का समन्वय –

उपन्यासकार जब इतिहास को अपनी कल्पनात्मक प्रतिभा से औपन्यासिक रूप में अभिव्यक्त करता है तो ऐतिहासिक उपन्यास की रचना होती है। ऐसे उपन्यासों का मूल आधार 'इतिहास' ही होता है, परन्तु बाहरी भव्य रूप कल्पना की सजावट से निखरता है। कल्पना–शक्ति से कृति आकर्षक एवं मनोरंजक बन जाती है। कलात्मक कुशलता यह है कि इतिहास की तथ्यात्मक वैज्ञानिकता को कल्पना के मनोरम भावों के साथ इस रूप में समायोजित किया जाता है कि इतिहास उपन्यास बन जाता है। इतिहास की घटनाएँ व पात्र उपन्यास का मूल ढाँचा निर्मित करता है और पात्रों के मनोगत भाव एवं संवेदना लेखक का कल्पना कौशल होता है। रामलखन शुक्ल ने लिखा है कि– "ऐतिहासिक उपन्यास के लेखक को अपनी कल्पना की आँखों से अतीत के साधारण से चित्र को भी प्राचीनता में रंगकर देखना पड़ता है। जिस किसी वस्तु, दृश्य, क्रिया–व्यापार, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक वातावरण आदि की उसे वर्णना करनी पड़ती है उसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तत्कालीन परिवेश में ही देखना पड़ता है.........................पुरातन को अपनी नूतन दृष्टि से पकड़कर उसे यह आभास देना पड़ता है कि सब पुराना ही है।"[43] ऐतिहासिक उपन्यास में कोरा ऐतिहासिक ज्ञान या इतिहास का सत्यनिष्ठ रूप सफल उपन्यास नहीं दे सकता है। इतिहास का आभास पैदा करना ही उपन्यास कला है। ए. ई. कोपार्ड ने कहा है कि – "औपन्यासिक कला में सत्य महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि सत्य की सनसनी महत्वपूर्ण है।"[44] ऐतिहासिक उपन्यास में सत्य नहीं, सत्य का आभास मात्र होता है तो फिर क्या इतिहास का सत्य सन्देह में नहीं आता है? प्रश्न यह खड़ा होता है कि इतिहास और कल्पना का अनुपात किस मात्रा में है? किस अंश तक कल्पना का उपयोग उचित है? कल्पना या इतिहास प्रयोग की क्या सीमा है? ठीक–ठीक अनुपात निर्धारण में तो कठिनाई है। यह उपन्यासकार की क्षमता व प्रतिभा पर निर्भर है परन्तु समुचित प्रयोग तो अपेक्षित है ही। बिहारी सरण ने ब्रजनन्दन सहाय के उपन्यास 'विस्मृत सम्राट' की भूमिका में लिखा है कि – "साहित्य में रस है, रूचि है और इतिहास शुष्क तथ्य मात्र है। ....उपन्यास में सरसता तथ्यों के साथ नवीन उद्‌भावनाओं के योग से ही उत्पन्न की जा सकती है। अतः उपन्यासकार को अपनी कल्पना से कार्य लेना पड़ता है। किन्तु कल्पना का प्रयोग इस प्रकार होना चाहिए कि उसे तथ्यों से पृथक न किया जा सके।"[45] कल्पना मन की मुक्त उड़ान होती है परन्तु संतुलित एवं संयमित कल्पना ही साहित्य को रस पूर्ण बनाती है। ऐतिहासिक उपन्यासों में तटस्थ एवं निरपेक्ष कल्पना की माँग रहती है जो इतिहास के साथ मिलकर इतिहास जैसी प्रतीत होती है। शशिभूषण सिंहल ने लिखा है कि – "ऐतिहासिक उपन्यास जो संसार रचता है वह सृजनात्मक है भले ही उसमें कल्पना की अधिकता क्यों न हो। ऐतिहासिक उपन्यासों में जीवनोन्मुख कल्पना का प्रयोग होता है।.. .यद्धपि ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना के समावेश की पर्याप्त गुंजाइश होती है फिर भी

देश–काल से अनुशासित होती है। श्रेष्ठ कलात्मक सृष्टा से भी कल्पनात्मक तटस्थता की माँग रहती है।"[46] ऐतिहासिक उपन्यास का मूल आधार इतिहास होने के कारण इतिहास की रक्षा करना या इतिहास के यथार्थ को अभिव्यक्त करना उसका दायित्व बनता है। इतिहास की तोड़–मरोड़ भी पाठक सहन नहीं कर पायेगा तथा इतिहास बोध में बाधा पहुँचेगी। हैनिरिटा मौस्से का मत है कि – "ऐतिहासिक उपन्यासकार को यह अधिकार नहीं दिया जा सकता कि वह इतिहास को लंगड़ा और विकृत बना दे।"[47] सर्व श्री वृन्दावनलाल[48] वर्मा भी इतिहास के साथ खिलवाड़ को अनुचित मानते हैं तथा रांगेय राघव[49] इतिहास को इतिहास की झलक करके देना ही उचित मानते हैं। .... इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि – "जब तक भारतीय इतिहास के भिन्न कालों की सामाजिक स्थिति और संस्कृति का अलग–अलग विशेष रूप से अध्ययन करने वाले और उस सामाजिक स्थिति के सूक्ष्म ब्यौरों की अपनी ऐतिहासिक कल्पना द्वारा उद्भावना करने वाले लेखक तैयार न हों तब तक ऐतिहासिक उपन्यासों में हाथ लगाना ठीक नहीं।"[50] ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा करना ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए अपेक्षित है परन्तु ऐसा करने पर उपन्यास ऐतिहासिक जीवनी या घटनात्मक लेखनी बनकर रह जाने की संभावना बनती है। गुरदीप सिंह खुल्लर ने लिखा है कि – "ऐतिहासिक उपन्यास में ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता का अध्ययन करते समय यह देखना होगा कि इतिहास का अनुगमन करते समय ऐतिहासिक उपन्यास स्वयं इतिहास न बन जाए।"[51] इतिहास में कल्पना का मिश्रण दूध और पानी का मिश्रण है। कल्पनापरक इतिहास ही उच्च व उदात्त हो सकता है। आस्वाद्य हो सकता है। कल्पना की सरसता घटनाओं की प्राणहीनता में प्राणों का संचार करती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि– "ऐतिहासिक उपन्यास का लेखक मृत घटनाओं और अर्ध ज्ञात या नाम मात्र से परिचित व्यक्तियों के कंकाल में प्राण संचार कर देता है। कल्पना उसका प्रधान अस्त्र है। इस पर कल्पना के साथ उसकी जानकारी का सामंजस्य होना चाहिए।.... अगर उसकी कल्पना के पोषण प्रमाण प्रामाणिक नहीं हुए तो रसास्वादन में पग–पग पर बाधा पहुँचेगी।"[52] इतिहास के सत्य एवं मनोरम कल्पना का समायोजन कर उन्यासकार ऐतिहासिक जीवन का वास्तविक चित्रण करता है। कल्पना को मनमानी छूट भी नहीं दे सकता है। इतिहास पर आधारित कल्पित कथानक तो गढ़ सकता है पर युग सत्य का निरूपण करने के लिए बाध्य होता है। धीरेन्द्र वर्मा ने कहा है कि – "ऐतिहासिक उपन्यास के लिए तो इतिहास की रक्षा करने के साथ–साथ उनके स्वरूप को अपनी कल्पना के द्वारा स्पष्ट करना भी आवश्यक है। यह ध्यान रखना चाहिए कि उपन्यास इतिहास का अन्धानुकरण नहीं हो सकता, सबसे पहले वह उपन्यास है–साहित्यिक कलावस्तु। साथ ही वह इतिहास भी है जिसकी मर्यादा की भी रक्षा करनी पड़ती है। अतः यहाँ कल्पना अनियन्त्रित नहीं हो सकती। अकबर और शिवाजी को एक जगह नहीं बैठा सकती। इस प्रकार के उपन्यास को दो भिन्न रूचि वाले स्वामियों की सेवा करनी पड़ती है। दोनों के रूख की रक्षा करते हुए अपना अस्तित्व बनाए रखना

पड़ता है।"[53] तथ्यों के साथ कल्पना का मेल कर उपन्यासकार इतिहास–कथा को अधिक आकर्षक, मनोरम और प्रभावशाली रूप में चित्रित करता है। ऐतिहासिक रंग में रंगती है। देवराज उपाध्याय ने अपने एक आलेख में लिखा है कि – "ऐतिहासिक उपन्यास में यात्रा पर निकलती तो है कल्पना ही, पर इतिहास को भी साथ ले लेती है।..................... यदि पूर्ण रूपेण हार्दिक सम्मिलन नहीं हो सका तो उसे बार–बार हृदय से लगाए न रखकर कभी–कभी उसको छोड़कर भी साथ ले सकती है।........................इतिहास उसके गृह पर अतिथि के रूप में निमंत्रित होकर आ गया तो वह हर तरह के आदर–सत्कार का अधिकारी होगा पर वह वहाँ दखल जमाकर 'मालिक–मकां' नहीं बन सकता।"[54] कल्पना और इतिहास ऐतिहासिक उपन्यासों में एक–दूसरे के साथ आत्मीय रूप से जुड़े रहकर, एक–दूसरे का आदर करते हुए, एक–दूसरे के बारे में बाधा न बनते हुए दांपत्य भाव से जुड़े रहते हैं। गोपालराय ने लिखा है कि – "ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास के ढांचे पर कल्पना की लता को निर्बाध बढ़ने और पल्लवित–पुष्पित होने का अवसर मिलता है। कल्पना कभी भी इतिहास को छोड़ती नहीं, न अवज्ञा करती है पर इतिहास भी कल्पना के उन्मुक्त विचरण में बाधक नहीं बनता।"[55] ऐतिहासिक उपन्यासकार घटनाओं और पात्रों को कल्पित दृष्टि से सम्पन्न कर यथार्थवाद का पुट देते हुए इतिहास का पुननिर्माण करता है। कार्ल बेकसन एवं आर्थर गैज के अनुसार – ऐतिहासिक उपन्यासकार तथ्यों तथा शोध के साथ–साथ कल्पनात्मकता एवं आलंकारिक शोभा के साथ अतीत का पुनः सृजन करता है।"[56] उपन्यासकार इतिहास के रिक्तांश भरता है और इस प्रकार इतिहास की छूटी हुई या भूली हुई सच्चाईयों को उजागर करता है। इतिहास तथ्यपरक होने के नाते बहुत सी बातें छोड़ देता है। उपन्यासकार कल्पना शक्ति के माध्यम से ही इतिहास को समाज के लिए प्रेरणाप्रद रूप में प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार इतिहास के माध्यम से समाज को जो कुछ कहना चाहता है वह कल्पना द्वारा पुष्ट करता है। वृन्दावन लाल वर्मा कहते हैं कि– "जिन स्थलों पर इतिहास का प्रकाश नहीं पड़ सकता उनका कल्पना द्वारा सृजन करके उपन्यास लेखक भूली हुई या खोई सच्चाईयों का निर्माण करता है। उनमें वही चमक–दमक आ जाती है जो इतिहास के जाने–माने तथ्यों में अवश्यमेव होती है।"[57] ऐतिहासिक उपन्यासकार की सृष्टि इतिहास की असाध्य सूत्रहीन घटनाओं में रचनाकार की कल्पना के धागे मिलाने से होती है। यह कल्पना जीवन–दायक होती है। मानव चरित्र चित्रण में उपन्यासकार पात्रों का व्यक्तित्व निर्मित करता है। जीवन और जगत के अनेक संदर्भों के इतिहास–सत्य व व्यक्तिगत अनुभूति के समन्वय द्वारा सौन्दर्य परक कलात्मक अभिव्यक्ति करता है। शशिभूषण सिंहल ने लिखा है – "उपन्यासकार पात्रों के व्यक्तित्व खड़े करके, उनके अन्तर में पैठकर, उनके मनोविज्ञान को प्रत्यक्ष करता है। मानव चरित्र–चित्रण की इस प्रक्रिया में वह प्राप्य ऐतिहासिक तथ्यों के कंकड़ों को हृदयंगम कर, चूर–चूर कर, गीला कर, प्रयोगार्ह बनाता है। फिर उस चिकनी लचीली मिट्टी को कल्पना के हाथों एवं डोरी से तोड़–मोड़कर, कांट–छांटकर मनोरम कथा के रूप में ढाल देता है।......................ऐतिहासिक

उपन्यासकार तथ्यों के मध्य रिक्तांशों को भरने, उनमें कार्य–कारण का सम्बन्ध स्थापित करने तथा उन्हें मानव–जीवन सापेक्ष बनाने के लिए जीवन–सुलभ कल्पना का आश्रय लेने को स्वतन्त्र है।"[58] ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास और कल्पना का मेल यथार्थ और आदर्श का मेल ही प्रतीत होता है। यथार्थ के माध्यम से आदर्श की प्रतिष्ठा जितनी कठिन है उतनी ही इतिहास एवं कल्पना के मेल से जीवन की प्रतिष्ठा है। ऐतिहासिक उपन्यासकार इसमें अपनी कलात्मक क्षमता के उपयोग से सफल हो सकता है। मधुरेश ने लिखा है– "ऐतिहासिक उपन्यास में चूंकि तथ्य के साथ कल्पना का भी समावेश होता है अतः इस विधा की सृजन–प्रक्रिया कठिन हो जाती है क्योंकि उसे कला और इतिहास के सम्मिलित अनुशासन के मध्य से अपना रास्ता बनाना होता है।"[59] ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना इतिहास परक कथानक एवं कल्पनात्मक संवेदना के योग से होती है। इतिहास प्रधान है या कल्पना का महत्व अधिक है, कहा नहीं जा सकता । यह कृति व कृतिकार के दृष्टिकाण पर ही निर्भर करता है। परन्तु उचित सामंजस्य व उद्देश्य परक कल्पना ही कृति को श्रेष्ठ बनाती है। रामअवध द्विवेदी ने लिखा है कि "ऐतिहासिक अभिव्यक्ति के दो छोरों पर कल्पना और यथार्थ सदा विद्यमान रहे हैं। कभी एक पर अधिक बल दिया गया है तो कभी दूसरे पर। हम देखते हैं कि विश्व साहित्य न तो पूर्णरूपेण कल्पित और स्वनिल है और न नितान्त यथार्थ मूलक। अन्तर केवल इतना है कि सम्मिश्रण किस अनुपात में किया गया है।"[60] हेतु भारद्वाज ने लिखा है कि– "प्रकृति के साथ मिलकर ही कल्पना मिश्रित यथार्थवाद ने विश्व को सर्वश्रेष्ठ क्लासिकल उपन्यासों की रचना दी है।"[61] अतः इतिहास और कल्पना का उचित समावेश श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों के निर्माण की प्रेरणा बनता है, बन रहा है। ऐतिहासिकता के दृष्टिकोण से विभिन्न प्रवृत्तियों की प्रधानतायुक्त उपन्यासों की रचना होती है। कहीं इतिहास आवरण रूप में है, कहीं पुर्नस्थापन रूप में, तो कहीं प्रेरणा एवं आदर्श के रूप में व्यक्त हुआ है। कहीं कल्पना से समन्वित इतिहास प्रयुक्त हुआ है। ऐतिहासिक यथार्थ कल्पनात्मक यथार्थ, आदर्शोन्मुखी यथार्थ, कल्पना एवं इतिहास मिश्रित यथार्थ, ऐतिहासिक कल्पना आदि की प्रधानता से आच्छादित उपन्यासों की रचना होती रही है। इतिहास एवं कल्पना के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यासों को भिन्न–भिन्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। डॉ. शशिभूषण सिंहल ने ऐतिहासिक उपन्यासों को छह श्रेणियों में यथा – 1.केवल अतीत का आभास प्रस्तुत करने वाले 2.ऐतिहासिक वातावरण मात्र प्रस्तुत करने वाले 3.केवल ऐतिहासिक मात्र के आधार पर रचे गए 4.केवल ऐतिहासिक कथा के आधार पर रचे गए 5.केवल ऐतिहासिक घटना के आधार पर रचे गए 6.केवल ऐतिहासिक वातावरण, कथा, पात्र से युक्त उपन्यास शीर्षकों में विभक्त किया है।[62]

जबकि राजनाथ शर्मा ने कल्पना प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास, इतिहास प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास, सन्तुलित ऐतिहासिक उपन्यास आदि तीन भागों में विभक्त किया। इन्होंने शुद्ध

काल्पनिक व कल्पना प्रधान तथा शुद्ध इतिहास आच्छादित व इतिहास प्रधान नाम से दो–दो उप–भेद भी किए हैं।[63] जो विभाजन समीचीन लगता है। निम्न प्रकार हैः–

1. ऐतिहासिक घटना प्रधान 2. ऐतिहासिक पात्र प्रधान 3. ऐतिहासिक यथार्थ प्रधान 4. ऐतिहासिक कल्पना प्रधान 5. इतिहास–कल्पना समन्वय प्रधान

(1) ऐतिहासिक घटना प्रधान– ऐसे उपन्यास जिनमें इतिहास द्वारा प्रमाणित घटनाओं को औपन्यासिक शैली मे निबद्ध किया जाता हो। इनमें घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में उपन्यास की शक्ल में प्रस्तुत किया जाता है। –वृन्दावनलाल वर्मा का गढ़कुण्डार, चतुरसेन शास्त्री का लालकिला आदि उपन्यास इसी श्रेणी के हैं।

(2) ऐतिहासिक पात्र प्रधान– ऐसे उपन्यासों में ऐतिहासिक पात्र से सम्बद्ध घटनाओं को उपन्यास कला में सजाया जाता है। किसी ऐतिहासिक मात्र के इर्द–गिर्द ही कथानक की बुनावट होती है। वह युग का भी प्रतिनिधि पात्र होता है और उपन्यास का भी। वृन्दावनलाल वर्मा का झाँसी की रानी–लक्ष्मीबाई, माधव जी सिन्धिया, अमृतलाल नागर का मानस का हंस आदि उपन्यास इसी कोटि में रखे जा सकता हैं।

(3) ऐतिहासिक यथार्थ प्रधान– ऐसे उपन्यासों में इतिहास की घटनाएँ, पात्र, एवं वातावरण अपने संतुलित एवं सत्य रूप में व्यक्त एवं चित्रित होते हैं। ऐसे उपन्यासों में इतिहास अपनी सम्पूर्ण दुर्बलताओं के साथ मूर्त रूप में अभिव्यक्त होता है। इसमें इतिहास प्रधानता भी हो सकती है और कल्पना प्रधानता भी। हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास इसी कोटि में रखे जा सकते हैं। चतुरसेन शास्त्री का 'वैशाली की नगरवधू' इसी श्रेणी का उपन्यास है।

(4) ऐतिहासिक कल्पना प्रधान– ऐसे उपन्यास जिनमें इतिहास प्रामाणिक नहीं होता है। इतिहास के कुछ संकेत और इतिहास जैसा जीवन अभिव्यक्त होता है। शेष सब कुछ कल्पना परन्तु इतिहास कालीन। भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' एवं यशपाल का 'दिव्या' इसी श्रेणी के उपन्यास हैं।

(5) इतिहास–कल्पना समन्वय प्रधान– ऐसे उपन्यासों में मूल कथा एवं पात्र इतिहास–सिद्ध होते हैं। गौण कथा एवं पात्र रिक्तांश भरने का या खोयी हुए सच्चाई खोजने का काम करते हैं। ये उपकथाएँ व पात्र प्रधान कथा में मिलकर ऐसे कथानक का निर्माण करते हैं कि सब ऐतिहासिक सच लगता है। वृन्दावनलाल वर्मा रचित 'विराटा की पद्मिनी' एवं 'मृगनयनी' चतुरसेन शास्त्री का 'सोमनाथ' इस कोटि के प्रमुख उपन्यास हैं।

ऐतिहासिकता की प्रधान प्रवृति से युक्त ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और कल्पना के भिन्न–भिन्न रूप प्रयुक्त हुए हैं। कहीं आदर्शात्मक कल्पना के आगे इतिहास को हाथ जोड़ दिए गए है तो कहीं इतिहास–रस की रसपूर्णता के लिए इतिहास की अवहेलना कर दी गई है। कहीं इतिहास प्रधानता के कारण उपन्यास की सरसता में बाधा पहुँची है तो कहीं इतिहास का आभास मात्र देकर ऐतिहासिक वातावरण की रचना कर दी गई हैं। कहीं इतिहास का आधिक्य तो कहीं कल्पना की अतिशयता मिलती है। जहाँ इतिहास एवं कल्पना का समन्वय उचित अनुपात में हुआ है वहाँ श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना हुई हैं। विवेच्य अध्याय में इसी प्रवृति के आधार पर शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों की विवेचना की जा रही है।

4.4 शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों का काल विभाजन– शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों की विषय–वस्तु का सम्बन्ध वैदिक काल से लेकर मध्यकालीन भारत की सत्रहवीं शताब्दी तक के भारतीय इतिहास से है। यद्यपि वैदिक काल को इतिहासकारों ने ऐतिहासिक काल नहीं माना है। परन्तु इतिहास–दृष्टि से सम्पन्न साहित्य ऐतिहासिक ही माना जायेगा, चाहे किसी भी काल से सम्बन्धित हो। शिवकुमार गुप्त[64] के अनुसार इतिहास में सैन्धव सभ्यता से लेकर वैदिक युग के सुदीर्घ काल को इतिहास–पूर्व पुरा–ऐतिहासिक काल कहा जाता है। ....प्रथम सहस्राब्दि ईसवी–पूर्व के पूर्वार्द्ध के केवल छः सौ वर्षों के काल को ऐतिहासिक स्वीकार किया गया है। ऐतिहासिक काल को प्राचीन भारत, मध्यकालीन भारत, एवं आधुनिक भारत के रूप में तीन भागों में विभक्त किया गया है। हरीशचन्द्र वर्मा ने मध्यकालीन भारत 750 ई॰ से 1761 ई॰ तक माना है।[65] प्रताप सिंह ने 1200 ई॰ से 1761 ई॰ तक के काल को मध्यकालीन इतिहास लिखा है।[66] इमत्याज अहमद ने मध्यकालीन भारत को आठवीं शताब्दी से अठारवीं शताब्दी तक माना है। उन्होंने मध्यकालीन इतिहास को पूर्व–मध्यकाल (750 ई॰ से 1206 ई॰) तुर्क–अफगान शासनकाल (1206 ई॰ से 1556 ई॰), तथा मुगलकाल (1556 ई॰ से 1757 ई॰) तक तीन भागों में विभक्त किया है।[67] यद्यपि शत्रुघ्न प्रसाद ने काल–चेतना के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यासों को वेदकालीन, राम–कृष्ण युगीन, श्रमण युगीन, चाणक्य–पुष्यमित्र युगीन, पहली से दसवीं सदी युगीन, ग्यारहवीं से सत्रहवीं सदी युगीन, अठारवीं से बीसवीं सदी युगीन उपन्यास के रूप में वर्गीकृत किया है।[68] परन्तु ऐतिहासिक विभाजन के आधार पर शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों का वर्गीकरण निम्नानुसार किया जा सकता है :–

(1) पुरा–ऐतिहासिक या वैदिककालीन – सरस्वती सदानीरा

(2) प्राचीन भारत कालीन – शिप्रा साक्षी है

(3) पूर्व–मध्यकालीन या पूर्व मुगलकालीन – सिद्धियों का खण्डहर– 12 वीं सदी, कश्मीर की बेटी – 14 वीं सदी, तुंगभद्रा पर सूर्योदय – 14 वीं सदी, सुनो भाई साधो – 15 वीं सदी

(4) उत्तर–मध्यकालीन या मुगलकालीन – हेमचन्द्र–विक्रमादित्य – 16 वीं सदी, अरावली का मुक्तशिखर – 16वीं सदी, शहजादा दाराशिकोह : दशहत का दंश – 17 वीं सदी।

4.5 ऐतिहासिक उपन्यासों के अनिवार्य तत्व– ऐतिहासिक उपन्यासों का इतिहास और कल्पना के आधार पर मूल्यांकन करते समय उपन्यासों का इतिहास साक्ष्यों एवं प्रमाणों की माँग करता है। यह साक्षी एवं प्रमाण अतीत की मुहर लगने से विश्वसनीय लगते हैं। अतीत का विश्वसनीय दर्शन ऐतिहासिक घटनाओं, चरित्रों एवं परिवेश के प्रमाणित चित्रण में होता है। शशिभूषण सिंहल ने लिखा है कि– "ऐतिहासिक उपन्यास का इतिहास सम्बन्धी अवयव प्रामाणिकता की अपेक्षा रखता है......रचना में अतीत का आभास उत्पन्न करने के लिए इन तीन या तीनों में से किसी एक तत्व का आश्रय लेता है– 1.वातावरण 2. घटना या कथा 3. पात्र

(1) वातावरण– ऐतिहासिक उपन्यास में युग का चित्रण युगीन वातावरण से ही परिलक्षित होता है। युगीन वातावरण में युग की सम्पूर्ण जीवन–पद्धति, आचार–विचार, रहन–सहन, रीति–नीति, लोकव्यहार, भाषा, भौगोलिक स्थिति आदि का युगानुकूल चित्रण होना आवश्यक है। शिवनारायण श्रीवास्तव ने लिखा है कि "ऐतिहासिक उपन्यासों का आकर्षण और साहित्यिक मूल्य बहुत कुछ उनके द्वारा किए गए भू–भाग और काल–विशेष के जीवन, रीति–नीति, रहन–सहन, आदि पर रहता है और उत्तमता यहाँ के वर्णनों की यथार्थता, तदरूपता और शक्ति पर निर्भर रहती है।"[70] वातावरण चित्रण की श्रेष्ठता व्यक्ति का परिवेश के साथ आत्मीय दर्शन करवाने में है। जार्ज लूकाच ने कहा है कि– "अच्छा ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए जनजीवन की अन्तरंग और प्रामाणिक जानकारी जरूरी है, तभी उपन्यास में व्यक्ति और परिवेश के आत्मीय सम्बन्धों का चित्रण सम्भव होता है। [71] इस प्रकार स्पष्ट है कि वातावरण तत्व का मूल्यांकन युगीन जीवनपद्धति, रीति–नीति, रहन–सहन, आचारविचार, भौगोलिक स्थिति, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक मान्यताएँ व जीवन मूल्य व लोक–जीवन आदि के अन्तर्गत किया जाना समुचित हो सकता है।

(2) घटना– ऐतिहासिक उपन्यास के लिए दूसरा अनिवार्य तत्व घटना है। उपन्यास की मूल कथा घटनाओं पर ही आधारित होती है। केन्द्रीय विषयवस्तु घटना केन्द्रित होती है। घटनाओं से ही कथा का निर्माण होता है। रतिभानुसिंह नाहर ने लिखा है कि– "मानव की विगत–विशिष्ट घटनाओं का ही नाम इतिहास है। अतीत के सभी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विकास एवं परिवर्तन भौतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान एवं पुनरूत्थान, वर्तमान का इतिहास बनकर प्राचीन मानव तथा उसके कृत्यों की याद दिला रहे हैं .... किन्तु अतीत और वर्तमान का निकट सम्बन्ध स्थापित करने का कोई माध्यम या साधन चाहिए जो युगों की लम्बी दूरी को कम कर सके। .... साहित्यकारों एवं विभिन्न प्रकार के कलाकारों की कृतियाँ ही वह

साधन हो सकती है जो अतीत की स्मृति दिला सके।"[72] घटना ही इतिहास है और औपन्यासिक साधन द्वारा चित्रित की जाती है तो घटना महत्वपूर्ण तत्व बन जाता है।

(3) पात्र या चरित्र– पात्रों के माध्यम से ही कथा कही जाती है और कथ्य की अभिव्यक्ति होती है। ऐतिहासिक उपन्यास में ऐतिहासिक पात्र महत्वपूर्ण अवयव है। ऐतिहासिक उपन्यासकार प्रामणिक साक्ष्यों पर आधारित पात्रों को कथा का वाहक बनाता है। वह पात्रों के अन्तर में बैठकर अपनी असाधारण प्रतिभा तथा अनवरत साधना के बल पर ऐतिहासिक पात्र के प्रतिभा एवं आन्तरिक व्यक्तित्व का साक्षात्कार व्यक्त करता है। उपन्यासकार वर्ण्य पात्र की चाल–ढ़ाल, बोल–चाल, वेश–भूषा, भावनाओं, आकांक्षाओं आदि के साथ व्यक्त करते हुए उसके ऐतिहासिक कार्यों व उपलब्धियों को भी प्रकट करता है। टाल्स टॉय को उदघृत करते हुए शशिभूषण सिंहल ने लिखा है कि "वह इतिहास के महारथियों को व्यक्ति–मानव के रूप में देखता है और घटना के परिणामों पर केन्द्रित होने की अपेक्षा उसके मूल कारणों पर प्रकाश डालता है।"[73] ऐतिहासिक पात्र ऐतिहासिक उपन्यास का केन्द्रीय कथ्य माने जा सकते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास की रचन ऐतिहासिक घटना, ऐतिहासिक पात्र एवं इतिहासकालीन वातावरण पर केन्द्रित होती है जो प्रामाणिक होते है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि– "ऐतिहासिक लेखक का वक्तव्य इतिहास की उत्तम जानकारी तथा इस युग की प्रामाणिक पुस्तकों, मुद्राओं, शिलालेखों के आधार पर जाँची हुई होनी चाहिए।"[74] ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास को वर्तमान में ग्राह्य बनाने की कलात्मकता कल्पना–शक्ति पर निर्भर है। इतिहास की प्रामाणिक घटना, पात्र एवं वातावरण की नीरसता को सरसता व सोद्देश्यता कल्पना परक पात्रों एवं भावों द्वारा ही प्राप्त होती है। ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों एवं वातावरण के जितना ही कल्पनापरक घटनाओं व पात्रों का महत्त्व होता है। शशिभूषण सिंहल ने लिखा है कि– "ऐतिहासिक उपन्यासों की कथाओं में उपन्यासकार की कल्पना का कुछ–न–कुछ अंश अवश्य विद्यामान रहता है।.......... कभी–कभी वह प्राप्य एक घटना से काम चला लेता है और शेष कथांश की, कल्पना के बल पर सृष्टि करता है। इसी प्रकार उपन्यास में ऐतिहासिक पात्रों के प्रयोग की स्थिति है।...........इतिहास से प्राप्त व्यक्तियों को उपन्यासकार ठीक उसी रूप में नहीं देखता, वर्न अपनी कल्पना शक्ति से उन्हें पूर्ण मानव बनाता है।"[75] कल्पना के द्वारा तथ्यों में संवेदनात्मक परिवर्तन भी किया जाता है यह संवेदना इतिहास के तथ्यों में रागात्मक भाव भरती है। विगनी के अनुसार– "तथ्यों में एक स्पष्ट क्रमबद्ध श्रृंखला का अभाव रहता है। लेखक ऐतिहासिक तथ्यों को अपनी कमी के कारण नैतिक सत्य को प्रकट करने में सफल नहीं होता .... माने हुए तथ्य वास्तविक तथ्यों की तुलना में अधिक प्रभावशाली होते हैं..... क्योंकि सम्पूर्ण मानव जाति के लिए यह आवश्यक है कि उसका प्रारब्ध सबके लिए शिक्षा की श्रृंखला के रूप में हो। ....कल्पना की कलात्मक स्वतंत्रता का आशय यह है कि तथ्यों की वास्तविकता को कभी उस विचार के आगे झुक जाना चाहिए जिसका आने वाली

पीढ़ियों की दृष्टि में दोनों ही प्रतिनिधित्व करते हैं।"[76] अतः स्पष्ट है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार कल्पना द्वारा तथ्यों में जीवन्तता का समावेश करता है व कथा के साथ कल्पित कथा नवीन पात्रों की सृजना से जोड़ता है। रामलखन शुक्ल ने लिखा है कि– "ऐतिहासिक उपन्यासकार का दायित्व इतिहास एवं पुरातत्व के नीरस तथ्यों को रसात्मक रूप में प्रस्तुत करना होता है। कल्पना के योग से उसे तत्कालीन जीवन का मार्मिक और जीवन्त चित्र प्रस्तुत करना होता है।.......... ऐतिहासिक उपन्यास तथ्यों का आकलन मात्र नहीं होता। उसमें प्राण–प्रतिष्ठा करने के लिए ऐसे परिवर्तन करने पड़ते हैं जो रचना को रागात्मक बना सके।"[77] ऐतिहासिक सच्चाई को रमणीय एवं सोद्देश्य उपयोगी बनाने के लिए अर्थात सत्यम् को शिवम् एवं सुन्दरतम् बनाने के लिए कल्पना का सहारा आवश्यक होता है। धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार– "देश काल का चित्रण करने के लिए भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का समग्र परिचय तो आवश्यक है ही परन्तु–कला विधान करने वाली कल्पना शक्ति का होना इसमें कम महत्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि इसके बिना भौगोलिक और सामाजिक अध्ययन का उचित उपयोग नहीं हो सकता और विवरणों में सरसता नहीं लायी जा सकती। ऐतिहासिक उपन्यासों में इसका विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है कि देशकाल में सच्चाई के साथ मनोरमता बनी रहे।"[78] अतः इतिहास एवं कल्पना के आधार पर मूल्यांकन की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रमुख तत्व निम्न प्रकार है जिनके आधार पर विवेच्य अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की विवेचना की जायेगी – ऐतिहासिक घटनाएँ, ऐतिहासिक पात्र, कल्पनापरक घटनाएँ, कल्पनापरक पात्र, ऐतिहासिक एवं कल्पित वातावरण, इतिहास एवं कल्पना का समन्वय।

4.6 पुरा–ऐतिहासिक या वैदिककालीन उपन्यासों में इतिहास एवं कल्पना–

वैदिककालीन इतिहास पर रचित शत्रुघ्न प्रसाद का एक ही उपन्यास है–'सरस्वती–सदानीरा'। इस उपन्यास की रचना में डॉ. राधाकृष्ण चौधरी रचित 'प्राचीन भारत के व्रात्य', डॉ. भगवान सिंह रचित 'उपनिषदों की कहानियाँ', यजुर्वेद के शतरूद्रीय मंत्र, शैव संस्कृति से संबद्ध ग्रन्थ तथा सिंधु घाटी में विकसित पणियों की नगर सभ्यता के अध्ययन से प्राप्त साक्ष्यों का सहारा लिया गया है।[79] इस उपन्यास में याज्ञवल्क्य ऋषि द्वारा सरस्वती से सदानीरा अर्थात् सप्त सिंधु से कीकट(मगध) तक की सांस्कृतिक य़ात्रा का चित्रण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

ऐतिहासिक घटनाएँ – सप्त–सिंधु की आर्य संस्कृति के गुरू वैषम्पायन के आश्रम में भागिनेय याज्ञवल्क्य पत्नी कात्यायनी के साथ रह रहे हैं। गुरू मातुल वैषम्पायन के रूढ़िगत विचारों से असहमति हो जाने पर निष्कासित कर दिए जाते हैं। वैषम्पायन कहते है "अब तुम न मेरे शिष्य हो और न इस आश्रम के आचार्य। मेरी पढ़ाई हुई विद्या का भी उपयोग नहीं

करना होगा।.........तुम मेरी आँखो के सामने से चले जाओ।...........याज्ञवल्क्य की आँखो में आंसू आ गए।"[80]

याज्ञवल्क्य सरस्वती नदी के तट से प्रस्थान करते हैं। सूर्य को गुरू मानकर आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं। कहते हैं– "भटकना नहीं है। अपने देश के विभिन्न जन समूहों से मिलना है। जुड़ना है। अभिशाप से अवसर पाकर आगे बढ़ना हैं।"[81] वे आगे जाकर गंगा किनारे उद्दालक आरूणि ऋषि द्वारा शिष्यत्व प्राप्त करते है। सहसा सबने देखा– "उद्दालक ने याज्ञवल्क्य के शीश पर अपना हाथ रख दिया।.........कानों में शब्द आए। कल्याण हो वत्स! मैं तुम्हें शिष्य के रूप में स्वीकार कर रहा हूँ।"[82] याज्ञवल्क्य विदेह जनक की सभा में अश्वल, उषस्त, शाकल्य एवं गार्गी के साथ आध्यात्मिक चिंतन में श्रेष्ठता प्राप्त करते हैं। गार्गी ने याज्ञवल्क्य के उत्तर से संतुष्ट होकर घोषणा की– "याज्ञवल्क्य अपने को श्रेष्ठ सिद्ध कर चुके। ये ऋषि हैं। इन्हें नमस्कार है।........जनक वैदेह की घोषणा पड़ी – "एक सहस्र गाएँ याज्ञवल्क्य की हो गई।"[83] इसी सभा में मित्र ऋषि की पुत्री मैत्रेयी याज्ञवल्क्य से प्रभावित हुई। दोनों का विवाह हुआ। –"दूसरे दिन प्रातःकालीन यज्ञ के समय याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का विवाह सम्पन्न हुआ। मित्र ऋषि और जनक वैदेह ने आशीर्वाद दिए।"[84] उसी काल में महासिंधुज नगर एवं सप्तसिंधु प्रदेश जल–प्लावन से नष्ट हो जाते हैं। आर्य जनों को इधर–उधर आश्रय लेना पड़ता है। प्रयाग आर्यों की नवीन संस्कृति का केन्द्र बनता है। सरस्वती नदी लुप्त हो जाती है। शाकल्य ऋषि ने बताया कि– "सप्तसिंधु के जन कुछ पर्वतीय क्षेत्र में चले गए हैं– जलप्लावन के बाद। कुछ कुरू–पांचाल में आ गए हैं। कुछ काशी के पश्चिम गंगा–यमुना के संगम पर आकर यज्ञ कर रहे हैं। वे चाहते है कि वह स्थान वैदिक केन्द्र के रूप में विकसित हो। पर उसके उत्तर–दक्षिण– सर्वत्र विभिन्न जन–समूहों के निवास हैं।....... वे कह रहे हैं कि इस संगम में तो तीन नदियों का संगम है क्यों कि अब सरस्वती धारा भी आ गई है।........ जलप्लावन के बाद भूकंप भी आया। सरस्वती की धारा धरती के भीतर लुप्त हो गयी।"[85]

याज्ञवल्क्य के प्रयास से वैदिक रूद्र एवं व्रात्य शिव का एक रूप स्वीकार हुआ। "मित्र ऋषि शांति पाठ करके मंद स्वर में बोल उठे– "आकाश, पर्वत, वन के देवता शिव ही रूद्र हैं। रूद्र ही शिव हैं।.........ऊँचे चत्वर पर एकव्रात्य शिव की प्रतिष्ठा हुई। व्रात्य मुनि कौषितकी, देवेश, द्योतन, याज्ञवल्क्य, मित्र और अश्वल ने एक साथ भाग लिया।......सभी गृहपतियों ने अनुभव किया कि वैदिक ऋषि एक व्रात्य शिव ही स्वीकार कर रहे हैं। जनक वैदेह प्रधान गृहपति के साथ शिव की पूजा कर रहे हैं। आर्य–अनार्य का भेद समाप्त हो रहा है।"[86] ये सब घटनाएँ इतिहास सम्मत हैं जिनके प्रमाण उपलब्ध हैं।

1. ऐतिहासिक प्रमाण–

(1) प्राचीन धर्मशास्त्रों के आख्यानकर्ता देवदत्त पटनायक ने लिखा है कि वैशम्पायन के शिष्य थे –याज्ञवल्क्य । वैशम्पायन ऋषि भूल का प्रायश्चित क्रियाओं और यज्ञ से करना चाहते थे।

याज्ञवल्क्य का कहना था कि प्रायश्चित मन से होता है। यज्ञ और क्रियाओं से नहीं। याज्ञवल्क्य ने यह भी कहा कि सर्वोच्य ज्ञान आत्मचिंतन एवं भीतर की आत्मा को समझने से होता है। वैशम्पायन ने उत्तेजित होकर उनका दिया गया ज्ञान वापस लौटाने को कहा। याज्ञवल्क्य ने जो ज्ञान शरीर से बाहर निकाला गुरू के अन्य शिष्यों ने पक्षी रूप में ग्रहण किया। इस ज्ञान को कृष्ण यजुर्वेद कहते हैं। याज्ञवल्क्य ने सूर्य को देवता माना।"[87] हरिशंकर शर्मा ने उदघृत किया है कि महाज्ञानी याज्ञवल्क्य ने सूर्य की कठोर तपस्या के पश्चात शुक्ल यजुओं को प्राप्त किया था। यजुर्वेद की एक शाखा का नाम शुक्ल यजुर्वेद पड़ा।"[88]

(2) ऐतिहासिक शिव का जन्म ऋग्वैदिक काल के रूद्र का ही रूपान्तर है। सिन्धु सभ्यता के पशुपति को वैदिक काल में भंयकर रूद्रदेवता में रूप में अपनाया गया।"[89]

(3) ब्राह्मण काल में ही शिव आविर्भूत होते हैं और वेद में रूद्र के साथ तुरन्त एकाकार हो उठते हैं।[90]

(4) यजुर्वेद की सामाजिक स्थिति ऋग्वेद से भिन्न हो गयी। इस काल में स्त्रियाँ भी शास्त्रार्थ किया करती थीं। वृहदारण्यक उपनिषद् में वरतन्तु की पुत्री गार्गी याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करती है। इसी उपनिषद् में याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयी को आत्मा सम्बन्धी उच्चतम शिक्षा देते हैं।[91]

(5) मैक्समूलर के अनुसार आर्य सप्त सैन्धव के मूल निवासी थे। यहाँ से भारत के अन्य स्थानों पर गए।[92]

(6) डॉ. राजबलीपाण्डेय ने लिखा है कि– "सिन्धु घाटी में क्रान्तिकारी जलवायु परिवर्तन और सिन्धु नदी के पथ बदलने से इस क्षेत्र में यह सभ्यता समाप्त हो गई।[93]

(7) ऋग्वैदिक आर्यों का भौगोलिक केन्द्र 'सप्तसैन्धव' था यही इनका मूलस्थान जान पड़ता है। सप्तसैन्धव का अर्थ है– सात नदियों, सिन्धु, सतलज, सरस्वती, व्यास, रावी, चिनाब व झेलम द्वारा सिंचित प्रदेश।[94]

(8) डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार के शब्दों में "ऋग्वेद कालीन भारतीय इतिहास की प्राचीनतम घटनाओं का सम्बन्ध सिन्धु–सरस्वती तथा सप्त सिन्धु व देश की अन्य नदियों से जोड़ा गया।[95]

(9) 'शतपथ ब्राह्मण' का रचयिता याज्ञवल्क्य ऋषि को माना जाता है। पंचविश ब्राह्मण में निहित कर्म नियमों द्वारा सामाजिक नियमों में अपूर्व परम्परा का सूत्रपात हुआ। व्रात्य कबीलों को स्तोम(स्तुति) यज्ञों द्वारा आर्य समुदाय में सम्मिलित किया जाने लगा।[96]

(10) शतपथ ब्राह्मण में उल्लेखित विदेद्य माथव की कहानी से पता चलता है कि आर्यों का सदानीरा या गण्डक नदी तक प्रसार हो चुका था। दक्षिण में विदर्भ तक बढ़ गए थे।......... व्रात्य समूह के आविर्भाव ने भी धार्मिक क्रान्ति को संभव बनाया।[97]

(11) उत्तर वैदिक काल में आर्य महासैन्धव से उत्तर–पूर्व की ओर बढ़े और उन्होंने नवीन राजनीतिक केन्द्रों की स्थापना की।........कौशल, विदेह, मगध, दक्षिणी बिहार, बंग, काशी, आदि सम्पूर्ण भारत से आर्य लोग जानकार हो चुके थे।[98]

(12) याज्ञवल्क्य के संरक्षक विदेहराज जनक थे। हिंसापूर्ण यज्ञ और वैराग्य युक्त आत्मविद्या के बीच जो संघर्ष पश्चिम भारत में शुरू हुआ था उसका फैसला जनक और याज्ञवल्क्य ने पूर्वी भारत में कर दिया। ये लोग आत्मविद्या में इतने दक्ष समझे जाने लगे कि पूरे भारत में इनका नाम हो गया।[99]

(13) सिन्धु सभ्यता के लगभग दो–तिहाई पुरास्थल लुप्त सरस्वती नदी एवं उसकी सहायक नदियों के क्षेत्र में मिले हैं। इससे जान पड़ता है कि सरस्वती नदी सिन्धुसभ्यता का मेरूदण्ड थी। वैदिक काल में सरस्वती नदी बहुत बड़ी एवं महत्वपूर्ण नदी थी वैदिक ऋषियों ने सरस्वती नदी को नदीतमे, देवीतमे, अम्बितमे कहा है। उपग्रह से प्राप्त नवीनतम चित्रों में सरस्वती नदी का पूरा जल प्रवाह मार्ग शिवालिक से भीनमाल तक तथा वहाँ से पाँच हिस्सों में बँटकर सोमनाथ की ओर बढ़कर सौराष्ट्र के तट पर जाकर विलुप्त हो जाता था। पुरा जल प्रवाह के ये चिन्ह प्राचीन साहित्य में वर्णित सरस्वती के प्रवाह मार्ग से मेल खाते हैं।[100]

(14) मार्शल, मैके, एस.आर. राव ने सिन्धु सभ्यता में बाढ़ आने के प्रमाण दिए है।[101].............
उपर्युक्त इतिहास–ज्ञात तथ्यों से स्पष्ट है कि 'सरस्वती–सदानीरा' की ऐतिहासिक घटनाएँ पूर्णत इतिहास सिद्ध हैं।

2. ऐतिहासिक पात्र – 'सरस्वती–सदानीरा' उपन्यास का केन्द्रीय पात्र वैदिक ऋषि याज्ञवल्क्य है जिसका वैदिक साहित्य में उल्लेख मिलता है। गुरू वैषम्पायन, गुरूमाता आश्रुति, याज्ञवल्क्य की पत्नी कात्यायनी एवं मैत्रेयी, वैदिककालीन ऋषि एवं विदुषी महिला गार्गी, ऋषि उद्दालक आरूणि, मित्र ऋषि, अश्वल ऋषि, व्रात्य मुनि कौषितकी, अगस्त्य मुनि आदि सभी पात्र पुरा–इतिहास से सम्बद्ध है। इतिहास सम्मत हैं। विदेहराज जनक वैदिक एवं पौराणिक काल के महान राजा हुए हैं जिनकी वैरागी एवं ज्ञानी के रूप में प्रसिद्धि रही है। जैन तीर्थंकर ऋषभदेव का वृतान्त भी जैन साहित्य के अनुकूल ऐतिहासिक है। इन सभी प्रमुख पात्रों की ऐतिहासिक पुष्टि निम्न प्रमाणों द्वारा प्रमाणित होती है। :–

(1) उत्तर वैदिक साहित्य में विदेह के राजा जनक का उल्लेख मिलता है जो याज्ञवल्क्य ऋषि के संरक्षक थे।[102]

(2) वेदव्यास ने ब्रह्म परम्परा से प्राप्त वेद के चार विभाग – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद किए व क्रमानुसार पैल, वैशम्पायन, जैमिनी व सुमंतु नामक शिष्यों को प्रदान किए।[103]

(3) चरण याने आन्दोलन व चरणव्यूह याने आन्दोलन की भिन्न–भिन्न पद्धतियाँ। इस प्रकार का व्यूह जिसने तैयार किया वह कात्यायन यदि याज्ञवल्क्य का पुत्र था तो इसका काल ईसा

पूर्व 2500 वर्षों का सिद्ध होता है। इस तथ्य से कात्यायनी व याज्ञवल्क्य के पुत्र होने की पुष्टि होती है।[104]

(4) आश्वलायन श्रोत सूत्र आश्वालय ऋषि द्वारा रचित होने से भी अश्वल ऋषि की पुष्टि होती है।[105]

(5) पुराणों में वर्णित अगस्त्य मुनि द्वारा समुद्र का आचमन कर उसे सुखा डालने की तथा विंध्याचल के उन्नत मस्तक को झुकाकर दक्षिण की ओर जाने की कथा उपर्युक्त मत की जोरदार पुष्टि करती है।[106]

(6) ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में जैन तीर्थंकर ऋषभदेव का उल्लेख मिलता है। जैन अनुश्रुतियों में उल्लेख आता है कि ऋषभदेव ने ही मानव सभ्यता को प्रथम पाठ पढ़ाया।........विष्णु एवं भागवत पुराण में ऋषभ का उल्लेख नारायण के अवतार रूप में मिलता है।[107]

(7) वृहदारण्यक उपनिषद में जनक की सभा में गार्गी एवं याज्ञवल्क्य के वाद–विवाद का उल्लेख मिलता है। गार्गी नामक महिला ऋषि के होने की पुष्टि होती है।[108]

(8) यजुर्वेद के भाष्यकर 'महीधर' ने लिखा है कि बुद्धि की मलीनता होने से यजुओं का रंग काला हो गया। महाज्ञानी याज्ञवल्क्य ने सूर्य की कठोर तपस्या के पश्चात् शुक्ल यजुओं को वरदानरूप प्राप्त किया था।[109]

(9) वाचस्पति गैरोला ने लिखा है कि समस्त वैदिक परम्परा के उपलब्ध ग्रन्थों में 'शतपथ' ही सर्वाधिक वृहद ग्रन्थ है।........इस ब्राह्मण ग्रन्थ का रचयिता याज्ञवल्क्य ऋषि को माना जाता है।........"याज्ञवल्क्य ऋषि के मैत्रेयी और कात्यायनी नामक दो पत्नियाँ थी।"[110]

3. कल्पनापरक घटनाएँ– वैदिककालीन घटनाओं के ज्ञात प्रमाण इतने उपलब्ध नहीं है जितना वैदिक चिन्तन प्राप्य है। इस काल पर ऐतिहासिक उपन्यास लिखना अपने आप में विलक्षण एवं अनुपम है और निरपेक्ष दृष्टि से लिखना अत्यन्त दुष्कर है। अल्पज्ञात घटनाओं के साथ कल्पनात्मक परन्तु विश्वसनीय घटनाओं का वितान बुनकर ऐतिहासिक उपन्यास का सृजन किया जाता है। सरस्वती से सदानीरा तक की यात्रा–गाथा में शत्रुघ्न प्रसाद ने ऐसी ही कल्पना–प्रतिभा को दर्शाया है। वैदिककाल में इन्द्र की प्रतिमा बनाए जाने का तो उल्लेख साहित्य में मिलता है परन्तु पणिशंख के माध्यम से इन्द्र की प्रतिमा बनवाकर वर्द्धमानपुर के महाराजा सुप्रिय को भेंट में प्रदान करना उपन्यासकार की कल्पना शक्ति की देन है। वैशम्पायन ऋषि का शिष्य एवं याज्ञवल्क्य के सखा श्रीपाल(सामश्रवा) नागबस्ती में जाता रहता है। नागबस्ती प्रमुख सुश्रवा की पुत्री मणिप्रभा एवं सामश्रवा में प्रेम हो जाता है। याज्ञवल्क्य गुरू द्वारा निष्कासित होकर सदानीरा तट अर्थात कीकट क्षेत्र तक की यात्रा करते हैं। ग्रामीण असित पणि शंख एवं महानगरीय लोभ में महासिंधुज चला जाता है। लुट–लुटा कर वापस लौटता है। विदेह क्षेत्र में बुझावन और मैनी के मध्य अनबन होती है। बुझावन प्राकृतिक घटना में खो जाता है। सुहावन और मैनी में निकटता होती है। ग्राम–समिति मैनी और सुहावन को

साथ रहने की अनुमति देते हैं। बुझावन अपना अधिकार त्याग देता है। निराश एवं हीन भावना से ग्रस्त बुझावन याज्ञवल्क्य ऋषि के साथ रहता है। सामश्रवा एवं मणिप्रभा विवाह कर याज्ञवल्क्य के पास आ जाते है। बुझावन याज्ञवल्क्य ऋषि को उपहार में मिली गाएँ व्रात्य बस्ती में ले जाता है। सोने का लोभ दिखाकर व्रात्य सेनापति खरपत की पुत्री पाटली को आकर्षित करता है। आपत्तिजनक अवस्था में पकड़ा जाता है। याज्ञवल्क्य मित्र ऋषि के साथ व्रात्य क्षेत्र में जाते हैं। तंत्री द्योतन, गुणी सरना एवं कौषितकि मुनि के साथ संघर्ष एवं चिंतन करते हैं। व्रात्य समूह के गृहपतियों की सभा में याज्ञवल्क्य मित्र ऋषि एवं कौषीतकि मुनि के प्रयासों से बुझावन और पाटली का विवाह सम्पन्न करवाया जाता है और वैदिक एवं व्रात्यों का मतभेद मिटा कर एकत्व की स्थापना का प्रयास किया जाता है। इन्हीं काल्पनिक घटनाओं का सृजन कर उपन्यासकार अपने कथ्य को प्रेषित करता है।

4. कल्पानापरक पात्र :– ऐतिहासिक उपन्यास का लेखक ऐतिहासिक पात्रों के साथ–साथ कुछ काल्पनिक पात्रों का सृजन करता है जिनके माध्यम से कथ्य को वाणी प्रदान की जाती है। वर्द्धमानपुर के महाराज सुप्रिय, पणिशंख, सामश्रवा, ग्रामीण युवक असित, उसकी माँ संभूति व पत्नी विभा, नाग बस्ती प्रमुख सुश्रवा ग्रामीण बुझावन, मैना, सुहावन, किन्नर नायक भद्रबाहु व पत्नी मानसी, देवप्रिय व रत्ना, आचार्य सोमक, पर्वतक, भासिक, ईशर, नागकन्या मणिप्रभा, सेनापति वज्रपाणि, अमात्य इन्द्रशरण, गुणी द्योतक एवं सरना, सेनानी खरपत, खरपत पुत्री पाटली, यति देवेश आदि पात्र कल्पना प्रसूत हैं जो उपन्यासकार की दृष्टि एवं विचारों के संप्रेषक हैं। ये पात्र ऐतिहासिक प्रतीत होते हुए लेखक के उद्‌देश्य की पूर्ति में आधार बनते हैं।

5. ऐतिहासिक एवं काल्पनिक वातावरण – किसी काल विशेष की उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर कुशल उपन्यासकार तद्‌युगीन परिवेश को इस रूप में चित्रित करता है कि काल्पनिक घटनाएँ व पात्र भी यथार्थ प्रतीत होने लगते हैं। 'सस्वती–सदानीरा' उपन्यास में लेखक ने सिन्धु सभ्यता, वैदिक सभ्यता एवं उत्तर वैदिक सभ्यता को एकसूत्र व एक कालखण्ड में दर्शाकर तद्‌युगीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक स्थितियों का यथार्थ परक चित्रण किया है कि ऐतिहासिक भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में कहीं भी अस्वाभाविकता या असंभाव्यता प्रतीत नहीं है। लेखकीय विवरणों, कथात्मक बिम्बों एवं पात्र–चरित्र में उस काल का परिवेश चित्रमयी हो उठता है। सरस्वती नदी का तट, ऋषि–संस्कृति, सदानीरा का तट, व्रात्य संस्कृति, महासिंधुज नगर, व्यावसायिक संस्कृति का सम्पूर्ण यर्थाथ व्यक्त करता है। वन प्रदेशों में स्थित किन्नर, गन्धर्व, किरात आदि के साथ–साथ नाग–बस्ती एवं ग्रामीण संस्कृति अपनी पूरे रूप रंग में चित्रित हुई है। ऋषि संस्कृति यज्ञ एवं कृषि पर अवलम्बित है। सप्तसिंधु के आर्य आकाश को पिता, पृथ्वी को माता मानते है। वे अग्नि पूजक हैं। विवाह संस्कार भी यज्ञ विधान से ही सम्पन्न होता है। सोमरस का महत्व है। याज्ञवल्क्य कहते है

– "हां कात्यायनी! अग्नि को सोमरस की हवि देकर हम सोम का पान करेंगे। नये जीवन के लिए मुस्करा उठेंगे।"[111] वन क्षेत्र की नागबस्ती नागदेवता की पूजा करती है। सोमलता व सोमरस बेचकर जीवन यापन करती है। नाग–विष से बनी औषधि, जड़ी–बूटी आदि भी बेचते है। श्रीपाल एवं वटुकों ने नागबस्ती में देखा – "पत्थर के ऊँचे चबूतरे पर नागदेवता फण काढ़े विद्यमान थे। नाग कुल की स्त्रियाँ नागदेवता को दूध और जौ का लावा समर्पित कर रही थीं।...........नाग की पूजा अद्भुत हैं। वैदिक यज्ञ से सर्वथा भिन्न हैं।"[112] ऋषि संस्कृति वैदिक मंत्रों से पूरित यज्ञ विधि एवं आश्रम व्यवस्था पर आधारित है। इन्द्र की आराधना प्रमुख है। वैशम्पायन भी उठ गए थे। उनका स्वर सुनायी पड़ा।" स्वस्तिनः इन्द्रो वृद्धश्रवा, स्वस्ति नः पूजा विश्वदेवा।"[113] आर्य जीवन में यज्ञ का दैनिक–चर्या में महत्वपूर्ण स्थान है। गोघृत, अष्ट गंध एवं सोमरस की आहूति दी जाती है। यज्ञ पूर्ण करवाने में ब्रह्मा, अध्वर्यु होता एवं उद्गाता चार पुरोहितों की अनिवार्यता है। सामगायन का पाठ, सूर्य, अग्नि, वरूण, इन्द्र की उपासना वैदिक जीवन का आधार है।

श्रीपाल सामगायन में साथ हो गया –"अग्नि ज्योति है। ज्योति अग्नि है। इन्द्र ज्योति है। सूर्य और ज्योति में भिन्नता नहीं है।"........याज्ञवल्क्य ने अपनी नववधू के साथ निवेदन किया– "हे अग्नि! यजमान दम्पत्ति देववाणी द्वारा आपका स्तवन करते हैं।........'सर्व वै पूर्ण स्वाहाः' के साथ यज्ञ पूर्ण हुआ।"[114] आश्रम व्यवस्था में आर्य, आर्य प्रदेश, वैदिक ऋषियों, वैदिक कथाओं के साथ अध्ययन करवाया जाता है। नियम, संयम, अनुशासन का जीवन व्यतीत किया जाना आश्रम की मर्यादा है। वैदिक आर्य कृषि संस्कृति एवं ग्रामीण संस्कृति के समर्थक थे –"सरस्वती और दृषद्वती का संगम कुछ दूरी पर था। खेतों में यव(जौ) मुदग (मूंग), मसूर और कहीं–कहीं गोधूम (गेहूं) लगे थे।.....कहीं नदी के जल को कुल्या (नहर)से अपने खेत में लाने लगे। कहीं कूप से जल निकालकर अपने खेत को पटाने लगे।"[115] महासिंधुज के पणिक व्यापार–व्यवसाय में समृद्ध हैं। आर्य क्षेत्र में वैश्यों के साथ मिलकर उन्नत हुए हैं। उचित–अनुचित की मर्यादा से हीन धन कमाने को ही जीवन का उद्देश्य मानते हैं। जुआ–ऋण आदि पणिक संस्कृति की ही देन है। ग्रामणी सुव्रत पणिक शंख से कहता है –"फिर जुआ क्यों........शंख? तुम पण्यजीवि पणिक हो। वैदिक विधि निषेध को नहीं मानते। वैदिक वैश्यों से कुछ सीखो।......... हमने तुम्हें यहाँ वस्त्र और अन्न के क्रय की अनुमति दी है। इस द्यूत की अनुमति नहीं दी है।"[116] यह नगरीय सभ्यता ग्राम सभ्यता को प्रभावित करती है। धनहीनता लोभ व कुमार्ग पर चलने को बाध्य कर देती है। जुआ खेलना अधर्म है। जुआ खेलने वाला परिवार कष्ट भोगता है। संयमी जीवन की श्रेष्ठता वैदिक जनों का आधार है। यह ऋग्वेद के उद्धरणों के माध्यम से अभिव्यक्त कर लेखक ने ऋग्वैदीय वातावरण को व्यक्त किया है। महासिंधुज की समृद्धि एवं वैभव का चित्रण सिन्धुघाटी सभ्यता के अनुकूल ही किया गया है। महासिंधुज नगर, सरस्वती नदी, सदानीरा (गण्डक) नदी, सप्तसिंधु प्रदेश, ब्रह्मवर्त प्रदेश, कीकट (मगध क्षेत्र) विदेह आदि इतिहास द्वारा प्रमाणित ऐतिहासिक स्थल हैं, जिनका सम्बन्ध विवेच्य उपन्यास

के कथानक के साथ जुड़ा है। शंख ने देखा कि –"वर्द्धमानपुर जागकर गतिशील हो चुका है।..........कहाँ वह महासिंधु महानगर और कहाँ यह वर्द्धमानपुर।...........वहाँ विशाल पक्के भवनों की व्यवस्थित पंक्तियाँ, भवनों के भीतर स्नानागार, मध्य में आँगन, आँगन में कूप, जल की निकासी के लिए नालियाँ, मंदिर और मनोरंजन गृह.........सब एक व्यवस्था में है। शिल्पियों से निर्मित वस्तुओं और वन एवं कृषि से प्राप्त अन्नादि का सुदूर देशों में निर्यात और कुछ आयात भी।.......कहाँ यह छोटा नगर, कहने को राजनगर।"[117] "व्रात्यों का प्रभाव सदानीरा से शोण नदी तक है।..... पहले काशी तक था।[118]..........सप्तसिंधु में कृषि का विकास हुआ है।[119].......... ...ये सरस्वती तट से इतनी दूर आ गए है,[120].........आदि कथनों में ऐतिहासिक स्थलों का उल्लेख है जो कथा प्रवाह को बनाए हुए हैं।

'वैदिककालीन' संस्कृति में ग्रामणी, पुरोहित और सेनानी ही शासन व्यवस्था के प्रमुख संचालक हैं। कर्तव्यनिष्ठा को जीवन का धर्म समझते हैं। व्रात्य समूह में भी गृहपति ही शासन संचालक है। राजा का पद सृजित होने लगा है। सुप्रिय के माध्यम से प्रस्तुत किया है कि पद अहंकार देता है। साथ ही राजा जनक के माध्यम से उदारचेता शासक का स्वरूप स्पष्ट हुआ है। राजनैतिक जीवन उस काल में ऋषियों द्वारा संचालित रहा है। याज्ञवल्क्य राजा जनक के परामर्शदाता हैं। इधर वैषम्पायन भी शासन सत्ता पर अपना प्रभाव रखते हैं। ग्रामीण जीवन कृषि पर अवलम्बित है। गाय का दूध और खेतों से प्राप्त अन्न से जीवन चल ही जाता है। संभूति एवं विभा व ग्रामणी के कथनों से स्पष्ट होता है। शिल्प कला भी आजीविका का माध्यम है। श्रम की महत्ता है। उधर पणिक सभ्यता वैभव–विलास की समृद्धि के चरम पर है। ग्राम एवं महानगर के जीवन की आर्थिक स्थिति का अन्तर असित के कथन से स्पष्ट होता है। वह सोचता है कि –"ग्राम के जीवन में आवेग नहीं है। धन की त्वरित वृद्धि नहीं है। सुख के साधन सीमित हैं।.........महासिंधुज महानगर में सुख असीम होगा। उषा और संध्या स्वर्ण की वर्षा कर रही होगी।.........खंडित संस्कार वालों ने महासिंधुज महानगर बसा लिया है। संस्कारी हवन कर रहे हैं। खेत में हल चला रहे हैं और वन में गोचरण......तभी तो इस घर में धनहीनता–दीनता विराजमान है।"[121] आर्थिक जीवन की विवशता भी है। संयम का जीवन भी है।

समाज वर्ग में, श्रेणियों में प्रतिष्ठित होता जा रहा है। असित कहता है–"ऋषि वैषम्पायन कहते हैं कि आगे आचार्य और पुरोहित के पुत्र आचार्य और पुरोहित बनेंगे। ब्राह्मण कहलायेंगे। शस्त्रधारी बलशाली सैनिक सेनानी का पुत्र क्षत्रिय कहलायेगा। कृषि गोपालन और व्यापार करने वाले वैश्य कहे जायेंगे।"[122] समाज वर्ग एवं श्रेणियों में जन्मना व्यवस्था अपनाने जा रहा है। ऐसी व्यवस्था दी जा रही है। इस व्यवस्था पर याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि विचार कर रहे हैं। समाज में स्त्री–पुरूष में ज्यादा भेद नहीं है। स्त्री को अपने जीवन का निर्णय करने का अधिकार है। यद्धपि पुरूष प्रधानता दिखाई पड़ती है। गार्गी, कात्यायनी, मैत्रेयी विदुषी महिलाएँ नारी स्वाधीनता का प्रतीक है। मणिप्रभा व पाटली आदि प्रेम–विवाह को मान्यता दिलवाती

हैं। नारी का ईर्ष्यालु व अविश्वासी स्वभाव कात्यायनी के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। मैत्रेयी प्रसंग में स्पष्ट होता है कि स्वतंत्र भाव रखने पर भी युवा नारी संदेह से देखी जाती है। याज्ञवल्क्य शिक्षा व ज्ञान की पिपासा रखने वाली मैत्रेयी से कहते हैं – "आप अविवाहित तरूणी हैं। कठिनाई होगी।"[123] गार्गी भी सोचती है– "मैत्रेयी को ज्ञान चाहिए या तेजस्वी पुरूष? ऋषि का ज्ञानमय सान्निध्य या सुन्दर पुरूष का?"[124] वैदिक काल में स्त्री को समाज में सम्मान और अधिकार प्राप्त है। वैदिक युग का चिन्तन यज्ञ धर्म, कर्मवाद, पुनर्जन्म मोक्ष, परलोक कल्याण पर आधारित था। कीकट प्रदेश के व्रात्य समूहों में एक व्रात्य शिव की आराधना का महत्व है। यहाँ तंत्र–मंत्र का जीवन भी है। गुनी द्योतक के माध्यम से तांत्रिक अभिचार युक्त प्रभावों को दर्शाया है। "नदी तट पर ही तंत्री द्योतक व्याघ्रचर्म पर बैठा हुआ था। शरीर अजचर्म से ढका हुआ था। शीश पर जटा थी। बाएँ हाथ में सर्पाकार लकड़ी थी।. .... मुट्ठी में बंद बालू को देखकर गुनगुना रहा था फिर दोनों ऋषियों पर बालू फेंक दी।. ....द्योतक ने अपनी सर्पाकार काली लकड़ी को आगे बढ़ाया। वह मंत्र पढ़ने लगा।"[125] विवेच्य उपन्यास में ऋषियों की यज्ञीय संस्कृति, नाग, किन्नर, कोल, किरात, पणि एवं व्रात्य जीवन का सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवन साकार हुआ है। सांध्य–अग्निहोत्र, जौ का मादक पेय, अधोवस्त्र, अधिवास, पर्णशाला, सोमरस, रथ्या, तंतु और ओतु, आर्ष दृष्टि, द्युलोक, पण्यवीथी, दुग्ध, सत्तू, मधु, व्याघ्रचर्म आदि शब्दावली भी वैदिक वातावरण को पुष्ट करती है। 'सरस्वती–सदानीरा' में अभिव्यक्त वातावरण को ऐतिहासिक यथार्थता प्रमाणित करने के लिए निम्न प्रमाण दिए जा रहे हैं :–

(1) ऋवैदिक आर्यों का भौगोलिक केन्द्र 'सप्त–सैंधव' था। यही इनका मूलस्थान जान पड़ता है। सिन्धु, सरस्वती, सतलज, व्यास, रावी, चिनाब, झेलम द्वारा सिंचित प्रदेश।[126]

(2) ऋग्वेद में राजाओं का उल्लेख है पर सम्भवतः आरम्भ में अपनी वीरता एवं प्रभावोत्पादकता के गुणों के आधार पर इस पद पर निर्वाचन होता था। ऋग्वेद में राजा के तीन अधिकारी पुरोहित, सेनानी, ग्रामणी होते थे।[127]

(3) वेदों में प्राप्त वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय वस्त्र, चद्दर, चर्म का सामान व्यापार की प्रमुख वस्तुएँ थी। व्यापार एक विशेष वर्ग के हाथों में निहित था। वे पणि कहलाते थे।[128]

(4) उत्तर वैदिक काल में राजा के अधिकारों में वृद्धि हो गई थी। उनमें स्वच्छन्दता बढ़ गई थी। सैनिक शक्ति के कारण भी राजा निरंकुश होते जा रहे थे। गो धन समृद्धि की नींव थी।[129]

(5) ऋग्वेदकाल में यज्ञ करते समय आर्य अपने इष्ट देवता को घी, दूध, जौ, तिल, चावल आदि खाद्य पदार्थों का होम किया करते थे। गायत्री मंत्र का बड़ा महत्व था। जादू–टोना, धोखा, व्यभिचार निंदनीय माना जाता था।......ऋषियों ने कहा सत् एक ही है। अग्नि, यम, मातरिश्वा। आर्यों ने परमतत्व की प्रतिष्ठा की। उसे हरिण्यगर्भ, प्रजापति, विश्वकर्मा नामों की संज्ञा दी।[130]

(6) मैक्डानल का मत है कि – ऋग्वैदिक देवताओं में वरूण, इन्द्र, सूर्य, अग्नि, सोम, अदिति आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[131]

(7) वी. ए. स्मिथ ने लिखा है कि ब्राह्मणों का कार्य धार्मिक कार्यों का सम्पादन करवाना एवं क्षत्रियों का शत्रुओं से धर्म की रक्षा करना निर्धारित किया गया। आर. पी. त्रिपाठी के अनुसार ऋग्वैदिक आर्यों में स्वस्थ पारिवारिक जीवन की नींव पड़ चुकी थी और विवाह संस्कार पावन एवं अटूट माने जाने लगा था। पी.वी. काणे के अनुसार द्यूत क्रीड़ा भारत में अति प्राचीन बुराईयों में से एक थी।.........नीवि, उत्तरीय, अधिवास आदि वस्त्र पहने जाते थे।[132]

(8) शतपथ ब्राह्मण में कृषि कार्यों का उल्लेख मिलता है। जुताई, बुवाई, कटाई आदि व हलों के आकार में वृद्धि हो गई थी बैलों से खींचे जाने लगे थे। जौ, चावल, गेहूँ, तिलहन आदि की फसलों का उल्लेख मिलता है।[133]

'सरस्वती–सदानीरा' उपन्यास में चित्रित वैदिककालीन वातावरण ऋग्वेद व वैदिक साहित्य की उपलब्ध सामग्री व लेखकीय प्रतिभा का अवदान है, जो वैदिक जीवन को सम्पूर्ण परिवेश में जीवन्त कर देता है। इस रूप में यह उपन्यास वातावरण प्रधान उपन्यास कहलाने का अधिकारी है।

6. इतिहास एवं कल्पना का समन्वय – 'सरस्वती–सदानीरा' उपन्यास में वैदिककालीन घटनाओं एवं पात्रों के साथ कल्पना प्रदत्त प्रांसगिक घटनाओं एवं पात्रों का संयोजन कर याज्ञवल्क्य की सरस्वती से सदानीरा तक अर्थात् सप्तसिंधु प्रदेश से कीकट (मगध) प्रदेश तक की यात्रा गाथा निर्मित की गई है। शत्रुघ्न प्रसाद ने अध्ययन सम्पन्नता एवं कल्पना प्रतिभा से अल्पज्ञात वैदिक काल को सर्वज्ञात बना दिया है। इतिहास के साथ कल्पना का इतनी कुशलता से समावेश किया गया है कि उपन्यास में व्यक्त वैदिक जीवन सच्चा और वास्तविक प्रतीत होता है। वैदिक ऋषि याज्ञवल्क्य के साथ सामश्रवा, बुझावन, यतिदेवेश, गुणी एवं तंत्री सरना एवं द्योतक, मुनि कौषीतकि आदि पात्रों को सम्बद्ध कर कथानक को गति एवं चरम विकास देने में इतनी कुशलता बरती गई है कि ये सत्य पात्र लगते हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता, वैदिक आर्य सभ्यता व उत्तरवैदिक सभ्यता के साथ–साथ नाग, किन्नर, किरात, कोल, विदेह एवं व्रात्य जीवन को एकसूत्र में पिरोकर एक ही काल में दर्शाने की कुशलता अद्वितीय है। याज्ञवल्क्य ऋषि का वैशम्पायन के साथ मतभेद–रूढ़िगत एवं प्रगतिशील वैचारिक मतभेद दर्शाकर सांस्कृतिक प्रगतिशील चिंतन की अभिव्यक्ति में नवीन आध्यात्मिक चिंतन का समावेश दर्शनीय है। याज्ञवल्क्य ऋषि के कात्यायनी एवं मैत्रेयी से विवाह जहाँ वैदिक सत्य पर आधारित है, वहीं सामश्रवा–मणिप्रभा व बुझावन–पाटली का विवाह कल्पना पर आधारित है। दाम्पत्य जीवन के तीनों युग्म एक ही यथार्थ को चित्रित करते हैं। सभी कार्यों एवं घटनाओं को इतनी कुशलता से गुंथा गया है कि एक ही धागे में पिरोए मणियों की माला सी प्रतीत होते है। आर्य यज्ञ का अग्नि पुंज एवं वैदिक रूद्र, नागदेव, किन्नर समाज के शिव, एक व्रात्य

समुदाय का एकीकरण करते हुए नाग, किन्नर, यक्ष, कोल आदि समुदायों को मिलाकर एक जीवन की प्रतिष्ठा व समरस समाज की स्थापना का प्रयास इतनी प्रवाहशीलता एवं एकसूत्रता के साथ किया गया है कि भिन्न–भिन्न जीवन शैलियाँ एक सांस्कृतिक उद्गम एवं संस्कृति में विलीन दिखाई पड़ती है। ऐसे लगता है जैसे सप्तसिंधु से निकली आर्य जीवन सरिता व्रात्य प्रदेश रूपी सरोवर में मिल गई हो। इतिहास–कल्पना का समन्वय जल–दुग्ध मिश्रण लगता है।

4.7 प्राचीन भारतकालीन ऐतिहासिक उपन्यास –

(1) ऐतिहासिक घटनाएँ – ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के ऐतिहासिक घटना–क्रम पर केन्द्रित शत्रुघ्न प्रसाद रचित उपन्यास है– शिप्रासाक्षी है। मालव गणराज्य का अधिपति गन्धर्वसेन राजमद के अहंकार एवं विलासप्रियता के वशीभूत राज कर्तव्य को भूलकर व शैव आचार्य धवल से सहयोग पाकर जैन आचार्य कालकदेव की साध्वी बहन सरस्वती का अपहरण कर महारानी बनाना चाहता है। हित चिन्तकों द्वारा समझाने पर भी वापस लौटाने को तैयार नहीं होता है। शिवदत्त आचार्य भास्कर को बता रहे हैं– "महाराज गंधर्वसेन ने जैन आचार्य कालकदेव की भगिनी साध्वी सरस्वती का अपहरण कर राजभवन में रख लिया है। कालकाचार्य कुद्ध हैं। प्रजा में असन्तोष है।"[134] नगर श्रेष्ठि नागदत्त समझाते हुए कहते हैं– ''महाराज! अब वे राजकुमारी नहीं संन्यासिनी हैं। धर्मपूज्या हैं। जैन प्रजा के लिए आदरणीया हैं। आपने बलात ऐसा किया है। यह अधर्म है।"[135] महाराज गंधर्वसेन द्वारा किसी भी परामर्श को स्वीकार न करने और साध्वी को न लौटाने से क्रोधित कालकदेव पारस्य देश के शकों को सहयोग का आश्वासन देकर उज्जयिनी पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित करते है। महामात्य ने राजदूत का पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया – ''गुप्तचर से ज्ञात हुआ है कि आचार्य कालकदेव ने आपसे प्रतिशोध लेने के लिए शकशाहियों को आमन्त्रित किया हैं। ये शकशाहि पंचनद के शकों की सहायता से यहाँ तक आ गए हैं।..........ये लाट को नष्ट कर उज्जयिनी को घेर लेना चाहते हैं।''[136] शक आक्रमण होता है और महाराज गंधर्वसेन की पलायन के बाद मृत्यु हो जाती है। उज्जयिनी पर शकों का आधिपत्य हो जाता है। लिखा है– ''शकों ने जयघोष के मध्य राजसभा तथा राजभवन पर अपने झण्डे लहरा दिए। पर वे राजपरिवार को नहीं पा सके। वे पलायन कर गए।...........हाहाकार और अट्टहास के मध्य उज्जयिनी का पतन हो गया।"[137] राजकुमार विषमशील (चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य) ने गणराज्यों को संगठित कर उज्जयिनी से शकों का उन्मूलन किया और मालव गणराज्य पर अपना आधिपत्य किया। लिखा है – ''शंखनाद के साथ जय ध्वनि शिप्रा की लहरों तक जा पहुँची।........... उज्जयिनी मुक्त हो गयी। संध्या ने कुमार विषमशील पर और सम्पूर्ण विजयिनी सेना पर कुंकुम बिखेर दिया।"[138] शत्रुघ्न प्रसाद ने जैनग्रन्थ कालकाचार्य कथानक एवं प्राचीन भारत से सम्बन्धित

इतिहास ग्रन्थों के अध्ययन से प्राप्त सामग्री के आधार पर मूल कथनाक की रचना की है जो इतिहास सम्मत है।

प्रामाणिक संदर्भ—इतिहासकार जी.पी. सिंहल, हरिशंकर शर्मा, भरतेश कुमार, शिवकुमार गुप्त आदि द्वारा संपादित इतिहास ग्रन्थों में इन घटनाओं की पुष्टि होती है। 1. हरिशंकर शर्मा[139] एवं जी.पी. सिंहल[140] ने राजबली पाण्डेय को उद्घृत करते हुए लिखा है कि जैन ग्रन्थ कालकाचार्य एवं जनश्रुतियों के अनुसार उज्जयिनी के राजा 'गर्दभिल्ल' के अत्याचार से तंग आकर जैन आचार्य कालक पार्थिया में आबाद शकों के पास गए।.....कालक के कहने पर 96 शाहियों ने भारत पर आक्रमण किया। 71 ई0 पू0 भारत पर शकों का पहला आक्रमण हुआ। बोलन दर्रे से उतर तक उन्होंने सिन्धु सुराष्ट्र एवं लाट राजाओं को अधीन करते हुए अवन्ती पर आक्रमण किया। युद्ध में उज्जयिनी का राजा गर्दभिल्ल पराजित और निर्वासित हुआ। शकों ने अवन्ती पर अपना राज्य स्थापित किया। इस घटना के 14 वर्ष बीत जाने पर (57 ई.पू.) गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने अपनी शक्ति का संगठन करके शकों को उज्जयिनी से खदेड़ा और विक्रम संवत का प्रवर्तन किया। प्रबन्ध चिन्तामणि में उल्लेख है कि शकों ने उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल को परास्त कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया था।[141]

(2) ऐतिहासिक पात्र— 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास के केन्द्रीय पात्र महाराज गर्दभिल्ल एवं कुमार विषमशील (विक्रमादित्य) हैं जो पूर्णतः इतिहास सम्मत है। जैन आचार्य कालक देव एवं साध्वी सरस्वती जैन—ग्रन्थों द्वारा अनुमोदित इतिहास पात्र हैं। मत—भिन्नताओं के साथ शक शाहि मुलक, शिअक एवं षोडास भी ऐतिहासिक संज्ञा पाते हैं। लाट कुमार बलमित्र एवं आन्ध्र सम्राट शातकर्णि का भी इतिहास में प्रचुर उल्लेख मिलता है।

प्रामाणिक संदर्भ — (1) जी.पी. सिंहल ने गर्दभिल्ल, कालकाचार्य, सरस्वती, विक्रमादित्य तथा माओज को ऐतिहासिक माना है। उनके अनुसार उज्जयिनी के राजा का वास्तविक नाम गर्दभिल्ल नहीं था किन्तु यह वंश या शाखा थी जो प्रसिद्ध मालव गण के अन्तर्गत थी। गर्दभिल्ल राजा के पुत्र विक्रमादित्य ने एक बहुत बड़े गणसंघ का संगठन किया।........उसने शकों को मालवा से पराजित कर निकाल दिया। इस महान् घटना के उपलक्ष में एक संवत् का प्रवर्तन किया जो पहले कृत, फिर मालव और अन्ततः विक्रम संवत कहलाया।.........टार्न का मत है कि मालवा विजय 'माओज' ने की थी।......'माओज' शाखा का उल्लेख सिक्कों तथा खरोष्ठि लिपि से प्राप्त होता है।[142] 'शिप्रासाक्षी है' का मुलक 'माओज' का समानतावाची है।

(2) पंकजलता श्रीवास्तव ने मथुरा सिंहशीर्ष अभिलेख का उल्लेख करते हुए कहा है कि राजबुल का दूसरा पुत्र शोडास पहले क्षत्रप एवं बाद में महाक्षत्रप बना।........मार्शल के अनुसार तक्षशिला पर शासन करने वाला प्रथम शक शासक माओज था।[143]

(3) 'कालकाचार्य कथानक' एवं इतिहास—ग्रन्थों में कालकाचार्य एवं साध्वी सरस्वती ऐतिहासिक पात्र सिद्ध हैं।

(3) कल्पनापरक घटनाएँ— शत्रुघ्न प्रसाद ने 'शिप्रासाक्षी है' उपन्यास में कुमार विषमशील उज्जयिनी विद्यापीठ में शिक्षा ग्रहण करने, विद्युत्लेखा के जीवन की विडम्बना, राजप्रासाद का निर्माण, कुमार का जन्मोत्सव मनाना, नगरश्रेष्ठि नागदत्त को बन्दी बनाना और धनदत्त को नगर श्रेष्ठि बना देना, सुप्रिया दासी के पुत्र गजमुख का बन्दी बनाया जाना और कालतरूण संगठन संचालित करना, बलमित्र विषमशील एवं चण्डसेन द्वारा लाट प्रदेश में शकों से संघर्ष करना, भिक्षुधर्मरत्न का बन्दी बनना, शक सम्राट मुलक द्वारा सुमना नर्तकी को राजनर्तकी बनाना, कुमार विषमशील द्वारा माध्यमिका विद्यापीठ में आदित्य बनकर रहना, यदा–कदा शक राजकुमार षोडास से संघर्ष की स्थिति आना, आदित्य (विषमशील) और राजकुमारी हला के बीच प्रेम और अन्त में विवाह, नगर श्रेष्ठि नागदत्त द्वारा शक शासन का अंग न बनना, मंगलसेन, गजमुख एवं भिक्षुधर्मरत्न का कालतरूण संघ संचालित करना, पीड़ित नारियों की रक्षा करना, अपहृता शैव कन्या गौरी को बचाना, साध्वी सरस्वती व विद्युतलेखा का पुनः अपहरण होना, सभी सम्प्रदायों द्वारा मिलकर शकों का विरोध करना, श्रीदत्त और शशिलेखा का प्रेम, हरिदत्त द्वारा कथावाचन कर जन–समुदाय को प्रेरित करना, धनदत द्वारा नर्तकी सुमना की हत्या करना आदि छोटी–छोटी घटनाओं एवं प्रसंगों की कल्पना की है जिनसे सरस्वती अपहरण, शक विजय एवं शक पराजय की ऐतिहासिक घटनाएँ औपन्यासिक स्वरूप ग्रहण करती है।

(4) कल्पनापरक पात्र— प्रमुख इतिहास कालीन पात्रों के साथ कई काल्पनिक पात्रों का सृजन कर उपन्यास कार ने इतिहास को कलात्मक रूप दे दिया है। कथा में संवेदना एवं राष्ट्र धर्म का समावेश कल्पित पात्रों के मनोभावों एवं क्रिया व्यापारों द्वारा ही सम्भव हुआ है। राजनर्तकी विद्युत्लेखा, दासी सुप्रिया नर्तकी सुमना नारी विडम्बना एवं नारी प्रवृति की सरस गाथा निर्मित करने के लिए सृजित हैं। गजमुख, श्रीदत्त, भिक्षु धर्मरत्न, मंगलसेन एवं चक्रधर काल तरूण बनकर युवा शक्ति एवं चेतना के वाहक बने हैं। नगर श्रेष्ठि धनदत्त, नागदत्त, पुष्पदत्त, महामन्त्री सुमति, आचार्य भद्रबाहु, रूद्रसेन, चण्डसेन, कालभद्र, आचार्य देव भास्कर, वीरभद्र, कालेश्वर, आदि ऐसे कल्पना सृजित पात्र हैं जो ऐतिहासिक लगते हुए ऐतिहासिक घटनाओं के निमित्त बन रहे हैं। राजकुमारी हला उपन्यासकार की नवसृजना है जो भारतीयता को गौरव प्रदान करती है।

(5) ऐतिहासिक एवं काल्पनिक वातावरण— उपन्यासकार ने प्राचीन काल के समाज, राजनीति, संस्कृति, धर्म आदि के यथार्थ को भौगोलिक प्राकृतिक चित्रण के साथ अभिव्यक्त किया है। अवन्ती अर्थात उज्जयिनी प्राचीन काल से ही शैव धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म का केन्द्र रही है। गणराज्यों का शासन गणतन्त्र पद्धति से संचालित होता था। शिक्षा का केन्द्र ऋषि आश्रम हुआ करते थे। प्राचीन गौरवमयी गाथाओं के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती थी। पुनीत और समरस वातावरण होता था। धार्मिक संस्कारों का दैनिक जीवन में भी महत्व था।

उज्जयिनी के धार्मिक वातावरण का दृश्य मनोरम शब्दों में किया गया है। ''प्रभात की सुनहली बेला। उज्जयिनी जाग गयी थी। श्रद्धालु नागरिक शिप्रा के तट पर जा रहे थे। मन्दिरों के द्वार खुल चुके थे। शिवालय में ताण्डव स्तोत्र का पाठ हो रहा था। जैन मन्दिर में कल्याण स्तोत्र का वाचन हो रहा था। बौद्ध विहार से अर्चना के साथ धम्मपद के स्वर आ रहे थे।''[144] आर्थिक जीवन विषम था। श्रेष्ठियों के पास अतुल धनराशि जमा थी जिसके प्रभाव से वे राजसत्ता पर भी प्रभाव रखते थे। नगर श्रेष्ठि बनने को होड़ रहती थी। साथ ही ब्राह्मणों की व साधुओं की जीविका दान व भेंट पर निर्भर थी। भिखारियों की संख्या व अकाल आदि के समय सामान्य जनता की स्थिति दयनीय थी। विषमता पर कुमार विषमशील की व्याकुलता उनके मानवीय धर्म को व्यक्त करती है। —''कुमार विषमशील सूर्योदय के दिव्य दृश्य देख पुलकित हो रहे थे। पर भिखारियों की संख्या देख विकल हो उठे। इतना हर्ष, इतना सुख और इधर याचना की काँपती अंगुलियाँ। आश्रम व्यवस्था सांस्कृतिक जीवन का जीवन्त प्रतिनिधित्व थी। सम्पूर्ण भारतीय संस्कारों का आश्रय स्थल आश्रम हुआ करते थे। ''नगर से दूर उज्जयिनी का प्रसिद्ध विद्यापीठ बना हुआ था।........सौराष्ट्र, महाराष्ट्र तथा विन्ध्यदेश का यह प्रमुख शिक्षा केन्द्र था। इन क्षेत्रों के छात्र अन्तेवासी ब्रह्मचारी के रूप में रहकर शिक्षा पाते थे।

कुमार विषमशील का आगमन हुआ। आचार्य भास्कर ने अन्तेवासी ब्रह्मचारी के रूप में स्वीकार किया। कुमार को कुश, मेखला, मृगचर्म, दण्ड, कमण्डल धारण करना पड़ा। उपनयन संस्कार हुआ।........आचार्य ने कुमार की दक्षिण भुजा को ग्रहण कर शिष्य बना लिया।''[145]

गणतन्त्र राजतन्त्र में परिवर्तित होते जा रहे थे। शक्ति ने राजसत्ता को अहंकारी बना दिया है। सभी भोग प्रमुख हो रहा है। कर्तव्य की जगह विलास स्थापित है। राजनर्तकी विद्युतलेखा[146] नारी जीवन की व्यथा का प्रतिनिधि पात्र है। वह बौद्ध मठ, राज आश्रय, समाज, शिवालय, सभी जगह शोषित होती है। सरस्वती अपहरण भी इसी विलास प्रवृत्ति का परिणाम हैं। गंधर्व सेन का कथन उस काल की राजनैतिक शक्ति का स्पष्ट बयान है। —''राजतन्त्र की स्थापना के समय भी क्षोभ बढ़ा था। मैंने इन्हीं हाथों से मालव गणतन्त्र को राजतन्त्र में परिणत किया है।........मैंने एक तरूणी राजकुमारी को उसकी इच्छा के अनुसार राजभवन में स्थान दिया है।''[147] राजमद सत्ता एवं समाज का पतन करता है। उस काल में शक आदि पारस्य जातियाँ भारत के अनेक गणराज्यों मे स्थापित होना चाहती थी। मौका पाकर ऐसा हुआ। शकों कुषाणों हूणों एवं भारतीय गणराज्यों में संघर्ष व उथल—पुथल रहती थी। आपस में एकत्व की कमी थी। लाट की रक्षा उज्जयिनी करता तो उज्जयिनी का नाश नहीं होता। लाट के राजदूत ने बताया —लाट शकों की सेना से घिर गया है। वह शकशाहि उज्जयिनी पर आक्रमण करने वाले हैं।...........मैं सहयोग के लिए आया था परन्तु महाराज गंधर्वसेन सहयोग के लिए तत्पर नहीं है। यदि दोनों मिल जाते तो शक अवश्य पराजित हो जाते।''[148] वर्ण—व्यवस्था के अनुसार समाज संचालित होता था। जाति भेद व अछूत भाव समाज व धर्म में स्थापित था। समग्रतः

प्राचीन भारत के 'शिप्रा साक्षी है' में वर्णित वातावरण के लिए देव शर्मा ने लिखा है कि – "उपन्यास में देशकाल व समाज का सफल चित्रण है।...........प्रकृति वर्णन बहुत ही सजीव ढ़ंग से किया गया है।...सूर्योदय, प्रभात वेला, सांध्यवेला दोपहर का सूर्य, जागती हुई उज्जयिनी महाकालेश्वर का मंदिर शिप्रा तट, आश्रम का वर्णन वहाँ के वातावरण का सुन्दर चित्रण उपन्यास में है........प्राचीन काल के सामाजिक, धार्मिक वातावरण से जब पाठक रूबरू होता है तब वह पाता है कि उस समय में शैव सम्प्रदाय व जैन–बौद्ध सम्प्रदायों में टकराव था। जातिवाद हावी था व निम्न जाति के लोगों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता था।"[149]

प्रामाणिक संदर्भ–

(1) डॉ. हुकुमचन्द जैन ने मथुरा एवं अवन्तिका का ऐतिहासिक महत्व दर्शाया है। उत्तर प्रदेश के नगरों में यमुना के तट पर स्थित मथुरा का सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व सुरक्षित है।[150] अवन्ति प्राचीन भारत का महत्वपूर्ण राज्य था। पुराणों में इसे अवन्तिका कहा गया है। प्राचीन भारत में चार बड़े राज्यों में इसकी गणना होती थी। आधुनिक मालवा व मध्यप्रदेश के कुछ भागों से मिलकर अवन्ति जनपद बना था।[151]

(2) जी.पी. सिंहल ने उल्लेख दिया है कि कई कथानकों से उज्जयिनी में शैव व जैन धर्म का पारस्परिक कलह प्रकट है।....... जैन एवं बौद्ध संधारामों ने शकों एवं यूनानियों को सहयोग दिया। भारत के आन्तरिक भेद ने विदेशी आक्रमणकारियों की बराबर सहायता की है।[152]

(6) इतिहास एवं कल्पना का समन्वय– उज्जयिनी के पतन एवं पुनरूत्थान एवं गंधर्व सेन की पराजय व विषमशील की विजय की इतिहास कथा के साथ–साथ अन्य अवांतर प्रसंगों एवं पात्रों का समावेश कर 'शिप्रा साक्षी है' का औपन्यासिक वितान बुना गया है। साध्वी सरस्वती के अपहरण से पूर्व ही विद्युत्लेखा का राजनर्तकी रूप में शोषण दिखाकर गंधर्वसेन के विलासी चरित्र एवं उस राजकाल में हो रहे नारी शोषण की पृष्ठभूमि दर्शा दी गई है। श्रेष्ठि नागदत्त एवं धनदत्त का शासन के साथ जुड़ना–टूटना, दासी सुप्रिया एवं उसके पुत्र गजमुख की कथा, कुमार विषमशील का जन्मोत्सव एवं आश्रम निवास, लाट प्रदेश की रक्षार्थ बलमित्र के साथ किए प्रयास आदि प्रसंग मूल ऐतिहासिक कथानक को सुगठन एवं मनोरम बनाने के निमित्त सृजन किए गए हैं। ये प्रसंग मूलकथा के साथ इस समावेशी प्रवाह में चलते हैं कि कहीं भी ऐसा आभास नहीं होता कि ये अवांतर प्रसंग हैं। कुमार विषमशील के संघर्ष के साथ–साथ मंगलदेव, श्रीदत्त एवं गजमुख द्वारा संचालित काल तरूण समूह के गुप्त प्रयास भी उज्जयिनी मुक्ति व शक विरोध का सामूहिक प्रयास ही प्रतीत होता है। कुमार विषमशील का माध्यमिका विद्यापीठ में रहते हुए मथुरा कुमार षोडास के साथ आन्तरिक तनाव एवं कुमारी हला के साथ आत्मीय प्रेम की कथा इतिहास कथा का अभिन्न अंग लगती है। नर्तकी सुमना का शक सम्राट की राजनर्तकी बनना, भिक्षु धर्मरत्न, गजमुख, श्रेष्ठि नागदत्त का बंदी बनाया जाना, सरस्वती एवं विद्युत्लेखा का शकों द्वारा अपहरण, षोडास द्वारा धनदत्त एवं सुमना की

हत्या आदि प्रसंग शक अत्याचार को दर्शाकर जन आन्दोलन की भूमिका तैयार करने का ऐतिहासिक यथार्थ लगता है। आचार्य कालक द्वारा विषमशील का सहयोग करना व कुमारी हला के साथ विषमशील का परिणय दर्शाकर उपन्यासकार ने संघर्ष एवं प्रेम की गाथा कही है। सम्पूर्ण समायोजन इतनी कुशलता से किया गया है कि उपन्यास इतिहास एवं इतिहास उपन्यास लगता है। डॉ रजनीकान्त लहरी ने इस उपन्यास की कलात्मक श्रेष्ठता का उद्‌घाटन करते हुए लिखा है कि– ''कल्पना और यथार्थ का मणिकांचन योग, समन्वय की अद्‌भुत क्षमता, ऐतिहासिक यथार्थ के माध्यम से वर्तमान का विवेचन करने का सामर्थ्य उनकी इस कृति से स्पष्ट पर्यलक्षित होता है जो प्रामाणिकता को ध्वनित करके ऐतिहासिक उपन्यास की सफलता की घोषणा कर रहा है.........डॉ शत्रुघ्न प्रसाद ने 'शिप्रा साक्षी है' में इतिहास का सूखा ठट्टर न खड़ा कर नये प्रयोगों, नये भावबोध, और नई संवेदनाओं से उसमें जो प्राण प्रतिष्ठा की है वह बेजोड़ है।"[153] शत्रुघ्न प्रसाद ने इस उपन्यास में इतिहास की जड़ पर कल्पना सृजित फूल, पत्तों, शाखाओं से युक्त पेड़ का निर्माण किया है जिसके फूल, पत्ते, शाखाएँ, तना एवं जड़ पूर्णतः अविभाज्य होते हुए अपनी औपन्यासिक हरितिमा के साथ लहराते हुए एक पेड़ की संज्ञा पाते है।

4.8 पूर्व–मध्यकालीन ऐतिहासिक उपन्यास – शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'सिद्धियों का खण्डहर', कश्मीर की बेटी, तुंगभद्रा पर सूर्योदय एवं सुनो भाई साधो पूर्व–मध्यकालीन इतिहास पर आधारित हैं। 'सिद्धियों का खण्डहर' 12वीं सदी, 'कश्मीर की बेटी' 14वीं संदी, तुंगभद्रा पर सूर्योदय' 14वीं सदी एवं सुनो भाई साधो में 15वीं सदी के भारत का यथार्थ चित्रण किया गया है।

(1) ऐतिहासिक घटनाएँ – 'सिद्धियों के खण्डहर' उपन्यास में मुहम्मद गौरी के एक सेनानायक इख्तियार–बिन–बख्तियार खिलजी द्वारा मगध एवं बौद्ध शिक्षा केन्द्रों पर किए गए आक्रमण एवं विध्वंस की घटना उपन्यस्त है। उपन्यास में मगध के पाल वंश, बंग प्रदेश के सेन वंश, उदन्तपुरी के बौद्ध विहार, पाटलिपुत्र एवं मणिमती नगर, नालन्दा और विक्रमशिला जैसे प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्रों को नष्ट किए जाने की कथा कही गई है जिस घटना ने भारत की सम्पूर्ण उज्ज्वलता एवं आलोक को निष्प्रभ कर दीर्घकालीन अंधकार में डुबो दिया था। सैनिक कहता है– इख्तियार ने सारनाथ को उजाड़ दिया है। मणिमती को नष्ट कर दिया है। ...."सूचना मिल गई है कि पाटलीपुत्र की पराजय हो गयी। नगर के प्राचीनतम बौद्ध केन्द्र नष्ट कर दिये गये हैं।................तक्षशिला विद्यापीठ, अजयमेरू गुरूकुल और श्रावस्ती विहार के विनाश के बाद तुर्क नालन्दा महाविद्यालय के पास आ रहे हैं.........उदन्तपुरी और उदन्तपुरी विहार के अग्निदाह दोनों की सूचना आग की लपट के समान दीपनगर के सैनिक शिविर में पहुँच गई।..........लोगों में भयभीत आँखों से देखा – नालन्दा विश्वविद्यालय के शिखरों पर आग की लपटें........... भगदड़ के साथ चीत्कार........पर चीत्कार को सुनने वाला कोई नहीं।"[154]

उपन्यास में वर्णित ये घटनाएँ सर्वथा इतिहास प्रमाणित हैं। डॉ हुकुमचन्द जैन[155] एवं डॉ भरतेश कुमार मिश्र द्वारा लिखित 'भारतीय ऐतिहासिक स्थल कोश' एवं 'भारत का सम्पूर्ण इतिहास' में इन घटनाओं का उल्लेख मिलता है। लिखा है कि – "इख्तियारूद्दीन–बिन–बख्तियार खिलजी ने सन् 1202 में बिहार पर धावा बोल दिया और बिहार के मुख्य–मुख्य स्थानों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस युद्ध में हजारों बौद्ध भिक्षुओं की हत्याएँ कर दी गई। उद्दण्डपुर, विक्रमशिला एवं नालन्दा के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों को नष्ट कर दिया गया।"[156]

'कश्मीर की बेटी' में शत्रुघ्न प्रसाद ने सन् 1320ई. से 1339ई. तक की उथल–पुथल को केन्द्रीय विषयवस्तु बनाया है। सन् 1320 में दलुचा नामक मंगोल के आक्रमण का सामना न कर पाने की स्थिति में राजा सहदेव पलायन कर जाते है। डामर सामन्त रामचन्द्र शासन को संभालता है। भोट कुमार रिच्छेन छलपूर्वक राजा रामचन्द्र की हत्या कर शासन हथिया लेता है। रामचन्द्र की पुत्री कोटादेवी कुमार उदयदेव की खोज करवाती है। उदयनदेव एवं साहसी कोटा देवी कश्मीर के शासन को स्थिरता देने का सफल प्रयास करते हैं। उदयनदेव की उदासीनता एवं अफगान शाहमीर के षड़यन्त्र ने कोटा देवी को प्राण त्यागने पर विवश कर दिया। इसी का लाभ उठाकर अफगान शाहमीर कश्मीर का शासक बन जाता है। जौनराज कृत 'राजतंरगिणी' में वर्णित घटनाओं को आधार बना कर उपन्यास की रचना की गई है। कोटादेवी साहस रखती है। जयापीड़पुर में अकाल के संघर्ष से पीड़ित जनता की रक्षा एवं व्यवस्था के लिए रानी चली जाती है। पीछे से अफगानी सैनिकों, कोटराज के सैनिकों एवं नए अफगानी सिपाहियों ने शाहमीर एवं अलीशेर की देख–रेख में श्रीनगर पर कब्जा कर लिया।.........जयापीड़पुर में कोटादेवी को शिवचन्द्र से यह संवाद मिला।.........कोटादेवी शिवचन्द्र एवं केतन के साथ राजभवन के निकट आ गई।............रात में अचानक शाहमीर ने आक्रमण कर दिया। राजभवन घेर लिया। कोटारानी एवं चाँदनी ने संघर्ष किया। घायल कोटादेवी एवं चाँदनी को अलीशेर ने कैद कर लिया।..........कोटादेवी और चाँदनी दोनों ने खुदकुशी कर ली है।..........प्रातःकाल हारि पर्वत और शंकराचार्य पर्वत ने देखा कि राजभवन का झण्डा बदल गया है।"[157] इमत्याज अहमद ने लिखा है कि – "1320ई. में दलुचा नामक मंगोल नेता ने आक्रमण किया। इससे उत्पन्न अराजकता का लाभ उठाकर शाह मिर्जा (शाहमीर) नामक व्यक्ति ने कश्मीर में सत्ता ग्रहण कर ली।"[158] प्रसिद्ध इतिहासकार आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने भी इस घटना की पुष्टि करते हुए लिखा है कि –"पंजाब के उत्तर पश्चिम में काश्मीर नामक स्वतंत्र राज्य स्थित था। यहाँ के हिन्दू राजा के यहाँ शाह मिर्जा नाम के एक वीर योद्धा ने नौकरी कर ली और धीरे–धीरे अपना प्रभाव जमाकर 1339ई. में उसने काश्मीर के सिंहासन पर अधिकार कर लिया।[159]

'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' उपन्यास में मुहम्मद–बिन–तुगलक द्वारा कम्पिली, देवगिरि, द्वारसमुद्र, वारंगल, तैलंगाना आदि पर आधिपत्य करना, हरिहर राय एवं बुक्का राय को बन्दी बनाना,

धर्म–परिवर्तन कर हक्का खाँ व बुक्का खाँ बनना, अद्वैतवादी माधवाचार्य (स्वामी विद्यारण्य) द्वारा सभी सम्प्रदायों में एकत्व की स्थापना करना, मुहम्मद बिन–तुगलक द्वारा देवगिरि को दौलताबाद बनाना, ताँबे के सिक्के चलाना और राजधानी परिवर्तन करना, दोआब कर में वृद्धि एवं विद्रोह सहना, गुजरात की महारानी देवलदेवी पर अत्याचार और अंत में हरिहर राय व बुक्काराय द्वारा विजयनगर की प्रतिष्ठा कर हिन्दू राज्य कायम करने की घटनाओं एवं प्रसंगो को कथा रूप देकर दक्षिण भारत के इतिहास का प्रामाणिक चित्रण किया है। स्वामी विद्यारण्य ने कहा –"हरिहरराय अंधेरा आता है। उसके बाद ही उजाला भी..........तुम हरिहर हो.......... तुम बुक्का हो। इस धरती के पूत हो। इस धरती माँ की सन्तान हो।..........मरप्पा ने कहा – अग्रज! मेरे तरूण सैनिकों ने स्वाधीनता की लड़ाई के लिए खड्.ग धारण किया है। यदि आप दोनों मातृभूमि की स्वाधीनता चाहते हैं तो तरूण सैनिक रक्ततर्पण करने के लिए कटिबद्ध हैं।[160] दोनों ने स्वामी विद्यारण्य के चरणों में स्पर्श कर नमन किया। शीश झुका दिया।" आबिद ने कहा – आनेगोन्दी पर विष्णु ध्वज फहर रहा है। आनेगोन्दी ने तुर्क सल्तनत की जंजीर को तोड़कर फेंक दिया है।.........हम्पी की सेना विजयी होकर राजभवन के ऊपर विष्णु ध्वज को देख जय घोष करने लगी। हक्का, बुक्का, मरप्पा और जम्बुकेश्वर ने हम्पी की विजयी सेना का अभिनन्दन किया।"[161] स्वामी विद्यारण्य ने कहा कि हरिहर राय बल्लाल के परामर्श से ही विजयनगर का निर्माण कर नये राज्य की प्रतिष्ठा करेंगे। हरिहर ने शीश झुकाकर इसे मान्य किया।...........हरिहर राय सबके आशीर्वाद से सिंहासन पर आसीन हुए। सभी आचार्यों ने हरिहर के भाल पर तिलक किया। बल्लालदेव और प्रोलय वर्मा ने अभिनन्दन किया।........शिवमहिम्न स्तोत्र के साथ राज्याभिषेक की विधि पूरी हुई। वह ईस्वी सन् 1336 के वैशाख मास का शुक्ल पक्ष था।..........विजयघोष आकाश को स्पर्श कर रहा था।"[162] जवाहर लाल नेहरू[163] लिखित 'विश्व इतिहास की झलक' में मुहम्मद–बिन–तुगलक का राजधानी परिवर्तन– दिल्ली से दौलताबाद (देवगिरी) ले जाना, कठोर शासन करना, दिल्ली का उजाड़ होना, 1336ई. में हरिहर राय द्वारा विजयनगर की स्थापना करना आदि प्रसंगों का वर्णन मिलता है। जो इन तथ्यों की ऐतिहासिक प्रामाणिकता सिद्ध करता है। डॉ हुकुम चन्द जैन ने भी 1326–27 ई. में मुहम्मद–बिन–तुगलक द्वारा देवगिरि को अपनी राजधानी बनाने व दौलताबाद नाम रखने[164] वारंगल पर गयाशुद्दीन तुगलक के समय उलुग खाँ द्वारा आक्रमण एवं विजय प्राप्त करने[165] 1336ई. में हरिहर एवं बुक्का द्वारा तुंगभद्रा नदी के तट पर विजयनगर की स्थापना करने की पुष्टि की है।[166] डॉ भरतेश कुमार मिश्र ने मुहम्मद–बिन–तुगलक द्वारा दो आब कर में वृद्धि करना, राजधानी परिवर्तन कर दिल्ली से दौलताबाद ने जाना, सांकेतिक मुद्रा के रूप में तांबे के सिक्के चलाना व खुरासान विजय आदि प्रसंगों को प्रामाणिक सिद्ध किया है।[167] प्रताप सिंह द्वारा संपादित 'मध्यकालीन भारत' इतिहास पुस्तक 'तुंगभद्रा में सूर्योदय' की प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं यथा – सुल्तान के भानजे गुर्शस्प को कम्पिल के राजा के यहाँ शरण मिलना, कम्पिल पर आक्रमण करना, गुर्शस्प की खाल खिंचवा लेना,

किशलू खां के विद्रोही होने पर सिर काटकर द्वार पर टांग देना जिससे इब्नबतूता डर जाता था, द्वार समुद्र अनेगोण्डी एवं माबर पर विजय प्राप्त करना, हरिहर तथा बुक्का द्वारा विजयनगर की स्थापना आदि को पूर्णतः इतिहास सम्मत ठहराती है।[168] प्रताप सिंह ने लिखा है कि –"मुहम्मद तुगलक ने प्रभावी ढ़ंग से दक्षिणी प्रदेशों के दमन के उद्देश्य से देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया। अत्याचार के विरोध की भावना इतनी तीव्र हुई कि सन्त–साधु भी विरोध में उतर आए। श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य स्वामी मध्वाचार्य ने सक्रिय भाग लिया और हरिहर और बुक्का नाम के दो भाईयों को जो मुहम्मद तुगलक के आदेश से मुसलमान बनाए गए थे और जिन्हें हिन्दुओं का विद्रोह शान्त करने के लिए भेजा गया था, पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित कर प्रसिद्ध विजयनगर राज्य की स्थापना कराई।"[169]

'सुनो भाई साधो' उपन्यास मध्यकालीन निर्गुण संत कबीर के जीवन–प्रसंगों, सिकन्दर लोदी के क्रूर शासन एवं कबीर और सिकन्दर लोदी के टकराव की घटनाओं पर केन्द्रित है। कबीर नीरू और नीमा को तालाब के पास मिलते हैं। किसी ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न माने जाते हैं। लोई के साथ विवाह होता है। दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी की हिन्दू पत्नी से उत्पन्न निजामशाह दिल्ली का बादशाह बन जाता है। लोदी वंश का जौनपुर के शर्की सुल्तानों के साथ संघर्ष रहा है। बहलोल लोदी जौनपुर के शर्की सुल्तान हुसैनशाह को पराजित कर देता है। जौनपुर का निजाम बड़ा शहजादा (वली अहद) बारबकशाह बनता है। उधर निजाम शाह दिल्ली पर काबिज हो जाता है और सिकन्दर लोदी के नाम से बादशाह बनता है। शर्की सुल्तान व हिन्दू जमींदारों के साथ मिलकर बारबकशाह सिकन्दर को पराजित कर दिल्ली का बादशाह बनने के लिए बगावत करता है, पर सफल नहीं हो पाता है। सिकन्दर लोदी क्रूर दमन करता है। कबीरदास को नदी में फिकवां देता है परन्तु कबीर जल पर तैरते नजर आते है। कबीर का दमन नहीं कर पाता है। इन्हीं इतिहास द्वारा पूर्णत सिद्ध घटनाओं पर केन्द्रित है – 'सुनो भाई साधो' उपन्यास। कबीर आचार्य रामानन्द के शिष्य हैं यह प्रमाणित सत्य है। लिखा है –"मैं सीढ़ी पर लेटा रह गया। गुरू रामानन्द के चरण मेरे बदन को छू गए। उन्होनें नीचे देखा।..........बोल उठे राम का नाम लो, बच्चा।"[170] बहलोल लोदी एवं बारबक शाह से परास्त हुसैनशाह शर्की बचकर भाग जाता है। बारबक शाह को जौनपुर का सुल्तान बना दिया जाता है। बहलोल लोदी ने ऐलान किया –"हम लोदी पठानों ने अपनी जवांमर्दी से दिल्ली को पाया है। जौनपुर दिल्ली सल्तनत का सूबा रहा है।.........अब जौनपुर पर लोदी सल्तनत का निशान फहरने लगा है।........इस सूबे की देखभाल के लिए वली अहद बारबकशाह आ गए हैं।........बारबकशाह ने चारों तरफ देखा। वह ताजदार बनकर दरबार में है।..........दिल्ली के तख्त का यह रास्ता है। पर दिल्ली दूर है।........वहाँ निजामशाह मौजूद है।.......वह काफिर माँ की औलाद निजामशाह बहुत होशियार है। उसकी अम्मी सरहिंद के सोनार की बेटी भी उसे भड़काती रहती है।.......अब्बाहुजूर की मेहरबानी से वह हिन्दुस्तान का बादशाह कहला सकेगा।"[171] कबीर की वाणियों और वल्लभाचार्य की विद्वता की चर्चा सुनाई

पड़ती रहती है। दोनों की मुलाकात भी होती है..... दोनों पास–पास आ गए। वल्लभ ने शीश झुकाकर नमन किया। कबीरदास ने हाथ जोड़ दिए। और हृदय से लगा लिया।"[172] बहलोल लोदी के इंतकाल पर चालाकी से निजामशाह दिल्ली का तख्त हासिल कर लेता है। बारबकशाह दिल्ली की ओर कूच करता है। मार्ग में लखनऊ की ओर से आते घुड़सवारों ने कहा– हुजूर! खबर मिली है कि देहली के तख्त पर निजामशाह.........मुल्लाओं और सरदारों ने मिलकर निजामशाह को तख्त पर........अब वे सिकन्दरशाह लोदी है।"[173] बारबकशाह ने पूरी तैयारी के साथ सिकंदर लोदी को परास्त करने के लिए कूच किया। सिंकदर लोदी ने बारबक को परास्त कर दिया। जौनपुर और देहली दोस्त की तरह रहें, ऐसी शर्त पर समझौता हो जाता है। पुनः बारबकशाह, हुसैनशाह शर्की व हिन्दू राजा मिलकर बगावत करते है, परन्तु पराजित होते है। सुखदेव ने गंभीर स्वर में कहा –"हमारी फौज ने बहादुरी और हिम्मत से लड़ाई लड़ी। दो–दो बार सिंकदरशाह को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। लेकिन वह तकदीर वाला है जीत गया।..................सिकंदरशाह की फौज शहर में दाखिल हो चुकी। घायल बारबकशाह गिरफ्तार हो चुके थे।"[174] सिकन्दर शाह विचार करता है कि सबको कुचल देना है, दबा देना है। बनारस का फक्कड़ जुलाहा विरोध कर रहा है। गुलाम अमीना और मुल्ला से राय मशविरा करने के बाद कबीर दास के लिए सिकन्दर शाह ने ऐलान किया– "अगर कबीर बेकसूर है। फकीर है तो अपनी रूहानी ताकत से दरिया में डूब नहीं सकेंगे। गुनहगार इस दरिया में दफन हो जाएंगे।.............सबने देखा– कबीरदास लहरों में समा गए। फिर लहरों के ऊपर दीख पड़े। मुख से राम–रहीम कृष्ण–करीम की ध्वनि आ रही थी।..........लोग जय–जयकार करने लगे। सिकन्दर शाह चुनार की तरफ बढ़ गया।"[175] ये उपन्यास में घटित घटनाएँ इतिहास द्वारा प्रमाणित होती है जिनके प्रामाणिक सन्दर्भ डॉ बिन्दू दूबे रचित 'संत कबीर का साहित्य', प्रतापसिंह लिखित 'मध्यकालीन भारत', भरतेश कुमार मिश्र' लिखित 'सम्पूर्ण भारत का इतिहास' रामधारी सिंह दिनकर रचित 'संस्कृति के चार अध्याय' आदि में मिलते हैं। दिनकर जी ने लिखा है– "कबीरदास जब गंगा तट पर उनकी खड़ाऊ के नीचे आ गए तब रामानन्द के मुख से अचानक राम शब्द निकला। कबीर ने इसे ही गुरूमंत्र मानकर ग्रहण कर लिया और रामानन्द को आजीवन अपना गुरू मानते रहे।"[176] प्रताप सिंह ने लिखा है कि –"बहलोल के शासन काल की महत्वपूर्ण घटना शर्कियों के साथ रूक–रूक कर चलने वाला युद्ध था। कारण शर्की सुल्तानों को उनकी बेगमें बराबर उकसाती रहती थी कि आक्रमण कर दिल्ली से लोदी वंश को समाप्त कर दें।............. हुसैनशाह और बहलोल में युद्ध चलते रहे। संधि भी हुई।..........बहलोल के बाद उसका पुत्र निजाम खाँ सभी अमीरों की सहमति से 17 जुलाई 1489 ई. में गद्दी पर बैठा।...........अफगान सरदारों ने यह कहकर विरोध भी किया कि वह एक सुनारिन की सन्तान है।...........बारबक शाह ने सामना करना चाहा। बारबकशाह जौनपुर से कन्नौज पहुँचा। दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। बारबकशाह पराजित होकर बदायूँ चला गया।.......सुल्तान ने उसे जौनपुर ले जाकर पहले की भाँति शर्की

सुल्तानों की गद्दी पर बैठा दिया। अवध बिहारी पाण्डेय के अनुसार शर्की–लोदी युद्ध की परम्परा सिकन्दर लोदी के समय भी बनी रही।............हुसैनशाह एक अनुभवी सुल्तान था जिसने कुछ जमींदारों को विशेषकर रींवा के राजा भालचन्द्र एवं पुत्र लक्ष्मीचन्द्र को अपनी ओर मिला लिया। सम्भवतः बारबकशाह एवं हुसैनशाह में भी यह समझौता हो गया था कि दोनों मिलकर सिकन्दर से युद्ध करेंगे। हुसैनशाह एक विशाल सेना लेकर आगे बढ़ा किन्तु बनारस के पास एक भयंकर युद्ध में खान–ए–खाना ने उसे पराजित कर दिया। हुसैनशाह ने शेष जीवन लखनौती में ही बिताया।..........सुल्तान सिकन्दर लोदी ने बारबकशाह को राजकीय बन्दी के रूप में हैबत खाँ व उमर खाँ शेरवानी की देखरेख में रख दिया।"[177] डॉ बिन्दू दूबे के अनुसार डॉ श्यामसुन्दर दास, डॉ रामचन्द्र शुक्ल, डॉ हजारी प्रसाद आदि विद्वान दृढ़ मत से कबीर का गुरू रामानन्द को ही मानते हैं। मीर तकी को भी उनका गुरू माना जाता है। शेख तकी सिकन्दर लोदी का गुरू माना जाता है रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि कबीर और तकी में तर्क–वितर्क हुआ होगा।............सिकन्दर लोदी ने कबीर को जान से मारने का भी दो बार प्रयास किया। उन्मत्त हाथी से कुचल डालने व गंगा में डुबोने का प्रयत्न किया। 'कबीर साहब का बीजक' में लिखा है –"दियो हुकुम करियों नाहिं देरी। गंगा बोर हु मरि पन बेरि। हुहिगै बेरी नीर गंभीरा। गंगा तीर भा ठाढ़ कबीरा।[178]

निष्कर्षत सिद्धियों के खण्डहर, कश्मीर की बेटी, तुंगभद्रा पर सूर्योदय एवं सुनो भाई साधो की प्रमुख घटनाएँ जिन पर उपन्यासों की मूलकथा अवलम्बित है इतिहास–ग्रन्थों द्वारा प्रमाणित है।

(2) ऐतिहासिक पात्र – अतीतकालीन घटनाएँ जिन व्यक्तियों के साथ घटित होती है या जो पात्र इतिहास घटनाओं के हेतु होते हैं या इतने गुण सम्पन्न होते हैं कि कोई विशिष्ट कालखण्ड उनसे या उनके कृतित्व से पहचाना जाता है। वे एक युग विशेष के संचालक या नेतृत्व कर्ता होते हैं, ऐतिहासिक पात्र कहलाते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में मुख्य घटनाओं की तरह मुख्य पात्र भी इतिहासपरक होते हैं जिनसे मूलकथा निर्मित होती है।

'सिद्धियों का खण्डहर' में पालवंशी सम्राट गोविन्दपाल, बंग सम्राट लक्ष्मणसेन, उदन्तपुरी विहार के आचार्य कमल–रक्षित एवं महास्थविर रत्नभद्र, महापंडित राहुल शीलभद्र, इख्तियार–बिन–बख्तियार खिलजी आदि इतिहास–पुस्तकों में उल्लेखित पात्र हैं। कुमार महेन्द्र संभावित ऐतिहासिक चरित्र है। 'मध्यकालीन भारत का इतिहास' में उल्लेख है कि "गोरी के आक्रमण के समय उत्तरी भारत में चार प्रधान हिन्दू राज्य थे।...........बिहार में पालवंश के गोविन्दपाल और बंगाल में सेनवंश के राजा लक्ष्मणसेन शासन कर रहे थे। ....ये सभी राजा हठीले थे और अभिमानी थे। एक के नेतृत्व में संगठित होकर विदेशी आक्रान्ता के विरूद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने की मनोदशा में नहीं थे।"[179] तथा यह भी उल्लेख मिलता है कि "पाल वंश के अन्तिम महत्वपूर्ण राजा गोविन्दपाल थे। बख्तियार खलजी के आक्रमण के समय

इन्द्रद्युम्न पाल उस क्षेत्र में शासन कर रहा था, हालाँकि उसकी सत्ता नाम मात्र थी।"[180] शत्रुघ्न प्रसाद ने इन्द्रद्युम्न को एक दुर्गपाल दर्शाया है। गोविन्दपाल, लक्ष्मणसेन, बख्तियार खलजी आदि की इतिहास पुष्टि होती है।

'कश्मीर की बेटी' उपन्यास के प्रमुख पात्र राजा सहदेव, कुमार उदयनदेव, रानी कोटा देवी, डामर सामन्त रामचन्द्र, मंगोल दस्यु दुल्चा, अफगानी शाह मिर्जा (शाहमीर), भोट कुमार रिच्छेन, सूफी संत बुलबुलशाह आदि हैं जो जौनराजकृत राजतंरगिणी–2 के अनुसार इतिहास द्वारा अनुमोदित हैं। चौदहवीं सदी के दक्षिण भारत के इतिहास पर आधारित 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' उपन्यास के प्रमुख ऐतिहासिक पात्र शैवगुरू क्रियाशक्ति यतीश्वर, सायणाचार्य, कम्पिलदेव, जम्बूकेश्वर, मुहम्मद–बिन–तुगलक, देवलदेवी, हरिहरराय एवं बुक्का राय, तैलंगाना के काकतीय प्रतापरूद्र देव, द्वारसमुद्र के होयसलवंशी बल्लालदेव, देवगिरी के राजा रामचन्द्र और शंकरदेव तथा नव वृन्दावन मठके माधवतीर्थ, अद्धैतवादी माधवाचार्य (स्वामी विद्यारण्य) एवं सायणाचार्य, वैतीहोत्री एवं सात्वती, किशलू खाँ, बहाउद्दीन गुर्शस्प आदि हैं जिनका मध्यकालीन इतिहास में वर्णन मिलता है।

देवलदेवी शोषित–पीड़ित नारी का प्रतिरूप है। मुहम्मद–बिन–तुगलक सफलताओं और विजयों को प्राप्त करने वाले शासक के साथ–साथ क्रूर अत्याचारी व स्वामी मध्वाचार्य सभी सम्प्रदायों के विभेद को मिटाकर एकत्व प्रदान करने वाले प्रेरक संत रहे हैं। हरिहर राय एवं बुक्का राय तुंगभद्रा किनारे विजय नगर की स्थापना कर हिन्दू राज्य के प्रतिष्ठापक के रूप में प्रसिद्ध हैं। डॉ बिन्दू दूबे ने लिखा है कि उलुग खाँ (मुहम्मद–बिन–तुगलक) सत्ता लोभ में अपने पिता गयासुद्दीन तुगलक के विरूद्ध प्राणघातक षड़यन्त्र कर सन् 1335 ई. में सुल्तान बन बैठा।..........कहता था जो सुल्तान का सच्चाई से आज्ञापालन करता है वह ईश्वर का आज्ञापालन करता है।"[181] बरनी, इब्नबतूता, स्टेनले लेनपूल, डॉ ईश्वरी प्रसाद एवं आशीर्वादीलाल आदि के भिन्न–भिन्न मतों के निष्कर्ष रूप में भी मुहम्मद तुगलक शासकीय प्रबन्ध पटु होने के साथ–साथ निष्ठुर, क्रूर, निर्दयी, सनकी शासक था। बरनी ने विद्वान, कवि, उदार दानशील एवं खून का प्यासा बताया है। इब्नबतूता ने रक्तपात में निष्ठुर, ईश्वरीप्रसाद ने शासन प्रबन्ध में उच्च आदर्शवान परन्तु दुराग्रह युक्त प्रवृत्तियों वाला, स्टेनले लेनपूल ने विचारों में श्रेष्ठ परन्तु संतुलन और धैर्य की कमी वाला शासक बताया है। प्रताप सिंह ने लिखा है कि– जो सुल्तान दयालुता में और उदारता में अपना सानी नहीं रखता था। क्रोध और सनक में बहकर वह सम्भवतः खून का प्यासा हो जाता था।"[182] गुजरात की राजकुमारी देवल देवी शोषित होती रही। खिज्र खां, मुबारिकशाह, नासिरूद्दीन और नुसरत खां द्वारा शोषण किया गया। कुतुबुद्दीन मुबारक ने अपने भाई खिज्र खाँ की विधवा पत्नी देवलदेवी से विवाह कर लिया।"[183] फरिश्ता के अनुसार हरिहर एवं बुक्का, वीर बल्लाल तृतीय, कृष्णदेव नायक, विरूपाक्ष बल्लाल आदि के प्रयत्नों से सुल्तान मुहम्मद तुगलक का शासन देवगिरि को छोड़कर शेष सारे दक्षिण भारत में समाप्त हो गया।[184] हुकुमचन्द के अनुसार

विजयनगर राज्य की नींव दो भाईयों हरिहर एवं बुक्का ने 1336 ई. में तुंगभद्रा नदी के तट पर रखी। 1334ई. में विजयनगर का निर्माण कार्य पूरा हुआ।.........वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण एवं उसका भाई माधवाचार्य यहाँ के मंत्री थे।[185] अतः 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' के प्रसिद्ध पात्र ऐतिहासिक सिद्ध होते हैं।

'सुनो भाई साधो' उपन्यास के प्रतिनिधि पात्र निर्गुण संत कबीर, धन्ना, पीपा, रैदास, कमाल, गोपाल, धर्मदास, लोई, नीरू–नीमा, बहलोल लोदी बारबकशाह, निजामशाह (सिकन्दर लोदी) एवं शर्की सुल्तान हुसैनशाह आदि पूर्णतः इतिहास सिद्ध हैं। कबीर भक्तिकाल के क्रान्तिकारी सन्त हुए है। बिन्दू दूबे ने लिखा है कि – "कबीर कसौटी, कबीर मंसूर, कबीर चरित्रबोध आदि ग्रन्थों में लहर तारा तथा अनन्तदास, राधोदास, धर्मदास ने काशी को कबीर का जन्म स्थान बताया है।[186] कबीर का जन्म स.1455 (1398ई.) ज्येष्ठ की पूर्णिमा मानना ही समीचीन प्रतीत होता है। इसी तिथि को कबीर पंथी कबीर का जन्मोत्सव मनाते हैं।[187] कबीर को ब्राह्मणी से उत्पन्न व कर–कीर से उत्पन्न माना जाता है। नीरू एवं नीमा को तालाब के पास प्राप्त हुए। काजी के पास ले जाने पर कुरान में कबीर नाम मिला। कबीर शब्द का अर्थ है– श्रेष्ठ या महान्।[188] निष्कर्ष रूप में कबीर को जुलाहा जाति का माना गया है। अधिकांश अन्तः साक्ष्यों, जनश्रुतियों, कबीर पंथियों ने कबीर को जुलाहा माना है। परशुराम चतुर्वेदी, डॉ. सरनाथ सिंह, डॉ. बड़थ्वाल, डॉ. गुणायत आदि कबीर को जुलाहा मानते हैं।[189] मुसलमानी परम्परा के अनुसार उनकी पत्नी का नाम लोई था। डॉ. केदारनाथ द्विवेदी ने कबीर की दो संतानें – कमाल एवं कमाली स्वीकारी है।[190] महाराज विश्वनाथ सिंह, स्वामी हरिरामव्यास, मोहसिनफानी, अनन्तदास, प्रियादास, स्वामी युगलानन्द ने रामानन्द को कबीर का गुरू माना है। अनन्तदास के अनुसार कबीर को 120 वर्ष की लम्बी आयु प्राप्त हुई। निधन तिथि सं. 1575 की पुष्टि होती है। इस तिथि को मान लेने से सिकन्दर लोदी की घटना और कबीर–नानक भेंट की पुष्टि होती हैं।[191] डॉ बिन्दू दूबे ने लिखा है कि– "बहलोल का उत्तराधिकारी सिकन्दर लोदी अपने पिता की ही तरह न्याय प्रिय था। उसका सबसे बड़ा दोष था– धार्मिक संकीर्णता। डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने लिखा – अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णुता, हिन्दुओं का दमन तथा अपने राज्यों में मूर्ति पूजा समाप्त करने के प्रयत्नों के रूप में प्रकट हुई।"[192] प्रताप सिंह रचित 'मध्यकालीन भारत', भरतेश कुमार रचित 'सम्पूर्ण भारत का इतिहास', इमत्याज अहमद लिखित मध्यकालीन भारत– एक सर्वेक्षण में भी इन ऐतिहासिक पात्रों की पुष्टि होती है।

(3) कल्पनापरक घटनाएँ– ऐतिहासिक उपन्यास में दो संस्कृतियों का द्वन्द्व दिखाया जाता है। पहली निर्जीव अवस्था को प्राप्त होती है तो दूसरी नव जन्म लेने को आतुर। इस सांस्कृतिक–ऐतिहासिक द्वन्द्व को काल्पनिक प्रसंगों द्वारा उद्‌घाटित किया जाता है। काल्पनिक पात्र एवं घटनाएँ ऐतिहासिक घटनाओं में योगदान देते हुए ऐतिहासिक यर्थाथपरक संभावना में सत्यता निरूपित करती हैं। 'सिद्धियों के खण्डहर' में कुमार महेन्द्र एवं पाटलिपुत्र के सामंत

की विधवा पुत्री सुवर्णा का अनुरागजन्य आकर्षण एवं अन्ततः मिलन होना, जैन युवा सुमन्त एवं शाक्त विधवा सुभद्रा का विवाह, श्रेष्ठिपुत्र देवेन्द्र एवं मृणाल वारांगना का प्रेम, महेन्द्र द्वारा सेन वंश से सहायता की कोशिश करना, महामात्य बिन्दु एवं अमात्य सिद्धेश द्वारा तंत्र शक्ति प्राप्त करने के लिए सिद्धि करना, देवीदत्त ब्राह्मण एवं बौद्ध शोभन के मध्य का संघर्ष, गुलाम रसूल व इब्राहिम द्वारा व्यापार के बहाने गुप्तचरी, बौद्ध विहारों में सुवर्णा, मृणाल, ग्रामवधू आदि को सह–साधिका बनाए जाने के प्रयास आदि सभी प्रसंग कल्पना की उपज हैं। इतिहास में इनका उल्लेख नहीं है। पाटलिपुत्र के सामन्त की पुत्री के पति संघर्ष करते हुए वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं। विधवा सुवर्णा के लिए सामन्त विहार का निमार्ण करवा रहे हैं। कुमार महेन्द्र के साथ उदन्तपुरी यात्रा के उद्‌देश्य से आती है। वहाँ से उदन्तपुरी विहार एवं नालन्दा विहार चली जाती है जहाँ वह महसूस करती है कि सिद्ध साधक उसे भोग की ओर उन्मुख करना चाहते हैं। किसी तरह बचकर निकल जाती है। महेन्द्र के अनुराग में ही सच्चाई जान पड़ती है। दोनों का मिलन होता है। सुमन्त और सुभद्रा का भी दोनों के साथ सहयोग व मेल–जोल रहता है। राष्ट्र–धर्म के लिए प्रेरित रहते हैं। ये सभी प्रसंग पूर्णत काल्पनिक होते हुए भी कथा के प्रवाह को बनाए रखकर इतिहास का आभास देते हैं। तंत्र शक्ति द्वारा संघर्ष करने की भावना को भी कल्पना प्रसंगों द्वारा दर्शाया गया है– "उदन्तपुरी के राज प्रासाद में महामात्य बिन्दू एवं अमात्य सिद्धेश दोनों ने तंत्र साधना के गर्व के साथ प्रवेश किया।...........यदि मैं शस्त्रों के साथ अभिमंत्रित सरसों के दाने लेकर जाऊँ तो............. अभी तो सुवर्णा देवी महामुद्रा बनने के भय से भटक रही हैं। मुझे तो ढूँढ़कर लाना है।......... ..मुदित सामने आ जाओ खेल समाप्त हो गया है।............मैं आपके साथ चलूँगी कहकर सुवर्णा ने हाथ बढ़ाया।..............मुझे शक्ति मिल गई। मैं अवश्य विजयी होऊँगा। यह कहकर महेन्द्र सोल्लास बढ़े।"[193] ये सभी कल्पना प्रसंग कथा को सुगठन एवं ऐतिहासिक कथा का रंग प्रदान करते हैं।

'कश्मीर की बेटी' में वर्णित प्रासंगिक घटनाएँ कथा को पूर्ण आकार देती हैं और कश्मीर के तद्‌युगीन यथार्थ को चित्रित करती हैं वे हैं – मंगोल दस्यु दुल्चा के आक्रमण के समय महाराज सहदेव द्वारा कर लगाने पर पंडित प्रवरदेव का विरोध व असहयोग करना, म्लेच्छ दरया शाह द्वारा चाँदनी का अपहरण करना, चाँदनी का वापस आना, सर्वदेव के साथ विवाह होना, चाँदनी–कोटा देवी का परस्पर सहयोगी होना, आनन्द भिक्षु भट्‌ट एवं पद्‌मा का प्रसंग, आनन्द भट्‌ट का मुख्यमंत्री बनना, एवं हत्या होना, रिच्छेन का ईस्लाम ग्रहण करना, रिच्छेन–कोटा देवी के पुत्र को शाहमीर द्वारा प्राप्त करना, मुकुल भट्‌ट एवं मणि का प्रसंग, लुस्त एवं लक्ष्म एवं नरगिस और शबनम के प्रसंग, कोटराज द्वारा शाहमीर पुत्री गुहरा के साथ प्रेम प्रसंग एवं कोटराज की सहायता से शाहमीर का षड्‌यन्त्र में सफल होना आदि प्रसंग हैं। आपद्‌काल में ब्राह्मणों पर कर लगा देते पर पंडित देवस्वामी प्रायोपेशन आरम्भ कर देते हैं। राजा सहदेव को मनाना पड़ता है। कहते हैं– ब्राह्मणों पर कर नहीं लगेगा। अब

पूज्य पंडित प्रवर प्रायोपेशन समाप्त कर दें।"[194] सर्वदेव और चाँदनी का विवाह आनन्द भिक्षु के नव विचारों एवं प्रयासों का परिणाम रहा। सर्वदेव और चाँदनी का विवाह सम्पन्न हुआ। दोनों के मुखड़े पर फूल खिल आए। चाँदनी दूसरे ही क्षण लज्जा से लाल हो गई।.......चाँदनी तो अनुभव कर रही थी कि इतने दिनों के शोषण और पद–दलन के बाद उसे स्नेह का संसार मिला है।"[195] रिच्छेद छलपूर्वक कोटा देवी से विवाह कर लेता है। उसे पंडित प्रवर द्वारा उपासना व्रत आदि से शुद्ध कर उदयन देव से विवाह की अनुमति धर्मानुसार दी जाती है। – आनंद पत्र को पढ़ने लगा– एक पक्ष तक एकाहार और गौरी–महेश्वर की एकांत उपासना द्वारा कोटा देवी को शुद्ध होना है। एक दिवसीय यज्ञ सम्पन्न होना है। संतान का पालन दूसरे परिवार में हो और तब पुनर्विवाह की व्यवस्था की जा सकती है।"[196] कोटा देवी के पुत्र को इस्लाम ग्रहण करवाया जाता है। अलीशेर ने मध्यम आवाज में बताया – वह चन्द्र नहीं है। शहंशाह सदरूद्दीन की औलाद है हैदर।"[197] कोट राज और गुहरा का मिलन शाहमीर की राजनीतिक चाल के तहत हो गया। गुहरा ने कहा–"मैं आपको अपना सरताज मान चुकी हूँ।............आप मुझे छोड़कर नहीं जा सकते।........उसने देखा कि गुहरा सिर झुकाकर हाथों में माला लेकर नजदीक आ गई।......अलीशेर ने दूसरी माला कोटराज के हाथों में दे दी। गुहरा का सिर झुका, कोटराज की माला उसके गले में आ गई। गुहरा ने अपनी माला कोटराज के गले में डाल दी।"[198] उदयनदेव कोटा रानी की सक्रियता से उदासीन रहने लगे। पलायन कर गए। कहते हैं – मुझसे पलायन का अपराध हो गया। मुझे क्षमा कर देना।........ उदयनदेव अपने अंतर में संकोच करने लगे। ग्लानि गलने लगी।"[199] आनन्द भट्ट रानी का संरक्षक व राज्य का मुख्यमंत्री बन गया। सहन नहीं हुआ। हत्या कर दी गई। अंधेरे में प्रहार हुआ। आनंद गिर पड़े। शर्वरीश चीख पड़ा। प्रहरी आ गए। पर आनंद अन्तिम साँस ले रहे थे।"[200] नरगिस और शबनम को भी राजनैतिक चाल में हिस्सेदार बनाया जाने लगा। शाहमीर एवं कोटराज ने षड़यन्त्र कर श्रीनगर पर कब्जा कर लिया। ये सभी प्रासंगिक कथाएँ मूल कथा को प्रवाहशील बनाकर यथार्थ की अभिव्यक्ति में पूर्णतः सफल हुई है। लेखकीय कल्पना अद्भुत है। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' में कम्पिलदेव के शव का नव–वृन्दावन मठ में अन्तिम संस्कार करवाना, अद्वैतवादी माधव तीर्थ द्वारा सभी सम्प्रदायों को एकत्व प्रदान करना, सूफी संत द्वारा लोगों को इस्लाम की ओर आकर्षित करना, देवदासी और षण्मुखम् का प्रेम प्रसंग एवं षण्मुखम का मारा जाना, गुजरात की राजकुमारी देवलदेवी की त्रासदी, उसका हरिहर राय एवं बुक्का राय के साथ मिलकर संघर्ष करना, देवलदेवी की पुत्री रूखसाना अर्थात् श्रीदेवी का प्रसंग, हमीद और गजाला का प्रेम–जीवन, आदिल और आबिद का धर्मान्तरण, ईरानी रक्कासा का नाच–गाना, वीर सिंह, रणसिंह, रामदेव, शिवदीन आदि किसानों का विरोध करना, सूफी फकीरशाह एवं मुरीद रफीक का लोगों को इश्क हकीकी को समझाना, देवलदेवी एवं रूखसाना को तुगलकाबाद से दूर भेज देना। हमीद–गजाला को सजा देना, मरप्पा एवं श्रीदेवी (रूखसाना) का विवाह आदि घटनाएँ मुख्य घटनाओं के साथ इस तरह गूँथ दी गई

है कि मूल कथा ही प्रतीत होती है। कम्पिलदेव का शव माधवतीर्थ के तीन शिष्य प्राणों को हथेली पर रखकर लेकर आए।........नववृंदावन मठ में कम्पिलदेव का अन्तिम संस्कार हुआ।[201] ....सूफीसंत इस्लाम कायम करने में एवं धर्मान्तरण में सहायक रहे हैं।.......”ये सूफी घूम–घूम कर लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। तुर्क शासन को प्रोत्साहन है, फिर ये धर्मान्तरण कराते हैं।“[202] मन्दिरों में देवदासी प्रथा की कुरीति को दक्षिण भारत में व्यापक रूढ़ि के रूप में व्यक्त किया है– देवदासियाँ सज धज कर आने लगी।........देवदासियाँ परिणय का मधुर गीत गाने लगी..........ये देवदासियाँ देवता की परिणिताएँ हैं।......इन्दु उठकर खड़ी होने लगी। माता–पिता के आग्रह ने बैठा दिया। प्रमुख देवदासी माधवी के संकेत पर अनुष्ठान आरम्भ हो गया। मंगलगीत गूँजने लगे।[203].......आबिद ने बताया– यह देवलदेवी और रूखसाना का पत्र है। आप दोनों विचार करें। हम साथ देंगे।.............हम तलवार की धार पर चलने को तैयार हैं। योजना बने।[204] ....मुबारिक खाँ और नुसरत खाँ को जानकारी मिल गई थी कि देवल देवी और रूखसाना को कैदखाने से बाहर भेजा जा रहा है। तुगलकाबाद से दूर हटाया जा रहा है।[205] सूफी फकीर शाह अनीस अपने मुरीद रफीक के साथ देवपुरम की बस्ती में अपने गीत सुनाता और बड़े स्नेह से सबसे मिलता........इश्कमजाजी और इश्क हकीकी के गीत सुनाता[206].............गजाला ने हमीद से कहा आपने तो इश्क और संगीत दोनों के लिए नया धरम अपनाया है। गुनाह नहीं किया है।...........मैं मानता हूँ गजाला कि इश्क पाप नहीं है। पर धर्म बदलना तो जरूरी नहीं था।[207] रणसिंह और वीरसिंह ने रामदेव और शिवदेव के साथ कोल से कड़ा तक के ग्राम प्रधानों से मिलने का प्रयत्न किया।........फलतः विद्रोह का वातावरण उत्साहपूर्ण हो रहा था।............रणसिंह और वीरसिंह घेरे में आ गए। कैद कर लिए गए।[208]...................षण्मुखम् ने क्षणभर साँस लेकर इन्दु को हृदय से लगा लिया। पर वे लोग निकट आ ही गए। षण्मुखम् दौड़ा। पहाड़ी नाले को देख नहीं सका। उसमें उलट गया। इन्दु भी बच नहीं सकी।...........देवपुरम् में घटना का समाचार फैल गया। शाह अनीस और रफीक देवपुरम् से निकल गए।.............तुगलकाबाद में दाखिल होते ही हमीद और गजाला की प्रेम कथा और सजा की खबरें मिल गई।[209]................स्वामी जी ने घोषणा की – आप सबके समक्ष मरप्पा राय और देवलदेवी की पुत्री श्रीदेवी का विवाह सम्पन्न होगा। मंगल मंत्र गूँजने लगे। दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ।[210] आदि कल्पित घटनाओं के प्रसंग हैं। 'सुनो भाई साधो' में आचार्य रामानंद की जयन्ती रामानन्द मठ में मनाई जा रही है। कबीर वहाँ जा रहे हैं। धन्ना, पीपा, रैदास आदि सभी संत वहाँ आ रहे है। ”कमाल गुरू रामानन्द के मठ की ओर बढ़ गया।............संवत 1543 माघ कृष्ण की सप्तमी का दिन था। मठ में रामानन्द जी की जयंती मनाई जा रही थी।“[211] सब जा रहे हैं। कबीर स्मृतियों में डूबे हैं। कल्पना जनित प्रसंग से उपन्यास का प्रारम्भ हुआ है। इस उपन्यास में बारबकशाह एवं शर्की सुल्तान की बेगम शहनाज के बीच दिखाया गया इश्क एवं इश्कबाजी के साथ शहनाज द्वारा अपने शौहर को जौनपुर का शासक बनाने एवं शौहर से मिलने का प्रयास करने की कथा एवं लक्ष्मी चन्द्र

एवं मधुवंती की प्रेम कथा उपन्यासकार की उर्वर कल्पना है। बहलोल द्वारा जौनपुर पर अधिकार कर लेने पर व बारबकशाह को वहाँ का सुल्तान घोषित कर देने पर शर्की हुसैनशाह की बेगम पर हरम में दाखिल होने का दबाव बनाया जाता है। शहनाज इश्कबाजी के माध्यम से बारबकशाह और शर्की सुल्तान को मिलाकर सिकन्दर लोदी (निजामशाह) को परास्त करने की चाल चलती है। जीनत बेगम शहनाज से इश्क करती है। शहनाज की चाल को समझती है। बारबकशाह को रोकती है। कहती हैं – आप अपनी सियासत से अपनी रक्षा करो।......... .मैं शहनाज की तरह गलत सलाह देकर आपको बरबादी की राह पर नहीं जाने दे सकती।. .....यह सुनकर बारबकशाह ख्यालों में डूब गए।......क्या शहनाज सियासत कर रही है। शर्की के शतरंज की किश्ती बन रही है।................औरत का इश्क है।........लेकिन वह शर्की की बेगम है। शतरंज की चाल चल सकती है। वह धोखा नहीं दे सकती। उसकी सलाह तो माकूल है।.....तो निजाम से जंग की तैयारी का फैसला सही है।[212] कबीर की बस्ती में सब धर्मों वालों का मिलकर त्योहार मनाना, पंड़ितों एवं साहूकारों से विरोध कर अपना हक लेना, लोई के पीछे किसी सरदार और साहूकर की गलत दृष्टि होना, वन खण्डी बाबा द्वारा रक्षा और कबीर से विवाह आदि प्रसंग भी मन की उपज से चित्रित किए गए हैं। लक्ष्मीचन्द्र एवं मधुवंती प्रेम एवं विवाह प्रसंग पूर्णतः काल्पनिक है। अमराई में सहेलियों के साथ मधु है। वहाँ लक्ष्मीचन्द्र भी है। सहेलिया अकेले छोड़ देती हैं। दोनों में वार्तालाप होता है जो प्रेम के उपजने का आभास होता है।– लक्ष्मीचन्द्र सोच रहा है– कौनसा भाव है? अतिथि सत्कार या राग–अनुराग? क्या उधर भी यही भाव?.......इस पीड़ा के साथ लौटना होगा। पीड़ा में इतनी मिठास।........... ....मधु आगे बढ़ गई। द्वार पर पहुँच गई। वह भीग रहा है। मन प्राण को भीगने दो।....... जगेश्वर ने कड़क आवाज में कहा– मधु! घर की मर्यादा तोड़ने का प्रसत्न मत करो। ....सिकन्दर के कब्जे में आ जाती है। सिकन्दर शाह से बचने के लिए मधु कटिबंध से छुरा निकाल कर आत्महत्या का प्रयास करती है। साँस उखड़ने लगती है। वह अपना प्रेम बचा लेती है। लक्ष्मी चन्द्र लड़ते हुए कटे पेड़ सा गिर जाता है।[213]

'सुनो भाई साधो' में जमीदारों को मिलकर संघर्ष करना, सेठ अमोल चंद से बचकर लोई का गंगा में बह जाना, वन खण्डी बाबा द्वारा बचाना, कबीर और लोई का प्रेम विवाह, सेठ–साहूकारों से कबीर का संघर्ष, सबको मिलने का प्रयत्न, गाय माता का सम्मान के साथ अन्तिम संस्कार आदि भी अवान्तर कथाएँ हैं जो कथानक को बल प्रदान करती है। – 'गो माता की जय' का घोष हुआ। ठेला गाड़ी चल पड़ी। पाँच लोग साथ–साथ चल पड़े। शव–यात्रा का दृश्य सामने आ गया। सारा गाँव अन्तिम विदाई दे रहा था।[214] निष्कर्षतः 'सुनो भाई साधो' का कल्पनाजनित घटनाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो उद्देश्य को भी व्यक्त करती है। कथा को आगे बढ़ाती है।

(4) कल्पनापरक पात्र – ऐतिहासिक उपन्यासों में काल्पनिक पात्र तद्युगीन चित्रण को सत्य दर्शाने वाला प्रभाव उत्पन्न करते हैं। युग सत्य की अभिव्यक्ति भी कल्पित पात्रों के

माध्यम से ही संभव होती हैं। डॉ रजनीकान्त लहरी ने लिखा है कि – "यह काल्पनिक पात्र अपने कार्यकलापों में इस प्रभाव को जन्म देते हैं कि गत युग का चित्रण तात्कालिक अंशों में जीवित दिखाई पड़ता है।"[215] शत्रुघ्न प्रसाद द्वारा सृजित कल्पनापरक पात्र इस प्रभाव को उत्पन्न करने में पूर्ण सक्षम दिखाई पड़ते हैं। 'सिद्धियों का खण्डहर' में कुमार महेन्द्र संभावित पात्र लगता है। सुवर्णा, सुभद्रा, मृणाल, शोभनशास्त्री, देवीदत्त, सिद्ध घोरपा, जैन सुमन्त आदि ऐसे ही पात्र हैं जो कथा में प्रवाह लाकर वातावरण को एवं युग सत्य को अभिव्यक्त करते हैं। सुवर्णा एवं सुभद्रा के माध्यम से विधवा जीवन की त्रासदी व पुनः नवजीवन की प्रेरणा दर्शायी गई है। उदात्त एवं पवित्र प्रेम को दर्शाया है। शोभन एवं देवीदत्त द्वारा धर्म–द्वेष को व्यक्त किया है। सिद्ध घोरपा आदि के माध्यम से तंत्र प्रभावित बौद्ध धर्म में व्याप्त अनाचार को परिलक्षित किया गया है। महेन्द्र और सुमन्त नव विचारधारा एवं राष्ट्रीयता के प्रसार का माध्यम बनते हैं। गुलाम रसूल एवं शौकत व्यापारी बनकर गुप्तचरी करते हैं और घुसपैठ करवाने के माध्यम बनते हैं। इस प्रकार ये पात्र युग सत्य को प्रकट करते हैं।

'कश्मीर की बेटी' में चाँदनी, सर्वदेव, कोटराज, गुहरा, शबनम एवं नरगिस, पंडित प्रवर देवस्वामी एवं मुकुलभट्ट, लुस्त एवं लक्ष्म, सूफी फकीर बुलबुलशाह आदि पूर्णतः काल्पनिक पात्र हैं जो युगीन यथार्थ एवं युगीन सत्य को प्रत्यक्ष करते हैं। चाँदनी उस युग के म्लेच्छ कर्म, जातिगत रूढ़ता को प्रकट करने वाली पात्र है। पीड़ित, शोषित, दमित है। अतिशूद्रा जीवन का प्रतिनिधित्व करती है। सर्वदेव चाँदनी का विवाह युग–परिवर्तन का संकेत देता है। चाँदनी कोटादेवी की सहायिका बनकर कथा को पूर्ण आधार देती हैं। बुलबुलशाह सूफी विचार धारा के साथ–साथ इस्लामी विचारों की प्रतिष्ठा में सूफियों की भूमिका का निर्वाह करता है। पंडित प्रवर ब्राह्मणवादी रूढ़ता व खण्ड–दृष्टि का परिचायक है। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' के आदिल और आबिद, हमीद (हरिनारायण) और गजाला, जैन भद्रबाहु, शैव मल्लिकार्जुन आदि कल्पना प्रदत्त पात्र हैं जिनके माध्यम से धर्मान्तरण, शोषण, क्रूर एवं दमनात्मक राजनीति का चित्र स्पष्ट होता है। देवदासी इन्दुमती एवं षणमुखम् भी पूर्णतः काल्पनिक हैं जो दक्षिण भारत में प्रचलित देवदासी प्रथा का दंश भोगते हैं। सूफी फकीर शाह अनीस एवं मुरीद रफीक, ग्राम प्रधान रामदेव एवं शिवदेव भी मन की उपज से सृजित पात्र हैं जो सूफी धर्मान्तरण में सहयोग एवं ग्रामविरोध का प्रतिनिधित्व करते हैं। रूखसाना अर्थात् श्री देवी भी कल्पना प्रदत्त सृजन है जिसका मरप्पा के साथ विवाह कर सांस्कृतिक क्रान्ति का उद्घोष किया गया है।

'सुनो भाई साधो' में सेठ अमोलचन्द, शर्की सुल्तान की बेगम शहनाज, माली सुखदेव, गुप्तचर अनवर, जगेश्वर की पुत्री मधुवंती आदि पात्र कल्पना की उपज है जो उपन्यासकार के मुख्य पात्रों की उद्देश्यपूर्ति में सहायक हैं एवं कथा को सरसता एवं महत्ता प्रदान करते हैं।

(5) ऐतिहासिक एवं कल्पनापरक वातावरण – वातावरण या परिवेश का यथार्थ चित्रण ही ऐतिहासिक उपन्यासों की कसौटी है। शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने उपन्यासों में पूर्व–मध्यकालीन

युग के भारत का सम्पूर्ण परिवेश चित्रित करने में सफलता अर्जित की है। उस काल का राजनैतिक परिवेश क्रूरता, निर्दयता, दमनपूर्ण, छल–बल युक्त एवं शोषणकारी रहा है। धार्मिक संकीर्णता एवं सम्प्रदायवाद की धर्मान्ध राजनीति में हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का पतन किए जाने के लिए सचेष्ट रहा है– साम्राज्यवादी निरंकुश शासन। धर्मान्तरण एक कटु सत्य चित्र है– उस युग का। हिन्दू जनता पर अनेक प्रकार के दमनीय कर लगाए जाते हैं। आर्थिक जीवन दयनीय बना हुआ है। धर्म में रूढ़ियाँ, द्वेष, विभेद का बाहुल्य है अर्थात् धर्म अपने विकृत रूप में दृष्टिगोचर है। साथ–ही–साथ भक्ति की नई भावनाएँ उपज रही हैं। समाज त्रस्त है। पीड़ित जनता विरोध पर उतारू है पर विवश है। धर्म, समाज, राजनीति सब ओर दमन–ही–दमन है। भौगोलिक परिवेश का भी सच्चा चित्रण हुआ है। 'सिद्धियों का खण्डहर' में व्यक्त उदन्तपुरी, पाटलिपुत्र, मणिमती आदि नगर व अवलोकितेश्वर बौद्ध मठ, देवी तारा का चैत्य, उदन्तपुरी विहार, नालन्दा एवं विक्रमशिला शिक्षा केन्द्र हो चाहे श्रीनगर का प्राकृतिक सौन्दर्य 'कश्मीर की बेटी' में चित्रित हो, तुंगभद्रा नदी, कम्पिली नगर, विजयनगर एवं हम्पी क्षेत्र, तुगलकाबाद (दिल्ली), देवगिरि(दौलतबाद), वांरगल आदि क्षेत्र तथा जौनपुर, काशी, दिल्ली आदि ऐतिहासिक क्षेत्रों का चित्रण इन उपन्यासों में सम्पूर्णता के साथ किया गया है। ग्रामीण परिवेश को भी पूर्ण स्थान दिया गया है। 'सिद्धियों का खण्डहर' बौद्धकालीन विहार संस्कृति का पोषक रूप व्यक्त करता है – "सामन्त वरूणेश युवराज को विहार का नवनिर्माण दिखा रहे थे। पाटलिपुत्र और नालन्दा के स्थपति विहार करने लगे।"........उदन्तपुरी नगर ने अँगड़ाई ली। शंखनाद, तूर्यनाद और मंत्रपाठ के स्वर गूँजने लगे।...........कोई बुद्ध का नाम ले रहा था। कोई शिव का कोई विष्णु का और कोई महावीर का।...........प्राकृतिक जलधारा से सुरक्षित भूमि पर दुर्ग बना था। दुर्ग के मध्य में राजभवन बना था। इसके समक्ष पश्चिमी दिशा में हिरण्य प्रभात पर अवलोकितेश्वर बुद्ध का मन्दिर था और उससे जुड़ा विहार था।............ सरोवर के पट पर यक्षों के प्रधान धनेश्वर कुबेर का मन्दिर था।.......माघर के चैत्य में भगवती तारा।.............भगवती तारा का रूप भा गया है। वह सहज सुन्दरी है।.........यह ग्राम शैवों और शाक्तों का गाँव रहा है। अब आधे परिवार बौद्ध बन गए हैं।..........अब दोनों तुर्कों के आक्रमण एवं धर्मान्तरण से उद्विग्न हैं।..........यदि वैदिक ब्राह्मण वर्णश्रेष्ठता, वैदिक ज्ञान एवं वैदिक कर्मकाण्ड के अधिकार से अभिमानी है तो बौद्ध ब्राह्मण भू सम्पत्ति पाकर अंहग्रस्त।..........देवी तारा की स्वर्ण मूर्ति दीप के प्रकाश में चमक रही है...............मूर्ति के निकट एक स्त्री और एक पुरूष.....ये वज्रसाधक हैं। एक कमल है दूसरा कुलिश। यह प्रज्ञोपाय साधना है। यह पंचमकार साधना है।.......चन्दर की पत्नी सहज साधना के लिए परिवार छोड़कर चली जाती है। वह कहता है– मुझे स्त्री चाहिए और बच्चों को माँ।........महेन्द्रपाल सोचते हैं– "कहाँ सिद्धो द्वारा ब्राह्मचार, पशुबलि और सामाजिक विषमता का विरोध और कहाँ आज के सिद्धों द्वारा एक नये पाखण्ड की रचना। अवलोकितेश्वर बुद्ध द्वारा पद्य, शंख, वज्र आदि को धारण करने वाली अंगुलियों की स्थितियाँ मुद्राएँ हैं। उन्हीं मुद्राओं में मंत्रपाठ और ध्यान का निर्देश था।

कहाँ आज सहसाधिका स्त्री को महामुद्रा मानकर आलिंगन बद्ध होकर बुद्धत्व की प्राप्ति का पाखण्ड। राजनैतिक वातावरण में द्वन्द्व है। महेन्द्र का कहना है– अमात्य परिषद् की उचित मंत्रणा, राजकोष, सेना, गुप्तचर और प्रजा का सहयोग ये ही साम्राज्य के बल हैं।........... राजसभा के निर्णय के अनुसार अति शीघ्र शस्त्र भेजने हैं। तुर्कों के सामने अभिमंत्रित सरसों के अस्त्र टिक नहीं सकेंगे। ....अमात्य बिन्दु ने कहा – सिद्धेश सिद्धाचार्य से मिलकर हिल्सा जाएँ और मैं चाहता हूँ कि सिद्धाचार्य से अभिमंत्रित सरसों लेकर पाटलिपुत्र जाऊँ।[216] इस प्रकार 12 वीं सदी में समाज, राजनीति, अर्थ सब बौद्ध तंत्र एवं सहज साधना से प्रभावित था और राज–व्यवस्थाएँ द्वेष से व अहंकार से ग्रस्त थी। बिहार व बंग आपस में वैमनस्य पाले थे। अराजकता में तुर्कों का क्रूर आक्रमण। जनता में हाय–हाय।

'कश्मीर की बेटी'[217] में दुर्बल शासन व्यवस्था, ब्राह्मणवादी रूढ़िवादिता, धर्मान्तरण समस्या, स्वार्थ परायण भावना, षड़यन्त्र की राजनीति, सामान्य जनता की दुरवस्था, जातिभेद व अछूत समस्या, कश्मीर का प्राकृतिक सौन्दर्य आदि का चरित्रांकन अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रकट हुआ है। विदेशी अफगानी आक्रमण से त्रस्त एवं अफगानी घुस पैठियों से आक्रान्त कश्मीर का चित्र जीवन्त हो उठा है–'कश्मीर की बेटी' में। अराजकता के वातावरण का चित्र आनंदभिक्षु के शब्दों में व्यक्त होता है....... अहलामठ का क्षेत्र जनशून्य हो गया है। पूरा नगर ही निष्प्राण और श्रीहीन हो गया।....... यह क्या हो गया।..... सोमदेव ने कथा सरित् सागर में सप्तक लंबक में वर्णन किया है कि पापों का नाश के लिए कश्मीर जाना है।....... वहाँ विजय क्षेत्र, नंदि क्षेत्र और वराह क्षेत्र हैं। भगवान विष्णु ने इन्हें पवित्र किया है। शैव–दृष्टि और वैष्णव दृष्टि की पावन धरती को दुल्चा ने ध्वस्त कर दिया। बरून नागा के शब्दों में कश्मीर की पीड़ा उभरी है। यह तो मेरा दुःख है, भीखन हमारे सहस्रों भाई–बन्धु बन्दी बनाए गए, दास बनाए गए। सबका दुख है।.......दीन जीवन की व्यथा इन शब्दों में व्यक्त होती है– हम शूद्र.. ...दीन....हीन.....हम क्या कहें? कभी रो लेना है। कभी भगवान को उलाहना दे देना है।"....... राजनैतिक दुर्बलता की स्थिति में धन तुष्टि से मंगोल दस्यु को राजी कर देश बचाने की प्रक्रिया और ब्राह्मण रूढ़ि ने देश को– कश्मीर को ध्वस्त किया।..... अब मंगोल दस्यु आ गया है। राजा सहदेव युद्ध करने में असमर्थ हैं। सैन्य शक्ति की दुर्बलता है। धन–बल से लौटा देना है। यह भी ठीक है, पर पं. प्रवर देवस्वामी का विरोध है।" विदेशी आक्रान्ता या शरण लिए इस्लामी देश को अपनी धरती माता स्वीकार नहीं करते। नरगिस कहती है– आपा। आप शादी के बाद कुफ्र की तारीफ करने लगी है। यह मुनासिब नहीं है। अधिकांश जनता गरीबी में और नीच जाति की दीनता में जीवन जी रही है– भीखन ने रूककर कहा, 'केशो! उधर से आ रहा हूँ। एक कंबल चाहिए। पुराना तारा–तार हो रहा हैं।.........बहुदेववाद भी सच है।.. ... फिरोज कहता है...इस मुल्क में हर काम के लिए एक–एक देवता है। कश्मीर प्राकृतिक सुषमा का एवं राज तरंगिणी का प्रदेश है। ठण्ड और हिम का प्रदेश है।.....पद्मा ने कांगड़ी सुलगा कर शर्वरीश को गोद में ले लिया।..... पद्मा ने देखा काँगड़ी सुलग रही है। बाहर

शीत है। प्राकृतिक सौन्दर्य का एक दृश्य – लार घाटी का लहर कोट अपने राजा रामचन्द्र के स्वागत की तैयारी में मग्न था। पहाड़ी की गोद में सामंत भवन जग–मग हो रहा था। तीन दिशाओं में पहाड़ियाँ थीं। देवदारू के वृक्ष शीत में सोते दिखाई पड़ रहे हैं।......हरियाली झलक रही थी। चौथी दिशा में विशाल द्वार के समक्ष पुष्कर था।.....लघु–लघु चंचल लहरों पर नौकाओं का संतरण और फिर लहरेन्द्र के द्वार पर पहुँचना। डल झील में पंपोश मुरझाने लगे। पेड़ो पर काँव–काँव कर रहे थे। सिरी उदास लगने लगे। काठ के पुल और पेड़ पौधों के झुरमुट। ऊपर नीला आकाश तथा जल में प्रतिबिंबित आकाश – यही प्रकृति का सुन्दर आँगन है। कश्मीर प्राकृतिक सौन्दर्य की नगरी इस काल में प्राकृतिक वैभव के साथ–साथ ध्वंश का परिवेश देखती है। यही परिवेश 'कश्मीर की बेटी' में यथार्थ चित्रित है।

'तुंगभद्रा पर सूर्योदय'[218] में दक्षिण भारत में मुहम्मद–बिन–तुगलक के काल की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक पराभव एवं तदुपरान्त सांस्कृतिक समन्वय व हिन्दुत्व की प्रतिष्ठा का परिवेश चित्रित हुआ है। मुहम्मद–बिन–तुगलक के शासन में क्रूरता, कठोरता एवं विलासिता की सत्ता का अधिकार है। भारत में एकत्व की कमी है। कहा है– "यदि ये तेलंगाना के काकतीय प्रतापरूद्र, द्वार समुद्र के होयसलवंशी बल्लालदेव और देवगिरि के यादव रामचन्द्र और शंकर देव मिलकर संयुक्त शक्ति की रचना करते तो दिल्ली के सुल्तान की राह को रोका जा सकता था।..........हम्पी से कुछ दूरी पर तुंगभद्रा के पास विरूपाक्ष शिव का विशाल मन्दिर। युद्ध और चिता का ताप पहुँच रहा होगा।.........हिन्दू राजा शरणागत की रक्षा अपना कर्तव्य व दायित्व समझते रहे हैं।– सुलतान के भानजे बहाउद्दीन गुर्शस्प को शरण देने पर ही कम्पिली की बर्बादी हुई है। पर यहाँ के सूबों को कब्जे में करना भी कठिन है। महारानियाँ व क्षत्राणियाँ सतीत्व की रक्षा में चितारोहण कर लेती है। मलिक जदा कहता है– दिल्ली के शाही तख्त की ओर देखने की कोई हिम्मत नहीं करता.............पर हिन्दुस्तान के सूबे कब्जे में आते–आते छिटक जाते हैं।.........इनकी बहादुरी और मर–मिटने का नशा हमारी कामयाबी की राह में रोड़े हैं।".................विलास इनका प्रिय शगल था। – "इधर महफिल की रोशनी में रक्कासा का चेहरा चमक रहा था। अंग–अंग में थिरकन थी। पैरों के धुँधरू झूम रहे थे।........सभी संगीत की लय पर रक्कासा के हुस्न का जलवा देख रहे थे।" युद्ध की स्थिति में भी शैव–वैष्णव–जैन का अन्तर बना रहता है। शैव मल्लिकार्जुन ने पीड़ा व्यक्त करते हुए कहा– आँखों में आंसू आ गए। अनेगोन्दी दुर्ग की महिलाओं ने अग्नि समाधि ले ली – जब यह संवाद मिला।........पर इस स्थिति में भी हम शैव हैं, वैष्णव हैं और जैन हैं। और फिर अनेकानेक ऊँच–नीच जातियाँ हैं। सभी पंथों की अलग भाषा, अलग वेषभूषा, अलग दर्शन हैं – दूसरे छोर पर लिंगायत सम्प्रदाय का एक शैव साधु दिखाई पड़ा..... श्याम वर्ण के साधु के मुख पर श्वश्रु था। शीश पर केशों की सज्जा थी। कन्धों पर उत्तरीय था। उपनयन के धागों से बंधे रजतपत्र में शिवलिंग ग्रीवा के पास सुशोभित था।"..............शैवों के अन्य पंथ–कापालिक एवं कालमुख तो भयंकर रूप धारण कर चमत्कार पूर्ण आतंक रच देते हैं।

शाक्तों का वाम मार्ग मद्य, मांस बलि का वीभत्स आयोजन करता है।....................पाखण्ड बढ़ रहा है।" सूफी फकीर भी धर्मान्तरण की प्रक्रिया में सहयोगी हैं। सायण सोच रहे हैं– तुर्क सूफी घूम–घूम कर लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। तुर्क शासन का प्रोत्साहन है। फिर ये धर्मान्तरण कराते हैं। हम तो धर्मान्तरण की बात नहीं सोचते। हम तो सबको चिन्तन और उपासना की स्वाधीनता देते हैं। वर्ण–जाति की सामाजिक व्यवस्था अवश्य ही कठोर है।. ....इससे विषमता आ ही जाती है। दक्षिण भारत के मन्दिर में देवदासी बनाने की कुप्रथा को भी पुरजोर मान्यता है। पुत्र प्राप्ति की इच्छाा से माँ–पिता पुत्री को देवता को अर्पित कर देते हैं– उसी समय मार्ग में बातचीत सुनाई पड़ी – "संभवतः कन्या देवदासी बनना नहीं चाहती हैं। वह गायन में अवश्य ही प्रवीण है। उसके माता–पिता चाहते हैं। वे समझते हैं कि एक कन्या के देवदासी बनने से पुत्र जन्म लेगा और उन्हें समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त होगी।............ सामान्यजन की मानसिक स्थिति व दयनीय स्थिति पर ध्यान न देकर कर बढ़ाया जाता है। गरीब किसान की हालत बदतर है। नारी शोषण और पीड़ा में कराहती है। रक्कासाओं का नाच–गान है या विजेता शासक पराजित स्त्रियों का देह–भोग करते हैं– देवलदेवी साक्षात् उदाहरण है। देवलदेवी ने जवाब दिया – औरत तो मादा जानवर हैं ऐशपरस्त शाही महल मादा को नोंचता है।"............वहीं मुगल का शत्रुओं पर निर्दयी क्रूरता करता चरित्र उस काल की क्रूर राजनीति को चित्रित करता है– बहाउद्दीन, कम्पिलदेव और किशलू खाँ के बाद बंगाल के बागी हाकिम गियासुद्दीन की बारी आ गई है। उसकी खाल में भूसा भरकर बहराम खाँ भेज रहा है।" कर का बोझ जनता सह नहीं पाती है देव कहता है– "राजा माई–बाप होता है। उसी के सामने सुख–दुख बताया जाता है। पचास पंचायतों के गाँवों में उपज बहुत कम हुई है। पर मालगुजारी बढ़ा दी है। दस प्रतिशत बढ़ी हुई मालगुजारी देने में असमर्थ हैं। आध्यात्मिक चिंतन का वातावरण भी निर्मित किया जा रहा है। – मैंने चाहा है कि हम्पी में विरूपाक्ष मन्दिर के परिसर में सर्वश्री वेदान्तदेशिकाचार्य, क्रियाशक्ति यतीश्वर, पद्यतीर्थ, मल्लिनाथ – सभी एक साथ बैठें।..........अन्त में अद्वैतवादी चिन्तन को श्रेष्ठ मानकर माधवाचार्य ने कहा– यदि अद्वैत का चिन्तन चाण्डाल में भी ब्रह्म का दर्शन कर सकता है तो विषमता की भावना कब तक कष्ट देगी।.......हिन्दुत्व उजागर हो रहा है। भावना प्रबल होती जाती है। हरिहर–बुक्का को नेतृत्व देकर स्थापना की जाती है। "बल्लालदेव की सेना है,.......... प्रोलय नायक की सेना है।....... कप्पण और मरप्पा तथा मडप्पा ने सहस्र तरूणों को सैनिक प्रशिक्षण दिया है। ये सभी तुम दोनों के एक संकेत पर नग्न खड्ग लेकर हरिहर राय और बुक्काराय के जय घोष के लिए तत्पर है। भगवान विरूपाक्ष शिव की इच्छा है कि संगमदेव के वीर पुत्रों द्वारा यह भूमि पराधीनता से मुक्त हो। स्वामी विधारण्य ने कहा। क्रूर राजनीति से मुक्त होने का परिवेश चित्रित है– 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' उपन्यास में।

'सुनो भाई साधो'[219] में पन्द्रहवीं सदी का चित्र स्पष्ट होता है। भक्ति के मार्ग खुलते हैं। विभिन्न धाराएँ सामने आती हैं। लोदी–शर्की संघर्ष की राजनीतिक संघर्ष गाथा है। धर्मान्तरण,

युद्धभय, जन मानस में छाया आतंक, रूढ़ मान्यताएँ एकत्व का अभाव आदि परिस्थितियों से निर्मित है– 'सुनो भाई साधो' का परिवेश। रामानन्द का चिंतन, मठों व सम्प्रदायों की प्रबलता के बीच कबीर का पंथ व मठ स्थापित करने का विरोध, सम्प्रदायवाद के प्रति चेतन भाव व्यक्त करता है। भोला पांडे और कबीर का आपसी विरोध ब्राह्मणवाद और अछूत के भेद को व्यक्त करता है। जुलाहा नव धर्मान्तरित समुदाय है पर धर्मान्तरण पर भी जीवन में कोई बदलाव नहीं आया। पहले पंडितों का जोर अब मुल्लाओं का। कबीर का चिंतनपूर्ण वातावरण को जीवंत बनाए हुए है। यह खयाल आ रहा है कि धरमदास, सुरतगोपाल, बिजली खाँ के साथ निरगुन की भगति, राम–रहीम की एकता और हिन्दू–मुसलमान को जोड़कर इंसानियत की तहरीक चल सकेगी।" कबीर, शर्की सुल्तान और सिकन्दर लोदी के बीच की कथा कहता उपन्यास मूलतः आध्यात्मिक वातावरण को प्रश्रय देता है। कबीर और निजामशाह (सिकन्दर लोदी) दोनों में हिन्दू माँ का रक्त है। एक सत्ता लोभ में क्रूर शासक बनता है दूसरा आत्म–सुख में महान् संत बनता है। क्रूरता आत्मसुख के आगे पराजित है। धर्मान्तरण का द्वन्द्व, सामाजिक विषमता, ब्राह्मण–अछूत संघर्ष, काशी का वातावरण, राजनैतिक क्रूरता, नारी की विवशता, गरीबी का जीवन आदि मानव के साथ गुजरती सभी क्रूर स्थितियाँ मध्यकालीन जीवन में व्याप्त रही हैं, वे सुनो भाई साधो में भी चित्रमयी हुई हैं। बहलोल विजेता बनकर शर्की सुल्तान की माँ से मुखातिब होता है और....... "बहलोल ने एक बार में सर कलम कर दिया। खून का सैलाब उमड़ आया। लोदी बादशाह के लबों पर जीत का तबस्सुम झलक उठा।" सांस्कृतिक उत्सव, रागरंग, गीत, पर्व द्वन्द्व और संघर्ष भारतीय समाज में रहे हैं– उसी समय भीतर ढोलक पर सोहर शुरू होगा। नीरू को एक क्षण के लिए विश्वास नहीं हुआ। दीनू, नत्थू, ईश्वर, देवन भौंचक रह गए। उधर सोहर गीत चलता रहा। चारों सुनते रहे।.....चारों ने चाहा कि उनकी घरवालियाँ शामिल न हो।............अब पाँच सुहागिनों ने एक साथ सोहर गाना शुरू कर दिया। नीमा ने देखा कि पाँच सुहागिनें उसके पास हैं।....जमना ने बच्चे को गोद में ले लिया। रजिया ने तेल लगाया। मालती ने आँखों में काजल लगा दिया। मलिका ने नए कपड़े पहना दिए। सब ने कहा – हम सबकी घरवालियों ने बधाई दे दीं। अब कुछ कहना बेकार है। ब्राह्मणवाद ने भी धर्म परिवर्तन की भूमिका निभाई है। इन शब्दों से व्यक्त होता है– ये तो नया धरम अपनाकर हमसे दूर जा रहे हैं पंडितों के कारण ही इन लोगों ने नये महजब को अपनाया है।..........मेहनत की कमाई खाने वालों को छोटा......शूद्दर मानना मन को दुखाता रहा है।" सुल्तानों के शासन में षड़यन्त्र हैं। आजीविका के लिए संघर्ष करना पड़ता है।......... अनवर कभी गुलाम अमीना की ओर देख रहा था कभी उस खत को। सोच रहा था कि वह नये सुल्तान से इनाम पायेगा या कैदखाने में आराम करेगा। बेगम शहनाज तक खत पहुँचाना।. ......जहन्नुम की ओर कदम बढ़ाना है। यह खौफ हमेशा बना रहता है। सब पर कबीर का प्रभाव है। कबीर की भक्ति के कायल होते जा रहे हैं।..........माँ यह पद कबीर दास का है। सच्चे संत हैं। सर्वत्र उनकी वाणी गूँज रही है। भोलापांडे का यह कहना कि 'तुम कुल का

नाम डुबा दोगे' भी रूढ़ पंडितपन को ही दर्शाता है। सेठ साहूकार भी स्त्री देह के भोगी रहे हैं। अछूत व अभावग्रस्त का शोषण उनका भी शगल रहा है। लोई की जिंदगी आग और धुआँ से घिरी रही। इसी अमोलचन्द ने धुआँ ही धुआँ पैदा कर दिया था जिससे साँस घुट जाए।"............तंत्र शक्ति व टोटकों पर यहाँ पर भी विश्वास किया जा रहा है। दोपहर के बाद फकीर अहमदशाह तशरीफ ले आए। बेगम जीनत को उन्होंने एक ताबीज रखने की सलाह दी। शाम को देवीदीन ओझा आ गए तंतर–मंतर की सलाह हुई। लाल फूल मँगवाया। मंत्रपाठ से उसे दैनिक शक्ति से पूर्ण किया। सम्पूर्ण जीवन द्वन्द्व ग्रस्त है। जीवन कठिन हो रहा है– गोपाल और कमाल के वार्तालाप में स्पष्ट हो रहा है कि– काशी में द्वन्द्व है। भीतर का द्वन्द्व है। बाहर का द्वन्द्व है। परिवार, गाँव, देश– सब जगह द्वन्द्व है।" मधु सोच रही थी– पिताजी तो राजनीति में मगन है। लड़ाई होने वाली है। कभी राज्य के लिए कभी धन के लिए.......तो कभी सुन्दर स्त्री के लिए लड़ाइयाँ होती है। खून बहता है। यम का अट्टहास सुनाई पड़ता है।"........गोपाल कह रहा था– मैं जानता हूँ कि इन तिलक धारियों में कितने बगुले भगत हैं। बगुले भगतों को दान देने से पुण्य नहीं है–..........सिकन्दर लोदी ने कहा– यदि रिआया काफिर हो तो उसकी तहजीब और तमद्दुन को दबाते चलो। इससे उसके दिलो दिमाग पर कब्जा हो जायेगा। इन्द्र देव ने सामंती वास्तविकता का चित्रण करते हुए कहा– किसान, कारीगर, व्यापारी महुओं, को दुखी करके सुल्तान को खुश करते रहना उचित लगता है। यह पराधीनता है।........किशन कहता है – भाखा, पहनावा और रीति को बदलने की तो कोशिश चल ही रही है। सबसे पहले तो नाम को बदल दिया जाता है। मैं किशन नहीं करीम कहलाता हूँ।........समझाया जा रहा है कि अरब की पाक जमीन से हमारा संबंध बन जाए।.........सिकन्दर लोदी जीनतमहल से कहते हैं– मैंने दीन और सल्तनत दोंनो के लिए सरफरोशी की कसम खायी है.......वैसे तो हरम की बेगम फतहयााब की हो जाती है..........अब कदम सारे हिन्दुस्तान को रौंद डालेंगे। न उनकी हिन्दू माँ का खून रोक सकेगा और न ये इक्के दुक्के जमींदार इन सबकों कदमों में झुकना है। आदि कथनों में अभिव्यक्त परिवेश पंद्रहवीं सदी का यथार्थ है।

ऐतिहासिक प्रामाणिकता के सन्दर्भ हुकुमचन्द जैन रचित 'भारतीय ऐतिहासिक स्थल कोश', 'प्रतापसिंह लिखित' 'मध्यकालीन भारत' भरतेश कुमार लिखित 'भारत का सम्पूर्ण इतिहास', डॉ बिन्दू दूबे रचित 'संतकबीर का साहित्य' बी.एल. गुप्ता लिखित 'मध्यकालीन भारत का इतिहास', रामधारी सिंह दिनकर रचित 'संस्कृति के चार अध्याय' आदि इतिहास पुस्तकों से लिए जा रहे है। 1. विक्रमशिला बिहार के भागलपुर जिले में गंगा किनारे विक्रमशिला की स्थापना पाल राजा धर्मपाल ने की। यह बौद्ध विहार एक विश्वविद्यालय में विकसित हुआ।[220] 2. नालन्दा एक विश्व विख्यात बौद्ध पीठ एवं विश्वविद्यालय था। यह दक्षिण बिहार के राजगीर के निकट स्थित था।[221] 3. द्वार समुद्र–होयसल राज्य की राजधानी थी। जिसका वर्तमान नाम हलेविद है। जो कर्नाटक के हसन जिले में है।[222] 4. वारंगल–तेलंगाना की राजधानी वारंगल

देवगिरी के दक्षिण–पूर्व में स्थित है। जहाँ काकतीय वंश का शासन था। उलूग खाँ ने तेलंगाना पर 1323 ई. में विजय प्राप्त कर इसका नाम सुल्तानपुर रख दिया।[223] 5. विजयनगर–इस राज्य की नींव हरिहर एवं बुक्का ने 1336 ई. में की थी। मध्य काल में विजयनगर राजधानी अपनी समृद्धि एवं वैभव से दुनिया को चकाचौंध करती थी।[224] 6. ईश्वरी प्रसाद को उदघृत कर प्रताप सिंह ने लिखा है कि– यह युग राजतंत्रात्मक था परन्तु शासन प्रणाली सामंती ढ़ंग की थी। शासन व्यवस्थाओं में व्यक्तिगत अधिकार की भावना प्रबल थी। सामूहिक समस्याओं को सुलझाने के लिए विभिन्न राजनीतिक शक्तियों का संगठन न हो पाया। तुर्कों के आक्रमण के समय देश में न तो राजनीतिक एकता थी, न सामाजिक सुदृढ़ता थी।.........इस काल का भारत भौगोलिक संज्ञामात्र रह गया था।...........भारतीय समाज पारस्परिक फूट, वैमनस्य, ऊँच–नीच की भावना, जातियों–उपजातियों के विषम विभाजन, स्त्रियों की हीन दशा और विभिन्न सामाजिक कुरीतियों का शिकार था। राजनीतिक एकता के अभाव में भारतीय समाज निरन्तर पतनोन्मुख होता चला गया। 11वीं शताब्दी में हीन स्थिति में पहुँच गया।........विदेशी भारत को सोने की चिड़िया मानते थे। मन्दिर ऐश्वर्य व सम्पदा के भण्डार थे। आर्थिक सम्पन्नता के साथ आर्थिक विपन्नता भी थी। क्योंकि समृद्ध वर्ग की तुलना में निर्धन वर्ग का जीवन दयनीय था। असंतोष का जीवन व्यतीत कर रही थी। अलबेरूनी के अनुसार भारतीय समाज में बाल–विवाह की प्रथा प्रचलित थी। पति का देहान्त हो जाने पर स्त्री को मृत्युपर्यन्त वैधव्य का दुःख भोगना पड़ता था।..........धर्म में कर्मकाण्ड की प्रधानता, वाममार्गी सम्प्रदायों की लोकप्रियता, सुरापान, मांसाहार, व्यभिचार आदि इन वाममार्गी अनुयायियों की धार्मिक क्रियाओं में सम्मिलित थे। बौद्ध विहार मठ आदि अनाचार और भोग–विलास के अड़डे बन गए थे।...........मुस्लिम आक्रान्ता लूटपाट, हत्या, आगजनी, बलात धर्मपरिवर्तन आदि कार्यों से आतंक फैला रहे थे। भारत में इस्लाम का आरम्भिक इतिहास मारकाट, खूरेंजी, धर्म परिवर्तन, अभद्रता, अन्याय का इतिहास था।[225] 7. संत कवियों का युग मूलतः सामाजिक वैमनस्य, वर्णगत भेद, मिथ्याचार बहुलता, साम्प्रदायिक मनोमालिन्य प्रधान था।.......कबीर के सामने समाज का विषम आर्थिक ढाँचा था जिस में एक ओर असीम वैभव की छत्र छाया में पलने वाली विलासिता का ताण्डव नृत्य था और दूसरी ओर निम्न स्तर की साधारण जनता का कारूणिक क्रन्दन।[226] 8. सिकन्दर लोदी एक कट्टर मुसलमान सिद्ध हुआ जिसमें धार्मिक सहिण्णुता का नाम भी नहीं था।........जो हिन्दू इस्लाम स्वीकार कर लेता था उन्हें वह शान्ति से रहने देता और जो विद्रोह करता उसकी हत्या का आदेश दे दिया करता था।..........तारीख–ए–दाउदी, तबकाते–अकबरी, नासिर रहीमी के अनुसार वह इस्लाम का इतना बड़ा पक्षपाती था कि उसने काफिरों के मन्दिरों को नष्ट करवा दिया था।.........हिन्दुओं के पूजा के पत्थर (मूर्तियाँ) कसाईयों को दे दिए ताकि उनसे मांस तोला जाए। बोदन ब्राह्मण को इसलिए दण्ड दे दिया गया कि उसका कहना था कि इस्लाम सच्चा धर्म है परन्तु हिन्दू धर्म भी उससे कम सच्चा नहीं है[227] 8. मुहम्मद–बिन–तुगलक का काल उसके सनकीपन एवं

अन्त विद्रोहों के वातावरण से ग्रस्त रहा। मुहम्मद–बिन–तुगलक सन् 1321 ई. में गद्दी पर बैठा 1326–27 से विद्रोहों का सिलसिला शुरू हुआ। सन् 1351 ई. में उसकी मृत्युतक 22 विद्रोह हुए जो औसतन प्रतिवर्ष एक विद्रोह हुआ।......1335 ई. में हुआ माबर का विद्रोह तुगलक काल के विद्रोहों की विभाजक रेखा है। क्योंकि 1335 के विद्रोह के बाद के विद्रोह दबाए नहीं जा सके। सफल हुए.......तुगलक क्रूरता से शासन करता था – गुर्सस्प, किशलू खाँ, गयासुद्दीन बहादुर का सिर काटकर, खाल उतरवाकर भूसा भर दिया गया था। इब्नबतूता लटकते सिर को देखकर डर जाया करता था। दक्षिण में हिन्दू भी प्रोत्साहित होकर विद्रोह करने लगे। तेलंगाना में हाकिम मलिक मकबूल विद्रोह नहीं दबा सका। हरिहर–बुक्का को भेजा गया जो सुल्तान के वफादार सरदार थे। इन्हें जबरदस्ती मुसलमान बना दिया गया था दिल से हिन्दू बने रहे । हरिहर ने जनता का विश्वास अर्जित किया। हिन्दू धर्म में निष्ठा व्यक्त की। शासन संगठित करने के बाद विजयनगर की स्थापना की।[2298] 9. अनेगुण्डी (अनेगोन्दी) कर्नाटक के जिला रायचूर में तुंगभद्रा नदी के किनारे अवस्थित है दूसरी और हम्पी के खण्डहर हैं।........ वाराणसी (काशी) उत्तर प्रदेश में गंगा के उत्तरी तट पर वरूणा और अस्सी सहायक नदियों के बीच स्थित है। बनारस में ही कबीर और तुलसी ने अपने साहित्यिक कार्यों को पूरा किया। पाटलिपुत्र–बिहार की आधुनिक राजधानी पटना ही पाटलिपुत्र था। मध्यप्रदेश की गंगा–सोम–गंडक नदी के किनारे बसा है।...........दौलताबाद– यह स्थान महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में गोदावरी नदी की उत्तरी घाटी पर स्थित है। इसका पूर्व नाम देवगिरी था। 1326–27 ई. में मुहम्मद–बिन–तुगलक ने इसे अपनी राजधानी बनाया और दौलताबाद नाम रखा।[229] 10. सर्वश्री मजूमदार, रायचौधरी, दत्त के अनुसार सल्तनत कालीन सुल्तान सीजर तथा पोप का मिश्रित रूप था। कुरान से शक्ति संचालित परन्तु भारत का मुस्लिम सुल्तान व्यावहारिक रूप में स्वेच्छाचारी शासक था। सुल्तान प्रधान सेनापति, कानून सृष्टा एवं अपील का अन्तिम न्यायालय था।......डॉ कुरेशी व आशीर्वादी लाल श्री वास्तव का मानना है कि शासक वर्ग इस्लाम का अनुयायी था। भारत में इस्लामी राज्य का आदर्श था– देश की समस्त जनता को मुसलमान बनाना, देशी धर्मों का मूलोच्छेदन करना आदि........जजिया गैर मुसलमानों से लिया जाने वाला कर था। दिल्ली सुल्तानों के लिए ये सम्भव न था कि वे मूर्ति पूजकों को अपने राज्य में रहने न दें। जजिया देने पर जीवित रहने का अधिकार दिया। काफिरों के विरूद्ध युद्ध में प्राप्त लूट का पाँचवा हिस्सा राजकोष में जमा होता जिसे खम्स कहते थे। 'खराज' भूमिकर था जो हिन्दू सामन्तों और किसानों से वसूला जाता था।[230]

निष्कर्षतः मध्यकालीन भौगोलिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक वातावरण का यथार्थ जो शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में चित्रित है पूर्णतः वास्तविक एवं प्रामाणिक है।

(6) इतिहास एवं कल्पना का समन्वय– ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेष्ठता एवं सफलता ऐतिहासिक यथार्थ पर जितनी निर्भर है उतनी ही इतिहास और कल्पना के कुशल संयोजन

पर भी है। शत्रुघ्न प्रसाद इस मापदण्ड या तत्व विवेचन पर पूर्ण सफल उपन्यासकार है। 'सिद्धियों का खण्डहर' उपन्यास में इख्तियार–बिन–बख्तियार खिलजी का आक्रमण ही ऐतिहासिक घटना है। गोविन्दपाल, लक्ष्मणसेन, आचार्य कमल रक्षित, महास्थविर रत्नभद्र ऐतिहासक पात्र हैं। अन्य सभी प्रसंग एवं पात्र इतिहास आभासित काल्पनिक उपज हैं। कुमार महेन्द्र का समायोजन पीढ़ी या वंशानुक्रम में करना इतिहास सिद्ध सा हो गया है। संघर्ष की छाया में गुजरने वाले सारे प्रसंग, योजनाएँ, तैयारियाँ और बीच बहस में प्रकट होते विचार उस काल के सम्पूर्ण परिवेश एवं युग का चित्रण कर देते है। कुमार महेन्द्र और विधवा सुवर्णा का मौन अनुराग, जैन सुमन्त एवं सुभद्रा तथा देवेन्द्र और मृणाल के युग्म इस संघर्ष की योजनाओं में जुड़ते जाते है और अन्तिम संघर्ष में एक साथ होते हैं। अमात्य सिद्धेश और महामात्य बिन्दु का साधना करना, सिद्ध घोरपा का तन्त्र शक्ति दर्शाकर प्रभाव स्थापित रखना, महासाधिका बनाकर योग तृप्ति करते रहना आदि घटनाएँ साथ–साथ ऐसे चलती रहती है जैसे इतिहास में घटित हुई है। शोभन शास्त्री एवं देवीदत्त का परस्पर विरोध, गुलाम रसूल एवं इब्राहिम का गुप्तचरी में भाग लेना आदि प्रसंग भी इतिहास सम्मत से जान पड़ते हैं। महारानी उषा देवी का बीमार होना, साधना से थोड़ा ठीक होना, नगर श्रेष्ठि प्रकाम, करणिक देवसहाय, नृत्यांगना रूपा, वैद्य भानुदत, सिद्ध कुक्कुटपा, भीलभद्र, मुदित भद्र, सेनानी नरदेव, सामन्त वरूणेश घटनाओं के साथ इस रूप में जुड़े हैं जैसे अनेक रंगी पुष्प एक माला में गुंथ गए हों। कुमार महेन्द्र की राजकीय यात्रा सुवर्णा की तीर्थयात्रा, जैन सुमन्त की. अध्यात्म चिंतन मनन यात्रा, सुभद्रा का वैधव्य, सिद्धेश एवं बिन्दु की साधनायात्रा, गुलाम रसूल एवं इब्राहिम की गुप्तचरी यात्रा एक संघर्ष यात्रा बन जाती है। सारे भिन्न–भिन्न प्रसंग एक ही प्रसंग के साथ जुड़ जाते हैं। सम्पूर्ण उपन्यास ऐसे लगता है जैसे इतिहास की ही घटनाओं और पात्रों को एक औपन्यासिक शैली में निबद्ध कर दिया गया है। श्री रंजन सूरिदेव ने इस कुशलता पर लिखा है कि– "अधीती कथाकार ने इस कथा कृति में ऐतिहासिक यथार्थ और कल्पना के मिश्रण से तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक द्वन्द्वों के साथ–साथ मानव मन की कोमल भावनाओं एवं वैयक्तिक राग विराग के मनोरम आसंग का विन्यास किया है।"[231] इतिहास कल्पना के समायोजन से यह उपन्यास न इतिहास लगता है न कल्पना, केवल ऐतिहासिक यथार्थ पूर्ण उपन्यास लगता है या कहें कि यथार्थवादी उपन्यास ही लगता है। यही इस कृति की सफलता है।

'कश्मीर की बेटी' में इतिहास इतना भर है कि मंगोल दस्यु के आक्रमण से भयभीत कश्मीर का दुर्बल एवं साधन हीन शासक धन से तुष्ट कर वापस लौटा देना चाहता है। पंडितप्रवर देवस्वामी कर देने का विरोध करते हैं। इसी उथल–पुथल का लाभ उठाकर शरणार्थी अफगान शाह मिर्जा (शाहमीर) शासन हथिया लेता है। दुल्चा के आक्रमण में सहदेव का सहयोग माँगना, पं. प्रवर देवस्वामी का विरोध, सहदेव का पलायन, चाँदनी का अपहरण, वापस आना, आनन्दभिक्षु के परामर्श से सर्वदेव के साथ विवाह होना, डामर सामन्त रामचन्द्र का शासन

संभालना, भोट कुमार रिच्छेन द्वारा रामचन्द्र की हत्या कर स्वयं शासन हाथ में लेना, पंडित वर्ग द्वारा अस्वीकृत रिच्छेन का इस्लाम ग्रहण करना, कोटा देवी एवं रिच्छेन का अनचाहा पुत्र उत्पन्न होना, उदयन देव का आना, कोटा देवी एवं उदयनदेव द्वारा शासन संचालन करना कोटा देवी के पुत्र को इस्लामी संस्कार देना, चन्द्रदेव को हैदर अली बना देना, शाहमीर द्वारा अपनी बेवा पुत्री गुहरा का विवाह कोटराज से करके उससे मिलकर षडयन्त्र करना, आनन्द भिक्षु की हत्या करना और अन्त में धोखे से कश्मीर का शासन हथिया लेना में कथाक्रम इतनी कुशलता से गठित किया गया है कि इतिहास कड़ी या एक युग–क्रम प्रतीत होता है। घटनाओं का कहीं कोई अलगाव या चिपकाव प्रतीत नहीं होता। कोटराज–गुहरा, नरगिस–शबनम और लक्ष्म एवं लुस्त, चाँदनी–सर्वदेव, आनन्द भिक्षु एवं पदमा, देवस्वामी एवं मुकुल भट्ट आदि सारे प्रसंग कल्पना प्रसूत हैं परन्तु विन्यास कौशल इन्हें एक ही कड़ी में पिरोए गए मोतियों की माला बना देता है। औपन्यासिक कौशल इतिहास एवं कल्पना को ऐतिहासिक उपन्यास बना देता है। उमेश दीक्षित ने लिखा है कि– "इतिहास को पटल बनाकर उन्होंने अपनी लेखनी को तूलिका के समान उपयोग करके जो शब्द चित्र उकेरे हैं वे अत्यन्त मनोहर है और द्रावक भी। सत्य काफी कुछ कसैला भी होता है।"[232] अतः स्पष्ट है कि कषैले सत्य को मनोरम कल्पना द्वारा संजोकर हृदय द्रावक एवं मार्मिक कथा कही गई है।

'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' उपन्यास में अद्वैतवादी मध्वाचार्य अर्थात् स्वामी विद्यारण्य का सभी सम्प्रदायों एवं पंथों में एकत्व स्थापित करना व हरिहर राय एवं बुक्काराय के साथ आबिद–आदिल एवं देवल देवी का सहयोगी बनाना, देवल की पुत्री श्री देवी (रूखलाना) का मरप्पा से विवाह करवाने की कथा का सामंजस्य कलात्मक सृजन है। साथ ही देवदासी इन्दु एवं षण्मुखम का प्रसंग स्वामी विद्यारण्य की कथा में इस प्रकार जोड़ दिया गया है कि जैसे यह एक सांस्कृतिक कथा का अभिन्न अंग हो तथा हामिद एवं गजाला की कथा भी इसी प्रकार जुड़ी हुई प्रतीत होती है। प्रेम शशांक का कथन यहाँ समीचीन मालूम होता है कि– इतिहास और कथा की दुधारी तलवार पर वह बेहद कुशलता से चले है। इसके बावजूद इतिहास के संदर्भों में वह न केवल एक कथा को अंजाम देता है बल्कि इस रचाव के पीछे एक स्वस्थ सोच भी है जो उसे इस क्षेत्र में विशिष्ट बनाती हैं।"[233] रणसिंह एवं वीर सिंह ने रामदेव और शिवदेव के साथ ग्राम प्रधानों से मिलकर किसान विद्रोह का नेतृत्व करने, कम्पण, मरप्पा, मडप्पा का मिलकर अपने परिवार के साथ स्नेह से रहना एवं हिन्दुत्व का भाव बनाए रखना, माधवाचार्य और वैतीहोत्री प्रसंग एवं स्वामी विद्यारण्य बनना, माधवाचार्य का शैव मल्लिार्जुन, भद्रबाहु, अनन्तआसंद, वेदांतदेशिकाचार्य, क्रियाशक्ति यतीश्वर, पद्मनाभतीर्थ आदि के साथ किए वैचारिक समन्वय की कथा भी लेखक की वैचारिक कल्पना है। यह कथ्य है जो इतिहास के माध्यम से कहा गया। अतः स्पष्ट है कि हरिहरराय एवं बुक्काराय की कथा के साथ देवलदेवी–श्रीदेवी कथा एवं हामिद–गजाला कथा तथा स्वामी विद्यारण्य की कथा के साथ देवदासी इन्दु एवं षण्मुखम् कथा को जोड़कर विजय नगर की प्रतिष्ठा के साथ

मरप्पा–श्रीदेवी विवाह द्वारा वैवाहिक नव संस्कृति की स्थापना की कथा को जोड़ा गया है। इतिहास के साथ कल्पना का संयोजन अद्‌भुत कौशल के साथ किया गया है जिससे राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक समन्वय की प्रतिष्ठा हुई हैं।

'सुनो भाई साधो' में रामानन्द मठ में आयोजन एवं कबीर का वैचारिक चिंतन में खो जाना कल्पना की भूमि पर उपजा चिंतन ही है। कबीर इतिहास है, चिंतन हृदय के मनोभावों पर उपजा विचार या भाव है। बारबकशाह के साथ शहनाज बेगम का प्रसंग चाहे वह छल प्रेरित प्रेम ही हो, प्रेम की कोमल कल्पना तो है ही। कबीर और लोई का मिलन एवं प्रेम से जुड़ाव और विवाह भी उपन्यासकार की अनुभूति का परिचय ही है। ये मानवीय संवेदन साहित्यकार को मानवता के साथ जोड़ता है और कल्पना को शक्ति एवं सार्थकता प्रदान करता है। निजामशाह अर्थात् सिकन्दर लोदी के विरोध में हिन्दू राजाओं के एकीकरण की कथा के साथ लक्ष्मीचन्द्र–मधुवंती की कथा नाटकीय कौशल की दक्षता प्रदान करती है। संघर्ष में उपजा प्रेम और कारूणिक अंत कथ्य को सम्प्रेषणीयता प्रदान करता है। इतिहास सिद्ध क्रूरता कल्पनापरक क्रूरता के साथ समन्वित होकर भयानक सत्य को उजागर करती है। सिकन्दर लोदी एवं कबीर में हिन्दू माँ का रक्त होना तो ऐतिहासिक है परन्तु वैचारिक धरातल पर भिन्न दिखाकर कथ्य का संदेश बनाना लेखक की अपनी सूझ–बूझ है जो इतिहास में कला का बेजाड़ संयोजन हैं और भविष्य के गर्भ में वैचारिक क्रान्ति का बीज बोता है। ज्योति शुक्ल का कथन इस बात को और बल देता है कि– "व्याख्यात्मक इतिवृत्त एवं कलात्मक–लयात्मक अभिव्यक्ति का नाम है 'सुनो भाई साधो' जिसके मूल में मानव वृत्ति–प्रवृत्ति ही है।"[234] अतः स्पष्ट है कि मानवीय प्रवृत्तियों को भिन्न–भिन्न स्वाभाविकता के साथ इतिहास के आधार पर अभिव्यक्त किया गया है। 'सुनो भाई साधो' में ऐतिहासिक प्रवृत्तियों को मानवीय प्रवृत्तियों के साथ संयोजन गया है।

निष्कर्षतः पूर्व मध्यकालीन अर्थात् पूर्व–मुगलकालीन इतिहास को कल्पना की तूलिका से चित्रित कर आधुनिक भावों के साथ जोड़ा गया है। राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक के साथ–साथ भौगोलिक एवं वैचारिक परिवेश अपने सम्पूर्ण यथार्थ के साथ अभिव्यक्त हुआ है।

4.9 उत्तर मध्यकालीन या मुगलकालीन ऐतिहासिक उपन्यास – शत्रुघ्न प्रसाद रचित हेमचन्द्र–विक्रमादित्य, अरावली का मुक्त शिखर, शहजादा दाराशिकोहः का दंश मुगलकालीन इतिहास पर आधरित उपन्यास हैं जिनमें सोलहवीं–सत्रहवीं सदीं के भारतीय इतिहास की प्रमुख घटनाओं को उपन्यस्त किया गया है।

(1) ऐतिहासिक घटनाएँ– 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' शेरशाह सूरी के वंशजों सलीमशाह सूर एवं आदिलशाह सूर के शासनकाल की ऐतिहासिक घटनाओं पर आधृत है। रेवाड़ी का हेमू बक्काल अपनी सूझ–बूझ एवं कार्य–कुशलता के बल पर सूर शासन में उच्च पद प्राप्त करता

है। अनेक सफलताएँ दिलवाता है। अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं कर्मकुशलता से जन–प्रिय जननायक बन जाता है। आदिलशाह की मृत्यु पर वह स्वतन्त्र बन जाता है। आदिलशाह की मृत्यु पर वह स्वतन्त्र राजा घोषित कर दिया जाता है। दिल्ली का हिन्दू राजा बनकर विक्रमादित्य की उपाधि धारण करता है। पानीपत के मैदान में अकबर व बैराम खाँ के संघर्ष में दुर्भाग्यशाली पराजय व मृत्यु को प्राप्त करता है। इन्हीं ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' की कथा कहीं गई हैं जो इतिहास द्वारा पूर्णतः समर्थित हैं।

'अरावली का मुक्त शिखर' में दिल्ली के मुगलबादशाह अकबर एवं मेवाड़ अधिपति महाराणा प्रताप के संघर्ष की गाथा उपन्यस्त है। महाराणा उदयसिंह के देहावसान पर नाटकीय रूप से जगमाल का शासन–सत्ता ग्रहण करना, सामन्त–सरदारों द्वारा ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह का राज्यभिषेक करना, जलाल खाँ, मानसिंह टोडरमल एवं भगवानदास को अकबर द्वारा समझौता वार्ता हेतु भेजना, हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध का अनिर्णित रहना, महाराणा द्वारा कुम्भलगढ़ एवं गोगुन्दा में राजधानी स्थापित करना, शाहबाज खाँ, जगन्नाथ कछवाहा, रहीम खान खाना आदि सेनानायकों द्वारा महाराणा पर बार–बार आक्रमण करवाने से ऐतिहासिक घटनाएँ सम्बद्ध उपन्यस्त हैं जो मुगलकालीन इतिहास ग्रन्थों द्वारा पूर्णतः प्रमाणित हैं।

'शहज़ादा दाराशिकोह दहशत का दंश' में शाहजहाँ के पुत्रों में हुए उत्तराधिकारी संघर्ष एवं औरंगजेब द्वारा किए गए दहशतपूर्ण क्रूर शासन का ऐतिहासिक चित्रण किया गया है। सामूगढ़ के युद्ध में दाराशिकोह की पराजय के बाद दारा एवं उसका पुत्र सिपरशिकोह बन्दी बना लिए जाते हैं। औरंगजेब मुल्लाओं की सहमति से दारा का कत्ल करवा देता है। सूफी सरमद को औरंगजेब की दहशत का शिकार होना पड़ता है। बादशाह शाहजहाँ एवं जहाँनारा बेगम को भी कठोर कैद में रहना पड़ता है। पंडित जगन्नाथ एवं पुत्र भवनाथ को पलायन कना पड़ता है। पंडित जगन्नाथ काशी में जल–समाधि ले लेते हैं। सिक्ख गुरू हरेकिशन एवं गुरू तेगबहादुर का भी वध करवा दिया जाता है। मथुरा में जाटों का विद्रोह होता है। बेरहमी से कुचला जाता है। गोकुल जाट को भी मरवा दिया जाता है। दारा की बेगम उदयपुरी बेगम, दारा की पुत्री आलमआरा एवं औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा भी औरंगजेब की क्रूरता एवं निष्ठुरता का दंश झेलते हुए दहशत में जीवन व्यतीत करती हैं। हिन्दू मंदिरों को तुड़वाया जाता है। महाराजा जयसिंह द्वारा शिवाजी को समझौते के लिए तैयार कर मुगल दरबार में लाया जाना एवं औरंगजेब द्वारा उचित सम्मान न देकर नजरबंद करवा देना और शिवाजी द्वारा कुशलता दर्शाकर चतुराई द्वारा मुक्त हो जाना आदि घटनाओं पर आधृत उपन्यास है –'शहज़ादा दाराशिकोह दहशत का दंश' जो पूर्णतः इतिहास सिद्ध है।

'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य'[235] का नायक हेमू रेवाड़ी से अपने पिता संत पूरणमल से मिलने वृन्दावन आ जाता है। शेरशाह से पराजित हुमायूँ पुनः आक्रमण की तैयारी करता है। संत राजा परमानन्द कह रहे हैं– मुगल बादशाह हुमायूँ सं. 1597 ई. में कन्नौज युद्ध में पराजित हो गए।........अमरकोट में अकबर का जन्म हुआ।.....हुमायूँ अब सबको हराकर आगे बढ़ गए हैं।..

.....दिल्ली–आगरा पर कब्जा करने की कोशिश करेंगे।" हेमू आगरा आ जाता है। सेठ सोहनलाल के घर रहने लगता है। शाही दरबार तक जाने लगा। नगर सेठ का सम्मान पाते–पाते उच्च पद प्राप्त कर लेता है। बादशाह सलीमशाह का इन्तकाल हो जाता है। फिरोजशाह की ताजपोशी होती है। फिरोजशाह की हत्याकर मुबारिज खाँ मुहम्मद आदिलशाह के नाम से गद्दी नशीन हुए। बादशाह आदिलशाह हेमचन्द्र को वजीरों में शामिल करते हैं। हुमायूँ पेशावर जीत कर आगरा की ओर बढ़ता है। आदिलशाह सामना करने जाता है। उधर इब्राहिम सूर आगरा का बादशाह बन जाता है। हुमायूँ ने आगरा व दिल्ली पर कब्जा कर लिया है। आदिलशाह ने प्रसन्न होकर कहा– "हेमचन्द्र! तुम विकरमाजीत हो।" आगरे के तख्त पर सिकन्दर आ गया। हेमचन्द्र विशाल वाहिनी लेकर आगरा–दिल्ली की ओर आता है। बिना युद्ध आगरा पर हेमचन्द्र का अधिकार हो गया। सिकन्दर खाँ उजबेक दिल्ली की ओर चला गया। दिल्ली में तारदीबेग बादशाह की ओर से हुकुमत कर रहा था। तुगलकाबाद के मैदान में फौज आमने–सामने हुई। तारदीबेग को भागना पड़ा। सरदारों एवं जनता की माँग पर दिल्ली के वयोवृद्ध पुरोहित ने हेमू के उच्च भाल पर राजतिलक कर दिया।....सबने 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' के जयघोष का स्वागत किया। बैरम खाँ अकबर के साथ करनाल होते पानीपत की ओर बढ़ गया। 5 नवम्बर सन् 1556ई. को दोनों सेनाएँ आमने–सामने आ गयी। उसी समय अचानक एक तीर हेमचन्द्र की आँख में आ लगा।......जहाँपनाह! दुनिया को दिखाना है कि मुगल तलवार की नोंक से यह हुकूमत कायम हुई है।......यह कहकर बैरम खाँ ने अकबर के हाथ से तलवार लेकर हेमचन्द्र का सर काट डाला।" उपन्यास में व्यक्त मुगलकालीन इतिहास की ये सभी घटनाएँ पूर्णतः इतिहास द्वारा प्रमाणित हैं।

'अरावली का मुक्त शिखर'[236] में महाराणा उदयसिंह के देहावसान से लेकर रहीम के आक्रमण तक की ऐतिहासिक घटनाएँ उपन्यस्त हैं। लिखा है– "महाराणा उदयसिंह की चिता में कुवँर प्रताप ने मुखाग्नि दी......यह विक्रम संवत 1629 की होली का दिन था यानी सन् 1572ई. की फरवरी का।............कृष्ण दास और रावत सांगा की गंभीर वाणी सुनाई पड़ी – 'कुवँर जगमाल आप का स्थान सिंहासन के सामने के आसन पर है। वहीं बैठकर मेवाड़ की सेवा करें। सिंहासन पर ज्येष्ठ प्रताप का अधिकार है।'............मानसिंह ने कहा –'शहंशाह अकबर आपसे समझौता करना चाहते हैं............हमने समझौता करके मुगल दरबार में ऊँचा स्थान पा लिया है..........मैं मुगल सेनापति हूँ। शहंशाह अकबर का प्रतिनिधि हूँ। उन्हें मेरे साथ बैठकर भोजन करना है।.....प्रताप ने कहा – मानसिंह! आमेर विदेशी मुगल के आगे आत्म समर्पण कर चुका हैं।........मानसिंह ने कहा– मैं इस अपमान का प्रतिशोध लेकर रहूँगा। मैं मेवाड़ का सर झुका कर ही शान्त हो सकूँगा।".......सन् 1576 ई. में 18 जून का निर्णायक दिन आ गया। घाटी के बाहर मानसिंह और आसफ खाँ की मुगल फौज पहुँच गई।.........भीषण युद्ध होने लगा......... अल बदायूँनी को आसफ खाँ ने कहा......तवारीख नवीस! तीर चलाते जाओ, चाहे जिस तरफ के राजपूत मारे जाये, इस्लाम को फायदा ही होगा.........महाराणा ने अपने सामने मुगल सेनापति

मानसिंह को देखा। वे बोल उठे– राजस्थान के कंलक, नहीं, नहीं भारतवर्ष के कंलक! मैं तुझे खोज रहा था। प्रताप ने लक्ष्य करके अपने भाले का प्रहार मान की छाती पर कर दिया. ....मानसिंह हौदे में डुबक गया।..........मुगल फौज ने झाला मान को प्रताप समझ कर चारों ओर से घेर लिया......अन्त में वह हल्दीघाटी की चिरनिद्रा में सो गया।......... शक्ति सिंह बोल रहे थे– ओ नीले घोड़े रा असवार! पीछे भी देख। शक्ति निकट आ रहा था।..........मार्ग में नाला मिला। पार करते–करते चेतक ने अन्तिम साँस ले ली।.........बलीचा गाँव के निकट.... चेतक को समाधि दे दी गई। रहीम खानखाना की बेगम को अमरसिंह कैद कर लेते हैं। प्रताप कहते हैं– "अमर! यह हमारा धर्म नहीं है।.......अमर का शीश झुक गया।..........अभी जाकर कुलवधू को सादर समर्पित करो..........यास्मीन बुदबुदा रही थी– महाराणा तो फरिश्ता है। देवता है।" ये सभी प्रसंग एवं अन्य प्रसंग जो इस बीच घटित हुए इतिहासानुमोदित हैं। 'शहज़ादा दाराशिकोह दहशत का दंश'[237] के मलिक जीवन शैतान बन गया। और धोखे से एक इन्सान कैद में..........दारा ने कहा– बेटे सिपर! देखो, मेरे कातिल आ गए। अब खून नहीं रूकेगा।........नजीर खाँ के इशारे पर एक कातिल ने सिपर को दबोच लिया– तीनों ने दारा को पकड़ लिया........पंछी की चीख आसमान में घुल गई।.......मुल्लाशाह बदख्शी लोहे की जंजीर में जकड़ दिए गए थे।......शाह बदख्शी को सजा देने में अब देर नहीं हो.......फाजिल खाँ ने सर आँखों पर लिया........उदयपुरी मुस्कारा उठी......मुगल शहजादी शादी नहीं कर पाती. ....दो लम्हों के बाद सबने देखा कि सरमद साहब का सर जमीन पर खून से लथपथ पड़ा है........आराकान के राजा ने शुजा की साजिश को नाकाम कर के सारे कुनबे को मार डाला।. ....आसाम के राजा की बेटी का डोला आ रहा है.........ग्वालियर के किले से भागते मुरादबख्स सजा पा चुके हैं।.........सुलेमान शिकोह गिरफ्त में आ गया............शाहजहाँ ने कहा– जंग..... तख्त....खजाना.....ऐश और अब यह सजा....लगता है कि दोजख की आग में जल रहा हूँ।...... दानिशमंद खाँ ने बताया– पंजाब में नानक पंथी हिन्दुओं के आठवें गुरू हरकिशन जी की मौत के बाद बाबा बकाला यानी तेगबहादुर जी गुरूगद्दी पर बैठ चुके हैं।.......उन्हें देहली की सरहद पर रोका गया है।................पंडित जगन्नाथ की जल–समाधि का हल्ला हो गया।. ......चुनाचे पंडितों के मदरसों को बन्द हो जाना है............मथुरा के गोकुल जाट में इतनी ताकत नहीं है उसे कुचल देना है......मजार से दूर खड़े एक व्यक्ति ने कहा– लाल किला में न मरसिया; न स्यापा.....बेचारे शाहजहाँ के लिए दर्द ही नहीं जगा..........अब्दुल नवी खाँ को मेरा हुक्म है कि इस कठघरे को हटाकर शाही खजाने में जमा कर दें.....जो टकराने आए उसे कुचल दें।.........उसी वक्त खुफियानवीस ने खबर दी कि ग्वालियर के किले में सुलेमान और सिपरशिकोह दोनों की मौत हो गयी।"..........औरंगजेब दो लम्हें तक ताकते रहे। यही मराठा सरदार है जिसके.......उन्होंने वजीर को इशारा किया कि शिवाजी को पाँच हजारी मनसबदारों के साथ बैठा दिया जाए......शिवाजी पुत्र शम्भाजी के साथ शाही हुक्म की परवाह किए बिना दरबार से निकल पड़े।......लोहे की जंजीर में उधोदास छटपटा रहा है।........भवनाथ

की लाश पर कफन की सफेदी सबके चेहरों पर छा गयी है।.....फौलाद खाँ भीतर चला गया। उसने देखा कि बिस्तर पर शिवाजी नहीं, हीरोजी चेहरा ढककर सोया हुआ है।......आगरा की धरती......ऊपर आकाश और यमुना की लहरों ने महसूस किया कि दहशत का सैलाब उतार पर है" आदि सभी प्रसंग ऐतिहासिक हैं जिनके प्रामाणिक संदर्भ विद्याधर महाजन कृत मध्यकालीन भारत, हरिशंकर शर्मा कृत मध्यकालीन भारत, दिनेश मंडोत कृत अकबर महान् एंव उसका युग, भरतेश कुमार मिश्र रचित भारत का सम्पूर्ण इतिहास, मेवाड़ के महाराणा और शहंशाह अकबर – राजेन्द्र शंकर भट्ट, प्रताप सिंह रचित मुगलकालीन भारत, गौरी शंकर हीराचन्द ओझा कृत वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप आदि इतिहास ग्रन्थों में मिलते हैं।

1. दिनकर जी ने लिखा है कि – हेमू अफगानों का सेनापति था, उन्हें दरबार में हिन्दू परम्परा के अनुसार विक्रमादित्य की पदवी दी थी।[238]

2. भरतेश कुमार मिश्र[239] के अनुसार शेरशाह सूरी के सेनापति हेमू को हुमायूँ की मृत्यु के बाद मुगलों को खदेड़ने भेजा गया। आगरा का सूबेदार इस्कन्दर खाँ भाग गया। दिल्ली का गवर्नर तरदीबेग 7 अक्टूबर 1556 ई. को तुगलकाबाद में पराजित होकर चला गया। हेमू दिल्ली में स्वतन्त्र शासक हुआ और विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। मध्यकालीन भारत में हेमू ही प्रथम एवं एक मात्र हिन्दू शासक था जिसने दिल्ली के राज सिंहासन को अधिकृत किया।........आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि "दिल्ली की राजसत्ता के दावेदारों में सबसे अधिक शक्तिशाली हेमू ही ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वयं उसने उत्तरी भारत का स्वतन्त्र शासक बनने की योजना बना चुका था।........तरदी बेग और हेमू के बीच 7 अक्टूबर 1556 में तुगलकाबाद में युद्ध हो गया।..........मुगल सेनानायक साहस खोकर भाग गए फलस्वरूप मुगल सेनानायक तरदीबेग को भी भागना पड़ा। हेमू ने निर्णायक विजय प्राप्त की।..........इलियट, डाउसन, डॉ ईश्वरी प्रसाद एवं डॉ आशीर्वादीलाल ने भी इस कथन की पुष्टि की है।.........दिल्ली का पतन सुनते ही सिकन्दर सूर के साथ संघर्ष करने के लिए खिज्र ख्वाजा खाँ के अधीन सेना का एक भाग छोड़कर अकबर ने हेमू के विरूद्ध प्रयाण किया....... ... बैरम खाँ जो तरदी बेग को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझता था राज द्रोह का अभियोग लगाकर मृत्युदण्ड का आदेश दिया। अकबर की सेना पर 5 नवम्बर 1556 को हेमू ने पहल की और पूरे मोर्चे पर आक्रमण कर दिया। पानीपत के मैदान में दुर्भाग्यवश हेमू की पराजय हुई।......... विन्सेन्ट स्मिथ, निजामुद्दीन, अबुल–फजल, फरिश्ता आदि के मत–मतान्तरों एवं वी.एन. लूनिया व ईश्वरीप्रसाद व आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव आदि के मत–मतान्तरों के आधार पर स्पष्ट हुआ है कि अकबर ने तलवार से हेमू का सर छुआ और बैरम खाँ ने हेमू का सर धड़ से अलग कर दिया। हेमू का सर काबुल भेज दिया गया। उसका धड़ दिल्ली के एक फाटक पर लटका दिया गया।[240] राजेन्द्र शंकर भट्ट[241] 'मेवाड़ के महाराणा एवं शहंशाह अकबर' में रघुवीर सिंह एवं कैम्ब्रिज हिस्ट्री का उदाहरण देकर कहा है कि जनवरी 1562 ई. में अकबर अजमेर की तीर्थ यात्रा पर निकला। 20 जनवरी 1562 के लगभग भारमल ने अकबर की

अधीनता स्वीकार कर ली। भारमल का पुत्री का विवाह से लौटते समय सांभर में 1562 ई. में हुआ।.........इस यात्रा से सोनगरा अखैराज, रावत कृष्णदास, ग्वालियर के भूतपूर्व राजा रामसिंह तँवर आदि ने मिलकर जयमल को गद्दी से उतार दिया और महाराणा प्रताप को गद्दी पर बैठा दिया। रावत कृष्णदास ने महाराणा की कमर में राजकीय तलवार बांधी और झुककर मुजरा किया। सभी उपस्थित लोगों ने प्रताप का विधिवत सम्मान किया। 'महाराणा प्रताप की जय' से आकाश गूँज उठा।.......जलाल खाँ कोरची को महाराणा प्रताप के पास समझाने हेतु भेजा गया। असफल होकर 27 नवम्बर 1572 को अहमदाबाद पहुँचकर बादशाह को सारी स्थिति बताई।...........मानसिंह डूँगरपुर को पराजित करते हुए जून 1573 ई. में महाराणा को समझाने के लिए मेवाड़ पहुँचा।......गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का 'राजपूताने का इतिहास' सदाशिव नागर रचित 'राज रत्नाकर', रणछोड़ भट्ट रचित 'अमरकाव्य' व राज प्रशस्ति आदि के माध्यम से स्पष्ट किया है कि प्रतापसिंह और मानसिंह के बीच मतभेद हो गया था– नाराजगी का कारण था उसे अपवित्र मानना।.........जेम्स टॉड ने लिखा है कि– राजा मान ने भोजन को छुआ भी नहीं उसने अन्नदेव के सम्मान में कुछ दाने उठाकर अपनी पगड़ी में रख लिए।.....कहा यदि मैंने आपका अभिमान चूर–चूर नहीं किया तो मेरा नाम मान नहीं जिस पर प्रताप ने कहा– मुझे आपसे मिलकर सदा ही प्रसन्नता होगी।......डॉ आर.पी. शास्त्री ने यह कहकर कि सर्वत्र यही परम्परा से प्रचलित है– इसे ऐतिहासिक तथ्य बताया है।.......अकबर की पहल पर महाराणा प्रताप से समझौते के चार प्रयत्न हुए।....सम्राट का पहला प्रतिनिधि 'वाक चतुर' और तुरन्त बुद्धि दरबारी जलाल खान कोरची था जो अकबर का विश्वसनीय ही नहीं कृपापात्र भी था। इसके बाद प्रताप की ही जाति एवं धर्म का उच्च पदीय और प्रभावशाली राजपूत आमेर का कुँवर मानसिंह भेजा गया। इसके असफल होने पर उसी के पिता भगवन्तदास को भेजा गया। इसके बाद अंतिम प्रयत्न के रूप में सैन्य संचालन एवं प्रशासन व्यवस्था दोनों में ही दक्ष तथा अपने निजी जीवन में श्रेष्ठ हिन्दू राजा टोडरमल को भेजा गया।......मानसिंह और प्रतापसिंह के बीच हुआ यह युद्ध 'हल्दी घाटी युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है। मुगल इतिहासकारों एवं मेवाड़ के ग्रन्थों में इसे हल्दीघाटी का युद्ध नहीं कहा गया है। रणछोड़ भट्ट, सांदूमाला, ओझा जी, गिरधर आसिया, आदि ने इस युद्ध का स्थल खमणोर सिद्ध किया है। डॉ आशीर्वादीलाल ने कहा है कि हल्दीघाटी एक हल्दी के रंग का ही पीला पहाड़ी दर्रा है........यह खमनोर गाँव के ठीक दक्षिण में आकर समाप्त होता है। इसीलिए अबुल फजल इसे खमनोर तथा बदायूँनी इसे गोगुंदा का युद्ध कहता है। वास्तव में यह युद्ध हल्दीघाटी में ही हुआ था। कदाचित जेम्स टॉड पर इसे 'हल्दीघाटी का युद्ध' नाम से प्रसिद्ध करने का दायित्व है। यद्यपि 'वीर विनोद' ने भी आगे चलकर 'हल्दीघाटी की लड़ाई' नाम अंगीकार किया। वीर विनोद इसे 31 मई, गोपीनाथ शर्मा 21 जून, जेम्स टॉड जुलाई 1576 एवं ओझाजी जून 1576 को युद्ध होना बताते हैं। अकबरनामा के अनुवादक 18 जून 1576 बताते है जिसे यदुनाथ सरकार, डॉ रघुवीर सिंह, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव स्वीकार करते हैं।.

.............अमर वंशावली व राज रत्नाकर के आधार पर गोपीनाथ शर्मा ने तथा ओझा जी ने लिखा है कि हाथियों की लड़ाई जोर पर थी। चेटक पर चढ़ा प्रताप उस हाथी के पास पहुँचा जिस पर मानसिंह सवार था। सामने शत्रु को देखकर चेटक दोनों पैर उठाकर उछला, प्रताप ने अपने भाले से प्रहार किया, मानसिंह हौदे में झुक गया।.....इस समय महाराणा के घोड़े के अगले दोनों पैर मानसिंह के हाथी के सिर पर लगे जिससे सूँड में पकड़ी हुई तलवार से चेटक का पैर जख्मी हो गया। प्रताप ने मानसिंह को मारा गया समझकर घोड़े को मोड़ लिया।........यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि– संकट का आभास पाते ही झाला सरदार बीदा (झालामान सिंह) ने सिर पर लगा राजकीय छत्र उतार कर अपने सिर पर लगा लिया।...... प्रताप के स्वामीभक्त सामन्तों (हकीम खाँ सूर) ने चेटक की रास अपने हाथ में ली और उसका मुँह मोड़ दिया।........डॉ रघुवीर सिंह ने लिखा है कि– पराजित होने पर भी हल्दीघाटी के इस युद्ध में राणा की कीर्ति को अधिक समुज्ज्वल बना दिया।......जेम्सटॉड ने हल्दीघाटी को मेवाड़ की थर्मोपोली व देवेर के मैदान को 'मेवाड़ का माराथोन' कहा है।........

आधुनिक इतिहासकारों का मानना है कि 1576 में ही अकबर स्वयं उदयपुर आया। आमना–सामना नहीं हुआ। दबाव बनाता रहा......अकबर ने राणा प्रताप को समूल नष्ट करने के उद्देश्य से शाहबाज खान के नेतृत्व में अनेक बहादुर सेनानायकों के साथ भेजा.....3 अप्रैल 1578 को कुम्भलगढ़ किले पर अधिकार कर लिया गया। जेम्स टॉड के अनुसार प्रताप ने कुम्भलगढ़ में वीरतापूर्ण और दीर्घकालीन प्रतिरोध किया। एकमात्र नौगुणा कुँए के पानी में कीड़े पड़ जाने पर ही वहाँ से हटा। आबू के देवड़ा राजा पर इसका दोष लगाया जाता है। मुस्लिम इतिहासकार इसे किस्मत की कार गुजारी कहते हैं।.......चावण्ड को राजधानी बनाया।. .....चावण्ड पहुँचने का उद्देश्य प्रताप के मन में सुरक्षित स्थान खोजना था। चितौड़, उदयपुर, कुम्भलगढ़, गोगुंदा सब मुगलों ने जीतकर अरक्षित कर दिया था।............पुनः दिवेर को जीत लिया। दिवेर थाने का मुख्तार 'बादशाह का काका' सुलतान था। अमर सिंह ने एक जोरदार वार कर सुलतान खान व उसके घोड़े तथा उसके टोप बख्तर के एकसाथ टुकड़े कर दिए... ....एक मुगल चौकी पर नामी बहलोल खान नियुक्त था। प्रताप ने एक ही वार में बहलोल खान एवं उसके घोड़े को चीर दिया.....शाहबाज खान एवं जगन्नाथ कछवाहा ने भयंकर लूट–पाट एवं तेज आक्रमण कर प्रताप को अलग–अलग जगह निवास करने पर मजबूर किया।............बैरम खाँ के पुत्र रहीम खानखाना को अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया गया। रणथम्भोर की जागीर दी गई। वह स्वयं सेना लेकर मेवाड़ के भीतरी भाग की ओर चला।.... ....प्रताप का पुत्र उन दिनों गोगुंदा में था। उसने शेरपुर पर अचानक हमला कर दिया। अमरसिंह को शेरपुर का मोर्चा तोड़ने में ही सफलता नहीं मिली, वहाँ बनाए गए बन्दियों के साथ–साथ मिर्जाखान का पूरा परिवार भी हाथ लगा।.......महाराणा प्रताप ने अपने पुत्र को उन्हें ससम्मान मिर्जा खान तक पहुँचाने का आदेश दिया जो खानखाना मेवाड़ को नष्ट–भ्रष्ट करना चाहता था, राणा की उदारता से बड़ा प्रभावित हुआ। वैमनस्यता श्रद्धा में परिवर्तित हो

गई।......'अरावली का मुक्त शिखर' उपन्यास इसी घटना के साथ समाप्त होता है।.........प्रताप सिंह रचित 'मुगलकालीन भारत' एवं गौरीशंकर हीराचंद ओझा रचित 'वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप' में भी इन तथ्यों की पुष्टि होती है।

हरिशंकर शर्मा ने 'मध्यकालीन भारत' पुस्तक में औरंगजेबकालीन तथ्यों को व्यक्त करते हुए लिखा है कि "25 अप्रैल 1658 ई. को धरमत में शाही सेना व विद्रोही आमने–सामने आ डटे। जसवन्त सिंह के सामने मुराद व औरंगजेब का सामना हुआ। कासिम खाँ के विश्वसघात के कारण जसवंतसिंह परास्त होकर जोधपुर चला गया।..........धरमत विजय के बाद औरंगजेब आगरा से 13 किलोमीटर दूरी पर सामूगढ़ पहुँच गया। 29 मई 1658ई. को दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। दारा युद्ध में परास्त होकर आगरे गया।.........सामूगढ़ की लड़ाई से उत्तराधिकार का प्रश्न पूर्ण रूप से तय हो गया।................ औरंगजेब ने अपने पिता को किले में ही बन्दी बना दिया। 10 जून को औरंगजेब ने दरबार किया और अपना औपचारिक राज्यभिषेक बड़ी धूमधाम से किया। इसी बन्दी अवस्था में 22 जनवरी 1666ई. को शाहजहाँ का निधन हो गया।...........मुराद को धोखे से बन्दी बनाकर ग्वालियर के किले में भेज दिया। दिसम्बर 1661ई. में उसे मरवा दिया गया।............औरंगजेब ने दिल्ली पहुँचकर 21 जुलाई 1658ई. को बादशाह का पद ग्रहण किया और 'आलमगीर' की उपाधि धारण की।......दारा और औरंगजेब की सेना से देवराई की घाटी में सामना हुआ जिसमें दारा परास्त हो गया।......पलायन कर दारा ने दादर में मलिक जीवन नामक बलूची सरदार के यहाँ शरण ली। मलिक जीवन ने कृतघ्नता दिखाकर दारा को औरंगजेब के सरदारों के हाथ सौंप दिया। दिल्ली में मैले–कुचैले वस्त्रों में उसे हाथी पर बिठाकर घुमाया गया। बर्नियर ने लिखा है – उसके बाद दारा एवं उसके पुत्र को बन्दीग्रह में डाल दिया गया। बाद में विधर्मी होने का आरोप लगाकर 30 अगस्त 1659ई. को मौत के घाट उतार दिया गया।.........सुलेमान शिकोह को गढ़वाल से लद्दाख भागते हुए बन्दी बनाकर दिल्ली बुलवा लिया और दरबार में उसे काफी अपमानित करके ग्वालियर किले में बन्दी बनाकर भेज दिया। ग्वालियर के दुर्ग में सुलेमान शिकोह को धीरे–धीरे विष देकर मरवा डाला।...............शुजा मई 1660ई. में अराकन चला गया।...इतिहास मौन है। सम्भवतः अराकानी समुद्री डाकुओं द्वारा मारा गया।......गुरू तेग बहादुर का उसने सिर कटवा दिया।.......मथुरा में 1666ई. में केशवराय के मन्दिर की एक छड़ जो दारा शिकोह ने भेंट की थी; निकलवा दिया। स्थानीय मन्दिरों को धराशायी कर मस्जिदों में बदल दिया। 1669ई. में काजी अब्दुल मुकरम को उदय बैरागी के शिष्यों ने मौत के घाट उतार दिया।....गोकुल जाट के नेतृत्व में विद्रोह करके अब्दुल नबी को मौत के घाट उतार दिया।..........गोकुल जाट व परिवार को बन्दी बनाकर आगरा लाया गया। कठोर यातना देकर शरीर के टुकड़े–टुकड़े कर दिए।"[242] प्रतापसिंह रचित 'मुगलकालीन भारत' में सभी तथ्यों की ऐतिहासिक सत्यता प्रकट होती है। "आशीर्वादीलाल के अनुसार 1669ई. में गोकुल जाट के टुकड़े–टुकड़े कर दिए गए। 1670ई. में मथुरा के केशवराय मन्दिर को तुड़वाकर मस्जिद

बनवा दी गई। 1672ई. में हजारों सतनामियों का वध करवा दिया गया। चम्पतराय को आत्महत्या करनी पड़ी। 1675ई. में सिक्खों के गुरू तेगबहादुर को मुसलमान बनने पर मजबूर किया गया और स्वीकार न करने पर वध करवा दिया गया। 11 जून 1665 को पुरन्दर की सन्धि हुई। सम्राट ने शिवाजी को एक तरह कैद कर लिया। 19 अगस्त को शिवाजी चतुराई से निकल गए।"[243]...यहीं 'शहजादा दाराशिकोह' उपन्यास समाप्त हो जाता है। सभी घटनाओं के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं।

(2) ऐतिहासिक पात्र— शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'हेमचन्द्र—विक्रमादित्य' प्रतिनिधि के पात्र हेमचन्द्र(हेमू), सन्त पूरणमल, मंझन मलिक, बादशाह सलीमशाह सूर, फिरोजशाह, मुबारिग खाँ उर्फ आदिलशाह, मुगलबादशाह, हुमायूँ, इब्राहिम खाँ सूर, अहमद खाँ उर्फ सिकन्दरशाह, तारदी बेग, अकबर, बैरम खाँ, गोस्वामी विट्ठलनाथ आदि इतिहासकालीन पात्र हैं। हेमू रेवाड़ी का बक्काल है जो दिल्ली का सम्राट घोषित होता है। विक्रमादित्य की उपाधि प्राप्त करता है। वीर, अनुशासित, स्वाभिमानी एवं साहसी है। हरसुखलाल के शब्दों में – जी हाँ! होनहार है, तेजस्वी है। वह बड़े संयम नियम के साथ रहता है।...........सुल्तान के वजीर ने कहा – बेशक अक्लमंद और दानिशमन्द हो। सल्तनत शुक्र गुजार है, हेमचन्दर!.........हेमू बुद्धिमान है। साहसी है। शस्त्रधारी है।.......गोस्वामी विट्ठलनाथ भावपूर्ण भक्ति से ओतप्रोत व्यक्तित्व के धनी हैं। गोस्वामी विट्ठलनाथ कहते रहे थे— "धर्म और जीवन के तपन की विषम अवस्था में प्रेम रूप श्रीकृष्ण के अनुग्रह से भक्ति ही सर्वस्व है। हमारे हृदय के भाव—वात्सल्य, सख्य माधुर्य भाव श्रीनाथ जी के प्रति अर्पित होकर दिव्य बन जाएँ।.........आदिलशाह एक विलासी शासक है जो इन शब्दों में प्रकट होता है— बोल उठे— "तुम्हारा कहना ठीक है। पर रात में महफिल सजेगी।.....जिंदगी केवल खून खराबी ही तो नहीं है। वह रंगो बू है। हुस्नोजमाल है। ऐशो इशरत है।"......अकबर और बैरम खाँ का क्रूर चरित्र इतिहास की सच्चाई है।...........बैरम खाँ ने ऐलान किया— हेमू का सर शहर—दर—शहर होता हुआ काबुल तक पहुँचेगा।"[244] पात्रों का यह चरित्र इतिहास सम्मत है।

'अरावली का मुक्त शिखर' स्वातंत्र्य वीर महाराणा प्रताप एवं साम्राज्य लिप्सु बादशाह अकबर के संघर्ष की गाथा है। बादशाह अकबर, जलाल खाँ कोरची, शहबाज खाँ, रहीम खानखाना, अलबदायूँनी, रूकैया बेगम, सलीमा बेगम, अबुल फजल, आसफ खाँ, राजामान, टोडरमल, जगन्नाथ कछवाहा, तानसेन, महाराणा प्रताप, अमर सिंह, जगमाल, शक्ति सिंह, हकीम खाँ सूर, झालामान, भामाशाह, चेतक घोड़ा, रामप्रसाद हाथी, बीकानेर कुँवर पृथ्वीराज राठौड़, दुरसा आढ़ा, गोपीनाथ पुरोहित, माता जैवंताबाई, अजबादे, फूलकँवर, रत्नाबाई एवं चम्पाबाई, आमेर की राजकुमारी एवं अकबर की बेगम जोधाबाई आदि सभी मुख्य पात्र इतिहास सम्मत हैं। महाराणा प्रताप अदम्य साहस, संघर्ष, स्वाधीनता प्रिय, स्वाभिमानी वीर पुरूष है। अकबर साम्राज्यवादी बादशाह है। रंगीन मिजाज है। रहीम खानखाना अहसानमन्द व्यक्तित्व है।

भामाशाह एवं झाला मान त्यागी एवं बलिदानी चरित्र है। उपन्यास में वर्णित चरित्र इतिहास वर्णित चरित्र हैं। रूकैया बेगम के शब्दों में अकबर का चरित्र आइने की तरह साफ नजर आ जाता है – सलीमा! हमारे सरताज जंग में शेरदिल हैं। दारूल सल्तनत में सियासत दाँ हैं... .... और शाही हरम में खुशदिल–गुलफाम ऐयाश है। इनके दोस्त और सरदार भी इनकी इश्कबाजी से परेशान हैं।" महाराणा प्रताप क्षत्रिय व हिन्दुओं के लिए प्रातः स्मरणीय बन गए है। मानसिंह का कथन– "प्रताप 'हिन्दुआं सूरज' कहला रहे हैं। क्षत्रियों के सिरमौर कहला रहे हैं।.........इनके अंहकार को चूर–चूर करना मेरा फर्ज हो गया है। मानसिंह के अन्तर में आग थी।" इस कथन में प्रताप के श्रेयस एवं मानसिंह के अहंकार आहत चरित्र का उद्‌घाटन हो रहा है।.............महाराणा का मुख्य हाथी रामप्रसाद आ गया। उसने मुगलों पर आक्रमण कर दिया।....चेतक ने उछलकर अपने आगे की दोनों टांगों को उठाकर मानसिंह के हाथी के मस्तक पर रोप दिया।.............कथनों में चेतक एवं रामप्रसाद हाथी के वीर एवं देश भक्त चरित्र का प्रकटीकरण हो रहा है।..........झाला मान ने कहा– महाराणा जी! मैं आपके स्थान पर महाराणा के रूप में लडूँगा। आप अपना छत्र एवं मुकुट दे दें।...मुगल फौज ने झाला मान को प्रताप समझ कर चारों ओर से घेर लिया। झाला मान शौर्य और तेज से लड़ता रहा। अन्त में हल्दीघाटी की गोद में चिरनिद्रा में सो गया। झाला मान का बलिदानी व्यक्तित्व स्पष्ट है। पृथ्वीराज राठौड़ और महाराणा के मध्य का पत्र संवाद दोनों के राष्ट्र–प्रेम भाव को व्यक्त करता है– पृथ्वीराज लिखता है– हे एकलिंगनाथ के दीवान। आप मुझे इतना बता दीजिए कि क्या आपकी गौरवगाथा पर अपनी मूँछो पर ताव देकर अभिमान प्रकट करूँ या फिर अपनी तलवार से आत्मघात कर लूँ।.........महाराणा लिखता है– भगवान एकलिंग जी! मेरे मुख से तो अकबर तुर्क ही कहलायेगा। सूर्य का उदय जहाँ होता है। वहाँ ही पूर्व दिशा में होता रहेगा। हे पृथ्वीराज राठौड़! जब तक प्रताप की तलवार तुर्कों के सिर पर है, तब तक आप अपनी मूछों पर ताव देते रहिए।" प्रताप और जैवंता बाई के संवाद में उनका शौर्यवान व्यक्तित्व झलक उठता है– कहती हैं– प्रताप्! तुम्हें विजयी होना है। मैंने बचपन से तुम्हें यही शिक्षा दी है।" प्रताप ने कहा– हम सभी मेवाड़ की स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहे हैं– साम्राज्यवादी विस्तार के लिए नहीं.........माँ मेरा जीवन तो पहाड़ों, जंगलों में बीतता रहा है। पग–पग पर यमराज से जूझता रहा हूँ।.............हार नहीं मानूँगा।.....प्रताप का यह कहना कि कुलवधू को कैद करना अधर्म है। भागती सेना पर प्रहार करना भी नैतिकता के विरूद्ध है।[245] प्रताप के शौर्यवान, नीतिवान, साहसी, संघर्षशील एवं उदार चरित्र का द्योतक है जो उसे महान् बनाता है। चरित्रों का वैशिष्टय इतिहास द्वारा सर्वथा प्रमाणित भी है।

'शहज़ादा दाराशिकोह दहशत का दंश' में वर्णित प्रमुख पात्र आलमगीर औरंगजेब, बादशाह शाहजहाँ, शहजादा दाराशिकोह, जहाँआरा बेगम, रोशनआरा बेगम, आलमआरा, जैबुन्निसा, शुजा, मुराद, सिपरशिकोह, सुलेमान शिकोह, पंडित जगन्नाथ, अमीचन्द सूफी, फकीर सरमद, मुल्लाशाह बदख्शी, मलिक जीवन, उदयपुरी बेगम, जयसिंह, रामसिंह, शिवाजी, जसवंत सिंह,

गोकुल जाट, छत्रसाल, गुरूहरे किशन, गुरू तेग बहादुर, उधोदास बैरागी, अहोम के राजा की पुत्री जया आदि सभी इतिहास वर्णित हैं। उपन्यास में वर्णित कथनों के माध्यम से चरित्रों का चित्रण स्पष्ट हो जाता है।..........मलिक जीवन शैतान बन गया।.............फकीर सरमद कहता है.............मजहब तो खुदा तक पहुँचने का रास्ता बताता है.....................पंडित जगन्नाथ ने कहा– सच यही है धर्म आदमी को इनसान बनाता है.............आह! दारा एक इन्सान..........एक फरिश्ता........इस हालत में! हम मजबूर है........दिल में दीनोईमान और हाथ में शमशीर............. फिर तो सारा हिन्दुस्तान आपके कदमों में। रोशनआरा ने समझाया।.........आँखों में मुगल सल्तनत का ख्वाब रहा है।........मजहब मेरी रूहानी ताकत और शमशीर जिस्मानी! औरंगजेब ने कहा।.......सियासत का यही उसूल है कि किसी पर एतबार मत करो। हाँ! दारा ने धर्मों की मिल्लत के लिए 'मज्मुअ–उल–बहरेन' नामक किताब लिखी।......योगवशिष्ठ एवं भगवद्गीता का भी अनुवाद करवाया........अमीचन्द ने कहा– पिताजी बाँसुरी बजाने से रोकते हैं। मैं बाँसुरी बजाने से अपने को रोक नहीं पाता। मेरी लाचारी है........हाँ, रोशनआरा जरूर बेकरार होती रही है। हम उस पर पर्दा डाल रहे हैं........जेबु! मैं तुमसे दूर नहीं हो सकूँगी। जमना की मौज हो या ठण्डी हवा का झोंका या किसी नगमें की कड़ी.......मैं तेरी शेरो शायरी सुनती रहूँगी।.. .....बादशाह! हम ऊपर वाले के मुताबिक चलते हैं और अपने अन्दर की आवाज सुनते हैं –सरमद ने कहा।.......रोशनआरा ने इशारा किया– अफवाहों पर काबू पाना होगा।.......अफवाह फैलाना भी सियासत है। साजिश है।.........कंस और रावण के समान राज के खिलाफ खड़ा होना ही हम सबकी आन और शान है। यही सच्ची मनुष्यता है..........उधोदास वैरागी रात के अन्तिम प्रहर में यमुना स्नान के लिए जा रहे हैं..............औरंगजेब ने कहा..........काफिरों के मुल्क दारूल हर्ब को दारूल इस्लाम में बदल देना है..............गुरू तेग बहादुर ने कहा– हम अपने सिक्खों की रक्षा के लिए शस्त्र धारण के लिए मजबूर हो गए हैं.........साधु सन्त शाहों के शाह उस अकाल पुरूष के आगे सर झुकाते हैं। लोभ, मोह, अभिमान से मुक्त सन्त अपने राम का स्मरण करेगा। तख्तोताज का जयकार नहीं करेगा।...........गोकुल ने कहा– मराठा शिवाजी स्वराज्य के लिए लड़ रहे हैं। छत्रसाल भी इसी राह जा रहे हैं। किशन जी का मथुरा भी कुछ सोचने लगा है। और वे शिवाजी की मुस्कान देखते रहे। संकटों के बीच मुस्कान, आत्मविश्वास, साहस।[246]

प्रामाणिकता – (1) हरिशंकर शर्मा लिखित 'मध्यकालीन भारत'[247] पुस्तक में मुगलकालीन पात्रों के संदर्भ मिलते हैं–

हरिशंकर शर्मा ने अब्दुला रचित तारीख–ए–दाउदी से उद्घृत किया है कि– "सलीमशाह (इस्लामशाह) ठाठ–बाट की दृष्टि से अपने पिता से मिलता–जुलता था और उसकी भाँति उसमें विजय और राज्य की अभिलाषा थी। उसमें शक्ति, योग्यता और धन बहुत बड़ी मात्रा में थे।" डॉ आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार– इस्लामशह एक कुशल शासन प्रबन्धक

था। उसने उन सभी सरदारों की शक्ति कुचल दी, जिन्होंने या तो उसका विरोध किया था या उससे स्वतन्त्र होने का प्रयास किया।"..

उल्लेख है कि मुहम्मद आदिलशाह भी एक निकम्मा शासक सिद्ध हुआ। आदिलशाह (मुबारिज खाँ) का चरित्र भी बड़ा दूषित और हीन था।....विलासी जीवन का परिणाम यह निकला कि वह राज्य कार्यों के प्रति उदासीन रहने लगा।..

हेमू के वध की निंदा करते हुए डॉ आर. पी. त्रिपाठी ने लिखा है– इस प्रकार सोलहवीं सदी के एक बहुत विलक्षण व्यक्ति की जीवन लीला समाप्त हो गई।............उसके जीवन की घटनाओं से स्पष्ट होता है कि वह एक सफल राजनीतिज्ञ, उच्च कोटिका सेनानायक, प्रशंसनीय नेता था।..

डॉ आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव का कहना है कि –" राजपूतों के प्रति अकबर का व्यवहार किसी अविचारशील भावना का परिणाम नहीं था और न राजपूतों की धीरता, वीरता, स्वदेश–भक्ति और उदारता के प्रति सम्मान का ही परिणाम था उसका यह व्यवहार एक सुनिर्धारित नीति का परिणाम था और यह नीति स्वलाभ, योग्यता, स्वीकृति तथा न्याय–नीति के सिद्धान्तों पर आधारित थी।..

मध्यकालीन इतिहास में जितनी प्रसिद्धि राजा टोडरमल को मिली, उतनी अन्य किसी भी व्यक्ति को नहीं मिली। मानसिंह– मानसिंह की गणना अकबर के महान् सेनापतियों में की जाती है।

अब्दुर्रहीम– विद्वान होने के साथ–साथ वह एक योग्य सेनापति भी था।...गुजरात विजय में उसने ऐसी वीरता दिखाई कि प्रसन्न होकर अकबर ने उसे 'खानखाना' की पदवी से विभूषित किया।..

शाहजहाँ के चार पुत्र थे– दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद। दारा इन सबसे ज्येष्ठ था तथा शाहजहाँ का प्रिय राजकुमार था। अपने निष्कलंक चरित्र, दानशीलता, दयालुता और सहानुभूति के कारण वह जनता में भी उतना ही प्रिय था जितना कि वह सम्राट को प्रिय था।............. शाहजहाँ का दूसरा पुत्र शुजा था।......यद्धपि साहसी था पर साथ ही विलासी भी था। उसकी अभिरूचियाँ परिष्कृत थी। वह एक समझदार शहजादा भी था पर सदा जीवन को सुखद रूप में व्यतीत करना चाहता था। इसी कारण आलसी एवं लापरवाह हो गया था।.....वह सत्ता का लोभी अवश्य था।....औरंगजेब शाहजहाँ का तीसरा पुत्र था। धर्म का वह कट्टर सुन्नी था। धर्म के क्षेत्र में उसके विचार अतिसंकीर्ण थे। वह एक उत्कृष्ट लेखक होने के साथ–साथ एक योग्य सैनिक भी था।............उच्च सैनिक होने के साथ–साथ वीर, साहसी तथा दृढ़ संकल्प का व्यक्ति था। कूटनीति में वह अपने भ्राताओं में सर्वोच्च था। आदमियों की उसे अच्छी परख थी। अपने सैनिकों को अपने व्यवहार से अपना बनाने में वह अपने सब प्रतिद्वन्द्वियों से आगे था। वह दूसरों पर भरोसा नहीं करता था।...........भाइयों में सबसे छोटा मुराद था। वह आवेगशील, अविचारी, दुस्साहसी था। वह युद्ध–भूमि में वीरता व अपूर्व साहस का प्रदर्शन

कर सकता था तो विलासिता में भी वह उस युग में किसी से पीछे नहीं था। वह अदूरदर्शी, उतावला व झक्की राजकुमार था।.....जहाँनारा शाहजहाँ की प्रिय पुत्री थी। दारा की प्यारी बहिन थी। वह दारा को पिता के उपरान्त हिन्द का सम्राट देखना चाहती थी।......रोशन औरंगजेब को अपना प्रिय भ्राता समझती थी। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि दिल्ली गद्दी पर औरंगजेब बैठे।

(2) गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने लिखा है कि– महाराणा स्वदेशाभिमानी, स्वतन्त्रता का पुजारी रणकुशल, स्वार्थत्यागी, नीतिज्ञ, दृढ़ प्रतिज्ञ सच्चा वीर और उदार क्षत्रिय तथा कवि था। उसकी वीरता, रणकुशलता, कष्टसहिष्णुता और नीतिमत्ता अत्यंन्त प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय थी।[248]

(3) विद्याधर महाजन ने डॉ श्रीराम शर्मा को उद्घृत करते हुए लिखा है कि अकबर अपने सारे राजनीतिक जीवन में निरन्तर रूप से साम्राज्यवादी रहा और इसके विपरीत प्रताप मेवाड़ की स्वतन्त्रता का समर्थक रहा। डॉ स्मिथ के अनुसार महाराणा प्रताप की देश भक्ति ही उसका अपराध था।[249] शत्रुघ्नप्रसाद ने अकबर और महाराणा का क्रमशः साम्राज्यवादी और स्वाधीनता– प्रेमी रूप ही दर्शाया है।

(4) दिनकर के अनुसार शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह ने श्रीमद्भगवद् गीता और उपनिषदों का अनुवाद अपनी देखरेख में करवाया था।.......अपनी अंगूठी पर नागरी अक्षरों में 'प्रभु' शब्द अंकित था।...औरंगजेब की पुत्री जैबुन्निसा बेगम भी हिन्दी की कवयित्री थी उनके काव्य–संग्रह का नाम 'नैन विलास' है। अम्बिकादत्त प्रसाद वाजपेयी ने उद्घृत किया है कि –जैबुन्निसा जहान में, दुख्तर आलमगीर, नैनविलास विलास में खास करी तहरीर।"[250]....शत्रुघ्नप्रसाद ने जैबु को शायरा एवं दारा को उदारचेता अद्वैतवादी चितंक दर्शाया है। इन ऐतिहासिक संदर्भों से सिद्ध होता है कि शत्रुघ्न प्रसाद के मुगलकालीन पात्र पूर्णतः इतिहास सिद्ध हैं।

3. कल्पनापरक पात्र– शत्रुघ्नप्रसाद रचित ऐतिहासिक उपन्यासों में गौण एवं सहायक पात्र भी हैं जो ऐतिहासिक पात्रों के साथ–साथ उनके कार्यों को सम्पूर्णता दिलाने में योग देते हैं तथा इतिहास को उपन्यास की सरसता प्रदान करते हैं। ये उपन्यासकार की कल्पनात्मक उपज हैं। 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' में नाथ योगी शिवनाथ, धर्मपाल एवं खेमराज, गजराजसिंह एवं गजेन्द्र, सेठ सोहनलाल एवं उनकी पत्नी दुर्गाकंवर, पुत्र मोहनलाल एवं पुत्री पार्वती, इलाही बख्स एवं नूरी, सरवर, सेठ हरखलाल, राजकुमारी चन्द्रावती उर्फ चन्दा तथा रक्काशा नादिरा लेखक की अपनी उपज है जिनके माध्यम से लेखक ऐतिहासिक यथार्थ को चित्रित करने में सफल होता है। नाथयोगी हेमचन्द्र को श़स्त्र का अभ्यास करवाते हैं। स्वाधीनता एवं देश प्रेम की ओर उन्मुख रखते हैं। मोहनलाल जमाल अहमद बन जाता है। इलाही बख्श की पुत्री नूरी से विवाह कर लेता है। इस्लाम के कठोर कानून का सामना करना पड़ता है। धार्मिक दबाव व द्वन्द्व को चित्रित किया गया है। सरवर एवं हरखलाल द्वेष की भावना के

परिचालक हैं। पार्वती हेमचन्द्र के विवाह की एवं पारो की अनुभूति की पूरक बनती है। गजेन्द्र एवं चन्दा के माध्यम से पद्युगीन परिस्थितियों का वर्णन हुआ है। देवीदीन से बने खुदादीन धर्मान्तरण के यथार्थ को व्यक्त करते हैं।

हेमचन्द्र–विक्रमादित्य में उल्लेख मिलता है योगी बोल उठे– इस संसार के जीवन को जीना हो या साधक बनना हो तो शरीर और मन को बलवान बनाओ.......राजभोग के समय नरवाहन अपने पुत्र विजयवाहन के साथ आए.......दुर्गाकंवर ने कहा– मेरा बेटा मोहन पठान लड़की से विवाह करके जमाल अहमद बन गया है........नूरी ने महसूस किया कि उसके देवता के दिल में दर्द है अपने घर और धर्म से जुदा हो जाने का ....नूरी सरवर की धमकी है। जायदाद की ललक है। मैं क्या करूँ?........मेरे हमदम। मैं क्या कहूँ। मुझे तो मेरा मोहन चाहिए........ पंडित गणेशी लाल भरोसा नहीं दिला पाते है...........खुदादीन मियां की बाजीगरी से ऊपर भी चन्दा की कला है।.........गजेन्द्र नामक नौजवान खेल देखने आता है। वह कहाँ है?........देवीदीन से खुदादीन बन गए थे। नट के बदले बाजीगर कहलाने लगे........मैं मान गया। गजेन्द्र तुम कलाकार हो, वीर बहादुर हो। धर्मपाल वैष्णव साधु के वेश में कुटिया से निकला।.....किशनपुरा में आ पहुँचा। देखा कि हरखलाल अपने मुनीम के साथ नहीं जा रहा है...........हरखलाल के पैर रूक गए। ....सरवर के साथ मुल्लासाहब थे........इब्राहिम दो लमहा देखता रह गया और फिर उसने सरवर की हथेली को अपने हाथों में ले लिया। बादशाह हसीनों के आगोश में और सल्तनत मेरे आगोश में.......नादिरा! मैं तेरे लिए बेचैन था, तू मिल गई।.....आप माफ कर सकते है, मैं नही कर सकती.....मैं रायसेन के दुर्गपति पूरनमल की राजकुमारी चन्द्रावती हूँ.... ...पारो की राख और चन्दा की पीड़ा....पारो–पार्वती अपने को पति देखती और सोचती ये दिल्ली के राजा हैं आदि प्रसंग उन पात्रों से सम्बद्ध हैं जो लेखक की कल्पना से उपजे हैं।[251]

'अरावली का मुक्त शिखर' में भील राणा पुंजा व संभा, फूला, महरूख, चक्रपाणि मिश्र, किशन, टिकोरी आदि काल्पनिक पात्र है जो ऐतिहासिक यथार्थ के साथ–साथ आधुनिक यथार्थ के बोध में सहायक है। चक्रपाणि मिश्र राणा के सहायक हैं और संदेशवाहक एवं वीर सहयोगी का साथ निभाते हैं। पुंजा और संभा राणा की शक्ति को बढ़ाते हैं। भील शक्ति इन्हीं के साथ है। किशन और टिकोरी अन्तर्जातीय विवाह की परम्परा को साधने एवं राणा के साथ लुहार वर्ग को जोड़ने के रूप में सृजित हैं महरूख–तानसेन का प्रसंग प्रेम एवं सरसता प्रदान करने के लिए रचित है। जिनका उल्लेख उपन्यास में आए निम्न कथनों में मिलता है। –कुछ ने देखा कि भील राणा पुंजा का बेटा संभा सिरोही की ओर से आई फूला के पास पहुँच गया।. ....बसन्त के मेले में बासन्ती का साथ चाहिए। मैं बसंत का दूत हूँ...............क्या संभाजी बसंत के दूत हैं या राणा कीका के ।.......पंडित तानसेन की आँखे शरम की भाषा को समझ गई.... आप कुछ सुनाएँ, मैं सितार बजाऊँगी। महरूख का मधुर स्वर बुलबुल सा गूँज उठा।........... किशन अपने बापू शिबू के साथ खड्.ग और भालों के गढ़न में लगा था।........उसी समय पास की भील बस्ती से टिकोरी नाम की भील कन्या आ गई।..........भीलों ने टिकोरी को किशन के

साथ देखा...........रानाजी! मैं मरजाद नहीं तोड़ना चाहती पर मन को कैसे समझाऊँ......महरूख ने सवाल किया.........जब बादशाह हिन्दू नाजनीन से शादी कर सकते हैं तो क्या मुझे हिन्दू नौजवान से शादी नहीं करने देंगे..........योगी ने धूनी की आग को सुलगाकर आदिनाथ की स्तुति कर दोनों का ब्याह कर दिया। टिकोरी ने समझा ब्याह अधूरा है और किशन को लगा जोगी की असीस मिल गई।...........राणक दे अंधेरे में दासी का वेश धारण कर और कटार लेकर पुष्कर से पश्चिम में मुड़ गई[252]

'शहज़ादा दाराशिकोह दहशत का दंश' में भवनाथ, मथुरा का भगतराम, तांत्रिक एवं नजूमी, अंग्रेज विलियम, हकीम मुकर्रर खाँ आदि काल्पनिक पात्र हैं जिनका सृजन कुछ रिक्तांश भरने की गरज से किया गया हैं।

4. कल्पानापरक घटनाएँ– शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने मुगलकालीन उपन्यासों में मुगलकालीन यथार्थ को आधुनिक समस्याओं के साथ जोड़ने एवं औपन्यासिक सरसता प्रदान करने के लिए कुछ ऐसे प्रसंगों को जोड़ा है जो इतिहास में वर्णित नहीं हैं वे उपन्यासकार की मौलिक एवं कल्पनाशील उद्भावनाएँ हैं। 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' में हेमचन्द्र–पारो एवं हेमचन्द्र–पार्वती प्रसंग, सोहनलाल के पुत्र मोहनलाल का जमाल अहमद बनकर इलाही बख्श की पुत्री के साथ विवाह कर लेना, सरवर द्वारा नूरी–जमाल को परेशान करना एवं सरवर, हरखलाल एवं इब्राहिम खाँ का आपस में मिलकर हेमचन्द्र के खिलाफ षड़यन्त्र करना, नादिरा रक्कासा का हेमचन्द्र के प्रति विरोधी भाव रखना व बादशाह को भड़काना, गजराज द्वारा सेना में सैनिकों का भर्ती करवाना, देवीदीन से खुदादीन बने जादूगर एवं गजेन्द्र–चन्दा की कथा कही गई है। इसके अलावा सूफी संतों – मंझन और भक्तिसंतों– हितहरिवंश, संत पूरणमल व संत परमानन्द, मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत् पृथ्वीराजरासौ व गौरा–बादल की कथा आदि को प्रेरणा रूप में प्रस्तुत करना वातावरण को भक्तिकालीन मध्यकाल में चित्रित करना लेखक की मौलिक प्रतिभा का अवदान है।[253]

'अरावली का मुक्त–शिखर' में चक्रपाणि मिश्र द्वारा महाराणा के लिए सहायक बनकर रहना संभावित इतिहास माना जा सकता है। संभावित होने के नाते कल्पना प्रसूत प्रसंग हुआ है। भील सरदार पुंजा और उसका पुत्र संभा महाराणा को भील शक्ति प्रदान करते हैं। संभा और फूला का प्रेम एवं विवाह होना तथा लुहार युवक किशन एवं भील कन्या टिकोरी के प्रेम को भील एवं लुहार सरदारों को साथ लेकर महाराणा प्रताप एवं भामाशाह द्वारा समझाना एवं दोनों के विवाह का वातावरण तैयार करना, नाथ योगी द्वारा दोनों का विवाह सम्पन्न करवाना, महाराणा द्वारा सम्मति दिलवाना आदि प्रसंग पूर्णतया काल्पनिक है जो आधुनिक समस्याओं को ऐतिहासिक रंग में प्रस्तुत करते हैं। डूँगरपुर की राजकुमारी राणकदे का डोला अकबर के लिए जाना तो इतिहास सम्मत है परन्तु पुष्कर में राणकदे का वहाँ से बच निकलना और पूनोदे राणक दे बनकर अकबर के हरम में पहुँचना लेखक की सोची हुई योजना है। राणकदे

संभा–फूला आदि के साथ रहकर राजकुमार अमर सिंह की सहभागी बनती है एवं अमरसिंह और राणकदे का विवाह सम्पन्न होता है। ये अत्यन्त मनोरम कल्पना उपन्यासकार की अपनी मौलिक कल्पना है।[254] 'शहजादा दारा शिकोह दहशत का दंश' में आलमआरा–भवनाथ का प्रेम–प्रसंग, जैबुन्निसा और अकिल खाँ के मध्य घटित प्रसंग, असम की राजकुमारी जया के राजा रामसिंह के साथ विवाह का प्रसंग पूर्णत मन की कल्पना है। राजकुमारी जया का डोला औरंगजेब के हरम में आ जाता है। औरंगजेब को विद्रोह दमन के लिए लाहौर निकल जाना पड़ता है। उदयपुरी बेगम की मदद से जया हरम से निकल जाती है। जल–समाधि लेने का प्रयास करती है। यमुना किनारे पर उधोदास बैरागी उसे बचा लेते हैं। राजा रामसिंह के महल में रानी रमा की दासी व पुजारन बनकर रहती है और रामसिंह के साथ विवाह हो जाता है। काली की पुजारिन ने जल–समाधि ले ली, यह प्रवाद फैलाकर उधवदास यह सिद्ध कर देने का सफल प्रयास करते हैं कि जया ही काली की पुजारिन थी और उसने जल–समाधि ले ली है। यह प्रसंग पूर्णतः ऐतिहासिक लगता हुआ भी उपन्यासकार की मौलिक उद्भावना है।[255]

शत्रुघ्नप्रसाद ने हेमचन्द्र–पार्वती का विवाह, राणकदे– अमरसिंह का विवाह, राजकुमारी जया एवं राजा रामसिंह का विवाह, आदि के प्रसंग एवं जमाल–नूरी व गजेद्र–चन्दा, संभा एवं फूला तथा किशन–टिकोरी का विवाह, राजा रामसिंह एवं राजकुमारी जया का विवाह, आलमआरा एवं भवनाथ का असफल प्रेम आदि उद्भावनाओं की सृष्टि कर ऐतिहासिक उपन्यासों को सरस कलात्मकता प्रदान करते हुए कल्पनात्मक यथार्थवाद का चित्रण किया है।

5. ऐतिहासिक एवं कल्पनापरक वातावरण– तद्युगीन वातावरण को चित्रित करना ही ऐतिहासिक उपन्यास की सफलता का मापदण्ड है। केवल वातावरण सृष्टि से ही 'दिव्या' और 'चित्रलेखा' जैसे उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में स्थान पा गए है। शत्रुहन प्रसाद के उपन्यासों में मुगलकालीन परिवेश अपने पूरे रंग–रेशों में अभिव्यक्त हुआ है। 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' में शेरशाह सूरी के उत्तराधिकारियों के काल में व्याप्त राजनैतिक दुर्बलता, चरित्र–हीनता, उथल–पुथल, स्थायी शासन का न होना आदि के अव्यवस्थित एवं अशांत वातावरण को दर्शाया गया है। आदिलशाह युद्ध की संकटापन्न स्थिति में भी नाच–गान की रंगीन रात बिताना चाहता है। मोहन एवं देवीदीन को जमाल एवं खुदादीन बनना पड़ता है। जनता परेशान एवं अविश्सनीय जीवन जी रही है। षडयन्त्र राजनीति के पाएँ कमजोर कर रहे है। सरवर अली नूरी को प्राप्त करने, 'हरखलाल नगर सेठ बनने एवं इब्राहिम बादशाह बनने के निमित्त तरह–तरह के षडयन्त्र कर रहे हैं। और सफलता भी मिलती है। उस काल के समाज में व्याप्त षंड़यन्त्र, धर्मान्तरण, डर, भय, अविश्वास, मुल्ला एवं शासक वर्ग का इस्लामी दबाव के साथ–साथ सूफी एवं हिन्दू संतों का सगुण एवं निर्गुण प्रेम भक्तिमयी वातावरण पूरी सच्चाई के साथ चित्रित है।

'अरावली का मुक्त शिखर' अकबर एवं महाराणा के संघर्षमयी जीवन की झाँकी है। अकबर के दरबार में रंगीन मिजाज प्रेम की भावना व्याप्त है। उदारता का दिखावा है। हरम रंगीनियों से सराबोर है। शतरंज का खेल एवं शतरंजमयी शासन व्यवस्था है। शाहबाजखान एवं जगन्नाथ कछवाहा के लगातार आक्रमणों से त्रस्त मेवाड़ की जनता का संघर्ष एवं संकटों से भरा परन्तु अदम्य सहनशीलता का जीवन है। मेले, त्योंहार, युद्ध, संघर्ष जीवन का अंग है। उदारता में भी निर्दयता है। साम्राज्यवाद एवं स्वाधीनता का संघर्ष है।

'शहजादा दाराशिकोह दहशत दंश' में औरंगजेब कालीन कट्टर शासकीय व्यवस्था की दहशत का भयप्रद वातावरण है। हर वर्ग की बात में दशहत की पीड़ा है। मंदिरों का ध्वंस किया जा रहा है। धर्म बदलवाया जा रहा है। दमन और शोषण ही जीवन का पर्याय बना हुआ है। औरंगजेब के दमनपूर्ण एवं कठोर शासन में भी विद्रोहों की सुगबुगाहट है। दमन और आक्रोश का वातावरण बना हुआ है। उपन्यास में इस दमनपूर्ण दहशत का यथार्थ चित्रण हुआ है।...... ...लड़ाई की कथा सुनाओ, हेमू! पृथ्वीराज और सुल्तान की लड़ाई.........जैसे कल मैंने गौरा–बादल की वीरता का गीत सुनाया था। खेमराज और धर्मपाल ने कहा।............इसी के बेटे इस्लामशाह यानी सलीमशाह के शासन में मेरी पारो की मौत हो गई। गाँव के निहथ्ये लोग बचा नहीं सके........युद्ध की छाप गाँव पर ऐसी पड़ती है कि बरसों तक इसे कोई भुला नहीं सकता.........शाहों सुल्तानों के लगातार युद्ध, शिव का ताण्डव, गाँवों का उजड़ना, जजिया कर और कुछ लोगों का नया पंथ अपना लेना– इन सब के बाद भी लोग एक विश्वास को अपनाकर जीना चाहते हैं। गुरूरामानन्द, गुरूनानक, गुरू गोस्वामी वल्लभ और हितहरवंश – ये इन्हें नया विश्वास दे रहे हैं क्या? 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' में चित्रित यह वातावरण उस काल के सम्पूर्ण परिवेश को चित्रित कर देता है।.......यही ऊँच–नीच की स्थिति! छूत–अछूत में बँटे हुए लोग। रामकृष्ण और गंगा के सामने झुकने वाले श्रद्धालु लोग आपस में कितनी–कितनी दूर रहते हैं।.......यही वर्णव्यवस्था है ना। वर्ण व्यवस्था की रूढ़ परम्परा भी पूर्ण रूप में दर्शायी गयी है।.....ये नये मुसलमान हिन्दी मुसलमान कहाते थे। अरबी, तुर्की, ईरानी, अफगानी, मुसलमान अपने को बड़ा समझते थे.............इन हिन्दी मुसलमानों को अपने से छोटा समझते थे।........सूफी शायर मंझन आगरा में हाजिर हुए हैं..........पर आपका पुत्र धर्म भ्रष्ट हो गया। समाज से पतित हो चुका........लक्ष्मी भवन अशुद्ध है। अनुष्ठान कैसे हो सकता है? पंडित गणेशी लाल ने कहा।.........जमाल कह रहा था नूरी! किस्म–किस्म के दबाव है! रोजा–नमाज का बंधन बढ़ गया है। ....बादशाह प्रजा पर अत्याचार करते हैं। बदनाम होते हैं...........गद्दी के लिए अपनों को मार देते हैं.........सरदार ने कहा– रक्कासा बादशाह को लूटकर नहीं जा सकती.........जिसके पास खाने के लिए अनाज नहीं है, वे खिराज कहाँ से देंगे। सारे पठान जानते हैं मुगल उनसे नफरत करते हैं...........यह मजहब नहीं सल्तनत की लड़ाई है[256]...........आदि कथन सूर शासन की सच्चाई का बयान है।

'अरावली का मुक्त–शिखर' में साम्राज्यवाद और स्वाधीन–भावना के मध्य का संघर्ष अभिव्यक्त है। संघर्ष एवं संकल्प का परिवेश इस उपन्यास में दर्शनीय है। रामसिंह तोमर ने कहा– अकबर भी जान जाय कि मेवाड़ अपनी स्वाधीनता के लिए कटिबद्ध है। महाराणा प्रताप अकेले नहीं हैं..........चित्तौड़, आमेर, रणथंभौर, बीकानेर, जैसलमेर इन सब ने मुगलों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया............चगताई तुर्क द्वारा भारत भूमि को कुचला जा रहा है.............. अपने रंग–बिरंगे कपड़ों में भील युवक उमड़ पड़े थे। युवतियाँ हँसती–बतियाती आ गई। मेले के किनारे–किनारे छोटे व्यापारी आसन जमा चुके..............आवश्यक घरेलू सामानों का बिकना–किनना शुरू हो गया। एक दल बागड़ी बोली में बसन्त का गीत गाने लगा। युवतियों का दल नाचने लगा।........तो धनुष–तीर लेकर पहाड़ो पर जाओ.................जंगल में जाओ....... ...अहेर करो......तुरूक से लड़ाई तो होगी। तैयार रहो..........मोर बन्दिया विवाह सम्मान का ब्याह माना जाता है........बरातियों के साथ राणा कीका के स्वागत में झूम उठा। ढुचको, भपूंग, मशक, बाँसुरी बजाने वाले स्वागत संगीत बजाने लगे।.........हाँ, आप पं. तानसेन का संगीत सुन सकती हैं। कोई रोक नहीं सकता है........पहाड़ियों पर तीर–धनुष संभाले भील युवक थोड़ी–थोड़ी दूर पर चट्टानों पर पेड़ों की आड़ में खड़े थे। गुप्तचर पूरबियाने सूचना भेज दी थी कि जलाल खाँ उधर ही आ रहा है............मैं रूपमती को देखकर आह भर कर रह गया। बाजबहादुर ने इसी शर्त पर मातहती कबूल की दोनों की मुहब्बत की इज्जत की जायेगी.........लेकिन रूपमती के साथ नहीं आता।..........तो हम जवार की खानों का उपयोग करे। लौहशिल्पी भी हैं।...........अस्त्र–शस्त्रों को बनाने में तेजी लानी पड़ेगी........टोडलरम ने ईरानी वेशभूषा में कहना शुरू किया..........'गरीब रिआया दो मुट्ठी अनाज के लिए सड़क के किनारे खड़ी थी.....हाहाकार कर रही थी।......लेकिन काश्तकारों से मालगुजारी वसूलने के लिए सख्त होना पड़ा.......बादशाह अकबर शतरंज खेलने के लिए काजी अब्दुल सामी के साथ बैठे थे। बिसात बिछ गई थी।............दुरसाआढ़ा के मुखड़े पर मानों सूर्य ही दमक रहा हो और कवि के ओजमयी स्वर! सैनिकों का उत्साह द्विगुणित हो रहा है ऐसा लगा कि मेवाड़ की भूमि जाग गई है.........कुंभलगढ़ के अन्दर प्रताप को जानकारी मिल गई कि रसद–पानी को रोक दिया है.........मुगल आसपास की पहाड़ियों पर पहुँचने का प्रयास करते पर तीरों और तोपों की मार से वे पहुँचकर खड़े नहीं हो सके.........युद्ध के रौद्रस्वर, युद्ध का भीषण रूप, मौत के वीभत्स दृश्य पर गीधों का मँडराना बड़ा भयानक लग रहा था।.........महाराणा प्रताप बोल उठे.........अमर! हम विजयी होंगे! हम मेवाड़ को मुक्त करेंगे। मुगल साम्राज्य को पीछे हटना पड़ेगा।.........जैवंती बाई कह रही थी............पर इस पहाड़ से उस पहाड़...इस जंगल से उस जंगल में भागते रहना कितना कष्टकर है।........घबराना स्वाभाविक है।.........बच्चों की दयनीय स्थिति देखकर मन तो घबरायेगा ही......प्रताप ने कहा– पग–पग पर यमराज से जूझता रहा हूँ..........चारण दुरसाजी और चारण सूरायच जी के छन्द तेज जागृत कर रहे हैं... .....शाहबाज खाँ जंगल से निकलकर पश्चिम की ओर मुड़ गया.......कुछ दूरी पर दिवेर का

किला है.............सुरेमासुलतान खुद जाबांज सालार है..........तब प्रताप को घेर लिया जायेगा। वह भागकर कहाँ जायेगा..........रहीम प्रताप की उदारता पर आभार व्यक्त करता है........धर्म रहेगा। धरती रहेगी। भगवान पर निष्ठा रखने वाले महाराणा ने अपने सम्मान और गौरव को अमर बना दिया है......संघर्ष के समय नीति व धर्म की रक्षा रखने वाले संकल्प एवं संघर्ष का वातावरण उपन्यास को यथार्थ रूप प्रदान करता है।[257]

'शहजादा दाराशिकोह दहशत का दंश' में औरंगजेब आलमगीर की मजहबी कट्टरता का दंश झेलता हिन्दुस्तानी वातावरण चित्रित है। चारों तरफ दहशत है। हाहाकार है। आक्रोश है। उपन्यास का प्रारम्भ ही आतंक के भय से त्रस्त वातावरण में दिखाया गया है।.........अमीचन्द आकर बैठ गया। उसने सामने की खिडकी से बाहर देखा। उसने सबके चेहरों पर दृष्टि डाली। उसे लगा कि जो बेचैनी सड़क पर है, वही बेचैनी इन तीनों की आँखों में गहरा गई।. ....शाहजहाँ.......दाराशिकोह......औरंगजेब.....उसने आँखें बन्द कर ली।.........हुक्मरान केवल खुदगर्जी के चश्मे से ही देखता है– उदयपुरी सोच रही थी– ये बादशाह सरदार, अमीर, औरत को शराब या साकी ही समझते हैं या जीत की सौगात।........जया खिड़की से हट गई। वह घबरा गई। यह वारांगना वेश्या का घर है.........साथ में मुगल सरदार।.........जानेमन कहकर उसने अनुरोध किया। दिलबर कहकर उसने उसे बाहों में भर लिया। मुझे ज्ञात है भगतराम! पर अब क्या होगा। दाराशिकोह, मुल्लाशाह बदख्शी और सूफी फकीर सबको इस संसार से उठा दिया गया। क्यों कि ये सर्व धर्म समभाव के पुरस्कर्ता थे।........काफिर शहजादियों का डोला तो मुगलहरम की शान है। इसे देखकर मुगल शहंशाह का सर ऊँचा होता है।...... उदयपुरी सोचती है– अपनी बेटी की शादी की फिक्र नहीं, मगर दूसरे की बेटी को हरम में दाखिल करने की बेताबी है.........दुश्मनों को हाथियों के नीचे कुचलवा दिया जाता है........ कितना दर्दनाक मंजर......ओह!........यह शहर तो पंडितों का शहर है। काफिरों का जियारतगाह. ... राजपूतराजा अपने–अपने इलाके में शेर बने रहते हैं। एक–दूसरे पर गुर्राते हैं। मुगल तख्तो–ताज के आगे सलामी दे रहे हैं।.....सेठ साहूकार मुनाफा और सूद से मोटाते रहते हैं.. ....आम लोग मेहनत करके दो शाम की रोटी की जुगत में लगे रहते हैं..........उधर बादशाह–ए–गाजी की शमशीर है उधर पवित्र ब्राह्मणों के व्यंग्य बाण हैं.....दो पाटों के बीच कुचल जाएंगे।.......चुनाचे पंडितों के मदरसों को बन्द हो ही जाना है –शेखनिजाम ने बताया।. .....जेबुन्निसा ने हथेलियों में चेहरा छिपाकर कहा– अब जहर की क्या जरूरत है? जहर तो मिल चुका। हिन्दुओं और हिन्दी मुसलमानों को नजदीक नहीं आने देना है...........उधोदास काबू में आ ही चुका है। शिवाजी के बाद गुरू तेगबहादुर ही बच जाएंगे। बागी फकीरों के बागी कदमों को बेड़ियों में जकड़ देना है.....विदेशी शासक शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा चारों पर शासन करना चाहते हैं.......लोहे की जंजीर में उधोदास छटपटा रहा है। भवनाथ की लाश पर कफन की सफेदी सबके चेहरों पर छा गयी है....मगर आलमआरा की चीख को कैसे बन्द किया जाए?......आगरा में बागी खड़े न हो जाएँ.......मुरदा और चीख.....दहशत और दर्द के

सैलाब में कैदखाना डूब गया है।[258] चीख, दर्द, पीड़ा और मुर्दनी का वातावरण ही शहजादा दाराशिकोह का यथार्थ है।

ऐतिहासिक प्रामाणिक संदर्भ– मुगलकालीन वातावरण के ऐतिहासिक प्रमाण विद्याधर महाजन की 'मध्यकालीन भारत', हरिशंकर शर्मा की 'मध्यकालीन भारत' ओझाजी की 'महाराणा प्रताप', प्रताप सिंह की 'मुगलकालीन भारत' में मिलते हैं। विद्याधर महाजन ने वी. ए. स्मिथ को उद्घृत करते हुए लिखा है कि– मुस्लिम लेखकों ने राष्ट्रीय एवं सामाजिक क्रमिक विकास की अपेक्षा यथार्थ में राजाओं, दरबारों, विजयों का वर्णन करने तक सीमित रखा है।.......परन्तु समकालीन विदेशी यात्रियों के विवरण तथा यूरोपियन कम्पनियों के दस्तावेजों एवं स्थानीय काव्य ग्रन्थों के आधार पर सामाजिक और आर्थिक जीवन का बहुत पता चलता है।[259]

(1) अफगान चरित्रहीन हो गए थे। आत्मसम्मान का भाव नष्ट हो गया था।....अफगानों में कोई राष्ट्रीय संगठन नहीं रह गया था। मोहम्मद आदिल के समय पाँच अफगान शासन संघर्ष कर रहे थे। वे परस्पर युद्ध कर रहे थे..........हेमू के कायरता का दोषारोपण भी वे मिष्ठान्न की भाँति खा गए।......शेरशाह के उत्तराधिकारियों ने कृषकों की दशा पर ध्यान नहीं दिया।.......न देश के विभिन्न भागों में रक्षा के लिए जो किले बनवाए थे उत्तराधिकारियों के शासन में उपद्रव और व्यभिचार के केन्द्र बन गए।......जनता पर स्वेच्छापूर्वक शासन किया गया। उन पर सब प्रकार के दण्ड लागू किए गए।[260]

(2) मुगलकाल का सामन्ती ढ़ाँचा सामन्तवादी था जिसका प्रधान सम्राट था। मुगलराज्य में सम्राट का अद्वितीय सम्मान और स्थान प्राप्त था।.....वह विलासमय और वैभव सम्पन्न जीवन व्यतीत करता था।.....उनके प्रत्येक कार्य में शानशौकत थी। मुगल सम्राट अपने विशाल अन्तःपुर के लिए प्रसिद्ध थे। अकबर के अन्तःपुर में कुल मिलाकर 5000 स्त्रियाँ थीं।......औरंगजेब आलमगीर को छोड़कर बाकी सब सम्राट सुन्दर वस्त्र और आभूषण पसन्द करते थे।.......मुगल दरबार में चारों ओर विलासिता का राज्य था। मुगल सम्राटों और उनके सामंतों के चरित्र से उनकी रानियाँ, पत्नियाँ, रक्षिताएँ, दासियाँ, पुत्रियाँ भली प्रकार परिचित थीं इसलिए राजमहल में कड़ा पर्दा और नियन्त्रण होने के बावजूद वहाँ पर बड़ा व्यभिचार था।........मदिरापान और मादक वस्तुओं का सेवन बहुत प्रचलित था।......यह व्यसन राजपूत रानियों में न था। उनका व्यक्तिगत चरित्र ऊँचा था।.....दरबारों और राजमहलों में तो ऐश और विलासिता थी परन्तु गरीब किसानों के घरों में भुखमरी और दुर्भिक्ष।[261] यह चित्रण शत्रुघ्न प्रसाद के मुगलकालीन उपन्यासों में देखा जा सकता है।

(3) मुगलकाल में स्त्रियों की दशा पहले से भी खराब हो गई। उच्च घरानों की कन्याओं का विवाह राजनीतिक सुविधा की दृष्टि से होता था।[262].....जोधा बाई एवं राणकदे की विवशता के रूप में दर्शाया गया है।

(4) ज्योतिष में हिन्दू–मुसलमान दोनों का विश्वास था। मुसलमान शासकों पर हिन्दू ज्योतिषियों का प्रभाव था।[263] हेमचन्द्र–विक्रमादित्य में सरवर अली एवं हरखलाल तांत्रिकों का उपयोग हेमचन्द्र को नुकसान पहुँचाने के लिए करते है। शहजादा दाराशिकोह में भी मुगल सरदारों को ज्योतिषी के पास दिखाया है।

(5) अकबर शिकार खेलने में काफी समय लगाता था। वह घोड़ों, ऊँटों, हाथियों और कुत्तों के बारे में काफी जानता था। उसे प्रशिक्षित तेन्दुओं के साथ हिरनों का पीछा करने में आनन्द अनुभव होता था।......एडवर्ड टेरी ने लिखा है कि भारत के लोग अपने घरों में सबसे अधिक बुद्धिवाला खेल खेलते थे जिसका नाम था शतरंज।.....मुजरा–मुशायरे भी लोकप्रिय थे। मुजरे का अर्थ है निजी बैठकों में गाने और नाचने का प्रदर्शन। घुमक्कड़ बाजीगर भी लोगों का मनोरंजन किया करते थे।[264] अकबर एवं काजी को शतरंज में शह और मात का खेल खेलते 'अरावली का मुक्त शिखर' में दर्शाया गया है।

(6) औरंगजेब के शासन काल में सरदारों के पुत्रों का पालन स्त्रियों और हिजड़ों के बीच होने लगा। उसका परिणाम यह हुआ कि उनकी बुराईयाँ उनमें आ गई।......खुले आम हिजड़े बनाए जाने लगे और बेचे जाने लगे। बिना शर्म और झिझक के लोग रिश्वतें देने और लेने लगे।[265]

(7) लोहार लोग तीर, तलवार, कटार, बर्छे, भाले, बन्दूक, तोप इत्यादि बना सकते थे।.....परन्तु बन्दूक और तोप बनाने में उतने कुशल नहीं थे जितने तलवारें और कटार बनाने में।[266] 'अरावली का मुक्त शिखर' में महाराणा प्रताप लोहारों से अस्त्र–शस्त्र निर्माण करवाते हुए दर्शाया गया है।

(8) फ्रांसिस्को एवं पेलसार्ट ने लिखा है कि बंगाल के सोनार गांव और चाबासपुर की प्रायः सारी आबादी वस्त्र–व्यवसाय में लगी थी।.........बंगाल के अलावा उत्तर प्रदेश में मऊ, काशी और आगरा, सिन्ध–पंजाब में लाहौर, मुलतान, अहमदाबाद में पाटन, बड़ौदा, भड़ौंच, सूरत, बुरहानपुर, गोलकुण्डा सूती कपड़े के व्यवसाय के लिए प्रधान केन्द्र थे। यूरोप की व्यापारी कम्पनियों ने भारत का कपड़ा यूरोप पहुँचाया।[267] शहजादा दाराशिकोह एवं हेमचन्द्र–विक्रमादित्य में ऐसा वर्णन मिलता है। रोशनआरा विलियम नामक यूरोपीय व्यापारी के साथ व्यापारिक सौदा भी करती है।

(9) 1669ई. में औरंगजब ने यह आदेश दिया कि सारे मुगल साम्राज्य में नये मन्दिर गिरवा दिए जायें। मथुरा का केशवराय मन्दिर तोड़ दिया गया। प्रयाग, काशी, अयोध्या, हरिद्वार इत्यादि हिन्दुओं के तीर्थ स्थानों पर सहस्रों मंदिर तोड़ दिये गए।......हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिये औरंगजेब ने कई कदम उठाए। 1665 ई. में औरंगजेब ने आदेश दिया कि आयात–निर्यात कर हिन्दुओं से मुसलमानों की अपेक्षा दुगुना लिया जाये।..............मनूची का कहना है कि जजिया से बचने के लिए कई निर्धन हिन्दू मुसलमान बन गए। उसने नये मुसलमान बने हिन्दुओं को धन भी दिया, नौकरियाँ भी दी और सम्मान के साथ हाथियों पर

भी चढ़ाया। उसने गुरू तेगबहादुर के कत्ल का आदेश दिया..............चारों ओर उपद्रव हुए। जाटों ने विद्रोह किया। सतनामियों का विद्रोह हुआ राजपूतों ने विद्रोह किया। मराठों ने विद्रोह किया।[268] शहजादा दाराशिकोह में इन तथ्यों का मार्मिक दृश्य चित्रित किया गया है। मुगलकालीन शासन का साक्षात् चित्रण इन उपन्यासों में हुआ है जिसने ऐतिहासिक यथार्थ को मूर्त किया है।

6. इतिहास एवं कल्पना का समन्वय– ऐतिहासिक उपन्यास की कलात्मक श्रेष्ठता की परख इतिहास एवं कल्पना के संयोजन के आधार पर भी की जाती है। यह समन्वय औपन्यासिक समीक्षा का मापदण्ड एवं प्रमुख तत्व माना जा सकता है। शत्रुघ्न प्रसाद रचित मुगलकालीन उपन्यासों में इस समन्वय का अद्भुत कौशल देखा जा सकता है। 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' का प्रमुख ऐतिहासिक पात्र हेमू सेठ सोहनलाल के घर पहुँचता है। सेठ का पुत्र मोहन जमाल बनकर नूरी से विवाह कर लेता है। सेठ के व्यापार को संभालते हुए सूर वंश के बादशाहों के साथ जुड़ता है। वहाँ रहते हुए सेठ की पुत्री पार्वती का मनभावन बनकर परिणय सम्बन्ध में बँध जाता है। जमाल और नूरी के साथ सम्बन्ध सुधारने के रूप में सरवर का शत्रु बन बैठता है। हरखलाल की ईर्ष्या का शिकार बन जाता है। गजराज सैनिक से जुड़ाव होता है। तो गजेन्द्र और चन्दा तथा देवीदीन से बने खुदादीन से जुड़ाव होता है। गजराज के माध्यम से वह हिन्दू सैनिकों को भर्त्ती करवाता है। ऐतिहासिक हेमू की विक्रमादित्य बनने की कथा में सेठ सोहन लाल, मोहन (जमाल)–नूरी, पार्वती, गजराज, गजेन्द्र–चन्दा, खुदादीन, नादिरा, सरवर एवं हरखलाल जैसी कल्पनात्मक कथाएँ साथ ही अनायास जुड़ जाती हैं और कथा का यथार्थ प्रतीत होती हुई विशिष्ट कथा का निर्माण करती है। यह संयोजन इतनी कुशलतापूर्वक किया गया है कि इतिहास को न पढ़ने तक पूरी कथा ऐतिहासिक लगती है और सभी पात्र इतिहासकालीन लगते हैं। सत्यपाल चुघ ने लिखा है कि– "यह उपन्यास लेखक के पर्याप्त अध्ययन अनुसंधान, परिश्रमी, सुलझी दृष्टि एवं परिकल्पनापूर्ण सर्जना का सुफल है। हेमचन्द्र के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का राष्ट्रीय दृष्टि से सम्पन्न प्रामाणिक एवं गरिमापूर्ण पुनस्सृजन स्वयं में इस उपन्यास की उपलब्धि है।"[269]

'अरावली का मुक्त शिखर' में इतिहास प्रसिद्ध गौरवमयी पात्र महाराणा प्रताप के साथ भील राणापुंजा एवं उसके संभा एवं फूला, लुहार पुत्र किशन एवं भील कन्या टिकोरी की कथा को एक सूत्र में बाँधकर ऐसे कथा बनाई गई है कि सभी पात्र इतिहास की एक क्रमिक कथा में परस्पर सम्बद्ध लगते हैं। राजकुँवर अमर सिंह के साथ डूँगरपुर की राजकुमारी का सम्बन्ध भी इतिहास–कल्पना का सामंजस्यपूर्ण कौशल दर्शाता है। डूँगरपुर की राजकुमारी राणकदे का डोला अकबर के हरम के लिए जा रहा है। पुष्कर में अवसर पाकर राणकदे वेश बदलकर निकल जाती है। पूनोदे दासी राणकदे बनकर अकबर के हरम में पहुँचती है। अन्य बेगमों के साथ रहती है। इधर राणकदे जुगनी बनकर संभा–फूला एवं अमर सिंह के सम्पर्क में आ

जाती है। अमर सिंह और राणकदे एक दूजे पर आकर्षित होते हैं। जुगनी संभा एवं फूला के साथ रहकर धनुष–बाण चलाना सीखती है। हर कदम पर अमर सिंह का साथ देती है। उसकी कमजोरी नहीं उसका उत्साह बनती है। प्रेरणा–शक्ति बनती है। दोनों का विवाह हो जाता है। इस प्रकार यह निरन्तर प्रवाहित इतिहास कथा सी लगती है। अकबर के राजदरबार में तानसेन–महरूख की कथा भी पूर्ण काल्पनिक है जो इतिहास प्रसिद्ध तानसेन के साथ दर्शायी गयी है। महाराणा प्रताप एवं अकबर की संघर्ष कथा में तानसेन–महरूख, संभा–फूला, किशन–टिकोरी एवं अमर सिंह राणकदे व अकबर–पूनोदे की कथा एक लयबद्ध इतिहास कथा लगती है। इतिहास के साथ लेखक की उद्भावना भी इतिहास बन जाती है। सदानन्द प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि "यह इतिहास सिद्ध है कि महाराणा प्रताप को अपने संघर्ष में पठानों और जनजातियों का पूरा साथ मिला था। लेखक ने इसे व्यापक फलक पर चित्रित किया है।.............लेखक ने इसे अपनी कल्पना शक्ति और सर्वसमावेशी दृष्टि के माध्यम से प्रमुखता दी है।"[270]

शहजादा–दाराशिकोह 'दहशत का दंश' में औरंगजेबकालीन दहशत को दर्शाने के लिए मुल्लाशाह बदख्शी, सूफी संत सरमद, अमीचन्द, पंडित जगन्नाथ आदि को एक साथ बैठकर बाहर–भीतर एक सा सन्नाटा दिखाना लेखकीय ऐतिहासिक कल्पना का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। रोशनआरा बेगम का यूरोपीय विलियम के साथ व्यापारिक समझौता करना भी कल्पना शक्ति का नमूना है। औरंगजेब की पुत्री जैबुन्निसा का लाहौर के हाकिम अकिल खाँ के साथ इश्क दर्शाकर हकीम के रूप में मिलन और पकड़ में आ जाने की स्थिति में हाथियों के नीचे कुचलवा देने की काल्पनिक घटना औरंगजेब के हरम की व शासनकाल की घटनाओं के साथ समन्वित कि गई है जो इतिहास सत्य ही प्रतीत होती है। इस उपन्यास का सबसे रोचक एवं चमत्कारपूर्ण कला संयोजन राजकुमारी जया का प्रसंग है। असम के राजा की पुत्री जया का डोला औरंगजेब दरबार में आता है। औरंगजेब को उसी समय लाहौर में विद्रोह दमन के लिए जाना पड़ता है। उदयपुरी बेगम की मदद से जया हरम से निकल जाने में सफल होता है। काली की पुजारन का रूप धारण कर यमुना में जल–समाधि लेना चाहती है। उधोदास बैरागी द्वारा बचाकर और काली की पुजारन यमुना में जलसमाधि ले चुकी है, का अपवाद फैलाकर राजकुमारी जया को राजा रामसिंह के घर पर छोड़ दिया जाता है। जया श्यामा नाम की पुजारिन बनकर रहती है। रामसिंह और जया एक–दूसरे की तरफ आकर्षित होते हैं और दोनों का विवाह हो जाता है। दोनों एक–दूसरे को अपना लेते हैं। यह प्रसंग इतिहास कथा में रामसिंह के साथ इतना घुला–मिला है कि लवण मिश्रित जल की तरह समायोजित लगता है। औरंगजेब के हरम में राजकुमारी का डोला, आने, रामसिंह एवं उधवदास बैरागी जैसे इतिहास पात्रों के साथ इस प्रसंग का समायोजन अत्यन्त कौशल एवं उर्वर कल्पना शक्ति का परिणाम है। समीक्षक सुरेश गौतम ने इन तथ्य को रेखांकित करते हुए लिखा है कि– "ऐतिहासिक तथ्यान्वेषण की इस सूर्य दृष्टि में इतिहास मर्यादा का

कला मर्म भी है और तत्कालीन राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना में अनुस्यूत शौर्य और प्रेम से आपूरित जीवन–बोध भी। जहाँ भी आवश्यक हुआ उपन्यासकार ने कल्पना का सहारा भी लिया है। इतिहास के अन्तः और बाह्य साक्ष्यों से संतुलित इस कथा वितान में कार्य दहशत तक अग्निकुण्ड में बदल जाती है, जिसमें सम्पूर्ण मानवीय मूल्य, आत्मबोध भस्म हो जाता है।. ...इनके चित्र के सांस्कृतिक आचरण एवं वैचारिक संगीत से अनुशासित वातावरण आपस में गुँथकर ऐसा रसायन बन जाता है जिसमें इतिहास और साहित्य की अन्तर्रेखाएँ नाद भाषा बन कर जीवन को पूरा नीचे से ऊपर तक बारीक काट देती है।"[271] समग्रतः यह उपन्यास इतिहास कल्पना का सामंजस्यपूर्ण कला–कौशल है।

निष्कर्ष शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के साथ कल्पना पुष्प–गंध के समान समाहित हैं। यह समायोजन अत्यन्त सजगता एवं कौशल का परिचायक है। 'सरस्वती–सदानीरा' में कल्पना का समावेश अधिक है या कहें कि इतिहास पटल पर सांस्कृतिक झाँकी है। यह उपन्यास मूलतः वातावरण प्रधान उपन्यास है तथापि 'सांस्कृतिक उपन्यास' की संज्ञा से अभिहीत किए जाने योग्य हैं। अपनी तटस्थ एवं निरपेक्ष दृष्टि एवं ऐतिहासिक यथार्थ की अभिव्यक्ति में सक्षम अन्य सभी उपन्यास ऐतिहासिक यथार्थवादी उपन्यासों की श्रेणी में रखे जाने चाहिए। सुरेश गौतम द्वारा 'शहजादा दाराशिकोह' की विवेचना में कहा गया कथन सभी उपन्यासों के लिए सारगर्भित निष्कर्ष माना जा सकता है। वे कहते हैं–...."इससे अधिक सार्थकता और प्रासंगिकता क्या होगी जिसने तटस्थ रहकर कलात्मक शैली में शब्दों से ऐसा पुल निर्मित कर दिया , जो गूंज–प्रतिगूंज बनकर हमें सत्यान्वेषण को विवश कर देता है। ये उपन्यास शोधार्थी, इतिहास, अद्‌भुत परिकल्पक शत्रुघ्न प्रसाद की तथ्यपरकता, निर्भीकता, सत्यनिष्ठा की इतिहास वीथियों के प्रकाश पथ है।"[272]

सन्दर्भ सूची

1. समान्तर कोश – अरविन्द कुमार, पेज – 1449
2. वहीं – अरविन्द कुमार, पेज – 453
3. राहुल सांकृत्यायन के कथा साहित्य में ऐतिहासिक दृष्टि– डॉ संगीता श्रीवास्तव, पेज– 19

4–8. इतिहास के सिद्धान्त एवं पद्धतियाँ– डॉ एच. सी. पाँचाल, पेज– 99, 107 156, 255

9. राहुल सांकृत्यायन के कथा साहित्य में ऐतिहासिक दृष्टि– डॉ संगीता श्रीवास्तव, पेज – 24
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ नगेन्द्र, पेज– 21

11–14. इतिहास के सिद्धान्त एवं पद्धतियाँ– डॉ एच. सी. पाँचाल, पेज– 313,312,271,256

15. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ– डॉ शशिभूषणसिंहल, पेज–281

16–20. इतिहास के सिद्धान्त एवं पद्धतियाँ– डॉ एच.सी. पाँचाल, पेज–256,263,16,262,261

21. ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास एवं कल्पना की भूमिका– डॉ टी. पी. शाजू विकीपिडिया–

22–24. इतिहास के सिद्धान्त एवं पद्धतियाँ– डॉ एच.सी. पाँचाल, पेज– 254,254,254

25–28. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ (वृन्दावनलाल का पत्र)– डॉ शशिभूषण सिंहल, पेज – 449,271,276,281

29. आत्मकथा और उपन्यास– ज्ञानेन्द्र कुमार सन्तोष, पेज– 55
30. दैनिकभास्कर – प्रो. माखनलाल शर्मा– 27 फरवरी 2017
31. राहुल सांकृत्यायन के कथा साहित्य में ऐतिहासिक दृष्टि– डॉ संगीता श्रीवास्तव, पेज – 57
32. हिन्दी शब्दकोश– हरदेव बाहरी, पेज– 153
33. आदर्श हिन्दी शब्दकोश – रामचन्द्र पाठक, पेज– 156
34. अरविन्द कुमार– समान्तर कोश, पेज– 172
35. वृहत हिन्दी कोश– कालिका प्रसाद, पेज–230
36. हिन्दी साहित्य कोश– धीरेन्द्र वर्मा, पेज– 206
37. हिन्दी उपन्यास और उपन्यासकार– हेतु भारद्वाज, पेज– 42
38. हिन्दी उपन्यास सृजन एवं सिद्धान्त– नरेन्द्र कोहली, पेज–8
39. काव्य शास्त्र– डॉ भगीरथ मिश्र, पेज–22
40. हिन्दी उपन्यास सृजन एवं सिद्धान्त– डॉ नरेन्द्र कोहली, पेज – 8, 9
41. उपन्यास और लोकतन्त्र– मैनेजर पाण्डेय, पेज – 67
42. ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास एवं कल्पना की भूमिका– डॉ टी.पी. शाजू

विकिपीडिया
43. हिन्दी उपन्यास कला– रामलखन शुक्ल, पेज– 51
44. आत्मकथा और उपन्यास– ज्ञानेन्द्र कुमार सन्तोष, पेज– 76
45. हिन्दी उपन्यास सृजन एवं सिद्धान्त– नरेन्द्र कोहली, पेज– 31
46. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ– डॉ शशिभूषण सिंहल, पेज–282
47.–49. ऐतिहासिक उपन्यासों में सांस्कृतिक चिंतन – डॉ ज्ञानप्रकाश मिश्र, पेज – 25
50. हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पेज– 26
51. ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक रोमांस– गुरदीप सिंह खुल्लर, पेज – 148
52. हजारी प्रसाद ग्रन्थावली (साहित्य का साथी)– सं. मुकुन्द द्विवेदी, पेज – 224
53. हिन्दी साहित्य कोश– धीरेन्द्र वर्मा, पेज – 149
54. ऐतिहासिक उपन्यास एवं रोमांस– गुरदीप सिंह खुल्लर, पेज – 147
55. हजारी प्रसाद– विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पेज – 151
56–57. ऐतिहासिक उपन्यास एवं रोमांस– गुरदीप सिंह खुल्लर, पेज – 66, 67, 68
58. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ– शशिभूषण सिंहल, पेज– 284
59–60. आत्मकथा और उपन्यास– ज्ञानेन्द्र कुमार सन्तोष, पेज–25, 60
61. हिन्दी उपन्यास एवं उपन्यासकार– हेतु भारद्वाज
62. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ– शशिभूषण सिंहल, पेज– 290, 291, 292
63. साहित्यिक निबन्ध– राजनाथ शर्मा, पेज–748, 749
64. प्राचीन भारत का इतिहास– शिवकुमार शर्मा, पेज– 2
65. मध्यकालीन भारत – हरीशचन्द्र शर्मा पेज– प्राक्कथन
66. मुगलकालीन भारत– प्रताप सिंह– विषय सूची
67. मध्यकालीन भारत एक सर्वेक्षण– इमत्याज अहमद – प्राक्कथन
68. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों से कालचेतना एवं संस्कृति –शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 6
69. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ– शशिभूषण सिंहल, पेज– 288
70. हिन्दी उपन्यास– शिवनारायण श्रीवास्तव, पेज– 468
71. उपन्यास और लोकतन्त्र– मैनेजर पाण्डेय, पेज– 60
72. प्राचीन भारत – जी.पी. सिंहल, पेज– 1, 2, 3
73. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ– शशिभूषण सिंहल, पेज– 284
74. हजारी प्रसाद ग्रन्थावली– (साहित्य का साथी)– सं. मुकुन्द द्विवेदी, पेज– 229
75. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ– शशिभूषण सिंहल, पेज– 290
76. इतिहास दृष्टि और ऐतिहासिक उपन्यास– जार्ज लूकाच, पेज– 76
77. हिन्दी उपन्यास कला– रामलखन शुक्ल, पेज– 51
78. हिन्दी साहित्य कोश– धीरेन्द्र वर्मा, पेज– 144

79–86. सरस्वती–सदानीरा– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 91, 92, 95 154, 187, 206, 213, 275, 276

87. दैनिक भास्कर– याज्ञवल्क्य की कहानी से सीखें, दिनांक– 21–10–18

88–89. भारत का इतिहास– हरिशंकर शर्मा, पेज– 152, 91

90. भारत का सम्पूर्ण इतिहास– भरतेश कुमार मिश्र, पेज– 97

91. प्राचीन भारत का इतिहास– शिवकुमार गुप्त, पेज– 120

92–98. भारत का इतिहास– हरिशंकर शर्मा, पेज– 120, 102, 132, 127, 154, 173, 157

99. संस्कृति के चार अध्याय– रामधारी सिंह दिनकर, पेज– 107

100–102. प्राचीन भारत का इतिहास– कृष्णगोपाल शर्मा, 38, 72, 111

103–106. वैदिक राष्ट्र दर्शन– बालशास्त्री हरदास, पेज – 111, 26, 113

107–108. प्राचीन भारत का इतिहास– कृष्णगोपाल शर्मा, पेज – 143, 117

109–110. भारत का इतिहास– हरिशंकर शर्मा, पेज – 153, 155, 168

111–125. सरस्वती–सदानीरा– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 5, 7, 9, 10, 17, 20, 26, 231, 251, 251, 250, 29, 169, 196, 226

126–133. भारत का इतिहास– हरिशंकर शर्मा, पेज– 132, 143, 144, 148, 163, 136, 134, 139, 142, 169

134–138. शिप्रा साक्षी है– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 39, 41, 61, 104, 251

139. प्राचीन भारत का इतिहास– हरिशंकर शर्मा, पेज– 363–364

140–142. प्राचीन भारत– जी.पी. सिंहल, पेज– 292, 293, 295, 295

143. प्राचीन भारत– पंकजलता श्रीवास्तव, पेज– 95

144–148. शिप्रा साक्षी है– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 10, 14, 31, 41, 67

149. हमारा दृष्टिकोण– देवशर्मा, पेज– 10

150–151. भारतीय ऐतिहासिक स्थलकोश– हुकुमचन्द जैन, पेज– 270, 16

152. प्राचीन भारत– जी.पी. सिंहल, पेज– 293

153. मधुमती– डॉ रजनीकान्त लहरी– सि. 1991, पेज– 24

154. सिद्धियों का खण्डहर– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 226, 244, 255

155. भारतीय ऐतिहासिक स्थलकोश– डॉ हुकुमचन्द जैन, पेज– 315

156. भारत का सम्पूर्ण इतिहास– भरतेश कुमार मिश्र, पेज– 268

157. कश्मीर की बेटी– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 356, 358, 360

158. मध्यकालीन भारत एक सर्वेक्षण इमत्याज अहमद, पेज– 275

159. मुगलकालीन भारत– आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पेज– 4

160–162. तुंगभद्रा पर सूर्योदय– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 290, 296, 303

163. विश्व इतिहास की झलक– जवाहर लाल नेहरू, पेज– 301, 302

164–166. भारतीय ऐतिहासिक स्थलकोश– डॉ हुकुमचन्द जैन, पेज– 173, 316, 316

167. भारत का सम्पूर्ण इतिहास– भरतेश कुमार मिश्र, पेज– 296, 297, 298

168. मध्यकालीन भारत– प्रताप सिंह, पेज– 330, 332

169. मुगलकालीन भारत – प्रताप सिंह, पेज– 120

170–175. सुनो भाई साधो शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 4, 34, 35, 111, 123, 270, 279

176. संस्कृति के चार अध्याय– रामधारी सिंह दिनकर, पेज– 391

177. मध्यकालीन भारत– प्रताप सिंह, पेज– 422, 424, 429, 431, 434

178. संत कबीर का साहित्य– डॉ बिन्दू दूबे, पेज– 16, 17, 18 ,19, 20, 21

179. मध्यकालीन भारत– प्रताप सिंह, पेज– 10

180. मध्यकालीन भारत–एक सर्वेक्षण इमत्याज अहमद, पेज– 33

181. संतकबीर का साहित्य – डॉ बिन्दू दूबे, पेज– 30

182–184. मध्यकालीन भारत – प्रताप सिंह, पेज– 287, 260, 263, 332

185. भारतीय ऐतिहासिक स्थलकोश– हुकुमचन्द जैन, पेज– 316

186–192. संत कबीर का सहित्य– डॉ बिन्दू दुबे, पेज– 12, 14, 15, 16, 17, 24, 31

193. सिद्धियों का खण्डहर– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 210, 213, 214, 215

194–200. कश्मीर की बेटी– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 21, 161, 237, 249, 262, 269, 328

201–209. तुंगभद्रा पर सूर्योदय – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 17, 49, 51, 52, 102, 105, 183, 194, .217, 304

210–.214. सुनो भाई साधो– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 2, 149, 274, 260

215. मधुमती– डॉ रजनीकान्त लहरी सितम्बर– 1991, पेज– 23

216. सिद्धियों का खण्डहर– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 25, 5, 35, 36, 46, 128, 212, 213

217. कश्मीर की बेटी– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 4, 9, 51, 55, 16, 306, 52, 82, 105, 120, 154

218. तुंगभद्रा पर सूर्योदय– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 10, 13, 14, 24, 43, 44, 47, 50, 114, 117, 129, 161, 389

219. सुनो भाई साधो– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज– 31, 49, 50, 160, 246, 167, 178, 211 235, 247, 273, 274

220–224. भारतीय ऐतिहासिक स्थलकोश– हुकुमचन्द जैन, पेज– 315, 193, 365, 316, 316

225. मध्यकालीन इतिहास– प्रताप सिंह, पेज – 12, 12, 13, 17, 29, 360

226. संत कबीर का साहित्य– डॉ बिन्दू दूबे, पेज– 43–44

227.–228 मध्यकालीन भारत– प्रतापसिंह, पेज– 438, 329, 330, 337

229. भारतीय ऐतिहासिक स्थलकोश– डॉ हुकुम चन्द जैन, पेज– 7, 313, 207, 173

230. मध्यकालीन भारत प्रताप सिंह, पेज– 476, 478

231. हमारा दृष्टि कोण – श्रीरंजन सूरिदेव, पेज–5

232. समकालीन भारतीय साहित्य– उमेशदीक्षित जुलाई– अगस्त– 2003, पेज– 61

233. समीक्षा – प्रेम शशांक अक्टूबर–दिसम्बर, 2005 पेज– 25

234. हमारा दृष्टिकोण – 2004 ज्योति शुक्ल, पेज – 18

235. हेमचन्द्र–विक्रमादित्य शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 364, 366, 38, 229, 321, 343

236. अरावली का मुक्तशिखर– शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 4, 43, 126, 129, 130, 131, 226

237. शहज़ादा दाराशिकोह दहशत का दंश – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 5, 16, 40, 59, 209, 233, 233, 257, 277

238. संस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिंह दिनकर, पेज – 286

239. भारत का सम्पूर्ण इतिहास – भरतेश कुमार मिश्र, पेज – 336 – 337

240. मुगलकालीन भारत प्रतापसिंह, पेज – 336, 343, 347

241. मेवाड़ के महाराणा और शहंशाह अकबर – राजेन्द्र शंकर भट्ट, पेज – 60, 139, 176, 177, 184, 223, 224, 225, 229

242. मध्यकालीन भारत – हरिशंकर शर्मा, पेज – 439, 441, 441, 442, 443

243. मुगलकालीन भारत – प्रताप सिंह, पेज – 265, 266

244. हेमचन्द्र–विक्रमादित्य – शत्रुघ्नप्रसाद, पेज – 82, 147,170,120, 277, 366

245. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्नप्रसाद, पेज – 18, 103, 129, 130, 185, 206, 225

246. शहजादा दाराशिकोह दहशत का दंश – शत्रुघ्नप्रसाद, पेज – 5, 6, 10, 11, 82, 115, 195, 289

247. मध्यकालीन भारत – हरिशंकर शर्मा, पेज – 351, 352, 360, 387, 409, 410, 437, 438

248. वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप – गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पेज – 78

249. मध्यकालीन भारत – विद्याधर महाजन, पेज – 90, 91

250. संस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिंह दिनकर, पेज – 284, 292

251. हेमचन्द्र विक्रमादित्य – शत्रुघ्नप्रसाद, पेज – 5, 41, 52, 60, 65, 105, 167, 212, 234, 249, 280, 324, 338, 344

252. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्नप्रसाद, पेज – 11, 13, 44, 79, 83, 95, 107

253. हेमचन्द्र विक्रमादित्य – शत्रुघ्नप्रसाद, पेज – 6, 42, 52, 76, 79, 106, 190, 198, 253, 280, 296, 317, 331

254. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्नप्रसाद, पेज – 13, 34, 44, 45, 57, 83, 84, 107, 147

255. शहजादा दाराशिकोह दहशत का दंश – शत्रुघ्नप्रसाद, पेज – 115, 215, 229,

229, 263

256. हेमचन्द्र विक्रमादित्य – शत्रुघ्नप्रसाद, पेज – 7, 11, 14, 18, 43, 78, 146, 229

257. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्नप्रसाद, पेज – 5, 8, 11, 14, 22, 56, 97, 99, 109, 169, 174, 207, 211

258. शहजादा दाराशिकोह दहशत का दंश – शत्रुघ्नप्रसाद, पेज – 5, 83, 94, 101, 133, 152, 179, 180, 225, 228, 283, 287

259–268. मध्यकालीन भारत– विद्याधर महाजन, पेज– 73, 350, 352, 368, 361, 390, 356, 358,367

269. मधुमती सि.– 1992 सत्यपाल चुघ, पेज – 25

270. सदानीरा फरवरी अप्रैल 2017 – सदानन्द गुप्त, पेज – 59

271. सदानीरा अगस्त – अक्टूबर 2016 – सुरेश गौतम, पेज – 52, 53

272. सदानीरा अगस्त – अक्टूबर 2016 – सुरेश गौतम, पेज – 52, 57

पंचम अध्याय

शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में युगीन चेतना

पंचम अध्याय

शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में युगीन चेतना

साहित्य समाज का ही नहीं युग का भी दर्पण होता है और दर्पण ही नहीं मार्गदर्शक भी होता है। नवयुग का प्रवर्तन करने की भूमिका भी निभाता है। किसी कालखण्ड विशेष के सामाजिक जीवन को समग्रता से चित्रित कर नवीन जीवन दर्शन प्रस्तुत करना साहित्य का धर्म होता है। युग और साहित्य एक–दूसरे पर आश्रित हैं। युग साहित्य को सामग्री प्रदान करता है। साहित्यकार युग–बोध प्रस्तुत कर नवीन जीवन का मार्ग प्रशस्त करता है। साहित्यकार स्वभावतः संवेदनशील होता है। वह युग की विषमताओं और विसंगतियों को परखता है। युग–विशेष से अनुभूत सत्यों का उद्घाटन करते हुए साहित्यकार सामाजिक विसंगतियों को समग्र एवं सर्वांग रूप में चित्रित एवं विश्लेषित करता है। वह युग विशेष के समाज का यथार्थ प्रस्तुत करते हुए संशोधित एवं परिष्कृत दृष्टिकोण भी स्पष्ट करता है। नव युग व नव समाज के निर्माण में साहित्यकार की यह नव–दृष्टि महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बाबू गुलाबराय ने लिखा है कि – ''कवि या लेखक अपने समय का प्रतिनिधि होता है। उसको जैसा मानसिक खाद मिल जाता है, वैसी ही उसकी कृति होती है। वह अपने समय के वायुमण्डल में घूमते हुए विचारों को मुखरित कर देता है। कवि वह बात कहता है जिसका सब लोग अनुभव करते हैं किन्तु जिसको सब लोग कह नहीं सकते। सहृदयता के कारण उसकी अनुभव शक्ति औरों से बढ़ी–चढ़ी रहती है।''[1] अतः स्पष्ट है कि कोई भी साहित्यकार अपने युग की परिस्थितियों को ही सामग्री बनाकर अपने भावों और विचारों के साथ अभिव्यक्त करता है। वह युग परिस्थितियों की अवहेलना कर शून्य में विचरण नहीं कर सकता है। युग समस्या की उपेक्षा कर यदि कोई साहित्यकार रचना करेगा तो वह कृति मौलिकता का स्पर्श नहीं दे सकेगी और कृत्रिमता का ही बोध करायेगी। उसकी सामाजिक उपादेयता में भी दोष प्रतीत होगा। साहित्य युग संश्लिष्ट होते हुए युग प्रवृत्तियों को प्रतिबिम्बित करता है। यथार्थ अभिव्यक्ति की अनिवार्यता एवं सक्षमता के कारण उपन्यास साहित्य तो युग के यथार्थ की अभिव्यक्ति में अधिक समर्थ सिद्ध होता है। युग समस्याओं को उद्घाटित कर उन्हें संशोधित एवं परिष्कृत रूप में प्रस्तुत कर युग–धर्म का निर्वाह करना साहित्य में युगीन चेतना कहलाता है।

5.1 युगीन चेतना का परिचय – अर्थ एवं महत्व

युगीन चेतना शब्द युग और चेतना के मेल से निर्मित है। 'युग' समस्त जगत या जमाने का बोध करवाता है और 'चेतना' का अर्थ मानव मस्तिष्क से है। यह शब्द जागरूकता का वाचक है। समय के प्रति चेतना, समय की चेतना, काल की चेतना या युग चेतना का वाचक है। इस प्रकार युगीन चेतना युग को आत्मा एवं बुद्धि से अनुभूत करने की क्रिया है। समान्तर

कोश में 'युग' शब्द का अर्थ कल्प, काल, जमाना, जुग, दौर, मन्वन्तर आदि दिया गया है।[2] तथा वृहद् हिन्दी कोश में युग्म, जोड़ा, बृहस्पति का एक राशि में स्थित रहने का पंचवर्षीय काल, समय, जमाना, काल, पुराण मत से काल का सुदीर्घ परिणाम सत्य, त्रेता, द्वापर, कलियुग आदि दिया गया है।[3] अतः शब्द कोश के अनुसार 'युग' शब्द काल, समय, जमाना के अर्थ में प्रयुक्त होता है। समीर महाजन ने लिखा है कि – ''काल शब्द का सामान्य अर्थ समय है। शब्दकोशों में इसे अनेक कोटियों में विभक्त किया गया है। समय सूचक अर्थ में वक्त, समय, मौका, भाग, विभाग, नियत समय, अवसर, समय का एक भाग, अवधि, मौसम आदि अर्थ गृहित किए जाते हैं।''[4] वैसे 'काल' समस्त सृष्टि के क्रिया कलापों और समस्त पदार्थों के कारणरूप में दर्शाया जाता है। परन्तु प्रबन्ध प्रतिपाद्य की दृष्टि से उन सभी अर्थों में 'समय सूचक' अर्थ ही हमारा अभिप्रेत है। 'मानक हिन्दी कोश' के अनुसार 'समय की कोई ऐसी अवधि जो किसी घटना की सूचक होती है, उसे काल कहते हैं।''[5] तथा 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' के अनुसार ''किसी एक समय से किसी दूसरे समय तक की अवधि काल है।''[6] अर्थात् प्रवृत्तियों के परिवर्तन के मध्य का समय या ऐसा समय जिसमें समाज में लगभग एक जैसी परिस्थितियाँ रही हो, युग या काल कहा जाता है। काल या समय का सम्बन्ध एक जैसे तथ्यों के उद्घाटन से भी है। समीर महाजन ने लिखा है कि – ''भूत, वर्तमान एवं भविष्य की दृष्टि से काल को तीन प्रकार का माना गया है। इसी से हम व्यावहारिक जीवन में काल की पहचान करते हैं। इसी के कारण हम किसी घटना की अवधि को भूत, वर्तमान और भविष्य की दृष्टि से पहचानते हैं। काल किसी घटना से दूसरी घटना के बीच के समय में स्वरूपित हैं।''[7] इस प्रकार परिस्थितियों के परिवर्तनों के बीच के समय को काल या युग कहा जा सकता है। बैजनाथ प्रसाद शुक्ल ने लिखा है – ''युग का तात्पर्य काल के सुदीर्घ परिणाम – सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग से न लेकर काल विशेष के संदर्भ में लिया जाता है। युग शब्द काल सापेक्ष है।''[8] इस प्रकार काल या युग समय की वह निश्चित अवधि है जिसमें समाज एक ही तरह की प्रवृत्तियों से पहचाना जा सकता है। एक जैसी विसंगतियाँ और विषमताएँ व्याप्त रहती हैं। उसके पहले परिस्थितियाँ भिन्न होती है और बाद में भी परिस्थितियाँ भिन्न हो जाती है। परिस्थितियों के मध्य का समय काल या युग कहा जा सकता है। 'चेतना' का अर्थ जागने या सचेत होने से है। शब्दकोशों के अनुसार ''चेतना के लिए होश में आना, बुद्धि–विवेक से काम लेना, सावधान होना, सोचना, विचारना, ज्ञान, होश, याद, बुद्धि, जीवन शक्ति, मनोवृत्ति, संज्ञा से युक्त, होशियार होना, सोच समझकर किसी बात की ओर ध्यान देना, चेतनता, चैतन्य, संज्ञा, संवेदनशील, द्रष्टा, आत्मा, चेतस आदि अनेक अर्थ निर्दिष्ट हैं।''[9] 'समान्तर कोश' में 'चेतना' शब्द को अनुभूति, आन्तरिक ज्ञान, जागना, आत्मा, अनुप्राणित, जागरूक, जीव, स्फूर्त, जीवन आदि अर्थों में प्रयुक्त किया गया है।[10] हिन्दी पर्यायवाची कोशी में चैतन्य, ज्ञान, संज्ञा, सुध–बुध, सुधि, होश, चेत, जागरण आदि अर्थ दिए गए हैं।[11] 'मानक हिन्दी कोश' के अनुसार – ''चेतना मन की वह वृत्ति या शक्ति है जिससे जीवन या प्राणी को आन्तरिक अनुभूतियों,

भावों, विचारों और बाह्य तत्वों या बातों का अनुभव या भान होता है।''[12] 'हिन्दी विश्वकोश' में लिखा है कि – ''चेतना स्वयं को अपने आसपास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है।''[13] चेतना शब्द के दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक अर्थ भी लिए जाते है। डॉ नगेन्द्र के अनुसार – ''मनोविज्ञान की दृष्टि से मानव शरीर में उपस्थित वह आधारभूत तत्व जो सभी प्रकार की अनुभूति प्रदान करता है, चेतना कहलाता है। मानव मस्तिष्क में जो चेतना का मूल स्थान है में वह सभी बातें रहती हैं। यह चेतन स्तर है। अवचेतन में वे बातें रहती हैं जिनका हमें ज्ञान नहीं रहता हैं। भूली हुई बातें रहती है। अवचेतन तथा उपचेतन की प्रतिकूल मानसिक स्थिति का नाम चेतना है।[14] धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार – चेतन मानस की प्रमुख विशेषता चेतना है अर्थात् वस्तुओं, विषयों, व्यवहारों का ज्ञान। चेतना की प्रमुख विशेषताएँ हैं– निरन्तर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह। इस प्रवाह के साथ–साथ विभिन्न अवस्थाओं में एक अविच्छिन्न एकता और साहचर्य।''[15] निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि मानव मस्तिष्क में प्रवहमान वह शक्ति जो मनुष्य को निरन्तर चैतन्य प्रदान करती है, चेतना कहलाती है। चेतना मानव को समुचित मार्गदर्शन प्रदान करने वाली शक्ति है जो मानव जीवन को उसके निजी जीवन, आचार–विचार, रहन–सहन और वस्तुओं के बोध के साथ–साथ बाहरी परिस्थितियों तथा वातावरण के विषय में ज्ञानवर्धन करती है। युगीन चेतना या काल चेतना समय के प्रति चेतना ही है। अंग्रेजी में इसे 'कॉन्सियसनेस ऑफ टाइम' कहते हैं जिसका अर्थ भी समय के प्रति जागरूकता ही है। काल का वातावरण अत्यन्त व्यापक है। समस्त जगत इसमें समाविष्ट हो जाता है। इस काल या युग के बारे में मानव हृदय या मस्तिष्क जो अनुभूति करता है और उसके परिणामस्वरूप जो संवेदनशील विचार अभिव्यक्त होते हैं उसे ही काल चेतना या युगीन चेतना कहा जा सकता है। समीर महाजन ने काल चेतना का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट किया है कि – ''काल चेतना जहाँ परम्पराओं को स्वरूपित करती हैं वहीं शोभाचारिता के अर्थ में भी व्यक्त होती है। यह शोभाचारित वस्त्र विन्यास, साहित्य, संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि रूपों में परिलक्षित होती है। कालचेतना और स्थल चेतना परस्पर आबद्ध होती है। कालचेतना का सरोकार केवल मानवीय मस्तिष्क से ही नहीं है, बल्कि मानवेतर जीवन के साथ भी प्रगाढ़ सम्बद्ध है। मानवीय काल चेतना दो रूपों में सक्रिय होती है। (1) उपयोगी मानवीय कालचेतना (2) कलापरक कालचेतना। आगे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि रचनाकार अपनी यथार्थ कालचेतना की आधार भित्ति पर ही अपनी सर्जनात्मक कालचेतना की नींव रखता है। वह यथार्थ के विभिन्न परिदृश्यों को अर्थात् समाज, राजनीति, अर्थ, धर्म, शिक्षा, प्रशासन, परिवार, प्रकृति और संस्कृति को अपनी सर्जनात्मकता में स्वरूपित कर प्रस्तुत करता है। उसकी यह सर्जनात्मक कालचेतना मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला और साहित्य कला जैसे विभिन्न संदर्भों में सक्रिय होती है।''[16]

युग चेतना युगानुकूल परिस्थितियों के साथ तादात्म्य स्थापित कर तद्नुरूप व्यवहार करने की प्रेरणा देती है। इन्हीं क्रिया–कलापों के अन्तर्गत सर्जक व्यक्ति की कला–संवेदना उद्बुद्ध होती है। जीवन में घटित सभी अच्छे–बुरे व्यवहारों का चित्र कलाकार अंकित करता है। कालचेतना कलाकार या साहित्यकार का दृष्टिकोण ही होता है। काल और कला परस्पर अवलम्बित है। साहित्य में काल या युग का प्रतिफलिन होता है।

साहित्यकार युगचेतना की भूमिका का निर्वाह करते हुए समय की पहचान करता है। समय के यथार्थ को पहचानते हुए अपनी चेतना शक्ति द्वारा नवीन मूल्यों या आदर्शों की प्रतिष्ठा का प्रयास करता है। एक सजग रचनाकार भविष्यत काल के लिए अपने वर्तमान काल से चेतना प्राप्त कर भावी निर्माण को नवीन दिशा देने की चेष्टा करता है। इसी अर्थ में साहित्य सर्जक की युगीन चेतना सार्थक होती है। साहित्य और समाज में आत्मीय सम्बन्ध होता है। समाज में व्याप्त संस्कारों का प्रभाव साहित्यकार के मन पर पड़ता है। संस्कार निष्ठ प्रवृत्तियाँ व परिस्थितियाँ ही साहित्यकार के मन में संग्रहित होती रहती है। अवसर पाकर साहित्यकार का चेतन मन इन्हीं संस्कारों को अभिव्यक्त करता है। समाज और साहित्य का मिलन युगचेतना से ही सम्भव है। समाज एवं समय का सम्पूर्ण वैभव, साहित्य की सामग्री से बनता है। साहित्यकार अपने साहित्य को युगीन विचारधारा प्रदान करते हुए समाज को प्रभावित एवं प्रेरित करता है। वही साहित्य समाज का दर्पण, अनुकृति एवं जीवन की समालोचना सिद्ध हो सकता है, जो युगचेतना से युक्त है। प्रेमचन्द को उद्धृत करते हुए बैजनाथप्रसाद शुक्ल ने लिखा है कि – ''साहित्यकार बहुधा अपने देश–काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश–बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रूदन में व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है। साहित्य तो वह कला है जो समाज में जागृति और स्फूर्ति लाए, जो जीवन की यथार्थ समस्याओं पर प्रकाश डाले।''[17] साहित्य समाज की सच्ची तस्वीर सामने रखता है। जीवन के पुनः सर्जन के निमित्त साहित्यकार परिवेशगत सोने को अपनी भावानुभूतियों के ताप में तपाकर युगीन चेतना का सुहागा मिलाकर शुद्ध कंचन बना देता है। अर्थात् युग चेतना के माध्यम से ही साहित्यकार युग–युगीन एवं कालजयी साहित्य की रचना करने में सक्षम एवं समर्थ होता है। युगीन परिस्थितियों एवं भावानाओं से युक्त साहित्य ही युगीन चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे साहित्य में मानव के जागतिक व्यापारों का प्रवाह उभरता उमड़ता रहता है। युग चेतना साहित्य का प्रतिनिधि गुणधर्म है। साहित्य समाज का गतिशील चित्रण है। मानव जीवन के व्यवहार व आचार–विचार का युग पीठिका पर अंकन–अवलोकन साहित्यकार का धर्म है। सच्चा साहित्यकार युग की पृष्ठभूमि से आँख बन्द नहीं कर सकता है। साहित्य का भवन सामाजिक परिस्थितियों के स्तम्भों पर टिका होता है।

साहित्य समाज के श्वेत–श्याम दोनों पक्षों का चित्रण करता है। साहित्यकार एक कर्मयोगी की भूमिका निभाते हुए युग निर्माता बनकर युग की नवीन सृष्टि करता है। युग का यथार्थ चित्रण करने वाला व युगीन चेतना को वाणी प्रदान करने वाला सहित्यकार ही युग निर्माण कर पाता है। बैजनाथप्रसाद शुक्ल ने लिखा है कि – ''युग चेतना युग के शुभाशुभ, सत्यासत्य तथा तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक प्रवृत्तियों को पहचानने की शक्ति है जो तत्काल बतला देती है कि वांछनीय और उचित क्या है? यह अन्तश्चेतना की तरह नैसर्गिक शक्ति नहीं है, यह तो मानव की वह शक्ति या प्रवृत्ति है जो सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों से प्रभावित हुआ करती हैं। कलाकार युगीन परिस्थितियों से प्रभावित हो अपनी कलात्मक चेतना द्वारा उस युग को अपने साहित्य में साकार कर देता है।''[18] साथ ही युग चेतना निजी चेतना के साथ समन्वित होकर ही श्रेष्ठ रूप में व्यक्त हो सकती है। किसी युग विशेष में किसी के लिए गाँधी दर्शन महत्वपूर्ण होता है तो किसी अन्य के लिए विवेकानन्द का दर्शन आदर्श बन जाता है। मार्क्स, फ्रायड, अरविन्द, शंकर किसी भी दार्शनिक मत को मानकर युग विशेष की चेतना को समाविष्ट किया जा सकता है।

युगचेतना साहित्य की आत्मा कही जा सकती है। युग प्रतिनिधि कलाकार के लिए युगीन चेतना अनिवार्य धर्म है। युगचेतना ही साहित्यकार को मानव की समस्याओं से परिचित करवाती है। अर्थात् मानव की यथार्थ समस्याओं को पहचान कर समाज को उनसे अवगत करवाने की शक्ति युग चेतना में ही निहित हैं। मानव में शुभ–अशुभ पक्षों का समानुपाती अवलोकन है। मानव जीवन की विषमताएँ बहुमुखी होती है जो व्यक्तिनिष्ठ न होकर समष्टिनिष्ठ होती है। चेतना अनुभूतियों को जन्म देती है। युगचेतना साहित्य की आत्मा है। युग चेतना साहित्य को आत्मसात करती है। युगचेतना के अभाव में साहित्य दृष्टिहीन होता है जो वर्तमान एवं भविष्य को दृष्टि नहीं दे सकता है। अतः साहित्य में युगचेतना का महत्वपूर्ण स्थान है। समीर महाजन ने कहा है कि – ''साहित्यकार यथार्थ काल का सर्जनात्मक काल में रूपान्तरण करते समय वह अतीत, वर्तमान एवं भविष्य को यथापेक्षित रूप में संयोजित कर अपनी सर्जनात्मक काल चेतना द्वारा यथार्थकाल को जहाँ नया क्रम देता है वहीं वह काल क्रम का अतिक्रमण भी कर देता है। डॉ शीतांशु को उद्धृत करते हुए लिखा है कि साहित्यकार चार प्रकार से यथार्थ काल को सर्जनात्मक काल में बदलता है। (1) अतीत और वर्तमान के बीच काल के दीर्घ अन्तराल की चेतना (2) विगतकाल की वर्तमानता की चेतना (3) वर्तमान काल की हेतुहेतुमद् भूतीय व्यतीत चेतना (4) व्यतीत की पृष्ठभूमि में वर्तमान को सार्थक करने की काल चेतना।''[19]

साहित्यकार द्वारा साहित्य में निरूपित काल या युगीन चेतना यथार्थपरक न होकर सर्जनात्मक होती है जो यथार्थ को नवीन आयाम प्रदान करती है। साहित्यकार की सर्जनात्मक युगीन

चेतना अतीत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों को समाविष्ट करके चलती है। समीर महाजन के अनुसार – ''यथार्थ बनाम सर्जनात्मक काल चेतना के अध्ययन के तीन प्रमुख आयाम हैं (1) प्रतिपाद्य आयामी काल चेतना (2) स्थल आयामी काल चेतना (3) पात्र आयामी काल चेतना। उनके अनुसार साहित्यकार की सर्जनात्मक काल चेतना परिवार, राजनीति, अर्थ, संस्कृति, धर्म, शिक्षा, प्रशासन, प्रकृति, आदि संदर्भों में दर्शनीय होती है।''[20] बैजनाथप्रसाद शुक्ल ने लिखा है कि सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ–यथा समाज विशेष के विकास के विभिन्न सोपान साहित्य के रूप एवं शैली का निर्माण करते हैं। सामाजिक परिवर्तन एवं नियंत्रण के विविध रूप युगचेतना द्वारा सृजित साहित्य में देखे जा सकते हैं।''[21]

साहित्य का सर्वसमर्थ आधुनिक रूप उपन्यास यथार्थ जीवन का चित्रण करने में अधिक सक्षम साहित्यिक रूप है। मानव जीवन के सबसे अधिक निकटतम विधा है। उपन्यासकार मानव जीवन के प्रति एक निश्चित दर्शन व विचार रखता है, जिसके माध्यम से वह मानव जीवन की सत्य आभासित कथा प्रस्तुत करता है। उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें व्यक्ति का जीवन एवं उसका युग पूर्ण रूप से चित्रित होता है। कुशल उपन्यासकार युग का सर्वांगीण रूप विश्लेषित करने में सक्षम होता है। डॉ भगीरथ मिश्र का कहना है कि – ''युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्य काव्य उपन्यास कहलाता है।''[22] उपन्यास में जीवन चित्रण एवं युग चित्रण का अधिक अवकाश होता है। उपन्यासों में मानव एवं उसके युग का सम्पूर्ण वैभव सर्वांगीण यथार्थ के साथ चित्रित हो रहा है। बैजनाथप्रसाद शुक्ल ने सुरेश सिन्हा को उद्धृत करते हुए लिखा है कि उपन्यास यथार्थ की प्रतिच्छाया है। वह इस सृष्टि का यथार्थ चित्र है, जिसमें कलाकार, उसका रूप विधान, उसका वर्ग सभी कुछ व्यापक अर्थों में आ जाते हैं।''[23]

उपन्यास साहित्य और युगचेतना का गहरा सम्बन्ध है। उपन्यास युगचेतना की खाद से पोषित होते हुए ही नवीन सृष्टि करता है। इस प्रकार उपन्यास युग जीवन की पृष्ठभूमि को चित्रित करता हुआ युग जीवन का संवाहक बनता है। व्यक्ति और समाज की युग प्रवृत्तियों से संयुक्त होकर उपन्यासकार युगीन प्रवृत्तियों की पहचान करवाते हुए वर्तमान जीवन के दृष्टि बोध, जीवन दर्शन एवं सौन्दर्य दर्शन को अभिव्यक्त करता है। यथार्थ की व्यंजना कर नव–दृष्टि प्रदान करना की युगचेतना का महत्व है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में अतीतकाल का यथार्थ अभिव्यंजित किया जाता है परन्तु उपन्यासकार का युग भी साथ–साथ समाहित रहता है। ऐसी युगीन चेतना अतीत और वर्तमान को एक ही कथानक में बाँधकर अतीत को वर्तमान के संदर्भ में या वर्तमान को अतीत के संदर्भ में दर्शाता है। उपन्यासकार वर्तमान काल की घटना को अतीतकाल से जोड़कर काल के

अन्तराल को पाट पर शाश्वत जीवन मूल्यों को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार उपन्यासकार यथार्थ चेतना को सर्जनात्मक युगीन चेतना में रूपांतरित करता है। शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में युगीन चेतना अपने सम्पूर्ण वैभव में अभिव्यक्त हुई है। अतीतकालीन यथार्थ के साथ वर्तमान यथार्थ भी समन्वित होकर युगीन चेतना का संचरण करता हुआ उपन्यासों को प्रेरणाप्रद बना रहा है। इनके उपन्यासों में युगीन चेतना के विविध आयाम द्रष्टव्य हैं जो निम्न प्रकार से विश्लेषित किए जा सकते हैं।

5.2 राजनैतिक युगीन चेतना –

किसी भी राष्ट्र को संचालित करने वाली शक्ति राजनैतिक शक्ति कहलाती है। किसी देश या राष्ट्र की आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा का प्रबन्ध करने वाली व्यवस्था राजनीति कहलाती है। यह व्यवस्था सुरक्षा के साथ–साथ राष्ट्र के सामाजिक धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मानवीय रूप को भी प्रभावित करती है। किसी भी देश को सुचारू संचालित करने के लिए एक राष्ट्र प्रधान की आवश्यकता होती है। वह राष्ट्र प्रधान या प्रतिनिधि निश्चित नियमों के अनुसार एवं निश्चित की गई व्यवस्था के अनुसार देश या राष्ट्र का संचालन करता है। यह निश्चित विधान ही राजनीति कहलाता है। रामचन्द्र वर्मा के अनुसार – ''उन नियमों या विधान को राजनीति माना जाता है जिसके अनुसार किसी राज्य का कोई राजा शासन कार्य चलाता है।''[24] राज्य के आन्तरिक संगठन को सुरक्षित एंव सुगठित रखने एवं बाह्य शक्तियों से बचाए रखने के लिए जो नीति अपनाई जाती है, वह राजनीति कहलाती है। शिवराम आप्टे ने संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश में स्पष्ट लिखा है कि – ''राज शब्द का पहला अर्थ तो चमकना, जगमगाना, शानदार या सुन्दर प्रतीत होना से लगाया जाता है। दूसरा अर्थ हुकुमत करना, शासन करना, उज्ज्वल करना व तीसरा अर्थ राजा, सरदार या युवराज से लिया जाता है। 'राष्ट्र' शब्द को राज शब्द के समान की माना गया है। इसलिए राष्ट्र शब्द का अर्थ देश, राज्य या साम्राज्य माना गया है। तथा 'नीति' शब्द का अर्थ है निर्देशन, दिग्दर्शन, प्रबन्ध आदि। इसका दूसरा अर्थ है आचरण, शालीनता, व्यवहार, कार्यक्रम आदि से लिया जाता है। तीसरा अर्थ औचित्य, चाल–चलन व चौथा अर्थ नीति–कौशल, नीतिज्ञता आदि से लिया जाता है। यह शब्द राजनीति विशारद है।''[25] राज्य, राष्ट्र या देश चलाने वाली नीति या नियमावली राजनीति है। 'आदर्श हिन्दी शब्दकोश' में इसका अर्थ है – ''वह नीति जिसके अनुसार राजा या शासक अपने राज्य के शासन एवं प्रजा की रक्षा करता है।''[26] राजनीति का अपना एक अलग समाज बन जाता है। जिसमें राज्य व्यवस्था बनाने वाला तंत्र आता है। राजेश रानी ने ए. अप्पाराव को उद्धृत करते हुए लिखा है कि – ''राजनीति का सम्बन्ध राज्य अथवा राजनैतिक समाज से है। राजनैतिक समाज से अभिप्राय ऐसे लोगों से है जो निश्चित भू–भाग में व्यवस्था हेतु संगठित होते हैं।''[27] एक निश्चित भू–क्षेत्र के निवासियों की प्रबन्ध व्यवस्था जिन प्रतिनिधियों द्वारा होती है वे राजनैतिक प्रबन्धक ही राजनैतिक समाज कहलाता है। यह

राजनैतिक समाज शेष समाज के साथ परस्पर सम्बद्ध रहता है। यह पारस्परिकता ही सही अर्थों में राजनीति है। के.एम. पणिकर को उद्धृत करते हुए राजेश रानी ने लिखा है कि – ''राजनीति राज्य की आवश्यकता, राज्य का स्वरूप एवं शासक व शासित का परस्पर सम्बन्ध है।''[28] शासक और प्रजा का आपसी सम्बन्ध ही राज्य या शासन की नीति है। राजेश रानी ने स्पष्ट किया है कि – ''राज से राज्य व नीति से नियम का अर्थ लगाया जाता है अर्थात् किसी भी राज्य को चलाने के लिए जो नीतियाँ बनाई जाती हैं वे सब राजनीति के अन्तर्गत आती हैं। अंग्रेजी में 'पॉलिटिक्स' – ग्रीक शब्द 'पोलिस' से बना है जिसका अर्थ है नगर या राज्य। नगर या राज्य की जानकारी व नियमावली पॉलिटिक्स या राजनीति कहलाती है।''[29] अतः स्पष्ट है कि राजनीति राज्य, देश या राष्ट्र को संचालित करने या व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए निर्धारित नियमों की पद्धति है। अर्थात् राजनीति राजा और प्रजा के बीच व्यवस्था, प्रबन्ध या सुरक्षा सम्बन्धी पारस्परिकता है। जब इस परस्पर सम्बन्ध में विघ्न आता है या शासक नीति विरूद्ध संचालन करने लगता है तो प्रजा असन्तोष, दुःख और निराशा से भर जाती है। आक्रोश उपजता है। क्रान्ति होती है। इस नीति में समयानुसार परिवर्तन की भी जरूरत होती है। इस नीति के प्रति प्रबुद्ध वर्ग जो आवाज उठाता है। परिष्कार या संशोधन के विचार रखता है। नीति मर्यादा की याद दिलाता है। वही राजनैतिक चेतना होती है। शासक वर्ग को उसके कर्तव्यों के प्रति सचेत करना ही राजनैतिक चेतना कहलाती है। राजेश रानी ने लिखा है कि – राजनैतिक चेतना एक ऐसी शक्ति है जो समाज के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करती है। शासक वर्ग की गलत नीतियों उनके व्यक्तिगत स्वार्थ व समाज विरोधी नीतियों के प्रति राजनैतिक चेतना की आवाज उठाती है।''[30] स्पष्टतः राजा और प्रजा के सम्बन्धों के प्रति सचेत करने, शासक वर्ग को उसके कर्तव्यों की याद दिलाने, समयानुकूल परिवर्तन के लिए प्रेरित करने, राजा व प्रजा में राष्ट्रीय भाव जागृत करने वाले विचार राजनैतिक चेतना कहलाते हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र में एकत्व का भाव भरने, राष्ट्र निवासियों को राष्ट्र के प्रति त्याग व समर्पण के लिए तत्पर करने और शासक वर्ग को उसके राष्ट्रहित व प्रजाहित याद दिलाने वाले विचार राजनैतिक चेतना के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। इसमें राष्ट्र का सम्पूर्ण हित निहित होता है। राष्ट्र अखण्ड रहे, मजबूत रहे, राष्ट्र–गौरव बना रहे, उन्नत और समृद्ध होता रहे, सभी राष्ट्रवासी एकता एवं समानता के भावों से भरे रहे, ऐसी विचार–भावनाएँ राजनैतिक चेतना जागृत करती है। शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में इन्हें देखा जा सकता है।

शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में राजनैतिक चेतना –

शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थ तथा अपनी कल्पना कुशलता से राजनैतिक दृष्टि भी प्रस्तुत की है। यथार्थवाद अपने आप में एक दृष्टि या विचार होता है। यथार्थ दर्शन भी चिंतन के लिए प्रेरणा बनता ही है। ब्रेस्ट ने ठीक ही कहा था कि

– ''यथार्थवाद केवल एक साहित्यिक दृष्टि और पद्धति ही नहीं हैं, वह राजनीतिक दृष्टिकोण भी है।''[31]

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में वैदिक काल से लेकर औरंगजेबकालीन मध्यकाल तक के राजनैतिक यथार्थ का मूर्तिमंत रूप दृष्टिगोचर होता है जो प्रत्येक प्राणी को सोचने पर विवश करता है। वैदिककाल में महाराज सुप्रिय के माध्यम से उपन्यासकार ने स्पष्ट कर दिया कि राजा में पद का अहंकार आने लगता है और जब वह प्रशंसा और धनलिप्सा से आकृष्ट होने लगता है तब समाज का अहित प्रारम्भ हो जाता है। महाराज सुप्रिय का याज्ञवल्क्य को उचित सम्मान न देना और पणि शंख से प्रभावित रहना अन्ततः उचित परिणाम नहीं देता है। शत्रुघ्न प्रसाद ने दर्शाया है कि सत्ता का अहंकार, धर्मभीरूता एवं धार्मिक कट्टरता रखने वाला शासकवर्ग जन–हितैषी नहीं रह पाता है और ऐसे समय में उन्माद हावी रहता है जो अन्याय और अत्याचार को बढ़ाता है। एकाकी खण्डित दृष्टि भी देश के लिए संकट बनती है। महाराज गंधर्वसेन का अधिनायकवादी निरंकुश व्यवहार, महाराज गोविन्दपाल का बौद्ध धर्म के प्रति अन्ध आस्थावान होना, अपने क्षेत्र तक सीमित रहकर एक–दूसरे का सहयोग न करना, सिकन्दर लोदी, औरंगजेब, मुहम्मद–बिन–तुगलक, अकबर आदि मध्यकालीन तुर्क–मुगल शासकों की उन्मादी, धर्मान्ध शासक नीति ने जन–समाज को दयनीय स्थिति में पहुँचा दिया था। जनमानस हाहाकार कर उठा था। नारी को ऐसे में केवल भोग्या जीवन व्यतीत करने पर विवश होना पड़ता है। विद्युत् लेखा, देवल देवी, शहनाज बेगम, उदयपुरी बेगम आदि ऐसे नारी पात्र हैं जो उस काल की शासकीय नीति के कारण अनेक बार भोगी जाती है। उनका दयनीय जीवन शासन–नीति के प्रति विक्षोभ पैदा करता है। यही राजनीति के प्रति चेतना है। रामचन्द्र वर्मा ने लिखा है कि – ''वे नीतियाँ या वह पद्धति जिसके अनुसार किसी राज्य का प्रशासन किया जाता है या होता है, राजनीति कहलाती है।''[32] यह नीति या पद्धति ही शासक के मूल्यांकन का आधार तत्व है। इसी के प्रति चिंतन राजनैतिक चेतना कहलाता है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में दर्शाया गया है कि अखण्ड राष्ट्र के प्रति राष्ट्रीय भाव रखना, जन–हित सर्वोपरि समझना, राष्ट्र गौरव की रक्षा करना, धर्म और संस्कृति के प्रति आदर भाव रखना व उसका उन्नयन करने की चेष्टा करना उत्तम शासन नीति है। धर्म के प्रति रूढ़ धारणा रखकर अन्ध आस्थावान बन जाना, सत्ता मद में अहंकारी बनकर जनहित की उपेक्षा एवं अनाचार करना, धर्मान्ध राजनीति करना, धर्म के आधार पर जन–समाज को विभाजित कर उसके साथ अलग–अलग व्यवहार करना और तलवार की ताकत से किया गया अनाचारी शासन जन–समाज को पीसता है। ऐसी शासकीय नीतियाँ शोषणकारी नीतियाँ होती हैं। अनाचार पैदा करती हैं। राष्ट्र को कमजोर करती है। युवा शक्ति को विद्रोह करने पर विवश करती हैं। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में व्यक्त धर्मान्ध राजनीति के प्रति विक्षोभ, जनहितकारी, त्यागी और समर्पित शासकों के प्रति गौरवमयी भाव एवं युवा शक्ति का आह्वान इनकी राजनैतिक

चेतन दृष्टि है। सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति निष्ठा भाव व राष्ट्र के प्रति गौरवमयी भावों में भी इनकी राजनैतिक चिंतना दिखाई पड़ती है। रजनीकान्त लहरी ने अपने एक लेख में लिखा है कि – '' 'शिप्रा साक्षी है' इस यथार्थ को उद्घाटित करने वाला उपन्यास है कि जब भी व्यक्ति समष्टि पर हावी हुआ है, अराजकता फैली है। जिस युग में राजतन्त्र सत्तामद में चूर होकर पथ भूल गया है, व्यक्ति का अहं प्रमुखता पा गया है, तभी अधिनायकवाद का जन्म हुआ है और उसके पनपते ही राजतन्त्र निरंकुश होकर गणतन्त्र का गला दबाने लगता है। इसकी नृशंसता का शिकार महिला वर्ग बना और जनसामान्य इसकी बलिवेदी पर कराह उठा। यह इतिहास सत्य है कि जब भी ऐसी स्थिति आती है, क्रान्ति का जन्म होता है। जनाक्रोश जयनाद में विलीन हो जाता है।''[33] यह राजनैतिक चेतन स्वरूप शत्रुघ्न प्रसाद के सभी उपन्यासों में अभिव्यक्त हुआ है। सिकन्दर लोदी, औरंगजेब, मुहम्मद–बिन–तुगलक, अकबर आदि सभी शासक किसी न किसी रूप में प्रकारान्तर से गणतन्त्र का गला दबाकर अपनी निरंकुश प्रवृत्ति के परिचायक बनते ही हैं। तानसेन पर मेरा अधिकार है ऐसे विचार अकबर की इसी प्रवृत्ति का परिचय करवाते हैं। जन–समाज की पीड़ा को समझने और उसका साथ देने वाला शासक ही सच्चा शासक होता है। शत्रुघ्न प्रसाद की दृष्टि में ऐसा शासक ही जननायक कहलाने का अधिकारी होता है। ऐसी शासकीय नीति ही जनतन्त्र को जीवित रखती है। महारानी कोटा देवी, महाराणा प्रताप, कुमार विषमशील (विक्रमादित्य) आदि ऐसे ही जननायक शासक हैं। वैदिककालीन महाराज जनक भी जननायक शासक हैं जो जन–हित और सर्वसमावेशी विचारों के प्रणेता हैं। 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' के मन में उद्वेलन है। कुमार विषमशील भूखों को देखकर विचलित हो जाते हैं। महाराणा प्रताप मातृभूमि एवं जनप्रिय भावों की रक्षा में महलों को त्यागकर पथरीली चट्टानों को बिछौना बनाते हैं। अकाल की स्थिति में महलों के सुख त्यागकर कोटा देवी सामान्य जनता का दुःख दर्द बाँटने जाती है। 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' के उदाहरणों के माध्यम से सत्यपाल चुघ ने शत्रुघ्न प्रसाद की विचार दृष्टि को सामने रखते हुए लिखा है कि – ''राजा बनने के बाद शान्तिपूर्ण नवजीवन की रचना के लिए हेमचन्द्र यह सम्भावना व्यक्त करता है कि अब युद्धों से गाँव और खेत नहीं उजड़ेंगे और हमलावरों से बचने के लिए स्त्रियों को आत्महत्याएँ नहीं करनी पड़ेगी। न अपहरण होंगे। राजा हेमचन्द्र की मानवता कहती है कि राजा को गरीबों के लिए होना चाहिए। यह मैं नहीं भूलूँगा। अकाल और भुखमरी से बचाने के लिए खेत की मालगुजारी से किसानों को माफी देता है और सस्ते मूल्य में अन्न–वस्त्र की वितरण व्यवस्था का निर्देश देता है।''[34]

शत्रुघ्न प्रसाद ने कमजोर, दीन–हीन प्रजा के हित को ही राजनीतिक मूल्य की संज्ञा देकर उनकी रक्षा करना शासक वर्ग का कर्तव्य स्थिर किया है। साथ ही तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप वर्तमान भारत में व्याप्त अलगाववाद की अग्नि में जलते भारत के लिए 'अखण्ड

भारत' की चिंतना करवाई है। हेमचन्द्र प्रयास करता है कि शक्ति, अभिमान और तलवार के धनी राजपूत राजाओं को एक किया जा सके। 'सिद्धियों के खण्डहर' उपन्यास में कुमार महेन्द्र भी बंग महाराज लक्ष्मणसेन के पास सहयोग एवं एकत्व का भाव लेकर दूत भेजता है। विषमशील विक्रमादित्य भी लाट आदि प्रदेशों का सहयोग लेकर ही विक्रमादित्य कहलाता है। 'सरस्वती–सदानीरा' व 'शिप्रा साक्षी है' में अखण्ड भारत को एकता प्रदान करने के उपदेश ऋषि–आचार्यों से दिलवाए हैं। महाराणा प्रताप भी राजा भगवानदास से निवेदन करता है कि हम सब राजपूत राजा एक होकर मुगल शक्ति का सामना करें जिसका नेतृत्व आप करें। महाराणा प्रताप द्वारा यह कहलाना उपन्यासकार की अखण्ड भारत निर्मित करने की चिंतना का ही प्रतीक है। साथ ही प्राचीन नामों आदि के माध्यम से उपन्यासकार राष्ट्रीय गौरव का भाव जगाकर राजनैतिक चिंतन को मजबूती प्रदान करने का विचार प्रस्तुत करते हैं। रजनीकान्त लहरी ने अपने एक लेख में लिखा है कि – ''उपन्यासकार ने प्राचीन नामों के माध्यम से देश गौरव की भावना को जगाने का सार्थक प्रयास किया है और आज के भारत को ऐतिहासिक भारत से जोड़ दिया है। उपन्यास में इस भ्रान्ति के निवारण का प्रयत्न हुआ है कि ऐसे भू–भाग कितने ही विस्तृत क्यों न हो, स्वायत्त सम्पन्न इकाई मात्र होकर देश के अंग हैं। स्वयं में पृथक देश नहीं। आसेतु हिमालय यह देश एक है अखण्ड है। उसके सम्पन्न भू–खण्ड उससे जुड़ने वाले भू–भाग हैं। राष्ट्रीय एकता, अखण्डता और एकरूपता की दृष्टि से उपन्यासकार ने आचार्य भास्वर द्वारा भावात्मक एकता का संदेश दिया है।''[35] प्रत्येक शासक अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता के प्रति सचेत रहे। राष्ट्र की स्वतन्त्रता और प्रजा का हित सर्वोपरि है। यह भाव राष्ट्र के प्रति व मातृभूमि के प्रति समर्पण की भावना से ही जन्म लेते हैं। स्वातन्त्र्य चेतना भी राजनीति का परम मूल्य है। स्वाधीनता के गौरव बिना राज्य क्या और राजनीति क्या? महाराणा प्रताप, कुमार महेन्द्र, विषमशील, स्वामी विद्यारण्य आदि ऐसे ही पात्र हैं जिनकी सर्जना उपन्यासकार ने स्वाधीन–चेतना के लिए ही की है। महाराणा प्रताप कहते हैं कि – ''खंगार मेरे लिए नहीं, अपनी भूमिमाता के लिए प्राण हथेली पर लेकर चलता है। आप सभी इस धरती माँ का जयघोष करें।''[36]

स्वाधीन राष्ट्र भाव के लिए अपनी भाषा, संस्कृति, साहित्य, वेश–भूषा की रक्षा भी अनिवार्य है। रहीम के माध्यम से लेखक ने चिंतना व्यक्त करते हुए कहा है कि – ''मैंने सोचा है कि इस देश की भाषा में ही शायरी करूँ। शायरी तो देश और दिल की जुबान में ही होगी। अब्दुल रहीम ने सोचा कि अपना देश हिन्दुस्तान विदेशी जुबान का मुँहताज हो गया, पर अपना पढ़ना–लिखना तो देश की भाषा में ही होगा।''[37] टोडरमल राजकार्य फारसी में करने की सलाह देता है और रहीम कविता हिन्दुस्तानी में करने की संकल्पना करता है। रहीम के माध्यम से उपन्यासकार स्पष्ट करना चाहते हैं कि हमारा देश अपनी ही सोच के कारण भी विदेशियों का गुलाम रहा है। भाषा भी देश की राजनैतिक अस्मिता बचाती है, रहीम के माध्यम

से उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है। भाषा और साहित्य के माध्यम से राजनैतिक चेतना स्थापित की जा सकती है, उपन्यासकार ने इस तथ्य को भी रेखांकित किया है। दाराशिकोह में उपन्यासकार ने दर्शाया है कि धर्मान्ध, क्रूर, निर्दय राजनीति जनमानस का साँस घोट देती है। साहित्य के द्वारा ऐसे समय में चेतना जगायी जा सकती है। जगन्नाथ के माध्यम से कहलवाया है कि – ''क्योंकि तलवार की नोंक से राज्य चल रहा है। मेरे हाथ में कलम है। साहित्य का विनाश सबसे बड़ी हानि है।''[38] लेखक राष्ट्र रक्षा के लिए शक्ति सम्पन्न शासक की अपेक्षा रखते हैं। अहिंसा का अतिरेक या धर्मनिरपेक्षता देश रक्षा में अहितकर है। शास्त्र की रक्षा शस्त्र से ही संभव है। राष्ट्र की रक्षा शस्त्र से ही संभव है। 'सिद्धियों के खण्डहर' में इसी तथ्य को स्पष्ट किया गया है। महाराज गोविन्द पाल और उनके महामात्य बौद्ध सिद्धियों पर विश्वास रखते है। कुमार महेन्द्र शक्ति सम्पन्न बनने की दिशा में प्रयास करता है। बौद्ध साधकों पर विश्वास अन्ततः विनाश का परिणाम देता है। जगदीश तोमर ने इस तथ्य को रेखांकित करते हुए लिखा है कि – ''डॉ शत्रुघ्न प्रसाद ने इस उपन्यास के माध्यम से इस कठोर सत्य को बड़ी दृढ़ता से स्थापित किया है कि यदि कोई राज्य बहुत शान्तिप्रिय, उदार, धर्मसहिष्णु और इन आदर्शों के व्यवहार में अतिरेक भी है तो उसका अस्तित्व असुरक्षित है। और यदि वह अपनी सीमाओं की रक्षार्थ वामाचारी तंत्र–मंत्र पर भरोसा करता है तब तो उसका विनाश निश्चित है।''[39] भारत का मध्यकाल मजहबी सियासत से परिवर्तित होता रहा है। धर्मान्तरण और इससे उपजा राष्ट्रीय संकट देश को हानि पहुँचाता रहा है। आज का आतंकवाद और जिहाद नामक खतरा उसी धार्मिक उन्मादी सियासत की देन है। शत्रुघ्न प्रसाद अपने उपन्यासों में इस यथार्थ को दर्शाकर चेतन भाव जगाने की चेष्टा करते हैं। इस यथार्थ को व्यक्त करते हुए इस तथ्य को भी स्वीकार किया है कि विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय, जाति आदि का भेद भी इस उन्माद के पनपने में सहायक रहा है। अर्थात् इसके कारण इसे पनपने का अवसर मिला है। जातिवाद, सम्प्रदायवाद, धर्मवाद, प्रदेशवाद सभी विखण्डनकारी तत्व हैं जो कहीं न कहीं व किसी न किसी तरह राजनैतिक एकता में बाधक हैं। अपने सभी उपन्यासों में उपन्यासकार ने राजनैतिक एकता का भाव स्थापित करने का प्रयास किया है। डॉ सदानन्द गुप्त ने लिखा है कि – ''राष्ट्रीय अस्मिता के सजग प्रहरी के रूप में सक्रिय शत्रुघ्न प्रसाद अपनी रचनाधर्मिता के माध्यम से राष्ट्रीय–सांस्कृतिक स्वत्व को जागृत करने वाले कथाकार के रूप में विख्यात हैं। सिद्धियों के खण्डहर, शिप्रा साक्षी है, हेमचन्द्र–विक्रमादित्य, सुनो भाई साधो, तुंगभद्रा पर सूर्योदय, कश्मीर की बेटी, शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश, सरस्वती–सदानीरा जैसे ऐतिहासिक सांस्कृतिक उपन्यासों के माध्यम से शत्रुघ्न प्रसाद ने राष्ट्रीय–सामाजिक एकता के स्वर को मुखरित किया है।''[40] उपन्यासकार ने राजनैतिक एकता एवं राष्ट्रीय जागरण की दिशा में युवा–चेतना को प्रमुखता दी है। गजमुख एवं कालतरूणों का संगठन हो चाहे लक्ष्मीचन्द जैसे युवा ज़मीदारों का जोशीला आग्रह। याज्ञवल्क्य, कुमार महेन्द्र, विषमशील विक्रमादित्य आदि भी प्रकारान्तर में

युवा चेतना के ही प्रतीक चिह्न हैं। युवा ही राष्ट्र व समाज की एकता व समन्वय की दिशा में आगे बढ़ते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद ने समाज एवं संस्कृति के समन्वय को भी राष्ट्रीय एकता का ही माध्यम माना है। समाज की एकता के बिना राजनैतिक एकता सम्भव नहीं है। वैदिक–व्रात्य समन्वय व हिन्दू–यवन समन्वय भी इसी दिशा में किए गए प्रयास हैं। लेखक की सृजनकला अमृतमयी लेखनी के माध्मय से राजनैतिक चेतना की प्रतिष्ठा में अग्रसर है। डॉ सुरेश गौतम ने लिखा है कि – ''साहित्य की प्रतिरोधक शक्ति रचनाकार के भीतर ऐसी रचना रचती है कि सृजन का मूल्य दर्शन कालदृष्टि बनकर सत्ता की भस्मासुरी ताकत को नेस्तनाबूद कर देता है। उपन्यास का रचनाधर्म शिव डमरू की तरह बजने लगता है। उसमें शिवलास्य भी है और ताण्डव भी। बाँसुरी और शंख एक साथ। शिव–कृष्ण की इस जुगलबन्दी में रचनाकार के कल्पमेघ से जो माँगों वही मिलता है। शब्द–सूर्य में निहित प्रचण्ड अग्नि और कलम में समाई गुणयुक्त अर्थ गर्भित वााणी''[41]

साहित्यकार शत्रुघ्न प्रसाद की यह शंख और बाँसुरी की ध्वनि राजनैतिक एकता की ध्वनि है। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज भेद मिटाकर स्थापित की गई एकता, राष्ट्रीय गौरव भाव, धर्मान्ध राजनीति का विरोध, धर्मभीरू व अन्ध आस्था की शासन नीति का खण्डन, अखण्ड भारत का संदेश, युवा जागृति, अहंकारी निरंकुश शासन नीति का समर्थन करते हुए राजनैतिक चेतना का भाव प्रसारित करने का प्रबल प्रयास किया है। स्पष्ट संकेत दिए हैं कि सत्तासुख के मद में डूबा शासक वर्ग अपने अहं की तुष्टि में जनतांत्रिक मूल्यों की अवहेलना करता है। निजी स्वार्थ और महत्वाकांक्षा में जनसामान्य की भावनाओं से खिलवाड़ करता है। विलासी जीवन अपनाकर सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों का हनन करता है। विरोध स्वरूप युवा शक्ति व जनचेतना जागृत होती है। जो राजमद को चूर–चूर करती है और जनतांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करती है। साम्प्रदायिक मतभेद समाज को रूग्ण बनाते हैं। रजनीकान्त लहरी ने लिखा है कि – उपन्यासकार ने अतीत के चित्रण में यह दिखाया है कि वर्णगत–जतिगत विषमता, साम्प्रदायिक द्वेष, छोटे–छोटे राज्यों एवं महाजनपदों में निहित स्वार्थ को समाप्त करना ही तप कहलाता है। प्राचीन जीवन के पहलू को उजागर करके उपन्यासकार ने आधुनिक युग को एक सार्थक संदेश दिया है। आगे जाकर कहता है कि साधना के साथ साध्य की पवित्रता भी अपेक्षित है। मातृभूमि के प्रति निष्ठा एक श्रेष्ठ मनुष्य ही रख सकता है। राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण से ही हम सहिष्णुता एवं उदारता का परिचय दे सकते हैं। वंशानुगत अभिमान के स्थान पर देश और सांस्कृतिक विरासत पर अभिमान करने की चर्चा उठाई गई जो आधुनिक जीवन की आवश्यक चर्चा बन कर उभरी है। शस्त्र से सुरक्षित राष्ट्र में ही शास्त्र विज्ञान का अनुशीलन संभव है। युवा शक्ति के अभ्युदय की कल्पना आधुनिक जीवन की प्रेरक है। युवा शक्ति के अभ्युदय में ही राष्ट्र रक्षा की संभावनाएँ निहित हैं। विदेशी राज्य आतंक का पर्याय होता है। आतंक दूर करने के लिए संकल्प और समर्पण अपेक्षित है।

युवा शक्ति का अभ्युदय आशा किरण के समान है।''[42] शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में राजनैतिक चेतना की सफल एवं सार्थक चेष्टा हुई है। राष्ट्रवाद की प्रतिष्ठा हुई है।

5.3 सामाजिक युगीन चेतना–

समाज और इक प्रत्यय के योग से बना शब्द सामाजिक समाज का, समाज के लिए, समाज जैसी विचारधारा व व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है। वृहद हिन्दी कोश[43] में समाज शब्द का अर्थ मिलना, एकत्र होना, समूह, संघ, दल, सभा या समिति बताया गया है। डॉ राजेश रानी ने उद्धृत करते हुए लिखा है कि – ''समाज शब्द सम उपसर्ग और अज् धातु में धम् प्रत्यय लगने से बनता है। सम् का अर्थ होता है सम्यक रूप से, अज् का अर्थ होता है जानना। साधारण अर्थ मनुष्य का समूह। किसी एक ही उद्देश्य को लेकर किसी निश्चित दिशा में जाने वाले मानव समूह को समाज कहा जाता है।''[44] रामचन्द्र वर्मा ने लिखा है कि – ''वह संस्था जो बहुत से लोगों ने साथ मिलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु स्थापित की है, समाज कहलाता है।''[45] डॉ सरोज सिंह समाज की व्याख्या करते हुए लिखती हैं कि – ''समाज वस्तुतः एक अमूर्त धारणा है जिसकी रचना एक से अधिक व्यक्ति मिलकर करते हैं तथा उनके बीच एक पारस्परिक सम्बन्ध रहता है।''[46] समाज एक मानव समूह है जो निश्चित नियमों, रीतियों एवं प्रथाओं के साथ जीवन व्यवस्था बनाए रखता है। सरोज सिंह ने पैकाइवर एवं पेज को उल्लेखित करते हुए लिखा है कि – ''समाज रीतियों एवं कार्यप्रणाली की, अधिकार एवं पारस्परिक सहायता की, अनेक समूहों तथा विभागों की, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों तथा स्वतन्त्रताओं की एक व्यवस्था है। इस सदैव परिवर्तनशील जटिल व्यवस्था को हम समाज कहते हैं।''[47] समाज एक व्यवस्था के अनुसार चलता है। जोन्स को उद्धृत करते हुए डॉ सरोज सिंह ने लिखा है कि ''सामाजिक व्यवस्था वह स्थिति है जिसमें समाज की विभिन्न क्रियाशील इकाईयाँ आपस में तथा समग्र समाज के साथ एक अर्थपूर्ण ढ़ंग से सम्बन्धित होती है।''[48] श्यामसुन्दर दास ने हिन्दी शब्दसागर में लिखा है कि – ''एक ही स्थान पर रहने वाले तथा एक ही व्यवसाय करने वाले वे लोग जो परस्पर एक अलग समूह मानते है समाज कहलाता है।''[49] सत्यकेतु विद्यालंकार ने इसे अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है कि – ''समाज एक संगठन है। यह पारस्परिक सम्बन्धों का ऐसा समुच्चय है, जिसके कारण उसके अन्तर्गत सब व्यक्ति एक–दूसरे से संबद्ध रहते हैं।''[50] समाज व्यवस्थित रीति से चलने वाला समूह है। ये रीतियाँ जब रूढ़ होकर समाज हित में नहीं रह जाती है तब परिवर्तन की अनिवार्यता महसूस की जाती है। इस परिवर्तन या समाज परिष्कार का भाव सामाजिक चेतना कहलाता है। अयोध्या सिंह उपाध्याय रचित 'साहित्य एवं समाज' को उद्धृत करते हुए नरेन्द्र कोहली ने लिखा है कि – ''साहित्य समाज का जीवन है। यह उसके उत्थान–पतन का साधन है। साहित्य वह आलोक है जो अन्धकार रहित, जाति मुख को उज्ज्वल और समाज के प्रभावित नेत्रों को सप्रभ रखता है।''[51] समाज के निराशामयी नेत्रों में

चमक लाने का भाव या विचार चेतना है। यह साहित्य के माध्यम से लायी जा सकती है। साहित्य समाज परिवर्तन एवं परिष्कार का माध्यम है। सामाजिक चेतना को स्पष्ट करते हुए रत्नाकर पाण्डेय ने लिखा है कि – ''मानव समाज कई बार विभिन्न धर्मों एवं भाषाओं में विभाजित होने के कारण पतन की अवस्था में आ जाता है, तब ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में जो प्रतिभा समाज का मार्गदर्शन करती है वही सामाजिक चेतना का वाहक बनती है। ये उसे मानव समाज की ज्ञानात्मक वृत्ति मानते हैं।[52] यह चेतना किसी व्यक्ति या विचार के माध्यम से आती है परन्तु अचानक या अनायास ही ऐसा नहीं होता है। निरन्तर परिष्करण की चेष्टा है। बाबा नागार्जुन ने लिखा है कि – ''सामाजिक चेतना विछिन्न न होकर बहते हुए जल की भाँति लगातार विकसित होती चली जाती है तथा भिन्न–भिन्न व्यक्तियों से अपना सम्पर्क बनाती हुई अपने पथ पर बढ़ती जाती है। मानव समाज की सामाजिक समस्याओं, राजनीतिक उठा–पटक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक असमानताओं से सम्बन्धित नागरिक जीवन को समतामूलक विकास की ओर अग्रसर भावना ही सामाजिक चेतना कहलाती है।''[53] समाज विवेचन के कौनसे कारक तत्व हैं, इसका विश्लेषण करते हुए डॉ सरोज सिंह ने लिखा है कि उपन्यासों के समाज में नारी की स्थिति, वर्ण–व्यवस्था एवं जातिभेद आदि का विश्लेषण किया जाता है।''[54] अर्थात् सामाजिक चेतना के अध्ययन के लिए व्यक्ति, स्त्री–पुरूष सम्बन्ध, परिवार, जाति, परम्पराएँ, धन की स्थिति आदि आधारभूत तत्वों का आधार लिया जा सकता है। विवेच्य अध्याय का विवेचन इन्हीं आधारभूत तत्वों के आधार पर किया जाएगा।

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में सामाजिक चेतना –

शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने उपन्यासों में अतीतकालीन समाज का यथार्थ चित्रण किया है। इन उपन्यासों में यथार्थ चित्रण से अपनी सामाजिक चेतना भी देखने को मिलती है तथा उपन्यासकार द्वारा व्यक्त उनकी चेतना भी दिखाई पड़ती है। कहीं–कहीं पात्रों के जीवन प्रसंगों या उनके कथनों के माध्यम से इस सामाजिक चिंतना के दर्शन होते हैं। भारतीय समाज वैदिक काल से ही विभाजक भाव लेकर चला है, इस तथ्य का सच्चा लेखा इनके उपन्यासों में मिलता है। साथ ही भारतीय समाज के संस्कारिक स्वरूप के भी सच्चे दर्शन होते है। 'सरस्वती–सदानीरा' में वैदिककालीन समाज का पूर्ण परिचय मिलता है। वैदिककालीन समाज सरस्वती नदी से सदानीरा नदी तक अनेक वर्गों, वर्णों, रूपों में मिलता है। सरस्वती तट की सामाजिक पद्धति ऋषियों द्वारा संचालित है जहाँ इन्द्र, सूर्य, वरूण, अग्नि, रूद्र की पूजा होती है। सदानीरा तट का व्रात्य समुदाय शिव की आराधना करता है। तंत्र–मंत्र द्वारा संचालित है। नाग, किन्नर, किरात, आदि के समूह भिन्न–भिन्न प्रथाओं के साथ जीवन व्यतीत करते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद ने सभी वर्गों एवं समूहों का दिग्दर्शन करवाया है। समाज यहाँ भी वैदिक, व्रात्य, नाग, किन्नर में बँटा हुआ है। परिवार यहाँ आदर्श व मर्यादा द्वारा संचालित है। विवाह शुभ मांगलिक अवसर माना जाता है। संभवतः एक ही पत्नी से विवाह मान्य है। परन्तु

अधिक पत्नियों से भी हो जाता है। नारी जीवन के जो प्रश्न आज हमारे सामने हैं, उन प्रश्नों का सदानीरा में भी सामना हुआ है। स्त्री–पुरूष के आत्मीय सम्बन्ध को परिवार के सुख का आधार माना गया है। 'शिप्रा साक्षी है' ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के सामाजिक जीवन को साक्षात करता है। यहाँ भी परिवार का महत्व तो स्थिर है परन्तु नारी भोग्या के रूप में उपयोग ली जाने लगती है। नारी जीवन की त्रासद अवस्था प्रारम्भ हो जाती है। सुनो भाई साधो, हेमचन्द्र विक्रमादित्य, तुंगभद्रा पर सूर्योदय, सिद्धियों के खण्डहर, कश्मीर की बेटी, अरावली का मुक्त शिखर व शहजादा दाराशिकोह – दहशत का दंश में मध्यकालीन भारतीय समाज का वास्तविक रूप मूर्तिमंत हुआ है।

इन उपन्यासों में वर्णित समाज वर्गों, वर्णों, सम्प्रदायों, जातियों में बँटा हुआ है। ऊँच–नीच के भावों से पूर्णतया ग्रस्त समाज अनेक रूढ़ मान्यताओं को ढ़ो रहा है। दूसरी तरफ राज–परिवार एवं सामान्य परिवार की विभाजक रेखा भी समाज में गहरा भेद रखती है। नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। नारी शोषण का अमानवीय रूप देखने को मिलता है। इन उपन्यासों में एक तरफ सुन्दर दाम्पत्य जीवन के चित्र दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी तरफ सुख–सुविधा सम्पन्न परिवारों के चित्र हैं जिनमें स्वार्थ लिप्सा व अधिकार लिप्सा के कुत्सित रंग भरे हुए हैं।

नव धर्मान्तरित समाज की पीड़ा अलग से आकार ले रही है। वर्ण व्यवस्था की भेद नीति और इस्लाम की जबरदस्ती से भारत का एक वर्ग धर्म बदल लेता है। वह अपनी जड़ों से कटता जा रहा है और नई जड़ें ठीक से जमा नहीं पाता है। कबीरदास का परिवार भी इसी पीड़ा को भोग रहा है। 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' में नव धर्मान्तरित जमाल अहमद कहता है कि मैं तो जमाल अहमद बन गया हूँ। पर खून तो वही है। खून और खून के सम्बन्ध को तोड़ा तो नहीं जा सकता। इसे तोड़ना मनुष्यता के विरूद्ध होगा। देवीदीन से खुदादीन बने काका के द्वारा कहलाए शब्द भी इसी भाव का संकेत करते हैं – ''देवीदीन से खुदादीन बन गया हूँ। उनके उन्माद और जुनून को नहीं अपनाया। मैं अरबी या तुर्की नहीं हूँ। मैं इसी मिट्टी पानी का हूँ। इस मिट्टी पानी का हुक्म है कि सबको अपने मन के मुताबिक पूजा–पाठ का पूरा हक हो। किसी को तकलीफ न हो। बेटी–बहू को माँ–बहन मानो और मेहनत की रोटी खाओ, यह दीन–धरम है। मैंने भगवान की इबादत का एक खास ढंग अपनाया है। अपने माटी–पानी के स्वभाव को नहीं बदला है।''[55] शत्रुघ्न प्रसाद ने इसी खुदादीन के माध्यम से यह चिंतना व्यक्त की है कि चाहे दबाव और परिस्थितिवश एक वर्ग मुसलमान बनने पर विवश हो गया पर उसे इस मिट्टी से जुड़े रहना चाहिए। कबीरदास का परिवार भी इसी तरह धर्मान्तरित समाज है। कबीर अपने स्वभाव से ना पंडितों की सुनते हैं न मुल्लाओं की। हेमचन्द्र–विक्रमादित्य में उपन्यासकार ने जमाल अहमद के माध्यम से चेतना का भाव प्रदान किया है – ''आप सही ढंग से सोच रहे हैं। सभी हिन्दी मुसलमानों को इसी ढंग से सोचना

चाहिए। लोग चाहे तो कबीर की वाणी से प्रकाश मिल सकता है। राम–रहीम और कृष्ण–करीम का पथ दिखाई पड़ सकता है।"[56]

भारतीय समाज वर्ण–भेद, सम्प्रदाय भेद, वर्ग भेद से ग्रस्त रहा है। याज्ञवल्क्य के माध्यम से उपन्यासकार ने वैदिक–व्रात्य समन्वय करवाया है। वैदिक ऋषियों की परम्परा को नाग, कोल, किरात, व्रात्य समुदाय के साथ एकाकार करने का प्रयास किया है। नागकन्या व सामश्रवा का विवाह तथा बुझावन–पाटली का विवाह दो संस्कृतियों एवं दो समाजों का मिलन ही है। याज्ञवल्क्य ने धन्यवाद देते हुए कहा – "हम हर बिन्दु पर मिलन, संगम और समन्वय चाहते हैं। जिससे इस विशाल देश में एक वृहद् समाज और सुन्दर संस्कृति की रचना आगे बढ़े। आज इस संगम पर व्रात्य–वैदिक मिलन हो रहा है। प्रयोग प्रतीक रूप में कौशल के कृषक बुझावन और गृहपति की कन्या पाटली का विवाह संस्कार होगा। ऋषि याज्ञवल्क्य के विचार–विमर्श से विवाह विधि में थोड़ा परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्तन संगम समन्वय का रूप है। दक्षिण में ऋषि अगस्त्य उधर के जन समुदायों से मिलने गए हैं। उन्हें समझाने गए हैं। दक्षिण में भी समन्वय के फूल खिलने लगे हैं। पूर्व में इस विवाह महोत्सव द्वारा वृहत समाज की संरचना का शुभारंभ हुआ है। ऋषि और मुनि इस अनुष्ठान को आगे बढ़ायेंगे।"[57] याज्ञवल्क्य के माध्यम से उपन्यासकार ने सामाजिक समन्वय की चेतना प्रदान की है। मध्यकालीन संतों ने भक्ति के माध्यम से समाज को एकरूपता प्रदान करने का काम किया है। 'सुनो भाई साधो' में कबीर, तुंगभद्रा पर सूर्योदय में स्वामी विद्यारण्य, हेमचन्द्र–विक्रमादित्य में संत पूरणदास, गोस्वामी बल्लभ एवं हित हरिवंश, कश्मीर की बेटी में आनन्द भिक्षु भट्ट, अरावली का मुक्त शिखर में स्वयं महाराणा प्रताप सामाजिक एकता का सचेष्ट प्रयास करते हैं। उपन्यासकार ने इन पात्रों के माध्यम से सामाजिक विभेद मिटाकर एकत्व की चेतना प्रदान की गई है। हरिनारायण से बना हमीद और गजाला के विचार द्वारा भी सामाजिक वर्ग भेद पर करारा व्यंग्य किया है। गजाला सोचती है – "कितना अच्छा होता की पंडित हरिनारायण ही रहते और वह गजाला। दोनों के धरम की अच्छी बातों का मेल होता। ऊपर एक ही आसमान, नीचे एक ही जमीन और एक ही खुदा फिर आदमी–आदमी में इतना फर्क क्यों? हिन्दू तो आसमान से जमीन तक के पेड़–पौधों, दरिया–पहाड़, सूरज–चाँद सबमें देवता की झलक पाते हैं। सबका अदब करते हैं। सबमें उसी एक का दीदार करते हैं। वे स्त्री मात्र का आदर करते हैं, पर अपने घर में तुर्क स्त्री को स्वीकार नहीं करेंगे। अजीबोगरीब बात है। इन्सान के रूप में सबको इज्जत देना और फिर तुर्क होने से घर में जगह नहीं देना।"[58]

भारतीय उदार समाज भी धर्म के आधार पर अपने ही सिद्धान्तों से कैसे किनारा कर लेता है, इसके माध्यम से समाज में संचेतना का प्रयास किया गया है। मरप्पा और श्रीदेवी के विवाह प्रसंग के माध्यम से समाज को एकत्व प्रदान करने का सार्थक प्रयास किया गया है। स्वामी विद्यारण्य का कथन हैं कि – "मैं समाज को समझा दूँगा। यदि हम श्रीदेवी को नया जीवन

नहीं दे सके तो धर्म, दर्शन, साहित्य, कला और शिक्षा का क्या मूल्य रह जाएगा? क्या हमारी समाज चेतना को नयी परिस्थितियों से टकराकर विजय पाने की महत्त्वाकांक्षा नहीं है। मरप्पा सोच रहा था – स्वामी विद्यारण्य समाज में अद्वैत भाव देखना चाहते हैं। सबको अद्वैत समता भाव से जोड़कर जागृत करना चाहते हैं।''[59] 'कश्मीर की बेटी' में आनन्द भिक्षु भट्ट द्वारा चाँदनी और सर्वदेव का विवाह, नाथ योगी द्वारा 'अरावली का मुक्त शिखर' में किशनटिकोरी का विवाह, सरस्वती–सदानीरा में नागकन्या व सामश्रवा का विवाह, यवन–कन्या और विषमशील का विवाह ऐसे ही प्रयास हैं जिनके माध्यम से उपन्यासकार समाज परिष्करण की रचना करते हैं। समाज में नई परम्परा का विधान रचते हैं। सामाजिक संचेतना के अभीष्ट प्रयास हैं।

नारी समाज का अभिन्न अंग है। स्त्री–पुरूष का मेल ही समाज को उन्नयन प्रदान करता है। स्त्री का सम्मान एवं आदर समाज को उन्नत बनाता है। विडम्बना है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, तत्र रमन्ते देवता' का मूलमंत्र देने वाले भारत में नारी की दशा सोचनीय रही है। वैदिक काल में नारी का सम्मान था परन्तु कालान्तर में पुरूष प्रधान समाज ने नारी को अनेक बंधनों में जकड़ दिया। मध्यकालीन समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी। नारी केवल भोग्यवस्तु की तरह मानी जाने लगी। नारी की सोचनीय दशा का यथार्थ चित्रण शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में हुआ है। मैत्रेय द्वारा उठाया गया प्रश्न वैदिककाल के लिए ही नहीं आज के लिए भी प्रासंगिक है। यह प्रश्न नारी की हमारे समाज में स्थिति और स्थान को भी निर्धारित करता है और चिंतन की चेतना भी प्रदान करता है। मैत्रेयी कहती है कि – क्या तरूणी कन्या मात्र सुन्दर शरीर है? क्या वह केवल कामिनी है? क्या पुरूष स्त्री को काममय शरीर ही मानता है? दर्शनीय और स्पर्शनीय मानता है। विद्या–बुद्धि पाने के उपरांत भी शरीर की प्रधानता शरीर की चेतना से मुक्ति नहीं होती।''[60] यह प्रश्न आज भी प्रत्यक्ष है। स्त्री के प्रति यह चेतन भाव प्रदान करते हुए उपन्यासकार ने स्त्री को रमणीय एवं सम्माननीय स्थान प्रदान करने की सफल चेष्टा की है। कहा है कि – ''प्रकृति की सुन्दरता, कोमलता, सरसता प्रिया में ही दिख पड़ती है। स्त्री प्रकृति की रम्य रचना है।''[61] स्त्री के रमणीय रूप की प्रतिष्ठा की है। कालान्तर में स्त्री की दशा सोचनीय हुई। 'शिप्रा साक्षी है' की विद्युत्लेखा, 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' की देवलदेवी, 'सुनो भाई साधो' की शहनाज बेगम और 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' की उदयपुरी बेगम आदि की पीड़ा मर्मबेधक चित्कार प्रदान करती है। मुगल एवं तुर्क शासन में तो नारी केवल भोग्य वस्तु की तरह प्रयुक्त हुई है। नारी की विवशता, पीड़ा और शोषण का मर्मान्तक यथार्थ दिखाकर उपन्यासकार ने मुक्ति की चेतना स्पष्ट की है। देवल देवी कहती है – ''बेटी! इन्होंने औरत को मूक पशु या बेजान खिलौना समझ रखा है। कब तक सहा जाए। तुम्हें अपने भीतर शक्ति का अहसास होना चाहिए। तब सम्मान की जिन्दगी मिल सकेगी।''[62] दूसरी तरफ उपन्यासकार ने ऐसे पात्रों की भी सर्जना

की है जिसमें स्त्री–पुरूष को अनुरागमयी एवं एक–दूसरे का सम्पूरक दर्शाया है। स्त्री के प्रति विशिष्ट चेतन भाव उपन्यासकार की महत् उपलब्धि है। स्त्री को शक्तिस्वरूपा प्रतिष्ठा प्रदान करना भी उपन्यासकार का अभीष्ट है। आचार्य सायण ने कहा – सात्वती! भारतीय अवधारणा में नारी शक्ति है। हमने शक्ति को नारी रूप में देखा है। वह सृजन शक्ति है। वह प्रकृति है। उसे मात्र कामिनी समझकर उसपर पशुवत् अधिकार करने को बड़ा अपराध माना है। शुंभ–निशुंभ को दण्डित होना पड़ा है।''63 साथ ही नारी को मातृशक्ति मानते हुए जन्मोत्सव को भी मातृत्व महोत्सव मानने का विचार लेखक की अनुपम देन है – नारी जगत को। नारी विडम्बना का एक रूप मुगलकाल में राजपूत राजकुमारियों और मुगल शहजादियों के रूप में भी व्यक्त हुआ है। राजपूत राजकुमारियों को डोले में बैठाकर मुगल बादशाह के हरम में भेज दिया जाता है। मानी वह बेगम या महारानी जाती है पर है राजनीतिक समझौता। नारी राजनैतिक समझौते के अधीन हो जाती है। दूसरी तरफ मुगल शहजादियों की पीड़ा है कि उनकी शादी नहीं की जाती है। दोनों स्थितियाँ राजनीति प्रेरित हैं। औरत को रातनीति का खिलौना बना दिया जाता है। जोधाबाई, जहाँआरा बेगम, रोशनआरा बेगम, जेब्बुनिशाँ एवं आलमआरा की पीड़ा से इस तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है।

सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक पाखण्डों में पिसती नारी के प्रति भी शत्रुघ्न प्रसाद ने सहानुभूति दर्शायी है तथा मुक्ति का संदेश दिया है। वामाचारी साधकों द्वारा भोगी जाती नारी की व्यथा 'सिद्धियों के खण्डहर' में व्यक्त हुई है। 'सुवर्णा' के माध्यम से चेतना जागृत की गई है। बाल विवाह, विधवा विवाह न होना, देवदासी प्रथा, प्रेम विवाह या अन्तर्जातीय विवाह का निषेध आदि भी नारी जीवन को विडम्बना प्रदान करने वाली रूढ़ियाँ रही हैं जिनका चिंतन शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में देखने को मिलता है। सुवर्णा और सुभद्रा ऐसी ही विधवा नारियाँ हैं जिनको वामाचारी साधक साधना के नाम पर भोग्या बनाना चाहते हैं। समाज में विधवा की स्थिति अत्यन्त सोचनीय मानी गई है। सुभद्रा और सुमन्त के माध्यम से उपन्यासकार ने चिंतना व्यक्त की है। सुभद्रा सोचती है – घर में भी मंगल अनुष्ठान के समय उसकी उपेक्षा की जाती है। क्योंकि वह विधवा है। उसका मुख अमंगलमय है। समाज की इस धारणा से उसका हृदय हाहाकार कर उठता है। सुमन्त सोचता है – विधवा युवती को अमंगल मानना और उसके मन का दमन वित्रित है। सहजयान में युवती का प्रवेश क्या उचित है?''[64] नारी जीवन की विडम्बनाओं का शत्रुघ्न प्रसाद ने मार्मिक वाणी देकर चेतनशील भाव प्रदान किया है। दक्षिण भारत की देवदासी प्रथा भी नारी जीवन का काला अध्याय है। इन्दु और षण्मुखम के दर्दनाक अंत और उनकी पीड़ा के माध्यम से नारी जीवन की इस प्रथा के प्रति भी आक्रोश व्यक्त किया है। शत्रुघ्न प्रसाद ने नारी के प्रति रूढ़ परम्पराओं से मुक्त होकर नारी को शक्ति और सम्मान स्वरूपा पद प्रदान कराने की सफल चेष्टा की है। प्रेरणा प्रदान की है।

प्रेम, विवाह एवं दाम्पत्य जीवन भी समाज की धुरी है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में सात्विक प्रेम व दाम्पत्य के विचार व्यक्त किए गए है। हमीद–गजाला, तानसेन–महरूख, मणिप्रभा–सामश्रवा, चन्दा–गजेन्द्र सिंह, किशन–टिकोरी, चाँदनी–सर्वदेव आदि युग्मकों के माध्यम से प्रेम के उदात्त स्वरूप एवं अन्तर्जातीय प्रेम–विवाह को अभिव्यक्त किया गया है। प्रेम को ईश्वरीय प्रार्थना के रूप में स्थापित किया गया है। षण्मुखम और देवदासी इन्दु का प्रेम मर्मांतक परिणाम को पहुँचता है। सुमन्त और सुभद्रा तथा सुवर्णा–महेन्द्र का मौन अनुराग प्रेम की उदात्त चेतना की प्रतिष्ठा है। भवनाथ और आलमआरा का विवश प्रेम भी पीड़ा का आभास देता है। शत्रुघ्न प्रसाद ने प्रेम के विभिन्न रूप प्रदान किए हैं। पर उदात्तता, निर्मलता, पवित्रता ही उनका ध्येय है। तानसेन महरूख से कहते हैं कि – ''चन्द्रमुखी संगीत दिल की आवाज है। आत्मा का स्वर है। परमात्मा की आराधना है। प्रेम आत्मा की ही लौकिक आकांक्षा है।''[65] दाम्पत्य जीवन की अनेक सुन्दर व्याख्याएँ शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में देखी जा सकती है, कबीर–लोई, सायणाचार्य–सात्वती, माधवाचार्य–वैतीहोत्री, याज्ञवल्क्य–कात्यायनी, आदि युग्मकों के माध्यम से अद्वैत दाम्पत्य भावना की प्रतिष्ठा की गई है। महाराणा प्रताप एवं उनकी महारानियों के मध्य भी ऐसा ही अद्वैत दाम्पत्य दिखाया गया है। अर्द्धनारीश्वर की प्रतिष्ठा ही लेखक का अभीष्ट है। याज्ञवल्क्य ने कहा – पुरूष के साथ पुरूषार्थ को पा सके, इसलिए स्त्री–पुरूष के साथ हो जाती है। स्त्री–पुरूष दोनों एक–दूसरे के सहयोग से जीवन के अर्थ को पा जाते है, कात्यायनी।''[66] कबीर और लोई का दाम्पत्य मुक्त चेतना का संदेश देता है। लोई कहती है – ''मैं बाँधना नहीं चाहती। मैं बँधकर मुक्त होना चाहती हूँ। यह बंधन ही मुक्ति, मेरे लिए दूसरा मार्ग नहीं है।''[67] प्रताप और चंपा बाई का वार्तालाप भी स्त्री–पुरूष दाम्पत्य का अद्वैत भाव प्रतिष्ठित कर देता है। प्रताप कहते हैं कि – ''भगवान शिव ने अपने अर्द्धनारीश्वर रूप में इसी सत्य को प्रकट किया है कि स्त्री–पुरूष मिलकर एक हैं, पूर्ण हैं। आत्म रूप में एक हैं। स्वयं स्त्री सृष्टि की महत्वपूर्ण इकाई है।''[68] उपन्यासकार ने निर्मल, पवित्र, अद्वैत भावी उदात्त दाम्पत्य जीवन की चेतना व्यक्त कर आधुनिक पाश्चात्य दाम्पत्य पर चोट भी की है और सुखद दाम्पत्य की चेतना भी प्रदान की है।

सामाजिक रूढ़ियाँ एवं विषमता से ग्रस्त समाज को भी शत्रुघ्न प्रसाद ने चेतना प्रदान करने की पूर्ण चेष्टा की है। श्राद्धकर्म आदि का पाखण्ड समाज के लिए मुख्यतः कमजोर वर्ग के लिए गहरा घाव है। जाति–पाँति में ऊँच–नीच का भाव समाज को अवनत करता है। इसके प्रति आक्रोश एवं चेतन भाव प्रदान किया है। कबीर कहते हैं – ''भैरों करज लेकर श्राद्ध कर रहा है। यह मुझे पसंद नहीं। दिखावा क्यों? करज के धन से आतमा राम को शांति मिलेगी? आगे से करज का फेरा न हो। धरम–करम का दिखावा न हो। हर आदमी जीवन में खुदा का दर्शन करें। मुल्ला साहब राम–रहीम का भेद दूर करें। ब्राह्मण ऊँच–नीच की बात छोड़े। एक नये संसार, नयी दुनिया बनने दें।''[69] महाराणा प्रताप भी पुरोहित जी से समाज की

विषमता दूर कर समाज में समन्वय की भावना पैदा करने की बात कहते हैं। कहा है – ''ये अस्पृश्य क्यों हैं? कहीं विधान है क्या? हम सभी मनुष्य हैं। हम सभी मेवाड़ी है। हम सभी हिन्दू हैं। इसीलिए संत नामदेव, संत कबीरदास, संत रैदास, संत दादूदयाल ऐसी विषय व्यवस्था के प्रति असहमति व्यक्त करते रहे हैं। जब सभी सुखी होंगे और दीनता–हीनता से छुटकारा पायेंगे तभी सारा देश सुखी होगा।''[70] सामाजिक समानता की चेतना का स्वर महाराणा प्रताप के शब्दों में ही नहीं अनेक पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। 'सरस्वती–सदानीरा' में याज्ञवल्क्य के माध्यम से जन्मना व्यवस्था का खण्डन कर कर्मणा व्यवस्था की प्रतिष्ठा करवाई गई है। अछूतोद्धार का प्रसंग 'शिप्रा साक्षी है' में बड़े कटु एवं सत्य शब्दों में उठाया गया है। रजनीकान्त लहरी ने लिखा है कि – भगवान तथागत ने किसी को अस्पृश्य नहीं माना, पापी को भी नहीं। जो भगवान शिव भूत, प्रेत, पिशाच सभी निम्न कोटि के प्राणियों को प्यार देते हैं। उनके भक्त मनुष्य को दुत्कारें, यह अन्तर क्यों? 'शिप्रा साक्षी है' का यह ऐतिहासिक कथ्य खण्ड आधुनिक पृष्ठभूमि में उपयोगी और प्रासंगिक है तथा स्वस्थ एवं प्रगतिशील समाज जीवन के लिए इन कथित अस्पृश्यों के स्तर को ऊँचाकर व्यक्ति समानता की प्रतिष्ठा करने की आवश्यकता की ओर संकेत करता है।''[71] अस्पृश्य समाज को साथ लेकर समाज को एकजुट करने पर ही देश की समृद्धि निर्भर है। सदानन्द प्रसाद गुप्त ने 'अरावली का मुक्त शिखर' की समीक्षा में लिखा है कि – ''लेखक अनेक प्रसंगों के माध्यम से यह संदेश देना चाहता है। बिना सामाजिक एकता के राष्ट्रीय सुरक्षा संभव नहीं है। लेखक का स्वप्न व्यापक हिन्दू समाज को एकजुट करने का इस इक्कीसवीं सदी का सबसे बड़ा स्वप्न है। लेखक की पीड़ा महाराणा प्रताप के माध्यम से व्यक्त होती है कि सामाजिक एकता में सबसे बड़ी बाधा समाज में विद्यमान ऊँच–नीच का भेदभाव है। इसे दूर करना आवश्यक है। महाराणा प्रताप से कहलाते हैं कि – ''पुरोहित जी! अब एक ही अपेक्षा है कि सारा पुरोहित समुदाय समाज में बड़े–छोटे और ऊँच–नीच का भेदभाव न करे। सबको स्नेह दे। भेदभाव को दूर करने का हृदय से प्रयत्न करे।''[72] वृहत्तर समाज की रचना का स्वप्न उपन्यासकार ने 'सरस्वती–सदानीरा' में भी व्यक्त किया है। याज्ञवल्क्य ने कहा – ''यही वह बिन्दु है जहाँ सप्तसिंधु के आर्य और किरात मिल रहे हैं। नागों के साथ सहजीवन की नींव पड़ रही है। सामश्रवा और मणिप्रभा का साथ प्रमाण है। मणिप्रभा वैदिक विद्या सीखेगी और सामश्रवा नागों के विचारों तथा विश्वासों का अध्ययन करेगा। उधर किन्नरों के साथ भी सहजीवन आरम्भ हुआ है। कौशल के कृषक भी एक विशेष जन समुदाय के हैं। इस समूह का बुझावन साथ है। अब आर्य, कूर्मि, कृषक, किरात, व्रात्य सबके साथ मिलन का प्रयत्न होगा। वृहत्तर समाज की रचना होगी।''[73]

उपन्यासकार समानता के व्यवहार को भी अपनाने का संदेश देता है। समानता व्यवहार में आने पर ही सच्चा सहजीवन माना जा सकता है। व्यक्ति, परिवार, समाज, में सम भाव लाकर

सहजीवन की चेतना प्रदान की गई है। दाम्पत्य भाव एवं नारी जीवन के साथ दलित चेतना की प्रतिष्ठा कर सामाजिक चेतना का संदेश दिया गया है।

5.4 धार्मिक–सांस्कृतिक युगीन चेतना –

धर्म और संस्कृति दोनों भिन्न–भिन्न भी है और एक–दूसरे के पूरक भी है। धर्म संस्कृति का एक अंग है। धर्म संस्कृति के अन्तर्गत ही आता है। धर्म जीवन कर्तव्य है, संस्कृति जीवन पद्धति है। डॉ राजेश रानी ने अनेक उद्धरणों द्वारा स्पष्ट किया है कि – ''धर्म शब्द 'धृ' धातु से निर्मित है जिसका अर्थ है धारण शक्ति। किसी भी वस्तु को धारण करने की शक्ति को धर्म कहा जाता है। यास्क ने धर्म का पर्यायवाची नियम बताया है। अर्थात् धर्म वे नियम है जो आत्मा को ऊपर उठाकर परमात्मा के साथ सारूप्य स्थापित करने का मार्ग बतलाते हैं व मानव गुणों को अक्षुण्ण रखते हुए उसे मोक्षत्व की ओर ले जाते हैं। महर्षि कणाद ने कहा है कि – जिससे लौकिक सुख और अन्तिम लक्ष्य की सिद्धि हो सके वही धर्म है।''[74] 'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ' में धर्म को ''धरतिः लोकान् इति धर्मः'' कहा गया है, जिसका अर्थ है वह तत्व जिसके करने से करने वाले का इस लोक में अभ्युदय और परलोक में मोक्ष प्राप्ति हो, धर्म है।''[75] अर्थात् धर्म वह विश्वास है जिसको मानकर प्राणी अपने जीवन को भयमुक्त करना चाहता है। लोभ और भय प्राणी जीवन के साथ जुड़े रहते है। धर्म की प्रेरणा इन्हीं से प्राप्त होती है। हिन्दी शब्दकोश में हरदेव बाहरी ने ईश्वरीय श्रद्धा, पूजा–पाठ तथा लौकिक व सामाजिक कर्तव्यों को धर्म कहा है।[76] धर्म जो आत्मिक उन्नति के रूप में माना गया है उसका वर्तमान रूप पूजा–पाठ ने ले लिया है। पौराणिक सन्दर्भ कोश में धर्म को एक प्रकार अदृष्ट बताया गया है। जो स्वर्ग की प्राप्ति प्रदान करता है और लौकिक सामाजिक कर्तव्यों का निर्वहन करने की प्रेरणा देता है।''[77] डॉ राजेश रानी ने अर्नाल्ड ग्रीन को उद्धृत करते हुए लिखा है कि – ''धर्म ऐसे विश्वासों की प्रतीकात्मक क्रियाओं एवं वस्तुओं की प्रणाली है जो ज्ञान की अपेक्षा विश्वास द्वारा शासित होती है और जो मनुष्य को अनदेखी एवं नियन्त्रण क्षेत्र से दूर अति प्राकृतिक शक्ति के रूप में सम्बद्ध कर देती है।''[78] हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि – ''सामाजिक मंगल के लिए जो सहज प्रवृत्ति है, उसी का नाम धर्म है।''[79] डॉ सुधा भटनागर ने पुरूषार्थ चतुष्ट्य के आधार पर सिद्ध किया है कि धर्म, अर्थ व काम दोनों को नियन्त्रण में रखता है और मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति का मार्ग दिखाता है।''[80] धर्म मानव जीवन को ऐसा कर्तव्य पथ दिखाने वाला मार्ग या पद्धति है जिससे परलोक या मोक्ष की प्राप्ति हो सके। धर्म ईश्वरीय मान्यता के वे विधान हैं जिनसे मानव अपने को सुखी एवं निर्मल बनाए रखना चाहता है। जीवन में हुए दोषों से मुक्ति की अभिलाषा रखता है और मोक्ष प्राप्ति या अगले जीवन को भी सुखपूर्वक जीने की कामना करता है। धर्म मुख्यतः जीवन कर्तव्य है।

संस्कृति शब्द संस्कार से सम्बद्ध है। मानव जीवन के संस्कारों का समुच्चय संस्कृति है। संस्कृत कौस्तुभ में द्वारिकाप्रसाद शर्मा ने स्पष्ट किया है कि – ''संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति संस्कार शब्द से हुई है। संस्कार शब्द 'सम' उपसर्ग 'कृ' धातु में 'धञ्' प्रत्यय लगाने से बनता है जिसका मूल अर्थ है सुधारना या परिष्कार करना।''[81] हरदेव बाहरी ने हिन्दी शब्दकोश में कहा है कि – ''संस्कृति का अर्थ संस्कृत रूप देने की क्रिया, परिष्कृति और संस्कार आदि के रूप में लिया जाता है।''[82] प्रामाणिक हिन्दी कोश में रामचन्द्र वर्मा ने लिखा है कि – ''संस्कृति का अर्थ मन, रूचि, आचार–विचार, कला–कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास सूचक बातों से लिया जाता है।''[83] डॉ राजेश रानी ने डॉ सत्यकेतु व मैकाइवर एवं पेज को उद्धृत करते हुए संस्कृति को समझने का प्रयास किया है। ''डॉ सत्यकेतु के अनुसार चिन्तन द्वारा अपने जीवन को सरस, सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिए मनुष्य जो प्रयत्न करता है उसका परिणाम संस्कृति के रूप में प्राप्त होता है तथा मैकाइवर एवं पेज ने कहा है कि – संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन में तथा आनन्द में पाए जाने वाले रहन–सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है।''[84] डॉ देवराज के अनुसार संस्कृति वस्तुतः उन गुणों का समुदाय है जिन्हें मनुष्य अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा अपने प्रयत्न से प्राप्त करता है। संस्कृति का सम्बन्ध मुख्यतः मनुष्य की बुद्धि, स्वभाव और मनोवृत्तियों से है।''[85] संस्कृति वास्तव में मानवता को विशिष्ट बनाने वाली उत्तम अभिव्यक्तियाँ है। संस्करण, शुद्धिकरण, परिष्करण से युक्त आचरण ही संस्कृति है। मनुष्य ने व्यवहार और आचरण से जो कुछ सीखा, जिस रहन–सहन व आचार–विचार को परम्परा से ग्रहण किया और उसे सामान्य से विशिष्ट बनाया, वही संस्कृति है। रामधारी सिंह दिनकर में लिखा है कि – ''संस्कृति जिन्दगी का तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं। संस्कृति वह चीज मानी जाती है, जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है, यही नहीं संस्कृति हमारा पीछा जन्म–जन्मान्तर तक करती है।''[86] मानव के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों रूपों के परिष्करण की प्रक्रिया ही संस्कृति है। ऐसी शिक्षा–दीक्षा, ऐसा रहन–सहन, ऐसी परम्पराएँ जिनमें मानवता का संस्कार हो, संस्कृति कहलाती है। शिवशंकर त्रिवेदी ने टाइलर एवं मैलिनोवस्की को उद्धृत करते हुए लिखा है कि – ''मानवशास्त्री टाइलर ने 'कल्चर' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि संस्कृति नियमों का वह समुच्चय है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आदर्श, विधि, क्षमताएँ और आदतें सम्मिलित रहती हैं जिन्हें मनुष्य समाज का एक सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है। संस्कृति मानव जीवन को पूर्णता प्रदान करने वाले तत्वों का समुच्चय है। समाज में रहते हुए मानव की जो चेष्टाएँ जीवन का परिष्कार प्रदान करती है, संस्कृति कहलाती है तथा मैलिनोवस्की ने लिखा है कि ''इनमें पैतृक निपुणताएँ, श्रेष्ठताएँ, कलागत प्रक्रिया, विचार, आदतें और विशेषताएँ सम्मिलित रहती हैं। अतः संस्कृति का सम्बन्ध दर्शन और धर्म से लेकर सामाजिक

संस्थाओं की रीति–रिवाजों तक मानव की समस्त समत्वपूर्ण प्रणालियों से है।''[87] निष्कर्षतः संस्कृति मानव जीवन के परिष्कार सम्बन्धित नियमों का समुच्चय है। सामाजिक परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, धर्म, साहित्य, कला, नीति, मूल्य, शिल्प, बुद्धि आदि का संग्रह ही संस्कृति है। इसमें संगीत, कला, दर्शन, धर्म, लोकवार्ता तथा राजनीति का भी समावेश रहता है। कल्याण विशेषांक में लिखा हुआ है कि – ''भारतीय दर्शन के अनुसार संस्कृति के पाँच अवयव कर्म, दर्शन इतिहास, वर्ण, रीति–रिवाज हैं। मनुष्य की जीवन चर्या में आने वाले उत्सव, विवाह, खान–पान, पहनावा, मनोरंजन, कला सम्बन्धी मान्यताएँ, परम्परा से प्राप्त विचार, मूल्य, शिल्प, कला, व्यवहार आदि संस्कृति के अंग हैं।''[88] संक्षेप में संस्कृति मानव की सैद्धान्तिक प्रक्रिया है जो मानव को सुदृढ़ एवं परिष्कृत करती है और जिसके अन्तर्गत मानव का रहन–सहन, सोच–विचार, तौर–तरीका, काम करने का ढंग आदि सम्मिलित हैं। व्यक्ति व समाज–जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रियाओं और गतिविधियों का विकासात्मक संचालन जिस आन्तरिक संयम और अनुशासन तथा बाहरी व्यवस्था द्वारा होते हैं उसी को संस्कृति कहते हैं। संस्कृति में ज्ञान, कर्म, ईश्वरीय आस्था, धार्मिक निष्ठा, दार्शनिक विचार आदि सभी भावनाएँ समावेशित होती हैं। निष्कर्षतः धर्म संस्कृति का ही एक अंग है। परन्तु यह व्यापक प्रभाव रखने के कारण स्वतन्त्र अस्तित्व भी रखता है। धर्म के अन्तर्गत ईश्वर सान्निध्य के लिए की जाने वाली चेष्टाएँ आती हैं और संस्कृति के अन्तर्गत आत्म–परिष्कार की प्रक्रियाएँ आती हैं। धर्म और संस्कृति दोनों ही अनवरत मानव जीवन से जुड़े हुए हैं। मानव जीवन इन्हीं से प्रभावित–प्रेरित होकर उन्नत एवं अनवत दशा को प्राप्त होता रहा है। इन्हीं उन्नत–अवनत प्रेरणाओं को चेतना कहा जाता है। धर्म और संस्कृति जब–जब रूढ़ जड़ मान्यताओं से ग्रस्त रहे हैं। अपने मूल उद्देश्य से दूर हुए हैं। मानव जीवन को जड़ता मिली है। इसी के परिष्करण के प्रयासों में चिन्तन एवं चेतना देखी गई है। जवाहर लाल नेहरू ने धर्म की व्याख्या करते हुए लिखा है कि – ''इतिहास में हम अक्सर देखते हैं कि जिस धर्म का उद्देश्य हमें ऊँचा उठाना, बेहतर और नेक बनाना है, उसी ने लोगों से जानवरों जैसा व्यवहार कराया है। लोगों में ज्ञान की रोशनी फैलाने के बजाय धर्म ने उन्हें अक्सर अंधेरे में रखने की कोशिश की है। उदार हृदय बनाने के बजाय अक्सर लोगों को तंग दिल और दूसरों के प्रति असहिष्णु बना दिया। धर्म की खातिर बड़े–बड़े महान् और शानदार काम किए गए हैं, लेकिन धर्म के ही नाम पर लाखों हत्याएँ हुई है और हर तरह के सम्भव कुकर्म भी किए गए हैं।''[89] धर्म और संस्कृति के इसी स्खलन के प्रति सचेत करना धार्मिक–सांस्कृतिक चेतना मानी जाती है। उदयवीर शर्मा ने धर्म की व्याख्या करते हुए लिखा है कि – ''यदि धर्म लोक मानस नियंत्रण न कर सके तो उसकी सार्थकता ही क्या है? धर्म तो समाज की व्यवस्था है और व्यवस्था सदैव समाज की परिस्थिति के अनुकूल बनायी जाती है। जब धर्म में अन्धविश्वास और आडम्बर प्रमुख हो जाता है तो धर्म लँगड़ा हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में धर्म को संस्कारित किया जाना आवश्यक है। उसको पुनर्नवा बनाना आवश्यक है।''[90] जवाहर लाल नेहरू एवं उदयवीर शर्मा के धर्म सम्बन्धी

कथनों का स्वरूप शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में देखा जा सकता है। धर्म का विकृत, विषम एवं उन्मादी रूप भी व्यक्त हुआ है और उसे पुनर्नवा बनाने का प्रयास भी। इसी पुनर्नवा बनाने की चेष्टा को चेतना कहा जाता है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में धार्मिक–सांस्कृतिक चेतना जागृत करने की सार्थक चेष्टा हुई है। विवेच्य अध्याय में यही अध्ययन अपेक्षित है।

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में धार्मिक–सांस्कृतिक चेतना –

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में युगानुरूप धर्म एवं संस्कृति का भिन्न–भिन्न स्वरूप चित्रित हुआ है। उनके उपन्यासों में धर्म एवं संस्कृति का यथार्थ वर्णन भी हुआ है और चिंतनशील चित्रण भी। 'सरस्वती–सदानीरा' में वैदिककालीन धार्मिक क्रियाकलापों का मूर्त रूप व्यक्त हुआ है तो मध्यकालीन इतिहास पर आधारित उपन्यासों में धर्म के विकृत एवं विषम स्वरूप का साक्षात्कार हुआ है। भारतीय जीवन पद्धति में कहीं भी धर्म का एक स्वरूप नहीं मिलता है। शनैः–शनैः एक रूप धारण होता है। द्वन्द्व भी है, चिन्तन भी है। वैदिककाल में ऋषि संस्कृति में पनपता धार्मिक रूप भी द्रष्टव्य है तथा विभिन्न जन–समुदायों में व्याप्त धार्मिक मान्यताएँ भी व्यक्त हुई है। इस काल की आर्य परम्परा में इन्द्र, सूर्य, वरूण, अग्नि आदि को देवता मानकर मंत्र सिद्धि द्वारा प्रसन्न करने की पद्धति प्रचलित है। आर्यों में ही इन्द्र और वरूण को लेकर मतभेद हो जाता है और दो शाखाएँ बन जाती हैं। आर्य रूद्र के उपासक हैं। कीकट प्रदेश व अन्य भू–भागों में शिव की मान्यता है। किन्नर अपने पितृ देव की पूजा करते हैं। शिव को मानते हैं। ग्रामीण समुदाय पीपल को देवता मानता है। नाग जाति नाग देवता की पूजा करती है। ऋषि याज्ञवल्क्य इन सबमें एकत्व दिखाकर वैदिक रूद्र एवं व्रात्य शिव को एक ही रूप मानकर एकत्व स्थापित करते हैं। यज्ञ करना व अग्नि प्रज्ज्वलित कर हवि प्रदान करना आर्यों का प्रधान धार्मिक कर्म है। इसके अलावा दैनिक जीवन कर्तव्य ही धर्म है। धर्म का मूल अर्थ दैनिक कर्तव्य ही है। ग्रामणी सुव्रत असित और पणिक शंख को कहता है – ''द्यूत अनुचित है। श्रम का निषेध है। अतः अधर्म है।''[91] जीवन–मर्यादा से सम्बद्ध नियम ही धर्म है। धर्म की सुन्दर व्याख्या प्रदान कर चेतन भाव दिया गया है। वैदिक काल में भी भिन्न–भिन्न मान्यताएँ बनती चली गई। पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म का भाव स्पष्ट हुआ है। शवदाह के सम्बन्ध में यह मत अभिव्यक्त हुआ है। ''वैदिक जन के एक समुदाय ने अग्नि को पवित्र मानकर उसमें शवदाह को पाप माना। अग्नि में शवदाह पर मतभेद हुआ। दूसरा मतभेद भी उभर आया। हमारे समुदाय ने वर्षा के देवता इन्द्र को वरूण से बड़ा मान लिया। अग्नि को परम पवित्र मानने वाले समुदाय ने पहले के समान वरूण को ही प्रधानता दी। इस द्वन्द्व के कारण अग्नि और वरूण के उपासक आर्य सुवास्तु से उत्तर–पश्चिम चले गए। अग्नि और इन्द्र के उपासक आर्य सप्तसिंधु में रह गए।''[92] वैदिक काल से ही विचारधाराएँ भिन्न–भिन्न रूप ग्रहण करती रही हैं। एकत्व का चिंतन भी। याज्ञवल्क्य ने अग्नि कुण्ड, शिवलिंग, पितृदेव, नाग, शिव आदि में रूद्र की आकृति से समता बताकर एकत्व की भावना स्थापित की।

वैषम्पायन ने समझाया कि – आरम्भ में देवता असुर ही कहलाते थे। असुर का अर्थ होता है – प्राणवान, बलवान। देवताओं में अंतरिक्ष के देवता वरूण की प्रधानता रही। इन्द्र को प्रधानता मिलने पर एरा कुल के आर्य वरूण को ही प्रधानता देते रहे। अतः असुर कहलाए। प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को ही देवता माना गया है। यह भी जान लो कि प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के भीतर एक ही प्रधान शक्ति छिपी है। वह परम तत्व एक ही है।''[93] शत्रुघ्न प्रसाद ने धार्मिक भेद दर्शाकर परम तत्व की एकत्व भावना के माध्यम से ही चेतना प्रदान की है। याज्ञवल्क्य ने चिंतन किया कि सभी समूहों को समझना है। याज्ञवल्क्य ने समझाया – ''उसे इन्द्र, मित्र, वरूण कहते हैं। वही सूर्य है। वही अग्नि, यम और मातरिश्वा है। विद्वान उस एक का अनेक रूप में वर्णन करते हैं। पवर्तलोक का शिवलिंग उस एक निराकार का ही प्रतीक है। याज्ञवल्क्य पलकें बन्द कर देख रहे थे। कहीं पाषाण पिंड के रूप में देवता हैं, कहीं मिट्टी की पिण्डी के रूप में ब्रह्म है। उधर ऋषियों के अनुसार एक प्रजापति हिरण्यगर्भ तो एक ही विश्वास अनेक रूपों में अपने–अपने प्रदेश में अपने–अपने जनसमूह में। यह दीपक की लौ अग्निशिखा सविता सूर्य का तेज है, आलोक है। एक ही प्रकाश अनेक रूपों में। बोल उठे – रूद्र–शिव का प्रसाद ग्रहण करें। आकाश, पर्वत और वन के अधिदेवता शिव ही रूद्र हैं। रूद्र ही शिव हैं। याज्ञवल्क्य मन में गुनगुनाए – अग्नि रूप, पार्थिव रूप, पाषाण रूप, रूद्र – शिव, धरती से ऊपर उठा हुआ निराकार लिंग, भिन्न–भिन्न प्रकार के जनसमुदाय, सबके अपने विश्वास। हमने अग्निशिखा में रूद्र के दर्शन किए हैं। रूद्र का कल्याणकारी रूप शिव है। हमने रूद्र और शिव के एकत्व का अनुभव कर लिया है।''[94] याज्ञवल्क्य के माध्यम से उपन्यासकार ने वैदिक रूद्र और व्रात्य शिव को एकत्व प्रदान किया तथा अग्नि, सूर्य, वरूण, आदि को भी एक ही रूप मानकर एक परमतत्व की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया है। विदेह जनक की सभा में हुए आध्यात्मिय चिंतन में भी याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट किया है कि – ''उसे 'अक्षर' कहा जाता है। इसी अविनाशी अक्षर को ब्रह्म कहा जाता है।''[95] धर्म की मूल व्याख्या विचार और व्यवहार की समता में मानते है।

वैदिककालीन धर्म सिद्धान्त का यह भेद या द्वन्द्व मध्य काल में पतनशील दशा में देखने को मिलता है। वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन एवं इनसे निर्मित अनेक भागों और सम्प्रदायों का विकृत स्वरूप धर्म को ही नहीं, समाज और राष्ट्र को भी हानि प्रदान करता है। मध्यकालीन चित्रण में ऐसा ही देखने को मिलता है। मध्यकालीन जीवन में धर्म का विकृत और उन्मादी रूप देखने को मिलता है। सनातन धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म का वैमनस्य है तो दूसरी तरफ इनकी शाखाओं–प्रशाखाओं में व्याप्त द्वन्द्व है। धर्म यहाँ संस्थान निर्मित कर लेता है और संस्थान दुराचार के केन्द्र बन जाते हैं। 'शिप्रा साक्षी है' में शैव आचार्य धवल महाराज गंधर्वसेन का सरस्वती अपहरण में इसलिए विरोध नहीं करते कि वह जैनसाधक कालकाचार्य की बहिन है। बौद्ध भिक्षुओं के दल और शैव साधकों के मध्य वार्तालाप में भी यह द्वन्द्व देखने

को मिलता है। 'सिद्धियों के खण्डहर' में बौद्ध–जैन धर्म का द्वन्द्व तो चरम पर है ही परन्तु बौद्ध मठों में व्याप्त अनाचार, राजवर्ग की अन्ध आस्था, तंत्र–मंत्र का झूठा अहंकार व पाखण्ड ने राष्ट्र व समाज को पतन की ओर धकेला है, यह दिखाया गया है। सुवर्णा और सुभद्रा को महामुद्रा बनाकर भोगने की इच्छा सहजयानी साधकों की भ्रष्ट बुद्धि का प्रतीक है। राज–वर्ग भी उनकी अन्ध आस्था में आस्थावान रहकर देश के विनाश का कारण बनता है। वैष्णव सम्राट लक्ष्मणसेन गोविन्दपाल का साथ इसलिए नहीं देते कि गोविन्दपाल बौद्ध है। धर्म एवं धर्म संस्थाओं ने समाज को पतनशील बनाया है। यह यथार्थ शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में दिखाई देता है। परिणामस्वरूप विदेशी आधिपत्य करते हैं और सब कुछ नष्ट होता है। 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में इस्लामी कट्टरता का दंश देखने को मिलता है। यह स्वरूप सिकन्दर लोदी और मुहम्मद बिन तुगलक जैसे मुस्लिम शासकों के रूप में भी दिखाई देता है। यह उन्मादी धर्मान्धता सबकुछ नष्ट कर देती है। जनता में धर्म के नाम पर भेद किया जाता है। अनेक कर लगा दिए जाते है। धर्मान्तरण एक कड़वी और भयानक सच्चाई है। धर्मान्तरित समाज का द्वन्द्व एक अलग टीस देता है। औरंगजेब का चरित्र सबसे भयानक और क्रूर है। संत कबीर, मध्वाचार्य, आनन्द भिक्षु भट्ट, सूफी सरमद, गुरू तेग बहादुर, उधोदास बैरागी आदि के माध्यम से शत्रुघ्न प्रसाद ने धर्म के एकत्व भाव का संदेश दिया है। अद्वैतवादी चेतना ही वस्तुतः धर्म चेतना है। क्रियाशक्ति यतीश्वर के माध्यम से धार्मिक स्थिति का अवलोकन किया है। लिखा है – ''आज अपनी दार्शनिक, धार्मिक, आस्थाओं एवं मान्यताओं के प्रति अनास्था उत्पन्न की जा रही हैं। नई विदेशी मान्यताएँ आरोपित की जा रही हैं। तुर्कों का बहिरागत धर्म–मतान्तरण यानि धर्म परिवर्तन करके हमारे जन की अपनी भूमि, अपनी संस्कृति तथा समाज के प्रति निष्ठा को तोड़ रहा है। हमने तो सर्वात्म शिव चेतना के आधार पर ऊँच–नीच के भेदभाव को नकार दिया है। आप भी वैष्णव भक्ति में विषमता को अस्वीकार कर दें। माधवाचार्य ने कहा – ''यदि अद्वैत का चिन्तन चाण्डाल में भी ब्रह्म का दर्शन कर सकता है तो विषमता की भावना कब तक कहर देगी।''[96] मध्यकालीन भारतीय धर्म में पाखण्डों, ब्राह्याचारों और अंधविश्वासों का बोलबाला चरम पर रहा है। भेद और विषमता तो कष्टदायक पहलू है ही। मध्यकालीन संतों ने इसे दूर करने के प्रयास किए हैं। उन्होंने ज्ञान और भक्ति के माध्यम से तथा एकात्म चेतना के माध्यम से धर्म को परिष्कृत एवं नवीन रूप देकर आस्था और निष्ठा की स्थापना का पुरजोर प्रयास किया है। कबीर की एकात्म चेतना समरसता का भाव पैदा करती है। भोला पांडे को उसका पुत्र गोपाल कहता है – ''रामानन्द तो शास्त्र, देवता, वर्ण, सबको मानते हैं पर उन्होंने केवल राम भक्ति का अधिकार सबको दे दिया है। सब में एक ही राम के दर्शन कर सबको प्यार करना और बाह्याडम्बर से भिन्न राम की भक्ति युग की मांग है। राम और खुदा को एक मानना इस युग की चिंता है।''[97] शत्रुघ्न प्रसाद ने धर्म में व्याप्त भेद, विषमता, उन्माद, पाखण्ड, अन्धविश्वास, तंत्र–मंत्र, बाह्याचार के साथ–साथ अनाचार एवं संस्थागत धर्म संगठनों पर चोट करते हुए

एकात्मवाद का संदेश देकर धार्मिक चिंतन व्यक्त किया है। धार्मिक एकात्म चेतना वस्तुतः सांस्कृतिक चेतना ही है। धर्म संस्कृति का ही अंग है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में सांस्कृतिक वैभव पूर्ण रूपेण प्रकट हुआ है। 'सरस्वती–सदानीरा' तो सांस्कृतिक उपन्यास की संज्ञा से विभूषित की जा सकती है। धर्म, दर्शन, चिंतन, जीवनादर्श, संस्कार, पर्व, त्यौहार आदि सभी तत्व संस्कृति की विरासत हैं। 'सरस्वती–सदानीरा' में आर्ष–चिन्तन अपने पूर्ण स्वरूप में व्यक्त हुआ है। भारतीय यज्ञ संस्कृति का सुन्दर रूप यहाँ दिखाई पड़ता है। वैदिक ऋषियों, व्रात्य समुदायों, किन्नर, किरात, कोल एवं विदेह जनपद के मागधों की संस्कृति को चित्रित कर उनमें समन्वय का चिंतन अभिव्यक्त किया है। यज्ञ एवं अग्निहोम दैनिकचर्या का हिस्सा है, वैदिक संस्कृति का। जनक विदेह भी यज्ञ का अनुष्ठान कर दार्शनिक चिन्तन का आयोजन करते हैं। सबका स्वर हवि देने के लिए गुंजित हुआ – "हे अग्ने! तुम दिव्य हो। तुम अनुष्ठानों के रक्षक हो! सब यज्ञों में तुम्हारी स्तुति की जाती है। तुम देवताओं और मनुष्यों के व्रतों का पालन कराते हो।"[98] वैदिक संस्कृति में होम दैनिक जीवनचर्या का अंग है। शिक्षा का केन्द्र आश्रम है। वैदिक मंत्रों, देवताओं, आदि का अध्ययन मनन ही छात्रों की विद्या प्राप्ति है। मित्र, सूर्य, पूषा, सविता, हिरण्यगर्भ, अर्यमा, आदित्य, दिवाकर, भास्कर आदि सूर्य के अनेक नामों व रूपों का अर्थ बताना, अग्नि का महत्व सिद्ध करना, जीव आत्मा, ब्रह्म पर विचार करना आदि की मननशील प्रक्रिया ही शिक्षा है। आश्रम व्यवस्था भारतीय जीवन में बहुत समय तक बनी रहती है। 'शिप्रा साक्षी है' में कुमार विषमशील आश्रम में रहकर ही शिक्षा ग्रहण करते हैं। समन्वयशील चिंतन ही चेतना है। याज्ञवल्क्य के माध्यम से वैदिक–व्रात्य समन्वय ही नहीं करवाया है बल्कि जैन साधु ऋषभदेव के चिंतन को भी शामिल किया है। 'सरस्वती–सदानीरा' में विभिन्न जनसमुदायों की संस्कृति का समन्वय है। 'शिप्रा साक्षी है' में हला और विषमशील का विवाह यवन–भारतीय, संस्कृति के समन्वय का प्रयास है। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' में सभी साम्प्रदायिक विभेद समाप्त कर श्रीदेवी और मरप्पा का विवाह भी एक नई सांस्कृतिक पहल है। 'अरावली का मुक्त शिखर' में भीलों, आदिवासियों, आदि के साथ सहजीवन का संकेत और भील सरदार से राणा प्रताप का राज्याभिषेक करवाना भी नवीन संस्कृति का सूचक है। सूफी सरमद और दाराशिकोह के माध्यम से दार्शनिक चिन्तन का एकात्म भी सांस्कृतिक विलय का ही प्रयास है।

विवाह भारतीय जीवन में विशिष्ट संस्था है। विवाह चिंतन पर शत्रुघ्न प्रसाद ने सुन्दर व्याख्यान प्रस्तुत किए है। याज्ञवल्क्य–कात्यायनी विवाह हो, चाहे सामश्रवा–मणिप्रभा का विवाह हो, भारतीय संस्कृति का उदात्त रूप सामने आ जाता है। याज्ञवल्क्य ने कहा – "स्त्री और पुरूष दोनों एक–दूसरे के सहयोग से जीवन के अर्थ को पा लेते हैं। यदि पुरूष पशु से ऊपर नहीं उठा और अपने को आखेटक समझता रहा तो स्त्री को कष्ट होगा ही। स्वच्छन्द कामुक समूह

स्त्री को केवल आखेट समझता है। विवाह आखेटक–आखेट की दुःस्थिति को बदल देता है। इसलिए विवाह को मान्यता मिली है।''[99]

अद्वैतवादी चिंतन को प्रतिष्ठित कर दार्शनिक, आध्यात्मिक, धार्मिक चिंतन का प्रगतिशील भाव प्रदान किया है। कबीर, याज्ञवल्क्य, मध्वाचार्य, आनन्द भिक्षु भट्ट आदि इसी अद्वैतवादी चिंतन के पुरोधा नायक हैं। विषमशील–हला, श्रीदेवी–मरप्पा एवं मणिप्रभा–सामश्रवा, पाटली–बुझावन विवाह को सांस्कृतिक समन्वय की क्रान्ति चेतना कहा है। शत्रुघ्न प्रसाद समन्वयी संस्कृति के माध्यम से प्रगतिशील विचारों को आगे बढ़ाते है परन्तु भारतीय दृष्टिकोण से। उनका चिंतन भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि पर ही आगे बढ़ता है। डॉ रंजन सूरिदेव ने लिखा है कि – ''सुधी लेखक ने सिन्धु सभ्यता, नागवंश, सोमयज्ञ, सोमलता आदि के वर्णनपूर्वक प्रागैतिहासिक भारतीय संस्कृति और सभ्यता से सम्बद्ध अपनी गहरी जानकारी को भी संकेतिक किया है। याज्ञवल्क्य गुरू–मातुल वैषम्पायन द्वारा तिरस्कार और बहिष्कार के बाद सरस्वती तट से भ्रमण करते हुए विभिन्न जन–समूहों से मिलते हैं तथा उनकी मान्यताओं को समझते हुए विदेह पहुँच कर शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करते हैं और तब कीकट के व्रात्यों से सस्नेह मिलकर वैदिक एवं व्रात्यों का समन्वय स्थापित करने में सफल होते हैं। यही भारत की समन्वयी संस्कृति की साधना है जो इस उपन्यास में चरितार्थ हुई है।''[100] मालव गणपति विषमशील 'विक्रमादित्य' सोच रहे थे – ''पहले शकों की पराजय और फिर उनका भारतीय धरती, भारत की संस्कृति तथा भारत जन में सम्मिलन। हला की अनुभूति द्वारा एक नये युग का आरम्भ होता है।''[101]

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों के काल एवं क्षेत्र भिन्न रहे हैं। भिन्न–भिन्न संस्कृतियों की अभिव्यक्ति के माध्यम से भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को प्रत्यक्ष किया है। 'सरस्वती–सदानीरा' में वैदिककालीन सप्तसिंधु प्रदेश, विदेह जनपद, कीकट प्रदेश, सुवास्तु प्रदेश की जीवन पद्धति को पूर्णतः चित्रित किया है। 'शिप्रा साक्षी है' में ईसा से पूर्व पहली सदी के उज्जयिनी की सांस्कृतिक झाँकी प्रस्तुत की है। शैव, बौद्ध, जैन का द्वन्द्व है। आश्रम व्यवस्था शिक्षा की पद्धति है। परिवार, व्रत, तीर्थ, विवाह का महत्व है। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' में दक्षिण भारत की संस्कृति के दर्शन हुए है। देवदासी प्रथा यहाँ की रूढ़ परम्परा है। 'सुनो भाई साधो' और 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में काशी प्रदेश का सांस्कृतिक चिंतन व्यक्त हुआ है। ब्राह्मणवाद की रूढ़ अवधारणाएँ प्रकट हुई है। 'कश्मीर की बेटी' में कश्मीर की संस्कृति का चित्रण है। 'राजतरंगिणी' का महत्व और कश्मीर की गौरवशाली परम्परा के संकेत मिलते हैं। 'अरावली का मुक्त शिखर' में राजस्थान के मेवाड़ अंचल की सांस्कृतिक विरासत प्रत्यक्ष हुई है। 'सिद्धियों के खण्डहर' में नालन्दा, उदन्तपुरी, मगध क्षेत्र में व्याप्त बौद्ध, धर्म का पतनशील रूप देखने को मिलता है। 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' में भक्ति भावों की आस्थामयी निष्ठा व्यक्त होती है। मुगलकालीन संस्कृति का कुरूप भी द्रष्टव्य है।

सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से विचार करे तो शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में संस्कृति के उदात्त स्वरूप को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा हुई है। भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण तत्व है समन्वयवाद, जिसकी स्थापना विवेच्य उपन्यासों में मूल प्रेरणा रही है। उदारता, नारी सम्मान, आध्यात्मिकता, प्रेम, त्याग, दया, करूणा, मुदिता के भावों का स्वीकार, व्रत, उपवास, तीर्थ, मेले, विवाह संस्कार, राज्याभिषेक आदि तत्व सांस्कृतिक चिंतन में विश्लेषित होते हैं। प्रेम के मर्यादित एवं उदात्त रूप का चित्रण हुआ है। निर्मल प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित होती रही है। सामश्रवा–मणिप्रभा, सुभद्रा–सुमन्त, सुवर्णा–महेन्द्र, तानसेन–महरूख, नूरी–जमाल, किशन–टिकोरी, मधुवंती–लक्ष्मीचन्द आदि युग्मकों के माध्यम से प्रेम के निर्मल एवं पवित्र भावों को स्थापित किया गया है।

नारी सम्मान भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशिष्टता है। महाराणा प्रताप द्वारा रहीमखानखाना की बेगम यास्मीन को सम्मान के साथ वापस लौटाना, महाराणा प्रताप का अपनी महारानियों के साथ सद्व्यवहार, मध्वाचार्य–सायणाचार्य का अपनी पत्नियों के साथ मृदुलस्नेह, कबीर–लोई का दाम्पत्य जीवन आदि उदाहरण नारी सम्मान के द्योतक है। साथ ही जन्म महोत्सव की जगह मातृत्व–महोत्सव का मनाना उपन्यासकार की महत्वपूर्ण आदरांजलि है।

मेलों का चित्रण एवं महत्व 'अरावली का मुक्त शिखर' में चित्रित हुआ है। तीर्थ स्थल एवं प्राचीन नगर हमारे सांस्कृतिक केन्द्र हैं। इनके माध्यम से भी सांस्कृतिक चेतना उद्घाटित हुई है। आचार्य भास्वर कहते हैं कि – "आसेतु हिमालय एक देश है। उत्तर दिशा में कैलाश पर्वत पर भगवान् शिव का निवास है। दक्षिण में महासागर के तट पर भगवती की तपोभूमि है। द्वादश ज्योतिर्पीठ, सप्तपुरियाँ, पवित्र नदियाँ ये सभी भारत की सांस्कृतिक एकता को पुष्ट करते हैं। वेद, रामायण, महाभारत तथा पुराणों में इस देश की सुन्दरता, पवित्रता, महानता का वर्णन हुआ है।"[102]

विवेच्य उपन्यासों में भारत की परम्परागत विशिष्टताओं के माध्यम से सांस्कृतिक चिंतन व्यक्त कर मानस को गौरवमयी भाव दिए है। डॉ अमरनाथ सिन्हा ने अपने एक आलेख में भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप को परखते हुए लिखा है कि – "बहरहाल बड़ी बारीकी से महाराणा परिवार और अकबरी हरम की विसंगतियाँ आंकते हुए उपन्यासकार ने प्रताप और अकबर के संघर्ष को सांस्कृतिक संघर्ष के रूप में परखा है। एक ओर प्रताप की पत्नी चंपाबाई का यह कथन कि 'मेवाड़ का सौन्दर्य शौर्य का मार्ग नहीं रोकता' सर्वदा साथ देता है। चित्तौड़ के जौहर इसके प्रमाण है और दूसरी ओर अकबर की बड़ी बेगम रूकैया का कहना कि 'सलीमा हमारे सरताज जंग में शेरदिल हैं। दारूल सल्तनत के कामयाब सियासतदाँ है। शाही हरम में खुशदिल गुलफाम ऐयाश हैं। ऐसे ऐयाश बादशाह की विस्तारवादी लिप्सा के विरूद्ध संघर्ष करने को सन्नद्द होना निश्चय की मातृभूमि की स्वाधीनता की जंग के साथ–साथ उसकी

परम्परा, सांस्कृतिक रिक्थ, मानवीय मूल्य, मनीषा व चारित्र्य के संरक्षण–संवर्धन के लिए भी युद्ध है। प्रताप का युद्ध धर्म युद्ध है।''[103] सांस्कृतिक पराभव के दौर में भी भारतीय मानवतावाद की रक्षा हमारे नायकों के व्यवहार में प्रथम स्थान पर रहती है। भक्ति का भाव एवं पारिवारिक आत्मीयता भी चेतन मन के निर्मल भाव हैं जो सांस्कृतिक वैभव को समृद्ध करते हैं। जमाल अहमद सोचता है – ''कबीर पंथी साधु, सूफी कवि, वृन्दावन–गोकुल के कृष्ण भक्त भी पूजा–पाठ की रूढ़ियों के बदले प्रेम और भक्ति को महत्व दे रहे हैं। मानव–मानव के बीच रूढ़िमुक्त प्रेम का सम्बन्ध हो और अपने इष्ट देवता के प्रति भी निश्छल प्रेम हो।''[104] उदात्त भक्ति एवं प्रेम के तत्व भी सांस्कृतिक निष्ठा को प्रेरित करते हैं।

निष्कर्षतः शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में धार्मिक–सांस्कृतिक चिन्तन का प्रगतिशील रूप भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की नींव पर अग्रसर है। अद्वैतवादी एकात्म चेतना, धर्म का मानवतावादी रूप, दाम्पत्य का निर्मल स्वरूप, प्रेम की उदात्तता, उदारशयता, प्राचीन गौरवमयी परम्पराएँ, समन्वयशीलता आदि सांस्कृतिक विशिष्टताओं को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा हुई है। जहाँ–जहाँ धर्म एवं संस्कृति की धाराएँ रूढ़ सीमाओं से आबद्ध हुई है, वहीं प्रगतिशील प्रवाह प्रदान किया गया है। विवेच्य उपन्यास धार्मिक–सांस्कृतिक चिन्तन का विशिष्ट दस्तावेज है।

5.5 जीवनमूल्यपरक युगीन चेतना–

मानव जीवन जिन गुणों से मानवता बनाए रख सकता है या जीवन को संचालित करने वाले तत्व जीवन मूल्य कहलाते हैं। डॉ राजेश रानी ने अनेक विश्वकोषों को उद्धृत करते हुए स्पष्ट किया है कि – ''मूल्य शब्द संस्कृत की 'मूल' धातु के साथ 'यत्' प्रत्यय संयुक्त करने से बना है, जिसका अर्थ कीमत, मजदूरी आदि होता है। मूल्य के व्युत्पत्तिपरक अर्थ के अनुसार यह शब्द ग्रीक भाषा के 'एक्सियस' और 'लागस' शब्दों से बना है, 'एक्सियस' का अर्थ है मूल्य या कीमत। 'लागस' का अर्थ है – तर्क सिद्धान्त या मीमांसा। अंग्रेजी विश्वकोश के अनुसार मूल्य किसी व्यक्ति या वस्तु का वास्तविक गुण है, जैसे–सूर्य की रोशनी और अच्छी पुस्तकों की कीमत उसके आध्यात्मिक गुणों से आँकी जाती है। वह हमारे मस्तिष्क और चरित्र का निर्माण करते हैं।''[105] अर्थात् मूल्य मानव व्यक्तित्व के निर्धारक तत्व हैं। मानव के चरित्र को निर्मित करने वाले गुण, आदत या स्वभाव ही मूल्य है जो सामाजिक या राष्ट्रीय मूल्य भी कहला सकते हैं। डॉ मोहिनी शर्मा ने लिखा है कि – ''हमारा अभिप्रेत 'मूल्य' शब्द अंग्रेजी के 'वैल्य' शब्द का समानार्थी है जो कि लैटिन भाषा के 'वैलेट' से बना है और जिसका अर्थ अच्छा या सुन्दर होता है। अर्थात् 'मूल्य' शब्द में शिवं और सुन्दरम् सन्निहित रहते हैं। रोहित मेहता को उद्धृत कर लिखा है कि – ''मूल्य न तो किसी मशीन द्वारा उत्पादित वस्तु है और न ही किसी सरकार द्वारा निर्मित कानून है। मूल्य तो जीवन के प्रति एक गुण है एक अन्तदृष्टि है, एक अवधारणा है, एक दृष्टिकोण है।''[106] देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने अपने लेख

'हमारा मूल्य चिन्तन' में स्पष्ट किया है कि – ''समाजशास्त्रीय अवधारणा में मूल्य शब्द वही अवधारणा व्यक्त करता है, जो 'वेल्यूज' की है। प्राचीन भारत में इस अवधारणा के लिए अनेक शब्द काम में आते थे। गुण, आदर्श, धर्मलक्षण सिद्धान्त, सद्गुण आदि। मानवीय मूल्य कितने गिने जा सकते है। इस पर पूरा मूल्य कोश ही मानव मूल्य शब्दावली विश्वकोश के नाम से 'धर्मपाल सैनी' ने प्रकाशित कर दिया है जिसमें सैकड़ों की संख्या में क्षमा, आर्जव, सहिष्णुता, औदार्य, शुचिता आदि मूल्यों का वर्ण क्रमानुसार विवरण उपलब्ध है।''[107] जीवन को नियन्त्रित, संयमित एवं परस्पर हितकारी बनाने के निमित्त जो सीमाएँ या मर्यादाएँ निर्मित की गई हैं, वे मूल्य या आदर्श कहलाते हैं। मनुष्य अपनी वर्तमान अवस्था में दुर्बलताएँ देखता है और सुधारात्मक दृष्टि से उच्च राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, सौन्दर्यपरक, प्रतिमानों की स्थापना करता है, वे आदर्श कहलाते हैं। आदर्श कहीं–कहीं कल्पनात्मक हो जाते है। डॉ मोहिनी शर्मा ने रवीन्द्रनाथ मुखर्जी को उद्धृत करते हुए लिखा है कि – ''व्यक्ति और समूहों के व्यवहारों या आचरणों को नियन्त्रित व नियमित करने तथा उन्हें समाज द्वारा मान्य एक उचित स्तर पर बनाये रखने के लिए सामाजिक अन्तः क्रियाओं के दौरान पनपे हुए नियमों, आदर्शों, मूल्यों की व्यवस्था को आदर्श नियम कहते हैं।''[108] अर्थात् नैतिकता, आदर्श व मूल्य समानार्थी ही हैं। मूल्य जीवन को एक निश्चित गति से संचालित करने वाले मापदण्ड हैं जिनसे परस्पर हित भाव बना रहे। डॉ राजेश रानी ने रामधारी सिंह दिनकर को उद्धृत करते हुए लिखा है कि – ''मूल्यों से ही मानव का व्यवहार संयत होता है। मूल्य वे मान्यताएँ हैं जिन्हें मार्गदर्शक मानकर सभ्यता चलती रही है और जिनकी उपेक्षा करने वालों को परम्परा अनैतिक, उच्छृंखल या बागी कहती है।[109] पाश्चात्य चिन्तकों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से जीवन मूल्यों को निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। जिनमें फलवादिता, व्यावहारिकता, धार्मिकता, सुखवादिता, वैज्ञानिकता, प्रकृतवादिता आदि का समावेश रहता है। भारतीय चिन्तकों ने चार पुरूषार्थों को ही जीवन मूल्य माना है। भारतीय दर्शन शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा के समन्वय को मनुष्य मानता है। शारीरिक विकास हेतु अर्थ, मानसिक विकास हेतु काम, बौद्धिक विकास हेतु धर्म एवं आत्मिक विकास हेतु मोक्ष की अवधारणा की गई है। भारतीय दर्शन में ये ही प्राचीनतम जीवन मूल्य निर्धारित हैं। संक्षेप में जीवन मूल्य सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की मानवीय चिंतना है जो भारतीय संस्कृति का निचोड़ है। ये जीवन का एक दृष्टिकोण है जो मनुष्य का व्यक्ति, समाज और वस्तु के साथ एक वैचारिक समन्वय स्थापित करते हैं। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों एवं मनुष्य की सामाजिक प्रक्रिया के प्रमुख तत्व हैं। आदर्श कार्य, परम्पराएँ, नैतिकता आदि प्रमुख तथ्य मूल्य का स्वरूप निर्धारित करते हैं। जीवन मूल्य व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र के जीवन को मर्यादित करते हैं। अतः व्यक्ति मूल्य, पारिवारिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य, राष्ट्रीय मूल्य आदि रूपों में अध्ययन मनन किया जा सकता है। जीवन मूल्य जीवन को सुन्दर और सुखमय बनाने की साधना है। इसी दृष्टि का चिन्तन मूल्यपरक चेतना कहलाता है।

शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में जीवन–मूल्यों के प्रति चेतना–

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास इतिहास केन्द्रित हैं। भारत का इतिहास मूल्यों की उच्चता का रहा है। मूल्यों की खातिर प्राण गँवा देने की संस्कृति भारत की विशिष्टता रही है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में जिस श्रेष्ठता के साथ इतिहास चिंतन एवं राष्ट्रीय चिंतन व्यक्त हुआ है, उतनी ही श्रेष्ठता के साथ जीवन मूल्यों की भी अभिव्यक्ति हुई है। भारतीय संस्कृति दया, परोपकार, सत्य, सहिष्णुता, त्याग, मानव मात्र के प्रति प्रेम, करूणा आदि जीवन मूल्यों से आलोकित रही है, उन सबकी अभिव्यक्ति शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में मिलती है। निस्वार्थ सेवा, बलिदान, लोक कल्याण, राष्ट्रप्रेम आदि तत्व आज गौण दिखाई देने लगे है। परन्तु ये भारतीय संस्कृति के मूल तत्व रहे हैं। विवेच्य उपन्यासों में इनकी उच्च भावाभिव्यक्ति हुई है। भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को ही प्रधान जीवन मूल्य स्वीकार किया गया था। धर्म में अन्य सभी प्रमुख कर्तव्य आ जाते हैं। कालान्तर में जीवन को संचालित करने वाले अनेक तत्वों को जीवन मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के लिए व्यक्ति का व्यवहार परस्पर कैसा हो, यही जीवन मूल्य हैं। इनकी अवमूल्यन होती गरिमा को प्रेरित करने वाली चेतना शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में दिखाई पड़ती है। धर्म अर्थात् मानवीयता पूर्ण कर्त्तव्य भारतीय जीवन मूल्यों में अग्रणी तत्व माना गया है। चार पुरूषार्थों में से एक है। शत्रुघ्न प्रसाद ने राजा, प्रजा, व्यक्ति, परिवार, समाज, नारी का उचित धर्म क्या है, पात्रों के व्यवहार में दर्शाया है। राजधर्म को व्यक्त करते हुए लिखा है कि – ''परजा को बेटे के समान पालना धरम है। अपने पर विश्वास और राम से प्यार। भगवान ने तो सूरज को बनाया है। सबके लिए। चाँद को बनाया है सबके लिए। गंगाजी बहती है। इन फूलों की सुगंध भी सबके लिए है। लोई आचार्य रामानन्द ने जात–पाँत को भुलाकर सबको भक्ति का अवसर दिया। सभी तो विष्णु राम के अंश हैं। शरीर, रूप, रंग, धन, पद, वर्ण, जाति बाहरी बातें हैं। आत्मा ही सच है। आत्मा राम है। मैं तो इंसानियत का पुजारी हूँ। राम–रहीम को एक मानता हूँ। ढ़ाई आखर प्रेम का संदेश देता हूँ।''[110] कबीरदास के माध्यम से उपन्यासकार ने राजधर्म, मानवधर्म, परमात्मधर्म, प्रेम, इंसानियत का संदेश देकर इन जीवन मूल्यों के द्वारा समाज को मानवीय बनाने की चेष्टा की है। दाम्पत्य जीवन परिवार के लिए ही नहीं, समाज के लिए भी और सृष्टि के लिए भी सुखकर होना आवश्यक है। शत्रुघ्न प्रसाद ने उदात्त भावों से युक्त दाम्पत्य जीवन का दर्शन प्रस्तुत किया है। काम और प्रेम दाम्पत्य जीवन के सुख का आधार हैं। काम चार पुरूषार्थों में से एक भी है। आज के स्वछन्द दौर में असंयमित काम–भाव ने जीवन को जटिलता प्रदान कर दी है। शत्रुघ्न प्रसाद ने काम के श्रेयस्कर रूप की प्रतिष्ठा की है। सायणाचार्य ने कहा, ''शाश्वती! जब हम काम को कामदेवता बना देंगे। काम को परिवार संस्कृति में मर्यादित कर देंगे, तब ऐसी अप्रिय घटनाएँ नहीं होंगी। विधाता ने नारी को ऐसा बना दिया है कि पुरूष समाज, मर्यादा, धर्म सबको भूल जाता है। इसीलिए

नारी और पुरूष दोनों के लिए सीमा बाँध दी गई है।''[111] मयार्दा जीवन का श्रेयस्कर पक्ष है। काम के मर्यादित एवं संयमित व्यवहार से मानवता का भाव बना रहता है। स्त्री–पुरूष सम्बन्धों में उच्चता बनी रहती है। यहाँ काम के श्रेयस्कर और मर्यादित भाव को प्रतिष्ठा प्रदान की है। संतुलित जीवन और काम के उदात्त भाव की अभिव्यक्ति 'सरस्वती–सदानीरा' में भी दिखाई पड़ती है। लिखा है – ''इसी काम के आधार पर परिवार की रचना एक अपूर्व अनुष्ठान है। काम को प्रेम में परिणत होना है। दाम्पत्य को सृजन के पथ पर अग्रसर होना है। ऋषि ने कहा है – उसने सर्वप्रथम सृष्टि की रचना की। यह इच्छा यानी काम सृष्टि का बीज है। जीवन में संतुलन हो। यही मंगल कामना है।''[112] नारी का जीवन सनातन काल से ही द्वन्द्व का रहा है। पूजनीया भी है। शोषित है। स्त्री–पुरूष सम्बन्ध भी अनेक परिभाषाएँ लिए हुए है। नारी जीवन के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न उपस्थित कर उपन्यासकार ने नारी जीवन की गरिमा को स्थापित करने की चेतना प्रदान की है। अपाला ने कहा – ''उसकी विद्या, बुद्धि, निष्ठा का कुछ भी मूल्य नहीं है। उसकी सेवा का कुछ नहीं है। क्या स्त्री शरीर के साथ, मन, बुद्धि और आत्मा नहीं है। क्योंकि तुम सबला हो – अपने गुण एवं स्वाभिमान के कारण। तुम अबला हो – अपने कोमल शरीर के कारण। संतुलन चाहिए।''[113] नारी जीवन को गौरव प्रदान करने वाली चेतना भी यत्र–तत्र देखने में मिल जाती है। 'अरावली का मुक्त शिखर' में व्यक्त किया है कि – ''यह नारी की स्वाधीन चेतना का प्रभाव है। यदि दुर्गा और काली को इतनी प्रतिष्ठा है, तो नारी मात्र की प्रतिष्ठा होनी चाहिए।[114] मानव और प्रकृति का सम्बन्ध अटूट है। प्रकृति मानव को चैतन्य प्रदान करती है, ऐसा दर्शाकर मानव एवं प्रकृति के मध्य प्रेमपूर्ण सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास किया है। लिखा है – ''प्रकृति तो पंछी को गीत सिखा देती है। कली को खिलना सिखा देती है। निर्झर को संगीत का मर्म........ आर्ष वाणी का अर्थ स्पष्ट होता है।''[115]

मानव जीवन में उचित और अनुचित का चिंतन अत्यन्त महत्व रखता है। यही सुखी और धर्मानुसार जीवन का आधार है। इसी से कर्तव्यों का निर्वाह उचित होना संभव होता है। कहा है – ''हम तो सभी पंथ मार्ग को उचित मानकर सबका सत्कार करते हैं। राम असुर संस्कार के रावण से युद्ध करते हैं। कृष्ण असुर वृत्ति के कौरवों से युद्ध के लिए प्रबुद्ध करते हैं। यहाँ उचित–अनुचित का विचार है। धर्म–अधर्म का विचार है।''[116] जीवन में करणीय और अकरणीय का चिंतन भी अनिवार्य है। यही कर्तव्य का सही पालन करवाने में सक्षम है। पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म जीवन की उचित या करणीय प्रवृति पर ही परिभाषित होते हैं। मानवीयता की इनका आधार है। युद्ध यद्यपि अकरणीय कृत्य है, परन्तु कहीं–कहीं वह उचित है। धर्म है। महाराणा कहते हैं – हाँ राणा पुंजा! जीवन युद्ध नहीं आनन्द की साधना है। प्रेय और श्रेय की साधना है। युद्ध तो आपद्धर्म है। फूला जीवन फूलों की सेज नहीं है। फूल है तो काँटे भी है।''[117] यहाँ शत्रुघ्न प्रसाद ने श्रेष्ठ जीवन–दर्शन अभिव्यक्त किया है। जीवन सुख–दुख

का मेल है। आनन्द के लिए है। युद्ध उचित नहीं है, पर राष्ट्र रक्षा के निमित्त जरूरी है। युद्ध में भी मानवता का भाव दिखाकर उपन्यासकार ने जीवन के करणीय कर्तव्य को प्रतिष्ठित किया है। महाराणा प्रताप का उदार एवं मानवीय चरित्र रहीम खानखाना के परिवार के प्रति दिखाए व्यवहार में व्यक्त होता है। इसी मानवीय धर्म की स्थापना उपन्यासकार का मंतव्य है। यही गौरवशाली भाव है। रहीम के माध्यम से कहलवाया है – ''धर्म रहेगा, धरती रहेगी किन्तु शाही सत्ता सदा नहीं रहेगी। भगवान पर निष्ठा रखते हुए महाराणा ने अपने सम्मान और गौरव को अमर बना दिया है।''[118] मानवीय धर्म का तथा गौरवमयी उदार चारित्रिक मूल्यों का प्रतिष्ठापन है। सुखमयी एवं शांतिमयी जीवन भी मानव की महती आकांक्षा एवं आवश्यकता है। सुख, शांति, मंगलमयी जीवन, दया, करूणा, अहिंसा आदि मानवीय मूल्यों के प्रति चेतन भाव जागृत करना भी उपन्यासकार का केन्द्रीय विचार रहा है। जैन मुनि के द्वारा कहलवाया है कि – ''आदमी सुख और शांति से जीना चाहता है, शहंशाह! वह अपनी आत्मा, अपनी रूह को पहचानता है। वह सभी बंधनों से छुटकारा पाकर अपनी आत्मा का उत्कर्ष चाहता है। खाने–पीने की जिंदगी ही सबकुछ नहीं है। गाँव हो, नगर हो, राज्य की राजधानी हो। सबका सुख और शांति शासक पर निर्भर है। इसलिए जरूरत है – अहिंसा, करूणा और प्रेम की, युद्ध की नहीं। प्रजा को जंग नहीं शांति चाहिए।''[119] ऐसे ही विचार यवन राजकुमारी हला के द्वारा भी व्यक्त करवाए हैं। कहती है – ''कुमार! इस संसार में शांति एवं सम्मान से जीना ही सबसे बड़ी समस्या है। मैं समझती हूँ कि धर्म, समाज और राज्य सब इसी के लिए बनाए गए हैं। दिन–रात भटकना, युद्ध, हत्या, लूटपाट यह कोई जीवन का रूप नहीं है।''[120] मानव का जीवन श्रेष्ठ लक्ष्य की साधना है और श्रेष्ठ लक्ष्य वह है, जो मानव का निर्माण करता है। इस विचार को व्यक्त करते हुए शत्रुघ्न प्रसाद ने दया, करूणा, विवेकशीलता के लिए भी चिंतन व्यक्त करते हुए कहा है कि – ''साधना के साथ–साथ साध्य ऊँचा होना चाहिए। यदि शस्त्रों का अभ्यास हो और प्रयोग का लक्ष्य ऊँचा न हो तो हम राक्षस बन जाएंगे। लक्ष्य तो श्रेष्ठ मनुष्य का निर्माण है। श्रेष्ठ मनुष्य माता और मातृभूमि के प्रति निष्ठावान होता है। मानव मात्र के प्रति स्नेही और उदार होता है। प्राणि मात्र के लिए दयालु होता है। शक्ति के साथ विवेक आवश्यक है।''[121] राष्ट्र के प्रति समर्पण, साहस, संकल्प दीन के प्रति दया भाव, मानवीयता राजा का धर्म है और व्यक्ति का भी। ये गुण मानव को मानव बनाते हैं। इस भाव की प्रतिष्ठा के साथ आत्मविश्वास और संयम का संदेश देते हुए कोटा देवी से कहलवाया है कि – ''वाक् संयम साधना है। जब मानव संकल्प करता है तो प्रकृति भी सहायता करती है। दुखी प्राणी के दुख से सुख न पाओ। दीन दुखी पर कीचड़ मत उछालो। मानुष तन में मानुष भाव लाओ। बल है तो पापी हत्यारे को दण्ड दो, पर दुखी को और दुखी मत करो। भूखे को अन्न देना, प्यासे को पानी देना, दुखी को प्यार देना ही धर्म है। शिव ने विष को पचाया था। नीलकण्ठ होना शिवत्व है। प्रजा को चिंतामुक्त करना राजधर्म है। इसी राजधर्म के लिए राजदण्ड धारण होता है। कोटा देवी सोच रही थी – साहस को खंडित नहीं

होना है। इस भूमि माँ के लिए, इस पवित्र सतीसर के लिए रक्त का बिन्दु–बिन्दु समर्पित होना है। आत्म–शक्ति है। आत्म–विश्वास है। बुद्धिरूपिणी देवी साथ है।''[122]

शत्रुघ्न प्रसाद ने अहंकार को मानवता का विनाशक माना है। अहंकार से दूर रहने की सीख प्रदान करते हुए कहा है – ''मनुष्य की बौद्धिक शक्ति, धन शक्ति, शारीरिक शक्ति और समूह शक्ति किसी–न–किसी कारण अहंकार जगता है। मद उमड़ता है। दंभ सिर उठाता है। दूसरे को हीन मानता है। दूसरे का दमन करता है। आत्म सम्मान और सबका सम्मान ही मनुष्यता है।''[123] अहंकार से मुक्ति एवं आत्म सम्मान के गुण की स्थापना के साथ ही प्रेम की निर्मल भावना का विचार भी प्रस्तुत किया है। लिखा है कि – ''यह प्रेमी मन की रीझ है। मन की मनमानी है। सचमुच यही प्रेम है। यह प्रेम किसी बाड़ी में नहीं अंकुरता, किसी हाट में नहीं बिकता। यह तो मन की स्थिति है। मन का निश्छल अर्पण है।''[124]

स्त्री ममता, दया, करूणा की मूर्ति होती है। परिवार के भी मूल्य है। पिता, पुत्र, पत्नी का परस्पर सद्व्यवहार ही परिवार धर्म है। उषा देवी की ममता में मातृत्व धर्म का निर्वाह दिखाया गया है। उषा देवी सिसक–सिसक कर विनती करने लगी – हे करूणाकर तथागत! मैं इस राजभवन में घुटती रहूँ और मेरा पुत्र पाटलिपुत्र में जूझ मरे। मेरा क्या अपराध है। माँ की ममता, करूणा की भीख माँग रही है।''[125] महारानी सौम्यदर्शना के भाव भी पत्नी धर्म के निर्वाह को व्यक्त करते हैं। वह कहती है – ''आपके मंगल की चिंता भी मेरी है, महाराज! मुझे अधिकार नहीं, आपका यशस्वी जीवन चाहिए। इस कुल का तथा राज्य का मंगल। पाप, तेज और यश दोनों को नष्ट कर देता है।''[126] यही पत्नी धर्म है। पारिवारिक मूल्य है। कर्म और परिश्रम ही जीवन का आधार है। इसी से जीवन में खुशहाली आती है। परिश्रम और कर्म का संदेश उपन्यासकार ने पद–पद पर प्रदान किया है। विषमशील कहता है – ''आश्रम में श्रम ही तो प्रधान है पिताश्री! वह तो तप का स्थान है, तपोवन। जब श्री कृष्ण ने श्रम किया था तो मैं क्यों विश्राम करूँ। मनुष्य परिश्रम से ही आगे बढ़ता है।''[127] कुमार महेन्द्र ने भी कहा है – ''बुद्ध की स्तुति के साथ श्रम का संगीत – यही तो जीवन की पूर्णता है। इसी श्रम संगीत पर सब कुछ निर्भर है। मंदिर, चैत्य, विहार और इस राजभवन का वैभव – सब इसी पर। श्रम ही दीप का आलोक और साम्राज्य की शक्ति।''[128] 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में मजहबी सियासत, विश्वास–अविश्वास, जीवन–लक्ष्य आदि पर विचार व्यक्त करते हुए मानवता व मानव कल्याण की प्रतिष्ठा की गई है। फकीर सरमद बोल उठे – ''मजहब तो खुदा तक पहुँचने का रास्ता बताता है। धर्म तो दुनिया में जीने का ढंग भी सिखाता है। लेकिन मजहबी सियासत तो तख्तोताज को गलत रास्ता बता देती है। सच यही है कि धर्म आदमी को इन्सान बनाता है। राजाओं और शाहों को मानव कल्याण की याद दिलाता है। उपनिषद् में बताया गया है कि वह हर बशर और बुत में मौजूद है। हर बुत या मूरत में जिंदगी है और हर कुफ्र यानी अविश्वास में विश्वास यानी ईमान छिपा हुआ है। भय

नहीं, विश्वास चाहिए। जीवन और जीवन लक्ष्य के प्रति विश्वास चाहिए। अमीचन्द! श्री कृष्ण ही बुद्ध है। ईसा है। पैगम्बर है। समय–समय पर हर देश में किसी–न–किसी रूप में अवतरित होते हैं। मानव–मानव के मध्य अन्तर करना अनुचित है। इस सत्य को सबके ग्रन्थों से निकालकर सामने रखना है। मानव मात्र के कल्याण के लिए यह करना है। संकल्प है।''[129]

शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने उपन्यासों में चिंतन–मनन एवं भावनात्मक कल्पना द्वारा ऐसी धारणाएँ एवं स्थापनाएँ दी है जो मानव जीवन को आनन्दपूर्ण एवं सौन्दर्यपूर्ण बना सके और शिव रूप बनकर कल्याणकारी एवं मंगलकारी बन सके। सभी जीवन मूल्य मानवता की प्रतिष्ठा में समाहित हैं। मानव कल्याण, देश सेवा, सत्य निष्ठा, समाज सेवा, सच्चरित्रता आदि के साथ 'वसुधैव कुटुम्बकम' व 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया' की भावना व्यक्त करते हुए जीवन–दर्शन प्रदान कर जीवन–मूल्यों को प्रगतिशील चेतन भाव प्रदान किया है। जीवन को आन्नदमय एवं सुखमय बनाने तथा मानवीय सौन्दर्य प्रदान करने में उपन्यासकार सफल रहे हैं।

निष्कर्षतः शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक–धार्मिक एवं जीवन मूल्य परक चेतना जागृत की गई है।

संदर्भ सूची

1. साहित्यिक निबन्ध – राजनाथ शर्मा, पेज – 315
2. समान्तर कोश (हिन्दी थियारस) – अरविन्द कुमार – सन्दर्भ खण्ड 39
3. वृहद् हिन्दी कोश – कालिका प्रसाद, पेज – 930
4. कालचेतना एक साहित्यिक आयाम – समीर महाजन, पेज – 23,24
5. मानक हिन्दी कोश – रामचन्द्र वर्मा, पेज – 520
6. प्रामाणिक हिन्दी कोश – रामचन्द्र वर्मा, पेज – 158
7. कालचेतना एक साहित्यिक आयाम – समीर महाजन, पेज – 35
8. भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना – डॉ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, पेज– 6
9. कालचेतना एक साहित्यिक आयाम – समीर महाजन, पेज – 63
10. समान्तर कोश – अरविन्द कुमार – अनुक्रम खण्ड, पेज 969
11. हिन्दी पर्यायवाची कोश – भोलानाथ तिवारी, पेज – 185
12. मानक हिन्दी कोश – रामचन्द्र वर्मा, पेज – 274
13. हिन्दी विश्वकोश – रामप्रसाद त्रिपाठी, पेज – 282
14. मानविकी पारिभाषिक कोश – डॉ नगेन्द्र – मनोविज्ञान खण्ड, पेज – 75
15. हिन्दी साहित्य कोश – धीरेन्द्र वर्मा, पेज – 280
16. कालचेतना एक साहित्यिक आयाम – समीर महाजन, पेज – 10,11
17. भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना – डॉ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, पेज – 2,3
18. भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना – डॉ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, पेज – 6
19. कालचेतना एक साहित्यिक आयाम – समीर महाजन, पेज – 96–97
20. कालचेतना एक साहित्यिक आयाम – समीर महाजन, पेज – 98
21. भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना – डॉ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, पेज – 9
22. काव्य शास्त्र – डॉ भागीरथ मिश्र, पेज – 76
23. भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना – डॉ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, पेज – 21
24. शब्दार्थ दर्शन – रामचन्द्र वर्मा, पेज – 503
25. संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश – शिवराम आप्टे, पेज – 851, 550
26. आदर्श हिन्दी शब्दकोश :– पं. रामचन्द्र पाठक, पेज–538
27. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ राजेश रानी, पेज – 101

28. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ राजेश रानी, पेज – 107
29. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ राजेश रानी, पेज – 100
30. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ राजेश रानी, पेज – 103
31. उपन्यास और लोकतन्त्र – मैनेजर पाण्डेय, पेज – 17
32. मानक हिन्दी कोश – रामचन्द्र वर्मा, पेज – 6
33. मधुमती–सितम्बर – 1991, पेज – 24
34. मधुमती–सितम्बर – 1992, पेज – 24
35. मधुमती–सितम्बर – 1992, पेज – 26
36. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुध्न प्रसाद, पेज – 61
37. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुध्न प्रसाद, पेज – 98
38. शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश – शत्रुध्न प्रसाद, पेज – 78,79
39. साक्षात्कार – जून–जुलाई – 2010, पेज – 108
40. सदानीरा – मई–जुलाई – 2016, पेज – 20
41. सदानीरा – अगस्त–अक्टुबर – 2016, पेज – 56
42. मधुमती–सितम्बर – 1997, पेज – 26,27,28
43. वृहद् हिन्दी कोश – कालिका प्रसाद, पेज – 1201
44. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ राजेश रानी, पेज – 1
45. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर – रामचन्द्र वर्मा, पेज – 956
46. अमृतलाल नागर की कथादृष्टि के समाजशास्त्रीय आयाम – डॉ सरोज सिंह, पेज– 113
47. अमृतलाल नागर की कथादृष्टि के समाजशास्त्रीय आयाम – डॉ सरोज सिंह, पेज – 113
48. अमृतलाल नागर की कथादृष्टि के समाजशास्त्रीय आयाम – डॉ सरोज सिंह,पेज– 5
49. हिन्दी शब्दसागर – डॉ श्यामसुन्दर दास, पेज – 956
50. समाजशास्त्र – सत्यकेतु विद्यालंकार, पेज – 29
51. हिन्दी उपन्यास : सृजन एवं सिद्धान्त – नरेन्द्र कोहली, पेज – 28
52. हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना – रत्नाकर पाण्डेय, पेज – 155,156
53. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ. राजेश रानी, पेज – 5
54. अमृतलाल नागर की कथादृष्टि के समाजशास्त्रीय आयाम – डॉ सरोज सिंह, पेज – 78
55. हेमचन्द्र–विक्रमादित्य – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 172, 213
56. हेमचन्द्र–विक्रमादित्य – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 172
57. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 274–277

58. तुंगभद्रा पर सूर्योदय – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 136,137
59. तुंगभद्रा पर सूर्योदय – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 274
60. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 201
61. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 147
62. तुंगभद्रा पर सूर्योदय – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 119,120
63. तुंगभद्रा पर सूर्योदय – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 219
64. सिद्धियों के खण्डहर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 40,42
65. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज 95
66. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 1
67. सुनो भाई साधो – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 203
68. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज 39
69. सुनो भाई साधो – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 133,197,205
70. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज 76
71. मधुमती–सितम्बर – 1991, पेज – 29
72. सदानीरा – मई–जुलाई–2016 – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज 21–22
73. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 191
74. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ राजेश रानी, पेज – 128
75. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ – डॉ द्वारिकाप्रसाद शर्मा, पेज – 549
76. हिन्दी शब्दकोश – हरदेव बाहरी, पेज – 416
77. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ राजेश रानी, पेज – 126
78. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ राजेश रानी, पेज – 126
79. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना – डॉ शिवशंकर त्रिवेदी, पेज – 265
80. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ राजेश रानी, पेज – 129
81. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ – डॉ द्वारिकाप्रसाद शर्मा, पेज – 1148
82. हिन्दी शब्दकोश – हरदेव बाहरी, पेज – 794
83. प्रामाणिक हिन्दी कोश – रामचन्द्र वर्मा, पेज – 1296
84. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ राजेश रानी, पेज – 148
85. भारतीय संस्कृति – डॉ देवराज, पेज – 21
86. संस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिंह दिनकर, पेज – 15
87. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना – डॉ शिवशंकर त्रिवेदी, पेज – 19
88. कल्याण–हिन्दू संस्कृति विशेषांक, पेज – 76

89. विश्व इतिहास की झलक – जवाहर लाल नेहरू, पेज – 58
90. हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों का नव मूल्यांकन – उदयवीर शर्मा, पेज – 41
91. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 19
92. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 26
93. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 50
94. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 133, 150, 251, 247
95. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 184
96. तुंगभद्रा पर सूर्योदय – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 165,166
97. सुनो भाई साधो – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 106
98. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 35
99. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 2
100. सदानीरा – फरवरी–अप्रैल – 2016, पेज – 65
101. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 256
102. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 20
103. सदानीरा – मई–जुलाई–2015, पेज – 12
104. हेमचन्द्र–विक्रमादित्य – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 66
105. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ राजेश रानी, पेज – 164,165
106. हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य – डॉ मोहिनी शर्मा, पेज – 1,3
107. हमारा दृष्टिकोण – नवम्बर 2014, पेज – 3, 6
{अ.भा.सा.प. राजस्थान – परिवर्तित सामाजिक परिवेश में धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मूल्य}
108. हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य – मोहिनी शर्मा, पेज – 4
109. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – डॉ राजेश रानी, पेज – 165
110. सुनो भाई साधो – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 155,195,198,250
111. तुंगभद्रा पर सूर्योदय – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 220,218
112. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 92
113. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 16
114. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 152
115. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 130
116. तुंगभद्रा पर सूर्योदय – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 57
117. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 36,88
118. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 226
119. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 180

120. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 254
121. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 39
122. कश्मीर की बेटी – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 37,38,89,95,256
123. कश्मीर की बेटी – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 53
124. हेमचन्द्र–विक्रमादित्य – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 83
125. सिद्धियों के खण्डहर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 227
126. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 37
127. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 13
128. सिद्धियों के खण्डहर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 9
129. शहजादा दाराशिकोह : दशहत का दंश – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 6,12,13,79,146

षष्टम अध्याय

शत्रुघ्न प्रसाद का समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासकारों के साथ तुलनात्मक अध्ययन

षष्टम अध्याय

शत्रुघ्न प्रसाद का समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासकारों के साथ तुलनात्मक अध्ययन

शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना 1980 के बाद में की है। गोपाल राय ने 'उपन्यास का इतिहास' पुस्तक में इस काल को समकालीन परिदृश्य कहा है। यद्धपि विवेच्य अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद के रचनाकाल के उपन्यासकारों और एक ही इतिहास काल से सम्बन्धित रचनाओं को लिया जा रहा है, अनेक उपन्यासकारों ने इस काल में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है परन्तु विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, शरद पगारे, मनमोहन सहगल, भवतीशरण मिश्र, मेवाराम, राजेन्द्रमोहन भटनागर एवं लक्ष्मीनारायण नंदवाना के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा। यह तुलनात्मक अध्ययन उनकी मुख्य रचनाओं पर आधारित होगा परन्तु समकालीन इतिहास पर आधारित रचनाओं को मुख्य आधार बनाया जाएगा।

शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'शिप्रा साक्षी है' ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी पर आधारित रचना है। विश्वम्भर नाथ उपाध्याय रचित 'जोगी मत जा' एवं शरद पगारे रचित 'गंधर्वसेन' भी इसी काल से सम्बन्धित रचनाएँ हैं। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' में चौदहवीं शताब्दी के भारत का चित्रण किया गया है। मनमोहन सहगल रचित 'काला सच' भी इसी काल पर केन्द्रित रचना है। शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'कश्मीर की बेटी' एवं मनमोहन सहगल रचित 'जेहलम की बेटी उर्फ घटता–बढ़ता चाँद' भी कश्मीर के जीवन पर केन्द्रित रचनाएँ हैं। शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'सुनो भाई साधो' भगवतीशरण मिश्र रचित 'देख कबीरा रोया' व राजेन्द्रमोहन भटनागर रचित 'महात्मा' कबीर कालीन इतिहास पर आधारित रचनाएँ हैं। शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'अरावली का मुक्त शिखर' व राजेन्द्र मोहन भटनागर रचित 'नीले घोड़े का सवार' व 'एक अन्तहीन युद्ध' अकबर–महाराणा प्रताप के संघर्ष को चिचित करते उपन्यास हैं, वहीं शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' मेवाराम रचित 'दाराशुकोह' तथा लक्ष्मीनारायण नंदवाना रचित 'प्रीत पसारे पंख' शाहजहाँ व औरंगजेब काल से सम्बन्धित रचनाएँ हैं। विवेच्य अध्याय में समकालीन इतिहास या विषय आधारित उपन्यासों को विशिष्ट महत्व देते हुए तुलनात्क अध्ययन किया जाएगा। विषय वस्तु, इतिहास दृष्टि, कल्पना प्रयोग, युग धर्म एवं कलात्मक विशिष्टता आदि तथ्यों पर आधृत तात्विक विवेचन करते हुए तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

6.1 समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासकारों का परिचय –

विवेच्य अध्याय में विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, शरद पगारे, मनमोहन सहगल, भगवतीशरण मिश्र, राजेन्द्रमोहन भटनागर व लक्ष्मीनारायण नन्दवाना की रचनाओं का शत्रुघ्न प्रसाद की रचनाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा। शत्रुघ्न प्रसाद का परिचय शोध ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में विस्तारपूर्वक दिया गया है। अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार हैः–

(1) विश्वम्भर नाथ उपाध्याय – हिन्दी की अनेक विधाओं में श्रेष्ठ रचनाएँ प्रदान करने वाले वामपंथी विचारधारा के साहित्यकार विश्वम्भर नाथ उपाध्याय का जन्म पं. गयादीन उपाध्याय एवं श्रीमती प्रयाग कँवर के घर 7 जनवरी 1925 को उत्तर प्रदेश के इटावा जिले के अधासी गाँव में हुआ। जयपुर स्थित उनका भवन 'गया–प्रयाग' के नाम से है, जो उनकी माता–पिता के प्रति निष्ठा का प्रतीक है। उपाध्याय जी अध्यापक, संपादक और विविध विधाओं के रचनाकार रहे हैं। उनकी उच्च शिक्षा आगरा में हुई। डी.लिट. की उपाधि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से प्राप्त की। अनेक उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्यापन का कार्य किया। राजस्थान विश्वविद्यालय में हिन्दी के रीडर, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष रहे और कानपुर विश्वविद्यालय में उप कुलपति के पद को भी सुशोभित किया। साहित्य संदेश, समालोचक एवं मधुमाधवी पत्रिकाओं का संपादन भी किया। आपने हिन्दी में आलोचनात्मक साहित्य, काव्य साहित्य, नाट्य साहित्य एवं उपन्यास साहित्य में विशिष्ट लेखन किया है।

आपको राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर द्वारा सर्वोच्च मीरा पुरस्कार, हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा प्रेमचन्द पुरस्कार, सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार, के.के. बिड़ला पुरस्कार, महाराष्ट्र साहित्य अकादमी का धर्मवीर भारती सारस्वत पुरस्कार आदि अनेक पुरस्कारों से नवाजा गया है।

आपका उपन्यास साहित्य में विशिष्ट योगदान रहा है। रीछ, पक्षधर, दूसरा भूतनाथ, विक्षुब्ध, कठपुतली, प्रतिरोध, जाग मच्छन्दर गोरख आया, जोगी मत जा, विश्वबाहु परशुराम एवं आधुनिक सिंहासन बत्तीसी नामक सामाजिक–ऐतिहासिक उपन्यास हिन्दी उपन्यास साहित्य की विशिष्ट थाती है। 'जोगी मत जा' विवेच्य अध्याय में तुलनात्मक अध्ययन की परिधि में लिया जा रहा है।

(2) शरद पगारे – इतिहास के विद्यार्थी एवं प्राध्यापक प्रोफेसर शरद पगारे का जन्म 5 जुलाई, 1931 को खण्डवा मध्यप्रदेश में हुआ। विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त हुई। 1987 में रोटरी इंटरनेशनल इल्योनाय, अमेरिका द्वारा विदेश पढ़ाने हेतु विश्व के दस चयनित प्रोफेसरों में एक, तदनुसार शिल्पकर्ण–विश्वविद्यालय बैंकाक में अध्यापन करवाया।

आपके द्वारा रचित कहानी, उपन्यास, इतिहास की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई है। ऐतिहासिक लेखों का प्रकाशन अनेक प्रख्यात पत्रिकाओं में हुआ है।

आपको मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् भोपाल का विश्वनाथ सिंह पुरस्कार, अखिल भारतीय दिव्य पुरस्कार, मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भोपाल का वागीश्वरी पुरस्कार, मध्यप्रदेश लेखक संघ, भोपाल का अक्षर आदित्य अलंकरण, अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन का हिन्दी भाषा भूषण सम्मान, साहित्य मण्डल श्रीनाथ द्वारा हिन्दी भाषा भूषण सम्मान, मध्य प्रदेश कला

परिषद भोपाल का अभिनव शब्द शिल्पी सम्मान, भोपाल का बालकृष्ण शर्मा नवीन सम्मान, कोलकाता का साहित्य शिरोमणि सारस्वत सम्मान भी प्राप्त हुए हैं।

आपके द्वारा रचित गुलारा बेगम, गंधर्वसेन, बेगम जैनाबादी, उजाले की तलाश, पाटलिपुत्र की साम्राज्ञी, मेरा प्यार लौटा दो आदि प्रमुख उपन्यास हैं। 'गंधर्वसेन' विवेच्य अध्याय के तुलनात्मक अध्ययन की परिधि में लिया जा रहा है।

(3) मनमोहन सहगल – डॉ मनमोहन सहगल का जन्म 15 अप्रैल, 1932 को पंजाब में हुआ। हिन्दी में पी.एच.डी. एवं डी.लिट. की उपाधि प्राप्त है। पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला में प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष रहे हैं। अनेक विधाओं में लेखन किया है। अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हैं। जिंदगी और जिंदगी, जिंदगी और आदमी, बदलती करवटें, कश्मीर की कसक, गुरू लाधो रे, मानव छला गया, एक और रक्तबीज, अन्ना पासवान, नरमेघ, घटता–बढ़ता चाँद, अथ कॉलेज कथा, समझौते से पहले एवं काला सच इनके प्रसिद्ध सामाजिक–ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इस शोध की परिधि में आपके 'काला सच' एवं 'जेहलम की बेटी उर्फ धटता–बढ़ता चाँद' को लिया जा रहा है।

(4) राजेन्द्र मोहन भटनागर – विविध विधाओं में विपुल साहित्य के रचनाकार राजेन्द्र मोहन भटनागर का जन्म 2 मई 1938 को अम्बाला, हरियाणा में हुआ। सम्प्रति उदयपुर, राजस्थान में निवास है। एम.ए. पी.एच.डी., डी.लिट., आचार्य की उपाधि प्राप्त हैं। स्वतन्त्र लेखनरत रहे है। एक ही विषय पर अलग–अलग दृष्टिकोण से एक से ज्यादा रचनाएँ लिखने का प्रयोग इनकी विशिष्टता है। महाराणा प्रताप, मीरा बाई, स्वामी विवेकानन्द, सुभाषचन्द बोस, सूरदास, कबीर आदि ऐतिहासिक चरित्रों पर एक से अधिक रचनाएँ लिखी है। लगभग 90 रचनाएँ प्रकाशित है। उपन्यास, नाटक, कहानी, आलोचना, विचार साहित्य, बाल साहित्य एवं गज़ल साहित्य जैसी हिन्दी लेखन की विविध विधाओं पर लेखनी चलाई है। राजस्थान साहित्य अकादमी का सर्वोच्च मीरा पुरस्कार, महाराणा कुम्भा पुरस्कार, साहित्य सम्मान पुरस्कार, नाथद्वारा, हिन्दी भाषाभूषण पुरस्कार, नाहर सम्मान, घनश्याम दास सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार, अखिल भारतीय समर स्मृति सम्मान आदि अनेक पुरस्कारों से अलंकृत हो चुके हैं। नीले घोड़े का सवार, एक अन्तहीन युद्ध, सूर्यवंश का प्रताप, एकलिंग का दीवान, जोगिन, न गोपी न राधा, तरूण संन्यासी, दिल्ली चलो, अगस्त क्रान्ति, अन्तिम सत्याग्रही, महाबानो, राजराजेश्वर, गन्ना बेगम, युगपुरूष अम्बेडकर, कायदे आजम, सूर्याणी, सिद्ध पुरूष, आदि इनके द्वारा रचित प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं। अनेक सामाजिक, राजनीतिक उपन्यासों की भी रचना की है। विवेच्य अध्याय में नीले घोड़े का सवार, एक अन्तहीन युद्ध एवं महात्मा उपन्यासों को लिया जा रहा है।

(5) भगवतीशरण मिश्र – प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ भगवती शरण मिश्र का जन्म 27 मार्च 1939 को हुआ। अर्थशास्त्र में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। भारतीय प्रशासनिक सेवा में

रहते हुए अनेक उच्च पदों को सुशोभित किया। हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, बांग्ला, भोजपुरी, मैथिली आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता है। अकादमी पत्रिका, वयस्क शिक्षा समाचार, राजभाषा पत्रिका व आख्यायिका मासिक पत्र का संपादन भी किया है। अनेक संस्थानों में श्रेष्ठ व्याख्यान करने का श्रेय भी प्राप्त है। अनेक विधाओं में लेखन किया है। अनेक संस्थानों में लेखन किया है। लगभग 78 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का प्रेमचन्द पुरस्कार, राष्ट्रीय बाल विकास परिषद का श्रेष्ठ बाल साहित्यकार पुरस्कार, यशपाल पुरस्कार, मानस संगम द्वारा प्रथम पुरस्कार, अ. भा. रा. सा. सम्मेलन का पं. हीरालाल शुक्ल व श्रीमती राजेश्वरी देवी पुरस्कार, हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा साहित्यिक कृति सम्मान, लाल दीवान चन्द ट्रस्ट का लाईफ टाइम अचीवमेन्ट पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। सम्प्रति दिल्ली में निवास है। अनेक विश्वविद्यालयों से इनके साहित्य पर शोध कार्य भी हुआ है। अनेक भाषाओं में इनकी कृतियों का अनुवाद भी हुआ है। 'एकला चलो रे' इनका प्रथम उपन्यास है। पहला सूरज, पवन पुत्र, प्रथम पुरूष, पीताम्बरा, कॉके लागू पाँव, गोविन्द गाथा, देख कबीरा रोया, नदी नहीं मुड़ती, बंधक आत्माएँ, सूरज के आने तक, एक ओर अहल्या, लक्ष्मण रेखा, शांतिदूत, अथ मुख्यमंत्री कथा आपके द्वारा रचित प्रमुख उपन्यास हैं। 'देख कबीरा रोया' विवेच्य अध्याय में लिया जा रहा है।

(6) मेवाराम – इतिहासकार, उपन्यासकार मेवाराम का जन्म 15 जुलाई 1944 को फर्रूखाबाद, उत्तरप्रदेश में हुआ। सम्प्रति इलाहाबाद में निवास है। समाजशास्त्र के विद्यार्थी रहे हैं। सरकारी पदों पर कार्यरत रहे। अपर निबन्धक सहकारी समितियाँ, उत्तर प्रदेश के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद स्वतन्त्र लेखन में रत हैं। सुल्तान रजिया, दाराशुकोह, शाह–ए–आलम, बदनसीब बादशाह हुमायूँ, दास्ताने आगरा आपके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। विवेच्य अध्याय की परिधि में 'दाराशुकोह' को लिया जा रहा है।

(7) डॉ लक्ष्मीनारायण नन्दवाना – डॉ लक्ष्मीनारायण नन्दवाना का जन्म 15 अक्टूबर 1944 को उदयपुर में हुआ। आपने एम.ए., एल.एल.बी. व पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। अनेक मानद पदों को सुशोभित किया है। राजस्थान साहित्य अकादमी के पूर्व सचिव रहे हैं। उदयपुर विचार मंत्र के संरक्षक रहे हैं। अनेक पुस्तकों का संपादन किया है। आलोचना एवं व्यंग्य की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। 'प्रीत पसारे पंख' पंडित जगन्नाथ एवं लवंगी बेगम के प्रेम पर आधारित मार्मिक उपन्यास है जिसका विवेच्य अध्याय में अध्ययन किया जा रहा है।

6.2 शत्रुघ्न प्रसाद का विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के साथ तुलनात्मक अध्ययन

(1) विषयवस्तु – शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की केन्द्रीय विषयवस्तु मध्यकालीन इतिहास से ली गई है परन्तु वैदिक जीवन और ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के प्रसंगों पर भी रचनाएँ हैं। उनकी विषयवस्तु भारतीय इतिहास के उन पक्षों पर अवलम्बित है जो भारतीय युगधारा को

निरन्तरता प्रदान करते हैं। 'सरस्वती–सदानीरा' में वैदिक कालीन जीवन की निरन्तरता एवं शनैः–शनैः विकसित सांस्कृतिक जीवन को दर्शाया है। समन्वय की साधना है। पणि संस्कृति के माध्यम से सिन्धु घाटी सभ्यता को भी इसी में सम्मिलित किया है। विक्रम संवत के प्रवर्तक विक्रमादित्य के युग पर आधारित उपन्यास 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास उज्जयिनी महाराज गन्धर्वसेन और कालकाचार्य से सम्बन्धित संघर्ष, शकों द्वारा उज्जयिनी का पराभव और विक्रमादित्य द्वारा पुनः उज्जयिनी पर अधिकार करने से सम्बद्ध घटनाओं पर केन्द्रित है। अन्य सभी उपन्यास मध्यकालीन त्रासदी को दर्शाते हैं।

विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के ऐतिहासिक उपन्यासों में 'विश्वबाहु परशुराम', 'जाग मच्छन्दर गोरख आया' और 'जोगी मत जा' हैं। 'विश्वबाहु परशुराम' में पौराणिक पात्र परशुराम के माध्यम से युग यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान की है। 'जाग मच्छन्दर गोरख आया' में मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरखनाथ जैसे नाथपंथी साधकों के माध्यम से नाथ–सिद्ध साधना पद्धति व उनकी योग साधना के सामाजिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक पक्षों को उद्घाटित किया गया है। 'जोगी मत जा' उपन्यास ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी की घटनाओं पर आधारित है। लोकमानस में प्रचलित भर्तृहरि के जीवन को चित्रित किया है। विक्रम संवत के प्रवर्तक विक्रमादित्य और भर्तृहरि को भाई दर्शाया गया है। विवेच्य अध्याय मुख्यतः 'शिप्रा साक्षी है' और 'जोगी मत जा' पर ही केन्द्रित है। 'जोगी मत जा' व 'शिप्रा साक्षी है' की विषयवस्तु उज्जयिनी पर शक आक्रमण से सम्बन्धित है। शत्रुघ्न प्रसाद ने दर्शाया है कि गंधर्वसेन द्वारा सरस्वती अपहरण के बाद क्रुद्ध कालकाचार्य शकों को आमन्त्रित करते हैं। उज्जयिनी शकों द्वारा पराभूत होती है। गंधर्वसेन मारे जाते हैं। विषमशील विक्रमादित्य माध्यमिका नगरी के विद्यापीठ में रहकर संघर्ष करते हुए लाट् आदि जनपदों तथा दक्षिण के शातकर्णि का सहयोग लेकर शकों को पराजित करते हैं। विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने विक्रमादित्य और भर्तृहरि दोनों को पहाड़ियों के क्षेत्र में रहकर संघर्ष करते दिखाया है। काल भैरव, सिद्धयोगिनीमाया शक्ति, पिंगल राजकुमार द्वारा भर्तृहरि को सहयोग एवं शक्ति प्रदान कर विजयी बनाया गया है। भर्तृहरि ही नायक है। भर्तृहरि ही शासक बनते हैं। भर्तृहरि–पिंगल की कथा ने भी महत्वपूर्ण स्थान पाया है। भर्तृहरि द्वारा संन्यास ग्रहण करने के उपरान्त विक्रमादित्य उज्जयिनी का शासक बनता है। 'शिप्रा साक्षी है' में घटनाएँ इतिहास द्वारा प्रमाणित सी प्रतीत होने वाली है। इस उपन्यास की विषयवस्तु जहाँ गंधर्वसेन, सरस्वती, कालकाचार्य, शक विजय, विक्रमादित्य आश्रम एवं विद्यापीठ संस्कृति पर आधारित है वहीं 'जोगी मत जा' की विषयवस्तु कालकाचार्य एवं गंधर्वसेन के गुप्तचर शुक–सारण की चमत्कारिक सिद्धियों से युक्त क्रियाओं, काल भैरव एवं सिद्धयोगिनी की चमत्कारिक माया रूपी शक्तियों, भर्तृहरि–पिंगला की प्रेमकथा, पिंगला द्वारा माया के वशीभूत होकर विश्वासघात करता, भर्तृहरि का कवित्वमयी व्यक्तित्व चित्रण, भर्तृहरि का गोरखनाथ के सम्पर्क में आना और संन्यासी बनना आदि चमत्कारपूर्ण–रहस्मयी घटनाओं पर आधारित है। विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के उपन्यासों की विषयवस्तु के सम्बन्ध में राघव

प्रकाश ने लिखा है कि – ''बहुत से मार्क्सवादी समीक्षक उपाध्याय जी के उपन्यासों की विषयवस्तु की आलोचना करते हैं कि बौद्धिकता के साथ समझौता किया गया है तथा रहस्य–रोमांच जोड़कर उसे रोचक बनाने का प्रयास किया गया है। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि उपाध्याय जी समस्त रचनात्मक लेखन में रोमांस (कल्पनाशीलता) को बहुत अहमियत देते हैं और वे उपन्यास लेखन में भी कथा एवं चरित्रों या परिवेश को बहुत संश्लिष्ट सहज एवं मानवीय बना देते हैं। वे विश्वास करते हैं कि रचनाकर्म को वैचारिक बंधन या विचारों की प्रस्तुति मात्र नहीं चाहिए। वे इसी अवधारणा के साथ उपन्यास रचते हैं और जहाँ जरूरत होती है वहाँ वामपंथी विचारधारा का विरोध नहीं, उसका अतिक्रमण करते हैं।.......... चेतना रहस्यमय है और रचना उस रहस्यमय चेतना का कोडिफिकेशन है, अतः वह रहस्यों, रोमांचों, अद्भुताओं से परे कैसे हो सकती है और यह भी कि जो रहस्यमय है वह अवैज्ञानिक ही हो, कहाँ आवश्यक है।''[1] शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'शिप्रा साक्षी है' की सतत् इतिहासकथा लेखकीय सर्जन शक्ति से औपन्यासिक रोचकता के साथ अपने मंतव्य को व्यक्त करती है। यहाँ रहस्य और रोमांच नहीं ऐतिहासिक यथार्थ एक स्पष्ट विचार दृष्टि के साथ व्यक्त है। रमेश शर्मा ने लिखा है कि – ''शिप्रा साक्षी है' एक अद्भुत अद्वितीय कृति है। इसमें अतीत है, इतिहास है, रस है, जो हमें भारत की उस राजनैतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत अहंकार की आत्मकेन्द्रित परिस्थिति से अवगत कराते हैं। पुस्तक में राष्ट्र है, संकल्प है, सिद्धान्त है, शिक्षा है, समाज है और उसके सरोकार भी। यह एक स्त्री के वात्सल्य और पतिभक्ति का अद्भुत समन्वय है और क्रोध–प्रतिशोध के अतिरेक में विदेशी आक्रांता को आमंत्रित करने की त्रासदी भी।''[2] 'शिप्रा साक्षी है' की गंधर्वसेन, कालकाचार्य, शक और विक्रमादित्य से सम्बन्धित इतिहास परक घटनाओं के साथ अवांतर कल्पित घटनाओं के मेल से ग्रहण की गई विषयवस्तु पर आधारित रचना है। जिसमें ऐतिहासिक यथार्थ सहज जीवन के साथ व्यक्त हुआ है। जबकि 'जोगी मत जा' उपन्यास गंधर्वसेन, कालकाचार्य एवं विक्रमादित्य के साथ–साथ भर्तृहरि–पिंगला की प्रेम कथा और काल भैरव व सिद्ध योगिनी की चमत्कारिक रहस्यमयी कथा को भी समन्वित किए है। इतिहास के यथार्थ को रहस्य और रोमांच के साथ प्रस्तुत करते हुए चमत्कारिक घटनाओं को भी विषयवस्तु का अंग बनाया गया है।

(2) इतिहास एवं कल्पना – शत्रुघ्न प्रसाद एवं विश्वम्भर नाथ उपाध्याय इतिहास को अनवरत, अखण्ड मानते हैं परन्तु विश्वम्भर नाथ उपाध्याय जनश्रुतियों पर आधारित इतिहास को भी मान्यता प्रदान करते हैं। आपकी कल्पना चमत्कारपूर्ण एवं रहस्यमयी वातावरण व घटनाओं के दृश्य उपस्थित करने में अधिक रमती है जबकि शत्रुघ्न प्रसाद ने कल्पना शक्ति का उपयोग अतीत कथा को रोचक एवं प्रामाणिक बनाने तथा आधुनिक सन्दर्भों में उपयोगी संदेश देने के लिए किया है। 'जोगी मत जा' में विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने इतिहास प्रसिद्ध शकारि विक्रमादित्य को कवि एवं नाथपंथी भर्तृहरि का भाई बताया है जो जनश्रुतियों पर

आधारित है। इतिहास की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में उन्होंने भूमिका में लिखा है कि – ''स्वर्गीय वाकणाकर ने कहा कि प्रबल और व्यापक जनश्रुति को तब तक अमान्य करना ठीक नहीं जब तक उसके विरोध में पुष्ट प्रमाण नहीं मिलते है और लोकमानस यही मानता है कि भर्तृहरि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के उज्जयिनी के प्रसिद्ध विक्रमादित्य के बड़े भाई थे। .... विक्रम के पिता गंधर्वसेन या महेन्द्रादित्य के विषय में कालकाचार्य की कथा जैनागमों में मिलती है। उस कथा को मैंने संभावित वृत्त के रूप में स्वीकार किया है, यों प्रस्तुति मैंने अपने ढंग से की है।''[3] संभावित इतिहास को प्रश्रय देकर कल्पना प्रतिभा से संयोजित उपन्यास है 'जोगी मत जा'। काल भैरव, सिद्धयोगिनी, पिंगल प्रदेश का वृत्तान्त आदि कल्पना शक्ति द्वारा निर्मित प्रसंग हैं जो इतिहास कथा जैसे ही प्रतीत होते हैं।

शत्रुघ्न प्रसाद ने 'शिप्रा साक्षी है' की अपनी बात में लिखा है कि – ''अतीत संग्रहालय की निर्जीव पाषाण मूर्ति नहीं मानव के गतिशील जीवन की अनिवार्य कड़ी है। .... इतिहास की नयी खोज बताती है कि क्रुद्ध कालकाचार्य ने साध्वी के उद्धार के लिए शकों से सहायता ली। साध्वी का उद्धार हुआ। साथ ही उज्जयिनी पर शकों का आधिपत्य हो गया। विदेशी शासन का दौर प्रारम्भ हुआ। जन–जीवन संत्रस्त हो उठा। .... विषमशील विक्रमादित्य ने उज्जयिनी को शकों से मुक्त किया। राष्ट्रीय विजय के उपलक्ष्य में विक्रम संवत् का प्रवर्तन हुआ।''[4] जैन–शैव विरोध, विद्युत्लेखा के माध्यम से विलास प्रवृत्ति दर्शाना, कालतरूणों की योजना, विक्रमादित्य–हला प्रसंग आदि कल्पना जनित प्रसंग हैं जो कथा को मनोरम एवं प्रासंगिक बनाते हैं।

(3) युग–धर्म स्थापक – प्रत्येक रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से युगीन यथार्थ को अभिव्यक्त कर युग–समस्याओं के प्रति सचेत करने का प्रयास करता है। साथ ही किसी पात्र या कथन के माध्यम से अपना मंतव्य भी व्यक्त करता है। यही चेतन दृष्टि युग–धर्म कहलाती है। विश्वम्भर नाथ उपाध्याय रचित 'जोगी मत जा' एवं शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'शिप्रा साक्षी है' में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यगत चेतना जागृत करने का सार्थक प्रयास हुआ है। राष्ट्र जब संकट में हो तो सभी भेद भुलाकर एक होना ही जनधर्म होता है। अखण्ड राष्ट्र की चिन्ता दोनों ही रचनाकारों का मूल दृष्टिकोण है। शत्रुघ्न प्रसाद ने भी 'शिप्रा साक्षी है' में दर्शाया है कि आसेतु हिमालय यह देश एक है। विषमशील विक्रमादित्य, लाट्, सुराट् आदि जनपदों से मदद लेकर भारत को एकत्व प्रदान करने का प्रयास करते हैं। भर्तृहरि के द्वारा विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने भी ऐसा ही प्रयास किया है। भर्तृहरि ने उन्हें लिखा था – ''भारतवर्ष के अस्तित्व और अस्मिता के प्रश्न पर हमें एक हो जाना चाहिए। यह राम–रावण युद्ध है। महाभारत के युद्ध में भी अधर्म और अन्याय के विरूद्ध संग्राम हुआ था। बर्बर शकों के आतंक और अत्याचार से महाकाल की महिमा मलीन हो गई है। .... उज्जयिनी की रक्षा कीजिए और इस युद्ध में भाग लेकर सुयश पाइए।''[5]

राजनैतिक एकता, जनमानस का सहयोग, युवा शक्ति का उत्साह, देशरक्षा का भाव एवं प्रजाहितकारी शासन दोनों रचनाकारों ने किया है। राष्ट्रहित, प्रजाहित एवं राजनैतिक एकता प्रत्येक युग की माँग है। 'शिप्रा साक्षी है' में काल तरूणों ने सभी समुदायों में एकत्व का भाव जागृत किया है। 'जोगी मत जा' में शुक–सारण एवं भर्तृहरि के प्रयासों ने सभी जनपदों एवं सभी समुदायों में राजनैतिक एकता व देश हित का भाव भर दिया। लिखा है – शकों के जंगलीपन से क्रुद्ध भारतीय जनता, किसान, श्रमिक, शिल्पी और शासक सभी वर्ग उज्जयिनी की मुक्ति को देशमुक्ति मान रहे थे। प्रत्येक देशभक्त धर्मज्ञों, पंडितों, संन्यासियों, साधकों को प्रचार के लिए भेजा गया था। गीता के श्लोक गूँजने लगे थे।''[6] राजधर्म का निर्वाह भर्तृहरि के माध्यम से विक्रमादित्य एवं पिंगला प्रसंगों में दिखाया गया है। सच्चा न्याय राजधर्म है। भारतीय समाज में धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग, वर्ण एवं जाति का भेद असाध्य रोग की तरह व्याप्त है। शैव–जैन का मतभेद दोनों ही रचनाकारों ने दर्शाया है। जाति का भेद भी एक सच्चाई है जिसने सभी वर्गों को एक नहीं होने दिया। 'शिप्रा साक्षी है' में गजमुख आदि के साथ अछूत व्यवहार और 'जोगी मत जा' में सर्वमंगला की कथा जाति–भेद की क्रूर सच्चाई को व्यक्त करती है। शत्रुघ्न प्रसाद ने यह कहकर कि स्वयं महाकाल इसमें भेद नहीं करते है तो मनुष्य यह भेद क्यों करता है, समाज में समानता की स्थापना का भाव व्यक्त किया है। सौम्यदर्शना के मातृत्व भाव को दोनों उपन्यासकारों ने महत्व दिया है। नारी की दयनीय दशा का चित्रण कर नारी सम्मान एवं नारी गौरव की प्रतिष्ठा की गई है। सरस्वती के माध्यम से तो नारी व्यथा व्यक्त हुई ही है। 'शिप्रा साक्षी है' में विद्युत्लेखा एवं 'जोगी मत जा' में सर्वमंगला सिद्धयोगिनी आदि के माध्यम से नारी मुक्ति की चेतना व्यक्त हुई है। सिद्धयोगिनी कहती है – ''हा हन्त! नारी होना कितना बड़ा अभिशाप है। .... नारी का जीवन एक विडम्बना है, एक व्यंग्य है, एक हास्य, एक रहस्य, जो आपाततः एक प्रहेलिका सा है किन्तु तत्वतः वह विडम्बना है, करूणा है, दुखान्त है।''[7] साथ ही नारी की महिमा को स्थापित करने के निमित्त श्यामा नामक स्त्री को सिद्ध पुरूष से कहलवाया है कि – ''देवि! नारी शक्ति है। वह माता, प्रिया, पुत्री सब वही है। सृष्टि की जननी है। उसे जो निम्न दृष्टि से देखता है, वह अज्ञानी है। .... पशु है। उसमें मल है। मल के कारण वह नारी को लघु मानता है। जबकि वह गुरू है, वह ममत्व सिखाती है, वह जीव को पालती है, पोसती है, रक्षा करती है। नारी पूज्य है।''[8] विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने नारी को पूज्य भी कहा है परन्तु नारी को गूढ़ रहस्य भी बताया है। सौन्दर्यमयी माया भी माना है। शोषण का प्रतिकार तो किया है परन्तु नारी मन की चंचलता और छल को भी व्यक्त किया है। शत्रुघ्न प्रसाद ने दासी, राजनर्तकी आदि नारियों की दयनीय स्थिति एवं शोषण को चित्रित किया है तथा सौम्यदर्शना एवं हला के माध्यम से नारी के निश्छल गरिमामयी चरित्र को व्यक्त कर नारी जीवन को प्रेरक सिद्ध किया है।

शैव और जैन मतभेद दिखाकर धर्म एवं सम्प्रदायगत भेद की क्रूर सच्चाई व्यक्त की है। 'शिप्रा साक्षी है' में आचार्य धवल कालकाचार्य का साथ इसलिए नहीं देते हैं कि वे शैव है और कालकाचार्य जैन धर्म के उपासक हैं। बौद्ध–जैन–शैव का मतभेद भी दर्शाया गया है। 'जोगी मत जा' में भी यह व्यक्त हुआ है। कालकाचार्य के सहयोगी मानते हैं कि शैव राजा गंधर्वसेन जैन धर्म के साथ न्याय नहीं करेगा। कालकाचार्य कहता है – ''जो जैन नहीं है, पतीत है, पापी है। संयम, नियम, सदाचार केवल जैन धर्म में है। .... ये पामर, शैव–शाक्त मत के अवलम्बी मेरी साध्वी भगिनी सरस्वती को भी ये तर्क दे रहे होंगे। उसे भ्रष्ट कर रहे होंगे कि इन्द्रियों को संतुष्ट करते हुए अतिन्द्रिय परम शिव तत्व को पाओ।''[9] धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर व्याप्त भेद को दूर कर समाज एवं देश को एकत्व प्रदान करना ही युग की महती आवश्यकता होती है जिसका सफल प्रयास दोनों ही उपन्यासकारों ने किया है। कोई भूखा न रहे व चाणक्य के अर्थतंत्र को अपनाया जाए कहकर शत्रुघ्न प्रसाद एवं विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने आर्थिक चेतना के प्रति भी जागरूक किया है।

सत्य, न्याय, धर्म, कर्तव्य, प्रेम, आदि विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए नैतिक जीवन मूल्यों की भी प्रतिष्ठा हुई है। वस्तुतः दोनों ही उपन्यासों में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, चेतना की प्रतिष्ठा कर युग धर्म स्थापना की चेष्टा की गई है। शत्रुघ्न प्रसाद ने राजनैतिक एकता के साथ सांस्कृतिक–राष्ट्रीय भावों में प्रगतिशील चेतना को प्रमुखता दी है वहीं विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने नाथपंथी योग दर्शन के माध्यम से युग धर्म का निर्वाह किया है।

(4) कथ्य एवं शिल्प – शत्रुघ्न प्रसाद एवं विश्वम्भर नाथ उपाध्याय की 'शिप्रा साक्षी है' एवं 'जोगी मत जा' की विषयवस्तु एक ही कालखण्ड पर आधारित होने पर भी दृष्टिगत साम्य–असाम्य देखने को मिलता है। शत्रुघ्न प्रसाद की दृष्टि में जहाँ अतीतकालीन यथार्थ के माध्यम से राष्ट्रीय भावों का उन्मेष ही प्रमुख लक्ष्य है, वहीं विश्वम्भर नाथ उपाध्याय मिथकीय भावों को भी जनमानस में जीवित रखने का प्रयास करते हैं। राष्ट्रीय भाव दोनों में हैं। शत्रुघ्न प्रसाद ने कहना चाहा है कि राजपद प्राप्त शासक राजमद में निरंकुश होकर जनतांत्रिक भावों पर आधात करता है और समाज और धर्म को स्वयं द्वारा संचालित वस्तु मान लेता है तथा नारी को भोग्य रूप में देखने लगता है तब राष्ट्र एवं समाज की हानि होती है। समाज व राष्ट्र के प्रति खण्डित दृष्टि भी राष्ट्र को दुर्बलता की ओर ले जाती है। अखण्ड राष्ट्रीय–सामाजिक भाव, जनतांत्रित शासन पद्धति, समरस सांस्कृतिक सरोकार ही देश और समाज को उन्नत एवं श्रेष्ठ बनाते हैं। यही संदेश शत्रुघ्न प्रसाद अपने उपन्यासों के माध्यम से देना चाहते है। प्राचीन गौरव के साथ राष्ट्रीय गौरव की अनुभूति करवाकर वे जनतांत्रिक शासन की प्रतिष्ठा का भाव प्रदान करते हुए स्पष्ट करते हैं कि शासक को यही सोचकर शासन करना चाहिए कि उसका राजदण्ड समाज एवं राष्ट्र के गौरव को बनाए रखने, सामाजिक–राष्ट्रीय एकता स्थापित करने, धार्मिक–सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करने के लिए

है तथा वह समाज एवं जन की भावनाओं का सम्मान करते हुए शासन करने के लिए है, वह अपनी निरंकुश भावनाओं द्वारा जन को संचालित करने के लिए नहीं है। राष्ट्र–रक्षा व मातृभूमि की अस्मिता का भाव ही सर्वोपरि है। सांस्कृतिक समन्वय उन्नत देश की प्रगतिशील पहचान है। यही मूल भाव शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में है। मुख्यतः 'शिप्रा साक्षी है' का यथार्थ है कि जब सत्ताधीश राजतन्त्र में बदल जाता है। अन्तपुर विलास भवन बन जाता है। व्यक्ति समष्टि पर हावी हो जाता है। .... परिणामतः आक्रोश जगता है। .... जब नयी पीढ़ी नयी दृष्टि से अपनी संकल्पित कर्मठता से समष्टि के लिए समर्पित होती है तो युग परिवर्तन होता है। .... फिर से जनतन्त्र मुस्कराता है।''[10]

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने भी अपने उपन्यासों में राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखा है। उनके नायक मुख्यतः नाथपंथी विचारधारा से जुड़े हैं। परशुराम को भी उन्होंने ब्राह्मणीय विचारधारा से भिन्न समन्वयी संस्कृति के सूत्रधार के रूप में दर्शाया है। नाथ पंथी योगियों को शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में भी महत्व मिला है। विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने रहस्यमयी मिथकीय पात्रों के माध्यम से लोकमानस में व्याप्त प्राचीन अवधारणाओं को पुष्ट एवं प्रामाणिक रूप देते हुए सामाजिक सुदृढ़ता पैदा करने का प्रयास करवाया है। सभी जनपदों का सहयोग पाकर ही उन्होंने उज्जयिनी का उद्धार किया। सच्चा न्याय ही राजधर्म है, लोक धर्म है। उन्होंने विक्रमादित्य एवं पिंगला के संदर्भ में भर्तृहरि के न्यायसंगत निर्णयों के माध्यम से इस तथ्य की प्रतिष्ठा की है। राजा प्रजाहित में सजग रहे, ऐसी मान्यता भी 'जोगी मत जा' में व्यक्त की गई है जो उनके जनतांत्रिक राष्ट्रीय भावों की पोषक है। विश्वम्भर नाथ उपाध्याय प्रजाहितकारी राजधर्म की विचारधारा को व्यक्त करते हुए लोकमानस में व्याप्त रहस्यमयी मिथकीय भावों के साथ जनमानस को जोड़कर सामाजिक–सांस्कृतिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। उनका यही दृष्टिकोण 'जोगी मत जा' उपन्यास में प्रमुखता से द्रष्टव्य है। उन्होंने लिखा है कि – ''भर्तृहरि प्रतिनिधि भारतीय चरित्र है बल्कि भारतीय चरित्रों में सर्वाधिक भारतीय। यह सर्वाधिक भारतीय इस अर्थ में है कि भर्तृहरि रहस्यमय मिथकीय पात्र है। रहस्य और पौराणिकता, में दो तत्व लोकमानस को सबसे अधिक आकर्षित करते हैं कि उनमें जीवन की वास्तविकता, भावना तथा अनुभूतियों की तरंगाकारिता। .... जो जनमानस में जीवन की पूर्णता की चिन्ता करता है, वह मिथक का प्रेमी होता है। .... लोकमानस और विशिष्ट व्यक्ति के मन में यह प्रश्न बार–बार उठता है कि द्वन्द्वग्रस्त और इसलिए कष्टदायक, प्रवृत्ति प्रधान अतएव मिश्रित जीवन को जिया जाए या इसका अतिक्रमण (वैराग्यधारण) कर उच्चतर मूल्यों और चेतनात्मक अनुभवों की खोज की जाए। .... कैसा भी जीवन हो, कोई भी व्यवस्था हो, उसकी सीमाएँ होंगी ही और जीवन विधि और प्रकृति में जो पुनरावृत्ति, जकड़पन और बन्धन है, दिक्काल के अटल झमेले हैं, उनमें मनुष्य स्वतंत्रता चाहता है। यह कल्पना से मिले या योगानुभव से, धर्म–दर्शन से मिले या किसी शक्ति पात्र से, मनुष्य क्षणिक या स्थायी, मनोगत या आत्मगत रूप से मुक्ति चाहता है।''[11] जनमानस को पूर्णता का जीवन प्रदान करने

व द्वन्द्वग्रस्त जीवन से मुक्ति चाहने की भावना को अभिव्यक्त करना ही विश्वम्भर नाथ उपाध्याय का मूल मंतव्य है।

शिल्प की दृष्टि से दोनों उपन्यासकार अपनी निजी विशिष्टता रखते हैं। वर्णनात्मक शैली के साथ पूर्वदीप्ति–स्मृत्यात्मक एवं संवादात्मक शैली का प्रयोग औपन्यासिक सरसता एवं सहजता के साथ हुआ है। शत्रुघ्न प्रसाद मूल घटना पर केन्द्रित वर्णन सहजता के साथ मंथर–मंथर गति से करते चलते है। सहज भाषा उनके भावों को सहजता से व्यक्त करती है। रहस्यात्मक एवं चमत्कारी मिथकीय वर्णनों के कारण विश्वम्भर नाथ उपाध्याय की भाषा में भी कहीं–कहीं रहस्यात्मकता एवं गूढ़ता पायी जाती है। यूँ दोनों ही भाषा पर अपनी गहरी पैठ बनाए रखने में सक्षम हैं। भावों एवं पात्रों के अनुकूल प्रसंगोचित भाषा का सार्थक प्रयोग दोनों उपन्यासकारों के उपन्यासों में मिलता है। शत्रुघ्न प्रसाद की भाषा में मुहावरे, लोकोक्तियाँ व अलंकार गरिमामय सहजता के साथ प्रयुक्त हुए हैं वहीं विश्वम्भर नाथ उपाध्याय की भाषा नाथपंथी जटिलता से समाविष्ट है। मुहावरे, लोकोक्तियाँ व अलंकार लोकमानस की लोक शैली में प्रयुक्त हुए है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में प्रकृति व सौन्दर्य का चित्रण आन्तरिक भावों की उच्चता के साथ हुआ है वहीं विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के उपन्यासों में बाह्य सौन्दर्य की भी प्रधानता है। पिंगल प्रदेश और पिंगला के सौन्दर्य का अनूठी चित्रमयता के साथ चित्रण हुआ है। संवादों की रोचकता और सरसता भावों, विचारों और चरित्रों के व्यक्तित्व को पूर्णता के साथ अभिव्यक्त करते हुए मार्मिक एवं मनोरम बनाती है और दोनों उपन्यासकारों की नाटकीय एवं संवादात्मक कुशलता को दर्शाती है।

पूर्ण सुगठित एवं कथ्य को प्रेषित करने में सक्षम कथानक अनेक प्रासंगिक एवं अवान्तर कथाओं से घुल–मिल कर अभिप्राय सिद्धि में सफलता लिए हुए श्रेष्ठता को प्राप्त है। 'जोगी मत जा' में जहाँ काल भैरव, विक्रान्त भैरव एवं सिद्धयोगिनी की कथाएँ भर्तृहरि की कथा के साथ जुड़ी हुई है तथा सर्वमंगला, अश्वजित, मायामालिन एवं कवीन्द्र भारती कथानक को सुगठन के साथ रोचकता प्रदान करते हैं। वैसे ही 'शिप्रा साक्षी है' में कालतरूणों, विद्युत्लेखा एवं माध्यमिका विद्यापीठ आदि की कथाएँ जुड़ी हुई हैं। हला–विक्रमादित्य एवं षोडाष–विक्रमादित्य की कथा मूल कथा के साथ ऐतिहासिक प्रतीत होती है।

दोनों ही उपन्यासकारों ने अपनी निजी सर्जन क्षमता दर्शाते हुए ऐतिहासिक पात्रों के साथ नवीन कल्पित पात्रों की अनुपम सृष्टि की है। विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने पिंगला के चरित्र का अद्वितीय चित्रांकन किया है। भर्तृहरि का कोमल भावनाओं से युक्त प्रेमिल कवि एवं राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत न्यायप्रिय शासक के रूप में सर्जन उपन्यासकार की महत्ती उपलब्धि हैं विक्रम कठोर भावों से युक्त मर्यादित एवं संयमित व्यक्तित्व का धनी है। कालभैरव, विकांतभैरव, सिद्धयोगिनी, सर्वमंगला, कवीन्द्र भारती एवं माया मालिन अपने–अपने वर्ग का श्रेष्ठ प्रतिनिधित्व करते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद ने 'शिप्रा साक्षी है' में विषमशील का राष्ट्रवादी व्यक्तित्व जिस गौरवशाली उच्च आदर्शों से युक्त दिखाया है उतनी ही गरिमामयी सृष्टि हला के चरित्र में

भी दर्शायी है। षोडाष और मुलक आदि का क्रूर चरित्र भी यथार्थ की भूमि पर खरा दिखाई पड़ता है। साध्वी सरस्वती एक सौम्यदर्शना गरिमामयी नारी आदर्शों की प्रतीक हैं। विद्युत्लेखा, सुमना, गजमुख, भिक्षु धर्मरत्न आदि अपने–अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। चरित्रों की सृष्टि में उपन्यासकारों की सर्जन क्षमता का निजी वैशिष्ट्य व्यक्त हुआ है। वातावरण सृष्टि में जहाँ 'जोगी मत जा' में शाक्त–शैव तांत्रित सिद्धियों का साक्षात् चित्रण हुआ है वहीं 'शिप्रा साक्षी है' में प्राचीन आश्रम व्यवस्था केन्द्रित शिक्षालयों का मूर्त रूप में चित्रण हुआ है।

कथानक सुगठन, चरित्र–सृष्टि, संवाद–कौशल, वातावरण निर्माण एवं शैलीगत–भाषागत संरचना की दृष्टि से दोनों उपन्यासकारों ने अपना निजी वैशिष्ट्य सिद्ध कर दिया है। शत्रुघ्न प्रसाद अपने सहज व्यक्तित्व की तरह सहजता से कथा प्रवाहित करते है, वहीं विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के उपन्यासों में नाथपंथी विकटता दर्शनीय है। रहस्यमयी गूढ़ वातावरण की सृष्टि एवं दार्शनिक चिंतन में भाषा कहीं–कहीं गूढ़ सूक्ष्मता लिए हुए है। जहाँ जटिलता एवं बोझिलता का आभास होता है। अन्य प्रसंगों में सरसता बनी रहती है।

(5) भविष्योन्मुखी आधुनिक सन्दर्भ – ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना इतिहास कथा कहने के निमित्त नहीं होती है बल्कि उनकी रचना अतीत को वर्तमान और भविष्य के साथ जोड़कर प्रासंगिक बनाने की दृष्टि से होती है। समय गतिशील है। जीवन मूल्य गतिशील है। अतीत के जीवन और जीवन मूल्यों को भविष्योन्मुखी बनाने की प्रेरणा ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से दी जाती है, साथ ही अतीतकालीन यथार्थ के परिणामों से भविष्य का मार्ग अवलोकन करने की सीख भी मिलती है। समयानुसार परिवर्तन सृष्टि का नियम है। इस नित्य परिवर्तित आदर्श की प्रतिष्ठा राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विचारों में करते रहना ही श्रेष्ठ जीवन की निशानी है। समन्वयवादी विचार जीवन को गतिशीलता प्रदान करते हैं। गतिशील जीवन ही प्रगति का सूचक है। विश्वम्भरनाथ उपाध्याय परशुराम एवं भर्तृहरि के द्वारा समन्वयवादी विचारों को प्रस्तुत किया है तो शत्रुघ्न प्रसाद ने याज्ञवल्क्य और विषमशील के माध्यम से सांस्कृतिक–सामाजिक समन्वय की प्रतिष्ठा की है। यह गतिशील जीवन का प्रतीक है। यह समन्वयवाद आधुनिक सन्दर्भों में उपयोगी है। राजतन्त्र को जनतांत्रिक रूप में व्यक्त करना अतीत को आधुनिक सन्दर्भ में जोड़ना है। विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के 'जोगी मत जा' में स्वयंसिद्धा, सर्वमंगला एवं मायामालिन के वक्तव्यों में जातिगत शोषण के प्रति आक्रोश दिखाकर तथा शत्रुघ्न प्रसाद ने 'शिप्रा साक्षी है' में गजमुख के मन्दिर प्रवेश प्रसंग में आज की दलित चेतना का समर्थन किया है। साध्वी सरस्वती के माध्यम से नारी शोषण एवं विलास प्रवृत्ति, जो आज भी कायम है के प्रति विरोध दर्शाया गया है। खण्डित राष्ट्र दृष्टि एवं एकत्व का भाव तथा राष्ट्रीयता व राष्ट्र अस्मिता का प्रश्न सदैव ही हमारे सम्मुख रहेगा। यह अतीत को वर्तमान एवं भविष्य से जोड़ने वाला महत्वपूर्ण प्रश्न है जो विश्वम्भर नाथ एवं शत्रुघ्न प्रसाद दोनों के उपन्यासों में मुखरित है और चेतना प्रदान करता है। सामाजिक,

सांस्कृतिक, धार्मिक भेद मिटाकर मानवता एवं समानता की सिद्धि भी ऐसा ही शाश्वता प्रश्न है जिसके प्रति चिंतना व्यक्त की गई है। 'जोगी मत जा' में पिंगला तथा 'शिप्रा साक्षी है' में सुमना नारी दुर्बलता के प्रतीक पात्र हैं। राष्ट्रीय अस्मिता, सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक समन्वय ऐसे तथ्य है जो अतीत को आज के साथ जोड़कर भविष्य की ओर अग्रसर करते हैं। दोनों ही उपन्यासकारों ने ऐसे प्रसंगों की अवतारणा की है जो अतीत को आधुनिक संदर्भों से जोड़ते हैं। विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के उपन्यासों की समीक्षा करते हुए राघव प्रकाश ने लिखा है कि – '''जाग मच्छन्दर गोरख आया' में नाथों और सिद्धों की योग साधना के दार्शनिक, सामाजिक पक्षों को उभारते हुए उनके अन्तः संबन्धों को प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में कथा और फैंतेसी को गुंफित करते हुए जो संदर्भानुसार भाषिक संरचना प्रस्तुत की गई है वह अद्भुत है तथा अनेक प्रसंगों में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की याद दिलाती है। औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट काव्यात्मक उपन्यास है।............. 'विश्वबाहु परशुराम' में पौराणिक पात्र परशुराम को आधुनिक सन्दर्भों में एक व्यापक लोकात्मा के रूप में चित्रित किया गया है तथा एक क्षत्रिय–संहारी क्रोधान्ध ब्राह्मण वर्ग के प्रतिनिधि के बजाय उदात्त मानवतावादी, भेदभावरहित ऋषि के रूप में प्रस्तुत किया गया है।............. 'जोगी मत जा' भर्तृहरि के जीवन पर लोककथा एवं कल्पना आधारित उपन्यास है जिसमें योग और त्याग, वासना और आध्यात्मिकता, ऐन्द्रियता और ऐन्द्रियतरता चित्रित हुई है।''[12] शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'शिप्रा साक्षी है' की वर्तमान प्रासंगिकता सिद्ध करते हुए उमा वाजपेयी ने लिखा है कि ''ऐतिहासिक उपन्यास अतीत को वर्तमान से जोड़ने का कार्य जिस कुशलता से कर पाता है उसी आधार पर उसे युग सापेक्ष अथवा प्रासंगिक कहा जाता है। 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास विगत के साथ आगत और वर्तमान से भी सरोकार रखता है। इसके लिए कुमार का यह कथन ही साक्ष्य का कार्य करता है कि – 'अन्न तो सबको मिलना चाहिए। कोई निर्धन क्यों रहे? .... यही सोच 'शिप्रा साक्षी है' के नायक आदित्य को विक्रमादित्य बनाती है और इस ऐतिहासिक उपन्यास को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक।''[13] अतीत के साथ वर्तमान का सतत् वार्तालाप दर्शाया गया है, 'जोगी मत जा' एवं 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यासों में विश्वम्भर नाथ उपाध्याय एवं शत्रुघ्न प्रसाद द्वारा।

निष्कर्षतः विश्वम्भर नाथ उपाध्याय और शत्रुघ्न प्रसाद दोनों ही वर्तमान जीवन के लिए अतीत जीवन को उपयोगी मानते हैं एवं ऐतिहासिक उपन्यास को वर्तमान के लिए विवेक प्राप्त करने का माध्यम। विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने लिखा है कि – ''संकट का बोध और अनुभूति जब तीव्र होती है तब वर्तमान में कोई विकल्प न पाकर मन अतीत में जाता है। विगत का इतिहास संकटग्रस्तता में ऐसे चरित्र और घटना संजाल को अवधान में लाता है जिससे आश्वासन मिलता है, निराशा कम होती है और संभावनाओं का अभ्युदय होता है।''[14] उनके अनुसार विगत वर्तमान की समस्याओं को निराकरण का मार्ग प्रशस्त करता है। उन्होंने लिखा है – ''मूल्यभ्रंश, बढ़ते हुए आत्मनिर्वासन, पूँजीवादी उपभोक्ता समाजों में मनुष्य के पदार्थीकरण,

अमानवीकरण आपाधापी और अधःपतन को देखकर उन विशिष्ट व्यक्तियों के बिम्ब मन को घेरते हैं जिन्होंने अपने समय में आत्मगत उपलब्धियों के क्षेत्र में नए कीर्तिमान स्थापित किए और भागीरथ ॅजीवादी उपभोक्ता समाजों में मनुष्य के पदार्थीकरण, अमानवीकरण आपाधापी भागीरथ प्रयत्न द्वारा सदैव बुराई, पराजय पतन और पाप के विरूद्ध लड़े और लोमहर्षक संघर्ष के बाद विजयी हुए या उदात्त त्रासदी के शिकार हुए।''[15] विश्वम्भर नाथ उपाध्याय आज के संकट को अतीत कालीन पात्रों के माध्यम से सुलझाने का प्रयास करते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद का भी मानना है कि वर्तमान संकटग्रस्त परिस्थितियों को देखकर सोया हुआ अतीत जाग जाता है। वही चेतना देता है। 'शिप्रा साक्षी है' की भूमिका में लिखा है कि – ''अतीत संग्रहालय की निर्जीव पाषाण मूर्ति नहीं, मानव के गतिशील जीवन की अनिवार्य कड़ी है। इसलिए अतीत की कथावस्तु पर आधारित उपन्यास पलायन नहीं, वर्तमान से गहराई के साथ जुड़ जाने की सृजन चेतना है। यह भी कहा जा सकता है कि यह तो गतिशील मानव जीवन के यथार्थ का आलोकन–आलोचन होता है।.............. खण्डहर में सोया अतीत उठकर वर्तमान से जुड़ जाता है।''[16] दोनों उपन्यासकारों के मंतव्यों से स्पष्ट हो जाता है कि दोनों की दृष्टि गतिशील मानव जीवन की आदर्श सोच रखती है। वर्तमान के साथ अतीत को जोड़कर प्रासंगिक बनाने का सचेष्ट प्रयत्न मानव को भविष्य का मार्ग दिखाने के लिए किया गया है। भिन्न–भिन्न शैल्पिक एवं भाषिक संरचना में , भिन्न–भिन्न विचारणा में एक ही तरह की लक्ष्य सिद्धि की गई है। अतः दोनों के प्रयास श्रेयस्कर हैं।

6.3 शत्रुघ्न प्रसाद का शरद पगारे के साथ तुलनात्मक अध्ययन – शरद पगारे समकालीन औपन्यासिक युग के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। गुलारा बेगम, गंधर्वसेन, बेगम जैनाबादी व पाटतिपुत्र की साम्राज्ञी आपके प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं। गुलारा बेगम, गंधर्वसेन एवं बेगम जैनाबादी काल साम्यता की दृष्टि से शत्रुघ्न प्रसाद के 'शिप्रा साक्षी है' और 'शहजादा दाराशिकोह ' दहशत का दंश' से तुलनीय हैं। विवेच्य अध्याय में इनका तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है।

(1) विषयवस्तु – शरद पगारे रचित 'गुलारा बेगम' शहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) और बुरहानपुर की हसीन तवायफ गुलारा की प्रेमकथा है जिसका अन्त मार्मिक एवं दर्दनाक है। खुर्रम तवायफ गुलारा को बेगम के खिताब से नवाजता है और वह बन जाती है गुलारा बेगम। 1616ई. में करारा गाँव की उतावली नदी के दोनों किनारों पर दो बारादरियाँ शाहजहाँ द्वारा बनवाई गई थी, जो उनकी मुहब्बत की निशानी है।

'पाटलिपुत्र की साम्राज्ञी' सम्राट बिन्दुसार की प्रिय महारानी एवं महान् सम्राट कहलाने वाले अशोक की माँ धर्मा के जीवन संघर्ष की गाथा है। चम्पा के एक दरिद्र ब्राह्मण की रूपसी पुत्री अन्तःपुर के षड़यन्त्रों का सामना करते हुए अन्ततः सम्राट बिन्दुसार की प्रिय महारानी बनती है और सम्राट उसे सुभद्रांगी का विरूद प्रदान करते है। महान् अशोक उसी का पुत्र

होता है। इस अल्प ज्ञात एवं तिरस्कृत पात्र धर्मा को महान्नायिका बनाकर लिखा गया ऐसा उपन्यास है जिसमें उस काल का सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक चित्रण यथार्थ रूप में हुआ है। स्वयं पगारे जी ने लिखा है कि – "विशेषतः उस काल के आम आदमी की जिन्दगी उसके सुख–दुख, संघर्ष, सफलता–असफलता को प्रस्तुत करना मेरा प्रमुख उद्देश्य रहा है और ये उपन्यास अपने काल के समाज की जिन्दगी का आईना, समाजशास्त्रीय अध्ययन और ऐतिहासिक दस्तोवज है।"[17] 'बेगम जैनाबादी' शुष्क एवं कठोर दिल आलमगीर औरंगजेब एवं बुरहानपुर की ही खूबसूरत तवायफ हीरा बाई उर्फ जैनाबादी की दास्तान–ए–मुहब्बत है। इसमें औरंगजेब को एक सच्चा प्रेमी दर्शाया गया है। लेखक ने दर्शाया है कि जैनाबादी का बिछोह ही औरंगजेब को कठोर और शुष्क बना देता है। 'गन्धर्वसेन' ईसा पूर्व पहली सदी में घटित महत्वपूर्ण घटना शक आक्रमण से सम्बन्धित गाथा है जिसमें उज्जयिनी सम्राट गंधर्वसेन (गर्दभिल्ल) एवं जैन मुनि कालकाचार्य की साध्वी बहिन सरस्वती की प्रेम–कथा प्रस्तुत की गई है।

शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'शहजादा दाराशिकोह ' दहशत का दंश' औरंगजेब कालीन रचना है और 'शिप्रा साक्षी है' ईसा पूर्व पहली सदी से सम्बन्धित है। शरद पगारे रचित 'बेगम जैनाबादी' औरंगजेब के प्रारम्भिक जीवन पर आधारित उपन्यास है जब वह शहजादा ही होता है और दक्षिण विजय की यात्रा पर जा रहा होता है। यद्धपि बाद का जीवन भी प्रस्तुत है। फ्लैश बैक अर्थात् पूर्वदीप्ति शैली में भी अनेक प्रसंग व्यक्त होते हैं। बुरहानपुर जो उस काल की दूसरी राजधानी की तरह था और तवायफों का प्रसिद्ध नगर था। यहीं पर पनपी औरंगजेब और हीराबाई उर्फ जैनाबादी की प्रेम कहानी प्रस्तुत है – 'बेगम जैनाबादी में। शहजादा दाराशिकोह ' दहशत का दशं में शत्रुघ्न प्रसाद ने शाहजहाँ काल में हुए उत्तराधिकारी संघर्ष के बाद के औरंगजेब का चित्रण किया है। दाराशिकोह तो केवल शब्दों में स्मरण किया जाता है। अर्थात् 'बेगम जैनाबादी' औरंगजेब के शहजादा काल की कथा है तथा 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' औरंगजेब के बादशाह काल की कथा है पर दोनों का केन्द्र हैं औरंगजेब। एक में कोमल प्रेमी, दूसरे में क्रूर शत्रु।

'गंधर्वसेन' और 'शिप्रा साक्षी है' ईसा पूर्व घटित शक आक्रमण से सम्बन्धित है परन्तु गंधर्वसेन का समापन शक आक्रमण के साथ ही हो जाता है। साध्वी सरस्वती और गंधर्वसेन के प्रेम की निशानी विक्रमादित्य है। कथा महाराज चित्रसेन और सामंतसेन से प्रारम्भ होती है। सामंतसेन के भ्राता हरिषेण और धीवर कन्या श्यामली का पुत्र गंधर्वसेन उज्जयिनी का शासक बनता है। साध्वी सरस्वती का अपहरण करता है। यह अपहरण प्रेम में मौन स्वीकृति का परिणाम है। क्रुद्ध कालकाचार्य शकों को आमन्त्रित करते हैं। शक आक्रमण में महाराज गंधर्वसेन मारे जाते हैं। उज्जयिनी पर शकों का आधिपत्य हो जाता है। यहीं पर उपन्यास समाप्त हो जाता है। 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास का प्रारम्भ सरस्वती अपहरण से होता है और विषमशील विक्रमादित्य द्वारा शकों को पराजित कर उज्जयिनी पर अधिकार करने की घटना

के साथ अन्त होता है। अर्थात् 'गंधर्वसेन' शक आक्रमण और उससे पूर्व की उज्जयिनी पर आधारित है और 'शिप्रा साक्षी है' में शक आक्रमण और उसके बाद की उज्जयिनी प्रस्तुत हुई है। दोनों के केन्द्र में शक आक्रमण एवं गंधर्वसेन–सरस्वती की कथा है।

(2) इतिहास एवं कल्पना – ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास एवं कल्पना के समन्वित समायोजन से सृजित विधा है। इसमें मुख्यगाथा, मुख्य पात्र एवं युग जीवन इतिहास पर आधारित होना अपेक्षित है। कथानक में घटनाओं के तारतम्य, पात्रों के चरित्र–चित्रण एवं कथा में औपन्यासिक सरसता के लिए कल्पना की आवश्यकता होती है। इतिहास और कल्पना का अनुपात मत–मतान्तर का विषय रहा है। शरद पगारे रचित 'गंधर्वसेन' उपन्यास में इतिहास–कल्पना का समायोजन कल्पनात्मक आधिक्य से मिश्रित लगता है। शरद पगारे स्वयं प्रदीप मिश्र से बातचीत में स्वीकारते हैं कि – ''इतिहास और कल्पना का मेल कितना है। यह कहना मुश्किल है लेकिन तीस–चालीस प्रतिशत इतिहास होता है, बाकी कल्पना। पात्र दो तरह के होते है, एक ऐतिहासिक दूसरे काल्पनिक। दोनों तरह के पात्रों को मैं अपने आस–पास से उठाता हूँ। देश काल को समझने के लिए बहुत सारी ऐतिहासिक कृतियों को पढ़ता हूँ। गुलारा बेगम में जो गुलारा है, उसके रूप में मैंने एक नर्तकी को लिया, जिसका नृत्य मैंने बचपन में देखा था।''[18] इतिहास दृष्टि के बारे में भी उनकी राय जुदा है। उनका मानना है कि – ''जब इतिहास की बात होती है, तो युद्ध, संघर्ष, खून–खराबा यही सब सबसे ज्यादा दिखाई देता है। मुझे लगा कि मेरे समाज को तो बेहतर जीवन के लिए प्रेम चाहिए और खुशी के लिए वैभव और सौन्दर्य।............ मैं इन दिनों एक कहानी लिख रहा हूँ, वैशाली की जनपद कल्याणी। सब लोग आम्रपाली को नगरवधू कहते रहते हैं। मेरी नजर में उसने जनपद का कल्यण किया है।''[19] स्पष्ट है कि शरद पगारे के उपन्यासों की इतिहास दृष्टि प्रेम, सौन्दर्य और वैभव पर टिकी हुई है। औरंगजेब और गंधर्वसेन को भी उन्होंने प्रेमी पात्र की तरह चित्रित किया है। बेगम जैनाबादी में औरंगजेब, बेगम जैनाबादी उर्फ हीराबाई, बुरहानपुर आदि ऐतिहासिक हैं। हीराबाई का परिवार और अन्य वर्णन काल्पनिक हैं। 'गंधर्वसेन' में भी गंधर्वसेन और साध्वी सरस्वती का प्रेम प्रसंग, विक्रमादित्य को सरस्वती पुत्र होना, हरिषेण–श्यामली कथा आदि कल्पना प्रसूत ही हैं। ईसा पूर्व का यह कालखण्ड इतिहास में पूर्ण प्रामाणिक नहीं है। भूमिका में उन्होंने स्पष्ट किया है कि – हेमचन्द्र सूरि कृत कालकाचार्य कथानक, प्रभाचन्द्र सूरि का कालक चरितम्, साराभाई नवाब का श्री कालक कथा संग्रह आदि अनेक ग्रन्थों को सहायक बनाया गया है। दूसरी शताब्दी के उज्जयिनी के दुर्ग, सप्तखण्ड प्रासाद, वीथियाँ, प्रेक्षागार, उद्यान, महाकालवन, राजनर्तकी का प्रासाद स्पष्ट होने लगे। महेश्वर गया। दशपुर की यात्रा की। मांधाता नगरी देखी। विन्ध्य के प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ जीने लगा। साध्वी सरस्वती, महारानी शैलभद्रा, गंगा महाराजिन दासी नयनिका, दिव्यसेना, शाश्वती, भैरवी, ऋतुपर्णा साकार हो उठी। .... ये सभी रूप ऋचा के ही तो थे। .... इस उपन्यास

में मेरे इतिहासकार को कई समझौते करने पड़े। कालक की कथा ही क्यों, इतिहास के तारतम्य को भी पृष्ठभूमि में डाला।''[20] अतः स्पष्ट है कि गंधर्वसेन, कालकाचार्य, साध्वी सरस्वती, महारानी शैलभद्रा, आदि प्रमुख पात्र और शक आक्रमण तो ऐतिहासिक हैं अन्य कथा रूप काल्पनिक है। यह उपन्यास कल्पनात्मक सर्जना का महल है, इतिहास की नींव पर।

शत्रुघ्न प्रसाद इतिहास को अक्षुण्ण रखने में विश्वास रखते है। अतः उनके उपन्यासों में साठ–सत्तर फीसदी इतिहास होता है बाकी कल्पना। कथानक मूल इतिहास से जुड़ा रहता है। 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास की मूल कथा एवं मुख्य पात्र इतिहास द्वारा प्रमाणित हैं। प्रासंगिक पात्र एवं कथाएँ ही तारतम्य निर्वाह हेतु कल्पना द्वारा सृजित किए गए हैं।

महाराज गंधर्वसेन महारानी सौम्यदर्शना, कालकाचार्य, साध्वी सरस्वती, विषमशील विक्रमादित्य, बलमित्र आदि पात्र ऐतिहासिक हैं। सरस्वती अपहरण, शक आक्रमण और उज्जयिनी का पराभव, विषमशील विक्रमादित्य द्वारा शकों से उज्जयिनी को मुक्त करवाने से सम्बद्ध घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। विषमशील का आश्रम में शिक्षा ग्रहण करना, कालतरूणों की आयोजना, विषमशील हला विवाह जैसे प्रसंग एवं विद्युत्लेखा, सुमना, धर्मरत्न भिक्षु, गजमुख आदि पात्र एवं इनसे सम्बद्ध प्रसंग लेखक की कल्पना प्रतिभा की उपज हैं। इस प्रकार कल्पना के अंशों को इतिहास में समन्वित कर ऐतिहासिक भवन निर्मित किया गया है, शत्रुघ्न प्रसाद द्वारा 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास के रूप में। अपनी इतिहास दृष्टि एवं कल्पना प्रतिभा पर विचार व्यक्त करते हुए शत्रुघ्न प्रसाद ने अरूण भगत से बातचीत करते हुए कहा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यास में यथार्थ और कल्पना का सम्मिश्रण अपेक्षित है। हाँ, यदि कल्पना मात्र वायवीय उड़ान और चटकीले–रंगीन चित्रण के लिए लायी जा रही है, तो आवश्यक नहीं है। कल्पना के कौशलपूर्ण सम्मिश्रण से यथार्थ ढँकता नहीं, बल्कि ऐतिहासिक यथार्थ प्रभावी ढंग से चित्रित होता है। .... ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से भारत की संस्कृति, राष्ट्रीय विकास, विदेशी आक्रमण तथा संघर्ष का रूप सामने आता है। इससे राष्ट्रीय चेतना जागृत होती है। संस्कृति के प्रति निष्ठा जगती है। अपनी दुर्बलता, पराजय, पीड़ा की ओर ध्यान जाता है।''[21] लेखक की इतिहास दृष्टि यथार्थ चित्रण और राष्ट्रीय जागरण पर केन्द्रित है। कल्पना का आधिक्य स्वीकार नहीं है। इतिहास को औपन्यासिक सरसता देने की दृष्टि से अपेक्षित है। इतिहास की प्रामाणिकता के सन्दर्भ में अरूण भगत से कहते हैं कि – ''लिखित एवं पुरातात्विक प्रमाणों के बाद भी ईसा के सत्तावन वर्ष पूर्व के विक्रमादित्य को मान्यता नहीं मिली है। शिप्रा तट पर स्थित उज्जयिनी में प्राप्त पुरातत्व विक्रमादित्य के अस्तित्व को प्रमाणित कर रहे हैं। पदम् श्री हरिभाऊ वाकणकर ने विक्रमादित्य कालीन मिट्टी की मुहर को प्राप्त कर प्रदर्शित किया है। जैन ग्रन्थ 'कालकाचार्य कथानक' में विक्रमादित्य के पिता गंधर्वसेन की विलासिता एवं साध्वी सरस्वती के अपहरण का उल्लेख है। 'कथासरित् सागर' के अनुसार विषमशील ने शकों को पराजित किया था। .... मैंने स्वयं पुरातत्व संस्कृत साहित्य, लोककथा साहित्य का अध्ययन कर इसे मान्यता देते हुए 'शिप्रा साक्षी है' की रचना

की है। यह कल्पना की उड़ान नहीं है। इतिहास का यथार्थ है।''[22] निष्कर्षतः शत्रुघ्न प्रसाद एवं शरद पगारे दोनों की मूल कथा एवं मुख्य पात्र इतिहास सिद्ध हैं। दोनों ने अपने ऐतिहासिक प्रमाणों का उल्लेख किया है परन्तु दोनों के उपन्यासों का अध्ययन दर्शाता है कि शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में इतिहास अक्षुण्ण है और शरद पगारे के उपन्यासों में कल्पना का आधिक्य है। इतिहास को वे प्रेम कथा के रूप में रूपान्तरित करते है जबकि शत्रुघ्न प्रसाद इतिहास के साथ काल्पनिक प्रेमकथा निर्मित करते हैं। शरद पगारे सरस्वती की अपहरण कथा को प्रेमकथा में रूपान्तरित करते है जबकि शत्रुघ्न प्रसाद विषमशील–हला के माध्यम से प्रेम कथा निर्मित करते हैं।

(3) युग–धर्म स्थापक – युगीन यथार्थ अर्थात् युग सत्य को अभिव्यक्त कर युग पीड़ा को महसूस करा देना और उस पीड़ा से मुक्त जीवन मूल्य की प्रेरणा प्रदान करना युग धर्म माना जा सकता है। शत्रुघ्न प्रसाद ने उपेन्द्र नाथ के साथ बातचीत में कहा है कि – ''धर्म और सम्प्रदाय में धर्म तो मानवीय गुण तथा मानव कर्तव्य को स्पष्ट करता है। धर्म याने जिन गुणों को धारण करने से मनुष्य मनुष्य बनता है।''[23] शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'शिप्रा साक्षी है' में राज धर्म, समाज धर्म, व्यक्ति धर्म, परिवार धर्म स्थापित करने का प्रयास दिखलाई पड़ता है। मानवीयता के निमित्त किया कर्म श्रेष्ठ है। धर्म है। 'शिप्रा साक्षी है' में आचार्य भास्वर ने कहा – ''उन्नतिशील राष्ट्र के लिए शास्त्र तथा शस्त्र दोनों का महत्व समान है। अस्तित्व एवं सुरक्षा के लिए शस्त्र आवश्यक हैं। सात्विक वृत्ति से शस्त्र धारण धर्म है। तामसिक वृत्ति से अधर्म है। शस्त्र से समष्टि की रक्षा पुण्य है। शस्त्र से स्वार्थवश दूसरों और निर्बलों पर प्रहार पाप है। यही देव और दानव का अन्तर है। राक्षण का निर्माण विद्यापीठ का लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य तो श्रेष्ठ मनुष्य का निर्माण है। .... मगध से आयी हुई साध्वी का अपहरण तो पाप है। अधर्म है।''[24] शत्रुघ्न प्रसाद ने 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास में प्रजा और राष्ट्र हितकारी राजा, संकटकाल में सहयोग करने वाली पत्नी, पुत्र से स्नेह रखने वाली माँ, राष्ट्र रक्षा निमित्त समर्पित शासक राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक भावों में एकत्व को स्थापित करने वाली विचारणा प्रदान कर समष्टिगत भावों की स्थापना का यथेष्ट प्रयत्न किया है। 'शिप्रा साक्षी है' युगीन धर्म की प्रतिष्ठा का प्रमुख दस्तावेज सिद्ध होती है। शरद पगारे ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से प्रेम, वैभव व आनन्दपूर्ण जीवन को प्रतिष्ठित करना चाहा है। इतिहास को प्रेमकथा के रूप में वर्णित कर प्रेममयी जीवन को युग की माँग सिद्ध किया है। प्रेमपूर्ण जीवन की स्थापना ही युग धर्म है। गंधर्वसेन का नियति से चालित विडम्बनापूर्ण जीवन असामान्य व्यक्तित्व का निर्माण करता है। गंधर्वसेन के व्यक्तित्व एवं जीवन के माध्यम से शरद पगारे ने युगीन मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। गंधर्वसेन सोच रहे हैं कि – ''प्रत्येक आपके सुख को तो बाँटना चाहता है, आपके वैभव, धन–सम्पत्ति, सत्ता से लाभान्वित होना चाहता है पर दुःख के विजन द्वीप में आप अकेले बंदी से फड़फड़ाते रहते हैं। .... अपने

दुख–विष को पचाकर संसार से हँसते मुस्कराते संघर्ष करना ही कदाचित् सच्चा शौर्य है। आचार्य देवभूति ने कहा – दुखावेग से उत्पन्न तुम्हारा वैराग्य अपरिपक्वता का प्रतीक है, विश्वरूप! वह धर्म के प्रति सच्चे समर्पण का चिन्ह नहीं है। .... तृष्णा ही सब दुःखों का मूल है। वही आत्मा को पतन के मार्ग में धकेलती है। यदि उस पर विजय पा ली जाए तो आत्मा मुक्त हो जाती है, राजन! .... सुनेत्रा ने कहा – एक व्यक्ति की हानि से स्वयं को नष्ट कर लेना बुद्धिमानी नहीं मानी जा सकती। जीवन बहुत ऊँचा गरिमामय है। ...... सच्चा मनुष्य गिरकर पुनः उठता है, विपरीत परिस्थितियों से विजय पाने के लिए। .... किसी की सहायता करने के लिए किसी नाते–सम्बन्ध का होना आवश्यक है। क्या मानवता का सम्बन्ध मूल्यहीन है। .... साध्वी सरस्वती कालकाचार्य से कहती है – ''एक माँ के लिए उसकी संतान निष्पाप होती है। .... एक माँ से उसके आत्मांग को जुदा करना क्या पाप नहीं? यही है आपका ज्ञान! उपदेश! तप! .... घृणा, क्रोध, प्रतिशोध ने क्या अवस्था कर दी आपकी! एक बहिन के मोह में आपने अनेक निष्पाप नारियों, माँओं, पुत्रियों, भगिनियों को वैधव्य, अपहरण, बलात्कार, आत्मघात का नाटकीय क्षण प्रदान कर डाला। यही है सत्य, अहिंसा और पुण्य! तो फिर पाप क्या है?''[25] इस प्रकार 'गंधर्वसेन' उपन्यास के अनेक प्रसंगों में, अनेक पात्रों के माध्यम से युगीन आवश्यकता के अनुसार व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के धर्म पर दर्शन प्रस्तुत कर युग धर्म की प्रतिष्ठा की गई है। शत्रुघ्न प्रसाद ने राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में तथा शरद पगारे ने व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में समष्टिगत मानव धर्म की प्रतिष्ठा का स्तुत्य प्रयास किया है।

(4) कथ्य एवं शिल्प – साहित्यकार की दृष्टि ही उसकी सृष्टि बनती है। ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास को जिस दृष्टि से देखता, समझता, महसूसता है, वही दृष्टिगत भाव उसका कथ्य बन जाते है। इतिहास का जो अंश उपन्यासकार को प्रभावित एवं प्रेरित करता है वही अंश भाव बनकर उसके उपन्यासों में अभिव्यंजित होता है। शत्रुघ्न प्रसाद को वृन्दावनलाल वर्मा, क.मा. मुंशी, चतुरसेन शास्त्री, हजारी प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक उपन्यासों में व्यक्त राष्ट्रीय भावों ने प्रेरित किया। दिनकर और नेपाली के राष्ट्रीय गीतों ने झकझोरा और सबसे ज्यादा नालन्दा के खण्डहरों ने द्रवित किया। नालन्दा के खण्डहर ही शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक सृजन के उत्प्रेरक तत्व हैं। इसलिए उनके उपन्यासों में मुगलकालीन ध्वंस से उपजा दर्द और आक्रोश ही राष्ट्रीय चेतना बनकर व्यक्त हुआ है। उनका ध्यान देश की पतनशीलता के कारणों और गौरवमयी पात्रों की ओर गया है। उनके उपन्यासों में गौरवशाली पात्रों के माध्यम से गरिमामयी संस्कृति का दर्शन करवाना, राष्ट्रीय भावों को प्रगतिशील रूप में व्यक्त करना और अतीतकालीन दुर्बलताओं से साक्षात् करवाना ही कथ्यगत प्रवृत्तियाँ बनकर उभरी हैं। शरद पगारे के अनुसार – ''कॉलेज की पढ़ाई के दौरान ही आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, क.मा.मुंशी के जय सोमनाथ, राजाधिराज, पाटन का प्रभुत्व जैसे ऐतिहासिक उपन्यासों ने ऐतिहासिक उपन्यास लेखन का बीजारोपण अवचेतन मन में बो

दिया था। दादा माखनलाल चतुर्वेदी ने यह कहकर कि 'इतिहास में एम.ए., पीएच.डी. कर वहाँ अछूते, अल्पज्ञात पात्रों, घटनाओं पर ऐतिहासिक उपन्यास, कहानियाँ लिखकर आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा के काम को आगे बढ़ाने की भावना ने प्रेरित किया। .... इतिहास अध्ययन के दौरान अनेक रोचक पात्रों एवं घटनाओं, वैभव, विलास, शान ओ शैकत, राजसी जिन्दगी के विवरणों ने नया रास्ता सुझाया। ऐतिहासिक स्थलों, महलों, किलों, मूर्तियों, चित्रों ने सौन्दर्य चेतना जगाई। टालस्टाय, चार्ल्स डिकिन्स, स्टीफन ज्वींग आदि के उपन्यासों ने प्रेरित किया।''[26] एक साक्षात्कार में वे स्वीकार करते हैं कि – ''थामस हार्डी, क. मा.मुंशी, वृन्दावनलाल वर्मा, स्टीफन ज्वींग, चार्ल्स डिकेंस के उपन्यासों के वैभवशाली दृश्य मेरे मन में बैठ गए। .... मैंने देखा हिन्दी में ऐसे वैभवशाली वर्णन हैं ही नहीं। तभी मैंने निर्णय किया कि हिन्दी में वैभवशाली वर्णन को स्थापित करूँगा। मेरे उपन्यासों में जब भी कथानक अवसर देता है, मैं सजीव वैभवशाली वर्णन करता हूँ। .... मैं मानता हूँ कि हम सबका जीवन प्रेम में ही पल्लवित होता है और उसका सौन्दर्य ही वैभव है, जिसमें हमारी कल्पनाएँ खिलती है।''[27] शरद पगारे के उपन्यासों में प्रेम और सौन्दर्य के साथ वैभवशाली वर्णन की प्रवृत्ति ही प्रमुखता से दिखाई पड़ती है।

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में जहाँ अखण्ड राष्ट्र की चिन्ता, राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा, राष्ट्रीय–सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की स्थापना, सामाजिक–धार्मिक, सांस्कृतिक समन्वय का प्रयास एवं अद्वैत चेतना दिखाई पड़ती है वहीं शरद पगारे के उपन्यासों में सौन्दर्य, प्रेम और व्यक्तिनिष्ठ जीवन दिखाई पड़ता है। राष्ट्रीय सरोकार हैं परन्तु प्रेमपूर्ण जीवन की प्रमुखता है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में औरंगजेब क्रूर, अत्याचारी और धर्मान्ध शासक के रूप में चित्रित है वहीं शरद पगारे रचित 'बेगम जैनाबादी' में औरंगजेब एक कोमल प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। महाराज गंधर्वसेन का चरित्र 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास में विलासी और निरंकुश है वहीं 'गंधर्वसेन' उपन्यास में वे रोमांटिक नायक हैं। स्त्री सौन्दर्य के पारखी और प्रेम पाने को आकुल प्रेमी। शरद पगारे के उपन्यासों में नायक पात्र स्त्री अहंकार से पीड़ित दिखाए गए है। उपेक्षा के कारण उनका व्यवहार असामान्य हुआ है। औरंगजेब शहंशाह शाहजहाँ, बड़े भाई दाराशिकोह, बड़ी बहिन जहाँआरा से उपेक्षित रहता है और आगे चलकर बेगम दिलरस बानू के कुलीन अहंकार से पीड़ित रहता है। इसी कारण उसके व्यक्तित्व में कठोरता आयी है। शरद पगारे ने दर्शाना चाहा है कि यदि औरंगजेब को यह उपेक्षा न मिली होती और यदि बेगम जैनाबादी उर्फ हीराबाई जीवित रहती तो औरंगजेब का इतिहास और व्यक्तित्व अलग तरह का होता। महाराज गंधर्वसेन को भी इसी उपेक्षा का संघर्ष करना पड़ता है। गंधर्वसेन के जीवन में महाभारत के भीष्म एवं कर्ण दोनों की साम्यता है। माता–पिता हरिषेण–श्यामली की कथा तथा राजकुमारी एवं बाद में महारानी शैलभद्रा की उपेक्षा उनके व्यक्तित्व को असामान्य बनाने वाली निर्माण भूमि है। वास्तव में गंधर्वसेन प्रेम और सहानुभूति का पात्र है।

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में व्यक्त औरंगजेब और महाराज गंधर्वसेन क्रमशः धर्मान्ध राजनीतिज्ञ एवं विलासी और निरंकुश शासक के प्रतीत पात्र हैं। शरद पगारे के उपन्यासों का लक्ष्य प्रेमपूर्ण जीवन है और वे ऐतिहासिक प्रेम कथाओं के माध्यम से प्रेम, सौन्दर्य और वैभव से परिपूर्ण जीवन का संदेश देते हैं जबकि शत्रुघ्न प्रसाद प्रेम के उदात्त स्वरूप को व्यक्त करते हुए राष्ट्र बोध का संदेश देते है।

शैल्पिक दृष्टि से वर्णनात्मक, चित्रात्मक, नाटकीय शैली के साथ–साथ पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग दोनों ही उपन्यासकारों के उपन्यासों में दिखाई दिया है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना के दृश्य अधिक हैं और शरद पगारे के उपन्यासों में सौन्दर्य और वैभव के चित्रों की अधिकता है। कथानक सुगठन, चारित्रिक सृष्टि, संवाद कौशल, भावानुकूल–पात्रानुकूल भाषा एवं वातावरण चित्रण में दोनों की अपनी–अपनी क्षमताएँ एवं कुशलताएँ हैं। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में सहज गति है जबकि शरद पगारे के उपन्यासों में कहीं न कहीं फिल्मी नाटकीयता भी देखने को मिलती है। राजकुमार कुम्भज ने शरद पगारे के उपन्यासों की समीक्षा करते हुए लिखा है कि – ''शरद पगारे की औपन्यासिक कृतियाँ महज घटनाओं का ब्यौरा न होकर एक खास तरह के इतिहास बोध से भरा सम्मोहन पैदा करती है। उनकी कृतियों में जब ब्यौरे आते है, तो उनमें साधारण स्थितियों की स्थिरता से आगे बढ़कर असाधारण जीवन को भी नैसर्गिक गति उपलब्ध होने लगती है। स्त्रीमन के शोक संतप्त अंतस को पहचानते हुए, उसे रेखांकित करते हुए अपनी मौलिक करूणा से उसे ऊर्जावान बना देते हैं। उनके यहाँ इतिहास और कल्पना, यथार्थ और स्वप्न, जीवन और फेन्टेसी से मिला–जुला एक ऐसा रचनात्मक वातावरण निर्मित होने लगता है कि भूतकाल और वर्तमान हाजिर–नाजिर हो जाता हैं। शरद पगारे के लेखन में प्रेम की तीव्रता सौन्दर्य की सहजता, स्त्री स्वप्नों की उत्तेजक साहसिकता एक साथ दिखाई देती है।''[28] डॉ रजनीकान्त लहरी ने 'शिप्रा साक्षी है' की समीक्षा करते हुए लिखा है कि – '' 'शिप्रा साक्षी है' इस तथ्य का अनुपम उदाहरण है। कल्पना और यथार्थ का मणिकांचन योग, समन्वय की अद्भुत क्षमता, ऐतिहासिक यथार्थ के माध्यम से वर्तमान का विवेचन करने की सामर्थ्य उनकी कृति में स्पष्ट पर्यलक्षित होती है। जो प्रामाणिकता को ध्वनित करके ऐतिहासिक उपन्यास की सफलता की घोषणा कर रहा है।''[29] उपर्युक्त समीक्षा के माध्यम से दोनों उपन्यासकारों की कथ्यगत एवं शिल्पगत कुशलता को आसानी से समझा जा सकता है।

(5) भविष्योन्मुखी आधुनिक सन्दर्भ – ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के साथ वर्तमान एवं भविष्य भी समाहित रहता है। आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ भी पूरी शिद्दत के साथ अभिव्यक्त होती है। डॉ शत्रुघ्न प्रसाद ने ज्ञानदीप के साथ बातचीत में स्वीकार किया है कि – ''गौरवशाली भारतीय अतीत का विश्लेषण करके ही वर्तमान समय में समाज को नई दिशा दी जा सकती है। भारतीयता की आत्मा, इस राष्ट्र की रचना करने वाली हिन्दू संस्कृति ही

है। पूर्व की कमजोरियों एवं त्रुटियों से सीख लेकर ही वैभवशाली एवं समृद्ध राष्ट्र के रूप में भारत को प्रतिस्थापित किया जा सकता है।''[30] गंधर्वसेन कालीन कमजोरियों को उजागर कर उपन्यासकार ने आगत के लिए नयी दृष्टि प्रदान कर दी है। उमाकान्त लहरी ने लिखा है कि – ''गंधर्वसेन का अहं इतना व्यापक बना कि मालव गणतन्त्र दब गया, वहाँ एकाधिकार पनपा और राजतंत्र की प्रतिष्ठा हुई। अमर्यादित, अबाधित एवं निरंकुश राजतंत्र में नारी की सुरक्षा खतरे में पड़ गई। इसी निरंकुश शासन में जन साधारण की भावनाओं से खुलकर खेला गया। असुरक्षा के मध्य महँगाई और अभावों में उन्हें जीवित रखने का प्रयास हुआ। इन्हीं परिस्थितियों में युवा पीढ़ी का आक्रोश जगता है। युवा शक्ति का उदय, धर्माचार्यों का आक्रोश अन्ततः क्रान्ति लाता है। राजतन्त्र की भस्म पर गणतन्त्र का उदय होता है। विदेशी आक्रान्ताओं से शक्ति प्रदर्शन होता है और समन्वय की विराट–चेष्टा और उदारवादिता के कारण उनको आत्मसात कर मुख्य धारा में जोड़ने का प्रशंसनीय प्रयास भी होता है। 'शिप्रा साक्षी है' में इस ऐतिहासिक यथार्थ की जो सशक्त एवं युगानुरूप व्यंजना हुई है वह प्रासंगिक और सार्थक है। .... शैव, जैन, बौद्धों के आपसी विवादों का लाभ उठाकर ही शक–जाति देश में घुस पाई थी। प्राचीन जीवन के इस पहलू को उजागर करके उपन्यासकार ने आधुनिक युग को एक सार्थक संदेश दिया है। .... वंशानुगत अभिमान के स्थान पर देश और सांस्कृतिक विरासत पर अभिमान करने की चर्चा जो उपन्यास में उठाई गई है। आधुनिक जीवन की आवश्यक चर्चा बनकर उभरती है। .... आदित्य और हला का प्रेम–प्रांगण में यह सात्विक मिलन जाति–जाति की एकात्मकता लाने का श्रेय पाता है और संकेत देता है कि प्रेम वह शक्ति है जो मानवीयता की धरती पर विकसित होकर सौहार्द्रपूर्ण एवं भ्रातृत्व का संदेश देती है।''[31]

शरद पगारे रचित 'गंधर्वसेन' में भी दर्शाया गया है आध्यात्मिक चिंतक, आत्मा को मुक्त मानने वाला चिंतक, अहिंसा और शान्ति का उपदेश देने वाला चिंतक अपनी आत्म संयम की अहंकार प्रवृत्ति के वशीभूत साध्वी सरस्वती की कोमल अनुभूति समझ नहीं पाता है और क्रोधित होकर शकों के सहयोग से उज्जयिनी का विनाश करता है। शकों से उसे कोई विशेष आदर नहीं मिलता है। सरस्वती के कथन से उपन्यासकार ने दर्शाया है कि तप, अहिंसा और शांति का दूत अपने अहंकार के वशीभूत कितना बड़ा अनर्थ कर देता है। प्रेम, सौन्दर्य और वैभव जीवन का आनन्द है। इसी तथ्य से इतिहास को भविष्य के साथ जोड़ा गया है। स्वयं उपन्यासकार प्रदीप मिश्र के साथ बातचीत में कहते हैं कि – ''मेरे उपन्यासों की स्त्रियों से ज्यादा मजबूत और समझदार स्त्रियाँ आज के समय में हैं। मैं अपने उपन्यासों की पात्र स्त्रियों के विकास के क्रम को आज की स्त्रियों में देखता हूँ।''[32] वाणी प्रकाशन के समीक्षक ने 'गंधर्वसेन' के बारे में लिखा है कि – ''पुरूष की आँखों से देखी स्त्री की इच्छाएँ, स्वप्नों, उम्मीदों की यह दुनिया जिसमें प्रेम की तीव्र उत्तेजना सौन्दर्य का सहज दर्प और आहत प्रेम की टीस मौजूद

है। यहाँ नारीवादी सरल तोहफे नहीं है। वरन स्त्री की उस त्रासदी को शब्दबद्ध किया है जिसका सूत्रधार पुरूष सदियों से रहा है।''[33] अतः यह कृति आज भी प्रासंगिक है।

निष्कर्षतः कथ्य एवं शिल्प, युगधर्म निर्वाह, भविष्योन्मुखी प्रासंगिकता की दृष्टि से दोनों उपन्यासकारों ने अपनी–अपनी दृष्टि से श्रेष्ठ चिंतन प्रस्तुत किया है।

6.4 – शत्रुघ्न प्रसाद का मनमोहन सहगल के साथ तुलनात्मक अध्ययन –

सामाजिक सरोकारों के ख्यातिप्राप्त उपन्यासकार मनमोहन सहगल शत्रुघ्न प्रसाद के समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं जिन्हें पद्मश्री चिरंजीत ने 'पंजाब का प्रेमचन्द' कहा है। इनके द्वारा रचित लगभग 13 उपन्यासों में कश्मीर की कसक, गुरू लाधो रे, बदलती करवटें, मानव छला गया, एक और रक्तबीज, अन्ना पासवान, नरमेघ, जेहलम की बेटी उर्फ घटता–बढ़ता चाँद एवं काला सच पौराणिक–ऐतिहासिक उपन्यास हैं। विवेच्य अध्याय में घटना–बढ़ता चाँद एवं काला सच को लिया जा रहा है जिनका तुलनात्मक अध्ययन शत्रुघ्न प्रसाद रचित कश्मीर की बेटी एवं तुंगभद्रा पर सूर्योदय के साथ किया जाना अपेक्षित है।

(1) विषय वस्तु – मनमोहन सहगल रचित 'घटता–बढ़ता चाँद' और शत्रुघ्न प्रसाद द्वारा रचित 'कश्मीर की बेटी' कश्मीर पर केन्द्रित उपन्यास हैं। काल के आधार पर दोनों में भिन्नता है। 'घटता–बढ़ता चाँद' सोलहवी सदी के कश्मीर की गाथा है तो कश्मीर की बेटी चौदहवीं सदी का वृतान्त। दोनों में है कश्मीर का पीड़ादायी सच। दोनों उपन्यासों की प्रमुख पात्र स्त्री नायिकाएँ हैं और दोनों का जीवन संघर्ष और अन्त समान पीड़ा की अनुभूति देता है। जेहलम के किनारे बसे पाम्पोर के चन्दहर गाँव में आबदी राठर की अद्वितीय सौन्दर्य के साथ कोमल भावों की शायरा (कवयित्री) पुत्री जून जीवन के कठोर सत्य एवं दर्दनाक स्थिति से उबरकर 'हब्बा खातून' नाम से जानी जाती है और कश्मीर के शहजादे युसुफ शाह चक की बीवी बनती है। युसुफ शाह चक के साथ उसका सुखद जीवन गुजरता है। दिल्ली के बादशाह अकबर द्वारा षड़यन्त्र पूर्वक युसुफ शाह को नजरबन्द कर लिया जाता है। सोच–विचार कर हब्बा खातून महलों का त्याग कर देती है। पंडा चौक के शिव मंदिर में शरण लेती है। एक वैरागी बाबा सहारा देते हैं। वहीं अचानक एक चीख के साथ वह गिरती है और शिलाखण्ड से टकराकर मृत्यु को प्राप्त होती है। इस तरह जून से हब्बा खातून और कश्मीर की मलिका बनी उदारशया कवयित्री का जीवन संघर्ष एवं उतार–चढ़ाव घटते–बढ़ते चाँद की तरह चलता है। 'घटता–बढ़ता चाँद' की विषयवस्तु हब्बा खातून कालीन कश्मीर से जुड़ी हुई है। शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'कश्मीर की बेटी' में 1320 ई. से 1339 ई. के कश्मीर की उथल–पुथल का चित्रण है जिसका लाभ उठाकर शरणार्थी अफगान शाहमीर (शाह मिर्जा) कश्मीर का शासक बन जाता है और संकल्प और साहस से कश्मीर को संभालने वाली तत्कालीन शासिका कोटा देवी को आत्महत्या करनी पड़ती है।

मनमोहन सहगल रचित 'काला सच' और शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' में चौदहवीं सदी के भारत का चित्रण है। 'काला सच' अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा किए गए सोमनाथ विध्वंस एवं गुजरात (पाटण) विजय पर आधारित है तो 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' मुहम्मद–बिन–तुगलक द्वारा दक्षिण भारत पर प्राप्त विजयों के उपरान्त हरिहर–बुक्का द्वारा की गई विजयनगर की स्थापना से सम्बद्ध है। गुजरात की महारानी कमला देवी की पुत्री देवल देवी की त्रासद जीवन कथा दोनों में विद्यमान है। गुजरात में पाटण राज्य के अधिपति राय कर्णदेव द्वारा अपने मन्त्री माधव की पत्नी रूपसुन्दरी का सतीत्व हरण किया जाता है। वह श्राप देते हुए आत्महत्या कर लेती है। माधव राज्य का त्याग कर देता है और अलाउद्दीन खिलजी को पाटण की ओर जाने के लिए ललचाता है। सोमनाथ आक्रमण के समय महारानी कमला देवी अलाउद्दीन के सेनापति के हाथ लग जाती है। अलाउद्दीन उसे अपनी बेगम बना लेता है। अपनी पुत्री कमला देवी को भी वह बुला लेती है। अलाउद्दीन, मलिक काफूर, मुबारक खाँ, खुसरो क्रमशः दिल्ली के शासक बनते हैं। देवल देवी खिज्र खाँ से विवाह करती है। फिर मुबारक खाँ, खुसरो खाँ आदि के द्वारा भोगी जाती है। अन्त में छिपकर निकल जाती है। यहीं पर उपन्यास समापन ले लेता है।

शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' इससे आगे की कथा है। मुहम्मद–बिन–तुगलक के सेनापतियों द्वारा दक्षिणी राज्यों कंपिली, देवपुरम्, होयसल, वारंगल तथा द्वारसमुद्र पर विजय प्राप्त की जाती है। हरिहर–बुक्का को पकड़ लिया जाता है। वे हुक्का खाँ एवं बुक्का खाँ बना दिए जाते हैं। मुहम्मद–बिन–तुगलक का कठोर शासन एवं आश्चर्यचकित करने वाले निर्णयों से जनमानस पिसता रहता है। अन्त में हरिहर–बुक्का स्वामी विद्यारण्य के निर्देश से बगावत कर विजयनगर नामक हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करते हैं। इसी को 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' कहा है। देवलदेवी की कथा भी निरन्तर चलती रहती है। देवल देवी अपनी पुत्री श्रीदेवी के साथ हरिहर–बुक्का का सहयोग करती है और अन्त में श्रीदेवी का विवाह मरप्पा से करवा दिया जाता है। 'काला सच' में देवलदेवी से सम्बद्ध कथावस्तु ही व्यक्त हुई है जबकि 'तुगभद्रा पर सूर्योदय' में यह प्रसंग गौण कथा के रूप में है। इसका फलक विशाल है। स्थितियाँ लगभग समान हैं। इस प्रकार 'घटता–बढ़ता चाँद' और 'कश्मीर की बेटी' सोलहवीं सदी एवं चौदहवीं सदी का वृतान्त है तो 'काला सच' में अलाउद्दीन कालीन और 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' मुहम्मद–बिन–तुगलक कालीन भारत की कथा कहते हैं।

(2) इतिहास एवं कल्पना – इतिहास के कथासूत्र को पकड़कर कल्पना की गति से ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की जाती है। औपन्यासिक यथार्थपरक सौन्दर्य कल्पना की ही देन होता है। शत्रुघ्न प्रसाद रचित उपन्यासों का कथानक प्रामाणिक इतिहास पर आधारित होता है। मनोभावनाएँ उपन्यासकार की उर्वरा शक्ति का परिणाम होती है। 'कश्मीर की बेटी' का मूल कथानक इतिहास द्वारा प्रामाणिक है। 1320 से 1339 ई. के मध्य मंगोल आक्रमणों

से त्रस्त एवं दुर्बल शासकों के कारण कश्मीर को उथल–पुथल का सामना करना पड़ता है। इसी परिस्थिति का लाभ उठाकर अफगानी शरणार्थी शाहमीर (शाह मिर्जा) सत्ता हथिया लेता है। शासन को संभालने का भरसक प्रयत्न करने वाली संकल्पशील शासिका कोटा देवी आत्महत्या कर लेती है। शाह मिर्जा (शाहमीर) द्वारा कश्मीर की सत्ता हथिया लेने की घटना इतिहास द्वारा प्रामाणिक है। शत्रुघ्न प्रसाद ने जौनराज कृत राजतरंगिणी से कथानक ग्रहण किया है। राजा सहदेव, कुमार उदयनदेव, शाहमीर (शाह मिर्जा) कोटा देवी, आदि प्रमुख पात्र ऐतिहासिक हैं। पंडित देवस्वामी, रिच्येन एवं आनन्द भिक्षु भट्ट संभावित एवं किंचित परिवर्तित ऐतिहासिक पात्र हैं। कोटराज–गुहरा प्रसंग व सर्वदेव–चाँदनी प्रसंग कल्पना की उपज है। सम्पूर्ण यथार्थपरक एवं सौन्दर्यात्मक चित्रण उपन्यासकार की कल्पना प्रतिभा का परिणाम है। मनमोहन सहगल रचित 'घटता–बढ़ता चाँद' में वर्णित युसुफ शाह चक – हब्बा खातून की मुहब्बत तथा अकबर द्वारा युसुफ शाह के साथ की गई राजनीतिक चतुराई की घटना इतिहास ग्रन्थों द्वारा प्रामाणिक है। हब्बा खातून की कवयित्री के रूप में ख्याति आज भी कायम है। जयप्रकाश चौकसे ने दैनिक भास्कर में प्रकाशित अपने लेख 'नेताजी सुभाषचन्द्र बोस पर बायोपिक व हब्बा खातून' में लिखा है कि – ''कश्मीर में जन्मी हब्बा खातून कविताएँ लिखती थी और योद्धा भी रही। उन्होंने मुगल सेना को एक बार पराजित भी किया था। महबूब खान हब्बा खातून पर पटकथा लिख रहे थे। मृत्यु के कारण फिल्म नहीं बन सकी। .... जूनी हब्बा खातून की बायोपिक बन रही थी, पूरी नहीं हो पाई।''[33] केशो पंडित, शंभु, नियामत खाँ–अल्लाह प्यारी व नसीम जान–अशरफ के प्रसंग कल्पना की देन है।

मनमोहन सहगल रचित 'काला सच' में वर्णित अलाउद्दीन का गुजरात पर आक्रमण, सोमनाथ विध्वंस, रायकर्ण देव का पराजित होना, कमला देवी का अलाउद्दीन की बेगम बनना, मलिक काफूर द्वारा शासन करना, खिज्र खाँ और देवल देवी का विवाह आदि प्रसंग इतिहास ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। रायकर्णदेव द्वारा मंत्री माधव की पत्नी के सतीत्व हरण का प्रसंग जनश्रुति आधारित है परन्तु जनश्रुति इतनी प्रबल है कि इतिहास प्रमाणित लगती है। हरम आदि के चित्र व देवलदेवी का गाड़ी में बैठकर निकल जाना काल्पनिक प्रसंग है परन्तु मुस्लिम वातावरण का यथार्थ व्यक्त करते हैं।

शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' में वर्णित मूल घटनाएँ और मूल पात्र ऐतिहासिक हैं। मुहम्मद–बिन–तुगलक द्वारा दक्षिण पर विजय प्राप्त करना, क्रूर और दमनकारी शासन करना, राजधानी परिवर्तन जैसे सनकी फैसले करना और हरिहर–बुक्का द्वारा विजयनगर की स्थापना करने सम्बन्धी प्रसंग इतिहास ग्रन्थों में प्रमाण सहित पाए जाते हैं। मुहम्मद–बिन–तुगलक, हरिहर–बुक्का, स्वामी सायणाचार्य, माधवाचार्य, स्वामी विद्यारण्य आदि इतिहास सिद्ध पात्र हैं। देवलदेवी भी इतिहास का त्रासद पात्र है। देवल देवी–श्रीदेवी, इन्दुषणमुखम्, हमीद–गजाला, मरप्पा–श्रीदेवी आदि प्रसंग काल्पनिक हैं। सांस्कृतिक–साम्प्रदायिक समन्वय

के प्रयास सम्बन्धी प्रसंग भी लेखक की लक्ष्यगत काल्पनिक प्रतिभा के उदाहरण है। इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय दोनों उपन्यासकारों की रचनाओं में देखा जा सकता है।

(3) युग धर्म स्थापक – युग समस्याओं को अभिव्यक्त कर युग चित्रण के माध्यम से युग के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक जीवन को नव–भाव प्रदान करना युग धर्म कहलाता है। खण्डित राष्ट्रभाव, ऊँच–नीच के भावों से भरा राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन, क्रूर–धर्मान्ध शोषणकारी मुस्लिम शासन व्यवस्था, धर्मान्तरण, सांस्कृतिक पतन, सम्प्रदायवाद की चरम कटुता, नारी का त्रासद जीवन मध्यकालीन भारतीय इतिहास का कटु सत्य रहा है। हब्बा खातून, रूपसुन्दरी, देवलदेवी के माध्यम से मनमोहन सहगल ने नारी के प्रति उस युग के दृष्टिकोण को प्रत्यक्ष किया है। अकबर और अलाउद्दीन कालीन मुस्लिम शासकीय नीति को दर्शाकर शासन की कुरूपता को प्रस्तुत किया है। गरबा नृत्य व कश्मीर चित्रण में भारत का सांस्कृतिक वैभव चित्रित हुआ है। देश की दुर्दशा के कारणों की पड़ताल करते हुए मनमोहन सहगल ने इस युग सत्य को प्रकट किया है कि भारतीय राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन में ऊँच–नीच की संकीर्ण भावना एवं एकत्व के अभाव ने राष्ट्र को बड़ी हानि पहुँचाई है। प्रजा की उदासीनता एवं नारी का शोषण भी पतन का कारण बनता है। सामाजिक समानता एवं राजनैतिक एकता का भाव जगाकर उपन्यासकार युग धर्म का निर्वाह करता है। साथ ही नारी जीवन जो समाज और देश का आधार है, उसके प्रति चेतन भाव जागृत करना भी उपन्यासकार का अभीष्ट रहा है। रूपसुन्दरी के कथन के माध्यम से उपन्यासकार ने युग धर्म की प्रतिष्ठा का सार्थक प्रयास किया है। रूपसुन्दरी कहती है – ''राजन् क्या आप मेरा सतीत्व, मेरा पतिव्रत और मेरा नारी धर्म लौटा सकते हैं? मेरे वर्चस्व को मेरे पति की दृष्टि में ही नहीं, मेरे दास–दासियों की नजर में भी आपने गिरा दिया है, क्या वह बहाल हो सकेगा? जिस राज्य में राजा ही अनैतिक और अनाचारी होगा, वहाँ प्रजा क्या नहीं करेगी? और वह राज्य कब तक सकुशल बना रहेगा।''[34] बादशाह युसुफ शाह चक ने कहा – ''मेरे भाईयों, मैं एक बार फिर आप लोगों को यकीन दिलाता हूँ कि मेरी नजर में शिया–सुन्नी में कोई फर्क नहीं है। .... हमारी रियाया में सुन्नी ही नहीं हिन्दू भी हैं और वो भी हमें उतने ही अजीज हैं। हमने आज तक हिन्दू–मुसलमान में कोई फर्क नहीं किया।''[35] खिज्र खाँ और देवल देवी के संवाद में भारतीय सांस्कृतिक–सामाजिक मूल्यों की सार्थक अभिव्यक्ति हुई है। देवल देवी कहती है – ''हमारे यहाँ स्त्री–पुरूष में रिश्ते होते हैं, दोस्ती नहीं। .... माता–पुत्र, बहिन–भाई, देवर–भाभी, पति–पत्नी कोई भी रिश्ता हो सकता है, दोस्ती नहीं। .... आप अपने निकटस्थ रिश्ते को धोखा देकर किसी अन्य स्त्री की नजदीकी ढूँढ़ रहे हैं। हिन्दू जीवन दर्शन इसे हेय समझता है।''[36] नारी अस्मिता, राजधर्म की प्रजाहितकारिता, भेदभाव मुक्त समाज की स्थापन के माध्यम से उपन्यासकार ने युग धर्म की प्रतिष्ठा की है।

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक समन्वय एवं एकत्व के प्रयास ठोस भावना से किए गए हैं, जो उस युग ही नहीं आज के युग भी माँग हैं। 'कश्मीर की बेटी' में आनन्द भिक्षु भट्ट एवं 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' में स्वामी विद्यारण्य के सभी प्रसाद इसी दिशा में हुए है। चाँदनी एवं श्रीदेवी इसी दिशा में किए ठोस प्रयास हैं। सभी सम्प्रदायों को एक करते हुए अद्वैत भाव की चेतना व्यक्त करना ही राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक ऐक्य का ही सफल प्रयत्न है। हिन्दू संस्कृति को श्रेष्ठता प्रदान करने की दृष्टि से किए गए प्रयास भी नव युग प्रवर्त्तन ही माना जा सकता है। जात–पाँत के भेद से मुक्त समाज की स्थापना, सम्प्रदायवाद से मुक्ति, राष्ट्रीय एकता का भाव, धर्मान्तरण की समस्या का निराकरण, सांस्कृतिक समन्वय, हिन्दू दर्शन की श्रेष्ठता आदि भावों के प्रति चेतना जागृत कर दोनों ही उपन्यासकारों ने युग धर्म का सफल निर्वाह किया है।

(4) कथ्य एवं शिल्प – मनमोहन सहगल और शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में अतीतकालीन यथार्थ और यथार्थ से उपजा आत्मबोध ही केन्द्रिय भाव है। 'घटना–बढ़ता चाँद' में मनमोहन सहगल ने कश्मीर के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक यथार्थ को व्यक्त करते हुए नारी जीवन की व्यथा को मर्मस्पर्शी शैली में व्यक्त किया है। युसुफ शाह चक एवं हब्बा खातून प्रजाहित में शासन करते हैं। शान्ति एवं समानता में पूर्ण विश्वास रखते है परन्तु धार्मिक ठेकेदार अविश्वासी एवं स्वार्थी सोच अपनाकर जनता को भड़काने में सफल होते हैं। अकबर की विस्तारवादी एवं धोखेबाजी की सोच उसकी उदार प्रवृत्ति की पोल खोल देती है। हब्बा खातून के जीवन संघर्ष को 'घटता–बढ़ता चाँद' के मानिन्द दर्शाया है। 'कश्मीर की बेटी' में शत्रुघ्न प्रसाद ने हिन्दू धर्म की रूढ़ मान्यताओं, शासकों की दुर्बलताओं और ठोस शासकीय नीति के अभाव को कश्मीर पतन का कारण माना है। मनमोहन सहगल द्वारा हब्बा खातून तथा शत्रुघ्न प्रसाद द्वारा 'कश्मीर की बेटी' कोटा देवी की राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्र रक्षा निमित्त किए जीवन संघर्ष एवं उनके जीवन की त्रासदी को दर्शाया गया है। शाहमीर एवं अकबर के छल ने कश्मीर को आहत किया है। कश्मीर के इसी सत्य को उजागर करना उपन्यासकारों का ध्येय है। उपन्यासकार मनमोहन सहगल ने दर्शाया है कि जनता की निष्क्रियता और साम्प्रदायिक सोच देश का अहित करती है। लिखा है – ''कश्मीर की जनता आमतौर पर आत्मलीन थी। राष्ट्रीयता या आजादी जैसे संकल्पों ने जन्म नहीं लिया था। वे केवल इतना जानते थे कि वे रियाया है और उन पर एक हुकूमत है। .... नसीम जान और हुकूमत के दीवान जैसे लोग साम्प्रदायिक दंगों की योजना बनाते थे या फिर हुकूमत बदलने के लिए मुगलों की शरण में जाने की सोचते थे। नसीम जान को धन चाहिए था। दीवान को सुन्नी हुकूमत चाहिए थी। रहे उलमा! वे तो मुगल हुकूमत के गुप्तचर थे। ऐसे में कश्मीर के भाग्य में दुर्गति के अलावा क्या हो सकता था।''[37] 'कश्मीर की बेटी' के कथ्य एवं शिल्प को स्पष्ट करते हुए धर्मप्रकाश विकल ने लिखा है कि – ''लेखक ने भारतीय समाज जीवन के विभिन्न

स्वभावों को सफलतापूर्वक उभारकर दर्शाया है कि पंडित प्रवर देवस्वामी अहंकारी, आत्म केन्द्रित, रूढ़िगत, अदूरदर्शी व स्वार्थी हैं, तो आनंद भिक्षु भट्ट उदार राष्ट्रीय जीवन दृष्टि के वाहक, वर्ण–जाति की रूढ़ि से मुक्त, राष्ट्र रक्षा के संकल्प में संलग्न हैं। कोटा देवी, चाँदनी तथा सर्वदेव निर्भीक व संघर्षशील हैं जो कश्मीर की रक्षा के निमित्त अंतिम साँस तक लड़ते हैं और आत्मोत्सर्ग करते हैं। विदेशी घुसपैठियों के षड़यन्त्रों एवं राजाओं, सामंतों की अदूरदर्शिता के कारण रम्य घाटी अंधेरी घाटी में बदल जाती है। .... कृति में परिवेश, चरित्र और कथा का सगुंफन हुआ है। जीवंत भाषा और सरल संवाद कथा को रोचक बनाते हैं।''[38]

'काला सच' उपन्यास के माध्यम से मनमोहन सहगल ने कहना चाहा है कि भारतीय राजाओं की ऊँच–नीच की संकीर्ण मानसिकता, विलास भावना एवं धार्मिक भेदभाव ने सांस्कृतिक वैभव से आनन्द भाव प्रदान करने वाले राष्ट्र को पददलित और पतनशील बना दिया। डॉ शशिप्रभा ने अपने एक लेख में स्पष्ट किया है कि – ''भारतीय उपमहाद्वीप की दुर्दशा, यहाँ के मन्दिरों की तोड़–फोड़ तथा गुलामी के गर्त में धँसने के लिए केवल मुस्लिम शासन ही जिम्मेदार नहीं है बल्कि यहाँ की राजशाही की निरंकुशता, विलासितापूर्ण आचरण, अदूरदर्शी तथा आत्म केन्द्रित सोच भी जिम्मेदार है।''[39] कमलादेवी एवं देवलदेवी के माध्यम से लेखक ने मुस्लिम क्रूरता एवं नारी जीवन की दयनीयता को अभिव्यक्त करते हुए नारी चेतना को भी वाणी दी है। सुधा जितेन्द्र ने अपने एक लेख में कहा है कि – ''इस उपन्यास में लेखक ने सृष्टि के सबसे सुन्दर सृजन, करूणा, दया एवं ममता के पुंज व क्षमा, सहनशीलता, त्याग की प्रतिमूर्ति नारी के जीवन के उस अंधकार युग के स्याह पन्नों को उजागर किया है, जहाँ केवल देह ही उसकी पहचान थी। उपन्यासकार ने 'काला सच' उपन्यास में नारी को ही नारी की शत्रु भी सिद्ध किया है। साथ ही उपन्यासकार ने नारी की विषादपूर्ण स्थिति में भी नारी चेतना की हल्की सी आशा देवलदेवी और भील कन्या रत्ना के माध्यम से दिखाई है। .... तथा तत्कालीन हिन्दू समाज में व्याप्त जाति–पाँति, ऊँच–नीच की अभेद्य दीवारों का भी यथार्थ अंकन किया है।''[40]

शत्रुघ्न प्रसाद रचित ''तुंगभद्रा पर सूर्योदय' उपन्यास में मुहम्मद–बिन–तुगलक कालीन राजनैतिक–सामाजिक यथार्थ के साथ–साथ मुस्लिम शासकों की क्रूर, दमनकारी, सनकी एवं धर्मान्ध मनोवृत्ति को दर्शाया गया है। साम्प्रदायिक–सांस्कृतिक भेद में अद्वैत चेतना की प्रतिष्ठा करने का सफल प्रयास किया गया है। देवल देवी आदि के माध्यम से नारी की दुर्दशा को चित्रित किया गया है। इन्दु–षणमुखम के प्रसंग से देवदासी प्रथा जैसी रूढ़ियों पर व्यंग्य किया गया है। हरिहर–बुक्का के माध्यम से विजयनगर की स्थापना करवाकर हिन्दूत्व का भाव जागृत किया है।

मनमोहन सहगल ने अलाउद्दीन काल को भारतीय जीवन के लिए काला अध्याय कहा है। वे लिखते हैं – ''अलाउद्दीन, मलिक काफूर, मुबारक अली, खुसरो उत्तरोत्तर सल्तनत कमजोर होती चली गई थी, लेकिन इतिहास का एक काला सच सब स्थितियों में निरन्तर मौजूद था

– औरत की तार–तार होती अस्मत।[41] शत्रुघ्न प्रसाद ने मुस्लिम शासन में चलते इस काले अन्धेरे में सूर्योदय का उजाला किया है। स्वामी जी ने दो क्षण विचार कर घोषणा की – ''एक पक्ष के बाद वैशाख शुक्ल सप्तमी, बृहस्पतिवार को तुंगभद्रा के तट पर नया सूर्योदय होगा। हम्पी में ही तट से उस ओर पठार भूमि में नये नगर का शिलान्यास होगा। .... नया नगर विजयनगर कहलायेगा।''[42]

इस प्रकार मनमोहन सहगल ने काला सच अर्थात् मुस्लिम काल का अंधकार दिखाया है और शत्रुघ्न प्रसाद ने अंधकार के बाद उजाला अर्थात् सूर्योदय दिखाया है।

शैल्पिक दृष्टि से दोनों उपन्यास अपनी–अपनी कुशलता रखते हैं। सुधा जितेन्द्र ने लिखा है कि – ''मनमोहन सहगल के उपन्यासों में स्थितियों–परिस्थितियों, घटनाओं, पात्रों, सम्बन्धों का ताना–बाना बाह्य धरातल पर जितना सुगठित एवं सुसंबद्ध होता है उतना ही आंतरिक धरातल पर प्रासंगिक, साभिप्राय, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिकता से युक्त।''[43]

'काला सच' उपन्यास का कथानक आदि से अन्त तक सुगठित और पाठक को बाँधे रखने में सक्षम है। विराट कथ्य को अपने में सँजोए कथा परत–दर परत खुलती है। .... नाटकीय संवाद उपन्यास को प्रभावी बनाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। गरबा नृत्य, आनंदीबाई के नर्तन, आखेट आदि दृश्यों में नाटकीयता के दर्शन होते है। भाषा में सम्प्रेषणीयता का समावेश उपन्यास को रोचक बना देता है। प्रसंगानुकूल सबल और प्रभावशाली भाषा शैली उपन्यास की सजीवता को बढ़ाती है। तत्सम्, तद्भव, उर्दू, फारसी की शैली परिवेश को यथार्थ रूप देने में सक्षम है।

'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' उपन्यास की भाषा सरस व सरल है। संक्षिप्त वाक्य रचना, संवादों की कुशलता, कथानक में धटनाओं का तारतम्य, परिवेश की जीवंतता, पात्रों का सजीव चित्रण एवं इतिहास–कल्पना का संयोजन इसे कुशल शिल्प सृजन प्रदान करता है। समीक्षक शंकरलाल स्वामी ने लिखा है – ''उपन्यास में कथा का स्वाभाविक विकास होता नजर आता है। कहीं कुछ अप्रत्याशित नहीं है। स्थान–स्थान पर कथोपकथन कुशलतापूर्वक रखे गए हैं। ये कथा को गति देते हैं। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार वातावरण का सृजन करने में कथाकार समर्थ है। उपन्यास की अरबी–फारसी से युक्त हिन्दी सरस, सरल काल खण्ड के अनुरूप है। वाक्य विन्यास सरल और कथा की बुनावट लेखन के अनुकूल और व्यवहार्य है।''[44] निष्कर्षतः अपनी–अपनी विशिष्टताओं के साथ दोनों उपन्यासकार साहित्य जगत के लिए विशिष्ट देन है।

(5) भविष्योन्मुखी आधुनिक संदर्भ – शत्रुघ्न प्रसाद एवं मनमोहन सहगल के उपन्यासों की अतीत कालीन स्थितियाँ वर्तमान के लिए भी प्रासंगिक हैं तथा आधुनिक संदर्भ में भी उपयोगी सिद्ध होती है। हब्बा खातून और कोटा देवी का जीवन संघर्ष आज भी कहीं न कहीं कायम है। राजनीति में वही षड़यन्त्र आज के परिवेश की भी सच्चाई है। हब्बा खातून के

चरित्र पर जो दोषारोपण किए गए हैं, वे आज की मुक्त विचारधारा में भी लगाए जा सकते है। उदयदेव की कोटा देवी के प्रति उदासीनता संकीर्ण पुरूष सोच का ही नतीजा है। आज भी देखी जा सकती है। मनमोहन सहगल के उपन्यास सीधी कहानी कहते हैं पर कई स्थलों पर मार्मिक प्रसंगों के माध्यम से उपन्यासों को भविष्योन्मुखी बनाया गया है। प्रजाहितकारी राजनीति, नारी शोषण से मुक्ति, ऊँच–नीच से मुक्त समान विचारधारा, धर्म आधारित संस्कार बोध, हिन्दू संस्कृति के प्रति उदार भाव उनके उपन्यासों को आधुनिक सन्दर्भों से जोड़ते हैं। मनमोहन सहगल रचित ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास गड़े–मुर्दे उखाड़ना भर नहीं अपितु इतिहास के आलोक में राष्ट्र की सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों, गुणों–अवगुणों, सबलताओं–दुर्बलताओं के आलोक में वह भविष्य का पथ प्रदर्शन करने का प्रयत्न करते हैं। डॉ शशिप्रभा ने अपने एक लेख में लिखा है कि – ''उपन्यास की कथा का आधार गुजरात की पाटण रियासत के राजा रायकरण द्वारा अपने मंत्री माधव की पत्नी रूपसुन्दरी के बलात् शारीरिक शोषण तथा उसके द्वारा दिए श्राप के परिणामस्वरूप उस रियासत और रायकरण के परिवार की बर्बादी की है। वास्तव में कहानी केवल इस घटना तक सीमित न होकर इसके माध्यम से अनेक प्रश्नों को उठाती, समस्याओं और स्थितियों का यथार्थ चित्रण करती केवल अतीत में ही विचरण नहीं करती बल्कि आज की स्थितियों में भी व्यवस्था के काले सच को बयान करती है। .... शक्ति, अन्ध श्रद्धा, धार्मिक विश्वासों के चलते व्यक्ति राज करता रहा, जनता शोषण सहती रही, चापलूस बिचौलिए अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहे और जीवन के प्रति मोहग्रस्त लोग समय के निजाम को सलाम बजाते हुए पदवियाँ प्राप्त करते रहे। केवल इतिहास के पन्ने ही इस बात की गवाही नहीं देते, हम स्वयं देख रहे हैं कि व्यवस्था का मुखौटा बदलने के बावजूद अन्दर से व्यवस्था आज भी वही है।''[45] सुधा जितेन्द्र ने भी लिखा है कि – ''मनमोहन सहगल का 'काला सच' उपन्यास इतिहास की उन नग्न सच्चाईयों का यथार्थ अंकन है जो आज के स्वस्थ समाज के निर्माण में बहुमूल्य योगदान दे रहा है। माधव की पत्नी का श्राप वास्तव में पीड़ित, लांछित, अपमानित, तिरस्कृत नारी जाति का श्राप है। आज का नारी चिंतन, विमर्श, चेतना, आंदोलन और सशक्तिकरण तभी सार्थक और सफल हो सकते हैं जब आज का मनुष्य व समाज इतिहास की इन भूलों से सबक ले। उपन्यासकार इतिहास के इन काले पन्नों के माध्यम से वर्तमान एवं भविष्य को उजाला देना चाहता है।''[46] इन उद्धरणों से मनमोहन सहगल के उपन्यासों में व्यक्त आधुनिक सन्दर्भ में भविष्योन्मुखी उपयोगिता सिद्ध हो जाती हैं।

शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने उपन्यासों में स्थितियों, पात्रों एवं संवादों द्वारा आधुनिक संदर्भों में उपयोगिता सिद्ध की है। राजनीति, धर्म, समाज, संस्कृति, सम्प्रदाय एवं व्यक्ति संदर्भ में भी आधुनिक समस्याओं का निदान दिखाई पड़ता है। चाँदनी–सर्वदेव विवाह, हमीद–गजाला संवाद, देवलदेवी की संकल्प भावना, इन्दु–षणमुखम प्रसंग में उठाए गए प्रश्न, श्रीदेवी–मरप्पा विवाह, शाश्वती–वैतीहोत्री का दाम्पत्य चिंतन, स्वामी विद्यारण्य एवं आनन्द भिक्षु का

साम्प्रदायिक–सामाजिक चिंतन नवचेतना के भावों से युक्त आधुनिक सन्दर्भों में उपयोगी होकर भविष्य को सुन्दर निर्मिति प्रदान करता है। 'कश्मीर की बेटी' की समीक्षा करते हुए धर्म प्रकाश विकल ने लिखा है कि – ''शत्रुघ्न प्रसाद द्वारा रचित एक मर्मकला है। उपन्यास कश्मीर के इतिहास को तो सामने रखता ही है। साथ ही साथ उससे सबक लेकर वर्तमान को और भविष्य को सुरक्षित रखने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। उपन्यास में नये जीवन से जुड़े अनेक पक्ष अपनी सम्पूर्ण विद्रूप पीड़ाओं के साथ उकेरे गए हैं तथा 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' की समीक्षा करते हुए शंकरलाल स्वामी ने लिखा है कि – ''तुगलकी शासन जैसी क्रूरतापूर्ण स्थितियों में हमारे धर्म गुरूओं का विशेष महत्वपूर्ण योगदान रहा। स्वतन्त्रता के प्रति जागृति पैदा की गई और जनसहयोग व हिन्दू शासकों के एक साथ प्रयास से भारत का दक्षिणी भाग तुगलकी शासन से आजाद हुआ। इतिहास के ऐसे अधसुलझे पृष्ठों के द्वारा उपन्यासकार ने ठीक दस्तक दी है जो वर्तमान पीढ़ी को स्वतन्त्रता की परिभाषा समझाने में अवश्य सफल होगी।''[47] शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की आधुनिक संदर्भ में उपयोगिता सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त उद्धरण पर्याप्त हैं।

निष्कर्षतः मनमोहन सहगल के उपन्यास लघुकाय है एक जीवनगाथा को व्यक्त करते है और आंशिक रूप में समाज की समस्याओं को संकेतित करते हैं जबकि शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास विराट् कथ्य को व्यक्त करते हुए अतीतकाल से सम्पूर्ण परिवेश को चित्रित करते हैं साथ ही वर्तमान समस्याओं को भी अतीत के साथ जोड़कर प्रस्तुत करते हैं।

6.5 शत्रुघ्न प्रसाद का भगवतीशरण मिश्र के साथ तुलनात्मक अध्ययन – रचनाकाल की दृष्टि से भगवतीशरण मिश्र भी शत्रुघ्न प्रसाद के समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं जिन्होंने पहला सूरज, पवन–पुत्र, प्रथम पुरूष, पुरूषोत्तम, पीतांबरा, काके लागूँ पाँव, गोविन्द गाथा, देख कबीरा रोया, पावक, अग्निपुरूष, पद्मनेत्रा, अरण्या, आदि ऐतिहासिक–पौराणिक उपन्यासों की रचना कर ऐतिहासिक उपन्यास को समृद्ध किया है। 'देख कबीरा रोया' महात्मा कबीर के जीवन पर आधारित उपन्यास है। शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'सुनो भाई साधो' भी कबीरकालीन इतिहास पर ही आधृत है। अतः विवेच्य अध्याय में 'देख कबीरा रोया' पर विशेष अध्ययन अपेक्षित है।

(1) विषयवस्तु – शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यास वैदिक काल, ईसा पूर्व प्रथम सदी व मध्यकालीन इतिहास पर आधृत हैं। इनके उपन्यासों की विषयवस्तु वैदिक ऋषि याज्ञवल्क्य, ईसा पूर्व के विक्रमादित्य, मध्यकालीन इतिहास के हेमचन्द्र–विक्रमादित्य, हरिहर–बुक्का एवं स्वामी विद्यारण्य मध्वाचार्य, दाराशिकोह व औरंगजेब, अकबर व महाराणा प्रताप, महाराज गोविन्दपाल व इख्तियार खिलजी, कोटा देवी एवं आनन्द भट्ट व कबीर के जीवन एवं इतिहास से ली गई है। भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों के सन्दर्भ पौराणिक एवं ऐतिहासिक दोनों हैं। 'पहला सूरज' छत्रपति शिवाजी, 'पवन पुत्र' रामभक्त हनुमान, 'प्रथम पुरूष' एवं

'पुरूषोत्तम' श्री कृष्ण 'काके लागूँ पाँव' व गोविन्द गाथा' गुरू गोविन्द सिंह, 'पीताम्बरा' मीरा बाई व 'देख कबीरा रोया' कबीर के जीवन से सम्बन्धित विषयवस्तु लेकर रची गई रचनाएँ हैं। 'पावक' और 'अग्नि–पुरूष' की विषयवस्तु पुष्टिमार्गी वल्लभाचार्य के जीवन से ली गई है। 'पद्यनेत्रा' की कथाभूमि बंगाल के सिद्धक्षेत्र तारापीठ से सम्बन्धित है तो 'अरण्या' बस्तर अंचल की सभ्यता एवं संस्कृति, माता दन्तेश्वरी के शक्ति सामर्थ्य की अद्‌भुत क्षमता एवं आदिवासियों के जीवन संघर्ष पर केन्द्रित है।

शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'सुनो भाई साधो' एवं भगवतीशरण मिश्र रचित 'देख कबीरा रोया' भक्तिकालीन निर्गुण संत कबीर के जीवन एवं इतिहास से सम्बन्धित उपन्यास हैं। 'सुनो भाई साधो' में कबीर के जन्म से सिकन्दर लोदी द्वारा नदी में फिंकवा दिए जाने तक की घटनाएँ वर्णित हैं। इसमें कबीर के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ–साथ दिल्ली की लोदी सल्तनत एवं जौनपुर के शर्की सुल्तानों के मध्य संघर्ष की घटनाएँ भी वर्णित है। इस उपन्यास की विषयवस्तु कबीर के जीवन की प्रमुख घटनाओं के अलावा बहलोल शाह, निजामशाह उर्फ सिकन्दर शाह, बारबक शाह, हुसैन शाह शर्की एवं फाफामऊ आदि के ज़मीदारों के बीच घटित राजनैतिक घटनाओं से संयुक्त है।

भगवती शरण मिश्र रचित 'देख कबीरा रोया' में कबीर के जन्म से मृत्यु तक की प्रमुख घटनाओं को विषयवस्तु के रूप में लिया गया है। सिकन्दर लोदी एवं कबीर के बीच नदी में डुबोने के प्रयास से सम्बन्धित घटना के अलावा कबीरदास की बंगप्रदेश एवं असम की यात्रा को भी केन्द्रिय विषयवस्तु बनाया गया है। पूर्णानन्द तांत्रिक, कालभैरव की सिद्धि प्राप्त कालदेव एवं कामख्या मंदिर के पास असम में तांत्रिक पुजारी की तांत्रिक शक्तियों के चमत्कारों का सामना करते हुए कबीरदास के चमत्कारिक प्रसंगों को भी विशेष स्थान दिया गया है। कमाल के साथ कबीर का विरोध, कमाली का विवाह प्रसंग एवं धनिया का प्रेमिका के रूप में कबीर के लिए समर्पित भाव विशेष प्रसंग हैं जो शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'सुनो भाई साधो' से भिन्नता रखते हैं। 'सुनो भाई साधो' में कबीर के जीवन संघर्ष के साथ–साथ इस्लामी शासन व्यवस्था का भी मूर्त रूप दर्शाया गया है। लोदी सल्तनत एवं शर्की सुल्तानों के समय की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ भी उपन्यास में मुख्य कथा के रूप में वर्णित है जबकि भगवती शरण मिश्र रचित 'देख कबीरा रोया' में कबीर के जीवन प्रसंग एवं जीवन दर्शन को ही महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। 'सुनो भाई साधो' में पन्द्रहवीं शताब्दी की प्रमुख राजनैतिक घटनाओं को भी केन्द्रिय कथा के रूप में चित्रित किया गया है। वहीं 'देख कबीरा रोया' में कबीर के जीवन दर्शन को प्रमुखता दी गई है। बंगाल व असम की यात्रा व कबीर के चमत्कार पूर्ण प्रसंगों को भी विशेष स्थान दिया गया है। विषयवस्तु की दृष्टि से दोनों उपन्यासों में पर्याप्त समानता के बावजूद पर्याप्त असमानता भी है।

(2) इतिहास एवं कल्पना – शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'सुनो भाई साधो' में संत कबीर के जीवन के साथ–साथ लोदी सल्तनत एवं शर्की सुल्तानों का संघर्ष भी दर्शाया गया है। साथ ही बारबक शाह व शहनाज बेगम तथा लक्ष्मीचन्द्र–मधुवंती की प्रेम कथाओं के काल्पनिक प्रसंग भी समायोजित किए गए हैं। कबीर के जीवन के महत्वपूर्ण प्रसंग जिनमें नीरू और नीमा को लहरतारा तालाब के पास कबीर का प्राप्त होना, नीरू–नीमा द्वारा कबीर का पालण–पोषण करना, वैष्णव संत रामानन्द को कबीर का गुरू बनाना, राम–नाम का मंत्र देना, सिकन्दर लोदी द्वारा कबीर को मरवाने के प्रयास करना आदि प्रमुख हैं, ऐतिहासिक माने जाते है। कबीर के जीवन से सम्बन्धित पुस्तकों में इन प्रसंगों को मान्यता मिल चुकी है। बहलोल लोदी के बाद निजाम शाह का सिकन्दर की उपाधि धारण कर दिल्ली सल्तनत का बादशाह बनना, बारबक शाह को जौनपुर का सूबेदार बनाना, जौनपुर के शर्की सुल्तानों के साथ संघर्ष होना आदि घटनाएँ इतिहास सम्मत हैं जो मध्यकालीन इतिहास ग्रन्थों द्वारा प्रमाणित हैं। कबीर, लोई, वल्लभाचार्य, कमाल, सुरति गोपाल, सिकन्दर लोदी, बारबक शाह, हुसैन शाह शर्की, बिजली खाँ आदि पात्र भी इतिहास द्वारा प्रमाणित हैं। कबीर द्वारा गुरू रामानन्द के जन्म समारोह में जाते समय स्मृतियों में खो जाना, लोई के साथ किसी महाजन द्वारा किया शील हरण का प्रयास, वनखंडी बाबा द्वारा कबीर को सौंपना, कबीर एवं ब्राह्मण, महाजन, मुल्ला–मौलवियों का संघर्ष, लक्ष्मीचन्द्र एवं मधुवंती का प्रेम–प्रसंग, शर्की बादशाह को बचाने एवं पुनः सत्ता प्राप्त करने की दृष्टि से शहनाज बेगम द्वारा बारबक शाह के साथ अपनाया गया प्रेम–व्यवहार आदि उपन्यासकार की उर्वर कल्पना की उपज हैं। लोदी–शर्की संघर्ष, लोदी शासन व्यवस्था एवं कबीर के जीवन की घटनाओं के साथ–साथ लक्ष्मीचन्द्र–मधुवंती व बारबक शाह–शहनाज बेगम के कल्पना प्रसूत प्रसंगों को इस प्रकार समायोजित किया गया है कि सम्पूर्ण उपन्यास एक इतिहास–गाथा लगता है। 'सुनो भाई साधो' की सभी प्रमुख घटनाएँ एवं प्रमुख पात्र इतिहास द्वारा प्रामाणिक सिद्ध होते है।

भगवती शरण मिश्र रचित 'देख कबीरा रोया' में कबीर की आध्यात्मिक यात्रा का चित्रण है। कबीर जीवन की प्रमुख घटनाएँ तो इतिहास सम्मत हैं परन्तु कबीर और कमाल के बीच कड़वाहट दिखाना, कबीर की धनिया नामक प्रेमिका दर्शाना, कमाली का विवाह प्रसंग, धनिया से प्रेरित होकर नारी प्रेम एवं सम्मान के पद लिखना, बंगाल और आसाम यात्रा में कालभैरव कालदेव एवं तांत्रिक पूर्णानन्द सर्वजित व तांत्रित पुजारी से सम्बन्धित घटनाएँ कल्पना शक्ति की उपज है। मूल रूप से अनुभूत सत्यों को आध्यात्मिक पदों में व्यक्त करने की कथा यात्रा है। कबीर, लोई, कमाल, कमाली, श्रुतिगोपाल, सिकन्दर लोदी, बिजली खाँ, रामानन्द आदि पात्र ऐतिहासिक हैं। कालदेव कालभैरव पूर्णानन्द सर्वजित, पुजारी आदि काल्पनिक पात्र हैं। धनिया संभावित ऐतिहासिक पात्र है। कई कबीर कालीन ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। जिस तरह कबीर से मिलवाया गया है और एक अलौकिक प्रेम प्रसंग वर्णित किया गया है। वह

उपन्यासकार की कल्पना शक्ति का अनुपम प्रयोग है। सम्पूर्ण उपन्यास एक आध्यात्मिक जीवन गाथा के रूप में चलता है। संयोजन कौशल श्रेष्ठ है।

औपन्यासिक वितान में दोनों उपन्यास अपनी–अपनी श्रेष्ठता रखते हैं परन्तु इतिहास–दृष्टि से अवलोकन करने पर 'देख कबीरा रोया' काल्पनिक यथार्थ के अधिक निकट होने के कारण इतिहास से दूर है यद्यपि कबीर का जीवन ऐतिहासिक प्रमाणों पर आधृत ही है। स्वयं उपन्यासकार ने लिखा है कि – "अंत में इतना तो मानना ही पड़ेगा कि यह एक औपन्यासिक कृति है, ऐतिहासिक नहीं। ऐतिहासिकता चाहे जितनी उपलब्ध हो पर इसे इतिहास–ग्रन्थ की संज्ञा नहीं दे सकते। फिर भी कबीर के सम्बन्ध में जो कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य मिल सकता था, आधार सामग्री में उसी का प्रयोग हुआ है।"[48] यद्यपि उपन्यासकार ने रामकुमार वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं गंगा शरण शास्त्री द्वारा कबीर के जीवन पर रचित पुस्तकों का सहारा लिया है। 'बीजक' को भी आधार रूप में ग्रहण किया है। निष्कर्ष उनके अपने हैं। ऐसा उन्होंने 'देख कबीरा रोया' उपन्यास की प्रस्तावना में स्वीकार किया है।

ऐतिहासिक दृष्टि से 'सुनो भाई साधो' अधिक प्रामाणिक मान्य होती है। इसमें केवल कबीर का जीवन ही नहीं उस काल की राजनैतिक घटनाओं को भी इतिहास–सम्मत वर्णित किया गया है। इसकी प्रमुख घटनाएँ इतिहास–ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। शत्रुघ्न प्रसाद ने लिखा है – "आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर–तुलसी के कालखण्ड को सांस्कृतिक द्वन्द्व का युग माना है। उन्होंने उस युग के द्वन्द्वपूर्ण जीवन की व्यापक भूमि पर कबीरदास के जीवन एवं उनकी वाणी को समझने का प्रयत्न किया है। मैंने कबीर को इसी परिवेश में समझने का प्रयत्न किया है।.......... ऐतिहासिक यथार्थ है कि कबीरदास और समकालीन निजाम शाह या सुल्तान सिकन्दर लोदी दोनों में हिन्दू माँ का रक्त था। दोनों एक–दूसरे से असहमत थे। एक एकात्म मानवता का विश्वासी था, तो दूसरा मजहबी सियासत की असहिष्णुता का सहारा लेकर दिल्ली के तख्त पर बैठ गया था।"[49]

निष्कर्षतः इतिहास की दृष्टि से 'देख कबीरा रोया' से 'सुनो भाई साधो' अधिक प्रामाणिक सिद्ध होता है। इतिहास एवं कल्पना संयोजन में दोनों अपनी–अपनी कुशलता का परिचय देते हैं। इतिहास–कल्पना समन्वय दोनों उपन्यासों में कुशलतापूर्वक गुंफित है।

(3) युग–धर्म स्थापक – ऐतिहासिक साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति युग चित्रण करना है। युग का सम्पूर्ण परिवेशगत चित्रण करते हुए उसे आधुनिक संदर्भों से जोड़ना ही ऐतिहासिक उपन्यासकारों का मंतव्य होता है। युगीन समस्याओं, विषमताओं और द्वन्दों को दर्शाकर उपन्यासकार जो स्थापनाएँ स्थापित करता है, वह युग धर्म कहलाता है। कबीरकालीन अतीत के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक जीवन को समस्त विषमताओं और द्वन्दों के साथ प्रत्यक्ष करते हुए मानव धर्म की स्थापना करना दोनों उपन्यासकारों का अभीष्ट रहा है। 'सुनो भाई साधो' में दिल्ली सल्तनत के लोदी वंश व कबीर कालीन काशी की कथाएँ

समानान्तर चलती हैं। समाज में व्याप्त सामाजिक विषमताओं की पीड़ा कबीर के जीवन एवं जुलाहा टोला के माध्यम से व्यक्त हुई है। लोदी सुल्तानों के माध्यम से इस्लामी कट्टरता, धर्मान्तरण की नीति एवं अत्याचारपूर्ण खौफनाक सियासत को चित्रित किया है। स्त्री जीवन के उदात्त एवं दयनीय दोनों तरह के चित्र लोई एवं शहनाज बेगम के माध्यम से उकेरे गए है। 'सुनो भाई साधो' में कबीर के जीवन–दर्शन के माध्यम से अद्वैतवादी जीवन मूल्यों के साथ–साथ मानवतावादी मूल्यों की स्थापना का सार्थक प्रयास किया गया है। राजधर्म, समाज धर्म, व्यक्ति धर्म एवं मानव धर्म की विचारणा व्यक्त की गई है। 'सुनो भाई साधो' में आए कतिपय वक्तव्यों से युग धर्म स्थापना की प्रवृत्ति को समझा जा सकता है। पंडित ने कहा – ''गुरू रामानन्दजी शास्त्तर–पुराण को भी मानते हैं। .... पर ये जात को मानकर भी नहीं मानते। .... सबको एक साथ बैठा रहे हैं। .... रामानन्दजी जात को नहीं आदमियत को पसंद करते हैं। .... पोखर या दरिया में लहरें उठती है, उसी में समा जाती है। राम और जीव का यही रिश्ता है। खुदा और बंदा में यही रिश्ता है। दोनों एक है। .... राज धर्म और मानुष धर्म में नजदीकी आए यही चाहता हूँ ...... परजा को बेटे के समान पालना धरम है, अपने पर विश्वास और राम से प्यार .... अपने पापों से डरना है, पर जुल्म करने वालों से नहीं डरना है .... हर आदमी में .... जीव में खुदा के दर्शन करें, मुल्ला साहब। राम–रहीम का भेद दूर करें। बाहमन ऊँच–नीच की बात छोड़े। .... एक नया संसार, नयी दुनिया बनने दें। .... कोई धर्म मानो पर अपनी धरती, अपने देश के आहार–विहार और रीति को नहीं छोड़ना है। .... मैं तो भगत हूँ। राम और रहीम को एक मानता हूँ। ढाई आखर प्रेम का संदेश देता हूँ। .... नफरत की हवा में प्यार का चिराग जलेगा। आप चिराग जलाएँ। अंधकार भागेगा।''[50]

कबीर ने अपने सम्पूर्ण चिंतन में विषमता और द्वन्दों के अंधकार को दूर कर मानवता, समानता और प्रेम का दीपक जलाने की भावना व्यक्त ही है। शत्रुघ्न प्रसाद ने महात्मा कबीर के माध्यम से 'सुनो भाई साधो' में यही युग धर्म स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया है।

भगवती शरण मिश्र ने 'देख कबीरा रोया' में कबीरदास के सम्पूर्ण दार्शनिक चिंतन को व्यक्त किया है। यह उपन्यास कबीर की दार्शनिक यात्रा ही लगता है। सामाजिक विषमता एवं मानव जीवन की विचारधाराओं में व्याप्त रूढ़ अवधारणाओं को कबीर अपने अनुभूत सत्यों से गलत सिद्ध कर सही जीवन के अर्थ तलाशते हैं। राजनैतिक द्वन्द्व या शासन का अत्याचारी रूप इस उपन्यास में नहीं दर्शाया गया है। कबीर का चिंतन ही प्रमुख है। रूढ़ मान्यताओं का खण्डन कर सामाजिक समरसता की स्थापना एवं मानवीय धर्म की सही व्याख्या प्रस्तुत की गई है। 'देख कबीरा रोया' में आए कतिपय प्रसंगों एवं वक्तव्यों के माध्यम से युगीन समस्याओं के प्रति चेतन भाव प्रकट किया गया है। .... तो विष रूपी नारी से अमृत रूपी नर कैसे पैदा हो गया .... जो सत्य से भागे वो संत क्या .... राम परम ब्रह्म हैं। वही सबकुछ हैं। .... तुम उसी राम के भक्त हो जो गुणातीत है और निर्मल है। इस समर्थ रूप को

जितना ही अधिक सामर्थ्यवान बनाओ उतना ही अधिक इससे लोकमंगल सध सकता है। .... कबीर ने कहा – सबके अंदर वही बसता है। हिन्दुओं के अन्दर भी मुसलमानों के अन्दर भी। कस्तूरी का सुवास है वह, हिन्दू–मुसलमान का भेद वह क्या जाने। सभी को बिना भेदभाव के वह सुवासित करता है। सभी उसी के बंदे हैं। .... प्रेम एक शाश्वत सत्य है। प्रेम वासना का मुखापेक्षी नहीं, वह मात्र त्याग का मूर्तिमान स्वरूप है। यह प्रेम ही तो है जो सर्वस्व का त्याग करा सकता है। इसी प्रेम ने तो अपना जीवन उत्सर्ग करने के लिए बाध्य किया है। .. .. गीता और वेद दोनों में यह महान सत्य उल्लिखित है कि इस संसार में जो कुछ है – चर, अचर, जड़–जंगम, सबमें वह ईश्वर बसता है। ऐसी अवस्था में यह जाति–पाँति का विभेद कैसा? ईश्वर भी अलग–अलग विभिन्न जातियों में विभक्त हो सकता है क्या? वह जो अविभाज्य है, जाति की ही बात करनी है तो एक जाति की करो, हरिजन की, जो–जो हरि के हैं वे हरिजन। .... रामानन्द ने कहा – तुम्हारा कर्तव्य वही बनता है जो कुछ पारस्परिक प्रेम, विश्वबंधुत्व, धार्मिक स्थिरता और सहिष्णुता स्थापित करने में सहायक है। धार्मिक अस्थिरता और अनुशासनहीनता के इस युग में एक राम–नाम ही वह प्रेरणास्तंभ है जिसके माध्यम से हम आज के इस अशांत जीवन में शांति और आशा के दीप प्रज्ज्वलित कर सकते हैं। .... अत्याचार और दमन के विरूद्ध आवाज उठाना मानवता की प्रथम आवश्यकता है। दुखियों और पीड़ितों को दुख और पीड़ा से हम कुछ भी मुक्ति दिला सकें तो यह मनुष्यता की बहुत बड़ी सेवा होगी। .... मानवता के अभाव, मानवीय संवेदना की अनुपस्थिति में धर्म का कोई अर्थ नहीं रह जाता।''[51] भगवती शरण मिश्र ने भी सामाजिक वैषम्य को मिटाकर एक जाति, एक राम की भावना की स्थापना के साथ मनुष्यता को ही जीवन–धर्म मानने की भावना व्यक्त ही है।

निष्कर्षतः भगवती शरण मिश्र एवं शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने–अपने उपन्यासों में युगीन विषमताओं, पीड़ाओं, द्वन्दों का साक्षात् चित्रण करते हुए उनके निराकरण की नवीन दृष्टि अपनाने का चिन्तन व्यक्त किया है और एक जाति, एक राम, एक धर्म की स्थापना करते हुए मनुष्यता को ही श्रेष्ठ भाव, विचार, जीवन पद्धति एवं युग की आवश्यकता सिद्ध किया है। कथन एवं प्रसंग व्यवस्था भिन्न–भिन्न है, परन्तु भाव एक ही है। मानवता की स्थापना ही युग धर्म है।

(4) कथ्य एवं शिल्प – शत्रुघ्न प्रसाद एवं भगवती शरण मिश्र के उपन्यासों की प्रवृत्तिगत विशिष्टताएँ अपनी निजी विशेषताएँ रखती हैं। भगवती शरण मिश्र के उपन्यासों की कथावस्तु इतिहासकालीन–पौराणिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय चरित्रों पर केन्द्रित है। मानवीयता के प्रति निष्ठा एवं मानवतावादी मूल्यों की रक्षा की आवश्यकता समझते हुए वे धार्मिक आख्यानों एवं सांस्कृतिक राष्ट्रीय नायकों की ओर दृष्टि डालते हैं। हनुमान, श्री कृष्ण, मीरा बाई, बल्लभाचार्य, छत्रपति शिवाजी एवं महात्मा कबीर के जीवन एवं आदर्शों के माध्यम से

मानवतावादी मूल्यों को स्थापित करने का सचेष्ट प्रयास किया है। डॉ शिवनारायण ने लिखा है कि – ''डॉ मिश्र ने अपने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक उपन्यासों के माध्यम से जीवन के उदात्त सौन्दर्य को ही उद्घाटित किया है। कहना अप्रासंगिक न होगा कि साहित्य या शाश्वत लेखन का उद्देश्य भी यही होता है।''[52] 'सुनो भाई साधो' उपन्यास में महात्मा कबीर के माध्यम से सामाजिक समानता, राष्ट्र सेवा, गुरू महत्व, भक्ति का ज्ञान के साथ एकत्व, सगुण–निर्गुण की एकात्मकता, पाखण्डों व अन्धविश्वासों पर चोट, राम–रहीम की एकता आदि कबीर की सम्पूर्ण चिन्तना को व्यक्त किया है। मानवतावादी दृष्टि ही प्रमुख रही है। डॉ मिश्र को उद्धृत करते हुए डॉ शिवनारायण ने लिखा है कि – ''मानव–मूल्यों की पुनर्स्थापना ही मेरा मूल उद्देश्य हैं। इसी लक्ष्य को विभिन्न रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहता हूँ। विश्वबंधुत्व, राष्ट्रीयता तथा मानव–प्रेम का संदेश ही मेरे सभी उपन्यासों के कथा विस्तार में है।''[53] महात्मा कबीर के जीवन के साथ–साथ उपनिषद्, पुराण, गीता एवं तुलसीदास के रामचरित मानस को मिलाकर कबीर के चिन्तन को व्यक्त किया है। धनिया को एक समर्पित प्रेमिका के रूप में चित्रित करके कबीर चिन्तन की प्रेरणा सिद्ध किया है। उन्होंने 'देख कबीरा रोया' की भूमिका में लिखा है कि – ''कबीर एक संत के अलावा समाज सुधारक भी थे। जिस सामाजिक न्याय की बात आज की जाती है, एसका प्रबल पक्षधर आज से साढ़े पाँच सौ वर्ष पूर्व ही पैदा हो चुका था। समानता और साम्प्रदायिक सद्भावना का प्रथम शंखनाद कबीर ने ही किया था। .... गीता भक्ति योग, कर्म योग और ज्ञान योग तीनों का आदर्श संगम प्रस्तुत करती है तो कबीर भी श्रेष्ठ भक्त, अप्रतिम कर्म योगी और अद्भुत ज्ञानी थे। अगर किसी तरह वे गीता के सिद्धान्तों से परिचित हो आए हो और उन्हें अपने व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों में उतार दिया हो तो मैं गीता के प्रति पक्षपात का दोषी नहीं कहा जा सकता। संक्षेप में कबीर क्या–क्या थे, क्या नहीं थे इसका पता इस औपन्यासिक कृति में अवश्य मिलेगा।''[54] भगवती शरण मिश्र के उपन्यासों में मानवीय पक्ष को धार्मिक–सांस्कृतिक धरातल पर देखा–परखा गया है। 'देख कबीरा रोया' उपन्यास भी इसी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है।

शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थ के साथ–साथ राष्ट्रीय–सांस्कृतिक मूल्यों का प्रगतिशील रूप दिखाई पड़ता है। समन्वयवादी संस्कृति के साथ–साथ भारतीय मूल्यों के संस्थापक हैं। राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र धर्म उनका मूल स्वर है। अद्वैतवादी एकात्म चिंतन एवं समरस समाज की प्रतिष्ठा उनका केन्द्रिय कथ्य है। 'सुनो भाई साधो' में कबीर के चिन्तन के माध्यम से सामाजिक विद्रूपताओं पर प्रहार करते हुए धर्मान्तरित समाज की पीड़ा को उभार कर भारतीय अवधारणा को पुष्ट किया है। लोदी सुल्तानों के माध्यम से कट्टर मजहबी सल्तनत व्यवस्था में पीसते भारतीय समाज का यथार्थ व्यक्त कर राष्ट्र भाव को जगाना उपन्यासकार का अभीष्ट है। सामाजिक–धार्मिक भेद भी इसका एक प्रमुख कारण रहा है। यह दर्शाते हुए एकात्म भाव की प्रतिष्ठा का सचेष्ट प्रयत्न किया गया है। नारी की

दुर्दशा एवं दयनीय स्थिति का चित्रण व अद्वैत दाम्पत्य चिंतन प्रस्तुत कर नारी की गरिमामयी उपस्थिति दर्ज की गई है। मानव धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करने में सार्थकता प्राप्त की है। राम–रहीम की एकता, राजा का प्रजाहितकारी होना, प्रेम की महत्ता, एक राम की भक्ति आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ है जो मानव धर्म को महत्व देती है। मानव धर्म ही श्रेष्ठ है। यही श्रेय एवं प्रेय है। 'सुनो भाई साधो' उपन्यास यही संदेश देता है। ज्योति शुक्ल ने लिखा है कि – ''कबीर दास के जन्म से लेकर उनके महाप्रयाण तक की घटनाएँ 15वीं सदी का ऐतिहासिक यथार्थ है। इस समय पूरे समाज में द्वन्द उपस्थित था। परिवर्तित जीवन शैली, धर्म परिवर्तन से उपजे द्वन्द, जीवन में प्रचलित धार्मिक आस्थाओं के खण्डन–मण्डन जैसी समस्याएँ, विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा मजहब को प्रसारित करने की लालसा तथा राजनीति जो शासकों के बदलते रहने के जनजीवन को प्रभावित करती रहती थी। कबीर के जीवन को इतिहास के झरोखे से देखना, समझना और प्रस्तुत करना लेखक की विशिष्टता है।''[55] शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'सुनो भाई साधो' में इस्लामी कट्टरता एवं भारतीय सामाजिक विषमता में पिसते भारतीय समाज एवं परिणामस्वरूप हुई राष्ट्र हानि को चित्रित कर एकात्म समरसता की प्रतिष्ठा की गई है। यही उपन्यासकार का अभीष्ट है।

शिल्प के दृष्टिकोण से दोनों रचनाकारों में पर्याप्त भिन्नता है। भगवती शरण मिश्र कथा को पौराणिक आख्यान का स्वरूप देते हैं। 'देख कबीरा रोया' उपन्यास आत्मकथात्मक शैली का नवीन प्रयोग है या कहें हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का अनुकरण सा है। कबीर स्वयं लेखक की आत्मा में प्रविष्ट होकर अपनी कथा कहते हैं। पूर्वदीप्ति एवं स्मरण शैली के साथ–साथ व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग उपन्यास की विशिष्ट रोचकता है। चरित्रों का भावानुकूल चित्रण है साथ ही साथ कबीर का चमत्कारिक व्यक्तित्व दर्शाना लेखक की अपनी निजी क्षमता है। कथा में प्रवाहशीलता, कथानक सुगठन, चरित्रों का प्रगतिशील चिंतन युक्त चित्रण, परिवेश का यथार्थ निरूपण, भाषा का पात्रानुकूल, युगानुकूल एवं भावानुकूल अभिव्यक्तिकरण आदि अनेक विशिष्टताएँ हैं जो शिल्प को नवीन आयाम देते हैं। 'देख कबीरा रोया' शैल्पिक कुशलता के साथ संजोया गया श्रेष्ठ उपन्यास है।

शत्रुघ्न प्रसाद का 'सुनो भाई साधो' कबीर जीवन एवं लोदी सल्तनत की दुहरी कथा साथ–साथ लेकर चलता है। साथ ही शहनाज–बारबक शाह एवं मधुवंती–लक्ष्मीचन्द्र की काल्पनिक प्रेम कथा भी जोड़ी गई है। मूल कथा एवं अवान्तर कथाओं तथा इतिहास एवं कल्पना का समायोजन इस प्रकार किया गया है कि एक ही तारतम्य में पिरोयी सी लगती है। पात्रों को ऐतिहासिक व्यक्तित्व के साथ–साथ कथ्य की अभिव्यक्ति के अनुकूल सृजित किया गया है। शहनाज शोषित नारी जगत का प्रतिनिधित्व करती है, तो लोई प्रेम एवं समर्पण की प्रतिमूर्ति है। कबीर तो अपने क्रान्तिकारी संत की भूमिका का सफल निर्वाह करता है। युग के सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक जीवन का सम्पूर्ण परिवेशगत चित्रण यथार्थ रूप में चित्रित है। भाषा का सहज समावेश लेखक की अपनी मौलिक देन है और

विशिष्ट रोचकता देता है। सौन्दर्यात्मक एवं आलंकारिक भाषा का प्रयुक्तिकरण। कथा समायोजन, भाषा का सहज आलंकारिक व सम्प्रेषणीय रूप, परिवेश का यथार्थपरक चित्रण, पात्रों का भावानुकूल एवं कथ्यानुकूल सृजन उपन्यासकार की कुशल शिल्पकला का उत्तम उदाहरण है।

विषयवस्तु की समानता होते हुए कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से शत्रुघ्न प्रसाद एवं भगवती शरण मिश्र की अपनी–अपनी दृष्टि सम्पन्नता है। दोनों अपने में भिन्न दोनों अपने में पूर्ण। भगवती शरण मिश्र के बारे में उनके पुत्र जनार्दन मिश्र ने लिखा है कि – ''आचार्य चतुरसेन शास्त्री और अमृतलाल नागर की परम्परा को अपनी उत्कृष्ट और वृहत्काय कृतियों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर नयी पीढ़ी को इन्होंने एक नया संदेश दिया है उच्चतर मानव मूल्यों को अपनाने का। इनकी सुमधुर भाषा और इनके अपने अनोखे शिल्प विधान ने इनका एक स्वयं का पाठक वर्ग निर्मित किया है जो इनकी हर कृति की आतुरता से प्रतीक्षा करता है।''[56] शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'सुनो भाई साधो' की आलोचना करते हुए मधुरेश ने लिखा है कि – ''उपन्यास का आरंभ कबीर की वृद्धावस्था से होता है। वे अपने पुत्र कमाल को अपने बचपन एवं गुरू के सम्पर्क में आने की कथा सुनाते हैं। कबीर का अतीत इसी तरह कभी कथन के रूप में कभी स्मृति के रूप में उपस्थित है। स्मृतियों के प्रसंग में कथा की शैली भी बदलती है। पीपल के झरते पत्तों की तरह अतीत के स्मृति खण्ड उड़ते रहते हैं जिसमें सिद्धनाथ योगी व रामानंद की दीक्षा के प्रसंग, योग और भक्ति के समन्वय के रूप में अपनी सार्थकता रेखांकित करते हैं। उपन्यास हिन्दी–उर्दू के मेल से बनी पठनीय भाषा में लिखा गया है जिसमें तद्भव शब्दों के प्रयोग पर बल है। इन शब्दों का प्रयोग भाषिक स्तर पर उपन्यास की पठनीयता बढ़ाता है और कबीर की सोच को प्रामाणिकता देता है।''[57] उपर्युक्त अवतरणों के माध्यम से शत्रुघ्न प्रसाद एवं भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों का कथ्य एवं शिल्पगत वैशिष्य आसानी से समझा जा सकता है।

(5) भविष्योन्मुखी आधुनिक सन्दर्भ – ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास के माध्यम से वर्तमान समय के प्रश्नों से साक्षात्कार करवाने का प्रयास होता है। ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों के संवादों, लेखकीय वक्तव्यों के माध्यम से आधुनिक जीवन के प्रश्न उठाए जाते हैं। भविष्य के प्रति चेतना भी विकसित की जाती है। शत्रुघ्न प्रसाद ने अहंकारी धर्मान्ध राजनीति, संकीर्णता से ग्रस्त समाज, धार्मिक–साम्प्रदायिक सोच को अतीतकाल के लिए पतनशीलता का कारण दर्शाकर आज व भविष्य के लिए संचेतना प्रदान की है। 'सुनो भाई साधो' की भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि – ''मैंने कोशिश की है कि ऐतिहासिक यथार्थ प्रगतिशील राष्ट्रीय दृष्टि से प्रस्तुत हो। भारतीय जीवन के ऐतिहासिक यथार्थ जो कि वर्तमान जीवन से अनिवार्यतः जुड़े हैं, को उपन्यास का रूप दे देना मेरा संकल्प रहा है। इसी पृष्ठभूमि पर आधारित मेरा चौथा उपन्यास 'सुनो भाई साधो' पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। इसकी

प्रगतिशील सांस्कृतिक दृष्टि पन्द्रहवीं सदी के भारत को बीसवीं सदी ही नहीं, इक्कीसवीं सदी के जीवन के द्वन्द की अनुभूति करा सकेगी।''[58] राजनैतिक कट्टरता, सत्ता का अहंकार, जातिभेद, धार्मिक संकीर्णता, धर्मान्तरित समाज का द्वन्द, दलित समुदाय की पीड़ा, नारी जीवन की दयनीयता आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनको आज भी महसूस किया जा सकता है। इन प्रश्नों के माध्यम से उपजी चेतना इतिहास को वर्तमान और भविष्य के साथ जोड़ती है। शहनाज बेगम की पीड़ा आज भी सत्ता के गलियारों में देखी जा सकती है। गुरू का महत्व, ज्ञान व अनुभूति का महत्व, एकात्म अद्वैत चेतना आज भी और भविष्य के लिए भी उपयोगी है। इस प्रकार 'सुनो भाई साधो' उपन्यास पन्द्रहवीं सदी के जीवन को इक्कीसवीं सदी के जीवन से जोड़ता है। मधुरेश ने लिखा है कि – ''शत्रुघ्न प्रसाद के 'सुनो भाई साधो' में अपने समय के सवालों और चिंताओं को पढ़ा जा सकता है। .... हमारे समय की दलित चेतना की आधारभूत दुर्बलताओं को भी कबीर के चिंतन और सोच, उससे भी अधिक उसके व्यवहार के आलोक में समझकर उसके पुनर्गठन की कोशिश की जा सकती है। ऐसी कोशिश ही दलित विमर्श को सही दिशा दे सकती है। कबीर की इस वापसी का मतलब सत्ता के साथ लेखकों और बुद्धिजीवियों के किसी सार्थक समीकरण की पहचान भी है जिसके अभाव में लेखक और बुद्धिजीवी दयनीय हैं और हतचेत होने को बाध्य हैं। जैसे वे बहुत कुछ हमारे समय में हैं।''[59] 'सुनो भाई साधो' उपन्यास संकेतों के माध्यम से आधुनिक सन्दर्भों के साथ जोड़ता है। ज्योति शुक्ल ने लिखा है कि – ''कबीर की सच्चाई, समाज की पीड़ा आज भी हमारे आगे साकार होकर प्रश्न करती है कि कब तक हम नहीं बदलेंगे। डॉ शत्रुघ्न जी कबीर के माध्यम से यक्ष प्रश्न करते हैं – सभी रचनाकारों, बुद्धिजीवियों, विचारकों, राजनेताओं, समाज के कर्ताधर्ताओं, आलोचकों के समक्ष और उसका समाधान करते प्रतीत होते हैं।''[60] अतः स्पष्ट है कि 'सुनो भाई साधो' के माध्यम से शत्रुघ्न प्रसाद ने आधुनिक प्रश्नों के साथ अतीतकालीन जीवन को जोड़कर भविष्य को एक नई दृष्टि प्रदान की है।

भगवती शरण मिश्र ने 'देख कबीरा रोया' में आज की समस्याओं का सीधा जिक्र किया है। आतंकवाद, जनसंख्या वृद्धि, जात–पाँत की विषमता, मन्दिर–मस्जिद विवाद, नारी जीवन की पीड़ा, धार्मिक–साम्प्रदायिक वैमनस्य, अन्धविश्वास और पाखण्ड आदि पर उपन्यासकार ने सीधे –सीधे वैचारिक मंथन प्रस्तुत किया है। धर्मान्तरित समाज को पीड़ा भी अभिव्यक्ति दी गई है। दलित विमर्श पर तो पूरा जोर है ही। वर्ग भेद पर अनेक वक्तव्यों में चिंतन प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास लिखा ही आज के संदर्भ में गया है। कबीरदास की आत्मा उपन्यासकार की आत्मा में प्रविष्ट होकर आज के जीवन पर चिंतन करती है। कबीर की आत्मा कहती है – ''हाँ मेरी पीड़ा कम नहीं है। अथोर और अथाह है वह। जीवन पर्यन्त मैं साम्प्रदायिकता व धर्मान्धता के प्रति विद्रोह करता रहा, मुल्लाओं–पंडितों से लोहा लेता रहा, आम आदमी को इस व्यर्थ के आपसी विद्रोह के प्रति आगाह करता रहा और आज दुर्भाग्यवश उसी साम्प्रदायिकता, उसी धर्मान्धता का नंगा नाच देखने को अभिशप्त हो गया हूँ। .... यह

पीड़ा ही इस गाथा को प्रासंगिकता भी प्रदान करती है, नहीं तो बीसवीं सदी के अन्तिम चरण में पन्द्रहवीं सदी के किसी पात्र को अपने उपन्यास का नायक बना डालने के लिए इसके समीक्षक इसे कच्चा ही चबा डालेंगे। मेरी कहानी और भी प्रासंगिक हो आई है, आज के परिवेश में। .... तो लड़ रहे है आज लोग! जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर, सम्प्रदाय के नाम पर, मंदिर के नाम पर, मस्जिद, गिरजे और गुरूद्वारे के नाम पर। यहाँ तक की चमड़ी के रंग पर भी। .... लड़ाई जारी है, धर्म के नाम पर, मजहब के नाम पर। यद्यपि जानने वाले जानते हैं कि इसके पीछे न धार्मिक प्रेरणा है न मजहबी लगाव। यह सब सियासी खेल है। इसके पीछे वे स्वार्थी लोग हैं जो अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं।''[61] भगवती शरण मिश्र ने कबीर की आत्मा के माध्यम से वर्तमान को और भविष्य को आपस में जोड़कर आधुनिक सन्दर्भों में प्रासंगिकता की बात स्पष्ट ही लिख दी है। उपन्यासकार ने अनेक आधुनिक समस्याओं पर विचार प्रस्तुत किया है। नारी जीवन हो, चाहे समाज जीवन, देश व विश्व जीवन तक को जोड़कर अपनी बात प्रस्तुत की है। डॉ शिवनारायण ने लिखा है कि – ''डॉ भगवती शरण मिश्र ने ऐतिहासिक, पौराणिक, धार्मिक पात्रों पर वृहतकाय उपन्यास लिखे हैं, परन्तु मानवीय मूल्यों को नए सिरे से स्थापित करने के प्रयास में उन्होंने उन पात्रों को भी सर्वथा आधुनिक सन्दर्भों में ही चित्रित किया है, जिनकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।''[62] स्पष्ट है कि कबीर और उनके जीवन संघर्ष से ही नहीं बल्कि उनकी आत्मा के द्वारा उपन्यासकार ने आज की समस्याओं पर चिंतन प्रस्तुत करवाकर अतीत को वर्तमान एवं भविष्य के लिए उपयोगी सिद्ध करते हुए आधुनिक प्रश्नों को ऐतिहासिक प्रसंगों के साथ जोड़कर देखते है। इतिहास यहाँ भविष्योन्मुखी होकर विशिष्ट उपादेय बन जाता है।

निष्कर्षतः शत्रुघ्नप्रसाद के 'सुनो भाई साधो' में संकेतों के माध्यम से इतिहास भविष्य के लिए उपादेय बनता है। संकेतों या प्रसंगों से विचारणा लेकर ही अतीत को आधुनिक प्रश्नों से जोड़ा गया है जबकि भगवती शरण मिश्र के 'देख कबीरा रोया' में कबीर की आत्मा आधुनिक परिवेश को दर्शाकर इतिहास को आधुनिक संदर्भों से जोड़ती है।

दोनों उपन्यासकारों ने अपने भिन्न कलेवर एवं शैली में इतिहास को आधुनिक सन्दर्भों से जोड़कर प्रस्तुत किया है। शत्रुघ्न प्रसाद में राष्ट्र बोध की अधिकता है। सांस्कृतिक विचारणा प्रगतिशीलता से जुड़ी है। भगवती शरण मिश्र के उपन्यासों में सामाजिक परिप्रेक्ष्य अधिक मुखरित हुआ है। मानवीय मूल्यों की स्थापना प्रमुख है।

6.6 शत्रुघ्न प्रसाद का राजेन्द्र मोहन भटनागर के साथ तुलनात्मक अध्ययन –

समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासकारों में राजेन्द्र मोहन भटनागर एक ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने विपुल मात्रा में उपन्यासों की रचना की हैं। एक ही विषयवस्तु पर आधृत एक से अधिक उपन्यास भिन्न शैली और विचार के साथ प्रस्तुत करने का अभिनव प्रयोग उनकी महत्वपूर्ण देन है। महाराणा प्रताप पर उनके चार उपन्यास हैं तो मीराबाई पर भी चार उपन्यास

हैं। विवेच्य अध्याय में उनके द्वारा रचित 'नीले घोड़े का सवार' व 'एक अन्तहीन युद्ध' जो महाराणा प्रताप और अकबर के मध्य संघर्ष पर आधृत है तथा 'महात्मा' जो निर्गुण सन्त कबीरदास पर आधृत है, पर विशेष अध्ययन किया जाएगा क्योंकि शत्रुघ्न प्रसाद द्वारा रचित 'अरावली का मुक्त शिखर' व 'सुनो भाई साधो' भी क्रमशः महाराणा प्रताप और कबीर दास पर आधृत उपन्यास हैं। इन्हीं उपन्यासों पर केन्द्रित अध्ययन यहाँ अपेक्षित है।

(1) विषयवस्तु – शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'अरावली का मुक्त शिखर' एवं राजेन्द्र मोहन भटनागर रचित 'नीले घोड़े का सवार' व 'एक अन्तहीन युद्ध' की विषयवस्तु मेवाड़पति महाराणा प्रताप व दिल्ली के बादशाह अकबर के मध्य संघर्ष पर आधारित है। पन्द्रहवीं शताब्दी के निर्गुण सन्त कबीर दास कालीन जीवन से प्रेरित शत्रुघ्न प्रसाद का उपन्यास 'सुनो भाई साधो' है और राजेन्द्र मोहन भटनागर ने 'महात्मा' नाम से उपन्यास की रचना की है।

अरावली का मुक्त शिखर, नीले घोड़े का सवार व एक अन्तहीन युद्ध तीनों उपन्यासों के घटना तत्व लगभग एक ही हैं। 'नीले घोड़े का सवार' व 'एक अन्तहीन युद्ध' में उदयसिंह के समय अकबर द्वारा चित्तौड़ पर किए गए आक्रमण का भी वृतान्त है। 'नीले घोड़े का सवार' में जयमल और पत्ता द्वारा उदय सिंह को चित्तौड़ छोड़ देने पर विवश करने और स्वयं के बलिदान होने की घटना को प्रारम्भ में दर्शाया गया है तथा उपन्यास का अन्त महाराणा के देहावसान पर होता है। 'एक अन्तहीन युद्ध' का भी अन्त महाराणा प्रताप के देहावसान पर ही होता है। 'अरावली का मुक्त शिखर' में महाराणा उदय सिंह के देहावसान से लेकर अमर सिंह द्वारा अधिकार में लिए रहीम खानखाना के परिवार को महाराणा प्रताप द्वारा उदारतापूर्वक सम्मान देकर वापस लौटाने तक की कथा उपन्यस्त है। प्रमुख घटनाएँ तीनों उपन्यासों में भाषिक अन्तर के साथ मिलती–जुलती ही हैं। राजेन्द्र मोहन भटनागर ने रतनावती परमार के चरित्र को विशिष्ट दर्शाते हुए महाराणा–रतनावती के सम्बन्धों को भिन्नता से दर्शाया है। उदय सिंह के चरित्र से सम्बन्धित कुछ घटनाएँ भी थोड़ा आश्चर्यचकित करती है। धनजी एवं मनजी को उदय सिंह की संतान दर्शाया गया है, यह भिन्नता है। जगन्नाथ कछवाहा द्वारा रूपकँवर नामक सुन्दरी को अमर सिंह के पास भेजना और रूपसुन्दरी द्वारा अमर सिंह एवं महाराणा को एक संकट से उबारने की घटना भी नवीन कल्पना से उपजी हुई भिन्नता देती है। मान सिंह द्वारा महाराणा का जानबूझकर पीछा न किया जाना भी राजेन्द्र मोहन भटनागर के उपन्यासों में इतिहास से भिन्न कल्पना है। मान सिंह की महाराणी मान सिंह से ऐसा वचन लेती है, यह दर्शाया गया है। शक्ति सिंह को महाराज उदय सिंह का भाई दर्शाकर इतिहास से भिन्नता अपनाई गई है। मायरा की गुफा में महाराणा साँगा द्वारा रखा गुप्त धन होना और महाराणा प्रताप को मिलना, यह तिलस्मी उपन्यासों का सा प्रसंग भी लेखक ने व्यक्त किया है। 'अरावली का मुक्त शिखर' में तानसेन–महरूख की प्रेमकथा, अमरसिंह–जुगनी की प्रेमकथा, डूँगरपुर की राजकुमारी का डोला बदलकर स्वयं का मेवाड़ में रह जाना और

दासी को अकबर के हरम में भेज देना आदि घटनाएँ कल्पना द्वारा संजोयी गई है, जो राजेन्द्र मोहन भटनागर के उपन्यासों में नहीं है। मुख्य इतिहास सम्मत घटनाएँ यथा–उदय सिंह की मृत्यु पर सामन्तों द्वारा जगमाल की जगह महाराणा को मेवाड़ की सत्ता सौंपना, महाराणा प्रताप का अकबर की अधीनता से स्वतन्त्र रहने की घोषणा, अकबर द्वारा जलाल खाँ, मान सिंह, भगवन्तदास एवं टोडरमल को संधिवार्ता के लिए भेजना, हल्दी घाटी युद्ध, महाराणा का बचकर निकलना, चेतक का बलिदान, शाहबाज खाँ, जगन्नाथ कछवाहा, रहीम के नेतृत्व में बार–बार आक्रमण करना, रहीम के परिवार को बंदी बनाए जाने पर महाराणा द्वारा ससम्मान वापस भेजना आदि घटनाएँ तीनों ही उपन्यासों की केन्द्रीय विषयवस्तु है।

कबीरकालीन इतिहास पर आधारित 'सुनो भाई साधो' एवं 'महात्मा' उपन्यास भी कबीर के जीवन सम्बन्धी घटनाओं पर आधृत हैं। 'महात्मा' उपन्यास में भटनागर जी ने लोई का अपहरण करके किसी हिन्दू मठ में छिपा देने, बनारस के हिन्दू राजाओं को जनशोषक दर्शाने, किसी मौनी बाबा के न आने पर कबीर द्वारा प्रवचन करने से सम्बद्ध घटनाएँ कुछ भिन्नता रखती है। तथा 'सुनो भाई साधो' में सिकन्दर लोदी और शर्की सुल्तानों का संघर्ष एवं इस्लामी शासन की कट्टरता को भी केन्द्रीय भाव दिया गया है। 'महात्मा' उपन्यास में इस्लामी शासन के संकेत भर हैं। काशी के महाराज वीर सिंह का वृत्तान्त जरूर आया है। 'सुनो भाई साधो' में भालचन्द्र, आदि ज़मीदारों, सिकन्दर लोदी एवं बारबक शाह तथा लोदी–शर्की सुल्तानों के मध्य संघर्ष की धटनाएँ भी केन्द्र में स्थान बनाए हुए है। प्रमुखतः दोनों उपन्यासकारों ने पन्द्रहवीं–सोलहवीं सदी की कबीरकालीन एवं महाराणा प्रताप व अकबर कालीन घटनाओं को केन्द्रीय विषयवस्तु बनाया है।

(2) इतिहास–कल्पना – शत्रुघ्न प्रसाद इतिहास को सजीव चेतना मानते है तो वर्तमान में भी प्रत्यक्ष रहती है। काल को अनवरण अखण्ड मानते हैं। राजेन्द्र मोहन भटनागर भी इतिहास को जीवन्त चेतना मानते हैं। उनका मानना है कि – ''इतिहास घटना–क्रम और इतिवृत्तात्मक कथा मात्र नहीं है। इतिहास जीवन है और जीवन के प्रत्येक क्षण का स्पन्दन है।''[63] स्पष्ट है कि दोनों ही रचनाकारों ने इतिहास को एक जीवन्त धड़कन के रूप में अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में लिया है। थोड़ी सी दृष्टिकोणीय भिन्नता के साथ विवेच्य उपन्यासों में इतिहास प्रमाणिक रूप में ही व्यक्त हुआ है। महाराजा उदय सिंह की मृत्यु पर सामन्तों द्वारा महाराणा प्रताप को सिंहासन पर बैठाना, महाराणा प्रताप द्वारा आजीवन संघर्षरत रहकर मेवाड़ को स्वाधीन बनाए रखने की प्रतिज्ञा ग्रहण करना, अकबर द्वारा समझौता वार्ता के लिए जलाल खाँ, मान सिंह, भगवन्त दास एवं टोडरमल को भेजना, हल्दी घाटी का युद्ध, झाला बीदा का आत्म बलिदान, चेतक का बलिदान, महाराणा द्वारा कुम्भलगढ़, आवरगढ़ व चावण्ड को राजधानी बनाना, शाहबाज खाँ व जगन्नाथ कछवाहा द्वारा आक्रमण कर महाराणा व मेवाड़ की जनता को त्रस्त करना, रहीम खानखाना के परिवार को अमर सिंह द्वारा बन्दी बनाए जाने

पर महाराणा द्वारा उन्हें ससम्मान वापस लौटाना आदि घटनाएँ 'नीले घोड़े का सवार', 'एक अन्तहीन युद्ध' एवं 'अरावली का मुक्त शिखर' में केन्द्रीय कथा के रूप उपन्यस्त है जो इतिहास ग्रन्थों द्वारा प्रामाणिक हैं। दोनों उपन्यासकारों ने अपने–अपने भिन्न दृष्टिकोणों के साथ अभिव्यक्त किया है। महाराणा प्रताप और रतनावती बाई के मध्य सम्बन्धों में स्वतन्त्र सोच दर्शाना राजेन्द्र मोहन भटनागर की नवीन सोच है जो शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास में नहीं है। हल्दी घाटी युद्ध में चेतक के घायल होने की कथा में भी अन्तर दिखाया गया है। समझौता वार्ता में मूल घटना जिस रूप में घटित हुई, उसे भी वैचारिक भिन्नता के साथ प्रस्तुत किया गया है। कल्पना ऐतिहासिक उपन्यासों में प्राण तत्व का काम करती है। उपन्यासकार अपना मंतव्य कल्पना द्वारा ही स्पष्ट करता है। 'अरावली का मुक्त शिखर' में महाराणा प्रताप का राजतिलक भील सरदार द्वारा करवाना, तानसेन का महरूख के साथ प्रेम सम्बन्ध, डूँगरपुर की राजकुमारी द्वारा दासी को अकबर के हरम में भेज देना और जुगनी बनकर अमर सिंह के साथ प्रेम सम्बन्ध व विवाह तथा किशन–टिकोरी का विवाह आदि कल्पना द्वारा सृजित घटनाएँ है। राजेन्द्र मोहन भटनागर ने भी अनेक कल्पित प्रसंग उपस्थित कर उपन्यास को रमणीय बनाने का प्रयास किया है। जगन्नाथ कछवाहा द्वारा रूप कँवर को मोहरा बनाकर अमर सिंह के पास भेजना और रूप कँवर द्वारा महाराणा प्रताप को जगन्नाथ कछवाहा के संकट से उबारना, धनजी–मनजी को उदय सिंह की सन्तान व महात्मा बनाकर प्रस्तुत करना, मायरा की गुफा में रखा हुआ धन महाराणा को प्राप्त होना आदि घटनाएँ काल्पनिक सृजन हैं। ये तथा इसके अलावा कुछ प्रसंग आश्चर्यचकित करने वाले भी प्रस्तुत हैं। शक्ति सिंह को महाराणा उदय सिंह का भाई दिखाना, उदय सिंह व मेवाड़ के राणाओं को प्रजापीड़ित रूप में दिखाना, कुँओं के पानी में महाराणा द्वारा जहर मिला देने की बात अकबर हरम में फैलाना आदि प्रसंग पूर्ण कल्पनात्मक हैं परन्तु ये इतिहास को भ्रमित करने वाले तथ्य हैं। प्रमाणिक ऐतिहासिक घटनाओं के समय वैचारिक चिंतन में पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है राजेन्द्र मोहन भटनागर और शत्रुघ्न प्रसाद के चिंतन में। शत्रुघ्न प्रसाद यहाँ इतिहास के प्रति ज्यादा सजग दिखाई पड़ते है।

कबीर के जीवन पर आधारित 'महात्मा' उपन्यास में मौनी बाबा के आगमन की चर्चा और उनके न आने पर कबीर का प्रवचन कर लोकप्रिय होना व लोई को किसी हिन्दू मठ में अपहरण करके रखने वाली घटनाएँ कल्पना प्रसूत तो है ही परन्तु कुछ–कुछ इतिहास विरूद्ध सी हैं। ये उपन्यासकार के वैचारिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती हैं। शत्रुघ्न प्रसाद ने वनखण्डी बाबा द्वारा लोई की रक्षा करना दर्शाया है। किसी सेठ और मुस्लिम सूबेदार द्वारा परेशान करने पर वनखण्डी बाबा ने लोई की रक्षा की तथा कबीर के साथ विवाह सम्पन्न करवाया। 'सुनो भाई साधो' में व्यक्त लोदी सल्तनत की घटनाएँ इतिहास द्वारा प्रमाणित सिद्ध होती हैं। सभी प्रमुख घटनाएँ इतिहास सम्मत हैं परन्तु वैचारिक दृष्टि का अन्तर देखा जा सकता है।

राजेन्द्र मोहन भटनागर ने स्पष्ट किया है कि – ''तारीख–ए–अकबरी, आइने अकबरी व अकबरनामा में तत्कालीन इतिहास है परन्तु संदिग्ध है। मैंने राणा रासो, खुमाण रासो, दलपत विलास, राज प्रकास, सिसोदिया री बात, राणा प्रताप री बात आदि का भी अध्ययन किया है। अकबरनामा, रावल राणा जी री बात, राज रत्नाकर, तबकाते अकबरी, इकबालनामा ए जहाँगीरी, राज प्रकाश, वीर–विनोद, अमर काव्य, जगदीश मन्दिर प्रशस्ति में पर्याप्त अन्तर है। .... कर्नल जेम्स टॉड के ग्रन्थ में भी भ्रामक तथ्य हैं। अतः मेरा प्रयास रहा है कि तत्कालीन तथ्यों को प्रकाश में लाया जाए।''[64] स्पष्ट है कि ऐतिहासिक ग्रन्थों की मूल भित्ति को ग्रहण कर निष्कर्षात्मक घटनाक्रम प्रस्तुत किया गया है। 'महात्मा' उपन्यास में वर्णित कबीर के जीवन के बारे में भी उपन्यासकार ने पर्याप्त अध्ययन किया है उनके अनुसार उन्होंने ''आइने अकबरी व नाभादास कृत 'भक्तमाल' अनन्तदास की 'परिचयी', मुकन्द कवि कृत 'कबीर चरित' तथा रेवरेण्ड वेस्टकर कृत 'कबीर एण्ड कबीर पंथ', माता प्रसाद सम्पादित 'कबीर ग्रन्थावली' एवं अन्य अंग्रेजी में रचित कबीर सम्बन्धित ग्रन्थों का अध्ययन किया है।''[65] अतः स्पष्ट है कि प्रमुख घटनाएँ इतिहास सम्मत एवं इतिहास समर्थित हैं।

राजेन्द्र मोहन भटनागर एवं शत्रुघ्न प्रसाद रचित उपन्यासों की प्रमुख घटनाएँ इतिहास ग्रन्थों में वर्णित हैं। कल्पना द्वारा सृजित घटनाओं को औपन्यासिक कौशल के साथ समायोजित किया गया हैं।

(3) युग धर्म स्थापक – विवेच्य उपन्यास पन्द्रहवीं–सोलहवीं शताब्दी के काल से सम्बन्धित हैं। इस काल में इस्लामी शासन में पिसता भारतीय समाज अपनी संस्कृति का पराभव एवं सांस्कृतिक मूल्यों का अवमूल्यन देखने पर विवश था। सांस्कृतिक अवमूल्यन के दौर में स्वाधीनता, राष्ट्रधर्म, त्याग, नारी सम्मान एवं नारी स्वतन्त्रता, अतीत के प्रति विश्वास एवं मानवीयता की स्थापना भारतीय जीवन की प्रबल माँग थी। दोनों उपन्यासकारों ने विभिन्न तथ्यों, पात्रों एवं वक्तव्यों के माध्यम से उस युग को चित्रित करते हुए युगीन आवश्यकतानुसार युगीन मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है जो वर्तमान एवं भविष्य के लिए भी अनिवार्य हैं। पीताम्बर पीर के माध्यम से कहलवाया है कि – ''मनुष्य स्वयं अपना गुरू है। . ... मनुष्य दूसरे पर नहीं अपने आप पर विश्वास करना सीख जाए तो समझ लो जन–जन ताप–मुक्त होकर अपने आप को आनन्द सागर में तिरता हुआ अनुभूत करेगा। ..... माना आचार्य सत्य है, शिष्य सत्य है, मित्र सत्य है, माता–पिता, भाई–बहिन, आदि सभी सत्य है परन्तु तू सत्य है अथवा नहीं यही तुझे जानना है रे। यही जीवन धर्म की नेयता है। यही शोध सत्य की प्रतिष्ठा है।''[66] मानव को स्वयं की पहचान करना, स्वयं में सत्य की खोज करना ही जीवन धर्म है। इसी तथ्य को उपन्यासकार ने 'महात्मा' उपन्यास के माध्यम से स्थापित करने का प्रयास किया है।

महाराणा प्रताप के जीवन संघर्ष के माध्यम से उपन्यासकार भटनागर जी स्वाधीन चेतना के साथ राजधर्म, मानवधर्म, समाजधर्म को अभिव्यक्त करते हैं। कहा है कि – ''राजगद्दी सुख की सेज नहीं है। उसपर बैठकर व्यक्ति को हर क्षण जागना होता है और अपने लिए नहीं दूसरों के लिए जीना पड़ता है। राज्य अधिकार नहीं, कर्तव्य है। भोग नहीं, उत्सर्ग है। .... जय–जयकार सामन्तवाद को थोपती है। सामन्तवाद गुलामी की जंजीर डाल देता है। यह अदृश्य जंजीर कानून और न्याय के नाम पर डाली जाती है। हमें इस जंजीर से आजाद होना है। .... कर्तव्य से ऊपर न ईश्वर है, न धर्म। आप कर्तव्य करते रहें। परिणाम को न तोलें। .... सभी धर्म मनुष्य को प्रेम, अहिंसा और नेक राह पर चलने का मंत्र संदेश देते हैं .... जो जाति, धर्म, समाज व देश की अवमानना करे उससे युद्ध करना व्यक्ति, समाज व देश का कर्तव्य है। यहाँ युद्ध धर्म संगत सिद्ध होता है। .... हमें मानव होने का ऋण चुकाना है। उसे चुकाए बिना जीवन व्यर्थ है। निस्सार है।......... संकट के समय ही चरित्र की पहचान होती है। कर्म के प्रति निष्ठापूर्ण लगाव ही सत्य है।''[67] भटनागर जी ने अपने उपन्यासों में मानवीय समानता का संदेश देकर समरस समाज की स्थापना की आवश्यकता पर भी बल दिया है। मन में विचार करता है – ''समाज में जब ऐसा अन्याय फलता–फूलता है तब मानव मूल्यों का अवमूल्यन और ह्रास होने लगता है। जब महत्व सबका रहे। सबको मिले तब समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना होती है। जिससे मानवता का स्रोत महकता हुआ दृष्टिगोचर होता है। .... राजा का कर्तव्य केवल राजमहल, किले व दरबार की रक्षा करना नहीं है अपितु उसका कर्तव्य नैतिक मूल्यों, सत्य संस्थापनाओं और उदात्त चरित्र की सम्भावनाओं को संरक्षण प्रदान कर उनकी अनुभूति कराना है।''[68]

राजेन्द्र मोहन भटनागर के उपन्यासों में त्याग, बलिदान, स्वाधीनता, समाज की समानता, नारी सम्मान, राष्ट्र धर्म एवं राज धर्म के साथ मानवता के मूल्यों की चेतना एवं स्थापना का सार्थक प्रयास मिलता है। यही युग की माँग व आवश्यकता है जो उपन्यासों में पूर्ण होती दिखाई पड़ती है।

शत्रुघ्न प्रसाद ने 'सुनो भाई साधो' एवं 'अरावली का मुक्त शिखर' में भारतीय जीवन मूल्यों को गौरवमयी स्थान देने के निमित्त संघर्ष, सत्य, समानता, कर्म–निष्ठता एवं समर्पण भाव की श्रेष्ठता सिद्ध की है। राष्ट्र धर्म उनका प्रमुख लक्ष्य रहा है। वह युग राष्ट्रीय तत्व के अवमूल्यन का था। राष्ट्र धर्म ही उनकी दृष्टि में प्रथम जीवन मूल्य था जिसके प्रति चेतना की आवश्यकता महसूस हो रही थी। लिखा है – ''दुर्गा का यह रूप नारी शक्ति का प्रज्ज्वलित रूप है। यह अभिनन्दनीय है। नारी अपने प्रतिष्ठापूर्ण अस्तित्व के लिए सबल हो। स्वाभिमान की चेतना से सम्पन्न हो .... प्रताप का कहना है – भूमिमाता की स्वाधीनता के लिए शीश चढ़ सकता है, शीश झुकेगा नहीं। .... एक किसान हो, एक व्यापारी हो, राजा हो, बादशाह हो, सभी सुख–शांति से जीना चाहते हैं। .... प्रताप तीखे स्वर में बोल उठे पूरे समाज में स्वर्ण और अस्पृश्य की समस्या है। .... ऐसा देश कैसे स्वातन्त्र्य–संघर्ष को आगे बढ़ा सकेगा। ....

. कहाँ तो ऋषि विश्वामित्र ने गायत्री मंत्र में सूर्य के तेज को धारण करने की इच्छा प्रकट की है यहाँ समाज तेजहीन है। केवल एक भाग ही तेजस्वी बनकर अपना शीश ऊँचा करने के लिए लालायित रहता है। .... जब तक समाज भेदभाव की मदिरा में बेसुध रहेगा, तब तक वह तेजस्वी नहीं हो सकेगा। .... जब सभी सुखी होंगे और दीनता से छुटकारा पायेंगे तभी तो सारा देश सुखी होगा और तभी अपने देश की रक्षा के लिए उठकर खड़े होंगे।''[69] सभी को साथ लेकर चलने की प्रवृत्ति युग की महती आवश्यकता और मानवता की जरूरत है। यही भाव युगधर्म है। महाराणा प्रताप के माध्यम से भीलों आदि को साथ लेकर चलने का भाव समानता का युगधर्म स्थापन ही है। 'सुनो भाई साधो' में ऊँच–नीच के भाव को समाप्त कर धर्म एवं सम्प्रदाय के भेद को दूर कर एक राम का भाव प्रतिष्ठित किया है। एकात्म चेतना की स्थापना ही युग के पराभव से मुक्ति दिलाकर नये युग का निर्माण कर सकती है। मानवता व मानवीय मूल्य ही श्रेयस्कर हैं। ऐसी मान्यता प्रदान कर युग के भेदों को मिटाकर एकत्व स्थापना पर बल दिया गया है। मणिकांत ठाकुर से बातचीत में वे स्वीकार करते हैं कि – ''उस युग के क्रान्तिकारी आचार्य रामानन्द ने अपनी समतापूर्ण दृष्टि से कबीर और रैदास दोनों को शिष्य बनाया। सगुण और निर्गुण दोनों को मान्यता दी। इसी क्रान्तिकारी सांस्कृतिक जागरण के परिणाम थे कबीर और रैदास। यही अद्वैत चेतना युग की माँग है।''[70] अरूण भगत से बातचीत में कहते हैं कि – ''पंद्रहवी सदी का यथार्थ है कि कबीर ने आचार्य रामानन्द से दीक्षा पाकर अद्वैत समता दर्शन के आधार पर उच्च वर्ग–निम्न वर्ग तथा हिन्दू–मुस्लिम के मध्य समता पर बल दिया। पंडितों और मुल्लाओं से भयमुक्त होकर अपनी साधना को आगे बढ़ाया। गरीब कारीगर वर्ग के साथ संवेदनात्मक आत्मीयता और बड़े व्यापारी व दिल्ली के सुल्तान से टकराव युग का ही यथार्थ है। कबीर ने नया पंथ नहीं बनाना चाहा। कबीर ने उपासना पद्धति और संस्कृति को अलग माना। इसलिए उन्होंने धर्मान्तरित जुलाहों को अपनी लोक संस्कृति एवं देशी सभ्यता से जुड़े रहने के लिए समझाया।''[71] यह एकात्म अद्वैत समता सिद्धान्त तथा अपनी जड़ों से जुड़े रहने की भावना युगों–युगों के लिए आवश्यक है। इसी युग चेतना को शत्रुघ्न प्रसाद ने 'सुनो भाई साधो' में पूरी तन्मयता से स्थापित करने का प्रयास किया है।

राजेन्द्र मोहन भटनागर एवं शत्रुघ्न प्रसाद के इन उपन्यासों में समतावादी मानवीय धर्म एवं एकात्म चेतना की स्थापना का प्रयत्न किया गया है। यही युग धर्म है। युग की माँग है।

(4) कथ्य एवं शिल्प – विवेच्य उपन्यासों में मध्यकालीन भारत के यथार्थ को दर्शाते हुए अतीत के प्रति गौरवमयी भाव जागृत कर राष्ट्रीय भावों का उन्मेष करने की भावना अभिव्यक्त हुई है। महात्मा कबीर के एकात्मवादी अद्वैत चिन्तन और महाराणा प्रताप के संघर्षमयी स्वातन्त्र्य भाव की प्रतिष्ठा करना प्रमुख लक्ष्य रहा है। इसके अलावा समाज में व्याप्त सामाजिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक विषमता से उत्पन्न दुर्बलताओं से मुक्ति प्रदान करने का भाव भी व्यक्त हुआ है।

नारी जीवन को विशिष्ट उदात्तता के साथ चित्रित कर नारी को गौरवमयी स्थान प्रदान करने की चेतना प्रकट की है। 'सुनो भाई साधो' में लोई तथा 'अरावली का मुक्त शिखर' में महाराणा प्रताप की रानियों के माध्यम से अद्वैतभावी दाम्पत्य का आदर्श रखा गया है तथा काम के मंगलमयी स्वरूप की व्याख्या की गई है। प्रेम के उदात्त स्वरूप को स्थापित करने की चेष्टा की गई है। रामानन्द और कबीर के माध्यम से एकात्म भाव का संदेश दिलवाकर धार्मिक–सामाजिक विषमता को दूर कर समरस समाज की कल्पना प्रस्तुत की है। महाराणा प्रताप एवं भीलों के माध्यम से भी यही समभाव स्थापित करने की सार्थक चेष्टा हुई है। धर्मान्तरित समाज की पीड़ा को भी बड़ी शिद्दत के साथ प्रस्तुत किया गया है। राजेन्द्र मोहन भटनाकर ने भी यही भाव व्यक्त किए है। परन्तु उनके उपन्यासों में भारतीय राजाओं को और हिन्दू मठाधीशों को अधिक दोषी दिखाया गया है।

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में इस्लामी शासक चाहे सिकन्दर लोदी हो चाहे अकबर साम्राज्यवादी लिप्सा से युक्त हिन्दू जनता के लिए त्रासदायी के रूप में व्यक्त किए गए हैं। सिकन्दर लोदी धर्मान्ध कट्टरता का प्रतीक है। अकबर एक विलासी एवं छद्म उदारवादी या राजनीतिक चतुर शासक के रूप में चित्रित है। भारतीय जीवन की इस त्रासदी को भी व्यक्त किया है कि भारतीय शासक एकछत्र शासन स्थापित करने के निमित्त एक ध्वज के नीचे एक साथ नहीं हो सके और बाहरी शासकों की गुलामी करने में परहेज नहीं रखा। राजेन्द्र मोहन भटनागर ने हिन्दू राजाओं को मुख्यतः मेवाड़ के महाराणाओं को अधिक दुर्बलताओं के साथ प्रस्तुत किया है। अकबर को एकता व न्याय का समर्थक दर्शाते हुए कहीं–कहीं छद्म राजनीतिज्ञ दर्शाया है।

दोनों ही उपन्यासकारों ने महाराणा प्रताप के माध्यम से संकल्प, साहस, त्याग, बलिदान एवं राष्ट्र प्रेम जैसे मूल्यों के महत्व को दर्शाते हुए राष्ट्रीय गौरव, स्वातन्त्र्य भाव, राज धर्म एवं नारी सम्मान के भावों की प्रतिष्ठा दिलवाने का प्रयास किया है। सदानन्द प्रसाद गुप्त ने एक आलेख में लिखा है कि – "लेखक अनेक प्रसंगों के माध्यम से यह संदेश देना चाहता है कि बिना सामाजिक एकता के राष्ट्रीय सुरक्षा संभव नहीं है। लेखक का स्वप्न व्यापक हिन्दू समाज को एकजुट करने का इस इक्कीसवीं सदी का सबसे बड़ा स्वप्न है। .... लेखक ने राष्ट्रीय अस्मिता को ध्यान में रखा है और इसी दृष्टि से उपन्यास के मुख्य पात्र महाराणा प्रताप के चरित्र का निर्माण किया है। महाराणा प्रताप इतिहास और साहित्य दोनों में त्याग, धैर्य, संघर्ष, स्वाभिमान एवं दृढ़ता के लिए विख्यात रहे हैं। रचनाकार ने इस स्वरूप को ही महत्व दिया है।"[72] अमरनाथ सिन्हा ने लिखा है कि – "अपने ही घर में अपनों के हाथों हारने के गहरे कारण हैं। विशेषतः सामाजिक विषमता, जातिप्रथा, अस्पृश्यता, आदि से ग्रस्त–त्रस्त मध्यकालीन समाज। 'अरावली का मुक्त शिखर' में इस मुद्दे को कई अवसरों पर उधेड़ा गया है। सबको साथ लेकर मेवाड़ को नवसंगठित रूप देने सम्बन्धी महाराणा के संकल्प के व्यावहारिक प्रकल्प दिए गये हैं। .... सिसोदिया–भील–मीणा की साझा वंशभावानुगति उनमें गहरी एकता लाती

है। राणा पुंजा, उनका पुत्र सांगा, उनकी पुत्रवधू सभी अहर्निश मेवाड़ व मातृभूमि धरती माँ के रक्षण संवर्धन के लिए कृतसंकल्प एवं कर्मरत हैं। उपन्यास इस नवसंगठन–सामाजिक, राजनीतिक एवं सामरिक का विपुल वितान बन गया है।''[73] शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में राष्ट्रीय–सामाजिक–सांस्कृतिक प्रगतिशीलता के दर्शन होते हैं।

राजेन्द्र मोहन भटनागर के उपन्यासों का भी यही भाव है। कहीं–कहीं वे अकबर के उदार व्यवहार के साथ हो जाते हैं। महाराणा की प्रेरणा रतनावती बाई आदि को बनाते हैं। निराशा के क्षणों में वहीं प्रेरणा बनती है। डॉ भगवती लाल व्यास ने विश्वम्भर अरूण को उद्धृत करते हुए लिखा है कि – ''महाराणा प्रताप की ज्वलंत जीवन गाथा को उसके फैले पूरे परिवेश में से पकड़कर पृष्ठांकित करने का यह औपन्यासिक प्रयास अपने तरीके का पहला है। .... रामप्रसाद मिश्र को उद्धृत कर लिखा है कि – उपन्यासकार ने तत्कालीन परिस्थितियों राजनीतिक एवं सामाजिक इत्यादि का प्रशस्त चित्रण किया है।''[74] राजेन्द्र मोहन भटनागर ने महाराणा प्रताप के माध्यम से सम्पूर्ण परिवेश को चित्रित करते हुए स्वाधीनता की भावना को केन्द्र में रखा है। भगवती प्रसाद ने लिखा है कि – ''प्रताप स्वतंत्रता के पर्याय थे और स्वतंत्रता अस्तित्व का पर्याय है। एक तरह से प्रताप का समूचा जीवन इसी मानवीय सत्य की लड़ाई है। इस तथ्य को 'एक अन्तहीन युद्ध' में बड़ी कलात्मकता के साथ उकेरा गया है। पूनम दईया ने इस कृति पर अपनी समीक्षात्मक टिप्पणी में कहा है कि प्रताप ने स्वतंत्रता से जीना और स्वतन्त्रता के लिए मरने का पाठ सिखलाया। स्वतन्त्रता एक अन्तहीन युद्ध है जो क्रान्ति में भी है और शांति में भी। इन्हीं मूल्यों को लेकर डॉ भटनागर ने 'एक अन्तहीन युद्ध' उपन्यास की रचना की और इन्हें स्थापित करने में वे सफल हुए हैं।''[75] राष्ट्रीय अस्मिता एवं गौरव, स्वाधीनता, राष्ट्र धर्म एवं राज धर्म, जातीय समानता, राष्ट्रीय एकता एवं मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ–साथ महाराणा प्रताप के उदात्त चरित्र एवं कबीर के अद्वैतवादी चिन्तन का दर्शन करवाना राजेन्द्र मोहन भटनागर एवं शत्रुघ्न प्रसाद का प्रमुख ध्येय है। इन भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए कुशल औपन्यासिक शिल्प का भी सहारा लिया गया है। ऐतिहासिक घटनाओं एवं तथ्यों के साथ कल्पना सृजित प्रसंगों को एक निश्चित सुगठित साँचे में ढाला गया है। कथानक में सुगठन एवं प्रवाहशीलता देखी जा सकती है। पात्रों का कथ्यानुकूल एवं भावानुकूल सृजन किया गया है। नवीन पात्रों की सृष्टि अपना–अपना वैशिष्ट्य दर्शाती है। परिवेश चित्रण यथार्थ एवं मनोरम रूपों में विशिष्ट सार्थक बन पड़ा है। भाषा पात्रों के चरित्रों का उद्घाटन करने एवं भावों के सम्प्रेषण में समर्थ हैं। प्रवाहशीलता एवं सहजता विशिष्ट गुण है। संवादों में नाटकीयता एवं व्यंजनापरकता की रोचकता देखने में आती है। शत्रुघ्न प्रसाद की भाषा जहाँ सहजता लिए होती है वहीं राजेन्द्र मोहन भटनागर की भाषा में जीवन चिंतन एवं दार्शनिकता की गहराई दिखाई पड़ती है। परिवेश चित्रण में लोक–संपृक्ति व्याप्त है। डॉ भगवती लाल व्यास ने राजेन्द्र मोहन भटनागर के उपन्यासों की आलोचना करते हुए लिखा है कि – ''इनके उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता इसकी पठनीयता एवं

रोचकता है। सबसे बड़ी बात है औपन्यासिक स्वरूप। लेखक अपनी सम्पूर्ण सृजनात्मकता घोल कर जो चरित्र खड़े करते हैं वे अत्यंत सजीव हैं। लेखकीय वक्तव्य, संवाद, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, सामाजिक संदर्भ और कहीं–कहीं अतिशयोक्ति का सहारा लिए बिना वास्तविकता का स्पष्ट दर्शन इसकी खूबी है।''[76] शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की समीक्षा करते हुए यतीन्द्र तिवारी ने लिखा है कि – ''आपकी अत्यन्त रोचक एवं अतीत के संदर्भों के साथ जीने और खो जाने का अवसर उपलब्ध कराती कथा–कृति 'अरावली का मुक्त शिखर' आपकी प्रभावी कथा–कथन शैली से परिचित करवाती है। .... ऐतिहासिक उपन्यासों में काव्यात्मक भाषा का प्रयोग कठिनाई से मिलता है, जबकि प्रस्तुत कृति के मधुर प्रसंगों या प्रकृति वर्णन के प्रसंगों में आपने सहज काव्यात्मक भाषा का प्रयोग कर कृति को नीरसता और बोझिलता से बचा लिया है। कृति का प्रारम्भ अत्यन्त करूण परिवेश में होकर अन्त नैतिकता और धर्मानुसरण की प्रेरणा के साथ सम्पन्न होता है। प्रभावशाली अन्त ही कृति की सार्थकता का प्रयास है। 'अरावली का मुक्त शिखर' नामकरण भी चक्रपाणि मिश्र द्वारा राणा प्रताप को दिए एक विशेषण का पर्याय है। यही किसी कृति के नामकरण की सार्थकता होती है जो उसके माध्यम से कृति की समग्रता का बोध कराती है।''[77]

(5) भविष्योन्मुखी आधुनिक सन्दर्भ – ऐतिहासिक उपन्यास को इतिहास के माध्यम से या कल्पनात्मक प्रसंगों के द्वारा आधुनिक संदर्भों में उपयोगी बनाकर भविष्य के लिए प्रासंगिक बनाने का प्रयास किया जाता है। शत्रुघ्न प्रसाद एवं राजेन्द्र मोहन भटनागर के उपन्यासों में प्रदत्त जीवन दर्शन उस ऐतिहासिक काल के माध्यम से वर्तमान एवं भविष्य को भी उज्ज्वलता एवं आलोक प्रदान करता है। 'महात्मा' उपन्यास में कबीर दास कहते हैं कि – ''लोई! यह युग गृहस्थी छोड़कर योगी बनने पर कमर कसे हुए हैं। हमेशा नीचे की ओर बहना होता है, सहज की ओर। हर युग में ऐसा ज्वारभाटा उठता है। उसी से यह समझ लेना चाहिए कि युग के पतन के लिए वही जिम्मेदार होगा। आज का साधु समाज वर्तमान एवं अनागत दोनों के लिए उत्तरदायी है। .... परन्तु मैं इस अन्धविश्वास को तोड़ना चाहता हूँ। .... मानव ने मानव के इतने भेद बना डाले हैं कि आज भेदों का अस्तित्व हैं, मानव का नहीं। .... यह सब ऐसे कारण हैं जो मुझे चैन से नहीं बैठने देते हैं।''[78] पन्द्रहवीं शताब्दी के साधु समाज की सत्यता आज भी यथार्थ है और भेदों से मुक्ति का प्रसंग आज भी ज्वलंत एवं अनिवार्य है। व्यक्ति का मूल्यांकन, उपलब्धियों का मूल्यांकन भविष्य को सोचकर ही होता है। 'एक अन्तहीन युद्ध' में लिखा है कि – ''मूल्यांकन उसी का होता है जो अपने वर्तमान के प्रति निष्ठावान और लगनशील है। उसके प्रति समर्पित और तटस्थ। व्यक्ति का महत्व केवल तत्कालीन उपलब्धियों में नहीं अपितु आगमिष्यत उपलब्धियों की सम्भावना में है जो वस्तुतः व्यक्ति के होने की साक्ष्य बनती है और दूसरों के अन्धेरों को प्रकाश में बदलने का कारण बनती है।''[79] इन उपन्यासों में वर्णित संदेश आज भी प्रासंगिक हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

'नीले घोड़े का सवार' में महाराणा का उद्‌गार युगों–युगों तक प्रासंगिक है। कहते हैं – ''जिस जनता में आजादी का ऐसा जज्बा हो, उस जनता को कोई गुलाम नहीं बना सकता। अब मुझे लगने लगा है कि मेवाड़ का बच्चा–बच्चा महाराणा है। मैं रहूँ या न रहूँ परन्तु मेवाड़ की आजादी सदा कायम रहेगी। जब तक हम आपके बीच में हैं सकड़ों शहंशाह भी हमें छू नहीं सकते।''[80] भूमिका में लिखा है कि – ''यह उपन्यास प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप के ओजस्वी और देदीप्यमान जीवन पर आधारित है। आज के तेजी से ध्वस्त होते जीवन मूल्यों के लिए इसकी आवश्यकता है। स्वतन्त्रता संघर्ष अनुरत धर्म है। महाराणा प्रताप से किया गया पृथ्वीराज राठौड़ का प्रश्न आज भी है। परन्तु आज पातल के सामने पीथल नहीं है। यह प्रश्न हर युग में हर क्षण बना रहेगा और जो जाति स्वतंत्रता और स्वाभिमान का अर्थ समझती है वह सदा इस प्रश्न को अपने में संजोये रहेगी।''[81] स्वतंत्रता और स्वाभिमान का प्रश्न आज भी कायम है आगे भी रहेगा। ज्ञानदीप ने शत्रुघ्न प्रसाद को उद्‌धृत करते हुए लिखा है कि – ''शत्रुघ्न प्रसाद कहते हैं कि गौरवशाली भारतीय अतीत का विश्लेषण करके ही वर्तमान समय में समाज को नई दिशा दी जा सकती है। भारतीयता की आत्मा, इस राष्ट्र की रचना करने वाली हिन्दू संस्कृति ही है। पूर्व की कमजोरियों एवं त्रुटियों से सीख लेकर ही वैभवशाली एवं समृद्ध राष्ट्र के रूप में भारत को प्रतिस्थापित किया जा सकता है।''[82] स्वतंत्रता की आवश्यकता एवं प्रेरणा हर युग में रहेगी। महाराणा प्रताप के माध्यम से शत्रुघ्न प्रसाद ने इसी तथ्य को अभिव्यक्त किया है। अमरनाथ सिन्हा ने लिखा है कि – ''भारत वर्ष के स्वातन्त्र्य संघर्ष की पृष्ठभूमि में मेवाड़ का स्वर गूँजना चाहिए। चारणों का यह एहसास, अभिप्रेरणा एवं कामना दीपस्तम्भ की तरह है। यही संप्रेरणा उपन्यासकार का अभीष्ट है और इसी अर्थ में यह ऐतिहासिक उपन्यास वर्तमान के प्रश्नों एवं समस्याओं को सार्थक संयोजन समायोजन एवं प्रतिस्थापन करता है।''[83] 'सुनो भाई साधो' में भी शत्रुघ्न प्रसाद ने ये प्रश्न उठाया है कि धर्मान्तरित समाज की पीड़ा कम न हो सकी तथा बहिरागत समुदाय आज तक इस मिट्‌टी से जुड़ नहीं सका है। ये तथ्य आज भी प्रत्यक्ष हो उठता है। धर्मान्ध कट्‌टरता अब भी आतंकवाद के रूप में सामने आ जाती है। कबीर और महाराणा प्रताप आज भी प्रासंगिक है। सदानन्द प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि – ''महाराणा प्रताप का द्वन्द्व वस्तुतः लेखक का द्वन्द्व है और वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिक भी है कि समाज बँटा हुआ है लोग स्वार्थलोलुप हो राष्ट्रविरोधी गतिविधियों की अनदेखी कर रहे हैं। लेखक के लिए राष्ट्रीय एकता का प्रश्न सबसे बड़ा प्रश्न बनकर उभरता है।''[84] निष्कर्षतः स्वाधीनता की भावना, सामाजिक एकता, धार्मिक विभेद, स्वार्थलोलुप देश विरोधी शक्तियों की समस्या, आदि ऐसे प्रसंग इन उपन्यासों में व्यक्त हुए है जो आज भी समाज की सच्चाई है और जिनसे भविष्य में निबटना है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि किंचित वैचारिक वैभिन्य एवं भाषिक संरचना की भिन्नता को छोड़ दें तो राजेन्द्र मोहन भटनागर एवं शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों का कलेवर अद्वैत समता सिद्धान्त एवं स्वातन्त्र्य संघर्ष के आदर्श को ही प्रस्तुत करते हैं।

6.7 शत्रुघ्न प्रसाद का मेवाराम एवं लक्ष्मीनारायण नंदवाना के साथ तुलनात्मक अध्ययन – मध्यकालीन इतिहास की कथा लेकर उपन्यासों की रचना करने वाले शत्रुघ्न प्रसाद के समकालीन उपन्यासकारों में मेवाराम का महत्वपूर्ण स्थान है। सुल्तान रजिया, बदनसीब बादशाह हुमायूँ, दास्ताने आगरा, नूरजहाँ, शाह–ए–आलम एवं दाराशुकोह इनके प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं। लक्ष्मीनारायण नन्दवाना का 'प्रीत पसारे पंख' भी एक लघु परन्तु महत्वपूर्ण उपन्यास है। विवेच्य अध्याय में मेवाराम रचित 'दारशुकोह', लक्ष्मीनारायण नन्दवाना रचित 'प्रीत पसारे पंख' एवं शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' को तुलना की परिधि में लिया जा रहा है।

(1) विषयवस्तु – विवेच्य उपन्यासों की पृष्ठभूमि शाहजहाँ एवं औरंगजेब काल से सम्बन्धित है। मेवाराम रचित 'दाराशुकोह' में शाहजहाँ के सिंहासनरूढ़ होने से लेकर उनकी मृत्यु तक की गाथा, विशाल फलक पर कही गई है। शाहजहाँ द्वारा प्राप्त सफलताओं–असफलताओं के साथ उनके शासनकाल में दारा शुकोह – जहाँनारा की स्थिति, औरंगजेब–रोशनआरा की स्थिति, उत्तराधिकारी युद्ध, औरंगजेब द्वारा कपटपूर्ण सफलताओं की प्राप्ति, शाहजहाँ का कैद में बन्दी जीवन और वेदनापूर्ण अन्त इस उपन्यास की प्रमुख विषयवस्तु है। युद्धों एवं राजदरबार से सम्बन्धित सभी प्रमुख घटनाओं को कथारस के साथ इस औपन्यासिक वितान में बुना गया है। दाराशिकोह द्वारा रचित सिर्रे–अकबर एवं मज्म–उल–बहरैन के अलावा सभी रचनाओं के रचित होने तथा ताजमहल निर्माण की प्रक्रिया का भी विस्तार से उल्लेख किया गया है। मुल्लाशाह बदख्शी, सूफी सरमद, पंडित जगन्नाथ आदि अद्वैतवादी दारा के समर्थकों को कत्ल करवाए जाने की घटनाएँ भी सम्मिलित हैं। गुरू तेग बहादुर–औरंगजेब विवाद भी मुखरित किया गया है। इन सबसे जुदा इस उपन्यास में पंडित जगन्नाथ एवं लवंगी बेगम, गोंडवाना के राजा हृदयशाह और शहाजहाँ की शहजादी चमनीबाई, औरंगजेब और हीराबाई, जहाँआरा बेगम एवं बूँदी नरेश छत्रसाल, मुरादबख्स एवं सरसबाई की प्रेम–कहानियों को भी पूरी शिद्दत से उकेरा गया है। औरंगजेब की समर्थक रोशनआरा के महल की अय्याशियाँ तथा औरंगजेब की शहजादी जेबुन्निशाँ का विरही जीवन भी अभिव्यक्त हुआ है। शाहजहाँ के विलासी एवं अय्याशीपूर्ण जीवन की घटनाओं को भी चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में शाहजहाँ एवं औरंगजेब काल का सम्पूर्ण लेखा–जोखा प्रस्तुत है।

'प्रीत पसारे पंख' में पंडित जगन्नाथ एवं लवंगी बेगम की संघर्षमयी प्रेम कथा उपन्यस्त है। रामगढ़ के राजा चन्द्रशेषरन के दरबार के राज ज्योतिषी महेश्वरन के पुत्र जगन्नाथ रामगढ़ की कठिन परिस्थितियों से बच कर आगरा आ जाते हैं। अपनी सच्ची भविष्यवाणियों से

लोकप्रियता प्राप्त कर अनेक लोगों के विद्वेष का कारण बन जाते हैं। शाहजहाँ के दरबार में सम्मान मिलता है और दारा के गुरू बन जाते हैं। लवंगी से प्रेम और विवाह करने पर आगरा छोड़कर काशी आना पड़ता है। पंडित समुदाय का विरोध एवं बहिष्कार सहन करते हैं। 'गंगालहरी' के पदों का उच्चारण करते हुए गंगा में विलीन हो जाते हैं। नागौर के राजा अमरसिंह राठौड़ एवं उनकी पतिव्रता महाराणी को कलंकित करने की घटना भी काल्पनिक प्रसंग के रूप में प्रमुखता से ली गई है। 'प्रीत पसारे पंख' मुख्यतः पंडितराज जगन्नाथ एवं लवंगी बेगम के संघर्षमयी जीवन की पृष्ठभूमि पर आधारित है।

शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'शहदाजा दाराशिकोह : दहशत का दंश' मेवाराम रचित 'दाराशुकोह' के आगे की कहानी है। यह उपन्यास दारा की पराजय और औरंगजेब के सिंहासनारूढ़ होने के बाद के औरंगजेब द्वारा किए गए क्रूर, अत्याचारी एवं अमानवीय कृत्यों से उपजी दहशत का चित्रण है। दारा एवं उनके पुत्रों का कत्ल करवाना, अपने भाईयों शुजा, मुराद का पतन करना, शाहजहाँ को बंदीखाने में कैद रखना, मुल्लाशाह बदख्शी, सूफी सरमद, उधोदास बैरागी, गुरू तेगबहादुर, पंडित जगन्नाथ एवं लवंगी बेगम, आलमआरा आदि के साथ क्रूर एवं अमानवीय व्यवहार करना, हिन्दू मन्दिरों को तुड़वाना एवं दहशत एवं भय का वातावरण निर्मित करने से सम्बद्ध घटनाओं पर आधृत उपन्यास है – शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश। राजा रामसिंह एवं असम की राजकुमारी जया की प्रणय गाथा विशेष रूप से जोड़ी गई है। जेब्बुनिशाँ एवं अकिल खाँ तथा जगन्नाथ पुत्र भवनाथ और आलमआरा की दम तोड़ती विवश प्रेम कथाओं की मर्मव्यथा भी इस उपन्यास की महत्वपूर्ण कड़ियाँ है। महाराज शिवाजी के साथ छलपूर्ण व्यवहार के बाद नजरबन्द किए जाने और साहस एवं चालाकी के द्वारा उनके बच निकलने के प्रसंग के साथ यह उपन्यास विराम लेता है। दारा की पराजय से लेकर शिवाजी द्वारा बच निकलने तक की प्रमुख घटनाओं को इस उपन्यास में कथासूत्र बनाया गया है।

तीनों उपन्यासों की विषय दारा, औरंगजेब और पंडित जगन्नाथ पर आधारित है।

(2) इतिहास एवं कल्पना – मेवाराम रचित 'दाराशुकोह' में इतिहास–गाथा ही कही गई है। इस उपन्यास में शाहजहाँ एवं औरंगजेब कालीन सभी प्रमुख घटनाएँ एवं प्रमुख पात्र इतिहास सम्मत हैं। धरमत युद्ध, सामूगढ़ युद्ध, दारा की पराजय, औरंगजेब द्वारा दारा व उसके पुत्रों तथा अपने भाइयों मुराद और शुजा को मरवा देना, शाहजहाँ को कैद कर लेना, आलमगीर की उपाधि धारण करना, सूफी सरमद, मुल्लाशाह बदख्शी, पंडित जगन्नाथ आदि का पराभव, आदि सभी घटनाएँ इतिहास ग्रन्थों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। शाहजहाँ, मुमताज महल, जहाँआरा, रोशनआरा, दारा, औरंगजेब, चन्द्रभान बिरहमन, बाबा लाल, जेबु, आलमआरा, आसफ खाँ, खलीलुल्लाह खाँ, मलिक जीवन, पंडित जगन्नाथ, राजा छत्रसाल, जय सिंह, जसवंत सिंह, आदि सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। ताजमहल का निर्माण, फारसी ग्रन्थों का संस्कृत तथा संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाना, हिन्दू और इस्लामी ग्रन्थों में

एकत्व खोजना आदि तथ्य भी पूर्णतया इतिहास द्वारा प्रमाणित है। राणा दिल नामक दाराशुकोह की प्रेमिका का मनूची ने वर्णन किया है। अधिक वर्णन नहीं मिलता है। काल्पनिक तथ्यों व पात्रों को जगह कम दी गई है। प्रसंगों को काल्पनिक रंग देकर रोचक कथा बना दी गई है। राणा दिल और दाराशिकोह, मुराद बख्श और सरस बाई, जगन्नाथ–लवंगी बेगम, हृदयशाह और चमनी बाई, जहाँआरा बेगम और महाराज छत्रसाल आदि की प्रेमकथाओं का उल्लेख इतिहास ग्रन्थों में मिलता है। इन कथाओं को जो विस्तार दिया गया है वह काल्पनिक है। शाइस्ता खाँ की बेगम से शाहजहाँ द्वारा की गई जबरदस्ती और उसके द्वारा की गई आत्महत्या की घटना संभावित इतिहास है। उपन्यासकार ने राणा दिल के माध्यम से कुछ ऐतिहासिक प्रमाण दिए हैं। निकोलाई मनूची द्वारा लिखा 'स्टोरियों द मोगर' जहाँआरा बेगम रचित 'साहबिया' जिसका हिन्दी अनुवाद केशव ठाकुर ने किया है, राम भरोसे लाल की 'गोंड जाति का इतिहास' एवं 'गढ़ा–मंडला के गोंड राजा', चन्द्रभान बिरहमन की मुकालमा–ए–बाबालाल–दाराशुकोह तथा दारा द्वारा रचित सिर्रे–अकबर, सकीनत–उल–औलिया, मजमून उल बहरैन आदि पुस्तकों को पढ़ने की हिदायत राणा दिल स्वप्न में आकर उपन्यासकार को देती है अर्थात् इन इतिहास ग्रन्थों से उपन्यासकार ने सामग्री प्राप्त की है।''[85] काल्पनिकता रोचक शैली में ही है। अरविन्द कुमार ने एक लेख में लिखा है कि – ''लेखक किसी वैज्ञानिक अनुसंधान वार्ता की तरह पूरी तरह शोध करके इतिहास ग्रन्थों के साथ–साथ मुगलकालीन दस्तावेजों और सामयिक ब्यौरों से हर तरह की जानकारी हासिल करके किसी अच्छे तटस्थ रिपोर्टर की तरह तत्कालीन घटनाओं का तथ्यपरक चित्रात्मक ब्यौरा पाठकों के सामने परोसता है। युद्धों के वर्णन में वह मौसम की बारीकियों तक जाता है।''[86] दाराशुकोह प्रामाणिक ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों, तथ्यों पर आधारित सरस गाथा है।

'प्रीत पसारे पंख' में पंडित जगन्नाथ का जीवन संघर्ष, उसका आगरा में रहना, दारा को संस्कृत की शिक्षा देना, औरंगजेब काल में काशी चले जाना, पंडितों के विरोध का सामना एवं गंगा नदी में विसर्जित हो जाना आदि घटनाएँ जनश्रुति आधारित सत्य घटनाएँ हैं। जगन्नाथ, लवंगी, शाहजहाँ, दारा, जहाँनारा, अमरसिंह राठौड़, सलावत खाँ आदि पात्र इतिहास ग्रन्थों द्वारा प्रमाणित है। घटनाएँ काल्पनिक एवं संभावित इतिहास है। जगन्नाथ की चमत्कारपूर्ण भविष्यवाणियाँ, अमरसिंह एवं हाड़ी रानी की पत्वीव्रत रूपी चुनौती की कथा, लवंग को प्राप्त करने से सम्बन्धित घटना आदि काल्पनिक प्रसंग हैं। कुछ इतिहास पात्रों को लेकर काल्पनिक प्रसंगों की उद्‌भावना करके रोचक कथा बुन दी गई है। जनश्रुति को संजोकर उसे आत्मीय शैली में उपन्यास का रूप दे दिया गया है। अमर सिंह राठौड़ का सम्बन्ध राजस्थान से रहा है। परन्तु हाड़ी रानी की परीक्षा वाला वृतान्त एवं नर्तकी बनकर प्रतियोगिता में भाग लेने वाला प्रसंग काल्पनिक उपज है। उपन्यासकार ने पूर्व कथन में स्वीकार किया है कि – ''संस्कृत साहित्य के इतिहास में पंडितराज के नाम से जगन्नाथ नामक कवि प्रसिद्ध है। एक नर्तकी की पुत्री से शादी करने के कारण उस काल के कतिपय

पंडित उनके विरूद्ध हो गए थे। .... पंडितराज ने गंगालहरी की रचना की और गंगा की साक्षी में अपने प्रेम की पवित्रता प्रमाणित कर दी। इस जनश्रुति के आधार पर इस उपन्यास के कथानक का ताना बुना रचा गया है। .... लोक कथा जनजीवन में एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ में, दूसरे कण्ठ से तीसरे में होती हुई निरन्तर गतिशील रहती है।''[87] जनश्रुति व कतिपय ऐतिहासिक पात्रों को लेकर काल्पनिक प्रसंगों की उद्‌भावना से रोचक कथा की रचना की गई है जो ऐतिहासिक सी लगती है।

शत्रुघ्न प्रसाद कृत 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में दारा की पराजय, कत्ल एवं उसके बाद के औरंगजेब कालीन वृतान्त पूर्ण ऐतिहासिक हैं। असम की राजकुमारी जया का औरंगजेब के महल से बचकर निकलना एवं राजा राम सिंह के महल में पुजारिन बनकर रहना और राजा राम सिंह के साथ प्रेम सम्बन्ध जुड़ना उपन्यासकार की काल्पनिक उद्‌भावनाएँ हैं। जेबुन्निसा एवं लाहौर के हाकिम अकिल खाँ का प्रेम प्रसंग व अकिल खाँ का मारा जाना तथा भवनाथ एवं आलमआरा की प्रेम कथा भी उपन्यासकार की उर्वर कल्पना का नतीजा है। यह उपन्यास वास्तव में दहशत के वातावरण को चित्रित करता है। दहशत पूर्ण ऐतिहासिक वातावरण को चित्रित करने में उपन्यासकार पूर्ण सफल है। प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं के माध्यम से ऐतिहासिक वातावरण को रचने एवं काल्पनिक प्रसंगों द्वारा सृजित कथा की मौलिकता एवं सरसता में यह ऐतिहासिक कथा अद्वितीय है। मूल घटनाएँ इतिहास सम्मत हैं परन्तु काल्पनिक उद्‌भावनाओं का भी प्रसंगोचित प्रयोग हुआ है। सुरेश गौतम ने अपने एक लेख में लिखा है कि – ''ऐतिहासिक तथ्यान्वेषण की इस सूर्य दृष्टि में इतिहास–मर्यादा का कला मर्म भी है और तत्कालीन राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना में अनुस्यूत शौर्य और प्रेम से आपूरित जीवन बोध भी। जहाँ भी आवश्यक हुआ उपन्यासकार ने कल्पना का सहारा भी लिया है। इतिहास के अन्तः और बाह्य साक्ष्यों से संतुलित इस कथावितान में कार्य व्यापार की शिप्रता, कर्म और द्वन्द्व की भावना के साथ तेजाब यात्रा करती दहशत एक ऐसे अग्निकुंड में बदल जाती है जिसमें सम्पूर्ण मानवीय मूल्य, आत्म बोध भस्म हो जाता है।''[88] यह इतिहास कथा मानवीय संवेदना की कथा है।

निष्कर्षतः मेवाराम कृत दाराशुकोह ऐतिहासिक तथ्यों की मनोरम कथा है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों की भरमार है। गढ़ों, किलों, स्थानों का भी पूरा इतिहास वर्णित है। 'प्रीत पसारे पंख' जनश्रुति पर आधारित इतिहास आभासित कथा है। इसमें काल्पनिक उद्‌भावनाओं की अधिकता है। 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' इतिहास एवं कल्पना का सुन्दर सामंजस्य होने के साथ–साथ इतिहासकालीन घटनाओं के संकेतों पर मानवीय संवेदना की कथा है।

(3) युग धर्म स्थापक – भारतीय इतिहास में शाहजहाँ और औरंगजेब का काल दो विपरीत ध्रुवों का काल रहा है। शाहजहाँ का काल स्वर्णकाल और औरंगजेब का काल पतनकाल का प्रारम्भ माना जाता है। ताजमहल के निर्माण और मंदिरों के ध्वंस का काल है। उदारवाद पर

संकीर्णवाद के हावी होने के परिणामों का काल है। ऐसे ऐतिहासिक वातावरण को अभिव्यक्त कर उपन्यासकारों ने अपनी–अपनी दृष्टि से युगीन यथार्थ के साथ ऐसे संकेत दिए हैं जो चेतना एवं जागृति में सहायक हैं। युगीन यथार्थ को अभिव्यक्त कर युग को रोशनी दिखाना युग धर्म कहलाता है। मेवाराम कृत 'दाराशुकोह' का प्रारम्भ इस तथ्य के साथ किया गया है कि सियासत में कोई किसी का सगा नहीं होता। अन्त सियासत की इसी व्याख्या को घोरतम रूप में होता है परन्तु मानवीयता धर्म की प्रतिष्ठा की है जो कट्टर धर्मान्ध काल की दुर्दमनीय संकीर्णता में से उपजी संवेदना का परिणाम है। मध्यकालीन सियासत का चेहरा शाहजहाँ के इस वक्तव्य में स्पष्ट होता है। वे आसफ खाँ से कहते हैं कि – ''बादशाह को न तो कोई भाई होता है और न कोई रिश्तेदार। बादशाह का केवल ताजो–तख्त नजर आता है और ताजो–तख्त की हिफाजत की खातिर वह किसी भी हद तक कदम उठा सकता है।''[89] शाहजहाँ को उसी के जीवन में दर्द और पीड़ा का, अन्याय और अत्याचार का क्रूर रूप देखने को मिलता है, तब वह उसे अमानवीय कहता है। शाहजहाँकालीन इस घोरतम सच्चाई को उजागर करते हुए तथा औरंगजेब की अमानवीयता और जहाँनारा की मानवता दिखाकर उपन्यासकार मानव धर्म की प्रतिष्ठा का सफल प्रयास करता है। अन्तिम समय में शाहजहाँ से जहाँनारा कहती है कि – ''अब्बा हुजुर, आज आपसे आखिरी इल्तिजा है। आप अपने बेटे औरंगजेब बहादुर जो इस वक्त हिन्दुस्तान के बादशाह हैं, उन्हें माफ कर माफीनामें पर अपने दस्तखत कर दें।''[90] धर्मान्ध, क्रूर, संकीर्ण, रक्तपिपासु सियासत के क्रूरतम युग में क्रूरता को माफ कर देने की भावना उदार मानवता का पोषण करती है। क्रूर सियासत से प्रारम्भ व मानवीय सियासत से अन्त कर उपन्यासकार ने एक सुखद अहसास दिलवाया है। संदेश है कि मानव धर्म कभी नहीं भूलना चाहिए। दारा के माध्यम से कट्टर मुल्लावादी धर्मान्ध संकीर्णता से उदार एवं अद्वैतवादी जीवन दर्शन की स्थापना का भी पुरजोर प्रयास किया गया है। संकीर्णता से क्षुब्ध दारा ने कहा – ''हाँ, हमारी ख्वाहिश है, हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुसलमान एक होकर रहें। एक दूसरे की मजहबी किताबों को इज्जत बख्शें। हमें तकलीफ तब पहुँचती है जब यहाँ के जाहिल मुल्ला, शिया और सुन्नियों में झगड़ा करवाते हैं। एक दूसरे के खिलाफ बातें करते हैं। बसन्त, हम न तो इस्लाम के खिलाफ हैं और न हमें रोजा–नमाज से परहेज है। हम चाहते हैं, मुसलमानों की तरह हिन्दुओं और दूसरे मजहब के लोगों को भी बराबर की तरजीह दी जाए।''[91] यही युग की आवश्यकता है। उपन्यासकार ने दर्शाया है कि धर्म के ठेकेदार तथा शासक वर्ग धर्म का सहारा लेकर अधर्म का ही मार्ग अपनाते हैं साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि सच्चाई कहीं–न–कहीं पराजित होती हुई नजर आती है परन्तु वास्तविकता है कि सच्चा व्यक्ति पतन को प्राप्त होता है पर सच्चाई को स्थापित कर जाता है। सर्वधर्म समभाव का प्रणेता पराजित होता है। दारा का पराभव होता है, पर उसकी समभाव चेतना का अन्त नहीं होता है। सारा मुल्ला वर्ग उससे खफा है। शाहजहाँ भी नसीहत देता है कि सत्ता व ताज–ओ–तख्त प्राप्त करने के लिए शक्ति सम्पन्न

होना जरूरी है तथा धर्म की ताकतों को साथ रखना भी आवश्यक है परन्तु दारा अपनी नीति पर कायम रहते हुए समभाव को बनाए रखता है। यही उपन्यासकार का इष्ट है। सारी खिलाफत के बीच जो धर्म की सच्चाई पर डटा रहे, वही तो युग धर्म स्थापक हो सकता है। यह अरविन्द कुमार के वक्तव्य में स्पष्ट होता है। लिखते हैं कि – ''शुभचिंतकों स्वयं पिता शाहजहाँ व बड़ी बहन जहाँनारा दारा को बार–बार समझाते हैं कि राजकाज, युद्धनीति और कूटनीति में दक्षता शासकों के लिए जरूरी है। पर दारा के लिए इतना विश्वास काफी है कि वह अपने पड़दादा अकबर से आगे बढ़कर संसार को कुछ देकर जाएगा। उसके लिए कूटनीति से बड़ी चीज है प्रेम, मानव प्रेम, अन्तर्धर्म विवाह .... मानों इन्हीं से दुनिया मानवीयता के मार्ग पर चलने लगेगी।''[92] दारा प्रेम और मानवता के साथ समभाव का प्रणेता रहा है। यही युग की माँग रही है। यही युग धर्म है। लक्ष्मीनारायण नन्दवाना का जगन्नाथ–लवंगी प्रेम कथा पर आधारित उपन्यास द्वारा घृणित व क्रूर शासन काल में प्रेम के पवित्र एवं निश्छल भाव को प्रतिष्ठा दिलाने का प्रयास करते हैं। पंडित जगन्नाथ ने कहा – ''प्रेम कहाँ है? यह कहाँ मिलता है? इसे कहाँ सिखाया जाता है। कोई नहीं जानता। प्रेम की कोई पाठशाला नहीं होती। प्रेम तो भरपूर यकीन है, दिल में हिलोरे लेता, मंद–मंद समीर सा बहता, पंख पसारे उड़ता है। यही ईश्वर या खुदा है। .... यही प्रीति चारों ओर उड़ने लगती है।''[93] प्रेम ईश्वर का ही रूप है, प्रेम को कोई समझ नहीं सकता है, अतः प्रेम पर आक्षेप भी गलत है। प्रेम जीवन का सार तत्व है। जाति, समाज, सियासत उस पर क्यों पाबंदी लगाए। प्रेम के साथ–साथ समाज में व्याप्त जाति व धर्म के भेद को नकार कर सच्चे प्रेम को स्वीकारने की बात उपन्यासकार ने सामाजिक समभाव की स्थापना के निमित्त कहीं है। पवित्र भावमयी निश्छल प्रेम के लिए जगन्नाथ ने कहा – ''यदि अवसर मिला तो लवंग के लिए वह साहस मैं करूँगा। लवंग किस जाति की है या किसकी पुत्री है, इसमें उसका कोई हाथ नहीं है। सृष्टि ने उसे रचा है। कला दी है। उसका सम्मान करूँगा। .... कोई भी इन्सान की बेटी से शादी करने से मना नहीं करता।''[94]

उपन्यासकार यहाँ जाति भेद से निवृत मानवता व इंसानियत का हिमायती बनकर धर्म और समाज के मानवीय रूप को अभिव्यक्त करता है। धर्म और समाज इंसानियत से परे नहीं है। धर्म मानव कल्याण का वाहक है। धर्मशास्त्र मानव कल्याण की प्रेरणा देता है। बंधन और भेद नहीं। धर्मशास्त्र अमर कर्म करने का संदेश देता है। यही भाव उपन्यासकार का इष्ट है। पंडितराज ने बादशाह के प्रश्न का जवाब देते हुए कहा – ''हर धर्मशास्त्र की संरचना मानव मन के कल्याण के लिए की जाती है। उसमें मनुष्यों को बुराई से अच्छाई की ओर चलने की प्रेरणा दी जाती है। अंधकार का रास्ता त्याग कर प्रकाश का रास्ता अपनाने का उपदेश दिया जाता है। इस प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं कि जिनसे प्रेरणा लेकर मनुष्य मरणशील जीवन में कुछ ऐसे कार्य करें जिनके कारण युग–युग तक उसे याद किया जाए।''[95] मनुष्यता का वह कर्म जो उसे युगों–युगों तक अमर बना दे व युगों–युगों तक मानव जीवन

के लिए सार्थक बना रहे, युग धर्म कहलाता है। जगन्नाथ के माध्यम से इसी मानवीय चरित्र की स्थापना उपन्यासकार का अभीष्ट है।

शत्रुघ्न प्रसाद ने 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में दारा, मुल्लाशाह बदख्शी, सूफी सरमद के माध्यम से धर्मान्ध कट्टरता से पूर्ण विचारधारा के मध्य एकात्म समरस भावों की स्थापना करनी चाही है। उधोदास वैरागी व सिक्ख गुरूओं के माध्यम से इसी भाव को पुष्ट किया है। औरंगजेब व मुल्लाओं का कट्टर धर्म उदार चेता दारा का पराभव कर देता है परन्तु उसके विचार जीवित रहते हैं और वे जनता में सुगबुगाते रहते हैं। आज भी उनकी आवश्यकता महसूस होती है। राम–रहीम एवं अल्लाह–ब्रह्म की एकता ही श्रेष्ठ है। सूफी सरमद ने कहा – ''ठीक कह रहे हो मैं अल्लाह और ब्रह्म में कोई फर्क नहीं मानता। राम–रहीम और किशन–करीम में कोई फर्क नहीं समझता। हिन्दुस्तान की जमीन पाक है। मैं इसकी कद्र करता हूँ। अगर यह बगावत है तो मैं बागी हूँ। .... मैंने समझा है और अहसास किया है कि इस हिन्दुस्तान का दर्शन, धर्म और आचार–विचार बड़ी ऊँचाई पर है। .... अगर इसे औरंगजेब बर्दाश्त नहीं करेगा तो यह हिन्दुस्तान की माटी उसे भी बर्दाश्त नहीं करेगी।''[96] उपन्यासकार हिन्दुस्तान की मिट्टी को उदार चेता बताकर यह भी सिद्ध करता है कि जो इस मिट्टी के दर्शन को बर्दाश्त नहीं करता उसे यह मिट्टी भी बर्दाश्त नहीं करती है। सभी धर्मों का सार ग्रहण कर निष्कर्ष रूपी अमृत प्राप्त कर लेने में ही मानव जाति का मंगल है। सभी धर्मों के अवतार एक ही है। एक–दूसरे को श्रेष्ठ बताकर उसके लिए संघर्ष व्यर्थ है। सन्त प्राणनाथ ने कहा – ''अमीचन्द श्री कृष्ण ही बुद्ध है। ईसा है। पैगम्बर है। समय–समय पर हर देश में किसी न किसी रूप में अवतरित होते हैं। मानव और मानव के मध्य अन्तर करना अनुचित है, पाप है। इस सत्य को सबके ग्रन्थों से निकालकर सामने रखना है। मानव मात्र के कल्यण के लिए करना है। .... अमीचन्द ने कहा कि सबके ग्रन्थों के आधार पर .... सागर मंथन से अमृत पा लेना आवश्यक है। इसी से कट्टरता संकीर्णता, विद्वेष का अन्त हो सकता है।''[97] इसी युग सत्य को प्रतिष्ठित किया गया है।

(4) कथ्य एवं शिल्प – विवेच्य उपन्यासों में उदार चेता दाराशिकोह के त्रासदीपूर्ण पराभव एवं धर्मान्ध शक्तियों की विजय के बावजूद दारा की उदार चेतना के जीवित रहने का भाव व्यक्त किया गया है। लिखा है – '' 'दाराशुकोह' अपनों के ही छद्म का शिकार हुआ और दुखद अवसान के बावजूद धर्मों की मूल्यबोधी दृष्टि से सदैव सम्पन्न रहा। हालांकि इस दृष्टि को समय का धुँआ आच्छादित करता रहा लेकिन उपन्यासकार ने इस धुन्ध को छाँटने का निरन्तर प्रयत्न किया है और शहजादा दाराशुकोह का चेहरा साफ दिखाई देने लगता है।''[98] मेवाराम ने दाराशुकोह में इस्लामी सियासत की प्रवृत्तियों को दर्शाते हुए स्पष्ट किया है कि मुल्लाओं की कट्टर, संकीर्ण, धर्म आधारित सोच दारा के प्रति विद्वेष रखती है। औरंगजेब को इससे बल मिलता है। मियाँ मीर, मुल्लाशाह बदख्शी, सरमद एवं जगन्नाथ से दारा को

अद्वैत चिन्तन का विमर्श मिलता है। दारा सभी धर्मों का निष्कर्ष निकालकर समधर्मी भाव व्यक्त करना चाहता है। दारा का पराभव संकीर्ण विचारधारा की विजय है, परन्तु वास्तव में जनमानस में दारा के पराभव की प्रतिक्रिया भी है। वे दारा के चिन्तन को ग्रहण करते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप धर्मान्ध शक्ति का केन्द्र औरंगजेब शासन तो कर जाता है पर शान्त नहीं रह सकता है और उसके बाद पराभव प्रारम्भ हो जाता है। उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है कि दारा ने जो हृदयों में जगह बनाई है, वह इस्लामी बादशाहत से कहीं ऊँची है। दारा और सरमद के विचारों में देखा जा सकता है। शहजादा दाराशुकोह ख्याजासरा बसन्त से कहता है – ''इस नाटक में वेदों, उपनिषदों, भगवतगीता और दूसरी इल्मी किताबों के जरिए अलग–अलग लालच, हवस और लोभ से छुटकारा पाने का रास्ता दिखाया गया है। इन्सान को जब इन बुरी बातों से छुटकारा मिल जाता है तो उसे इल्म हासिल हो जाता है और जब इल्म हासिल हो जाता है तो इन्सान दुनियादारी को भूल जाता है। दुनियादारी का त्याग कर देता है। ऐसे हालात में इन्सान को अल्लाह नजर आने लगता है। बसन्त जिन्दगी का असली मजा तो अल्लाह की लौ में है। ..... सूफी सरमद कहता है – हिन्दुस्तान की बादशाहत मुस्तकिल नहीं है। न जाने कितने राजे–महाराजे और बादशाह हिन्दुस्तान की गद्दी पर बैठेंगे लेकिन शहजादे दाराशुकोह को खुदा ने ऐसी बादशाहत दी है, जिसका मुकाबला हिन्दुस्तान का ताजो–तख्त नहीं कर सकता। जनाब, शहजादा दाराशुकोह तो तख्त–ए–सुलेमानी पा चुका है।''[99] दाराशिकोह ने आत्मिक उन्नति का मार्ग खोज लिया था। उसका चिंतन उसकी अपनी मान्यताओं, रूचियों एवं आध्यात्मिक प्रभावों का परिणाम था। यह चिंतन चाहे प्रचारित–प्रसारित न हुआ हो, पर आज के जीवन को उस काल से जोड़कर एक ऐसा चिंतन देता है जो हर काल के लिए उपयोगी एवं सार्थक लगता है। यही चिंतन उपन्यासकार व्यक्त करना चाहते हैं। अरविन्द कुमार ने अपने एक लेख में लिखा है कि – ''उपन्यासकार ने दारा पर पड़े वैचारिक प्रभावों और उसकी निजी मान्यताओं का विशद चित्र खींचा है। यही उपन्यास का मुख्य कथ्य है। दारा सूफियों के कादिरी सम्प्रदाय को मानने वाला है। उस पर मियाँ मीर का गहरा असर है। अपनी चौथी किताब मज्मुअ–उल–बहरीन के बारे में दारा शाहजहाँ को बताता है कि मैं इस किताब में हिन्दू और मुसलमान मजहब को एक तराजू में तौलकर हिन्दुस्तान के तमाम अवाम की आँखें खोलना चाहता हूँ। हिन्दू और मुसलमान मजहब तकरीबन एक ही हैं। ईश्वर और अल्लाह के वास्ते इन मजहबों की किताबों में जो दिखाया गया है उसमें बहुत समानता है।''[100]

दारा के माध्यम से हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करना एवं धार्मिक ग्रन्थों में व्यक्त समानतावादी विचारों को सामने लाकर एकत्व की भावना को प्रतिष्ठित करना ही उपन्यासकार का इष्ट है। दाराशुकोह वर्णनात्मक एवं संवादात्मक शैली में लिखा गया रोचक उपन्यास है। इसमें वस्तु वर्णनों की अधिकता है। गढ़ों, किलों, नगरों, स्थानों एवं व्यक्तियों का परिचय पूर्ण विस्तार से दिया गया है। कथानक पूर्ण प्रवाह के साथ गतिशील होते हुए भी सुगठित है।

घटनाओं में सुसम्बद्धता बनी हुई है। भावों एवं पात्रों के अनुकूल सशक्त भाषा एवं रोचक संवाद इसकी विशिष्टता है। परिवेश चित्रण में पूर्ण सफलता मिली है। पात्रों को प्रवृत्तियों के अनुसार दर्शाकर वर्ग एवं प्रवृत्ति का प्रतिनिधि दर्शाया गया है। अनुभूति की संवेदना से युक्त पात्र अपने–अपने चरित्र के साथ पूर्ण न्याय करते हैं। ऐतिहासिकता अक्षुण्ण है और उपन्यासकार का कथ्य सम्प्रेषित करने में भी सक्षम है। प्रकाशकीय वक्तव्य में व्यक्त है – ''शिल्प पक्ष पर गहरी पकड़ उपन्यासकार की विशिष्ट उपलब्धि है। प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा है – ''उपन्यास दारशुकोह एक तरफ ऐतिहासिक उपन्यासों में अपेक्षित अध्ययन एवं शोध की कठिन कसौटी पर खरा उतरा है, तो दूसरी तरफ उसकी मौलिकता का सबसे बड़ा प्रमाण इसकी सुसम्बद्धता और रोचक शैली है। उपन्यास की मूल शक्ति उसका संवाद और वातावरण है। भाषा इसकी पहली शर्त है। लेखक ने काल और कथा के अनुरूप जो भाषा विकसित की है, वह इस उपन्यास की उपलब्धि है।''[101] 'दारा शुकोह' उपन्यास कथ्य एवं शिल्प कि दृष्टि से कुशल संयोजन का अनुपम उदाहरण है। विशाल फलक पर अवस्थित उपन्यास का सुगठन एक चुनौती होता है। मेवाराम इसमें सफल हुए हैं।

लक्ष्मीनारायण नंदवाना रचित 'प्रीत पसारे पंख' प्रेमी जीवन की संघर्ष कथा है। पंडित जगन्नाथ को लवंगी से प्रेम करने के कारण सम्पूर्ण जीवन विरोध सहना पड़ता है और वे साहस के साथ सामना करते हैं। शिवकिशोर सनाढ्य ने लिखा है कि – ''संघर्षशील व्यक्ति के लिए पराजय शब्द व्यर्थ है। जगन्नाथ का जीवन दर्शन है – मनुष्य पराजय के लिए नहीं बना है। वह बर्बाद हो सकता है लेकिन पराजित नहीं।''[102] प्रेम और नारी सम्मान को पंडित जगन्नाथ ने जीवन का महत्वपूर्ण सार माना और इसी के लिए संघर्ष भोगा। निराश नहीं हुए। पंडित जगन्नाथ के माध्यम से उपन्यासकार ने दर्शाया है कि आत्मविश्वास, आत्मज्ञान और संकल्प पवित्र प्रेम की महत्वपूर्ण देन है। पवित्र प्रेम आत्मज्ञान देता है। आत्मज्ञान युक्त प्रेम कभी पराजित नहीं होता। कहलवाया है – ''तुम्हारा अपराजेय आत्मविश्वास तुम्हारे जीवन की गति को सुधारेगा। तुम्हारा आत्मज्ञान अभेद्य रहेगा। तुम्हारा दृढ़ संकल्प तुम्हें कभी पराजित न होने देगा।''[103] उपन्यासकार यह भी कहना चाहता है कि परमात्मा ही सर्वस्व है। वही जीवन का प्रणेता है। उसी की इच्छा मानकर जीवन को साहस, संकल्प, विश्वास के साथ जीना चाहिए। इस दार्शनिक मत की प्रतिष्ठा भी उपन्यासकार का अभीष्ट है। ''गंगा की लहरों में छहराता सा वाणी का निनाद कर्ण कुहरों में प्रवेश कर आत्मा को तृप्त करता सा लगा। यह जीवन नाट्यशाला है। यहाँ प्रतिपल खेल चलता रहता है, यहाँ की गतिविधियों को देखकर चकित मत हो। दुखी और चिंतित होना भी उचित नहीं। कर्ता, भोक्ता, संहर्ता सब कुछ परमपिता परमात्मा ही है। आत्मज्! तुझे केवल निमित्त बनना है। सीमाओं का ध्यान रखना है। समय तेरा ध्यान रखेगा।''[104] प्रेम की उच्चता को प्रतिष्ठा प्रदान करते हुए स्पष्ट किया है कि प्रेम जाति, समाज, धर्म सबसे उच्च स्थान पर आसीन है। पंडितराज सोचते थे – ''प्यार का सम्बन्ध जाति–पांति से नहीं होता, न धर्म की अपेक्षा है, प्यार को। हृदय, प्राण और आत्मा से

सम्बन्ध है प्यार का। प्यार शाश्वत है, शुद्ध है, सत्य है, पवित्र है। दो हृदयों को एक करने वाला यह तत्व अजर–अमर है। .... प्यार क्या किसी प्रकार की सीमाओं को मान्यता देता है? बाधाओं के कारण क्या प्यार करने वाले अपनी गति को रूकने देते हैं। प्यार करने वाले न धर्म की चिंता करते हैं, न समाज की।''[105] 'प्रीत पसारे पंख' उपन्यास का मूल कथ्य प्रेम की उच्चता और जीवन संघर्ष को जीवन दर्शन की तरह स्थापित करना ही है। शिल्प कौशल भी अभिव्यक्ति में सक्षम है।

शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' उपन्यास में भी धर्मान्ध कट्टर शासकीय व्यवस्था के दहशतपूर्ण वातावरण को दर्शाकर अद्वैतवादी समरस चिंतन की स्थापना की गई है। उपन्यासकार उदार चेतना के पराभव और उससे उत्पन्न विवशता को व्यक्त कर दर्शाता है कि दहशतपूर्ण सियासत में सम्पूर्ण जनजीवन भयग्रस्त रहता है और स्वयं दहशत फैलाती धर्मान्ध शक्तियाँ भी भयग्रस्त रहती हैं। हृदय की संवेदनाओं को आहत किया जाता है तो अन्त में ऐसी शक्तियाँ पतन की ओर अग्रसर हो जाती हैं। राष्ट्रवादी विचारधारा के साथ एकात्म समरस भाव की स्थापना उपन्यासकार का अभीष्ट है। धर्म की सही व्याख्या करते हुए मानव जीवन के कल्याणकारी भावों की अभिव्यक्ति की गई है। धर्मान्ध सियासत में गैर ही नहीं अपने भी पीड़ा भोगते हैं। धर्म, संस्कृति, राजधर्म, समाज, राष्ट्र, साहित्य, व्यक्ति सबका दमन होने लगता है। उपन्यासकार कहना चाहते हैं कि जिस धर्म के लिए इतना दमनचक्र चलाया जाता है, उसका असली उद्देश्य तो मानवहित है। फकीर सरमद बोले – ''मजहब तो खुदा तक पहुँचाने का रास्ता बताता है। इस दुनिया में जीने का सही ढंग समझाता है। लेकिन मजहबी सियासत तो तख्तोताज का गलत रास्ता बता देती है। ...... सच यही है कि धर्म आदमी को इन्सान बनाता है। राजाओं और शाहों को मानव कल्याण की याद दिलाता है। पर यहाँ तो मजहब सियासत है और सियासत ही मजहब।''[106] धर्म का असली लक्ष्य राजधर्म, समाजधर्म, मानव धर्म सिखाना है। दारा उपनिषद् और कुरान के मध्य में स्थित एकत्व को सामने रखकर ईश्वर और अल्लाह को एक रूप में अभिव्यक्त करना चाहता है। उपन्यासकार ने कहना चाहा है कि सियासत कितनी ही शक्तिशाली हो जाए ज्ञान की चेतना को समाप्त नहीं कर सकती। दारा ने कहा – ''जिन्दगी उसके हाथों में है जिसने जिन्दगी सौंपी है। वह सब जगह है। उपनिषद् में बताया है कि वह हर बशर और बुत में हैं। हर बुत या बशर में जिन्दगी है और कुफ्र यानी अविश्वास में विश्वास यानी ईमान है। .... खुदगर्ज की सियासत के जुल्मों सितम से इल्म और ज्ञान खत्म नहीं होते।''[107] विश्वास और ईमान हर पत्थर में मौजूद है। आस्था ही प्रबल है। सहज, संयत शैली, भाषा की व्यंजनात्मक क्षमता, संवेदनशील भाषिक संरचना एवं सशक्त पात्र योजना और परिवेश की जीवन्तता ने इस उपन्यास को नवीन मौलिकता प्रदान की है।

(5) भविष्योन्मुखी आधुनिक सन्दर्भ – ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाओं या पात्रों के माध्यम से यदि संभव हो तो ठीक अन्यथा काल्पनिक प्रसंगों के माध्यम से उपन्यासकार इतिहास को वर्तमान संदर्भों से जोड़ता है और भविष्य के लिए भी मार्ग प्रशस्त करता है। 'दाराशुकोह' उपन्यास में व्यक्त धर्म की मठाधीश एवं कठमुल्ला प्रवृत्ति का रूप किसी न किसी रूप में आज भी कायम है। आधुनिक सन्दर्भ की महत्ता सिद्ध करते हुए 'दाराशुकोह' के प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा है कि – ''यह उपन्यास इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि वर्तमान सन्दर्भों में धर्म पर जिस तरह कठमुल्लापन हावी है और जिसके प्रतिकार की प्रश्नाकुलता जनमानस में देखी जा रही है। इस उपन्यास में उसका हल तलाशने की भरपूर कोशिश की गई है।''[108] सियासत जाति और धर्म को जिन्दा रखती है। एक धर्म से जुड़े रहकर दूसरे धर्म का पराभव करने की नीति अपनाए रखकर शासन पर पकड़ बनाए रखती है। औरंगजेब इस्लामी धर्म के समर्थक मुल्लाओं को प्रसन्न रखकर धर्मरक्षक के रूप में मुल्लाओं का समर्थन पा जाता है। दाराशिकोह शाहजहाँ के समझाने पर भी ऐसा नहीं कर पाता है। आज भी धर्म का छद्‌म रूप पूरी तरह से राजनीति का अंग बना हुआ है। एक धर्म का झूठा समर्थन और दूसरे का उपहास स्वतन्त्र भारत की सच्चाई है। जेहाद के नाम पर आतंकवाद वैश्विक समस्या बनी हुई है जिसका जानबूझकर निदान नहीं किया जाता है। 'दाराशुकोह' उपन्यास आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिक होकर भविष्य के लिए भी संकेत देता है। 'प्रीत पसारे पंख' में व्यक्त प्रेमी जीवन का संघर्ष एवं धर्म आधारित व्यवस्था आधुनिक सन्दर्भ से जोड़ता वक्तव्य एक व्यक्ति की बातों में व्यक्त हुआ है। वह कहता है – ''काशी में सीढ़िया भी बहुत है। सीढ़ियों पर चढ़कर स्वर्ग तक पहुँचा जा सकता है। काशी के लोग सीढ़ियों पर चढ़ते कम और उतरते अधिक है। इन सीढ़ियों का यथार्थ जो जान लेता है, वह काशी में आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों दृष्टियों से उन्नति करता है। काशी में संन्यासी तीन लोक से न्यारे हैं। साधना, तपस्या, आराधना के अतिरेक में लीन रहने वाले संन्यासी स्वयं का जीवन तो धन्य करते ही हैं, दूसरों को भी सच्चा मार्ग दर्शन देकर जीवन धन्य करना सिखाते है। कुछ सन्यासी किसी न किसी प्रकार नशे में धुत रहते हैं ऐसी अनर्गल बातें कहते हैं जो लोगों की समझ में न आए। वे स्वयं तो पाप के गर्त में गिरते ही हैं, दूसरों को भी अपने साथ पाप के गर्त में ले जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों से सावधान रहना चाहिए।''[109] काशी के ब्राह्मणों में व्याप्त रूढ़िगत संस्कार एवं जातिगत संकीर्णता का साफ चेहरा दिखाकर उपन्यासकार ने अन्तर्जातीय सम्बन्धों के प्रति नजरिया साफ कर दिया है साथ ही दर्शाया है कि धर्माधीश बने हुए लोग देश समाज व व्यक्ति स्वतन्त्रता व भावनाओं के द्वेषी होते है। प्रेम जो शाश्वत है, अमर है, असीम संवेदनाओं से भरपूर है, को तंग नजरिए से देखने की प्रवृत्ति आज भी समाज में व्याप्त है। गंगा में जगन्नाथ का विसर्जन सिद्ध करता है कि प्रेम पावन, निर्मल व पवित्र

होता है। प्रेम संघर्ष भोगता है। प्रेम में विसर्जित होना पड़ता है। परन्तु पवित्र है, पवित्र रहेगा, यही तथ्य दर्शाकर उपन्यासकार ने आधुनिक विचारधारा के साथ तालमेल स्थापित किया है। शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में बाहर से आए समुदाय को देश की मिट्टी से जुड़ने की सलाह देते हुए दारा ने कहा – हिन्दुस्तान में रहकर हिन्दुस्तान की कुदरत, तहजीब, फलसफा और अदब को नहीं जानें, नहीं समझें, फिर इस मुल्क में बसने का क्या मतलब हुआ। ...... मुगल गैर मुल्क से आए हैं। हमलावर के रूप में आए हैं। ..... एक सदी के बाद भी इस देश की मिट्टी, इसकी सभ्यता–संस्कृति और इसके बेटों के साथ प्यार नहीं बाँट सके तो बेचैनी और तनाव की हालत तो रहेगी।''[110] जो व्यक्ति जिस मिट्टी में पलकर बड़ा होता है और हवा, पानी व वातावरण जिसकी रगों में समाया हुआ है, वह जाति या धर्म के नाम पर दूसरे देश का हित चाहे और अपने देश का अहित करने पर उतारू रहे, तो इसे धर्म कैसे कहा जा सकता है। इस विचार के साथ मिलकर कैसे रहा जा सकता है। यह प्रश्न औरंगजेब काल में जितना ज्वलंत था, आज भी उतना ही ज्वलंत है। 'भारत–माता' की जय बोलने या राम को राम मानने में आज भी बहुत से उन सुखी, समृद्ध और उन्नत लोगों को परहेज है जिन्होंने इस देश से ही सब कुछ पाया है। राजनीतिक वर्चस्व बनाए रखने के निमित्त ऐसा छद्म व्यवहार आज भी है। उपन्यासकार ने इसी मनोवृत्ति को बदलकर देश की मिट्टी से जुड़ने की भावना अपनाने की चिन्तना व्यक्त की है। यह वर्तमान की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। आधुनिक संदर्भों में प्रासंगिक और भविष्य के लिए प्रगतिशील उज्ज्वल मार्ग का अवलोकन करवाया गया है। उपन्यास इसी सन्दर्भ में प्रासंगिक बन जाता है।

निष्कर्षतः विवेच्य उपन्यास मुगलकालीन धर्मान्ध सियासत के दुष्परिणामों को अभिव्यक्त कर आधुनिक जीवन को उन प्रवृत्तियों से बचाने की चेतना प्रदान करते हैं जो धर्म निरपेक्षता या पंथ निरपेक्षता के नाम पर रूढ़ स्वरूप धारण कर रही है एवं आज भी जेहाद या आतंकवाद के रूप में राष्ट्र, समाज एवं जनजीवन का अहित कर रही है। 'दाराशुकोह' उपन्यास क्रूर सियासत से मानवीय संवेदना की यात्रा है। 'प्रीत पसारे पंख' प्रेम की यात्रा है। जीवन संघर्ष के साथ प्रेम की पवित्रता को बचाने के संघर्ष की यात्रा है। 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' दहशतपूर्ण वातावरण में पनपती उदार चेतना और अन्ततः दहशत के उतरते खुमार की यथार्थ यात्रा है। दहशत की घुटन से प्रारम्भ होकर दहशत को चुनौती देती हुई यात्रा है, 'दहशत का दंश' उपन्यास की।

निष्कर्षतः विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने वामपंथी विचारधारा के अनुकूल इतिहास की व्याख्या प्रस्तुत की है। सामान्य जन को उच्च वर्ग पर व्यंग्य कसते हुए दर्शाकर इसी दृष्टिकोण को पुष्ट किया है। शरद पगारे ने इतिहास की प्रेमकथाओं को विषय बनाकर व्यक्तिवादी दृष्टि या रोमांस प्रवृत्ति के अनुसार इतिहास को व्याख्यायित किया है। मनमोहन सहगल ने अतीत की दुर्बलताओं का चित्रांकन भी किया है और नारी जीवन की विडम्बना को विशेष रूप से

चित्रित किया है। सामाजिकता की स्थापना का भाव जरूर मिलता है। इतिहास की मर्मव्यथा के माध्यम से नियति की प्रबलता दर्शाना और अतीत की कमियों को उजागर करना और राष्ट्र धर्म का संकेत देना मनमोहन सहगल का लक्ष्य रहा है। भगवती शरण मिश्र भी पौराणिक आख्यानों को नवीन रूप में व्यक्त करते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों को सामाजिक उपन्यासों की तरह परोसते हैं। राष्ट्रवाद के साथ आध्यात्मिकता प्रभावी है। राजेन्द्र मोहन भटनागर की दृष्टि भी कहीं–कहीं नारी चेतना युक्त होकर नारी विमर्श के निकट चली जाती है। इन्होंने राष्ट्रीय गौरव का भाव संतुलन के साथ स्थापित करने का प्रयास किया है। मेवाराम ने इतिहास के कुहरे को छाँटकर इतिहास को सच के रूप में मानवीयता की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। लक्ष्मीनारायण नंदवाना ने प्रेम और जीवन संघर्ष को व्यक्त किया है। शत्रुघ्न प्रसाद राष्ट्रवाद को प्रगतिशील चिन्तन के साथ ऐतिहासिक यथार्थ की तरह मूर्तिमंत करते हैं। यें प्रगतिशील भारतीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वाले राष्ट्रवादी उपन्यासकार हैं।

संदर्भ सूची

1. मधुमती – नवम्बर – 2000, पेज – 17
2. हमारा दृष्टिकोण – शत्रुघ्न प्रसाद कृतित्व विशेषांक – 2004, पेज – 7
3. जोगी मत जा – विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, भूमिका, पेज – 4
4. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद – अपनी बात, पेज – 5,6
5. जोगी मत जा – विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, पेज – 97
6. जोगी मत जा – विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, पेज – 96
7. जोगी मत जा – विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, पेज – 92,93
8. जोगी मत जा – विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, पेज – 214
9. जोगी मत जा – विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, पेज – 29
10. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद – अपनी बात, पेज – 6
11. जोगी मत जा – विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, भूमिका, पेज – 1,2,3
12. मधुमती – नवम्बर 2000, पेज – 16,17
13. उमा वाजपेयी – अप्रकाशित आलेख, पेज – 12
14. विश्वबाहु परशुराम – विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, पुरोवाक्
15. जोगी मत जा – विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, भूमिका, पेज – 10
16. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद – अपनी बात, पेज – 5
17. समावर्तन – अगस्त 2015, पेज – 15
18. समावर्तन – अगस्त 2015, पेज – 25
19. समावर्तन – अगस्त 2015, पेज – 25,26
20. गंधर्वसेन – शरद पगारे, भूमिका
21. शत्रुघ्न प्रसाद की अरूण भगत से बातचीत – अप्रकाशित साक्षात्कार
22. शत्रुघ्न प्रसाद की अरूण भगत से बातचीत – अप्रकाशित साक्षात्कार
23. शत्रुघ्न प्रसाद की उपेन्द्र नाथ के साथ बातचीत – अप्रकाशित साक्षात्कार
24. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद – पेज – 38,39
25. गंधर्वसेन – शरद पगारे – पेज – 180,183,198,325
26. समावर्तन – अगस्त–2015, पेज – 15
27. समावर्तन – अगस्त–2015, पेज – 25
28. समावर्तन – अगस्त–2015, पेज – 22
29. मधुमती – सितम्बर–1991, पेज – 24
30. ज्ञानदीप की शत्रुघ्न प्रसाद से बातचीत – अप्रकाशित साक्षात्कार – पेज – 45
31. मधुमती – सितम्बर–1991, पेज – 26,27,30

32. समावर्तन – अगस्त–2015, पेज – 26
33. दैनिक भास्कर – अभिव्यक्ति, 27 अगस्त 2019
34. काला सच – मनमोहन सहगल, पेज – 11
35. घटता–बढ़ता चाँद – मनमोहन सहगल, पेज – 129
36. काला सच – मनमोहन सहगल, पेज – 75,76
37. धटता–बढ़ता चाँद – मनमोहन सहगल, पेज – 151,152
38. हमारा दृष्टिकोण – मधुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ –
शत्रुघ्न प्रसाद विशेषांक–2004, पेज – 24
39. पंजाब सौरभ – मनमोहन सहगल विशेषांक – 1984
40. पंजाब सौरभ – मनमोहन सहगल विशेषांक – 1984
41. काला सच – मनमोहन सहगल, पेज – 145ब
42. तुंगभद्रा पर सूर्योदय – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 302
43. पंजाब सौरभ – मनमोहन सहगल विशेषांक – 1984
44. हमारा दृष्टिकोण – मधुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ –
शत्रुघ्न प्रसाद विशेषांक–2004, पेज – 20,21,22
45. पंजाब सौरभ – मनमोहन सहगल विशेषांक – 1984
46. पंजाब सौरभ – मनमोहन सहगल विशेषांक – 1984
47. हमारा दृष्टिकोण – मधुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ –
शत्रुघ्न प्रसाद विशेषांक–2004, पेज – 24,22
48. देख कबीरा रोया – भगवतीशरण मिश्र – प्रस्तावना
49. सुनो भाई साधो – शत्रुघ्न प्रसाद – भूमिका
50. सुनो भाई साधो – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 3,111,155,159,205,232,250,277
51. देख कबीरा रोया – भगवती शरण मिश्र, पेज – 23,25,129,61,203,229,246
52. हमारा दृष्टिकोण – मधुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ –
डॉ भगवती शरण मिश्र का कथा साहित्य–2006, आवरण पृष्ठ – 3
53. हमारा दृष्टिकोण – मधुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ –
डॉ भगवतीशरण मिश्र का कथा साहित्य–2006, आवरण पृष्ठ – 1
54. देख कबीरा रोया – भगवती शरण मिश्र – प्रस्तावना
55. हमारा दृष्टिकोण – मधुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ –
शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व विशेषांक 2004, पेज – 17
56. मगबन्धु सुधांशु शेखर मिश्र – भगवती शरण मिश्र विशेषांक–2015, पेज – 18
57. हमारा दृष्टिकोण – मधुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ –
शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व विशेषांक, पेज – 16

58. सुनो भाई साधो – शत्रुघ्न प्रसाद भूमिका
59. वागर्थ – कबीर विशेषांक – मार्च–अप्रैल 2000, पेज – 182
60. हमारा दृष्टिकोण – मधुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ –
शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व विशेषांक–2004, पेज – 18
61. देख कबीरा रोया – भगवतीशरण मिश्र, पेज – 12,13,17
62. हमारा दृष्टिकोण 2006 डॉ भगवतीशरण मिश्र का कथा साहित्य विशेषांक
– पेज आवरण पृष्ठ – 3
63. नीले घोड़े का सवार – राजेन्द्र मोहन भटनागर – भूमिका
64. नीले घोड़े का सवार – राजेन्द्र मोहन भटनागर – भूमिका
65. महात्मा – राजेन्द्र मोहन भटनागर – अनुषंग – 2,3
66. महात्मा – राजेन्द्र मोहन भटनागर – अनुषंग – 148
67. नीले घोड़े का सवार – राजेन्द्र मोहन भटनागर, पेज – 25,200,219,227,235,343
68. एक अन्तहीन युद्ध – राजेन्द्र मोहन भटनागर, पेज – 166,111
69. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 209,87,76
70. मणिकांत ठाकुर के साथ शत्रुघ्न प्रसाद की बातचीत – अप्रकाशित साक्षात्कार
71. अरूण भगत के साथ बातचीत – अप्रकाशित साक्षात्कार
72. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, अक्टूबर–दिसम्बर–2015, पेज – 60
73. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, मई–जुलाई–2015, पेज – 13
74. राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति – 2006, भगवती लाल व्यास,
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, पेज – 9
75. राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति – 2006, भगवती लाल व्यास,
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, पेज – 9
76. राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति – 2006, भगवती लाल व्यास,
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, पेज – 10
77. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, अक्टूबर–दिसम्बर–2014, पेज – 63
78. महात्मा – राजेन्द्रमोहन भटनागर, पेज – 163
79. एक अन्तहीन युद्ध – राजेन्द्रमोहन भटनागर, पेज – 53
80. नीले घोड़े का सवार – राजेन्द्रमोहन भटनागर, पेज – 292
81. नीले घोड़े का सवार – राजेन्द्रमोहन भटनागर – भूमिका
82. ज्ञानदीप द्वारा शत्रुघ्न प्रसाद का अप्रकाशित साक्षात्कार
83. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, मई–जुलाई–2015, पेज – 14
84. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, फरवरी–अप्रैल–2017, पेज – 59
85. दाराशुकोह – मेवाराम, पेज – 10,11,12

86. कृति ओर – रमाकान्त शर्मा, अप्रैल–जून–2011, पेज – 28
87. प्रीत पसारे पंख – लक्ष्मीनारायण नंदवाना – पूर्व कथन
88. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद – अगस्त–अक्टुबर–2016, पेज – 52
89. दाराशुकोह – मेवाराम, पेज – 27
90. दाराशुकोह – मेवाराम, पेज – 867
91. दाराशुकोह – मेवाराम, पेज – 295
92. कृति ओर – रमाकान्त शर्मा, अप्रैल–जून–2011, पेज – 30
93. प्रीत पसारे पंख – लक्ष्मीनारायण नन्दवाना, पेज – 24
94. प्रीत पसारे पंख – लक्ष्मीनारायण नन्दवाना, पेज – 64
95. प्रीत पसारे पंख – लक्ष्मीनारायण नन्दवाना, पेज – 47,48
96. शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 35
97. शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 36
98. दाराशुकोह – मेवाराम – प्रकाशकीय
99. दाराशुकोह – मेवाराम – प्रकाशकीय
100. कृति ओर – रमाकान्त शर्मा, अप्रैल–जून–2011, पेज – 33,34
101. दाराशुकोह – मेवाराम – प्रकाशकीय
102. प्रीत पसारे पंख – लक्ष्मीनारायण नन्दवाना – प्रकाशकीय
103. प्रीत पसारे पंख – लक्ष्मीनारायण नन्दवाना, पेज – 77
104. प्रीत पसारे पंख – लक्ष्मीनारायण नन्दवाना, पेज – 77
105. प्रीत पसारे पंख – लक्ष्मीनारायण नन्दवाना, पेज –36,39
106. शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 6
107. शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 13
108. दाराशुकोह – मेवाराम – प्रकाशकीय
109. प्रीत पसारे पंख – लक्ष्मीनारायण नन्दवाना, पेज – 76
110. शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 14,26

सप्तम अध्याय

शत्रुघ्न प्रसाद का ऐतिहासिक उपन्यासों में योगदान

सप्तम् अध्याय
शत्रुघ्न प्रसाद का ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास में योगदान

किसी भी साहित्यकार का कृतित्व उस क्षेत्र को समृद्ध करता है जिस क्षेत्र में वह सृजन करता है। यह उस क्षेत्र के विकास में योगदान माना जाता है। शत्रुघ्न प्रसाद एक ऐसे साहित्यकार हैं। जिन्होंने साहित्यिक समृद्धि में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। यह योगदान केवल संख्या के स्तर पर मूल्यांकित नहीं किया जाता है। उसकी रचनाओं ने समाज में वैचारिक परिष्कार के निमित्त एवं समाज को अधिक मानवीय बनाने की दृष्टि से क्या दिया है, इस आधार पर उसका मूल्य व महत्व स्थिर होता है। शत्रुघ्न प्रसाद ने अनेक साहित्यिक विधाओं में सृजन करने के साथ ऐतिहासिक उपन्यासों में विशेष उपलब्धि हासिल की है। इन रचनाओं के माध्यम से समाज को नई दृष्टि, नई जीवन गति एवं अतीत को भविष्य से जोड़ने का विधान स्थिर किया है। युग की आवश्यकतानुसार युग धर्म का संकेत भी दिया है। विवेच्य अध्याय में इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर शत्रुघ्न प्रसाद के साहित्यिक अवदान को विश्लेषित किया जा रहा है।

7.1 ऐतिहासिक साहित्य की वृद्धि :–

उपन्यास एक समृद्ध विधा है परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना अंगुलिगण्य ही है। ऐसे में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना का महत्व बढ़ जाता है और भी महत्वपूर्ण उपलब्धि इस बात में है कि आलोचकों द्वारा उपेक्षित समझी जाने के बावजूद सृजन हो रहा है। शत्रुघ्न प्रसाद का ऐतिहासिक उपन्यासों की समृद्धि में यही महत्वपूर्ण योगदान है कि मुख्यधारा से इतर अपनी राष्ट्रवादी तपस्या में तपते हुए भारतीय अतीत के अनेक कालखण्डों का यथार्थ चित्रण करते हुए अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। यद्यपि शत्रुघ्न प्रसाद ने अन्य विधाओं में भी लेखनी चलाई है, परन्तु उनका लेखकीय कौशल ऐतिहासिक उपन्यासों में ही अभिव्यक्त हुआ है। लेखक ने 'लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक' समीक्षा ग्रन्थ, 'अनास्था के आस–पास' काव्य संग्रह, 'अनथके चरण' कहानी संग्रह, 'देशभक्त संन्यासी विवेकानन्द' जीवनी एवं 'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में काल चेतना और संस्कृति' समीक्षा ग्रन्थ के माध्यम से अनेक विधाओं को योगदान दिया है। इनके लेखन से हिन्दी साहित्य ही समृद्ध हुआ है परन्तु ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य को महत्वपूर्ण अवदान प्रदान किया है। आपने नौ प्रकाशित ऐतिहासिक उपन्यासों और तीन अप्रकाशित उपन्यासों के द्वारा ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य को समृद्ध करने में महनीय भूमिका निभाई है। सौ–सवा सौ वर्ष में जब किसी साहित्यिक विधा में सैकड़ों रचनाएँ ही रची गई हों तो उपर्युक्त संख्या का भी योग अत्यन्त महत्व रखता है। 'सिद्धियों के खण्डहर' उपन्यास की समीक्षा करते हुए श्री रंजन सूरिदेव ने इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए लिखा है कि – ''हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना–परम्परा का विशिष्ट मूल्य है, यद्यपि इस विधा के उपन्यासों के लेखक अंगुलिगण्य

ही हैं। बहुमुखी रचना–प्रतिभा के धनी एवं समादृत प्राध्यापक डॉ शत्रुघ्न प्रसाद द्वारा लिखित यह ऐतिहासिक उपन्यास उक्त परम्परा की ही एक महनीय कड़ी के रूप में पांक्तेय है। कहना न होगा कि मनीषी उपन्यास लेखक ने इस कथाकृति में विभिन्न द्वन्द्वों से ग्रस्त ऐतिहासिक यथार्थ की ललित कथा की हृदयावर्जक अवतारणा कथाकोविदोचित ग्रंथनकुशलता के साथ की है।''[1]

ऐतिहासिक उपन्यास लेखन का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि यह अन्य उपन्यासों की तुलना में अधिक परिश्रम की माँग करता है। इतिहास का अध्ययन भी अपेक्षित है और इतिहास को उपन्यास के कलेवर में रचना पड़ता है। समीक्षक रमेश शर्मा ने 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास की समीक्षा करते हुए लिखा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यास लिखना आसान नहीं होता। इसमें बड़ा अध्ययन, श्रम और यथार्थपरक कल्पना शक्ति लगती है। ऐतिहासिक कथानक पर आधारित कृति कल्पना की कोरी उड़ान से सृजित नहीं हो सकती। इसके लिए लेखक को संबन्धित काल खण्ड की तात्कालिक परिस्थिति में डूबना पड़ता है। एक समकालीन पात्र की भाँति वक्त को जीना पड़ता है। उसकी कल्पनाओं में अनंत आकाश में स्वच्छंद विचरण नहीं, अतीत की ठोस धरती पर तथ्यों का अंकुश होता है। उसे यथार्थ के सुदृढ़ ढ़ांचे में ढ़ालना होता है।''[2] उपन्यासकार ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में भारतीय इतिहास के अनेक कालखण्डों को अतीत की ठोस धरती पर उतारा है। 'सरस्वती–सदानीरा' में वैदिक कालीन जीवन का आर्ष चिन्तन अभिव्यक्त हुआ है। 'शिप्रा साक्षी है' में ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी का जीवन्त चित्रण है। विक्रम संवत् के प्रणेता विक्रमादित्य का गौरवशाली उल्लेख किया गया है। 'सिद्धियों के खण्डहर' में बारहवीं सदी के मगध–उदन्तपुरी, नालन्दा आदि क्षेत्रों का यथार्थ चित्रण हुआ है। 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' में पानीपत के द्वितीय युद्ध के समय की घटनाएँ साक्षात् हुई है। सोलहवीं सदी के पूर्वार्द्ध का चित्रण हुआ है। 'सुनो भाई साधो' में कबीरकालीन जीवन के संघर्ष की गाथा है। पन्द्रहवीं सदी की मर्मान्तक व्यथा व्यक्त हुई है। चौदहवीं शताब्दी के दक्षिण भारत की मर्मव्यथा 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' उपन्यास में ग्रन्थित हुई है। हरिहर–बुक्का द्वारा विजयनगर की स्थापना को नया सूर्योदय कहा गया है। 'कश्मीर की बेटी' में चौदहवीं शताब्दी के कश्मीर की हृदय विदारक कथा कही गई है। 'अरावली का मुक्त शिखर' में सोलहवीं शताब्दी के संघर्ष को महाराणा प्रताप की स्वातंत्र्य चेतना के साथ अभिव्यक्त किया गया है। सत्रहवीं शताब्दी का मजहबी सियासत से आक्रान्त भारत 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में मूर्तिमंत हुआ है। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासों की समृद्धि केवल नौ उपन्यासों की संख्या बढ़ने से ही नहीं हुई है बल्कि भारतीय इतिहास के नौ कालखण्डों को नवीन चिंतन दृष्टि से परखने की दृष्टि से प्राप्त हुई है। यह महत्वपूर्ण योगदान है। आहों का उल्लास, श्रावस्ती का विजय पर्व और तख्ते–ताऊस की छाया में उपन्यास प्रकाशनाधीन हैं जो इतिहास के तीन और कालखण्डों को चित्रित करते हैं। इनके योगदान को रेखांकित करते हुए श्री रंजन सूरिदेव लिखते हैं कि – ''डॉ शत्रुघ्न प्रसाद के इस उपन्यास से

गद्य–साहित्य भी समृद्ध हुआ है। मानवीय मनोवेगों के चित्रण में अधीती लेखक ने अपनी मनोवैज्ञानिक प्रतिभा और प्रज्ञा का विस्मयकारी परिचय दिया है। इस कथाकृति की संरचना में वैचारिक उत्तेजना की भी अपनी गरिमा है। साथ ही, इसमें जो रागात्मक तत्व है, वह कामात्मकता की अपेक्षा सात्विक अनुभूति कराने में समर्थ है।''[3] शत्रुघ्न प्रसाद ने इतिहास को गरिमा प्रदान करने वाली सर्जना प्रदान कर ऐतिहासिक उपन्यासों के महत्व को बढ़ाने का सार्थक प्रयास किया है। इनके उपन्यास औपन्यासिक दृष्टि से सम्पन्न हैं। यह भी इनके महत्व एवं योगदान का विशिष्ट पहलु है।

7.2 द्रष्टा एवं स्रष्टा :–

साहित्यकार स्वभावगतः संवेदनशील एवं सूक्ष्म अन्वेषक होता है। वह समाज की वर्तमान स्थिति में दुर्बलताओं, विषमताओं, कमजोरियों को महसूसता है और परिष्कार करने की भावना के वशीभूत नव–सृजन का भाव रखता है। इसी मनोदशा को साहित्यकार का द्रष्टा एवं स्रष्टा व्यक्तित्व माना जाता है। रामविलास शर्मा का 'कवि–पुरोहित' एवं हरिवंशराय बच्चन का 'नीड़ का निर्माण फिर – फिर' का भाव साहित्यकार के द्रष्टा–स्रष्टा रूप को ही व्यक्त करता है। श्यामनन्दन किशोर ने अपने लेख में लिखा है कि – ''साहित्य का स्रष्टा त्रिकाल द्रष्टा होता है। उसकी सर्जना शक्ति त्रिमुखी होती है। साहित्य की विधा उतनी महत्वपूर्ण नहीं जितनी उसके भीतर से फूटने वाली दृष्टि होती है क्योंकि वही उसके स्रष्टा की साधना का परम फल होती है। जीवन–दर्शन का नवनीत वहीं होता है। चिन्तन और मनन का निष्कर्ष भी वही होता है। साहित्य को समाज से जोड़ने वाला सबसे महत्वपूर्ण तत्व वही दृष्टि है जो स्रष्टा की आत्मा का निचोड़ है – परमात्मा। इसीलिए मैं मानता हूँ कि जो साहित्यकार जितनी ऊँची दृष्टि रखता है, वह उतना ही बड़ा है। यह दृष्टि क्या है? जीवन और जगत को आर–पार सही अर्थों में देखने की शक्ति! जो प्रकाश रेखा अतीत का कुहासा साफ कर ले, तो वर्तमान के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को उसके शोभन–अशोभन, सुन्दर–असुन्दर को पूरे आयामों में परख ले और जो भविष्य के बनते–बिगड़ते अस्पष्ट चित्रों को सही रूप में देख ले, वही साहित्यकार की दृष्टि है। वह ऋषि है इस अर्थ में, क्योंकि वह अपनी दृष्टि की सृष्टि भी करता चलता है। देखे को लेखे से जोड़ता चलता है। आर्य साधना का स्वर्गीय पुष्प धरती पर पुष्पित करने वाला साहित्यकार ही होता है।''[4]

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में ऐसी ही दृष्टि एवं सृष्टि का निदर्शन मिलता है। उन्होंने अतीत कालीन समाज को सूक्ष्म दृष्टि से परखा है। उसका प्रक्षालन किया है। उसके अशोभन को हटाकर शोभन स्वरूप को प्रतिष्ठित किया है। नवीन स्वर्गीय पुष्पों से आच्छादित भविष्य के समाज की रूपरेखा प्रदान की है। ऐतिहासिक स्थितियों एवं चरित्रों के माध्यम से उन्होंने नवीन कल्पना के संसार की रचना यथार्थ की भूमि पर की है। वैदिककालीन विषमताओं में से वे याज्ञवल्क्य के माध्मय से समन्वयवादी समरस समाज का निर्माण करते हैं। जन्मना

व्यवस्था का विरोध कर कर्मणा व्यवस्था की सृष्टि का संदेश देते हैं। वैदिक आर्य जीवन पर इतिहासकारों, साहित्यकारों द्वारा जहाँ वाद आधारित विखण्डनवादी स्थापनाएँ की गई हैं, वहीं शत्रुघ्न प्रसाद समरसता एवं समन्वयवादी एकत्व की सृष्टि करते हैं। पूरे उपन्यास में कहीं भी विभेदकारी स्थितियाँ दिखाई नहीं पड़ती हैं। सम्पूर्ण उपन्यास ऐसे लगता है जैसे वैदिककालीन युग से ही भारतीय समाज समरसता लिए हुए चला आ रहा है। डॉ अमरनाथ सिन्हा ने 'अरावली का मुक्त शिखर' की समीक्षा करते हुए लिखा है कि – ''शत्रुघ्न जी अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से एक अभिनव दृष्टि विकसित करने को प्रयत्नशील है कि इतिहास सिर्फ 'हम कौन थे, क्या हो गए, क्या होंगे अभी' के लिए आधार सामग्री नहीं है और न ही वह कोई मनोरंजन–रोमांटिक इतिवृत भर है। वह वर्तमान से पलायन का माध्यम भी नहीं है और न ही वामपंथी इतिहासकारों द्वारा किये जा रहे तथाकथित सेकुलर निर्वचन या तोड़–मोड़ का साधन मात्र, इतिहास तो वर्तमान का आईना भी बन सकता है और व्याख्याता भी।''[5]

शत्रुघ्न प्रसाद जी की दृष्टि इतिहास के निर्माल्य को वर्तमान और भविष्य के लिए स्वर्गीय स्थापना की भावना लिए हुए है। उन्होंने आर्य–अनार्य भेद को कहीं नहीं उकेरा है। समरस समाज की ओर अग्रसर दिखाया है। धर्म जब अतिवादी तांत्रिक शक्तियों पर अन्धआस्था रखते हुए पाखण्डों का सहारा लेने लगे, चाहे धर्मान्ध कट्टरता लेकर समाज को दहशत का जीवन जीने पर विवश करने लगे, दोनों ही स्थितियों में अशुभ है। धर्म तो मानव समाज को शिवम् का भाव देने के लिए है। मानव समाज में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की स्थापना ही धर्म का लक्ष्य है। सिद्धियों के खण्डहर, तुंगभद्रा पर सूर्योदय, सुनो भाई साधो एवं शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश में कुमार महेन्द्र, स्वामी विद्यारण्य, कबीरदास एवं दाराशिकोह के चिंतन के माध्मय से अद्वैतवादी, समरसतावादी, मानवतावादी धार्मिक भावों की सृष्टि की है। धर्मान्ध एवं अहंकार युक्त शासन व्यवस्था राजनीति का अशोभन पक्ष है। युद्ध विध्वंस के लिए हो तो मानवता का विनाशक है। जनहितकारी, राष्ट्र हितकारी, मानवता हितकारी शासन ही श्रेष्ठ है। युद्ध राष्ट्र रक्षा, मानवता की रक्षा, जन रक्षा के निमित्त हो तो ही आवश्यक है। अन्यथा विनाशक ही है। ऐसी स्थापनाएँ शत्रुघ्न जी के उपन्यासों में पद–पद पर दिखाई देती है। राष्ट्रीय अस्मिता युक्त स्वातन्त्र्य चेतना ये युक्त समाज की सृष्टि उनके उपन्यासों में की गई है। समाज की समरसता उनके सभी उपन्यासों में द्रष्टव्य है। – 'अरावली का मुक्त शिखर' में महाराणा कहते हैं – ''सारा पुरोहित समुदाय समाज में बड़े–छोटे और ऊँच–नीच का भेदभाव न करें। सबको स्नेह दे! सम्मान दे! सबके साथ चले! भगवान सूर्य एवं चन्द्र के समान सबको प्रकाश दे। भेदभाव को दूर करने का हृदय से प्रयत्न करें। तभी मेवाड़ का जन–जन एक हृदय से उठकर खड़ा हो सकेगा। जब तक समाज भेदभाव की मदिरा में बेसुध रहेगा, तब तक वह तेजस्वी नहीं हो सकेगा। जब सभी सुखी होंगे और दीनता हीनता से छुटकारा पाएंगे, तभी तो सारा देश सुखी होगा। और तभी अपने देश की रक्षा के लिए उठकर खड़े होंगे।''[6] शत्रुघ्न प्रसाद की इतिहास दृष्टि इतनी पैनी और साफ है कि इतिहास

लेखन की विसंगतियाँ भी उजागर हो जाती है और व्यक्ति चेतना की नवीन सृष्टि भी। अकबर को उदारवादी दर्शाने वाले इतिहासकारों एवं साहित्यकारों की आँखें खोलने के लिए भी पर्याप्त है। शत्रुघ्न प्रसाद की पैनी एवं मर्मबेधक दृष्टि ने दिखलाया है कि अकबर का हरम विलासिता का केन्द्र है। अकबर के पास नारी सम्मान एवं प्रेम की दृष्टि नहीं है। महाराणा के पास नारी सम्मान एवं अर्द्धनारीश्वर की भावना हृदयगत व्यवहार में है। अकबर की उदारता राजनीति प्रेरित है। महाराणा की उदारता संस्कारों की देन है। यह साहित्यकार की दृष्टि एंव सृष्टि का अनुपम उदाहरण है। 'अरावली का मुक्त शिखर' के कुछ उदाहरणों में यह नव स्रष्टा रूप दिखाई पड़ता है। जोधाबाई मनन करते हुए कहती है – ''ये तुर्क–मुगल कैदियों को गुलाम बनाकर बेचते–खरीदते हैं। हम अपने–अपने पिता के राज्य के बदले सौंप दी गई। बेच दी गई। हम गुलाम हैं। मेरी सियासी शादी बादशाह से हुई है। बादशाह मेरे शौहर है। पर मेरी संतान जयसिंह या रणविजयसिंह नहीं कहला सकती। वह सलीम है। वह मुगल बादशह का है। वह मुगल शहजादा है। मैं सिर्फ अम्मी हूँ।'' तानसेन से महरूख कहती है। जब बादशाह हिन्दू नाजनीन से शादी कर सकते हैं तो क्या मुझे हिन्दू नौजवान से शादी नहीं करने देंगे। महाराणा कहते हैं कि अमर! यह तूने क्या किया? यह हमारा धर्म नहीं। तूने मुगल कुलवधू को कैद कर लिया है, यह तो अधर्म है।''[7] यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि शत्रुघ्न प्रसाद मानवीय भावों के स्रष्टा है। भारतीय धर्म संस्कारों एवं मुगलिया सोच में तंग नजरिए का फर्क स्पष्ट दृष्टिगोचर है। यही दृष्टि सम्पन्नता लेखक की विशिष्टता है। मानवता की प्रतिष्ठा उनकी नवसृष्टि। मानवता से परिपूर्ण समाज की रचना ही उनका ध्येय है। नारी सम्मान के साथ–साथ प्रेम भाव की निर्मल सृष्टि भी उपन्यासकार की महत्वपूर्ण देन है। मुगल सल्तनत में नारी विवश व पीड़ित है। उनकी आक्रामक, संकीर्ण, धर्मान्ध सोच उन्हें विजय तो दिलाती है। वे सत्तासीन हो जाते हैं भूखण्डों पर, परन्तु मानव हृदय में स्थान प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। भूखण्डों के विजेता हृदयों से पराजित हैं। किसी भी मानवीय भाव की सृष्टि करने में पूर्ण विफल है। हृदयों की इसी विवश पुकार को महसूस कर शत्रुघ्न प्रसाद प्रेमपूर्ण भावों की सृष्टि करते हैं। डॉ सुरेश गौतम ने 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' की समीक्षा में लिखा है – ''नैसर्गिकता के प्रति नकारात्मक भाव ज्वालामुखी स्फोट है। दूसरी ओर पंडितराज जगन्नाथ–लवंगी, जेबुन्निसा–अकिल खाँ, आलमआरा–भवनाथ, जया–रामसिंह जैसे ऐतिहासिक–काल्पनिक पात्र अपनी हृदयभूमि पाने को छटपटाते हैं। जेबुन्निसा कहती है – प्यार जीने की राह है। आबेहयात है। अकिल खाँ कहता है – प्यार रूहानी जज्बा है, जैसे संवाद उपन्यासकार की शब्दक्रीड़ा नहीं है। वह रूह में उतरकर इन अनुभूति बिम्बों को अक्स करता है। अपने एक अन्य ऐतिहासिक–सांस्कृतिक उपन्यास 'सरस्वती–सदानीरा' में भी रचनाकार अपना 'सहस्रार चक्र' निकाल कर रख देता है। 'नारी–पुरूष का अदम्य अनंत आकर्षण' सृष्टि सृजन है। जीवन में प्रेम का संगीत ही सच है। इसका संगीत बड़ा मादक और मोहक है। इसका माधुर्य मन प्राणों पर छा जाता है। ओशो रजनीश भी यही कहते हैं।

सुकरात के अनुसार प्यार जब छूता है, हर कोई कवि बन जाता है। उपेक्षापूर्ण–अपूर्ण, कारूणिक, दहशत–दंशित इन त्रासद, उर्दू–हिन्दी शब्द सम्पन्न भाषिक सांस्कृतिक पात्रों के मनोभावों को इस प्रकार शब्द नर्तित करती है, जिसमें अल्लाह–ईश्वर एक हो जाते हैं।''8 निर्मल प्रेम की समरसभाव धारा जो ईश्वर–अल्लाह का एकत्व कर सके, वह मानव–मानव को तो एक कर ही देगी। ऐसी निर्मल प्रेमधारा से परिपूर्ण समाज की सृष्टि करने वाला ही महान् स्रष्टा कहलाता है। शत्रुघ्न प्रसाद इस दृष्टि से ही समाज की नवीन रचना करते हैं। साथ ही राष्ट्रीय अस्मिता से पूर्ण चरित्र सृष्टि करके राष्ट्रभाव से पूर्ण राष्ट्र एवं समाज की सृष्टि करना भी रचनाकर का ध्येय है। याज्ञवल्क्य, कोटा देवी, महाराणा प्रताप, हरिहर–बुक्का, स्वामी विद्यारण्य, दाराशिकोह, सूफी सरमद, विषमशील विक्रमादित्य आदि चरित्रों के माध्यम से लेखक भारतीय नौजवानों का ऐसा व्यक्तित्व गढ़ना चाहते हैं जो राष्ट्रीय अस्मिता के लिए समर्पित भाव रखें। ऐसे उत्तम गुणों से युक्त मनुष्यों के समाज का निर्माण करने की भावना ने ही ऐसे चरित्रों का निर्माण किया है। डॉ सदानन्द प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि – ''इसमें कोई संदेह नहीं है कि उपन्यास की चरित्र सृष्टि में लेखक ने राष्ट्रीय अस्मिता को केन्द्र में रखा है और इसी दृष्टि से उपन्यास के मुख्य पात्र महाराणा प्रताप के चरित्र का निर्माण किया है। उनका यह चित्रण ऐतिहासिक धरातल पर पुष्ट भी होता है। महाराणा प्रताप इतिहास और साहित्य दोनों में त्याग, समर्पण, धैर्य, स्वाभिमान, दृढ़ता के लिए विख्यात रहे हैं। महाराणा प्रताप की दृढ़ता, कर्मठता, संयम, स्वतंत्रता के प्रति अविचल निष्ठा, कष्ट सहन करने की शक्ति, चरित्र की उदात्तता का निरूपण लेखक ने कुशलता के साथ किया है।''[9] शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में यह तथ्य प्रत्यक्ष देखा जा सकता है कि उन्होंने इतिहास की गलियाँ सूक्ष्म दृष्टि से छानी हैं तथा निरपेक्ष भाव से उन्हें समझकर औपन्यासिक सृष्टि प्रदान की है। रजनीकान्त लहरी ने लिखा है कि – ''प्रत्येक युग की वास्तविकता को खोजना ऐतिहासिक यथार्थ का मुख्य कार्य है। इसके लिए एक निष्पक्ष दृष्टि चाहिए। व्यक्तिगत आग्रह से ऊपर उठकर तटस्थ एवं निर्मल दृष्टि चाहिए। तभी युग की वास्तविकता की सही पहचान संभव होगी। डॉ शत्रुघ्न प्रसाद इस दिशा में आज के सशक्त ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में उभरकर सामने आए हैं।'' शत्रुघ्न प्रसाद ने स्वस्थ स्वच्छन्द प्रेम प्रवाह की सुरभि भी बिखेरी है। मधुरता, सरसता और आकर्षण की मूर्ति शककुमारी हला ऐसी है मानों सौन्दर्य, मकरन्द और पराग ने नारी रूप धारण किया हो। आदित्य के प्रति उसका आकर्षण जाति, पंथ या वर्ग से बँधा नहीं है। वह उन्मुक्त प्रेम है जहाँ कुहासा, किरण और कली के मिलन में व्यवधान नहीं बन पाता। प्रेम प्रांगण में यह सात्विक प्रेम–मिलन जाति–जाति की एकात्मकता लाने का श्रेय पाता है। संकेत देता है कि प्रेम वह शक्ति है जो मानवीयता के धरातल पर विकसित होकर सौहार्द्रपूर्ण भातृत्व का संदेश देती है।''[10] शत्रुघ्न प्रसाद ने अतीतकालीन कलुष को देखा, समझा, परखा है। उस कलुषित यथार्थ को भी सामने रखा है परन्तु स्थितियों एवं पात्रों के माध्यम से नई दृष्टि अपनाकर नई सृष्टि भी की है। बारहवीं सदी के मगध की यथार्थपरक

स्थितियाँ 'सिद्धियों के खण्डहर' में चित्रित हैं। चौदहवीं सदी का कश्मीर 'कश्मीर की बेटी' में अपनी मर्मान्तक पीड़ा व्यक्त करता है। सत्रहवीं सदी का मजहबी उन्माद और उससे दंशित जनजीवन 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में अपनी व्यथा–कथा कहता है परन्तु साथ–साथ ही प्रेम, त्याग, उदारता, समन्वयी एकात्म चेतना, राष्ट्रीयता का भाव भी व्यक्त हुआ है। कुमार महेन्द्र और सुवर्णा, कोटा देवी, सरमद एवं उधोदास बैरागी, जगन्नाथ, गोकुल जाट आदि के माध्यम से नवीन सृष्टि की है। इन उपन्यासों में सूक्ष्मदृष्टि का आलोकन नवीन सृष्टि करता है। शत्रुघ्न प्रसाद के द्रष्टा एवं स्रष्टा कौशल की आलोचना करते हुए लिखा है कि – ''शत्रुघ्न प्रसाद ने भारतीय इतिहास के उल्लास और अवसाद भरे प्रसंगों को आत्मीय शैली में अंकित कर उन्हें नई ऊर्जा दी है तो दूसरी ओर भावनात्मक जमीन पर कठोर निर्ममता के साथ अपनी दुर्दशा के कारणों की गहराई से पड़ताल की है। ऐसे उपन्यास लिखने के लिए तपी हुई गहरी अन्तर्दृष्टि चाहिए। अन्तर्गठन की कला, तारतम्यता में वैचारिक अनुशासन, भाषा और शिल्प में खिली पावस धूप, इतिहास–ज्ञान, आत्मान्वेषण, तटस्थता, शोधमूलक चिंतन और इन सबसे ऊपर अनुभूति की आवेग दीप्ति चाहिए क्योंकि बड़े से बड़े ज्ञान पर अनुभूति का एक क्षण भारी होता है। जो साहित्यकार मानव अन्तर्जगत के तंतुओं को सूर दृष्टि नहीं बना सकता, वह कला मर्मज्ञ नहीं हो सकता। शत्रुघ्न प्रसाद के सभी उपन्यास इन नवरस कसौटियों पर खरे हैं।''[11] शत्रुघ्न प्रसाद के पास एक गहरी अन्तर्दृष्टि भी है और नव सृजन की कुशलता भी है। औपन्यासिक वृत्त में इतिहास की गहरी गुफाओं से खोजी गई जीवन विषमताओं के अन्धकारमयी पक्ष को उजाला प्रदान करने वाली सूर्य दृष्टि प्रदान कर उपन्यासकार ने शौर्य और प्रेम से आपूरित जीवन–सृजन का मार्ग प्रशस्त किया है। प्रेमचन्द ने स्रष्टा विषयक विचार प्रकट करते हुए लिखा था कि – ''जीवन का अन्धकार है, उसे क्यों हम अन्धकार ही चित्रित करें। कलुष तो है, उसे हम क्यों न सौन्दर्य में बदल दे। दुनिया तो दुखमय है, पर दुखमय जीवन में सुख की रचना हम नहीं करते क्या? यथार्थ वह है जो है, आदर्श वह है जो होना चाहिए। जो है, वह जो होना चाहिए में परिवर्तन हो सकता है। यथार्थ का आदर्श में परिवर्तन सम्भव है।''[12] शत्रुघ्न प्रसाद का द्रष्टा–स्रष्टा उपन्यासकार ऐसा करता प्रतीत होता है। व्यक्ति, समाज, देश का ऐतिहासिक यथार्थ उन्होंने व्यक्त किया है। जीवन को सुन्दर बनाने का संकेत भी दिया है। सहजयानी साधनाओं के व्यामोह में विकृत समाज एवं धर्म के प्रति वितृष्णा एवं उसके पतनशील कुमार्ग के दुष्परिणाम दर्शाकर उन्होंने शस्त्र–शक्ति सम्पन्न राष्ट्र, विवेकशील समाज एवं व्यक्ति का निर्माण करने की भावना व्यक्त की है। सुभद्रा एवं सुवर्णा जैसी वैधव्य जीवन से पीड़ित नारियों को चेतनशील दर्शाकर जीवन सौन्दर्य की सृष्टि की है। चाँदनी–सर्वदेव विवाह भी इसी भावना की पुष्टि है। कुमार महेन्द्र शस्त्र–शक्ति सम्पन्न राष्ट्र का संदेश देकर राष्ट्र के गौरवमयी निर्माण की सर्जना का निमित्त बनता है तो आगे के उपन्यासों में विषमशील विक्रमादित्य, महाराणा प्रताप, याज्ञवल्क्य, हरिहर बुक्का के रूप में राष्ट्रीयता सम्पन्न देश की नींव रखते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद अतीत के मानव

जीवन को विशिष्ट दृष्टि से देखते हैं। वे उन्हें उनकी समग्रता में परखते हैं। मानव जीवन को उसके सामाजिक परिवेश, मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों के साथ–साथ उसकी जरूरतों, उसके जीवन तकाजों को एक निरन्तर प्रक्रिया में देखते हैं। उनके उपन्यासों के पात्रों के रूप में यह सब देखा जा सकता है। जार्ज लुकाच ने 'उपन्यास सिद्धान्त' में लिखा है कि – ''उपन्यास एक साहित्यिक रूप नहीं है, वह जीवन–जगत को देखने की विशिष्ट दृष्टि है और मानव जीवन तथा समाज का एक विशिष्ट बोध भी।''[13] विवेच्य उपन्यासों में भारतीय अतीत को इसी विशिष्ट दृष्टि से देखा गया है और नया जीवन बोध प्रदान कर नवीन रचनात्मक जीवन की ओर अग्रसर होने के संकेत दिए हैं। चाँदनी के विवाह, सुवर्णा के महेन्द्र को अपनाने की विचार दृष्टि, श्रीदेवी–मरप्पा विवाह, हेमचन्द्र–पार्वती का विवाह इसी नई सृष्टि के सूचक हैं। डॉ रामलखन शुक्ल ने कहा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहासकार नहीं होता किन्तु इतिहास और पुरातत्व के शुष्क गवेषण को रागात्मक परिधान प्रदान करने वाला ऐतिहासिक दृष्टि सम्पन्न लेखक होता है। कुछ रचनाकार ऐसे भी होते हैं जो स्वयं अपने गवेषण से प्राचीन इतिहास के अन्धकाराच्छन्न प्रकोष्ठ को आलोकित भी करते हैं, उस ऐतिहासिक गवेषण को रागात्मक रूप प्रदान कर साहित्य का उपादान भी बनाते हैं।''[14] शत्रुघ्न प्रसाद ने भारतीय इतिहास के अंधकाराच्छन्न कालखण्डों के कलुष को यथार्थ दृष्टि से उकेरा है। यह उनकी दृष्टि सम्पन्नता का सूचक है कि उन्होंने प्रत्येक युग की बारीकियों को परखा है और उन्हें मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी संवेदनाओं के साथ अभिव्यक्त किया है। रागात्मक दृष्टि से नव सृजन कर नवीन समाज की रूपरेखा भी प्रदान कर दी है। डॉ जगदीश गुप्त ने लिखा है कि – इतिहासकार केवल द्रष्टा है उपन्यासकार द्रष्टा और स्रष्टा दोनों। अपने व्यक्तित्व को आरोपित करने का अधिकार स्रष्टा का मौलिक स्वत्व है। ऐतिहासिक उपन्यास लिखते समय भी इस अधिकार से उसे वंचित नहीं किया जा सकता। यह अवश्य है कि इतिहास की मर्यादा को अक्षुण्ण रखना उसका पवित्र कर्तव्य बन जाता है। जिसको वह त्याग नहीं सकता है।''[15] उपन्यासकार का यह व्यक्तित्व आरोपण ही उसे श्रेष्ठ स्रष्टा बनाता है। उपन्यासकार शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप इतिहास यथार्थ की रक्षा करते हुए ऐसे उपन्यासों की सृष्टि की है जो सुन्दर समाज के निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। उपन्यासकार शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने उपन्यासों में जाति–वर्ग–वर्ण विहीन समाज, जो व्यक्ति जीवन को भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के साथ मौलिक स्वतन्त्र जीवन जी सकते की सुविधा देता हो, का निर्माण करने का संकेत दिया है। स्वाभिमान युक्त, स्वाधीन भाव से परिपूर्ण, राष्ट्रीयता सम्पन्न, राष्ट्र धर्म निभाने वाले राष्ट्रवासियों से युक्त राष्ट्र की प्रतिष्ठा की है। अखण्ड राष्ट्र, गौरवशाली राष्ट्र। समदर्शी भावों से युक्त, एकात्म चेतना से परिपूर्ण समरस समाज की रचना की है जो सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम के मूल्यों से युक्त हो। शत्रुघ्न प्रसाद ने प्रगतिशील मानवतावाद की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है। मानवतावादी स्रष्टा हैं। प्रेम की निर्मलता, दाम्पत्य में अर्द्धनारीश्वर चेतना, स्वाधीनता, संकल्प, संघर्ष, त्याग, मानवता आदि गुणों से परिपूर्ण ऐसे समाज की सृष्टि

करना, जिसमें राष्ट्र–धर्म की मानवतावादी सोच एवं धर्म–संस्कृति में अद्वैत चेतना का समावेश हो, स्रष्टा उपन्यासकार का ध्येय है। उपन्यास में दृष्टि है तो सृष्टि भी है। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि – ''उपन्यास केवल यथार्थ की खोज और उसकी गति की पहचान का अध्ययन ही नहीं है। उसमें वर्तमान की सीमाओं के बोध के पार जाने की आकांक्षा के कारण सम्भावित संसार की रचना की कोशिश भी होती है। उपन्यास के माध्यम से ऐसी दुनिया निर्मित की जाती है जो पाठकों को वास्तव में सम्भव लगे। ऐसी दुनिया रचने वाला उपन्यासकार ही सम्भावनाओं का व्याख्याकार होता है।''[16]

शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने उपन्यासों के माध्यम से राष्ट्रीय–सांस्कृतिक मूल्यों से युक्त समरस समाज की प्रतिष्ठा की संभावना व्यक्त की है जिसमें आत्माभिमानी एवं राष्ट्राभिमानी चेतना का उत्साह हो। राष्ट्रीय एकता एवं सामाजिक समानता का संकल्प हो। समरसतावादी एकात्म भाव की मान्यता हो। सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के आदर्शों से युक्त मानवतावादी भाव हो। शत्रुघ्न प्रसाद सूक्ष्म द्रष्टा एवं श्रेष्ठ स्रष्टा साहित्यकार हैं।

7.3 युग धर्म स्थापना :– किसी भी साहित्यकार का महत्व उसकी रचना में व्यक्त युगीन सत्य को रेखांकित करते हुए नियामक मूल्यों की स्थापना करने में हैं। कालिका प्रसाद ने 'वृहद हिन्दी कोश' में युग धर्म का अर्थ समयानुकूल आचरण या व्यवहार बताया है।[17] अर्थात् युग की आवश्यकताओं को समझते हुए मानवीयता के धरातल पर जीवन–आदर्शों को परखते हुए नवीन परिष्कृत मूल्यों का स्थापन युग धर्म कहलाता है। प्रत्येक साहित्यकार अपने समय की समस्याओं एवं परिस्थितियों से प्रभावित होता है। समय की दुर्बलताओं से उसका संवेदनशील मन चेतनशील हो उठता है और वह जो चिंतन देता है वह युग जीवन को मौलिकता प्रदान करने के निमित्त होता है। युग की आवश्यकताएँ एक ही होती है परन्तु चिंतन भिन्न–भिन्न हो सकता है। व्यक्त करने की पद्धति और सुधारने के तरीके भिन्न–भिन्न हो सकते है। ऐतिहासिक उपन्यासकार युगीन आवश्यकताओं को अतीत के धरातल पर रखकर परखता है और उसी के माध्यम से अपनी कल्पना–प्रतिभा द्वारा नवजीवन का सत्य प्रस्तुत करता है। शत्रुघ्न प्रसाद ने युग की निरन्तरता में विश्वास रखते हुए जीवन सत्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है। युगीन प्रश्नों, आकुलताओं, समस्याओं को प्रत्यक्ष करते हुए रचनाकार यदि युग का पुनर्निर्माण करने में सफल हुआ है तो वह युग धर्म निभा रहा है। युग का पुनर्निर्माण नव–युग है। नवीन मूल्यों और स्थापनाओं को स्वीकार करते हुए नव–युग की प्रतिष्ठा की जाती है। इस सम्बन्ध में गोपालराय ने लिखा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यासकार की उपलब्धि इस बात में निहित नहीं होती कि वह ऐतिहासिक घटनाओं को कितने रोचक और प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करता है। उसकी सफलता का राज यह भी नहीं है कि वह ऐतिहासिक प्रसंगों को आधुनिक जीवन की समस्याओं के निदर्शन या समाधान के लिए किस हद तक उपयोगी या मार्गदर्शक रूप में प्रस्तुत करता है। उसकी सफलता या उपलब्धि इस

बात में निहित होती है कि वह किसी युग विशेष को किस प्रकार पुनर्निर्मित करता है कि वह अपनी सम्पूर्णता में अपने सारे आन्तरिक प्रश्नों, द्वन्द्वों, विरोधाभासों अथवा उपलब्धियों के साथ सजीव साकार हो उठे। निस्संदेह इस लक्ष्य की पूर्ति करते हुए यदि उपन्यासकार ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति पूरी सावधानी या निष्ठा बरतता है तो उसका महत्व बढ़ जाता है। पर उसका मुख्य लक्ष्य युग विशेष का पुनर्निर्माण देखा जा सकता है। युग की सच्चाईयों को ऐतिहासिक दर्पण के माध्यम से आकार प्रदान करना और उन्हें नया परिष्कृत रूप देना उपन्यासकार की महती देन है। शत्रुघ्न प्रसाद ने पाकिस्तान और चीन के आक्रमण का दंश देखा था। महसूस किया था कि संघर्ष की कहीं ना कहीं कमी है। राष्ट्र निर्माण के लिए जिस संकल्प और दृढ़ता की आवश्यकता होती है, उसमें कमी है। राष्ट्रीय कर्तव्य का भाव कम होता जा रहा है। आतंकवाद का सामना करते हुए भी हम कहीं न कहीं किसी निजी कमजोरी या नमनीयता के कारण सामर्थ्य दिखाने में चूक कर रहे हैं। आपसी भेद भी कहीं–कहीं राष्ट्र को संगठित होने में बाधा है। इस युगसत्य को व्यक्त करते हुए भारत को संगठित करने व शक्ति सम्पन्न बनाने का विचार जो युग की आवश्यकता है, को 'अरावली का मुक्त शिखर' में महाराणा प्रताप के माध्यम से व्यक्त करते हैं – ''संकल्प में बड़ी शक्ति होती है। नया संगठन खड़ा करना होगा। सबको साथ लेना होगा। संकल्प, साहस, संगठन और निरन्तर संघर्ष। भूमि माता की स्वाधीनता के लिए संघर्ष। भारत वर्ष के स्वातन्त्र्य संघर्ष की पृष्ठभूमि में मेवाड़ का स्वर गूंजना चाहिए। ऐयाश बादशाह की विस्तारवादी लिप्सा के विरूद्ध संघर्ष करने को सन्नद्ध होना निश्चय ही मातृभूमि की स्वाधीनता की जंग के साथ–साथ उसकी परम्परा, सांस्कृतिक रिक्थ, मानवीय मूल्य, मनीषा, चारित्र्य के संरक्षण–संवर्धन के लिए भी युद्ध है। प्रताप का युद्ध धर्मयुद्ध है और हल्दी घाटी 'धर्म क्षेत्रे–कुरूक्षेत्रे' के समान संप्रेरक एवं पवित्र।''[19] अपने उपन्यासों में उन्होंने इस युग सत्य को दर्शाया है कि अहिंसा और शान्ति एक तरफ से कायम नहीं रखी जा सकती। विस्तारवाद या अहंवाद का युद्ध अनावश्यक व अनुचित है परन्तु आत्माभिमान एवं जनरक्षा में किया गया युद्ध युगधर्म है। महाराणा प्रताप का युद्ध अकबर की विस्तारवादी लिप्सा के विरोध में राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा में, देश के गौरव के लिए आवश्यक है। जो शासक महलों के सुखों का त्याग कर जन–सामान्य से भी साधारण जीवन व्यतीत करते हुए कष्ट भोगकर संघर्ष करता है। वह जननायक है। साथ ही युग की माँग है, सभी वर्गों को साथ लेकर चलना। सभी के साथ से ही देश मजबूत बनता है। समाज मजबूत बनता है। सदानन्द गुप्त ने 'अरावली का मुक्त शिखर' की समीक्षा में लिखा है कि – ''रानक दे, फूला, टिकोरी के चरित्र–चित्रण में उदात्तता के समावेश से लेखक ने अपने अभिप्राय का संकेत दे दिया है। जिसे हम हाशिये पर के लोग कहते हैं, उन्हें लेखक मुख्य धारा में सम्मिलित कर अपनी समन्वयवादी प्रकृति का संदेश दिया है।''[20] सामाजिक समन्वय युग की महत्ती आवश्यकता है, जिसे शत्रुघ्न प्रसाद के सरस्वती–सदानीरा, अरावली का मुक्त शिखर, तुंगभद्रा पर सूर्योदय व शिप्रा साक्षी है उपन्यासों में देखा जा सकता है। उपन्यासकार ने राष्ट्र

की इस विडम्बना पर चिन्तन किया है कि स्वार्थपरायण समुदाय आज भी समाज और देश में विभेद पैदा करने में लगा हुआ है। ऐसे लोगों को पहचानने और उनसे बचने का संकेत उपन्यासकार ने अनेक स्थितियों के माध्यम से दिया है। एकत्व का भाव आज भी उतना ही आवश्यक है जितना वैदिककाल या मध्यकाल में था। सदानन्द गुप्त ने अरावली का मुक्त शिखर की समीक्षा में लिखा है कि – ''अपने ऐतिहासिक–सांस्कृतिक उपन्यासों के माध्यम से शत्रुघ्न प्रसाद ने राष्ट्रीय– सामाजिक एकता के स्वर को मुखरित किया है। लेखक यह अनुभव करता है कि सोलहवीं शताब्दी और इक्कीसवीं शताब्दी के बीच भारतीय समाज की बुनियादी स्थिति में बहुत अन्तर नहीं आया है। विभेदक रेखाएँ आज भी प्रबल हैं। भेद मिटाकर समाज को एकजुट करने वाली शक्तियों की कमी है जिससे समाज में बिखराव है। लेखक की दृष्टि में यह बड़ी विडम्बना है।''[21] उपन्यासकार इस बिखराव को समेटने के लिए कृतसंकल्पित दिखाई पड़ते हैं। 'सरस्वती–सदानीरा' में वैदिकजनों, नागों, कोल–किरातों, किन्नरों, व्रात्यों को आपसी भेद मिटाकर इस बिखराव को संगठित स्वरूप दिया है। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' में शैव–वैष्णव– शाक्त सम्प्रदायों को एक करते हैं। 'अरावली का मुक्त शिखर' में महाराणा प्रताप आदिवासी भीलों–लुहारों को साथ लेकर संगठित समाज की प्रतिष्ठा करते हैं। सदानन्द गुप्त ने लिखा है कि – ''लेखक ने अपनी कल्पना शक्ति एवं सर्वसमावेशी दृष्टि के माध्यम से इसे प्रमुखता दी है। राज्याभिषेक के समय भील राणा पुंजा से सबसे पहले तिलक कराकर लेखक ने इसे पुष्ट किया है। तुलसीदास ने रामचरित मानस में कोल–भीलों का सम्मान कर समग्र समाज की एकता की आवश्यकता के लिए इसे अनिवार्य सिद्ध किया है।''[22] समाज को हर प्रकार की दुर्बलता से मुक्त करना प्रत्येक युग की आवश्यकता होती है। आज भी समाज अनेक दुर्बलताओं से ग्रस्त है। चाहे धर्म के रूप में हो, चाहे जाति के रूप में। इतिहास समाज को सबलताओं एवं दुर्बलताओं दोनों से अवगत एवं प्रेरित करता है। साथ ही वर्तमान को सामर्थ्यवान एवं सक्षम बनाने की भावना का संचार करता है। शत्रुघ्न प्रसाद ने अतीतकालीन घटनाओं के माध्यम से इस तथ्य को शिद्दत के साथ प्रस्तुत किया है। मध्यकालीन दुर्बलताओं और स्थितियों का परिणाम आज भी भोगा जा रहा है। 'सिद्धियों के खण्डहर' उपन्यास की समीक्षा में जगदीश तोमर ने स्पष्ट किया है कि – ''इस स्थापना के पीछे उनका मूल मंतव्य संभवत यही है कि किसी देश या राज्य का ऐतिहासिक यथार्थ राष्ट्रीय सुरक्षा, सुदृढ़ता और लोकमंगल से प्रतिबद्ध रहा है तो उस कारण उसका आज का यथार्थ भी सुरक्षा और समृद्धि की दृष्टि से अत्यन्त गौरवशाली होगा। इसके विपरीत यदि उसके बीते युग विघटन एवं राष्ट्रीय शक्तियों की दुर्बलता में गुजरे हैं तो उसका वर्तमान उन अप्रियताओं से किसी न किसी रूप में अवश्य ग्रसित रहेगा। विद्वान एवं इतिहास मर्मज्ञ लेखक ने परोक्षतः ही सही इस कृति के माध्यम से अपने देशवासियों को अतीत एवं वर्तमान के अन्तः सम्बन्ध से रूबरू कराने का सराहनीय प्रयास किया है।''[23] अर्थात् वर्तमान को सभी दुर्बलताओं से मुक्त कर

सबत एवं सक्षम बनाने वाली विचारधारा की स्थापना समय की जरूरत है, ऐसी अभिव्यक्ति प्रदान की है।

जनतांत्रिक मूल्यों की आवश्यकता हर युग की जरूरत रही है परन्तु आज जनतन्त्र शासन पद्धति में ही जब निरंकुशता दिखाई पड़े या जनतान्त्रिक विचार दबाया जाता हो, तो संवेदनशील रचनाकार अपनी संवेदना अभिव्यक्त किए बिना नहीं रहेगा। जनतन्त्र युग की पहली आवश्यकता है। 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास में इस तथ्य को अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। रजनीकान्त लहरी ने 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास की आलोचना में लिखा है कि – " 'शिप्रा साक्षी है' का कथानक युग सत्य को प्रकाशित करता है। निरन्तर सत्ता सुख के अभ्यस्त आज के नेतागण प्रच्छन्न रूप से अपने अहं की तुष्टि करते हुए किसी राजतन्त्र के जागरूक प्रहरी से लगते हैं। उनमें निजी स्वार्थ और महत्वाकांक्षा इतनी गहरी पैठ कर चुकी है कि वे उसके लिए जनसामान्य की भावनाओं से खिलवाड़ करने में संकोच नहीं करते। सामान्यजन महँगाई, बेरोजगारी, मुद्रास्फीति की मार से अपनी आवाज खोता जा रहा है जबकि राजमद में लिप्त शक्ति का प्याला पीकर यह राजनेता सुरा–सुन्दरी को प्रश्रय देकर देश की सांस्कृतिक धरोहर को निरन्तर दुर्लक्ष्य करते जा रहे हैं। शिप्रा की लाल–लाल लहरें इस आशा की द्योतक है कि इसी अराजकता और मूल्यों के विघटन के मध्य युवा शक्ति और जनचेतना जगेगी, राजमद चूर–चूर होगा और जनतंत्र मुस्कराएगा।"[24] आज की आतंकवाद जैसी बुराईयाँ धर्मान्ध राजनीति की देन है जो औरंगजेब व सिकन्दर लोदी जैसे शासकों द्वारा कभी प्रतिष्ठित की गई थी। आज की यह सच्चाई है कि इस तरह की बुराईयों का भी डटकर एवं एक होकर सामना नहीं करते हैं। परन्तु अन्ततः जीत मंगलदायक भावों की होती है। न्याय सत्य के साथ होता है। औरंगजेब, सिकन्दर लोदी, मुहम्मद–बिन–तुगलक जैसे शासकों की धर्मान्ध कट्टर नीति ने हिन्दू समाज को त्रस्त करके रखा। सम्पूर्ण मध्यकाल इससे त्रस्त रहा। शरणार्थी को शरण देने व अधिक सम्मान देने की नीति का परिणाम आज का कश्मीर है। लेखक ने 'कश्मीर की बेटी' में इस तथ्य को व्यक्त किया है कि शरण दिया अफगान परिवार एक दिन कश्मीर के शासन पर कब्जा कर लेता है। आज उसी का परिणाम भोगा जा रहा है। आज भी शरणार्थी समस्या देश के लिए घातक बनी हुई है। हमारे समाज में ही उनके समर्थक मिल जाते है। आज अनेक नेता अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए ऐसा करते हैं। अन्याय और अनीति की सत्ता अन्ततः परास्त होती है। विजय सत्य एवं न्याय की होती है, परन्तु वहाँ तक देर हो जाती है। डॉ सुरेश गौतम ने लिखा है कि – "यह संघर्ष शहजादा दाराशिकोह और औरंगजेब के मध्य नहीं है, सुर–असुर वृत्तियों का यह सनातन संघर्ष है। जीवन के इस समुद्र मंथन में अन्ततः शिव संकल्पों की ही जय होती है। धर्म के नाम पर नफरत का व्यापार करने वाले औरंगजेब और बगदादी जैसे सौदागरों की अन्ततः पराजय होती है तथा सत्य न्याय काल चाबुक बनकर इन्हें उसी तमस के कूड़ेदान में फेंक देता है

जिसमें से ये जन्में थे।''[25] औरंगजेब जैसी धर्मान्ध शक्तियाँ अन्ततः अन्तर्ग्लानि से पराभूत होती है। और समय इस सत्ता को परास्त करता है परन्तु तब तक बहुत कुछ खोया जाता है। उपन्यासकार ने राष्ट्र की अखण्डता, समदर्शी भावना, सर्वसमावेशी दृष्टि, सबको साथ लेकर चलना, मानवतावादी दृष्टिकोण व बुराईयों से मिलकर संघर्ष करने व स्वार्थ के लिए बुराई का साथ न देने वाले युग सत्यों को अभिव्यक्त कर युग बोध जाग्रत करते हुए युगधर्म की प्रतिष्ठा की है।

7.4 गतिशील जीवन प्रदाता – शत्रुघ्न प्रसाद ने काल को अखण्ड, निरन्तर एवं गतिशील मानते हुए मानव जीवन को अखण्ड काल से प्रभावित माना है। वे जीवन को गतिमय चिंतना प्रदान करते हैं। गतिशील जीवन से तात्पर्य प्रगतिशील चेतना से है। शत्रुघ्न प्रसाद की प्रगतिशीलता वामपंथी विचारकों की एकाकी विचारणा से भिन्न सही अर्थों की प्रगति चेतना है। अतीत से सीखते हुए अतीत की नींव पर नवीन जीवन रूपी भवन निर्मित करने की विचारधारा प्रस्तुत की है। जड़ों से कटकर नवीनता अपनाना प्रगतिशीलता नहीं है। जड़ों से जुड़े रहकर अपने आपको हरा–भरा व पुष्पित–पल्लवित बनाए रखना सच्ची प्रगति चेतना है। अपने उपन्यासों में वे ऐसी ही प्रगतिशील विचारणा प्रस्तुत करते हैं। भारतीय समाज में परम्परा से व्याप्त रूढ़ियों, अन्ध–आस्थाओं, सामाजिक विषमताओं, विकृतियों एवं दुर्बलताओं का खण्डन किया है, जो समाज की नवगति में बाधक है। भारतीय प्राचीन गौरव को प्रतिष्ठित रखकर भारतीय चिंतना के आधार पर नवीन जीवन का आदर्श प्रस्तुत कर गतिशील जीवन की स्थापना की चेष्टा विवेच्य उपन्यासों में द्रष्टव्य है। 'सरस्वती–सदानीरा' शीर्षक ही गतिमय जीवन का संदेश प्रदान करता है। सरस्वती नदी से सदानीरा तक की गतिमय यात्रा। 'अरावली का मुक्त शिखर' शीर्षक की मुक्त–चेतना राष्ट्र को गतिमय चेतना तो प्रदान करती ही है व्यक्ति और समाज को भी गतिशील जीवन की स्वीकृति प्रदान करती है। जोधा बाई और हरम की बेगमों के पास अकूत सुख–साधन है परन्तु मन की मुक्त विचारणा नहीं है। विवशता का रूढ़ जीवन है। महाराणा प्रताप की महारानियाँ कष्ट एवं संघर्ष में है परन्तु आत्म–मुक्ति से परिपूर्ण आनन्द से भरपूर हैं। भील–क्षत्रिय मिलन हो, चाहे लुहारों–भीलों के मध्य वैवाहिक सम्बन्ध प्रगतिशील भावों की स्थापना के वैचारिक अंश हैं। टिकोरी का कहना कि मन का भाव रोका नहीं जा सकता। मर्यादा तो मैं भी समझती हूँ। टिकोरी के माध्यम से मन–मुक्ति की प्रगति चेतना व्यक्त हुई है तो महाराणा के अडिग संघर्षशील संकल्प में राष्ट्रीय गतिशीलता का संकल्प है। 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' में किसी संत के माध्यम से जमाल अहमद को जमाल मोहन नाम देकर नवीन जीवन की स्वीकृति प्रदान करना गतिशीलता का ही सूचक है। सुवर्णा, सुभद्रा, चाँदनी जैसी विधवा एवं पीड़ित नारियों को अनुरागमयी वैवाहिक जीवन की ओर चैतन्य भाव प्रदान करना रूढ़ परम्पराओं से बँधे अवरोधित परम्पराओं से मुक्त नव जीवन का ही स्थापन है। आपसी अहंकार एवं वैमनस्य को त्याग कर क्षत्रिय राजाओं को एकत्व करने

के सम्बन्ध में व्यक्त विचार हो, चाहे धार्मिक सम्प्रदायों की श्रेष्ठता से उपजी परस्पर वैमनस्यता में अद्वैतभाव की चिंतना हो, गतिमय जीवन की चैतन्य भावना है। 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में जया–रामसिंह एवं उधोदास, सरमद व दारा के औपनिषदिक चिन्तन के माध्यम से विवशता की भूमि को खोदकर सर्वसमावेशी बीजों की बुवाई की गई है। आलमआरा एवं जेबु का विवशता एवं पीड़ा से हाहाकार करता ह्रदय नवजीवन के शब्दों को प्रसारित करता है। शत्रुघ्न जी के उपन्यासों में व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के लिए गति प्रदान करने वाली विचारणा सर्वत्र व्याप्त हुई है। 'तुगभद्रा पर सूर्योदय' शीर्षक प्रमाण है। सूर्योदय गतिशीलता का ही संदेश देता है। मानव यात्रा की गतिशीलता का भाव देते हुए डॉ रजनीकान्त लहरी ने लिखा है कि – ''डॉ शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में समकालीनता का नया बोध अनायास ही हमें मिलता है। जिसके कारण यह निर्जीव पाषाण मूर्ति न रहकर मानव प्रगति की यात्रा की एक कड़ी बनकर प्रस्फुटित होता है। वह गतिशील जीवन से जुड़ता मिलता है। वर्तमान को अनावृत करता दिखता है। ऐसा लगता है मानो खण्डहर में सोया अतीत जागकर वर्तमान से नाता जोड़ रहा हो, वर्तमान भी अपनी स्थितियों के मध्य अतीत से कुछ ग्रहण करने का इच्छुक हो और उस प्रदेश को आधुनिक जीवन में साज सँवार कर भावी को सौंपने को आतुर हो।''[26] शत्रुघ्न प्रसाद ने दर्शाया है कि राष्ट्रीयता प्रत्येक देश और प्राणी के मन में उसी प्रकार रहती है या रहनी चाहिए जैसे प्राणों में साँस। शत्रुघ्न प्रसाद, राम, कृष्ण, विक्रमादित्य, हरिहर–बुक्का, महाराणा प्रताप, हेमू, कोटा देवी, आदि के राष्ट्रीय विचारों के माध्मय से तथा कबीर, दाराशिकोह, मध्वाचार्य आदि पात्रों के माध्यम से अद्वैतवादी भावों की एकत्व भावना के द्वारा राष्ट्रीय–सांस्कृतिक गति प्रदान करते हैं। उनका मानना भी है कि अतीत के चरित्र वर्तमान से जुड़े हुए हैं। यह परस्पर का जुड़ाव प्रत्येक देश और जाति की उन्नति का श्रेष्ठ जीवन दर्शन है। इसी सातत्य परम्परा में राष्ट्र की संस्कृति जीवित भी रहती है और पल्लवित–पुष्पित भी रहती है। स्वयं उन्होंने लिखा है कि – ऐतिहासिक उपन्यास वर्तमान के सन्दर्भ में अतीत जीवन के औपन्यासिक अभिलेख हैं। इनके चरित्र वर्तमान से जुड़े हैं। चूँकि कालप्रवाह अखण्ड है इसलिए अतीत, वर्तमान और भविष्य एक–दूसरे से अनिवार्यतः सम्बद्ध है।''[27] यह परस्पर जुड़ाव गतिशील जीवन का मार्ग है। गति का अर्थ चलना है परन्तु सही दिशा और सही मार्ग पर चलना है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की सड़क परम्परागत है परन्तु नई सोच की चाल के साथ। राष्ट्र न धर्म की अन्ध आस्था के बल पर चल सकता है, न धर्मान्ध राजनीति के बल पर। 'सिद्धियों के खण्डहर' के गोविन्दपाल और 'शहजादा दाराशिकोह' के औरंगजेब दोनों की शासकीय नीति धर्म से जुड़ी है। महाराज जनक धर्म–अध्यात्म और जनहित के परस्पर भावों को चलने की विचारणा देते है। आनन्द भट्ट भी कोटा देवी को उचित मार्गदर्शन देते हैं। पंडित प्रवर देवस्वामी की रूढ़ अवधारणा शासन की बाधा है। देशहित नहीं, समाज हित नहीं। आनन्द भिक्षु का मार्गदर्शन गतिशील राष्ट्र की चिंतना है। राजनीति में धार्मिक विचारों का मेल रखने के सम्बन्ध में महाराज जनक एवं

याज्ञवल्क्य तथा कोटा देवी और आनन्द भिक्षु भट्ट नव गति के प्रेरक युग्म है। समय गतिशील है। विचार भी गतिशील है। अतीतकालीन समाज के अनुभवों का संचय वर्तमान के लिए उपयोगी है। यह क्रम समय को निकटता देते हुए नव जीवन प्रदान करता है। डॉ रमेश कुन्तल मेघ ने लिखा है कि – '' ऐतिहासिक उपन्यास मानव के सातत्य जीवन की धारा और समाज के अनुभवों को संचित करता है। यहाँ वर्तमान को भुलाकर अतीत में पहुँचा जाता है और पुनः प्रच्छन्न रूप से काल प्रवाह द्वारा वर्तमान की यथार्थ भूमि पर लौटा जाता है। जहाँ अतीत वर्तमान से एक क्रम है। भविष्य का निर्देश है। अतः यह दूरी को निकटता में परिणत कर देता है।''[28] यह सातत्य जीवन की धारा विवेच्य उपन्यासों में निरन्तर दिखाई पड़ती है। वैदिककाल में याज्ञवल्क्य, विक्रमादित्य काल में आचार्य भास्वर, तुगलक काल में आचार्य विद्यारण्य स्वामी, चौदहवीं शताब्दी में आनन्द भिक्षु भट्ट जैसे आध्यात्मिक चिंतक राष्ट्रीय एकत्व का संदेश देते है। वैदिक काल में जो चिंतना महाराज जनक के विचारों में दिखाई पड़ती है, वही मध्य काल में महाराणा प्रताप और शिवाजी व कोटा देवी जैसे शासकों में दिखाई पड़ रही है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में काल परिवर्तन की नवीनता लिए हुए राष्ट्रीय–सांस्कृतिक विचार परिष्कृत होते हुए समाज स्वीकृत बने हुए है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र सभी में शुभ एवं अशुभ स्थितियाँ निरन्तर बनी हुई है। वर्तमान को केन्द्र में रखकर मानवतावादी भावों की प्रतिष्ठा करते हुए चिंतना व्यक्त करते रहने वाले उपन्यासकार शत्रुघ्न प्रसाद अपनी नवीन विचारणा की प्रगतिशील सृष्टि करते हैं। रामदरश मिश्र ने लिखा है कि – ''सर्जक तथ्य से अनुशासित नहीं होता, उस पर आधारित होता है। वह सत्य से अनुशासित होता है। वह तथ्यों को परस्पर नियोजित कर मनचाही दुनिया रचता है। उसकी अपनी दृष्टि एक नया संसार गढ़ती है जिसमें तथ्य तो होते हैं किन्तु उनके आपसी सम्बन्ध और तारतम्य बदले होते हैं। सामाजिक जीवन को महत्व देने वाले साहित्यकार की दृष्टि वर्तमान पर होती है। किन्तु वर्तमान अतीत और भविष्य से कटा हुआ, अपने में समाया हुआ कोई बिन्दु नहीं है। वह अतीत की जीवंत परम्परा की अगली कड़ी है और उसमें भविष्य की संभावनाओं के बीज सन्निहित रहते हैं। वर्तमान ही केन्द्र में है क्योंकि हम उसी में जीते हैं। उसी के लिए हम परम्परा को समझते हैं। उसकी शक्तियों का दोहन करते हैं और उसी में से कल के जीवन के सपने संजोते हैं।''[29] शत्रुघ्न प्रसाद ऐसे ही मानवतावादी सर्जक हैं जो अपने समय की तमाम चिंताओं पर चिंतन करते हुए अपने सत्यान्वेषण द्वारा निर्मित एक नए संसार की सृष्टि करते हैं। इस नवीन सृष्टि में शोषित, लांछित, अभावग्रस्त समाज तथा व्यक्ति की पीड़ा रेखांकित होकर परिवर्तनशीलता की प्रेरक–पूरक है। चाँदनी, सुवर्णा, सुभद्रा, जया आदि का जीवन परिवर्तन सशक्त उदाहरण है। शत्रुघ्न प्रसाद इतिहास के धरातल पर नवीन वर्तमान जीवन की सृष्टि कुशलता से करते हैं। 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' की समीक्षा करते हुए सुरेश गौतम द्वारा व्यक्त विचार उनकी इस नवीन सृष्टि का महत्व निर्धारित करते हैं। लिखा है – ''अपने अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों के कथावृत्तों में इतिहास को बिना क्षति पहुँचाए मानवीय

जीवन, समाज और तत्कालीन परिस्थितियों व कालखण्ड को शत्रुघ्न प्रसाद इतना बारीक कातते हैं कि अतीत खिंचकर वर्तमान बन जाता है और भविष्य के प्रति चिंता चेतावनी भी। कथ्य, पात्र, संरचना, वातावरण, उद्देश्य, संवाद सभी इनकी शैल्पिक चितवनों में विषयानुरूप अपने आप अपना रंग रूप बदलकर वसुन्धरा का रस खींच लेते हैं।''[30] इस प्रकार की परस्पर गतिशीलता मानव जीवन की गतिशीलता बन जाती है। चौथीराम यादव ने लिखा है कि ''ऐतिहासिक उपन्यास केवल तिथियों और धटनाओं का संग्रह मात्र नहीं होते बल्कि उनमें रचनाकार अपनी सर्जनात्मक कल्पना और यथार्थ बोध की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया में, उस युग के सम्पूर्ण मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों की गतिशील परम्परा का विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत करते हैं।''[31]

निष्कर्षतः शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार की रचनात्मक प्रतिभा से उपजी हुई घटनाएँ भी ऐतिहासिक धरातल की नव सृष्टि करने में सफल हुई है जिसमें मध्यकालीन समाज अपने सम्पूर्ण गुण–दोषों के साथ जीवंत हो उठा है। अतीत की खोह में उपन्यासकार का निर्भीक प्रवेश न तो उसे अधिक अभिभूत करता है न आश्चर्यचकित, बल्कि तिमिराच्छादित कुहासे को बेधकर उसे और अधिक आकर्षक और चमकदार बनाकर वर्तमान मूल्यवत्ता से जोड़कर प्रासंगिक बना देना उपन्यासकार की गतिशील दृष्टि का करिश्मा है। उपन्यासकार की इतिहास यात्रा अतीत के पुनर्निर्माण की रचनात्मक चेष्टा है। इतिहास के शव को शिव बनाने की साधना है। मानव की जययात्रा का उद्घोष भी। मध्ययुगीन समाज की सांस्कृतिक–राष्ट्रीय परम्परा में सर्जनात्मक मूल्यों की तलाश कर तथा आज की आवश्यकतानुसार नव रूप प्रदान करना ही उपन्यासकार की विशिष्टता है। औपन्यासिक रचनाशीलता में जिस गहरे इतिहास बोध और परम्परा ज्ञान के साथ गतिशील जीवन की स्थापना की आवश्यकता होती है, वहाँ शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास हमें आश्वस्त करते हैं।

7.5 – अतीत वर्तमान–भविष्य की कड़ी – ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीतकालीन सन्दर्भों का पुनर्निर्माण केवल अतीत दर्शन या अतीत गौरव के लिए ही नहीं करते है बल्कि उन्हें वर्तमान सन्दर्भों से जोड़कर भविष्य को मिलाने के दृष्टिकोण से करते है। यह पुनर्निर्मिति आज के लिए और आने वाले कल के लिए होती है। शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यास भी अतीत को वर्तमान और भविष्य की एक कड़ी के रूप में चित्रित करते है। जो द्वन्द्व वैदिक कालीन उपन्यास 'सरस्वती–सदानीरा' में है वही सत्रहवीं शताब्दी के उपन्यास 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में भी है। जो प्रश्न और आकुलताएँ वैदिककालीन उपन्यास में है, वे मध्यकालीन उपन्यासों में भी है। आज भी वे जीवनादर्श है जो वैदिक जीवन में अपनाए गए थे। कालान्तर में दुर्बलताएँ भी आती हैं। सुधार और परिष्कार भी होते हैं। दुर्बलताओं, सबलताओं, शुभ–अशुभ, मंगलकारी–अमंगलकारी भावों को युग की आवश्यकतानुसार स्वीकार–अस्वीकार किया जा सकता है। यही काल को जोड़कर काल से जीवन का आदर्श

जोड़ने का चिंतन उपन्यासकार की देन है। शत्रुघ्न प्रसाद की उपन्यासकार के रूप में सबसे बड़ी देन ऐतिहासिक परिवेश और सन्दर्भों में सामाजिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक परम्परा को निरन्तर प्रवाहशील दर्शाने की चिन्तना प्रदान करने में है। उपन्यासकार दर्शाना चाहता है कि काल अखण्ड है। काल अनवरत है। जीवन भी अनवरत है। जीवन के प्रश्न और उत्तर अनवरत है। अतः अतीत वर्तमान व भविष्य के लिए प्रासंगिक है। अतीत को समझने की कोशिश ही हमें निरन्तरता का प्रवाह बनाने में सक्षम कर सकती है। डॉ रमेशचन्द्र शुक्ल ने 'सिद्धियों का खण्डहर' की समीक्षा करते हुए लिखा है कि – ''हमारी प्राचीन अर्वाचीन संस्कृति और परम्परा का अटूट आविच्छन प्रवाह तभी जारी रह सकता है जब हम अपने अतीत की आँखों में आँखें डालकर देखें व समझें। रचनाकारों का दायित्व तो है ही कि वे इतिहास के घटनाक्रम को सुधी पाठकों के समक्ष रखें लेकिन पाठकों का दायित्व इससे भी बढ़कर है कि इसे सिर्फ समझें ही नहीं बल्कि इसके जीवनदायी तत्वों को आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित करें।''[32] उपन्यासकार ने दर्शाया है कि वैदिक काल में जिस अखण्ड भारत की चिंता आज भी है। उस गौरव का भान रखना आज भी जरूरी है। जो विषमता प्राचीन जीवन में थी वो आज भी है। आज की आतंकवादियों, शरणार्थियों, नक्सलियों की समस्या वैदिक काल में भी प्रकारान्तर से देखी जा सकती है। मध्यकाल में भी कायम थी। अन्यथा न होगा यदि यह कहें कि ये समस्याएँ मध्यकाल की ही देन है। प्रादेशिकता, वर्ण–विषमता, भाषा–भेद, आर्थिक विषमता आदि की वर्तमान समस्याएँ वैदिक काल में भी दर्शनीय हैं। व्यावसायिक प्रतिष्ठान या विकास कहीं न कहीं मानवता का और धर्म का व्यापार सिखा देता है। 'सरस्वती–सदानीरा' के पणिनगर की सभ्यता के माध्यम से समझा जा सकता है। जनतांत्रिक शासन पद्धति का सूत्र महाराज जनक से प्राप्त होता है। जो प्रश्न गार्गी–मैत्रेयी का है, वो सत्रहवीं शताब्दी में जेबु–आलमआरा के सामने भी खड़ा है। जो निर्मल दाम्पत्य जीवन वैदिक युग में था वह भारतीय संस्कृति में आज भी बना हुआ है। अफगान शरणार्थी शाहमीर षड़यन्त्रपूर्वक कश्मीर पर कब्जा करता है। कश्मीर की समस्या जिस लचीली और स्वार्थी शासन पद्धति का परिणाम थी वो आज भी देखी जा रही है। आतंकवाद और शरणार्थी समस्या ऐसी ही समस्याएँ है। जिस समाज में समताशील समन्वयी संस्कृति व्याप्त रही है वहाँ विभेदक सांस्कृतिक मूल्य क्यों? समन्वयी संस्कृति, अद्वैत चेतना, समरस समाज, उदार चेतना आदि ऐसे मूल्य हैं जो भारतीय समाज को भारतीय बनाए रखने में समर्थ है। इन्हीं अतीत के मूल्यों के साथ वर्तमान और भविष्य को जोड़े रखना उपन्यासकार का लक्ष्य है। 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास की समीक्षा करते हुए रमेश शर्मा ने लिखा है कि – ''उपन्यास में भारत के जिस तात्कालीन घटनाक्रम और सामाजिक परिस्थिति का चित्रण है, उसका कमोबेश आज की स्थिति में बहुत साम्य बैठता है। संभवत यही कारण है कि लेखक बार–बार समाज के संगठन और देशाभिमान पर जोर देता है।''[33] राष्ट्रीय स्वाभिमान और राष्ट्रीय एकता विक्रमादित्य काल में जितनी आवश्यक महसूस हुई, उतनी ही आज भी महसूस करने की जरूरत है और भविष्य में भी रहेगी।

शस्त्र–शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनने की माँग 'सिद्धियों के खण्डहर' में कुमार महेन्द्र करता है और 'हेमचन्द्र– विक्रमादित्य' उपन्यास में योगी शिवनाथ शस्त्र का अभ्यास करवाते है। अहिंसा का अतिरेक राष्ट्र को विनाश देता है। यह शक्ति सम्पन्नता का मूल्य वर्तमान में भी एक बड़ा प्रश्न या कहें समस्या बनकर प्रत्यक्षित है। धर्मान्तरित समाज की पीड़ा हो, चाहे ब्राह्मणवादी वर्ण भेद से उपजी पीड़ा, वर्तमान में भी अनुत्तरित है। इसका मुक्त हृदय से उपचार आज की भी महती आवश्यकता है। ज्योति शुक्ल ने 'सुनो भाई साधो' उपन्यास की समीक्षा करते हुए लिखा है कि – ''धर्म परिवर्तन का उदाहरण कुछ बुनकर कोरियों का है, जो हिन्दू समाज से ऊँचनीच, जात–पांत, सामाजिक–आर्थिक भेदभाव से तंग आकर नये धर्म को अपनाते हैं, लेकिन उन्हें शीघ्र ही ज्ञात हो जाता है कि ये समानता नमाज व पानी पीने या मुस्लिम शासन से कुछ कर में मुक्ति मिलने तक ही है। उनकी दुर्दशा जस की तस है। उपन्यास में पाठक विवश हो जाता है उपन्यास में वर्णित काल को सोचने–समझने के लिए। कबीर की सच्चाई, समाज की पीड़ा आज भी हमारे आगे साकार होकर प्रश्न करती है कि कब तक हम नहीं बदलेंगे? शत्रुघ्न प्रसाद कबीर के माध्यम से यक्ष प्रश्न रखते हैं। सभी रचनाकारों, बुद्धिजीवियों, विचारकों, राजनेताओं, समाज के कर्ताधर्ताओं, पाठकों, समीक्षकों, आलोचकों के समक्ष और उसका समाधान करने का आह्वान करते प्रतीत होते हैं। यही लेखकीय सफलता है।''[34] यह यक्ष प्रश्न ही अतीत, वर्तमान और भविष्य को एक कड़ी में पिरोकर रखता है। समाधान के लिए प्रस्तुत हो जाने की चिंतना के साथ। इतिहास, वर्तमान और भविष्य का दर्पण है। एकरूपता प्रदान करता है। योगेन्द्र गोस्वामी का वक्तव्य इस तथ्य को और अधिक स्पष्टता से अभिव्यक्त करता है। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' की समीक्षा में वे लिखते हैं कि – ''लेखक ने इतिहास को यथार्थ जीवन का निरन्तरित प्रवाह बताया है और इतिहास के सहारे आज के यथार्थ को समझने की चेष्टा की है। आज देश अस्मिता की तलाश कर रहा है। इस माध्यम से अपनी मूर्च्छाग्रस्त अस्मिता तलाश करने का जागरूक प्रयत्न किया गया है। इस दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, हजारीप्रसाद द्विवेदी और शिवप्रसाद सिंह की परम्परा से जुड़ने के बाद भी यह उपन्यास ऐतिहासिक यथार्थ की लोमहर्षक यातनाओं और रक्तपात की कहानी कहने के कारण पाठक को नए क्षितिजों की ओर देखने सोचने को विवश करता है। आज हमारे देशवासी जिस आतंकवाद की छाया में जीने को विवश हैं, उसे विगत सहस्राब्दी में विदेशी सुल्तानों द्वारा अपनाई गई दमन नीति के क्रम में ही समझा जा सकता है। अफगान, तुर्क, मंगोल, आदि के निरन्तर आक्रांत भारत भूमि में रक्तपात, लूट, धर्मान्तरण, स्त्रियों और बालकों के प्रति अमानुषिक अत्याचार, बलात्कार और शोषण के एक लम्बे सिलसिले का इतिहास गवाह है। यहाँ दो संस्कृतियों के बीच चलने वाले संघर्ष का चित्रण किया गया है। इतिहास की यातनाओं का वर्णन देखकर यदि कोई अपने अतीत को जानने की चेष्टा करे तो उसके लिए यह रोमांचकारी आख्यान एक आईने का कार्य कर सकता है।''[35] अर्थात शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास आज के यथार्थ को समझने के लिए

दर्पण का काम करते हैं। 'कश्मीर की बेटी' की समीक्षा करते हुए धर्मप्रकाश विकल ने लिखा है कि – ''डॉ शत्रुघ्न प्रसाद इतिहास की पड़ताल करते हुए तत्कालीन समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था, अन्धविश्वास, रूढ़ियों को और उसके विखण्डनकारी परिणामों को अभिव्यक्त करने में पूर्णतया सफल रहे हैं। रचनाकार पाठक के मन में यह विवेक जागृत करता है कि सही क्या है और गलत क्या? बार–बार की गद्दारी से सबक नहीं सीखने और पुनः–पुनः विदेशी घुसपैठियों और आक्रमणकारियों का विश्वास करने की भूल अतीत में समूचे भारतवर्ष की नियति स्पष्ट करती है। उपन्यास कश्मीर के इतिहास को तो सामने रखता ही है, साथ ही साथ उससे सबक लेकर वर्तमान को और भविष्य को सुरक्षित रखने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। उपन्यास में नए जीवन से जुड़े अनेक पक्ष अपनी सम्पूर्ण विद्रूपताओं में उकेरे गए हैं।''[36] ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार ने भारतीय जीवन को सचेतन भाव दिया है। मनुष्य का चरम लक्ष्य अपनी चेतना को विकसित करने में ही रहा है। वह सदैव कल्पना, भावना, चिन्तना के आधार पर इस प्रकार की धारणाओं को जन्म देता रहा है जो कि सौन्दर्यपूर्ण होकर उसके आनन्द का कारण बन सके और शिवात्मक होकर उनका कल्याण कर सके। अतीत कालीन दुर्बलताओं से बचकर भारतीय जीवन आज की समस्याओं से निजात पाकर जीवन को शिवात्मक बना सकता है। यथार्थ चित्रण के माध्यम से उपन्यासकार ने ऐसा चिंतन प्रस्तुत किया है। मिशेल जेराफा को उद्धृत करते हुए मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि – ''उपन्यास के पाठ में यह बात निहित होती है कि मनुष्य अकेला नहीं जीता है। उसका एक अतीत, एक वर्तमान, एक भविष्य होता है। उपन्यास यह भी सिद्ध करता है कि इतिहास के बिना कोई समाज नहीं होता और समाज के बिना कोई इतिहास नहीं होता। उपन्यास वह कला रूप है जो ऐतिहासिक और सामाजिक रूप से परिभाषित मनुष्य की पुनः प्रस्तुति करता है।''[37] इस प्रकार उपन्यास इतिहास से समाज का परिष्कार करता है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में भी ऐतिहासिक समाज पूर्णता के साथ व्यक्त है और इतिहास के द्वारा समाज को पूर्णता प्रदान करने की चेष्टा भी है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मानव समाज को सुन्दर बनाने की सार्थक चेष्टा शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में दिखाई पड़ती है। उनके साहित्य में चाँदनी जैसे अन्त्यज पात्रों के लिए भी अत्यन्त स्नेह और सहानुभूति है। यही उनकी नवीन सामाजिक सृष्टि के उपदान है। हजारीप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि से परखे तो शत्रुघ्न प्रसाद का साहित्य श्रेष्ठ सर्जन की संज्ञा पाता है। वे लिखते हैं – जो साहित्यकार अपने जीवन में मानव सहानुभूति से परिपूर्ण नहीं है और जीवन के विभिन्न स्तरों को स्नेहार्द्र दृष्टि से नहीं देख सका वह बड़े सहित्य की सृष्टि नहीं कर सकता।''[38] शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में ऐसी स्थितियाँ चित्रित हैं कि पाठक सोचने पर विवश हो उठता है। आलमआरा, जेबुन्निसा, भवनाथ, सरमद आदि के साथ जो बंदिशें हैं या 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में जो धार्मिक उन्माद दिखाया गया है। उसमें चिन्तना व्यक्त भी की गई है और ऐसी परिस्थितियों का निर्माण भी किया गया है कि उनसे प्रभावित पात्र की मनोदशा पाठक की सहानुभूति अनायास

ही पा जाती हैं। पाठक सोचने पर विवश हो उठता है। जवाहर लाल नेहरू के अनुसार – महान् उपन्यास हमेशा आदमी को सोचने की प्रेरणा देते हैं क्योंकि ये ऐसी तस्वीरें हैं जो बड़े दिमागों ने खींची है।''[39] इस परिभाषा के अनुसार शत्रुघ्न प्रसाद का ऐतिहासिक उपन्यासों में सबसे बड़ा योगदान यही है कि इनके उपन्यास पाठक को चिन्तन करने पर विवश कर देते हैं। इतिहास के प्रति चिन्तना हो, चाहे राष्ट्रीयता का प्रश्न, सामाजिक विषताएँ एवं विकृतियाँ हो, चाहे धार्मिक–साम्प्रदायिक वैषमनस्य की चरम अवस्था, रूढ़िगत अन्ध आस्थाएँ हो चाहे व्यक्तिगत स्वार्थ भावना, अहंकार ग्रस्त शासन व्यवस्था हो चाहे, धार्मिक उन्माद से ग्रस्त शासन व्यवस्था, दलित एवं कमजोर वर्ग की पीड़ा हो चाहे नारी जीवन की व्यथा–कथा, शत्रुघ्न जी के उपन्यासों का हर वृतान्त पाठक को चिन्तना के लिए विवश करता है। दार्शनिक, आध्यात्मिक, पारिवारिक जीवन का ऐतिहासिक दर्शन हो चाहे प्रेम विषयक चिन्तना, दाम्पत्य जीवन का प्रश्न हो चाहे सामाजिक समरसता का प्रश्न, पाठक चिन्तन में मग्न हुए बिना नहीं रह सकता है। इन सब विषम परिस्थितियों में समरसता और एकत्व का स्थापन इनके उपन्यासों के ऐसे प्रस्थान बिन्दु है जो अतीत को वर्तमान के लिए प्रासंगिक बना देते है और भविष्य का सुन्दर मार्ग निर्मित कर देते हैं। यह स्थापन उपन्यासकार का महत्वपूर्ण योगदान है। माधव हाड़ा ने कहा है कि – ''अपने वर्तमान को समझने के लिए अतीत की मुकम्मल पहचान जरूरी है। हम अतीतगामी होने की बुराई तो अक्सर करते हैं लेकिन विडम्बना यह है कि मौजूदा समाज की अधिकांश मुश्किलों की जड़ें अतीत में है। अतीत को उलट–पुलट कर देखते रहना चाहिए। क्योंकि इसकी कोई पहचान अन्तिम नहीं होती।''[40] अतीत की पहचान अन्तिम नहीं होती है। प्रत्येक रचनाकार अपने दृष्टिकोण से इतिहास की व्याख्या करता है। शत्रुघ्न प्रसाद की देन है कि इतिहास की सुरक्षा करते हुए पात्रों की मनोदशा से चिंतन व्यक्त करते हैं। जोधा बाई और रानकदे का चिंतन हो चाहे महरूख–तानसेन संवाद हो, पाठक को सोचने पर विवश करता है कि इतिहास द्वारा वर्णित उदार और महान् चरित्र वास्तव में क्या थे? इतिहास की गलत व्याख्या आज के समाज को भी कहीं न कहीं प्रभावित करती है। उसकी प्रेरणाएँ समाज को गलत दिशा देती है। भारतीय समाज में यह प्रभाव द्रष्टव्य है। अतीत सर्वथा बीत नहीं चुका, वह वर्तमान के रूप में किसी न किसी प्रकार पुनर्जीवित है। वर्तमान में रहकर हम अतीत को पढ़ते समझते हैं और आज से जोड़कर उसका मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन करते हैं। यही अतीत अपने माध्यम से हमें वर्तमान को समझने और भविष्य को संकेत देने में सहायक है। भारतीय समाज में व्याप्त ऐतिहासिक धारणाओं ने समाज में कुछ भ्रान्तियाँ दी है। कुछ नायकों को महान् सिद्ध कर दिया, बिना गुणों के ही। महान् गुण रखने वाले नायकों को नेपथ्य में ले गए। इतिहास की इस दुर्बलता का परिष्कार शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास करते है। यह बड़ा योगदान है। ऐतिहासिक उपन्यासों की वर्तमान प्रासंगिकता दर्शाते हुए शशिभूषण सिंहल लिखते हैं कि – ''उपन्यास सामाजिक जीवन को अतीत की भूमि में प्रस्तुत कर ऐतिहासिक उपन्यास का रूप धारण कर लेता है। इतिहास

किसी भौगोलिक परिधि एवं सांस्कृतिक परिवेश में स्थित मानव जाति के रूप निर्धारण और पारस्परिक विकास की प्रक्रिया है। अतीत के अध्ययन से हमें समाज के वर्तमान रूप को समझने और उसके भविष्यत रूप को ढालने में सहायता मिलती है।''[41] विवेच्य उपन्यास इस धारणा पर पूर्ण खरे उतरते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास वैदिक जीवन से लेकर मध्यकालीन परिवेश के पारस्परिक क्रम को दर्शाते हैं। अतीतकालीन मानव समाज अपनी सम्पूर्णता में व्यक्त हुआ है। समाज को अवनत और उन्नत करने वाली सभी परिस्थितियों और कारकों का विवेचन स्थितियों, पात्रों, मनोदशाओं एवं कथनों द्वारा अभिव्यक्त किया है। अतीत में वर्तमान पूर्णतः समाहित है। मधुरेश ने लिखा है कि – ''ऐतिहासिक उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता इस तथ्य में निहित है कि अतीत के परिवेश में वर्तमान को कहाँ तक समाहित करके चला है।''[42] शत्रुघ्न के उपन्यासों को पढ़ते समय अतीत का आभास रहता है। परन्तु मन वर्तमान में स्थित हो जाता है। पात्रों की मनोदशाएँ आज की है। जीवन अतीत है। जीवन के सुख–दुख अतीत के हैं। घटनाएँ अतीत में घटती है। चिंतन अतीत का ही हैं, परन्तु अतीतकालीन यक्ष प्रश्न आज भी हमारे सामने हैं या आज उन स्थितियों की देन है। पाठक वर्तमान पर चिंतन करने को विवश हो जाता है। शत्रुघ्न प्रसाद की विशिष्ट देन ये है कि उनके ऐतिहासिक उपन्यास वर्तमान को सचेत करते हैं और भविष्य की सुरक्षा का आश्वासन। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में व्यक्त इतिहास के यथार्थ व उससे उपजे प्रश्नों के माध्यम से वर्तमान और भविष्य चेतना प्राप्त कर सकते है। उपन्यासकार ने इतिहास के अनसुलझे पृष्ठों और अनुत्तरित प्रश्नों के द्वारा वर्तमान पीढ़ी को स्वाधीनता एवं राष्ट्रीयता की परिभाषा समझाने का प्रयास किया है। संघर्ष काल में हमारे धर्मगुरूओं ने स्वतंत्रता के प्रति जागृति पैदा करने और जनसहयोग से शासकों को मजबूती देने का सार्थक प्रयास कर राष्ट्र सेवा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार ने यह जागृति पैदा करने की बात स्वीकारते हुए स्वयं ने ही कहा है कि – ''अपने उपन्यासों में विभिन्न युगों के बहुआयामी यथार्थ एवं संघर्ष को प्रामाणिकता के साथ कला के स्तर पर प्रस्तुत किया है। कथानक की नवीनता एवं प्रवाहपूर्णता, संवाद की जीवंतता, चरित्रों का स्वाभाविक विकास, प्रगतिशील भारतीयता की जीवन दृष्टि और सशक्त भाषा के द्वारा मैंने कलात्मक उपन्यासों की रचना की कोशिश की है।''[43] अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में विभिन्न युगों के यथार्थ बोध से अवगत करवाकर, प्रगतिशील जीवन का चिंतन देकर, राष्ट्रीय अस्मिता का भाव जगाकर, जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा कर, सांस्कृतिक चेतना जागृत कर इतिहास को गतिशील दिखाकर व वर्तमान और भविष्य से जोड़कर शत्रुघ्न प्रसाद ने जो चिंतन व्यक्त किया है वह ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए अमूल्य योगदान है।

संदर्भ सूची

1. हमारा दृष्टिकोण – मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ, पेज – 5
   (शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व विशेषांक – 2004)
2. हमारा दृष्टिकोण – मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ, पेज – 7
   (शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व विशेषांक – 2004)
3. सदानीरा – फरवरी–अप्रैल 2016 – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 65
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पेज – 47
5. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद मई–जुलाई 2015, पेज – 10
6. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 205,78,76
7. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 65,95,225
8. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद – अगस्त–अक्टूबर 2016, पेज – 57
9. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद – मई–जुलाई 2015, पेज – 22,21
10. मधुमती – रा.सा.अ. उदयपुर – सितम्बर–1991, पेज – 25,30
11. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद – अगस्त–अक्टूबर 2016, पेज – 54
12. हिन्दी उपन्यास : सृजन एवं सिद्धान्त – नरेन्द्र कोहली, पेज – 50
13. हिन्दी उपन्यास : सृजन एवं सिद्धान्त – डॉ सरोज सिंह, पेज – 15
14. हिन्दी उपन्यास कला – डॉ रामलखन शुक्ल, पेज – 51
15. बाणभट्ट की आत्मकथा : पाठ एवं पुनर्पाठ – मधुरेश, पेज – 22
16. उपन्यास और लोकतन्त्र – मैनेजर पाण्डेय, पेज – 18
17. वृहद् हिन्दी कोश – कालिका प्रसाद, पेज – 120
18. हजारी प्रसाद द्विवेदी – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पेज – 167
19. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 6,109,12,13
20. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद – मई–जुलाई 2016, पेज – 25
21. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद – मई–जुलाई 2016, पेज – 20
22. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद – मई–जुलाई 2016, पेज – 21
23. साक्षात्कार – जून–जुलाई 2010, पेज – 109
24. मधुमती – सितम्बर 1991, पेज – 25
25. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, अगस्त–अक्टूबर 2016 पेज – 54
26. मधुमती – सितम्बर 1991, पेज – 24
27. साहित्येतिहास में स्त्री विमर्श – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 314
28. ऐतिहासिक उपन्यास एवं रोमांस – गुरदीप सिंह खुल्लर, पेज – 74
29. बाणभट्ट की आत्मकथा : पाठ एवं पुनर्पाठ – मधुरेश, पेज – 97

30. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद – अगस्त–अक्टूबर 2016, पेज – 53
31. बाणभट्ट की आत्मकथा : पाठ एवं पुनर्पाठ – मधुरेश, पेज – 175
32. हमारा दृष्टिकोण – शत्रुघ्न प्रसाद कृतित्व विशेषांक – 2004 सं. – मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ, पेज – 4
33. हमारा दृष्टिकोण – शत्रुघ्न प्रसाद कृतित्व विशेषांक – 2004 सं. – मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ, पेज – 9
34. हमारा दृष्टिकोण – शत्रुघ्न प्रसाद कृतित्व विशेषांक – 2004 सं. – मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ, पेज – 18
35. हमारा दृष्टिकोण – शत्रुघ्न प्रसाद कृतित्व विशेषांक – 2004 सं. – मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ, पेज – 19
36. हमारा दृष्टिकोण – शत्रुघ्न प्रसाद कृतित्व विशेषांक – 2004 सं. – मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ, पेज – 24
37. उपन्यास और लोकतन्त्र – मैनेजर पाण्डेय, पेज – 2
38. हजारी प्रसाद द्विवेदी – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पेज – 64
39. हिन्दी साहित्य की प्रवृतियाँ – जयकिशन खण्डेलवाल, पेज – 670
40. राजस्थान पत्रिका – माधव हाड़ा की पल्लव के साथ बातचीत – सृजन पृष्ठ – 29/12/16
41. हिन्दी उपन्यास की प्रवृतियाँ – शशिभूषण सिंहल, पेज – 28
42. आत्मकथा और उपन्यास – ज्ञानेन्द्र कुमार सन्तोष, पेज – 127
43. साक्षात्कार – अरूण भगत के साथ शत्रुघ्न प्रसाद की बातचीत – अगस्त–सितम्बर 2010, पेज – 18

अष्टम अध्याय

उपसंहार

अष्टम अध्याय

उपसंहार

समान्तर कोश में उपसंहार शब्द का अर्थ अंत, अनुकथा, उत्तर कथा, प्रतिसंहार एवं समाहार दिया गया है।[1] अर्थात् आलोचनात्मक, निबंधात्मक या शोधात्मक लेखन का समाप्ति संदेश जिसमें पूर्व लिखित लेखन का मूल स्वर कम शब्दों में स्पष्ट हो जाए, उपसंहार कहलाता है। संक्षेप में पूर्व लेखन का समाहार होता है।

अतीतकालीन पृष्ठभूमि पर कल्पना का सहारा लेकर लिखा गया साहित्य ऐतिहासिक कहलाता है। जीवन का यथार्थवादी चित्रण उपन्यास की विशिष्टता है। अतः अतीतकालीन जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण जिसमें अतीत का जीवन आज के जीवन के समीप जान पड़े, ऐतिहासिक उपन्यासों में अभिव्यक्त होता है। जिस प्रकार प्रारम्भिक उपन्यास उपदेशात्मक या शिक्षात्मक भाव लेकर लिखे गए वैसे ही प्रारम्भिक ऐतिहासिक उपन्यास भी इतिहास के माध्यम से हिन्दू धर्म के गौरव की प्रतिष्ठा स्थापित करते हुए लिखे गए। इतिहास की उपेक्षा कर कल्पना की उड़ान भरते हुए ऐतिहासिक प्रेम प्रसंगों से ओत–प्रोत रचनाएँ हुई। इन्हें ऐतिहासिक रोमांस की संज्ञा दी गई। हिन्दू गौरव, हिन्दू नायक पूजा, मुस्लिम शासकों का क्रूर चित्रण, प्रेम प्रसंगों की उद्‌भावनाएँ आदि इन उपन्यासों की विशेषताएँ रही है। किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, ब्रजनन्दन सहाय आदि इस काल के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार रहे। हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों का जेम्स स्कॉट कहलाने वाले वृन्दावन लाल वर्मा ने इतिहास –कल्पना से समन्वित श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना की। जैसे प्रेमचन्द ने सामाजिक उपन्यासों का परिष्कार किया वैसे ही वृन्दावन लाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यासों का परिसंस्कार किया। गढ़ कुण्डार, मृगनयनी, विराटा की पद्‌मिनी, माधव जी सिंधिया, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि इनके लोकप्रिय उपन्यास हैं।

चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, भगवती चरण वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं जिन्होंने विभिन्न दृष्टिकोणों एवं आयामों के साथ ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रीवृद्धि की है। यशपाल ने 'दिव्या' नामक उपन्यास में चार्वाक दर्शन को स्थापित करने का प्रयास किया है। राहुल सांकृत्यायन एवं रांगेय राघव मार्क्सवादी दृष्टि के उपन्यासकार हैं। राहुल सांकृत्यायन ने वोल्गा से गंगा, जय यौधेय व सिंह सेनापति उपन्यासों में इतिहास को मार्क्सवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया है। रांगेय राघव की मार्क्स दृष्टि कुछ सुधरी हुई प्रगतिशील दृष्टि है। 'मुर्दों का टीला' मोहनजोदड़ों की सभ्यता पर आधृत चर्चित उपन्यास है। भवगतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' पाप–पुण्य की परिस्थितिजन्य व्याख्या प्रस्तुत करता है। चतुरसेन शास्त्री ने इतिहास –रस को प्रधानता देते हुए वैशाली की नगरवधू, सोमनाथ, वयंरक्षाम आदि श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना कर नया कलेवर

प्रस्तुत किया। हजारीप्रसाद द्विवेदी इस क्षेत्र में अभिनव सृष्टि करने वाले उपन्यासकार रहे हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' पुनर्नवा, अनामदास का पोथा, चारू–चन्द्रलेख नामक ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना कर भारतीय संस्कृति का परिष्कृत रूप स्पष्ट किया है। सांस्कृतिक उपन्यासों की संज्ञा से विभूषित इनके उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना का स्वर भी मुखरित हुआ है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' ऐतिहासिक उपन्यासों में अभिनव प्रयोग सिद्ध हुआ है। इनके उपन्यासों में महाकाव्यात्मकता का पुट मिलता है।

अमृतलाल नागर प्रेमचन्द की परम्परा का निर्वाह करने वाले ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं, जिन्होंने शतरंज के मोहरे व सुहाग के नूपुर जैसे लोकप्रिय उपन्यासों की रचना की है। रांगेय राघव की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए इन्होंने तुलसीदास एवं सूरदास के जीवन पर आधारित 'मानस का हंस' एवं खंजन–नयन' नामक जीवनीपरक ऐतिहासिक उपन्यासों की भी रचना की है। 'मानस का हंस' ऐतिहासिक उपन्यासों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। शिवप्रसाद सिंह एवं नरेन्द्र कोहली साठोत्तर काल के प्रतिभाशाली उपन्यासकार हुए हैं। शिवप्रसाद सिंह के नीला चाँद, कुहरे में युद्ध, दिल्ली दूर है आदि श्रेष्ठ उपन्यास हैं जिनमें आंचलिकता का तत्व समावेशित है। नरेन्द्र कोहली की पहचान पौराणिक उपन्यासकार की है परन्तु इनका 'तोड़ो कारा तोड़ो' प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है जो स्वामी विवेकानन्द के जीवन पर केन्द्रित है। विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के जोगी मत जा, विश्वबाहु परशुराम, जाग मछन्दर गोरख आया आदि मार्क्सवादी दृष्टि के ऐतिहासिक उपन्यास है जिनमें भर्तृहरि, परशुराम एवं गोरखनाथ कालीन समाज का चित्रण किया गया है। राजीव सक्सेना रचित 'पणिपुत्री सोमा' भी एक चर्चित उपन्यास है। राजेन्द्र मोहन भटनागर, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, गुरूदत्त, मनमोहन सहगल, श्यामसुन्दर भट्ट, भगवतीशरण मिश्र, भगवान सिंह, मनु शर्मा, चित्रा चतुर्वेदी, शरद पगारे, क्षमा कौल, चन्द्रकान्ता आदि ऐसे उपन्यासकार हैं जो ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा को समृद्ध करने वाले प्रमुख हस्ताक्षर माने जाते हैं।

आलोचकों द्वारा उपेक्षित रहने पर भी यह विधा निरन्तर समृद्ध होती जा रही है। आधुनिक समस्याओं को अतीतकालीन जीवन से जोड़कर देखा जा रहा है और निदान खोजने का प्रयास किया जा रहा है। आज के मानव को अतीत के साथ जोड़कर राष्ट्रीय–सांस्कृतिक भाव प्रतिष्ठित करने की सार्थक चेष्टा इन उपन्यासों के माध्यम से हो रही है। इस दृष्टि से यह साहित्यिक विधा प्रवहमान है। शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है कि – "अगर आपने मन ही मन निश्चय कर लिया है कि इतिहास में लौटना प्रतिगामिता है और ऐसा करने वाले वर्तमान से टकराने से कतराते हैं, तब तो बहस का सवाल ही नहीं है। आज यदि पूरे विश्व के साहित्य को देखें तो अतीत की ओर दौड़ आपको हतप्रभ कर देगी। आज के तथाकथित आधुनिक मूल्यों की कशमकश से घबराकर लोग ऐसे चरित्रों को ढूँढ रहे हैं जो अतीत के

होते हुए भी हमारे वर्तमान के आदर्श हैं।''[2] अतः स्पष्ट है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में अतीत का यथार्थ प्रस्तुत करते हुए आज के सवालों का समाधान खोजा जा रहा है।

इसी परम्परा में शत्रुघ्नप्रसाद एक प्रमुख नाम है जिन्होंने वैदिककालीन, ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी कालीन एवं मध्यकालीन भारत के जीवन का यथार्थ चित्रण करते हुए अत्यन्त श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना की है। 'सरस्वती सदानीरा' में वैदिक जीवन मूर्त हुआ है। 'शिप्रा साक्षी है' ईसा पूर्व पहली शताब्दी की कथा कहती है जहाँ से विक्रम संवत् प्रारम्भ होता है। 'सुनो भाई साधो' में कबीरकालीन जीवन का लेखा है। 'कश्मीर की बेटी' में कश्मीर की त्रासदी व्यक्त की गई है। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' दक्षिण भारत के इतिहास को व्यक्त करता है जब विजयनगर की स्थापना होती है। 'सिद्धियों के खण्डहर' में नालन्दा आदि के खण्डहरों में बदलने की गाथा कही गई है। 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' में इतिहास द्वारा उपेक्षित हेमू के वीरत्व, साहस और संघर्ष को दर्शाया गया है। 'अरावली का मुक्त शिखर' में महाराणा प्रताप एवं अकबर के संघर्ष को नयी दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' में औरंगजेबकालीन मजहबी सियासत की दहशत का साक्षात् चित्रण हुआ है। शत्रुघ्न प्रसाद एक प्रभावशाली एवं विविध आयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। वे उपन्यासकार के साथ–साथ कवि, कहानीकार, श्रेष्ठ संपादक, चिंतक व विचारक एवं आलोचक भी हैं। ओजस्वी वक्ता और सरल जीवन के उदाहरण हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सक्रिय पदाधिकारी रहे हैं। सरल और ईमानदार जीवन की प्रतिमूर्ति है।

ऐतिहासिक यथार्थ की अभिव्यक्ति, राष्ट्रीय–सांस्कृतिक प्रगतिशील चेतना की प्रतिष्ठा, समकालीन समस्याओं को उजागर कर समाधान खोजना, अतीतकालीन गौरव का दर्शन कराना, राष्ट्रीय अस्मिता की खोज आदि शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की प्रमुख कथ्यगत विशिष्टताएँ हैं। युगीन–चेतना के माध्यम से राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक जीवन में परिष्कार के पक्षधर हैं। प्रयत्नशील हैं। समाज का इतिहास के परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन कर नवीन सृष्टि का मार्ग सुझाते हैं। उनका मानना है कि आज का जीवन अनिवार्यत अतीत की देन है। काल अखण्ड है। अनवरत गतिशील है। उन्होंने अतीत के सबल और दुर्बल दोनों पक्षों को चित्रित किया है। उन्होंने दर्शाया है कि बाहर से आया हुआ वर्ग आज तक भारतीय नहीं हो सका, यह देश के लिए शुभ संकेत नहीं है। यह अतीत से जुड़ा वर्तमानकालीन सत्य है। अद्वैतवादी चेतना को भी प्रमुखता दी है। कबीर, मध्वाचार्य व दाराशिकोह इसी के प्रतीक नायक हैं। वे सांस्कृतिक समन्वय के पक्षधर हैं। सार्थक चेष्टा करते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद ने दर्शाया है कि भारतीय इतिहास द्वन्द्वग्रस्त रहा है। वैदिक कालीन वैदिक–व्रात्य द्वन्द्व को मध्यकाल में दारा–औरंगजेब द्वन्द्व के रूप में देखा जा सकता है। गुरू वैषम्पायन एवं याज्ञवल्क्य के वैचारिक द्वन्द्व को 'सिद्धियों का खण्डहर' में महाराज गोविन्दपाल और महेन्द्र के मध्य देखा जा सकता है। अखण्ड राष्ट्र की स्थापना का भाव प्रदान करते हुए

उन्होंने कहा है कि आसेतु हिमालय पूरा भारतवर्ष है। काशी, मगध आदि केवल उसके भाग हैं। वर्णगत और सम्प्रदायगत भेदों को भुलाकर एकत्व की भावना लाने के उद्देश से उन्होंने अद्वैतवादी भावना को मान्यता दी है। सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से व्रात्य कन्या का विवाह वैदिक युवक से करवाया है। विषमशील का विवाह यूनानी हला से करवाया है। श्रीदेवी–मरप्पा का विवाह भी इसी समन्वय की कड़ी है। दासीपुत्र गजमुख और अतिशूद्रा चाँदनी का उद्धार भी उनका वर्णभेद मिटाने की दिशा में बढ़ाया गया कदम है। मूल्यगत दुर्बलता राष्ट्रहित में नहीं होती, यह मंतव्य भी व्यक्त किया गया है।

भारतीय इतिहास द्वन्द्वग्रस्त रहा है। वैदिककाल में वैदिक–व्रात्य व वैषम्पायन–याज्ञवल्क्य के मध्य का द्वन्द्व है तो मध्यकाल में शैव, वैष्णव, बौद्ध, जैन आदि का द्वन्द्व सत्य है। राजनीति, समाज, व्यक्ति सब द्वन्द्वग्रस्त हो जाते हैं और परिणाम अशान्ति और पतन के रूप में मिलता है। 'सिद्धियों के खण्डहर' उपन्यास की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि – ''कुमार महेन्द्र द्वारा लोकजागरण एवं अस्त्रों द्वारा सुरक्षा का अथक प्रयत्न और सिद्ध धोरपा का विरोध राजनीति में द्वन्द्व की स्थिति। बौद्ध मत द्वारा समाज में समता लाने का प्रयास, बौद्ध होने पर वैदिक ब्राह्मण द्वारा बहिष्कार, निम्न वर्ग में नए मजहब का प्रवेश, बौद्ध तन्त्र साधना में महामुद्रा के रूप में युवती का उपयोग समाज में द्वन्द्व की स्थिति। कुमार महेन्द्र का मौन अनुराग और बौद्ध साधकों द्वारा सुवर्णा को महामुद्रा रूप में आमन्त्रण उपासिका का द्वन्द्व नारी मन में द्वन्द्व की स्थिति।''[3]

ऐसा द्वन्द्व उनके प्रत्येक उपन्यास में दृष्टिगोचर होता है तथा संकेत देता है कि इस द्वन्द्व ने राष्ट्रीय अखण्डता को क्षति पहुँचाई है। भारतीय खण्डबोध दृष्टि ने विदेशियों को स्थापित होने का अवसर दिया। नव धर्मान्तरित समाज भी हमारी वर्णगत भेदनीति के परिणाम स्वरूप ही पनपा। आतंकवाद एवं अन्य वर्गगत समस्याएँ जो आज का कटु सत्य है, अतीत की देन है। प्रभाकर श्रोत्रिय ने स्वीकार किया है कि – ''अतीत वर्तमान से पूरी तरह अलग नहीं हो पाता, उसका कोई न कोई अंश अनचाहे भी वर्तमान से लिपटा रहता है और यह बात किसी बौद्धिक तर्क या चतुराई से झुठलाई नहीं जा सकती है, क्योंकि उसका सम्बन्ध तर्क से नहीं तत्व और अन्तर्निहित संरचना के मौलिक सत्य से है। अलबत्ता यह जरूरी है कि अतीत से आधुनिकता अनुप्लावित होती रहती है।''[4]

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास पाठक को सोचने पर विवश करते हैं और सही–गलत का तर्कसम्मत हल सुझाते है। वास्तव में सत्य क्या था और क्या है, यह सोचने पर विवश करते हैं, शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यास। समीक्षक धर्मप्रकाश विकल ने अपने लेख – 'कश्मीर की बेटी : एक समीक्षा' में लिखा है कि ''डॉ शत्रुघ्न प्रसाद इतिहास की पड़ताल करते हुए तत्कालीन समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था, अंधविश्वास व रूढ़ियों को तथा उसके विखंडनकारी परिणामों

को अभिव्यक्त करने में पूर्णतया सफल रहे हैं। रचनाकार पाठक के मन में यह विवेक जाग्रत करता है कि सही क्या है? और गलत क्या?''[5]

शत्रुघ्न प्रसाद का मत है कि युवा पीढ़ी के संकल्पशील कर्मठता अपनाने पर ही जनतांत्रिक मूल्य सुरक्षित रह सकते हैं। उनके उपन्यासों में युवा शक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। युवा ही परिवर्तन लाने में सक्षम हैं। 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास की अपनी बात में उन्होंने स्वयं लिखा है कि – ''जब नयी पीढ़ी, नयी दृष्टि और अपनी संकल्पित कर्मठता से समष्टि के लिए समर्पित होती है, तो युग परिवर्तन होता है। विदेशी शासन, शोषण, दमन का चक्र रूक जाता है। फिर से जनतन्त्र मुस्कराता है। विदेशी जन समाज एवं संस्कृति से जुड़कर स्वदेशी बनने को आकुल हो जाता है। तभी तो विषमशील को सबने विक्रमादित्य कहा। शकों का सांस्कृतिक–सामाजिक समन्वय आरम्भ हुआ।''[6]

मजहबी सियासत देश व समाज के हित में नहीं होती है। इस्लामी कट्टरता ने मध्यकालीन भारत को बहुत दंश दिया है। इसी यथार्थ को शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में शिद्दत से महसूस किया जा सकता है। वे लिखते है कि – ''यह उपन्यास युगीन यथार्थ को दिखा देता है कि मजहबी सियासत की कट्टरता दहशत ही फैलाती है। चतुर्दिश हाहाकर ही गूँजता है। मानवता आहत होती है। हम आज भी इस दहशत की अनुभूति से काँप जाते हैं। ऐसा लगता है कि इस दहशत का दर्द पुनः उभर आया है।''[7]

भारत की संस्कृति समन्वयी संस्कृति है। जो आलोचक वैदिक संस्कृति पर दोषारोपण करते रहते है, उनको एक संतुलित जवाब शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने 'सरस्वती–सदानीरा' उपन्यास की भूमिका में दिया है। समन्वयी संस्कृति जो आज भी हमारे समाज में कायम है, की स्थापना और उसके प्रति निष्ठा भाव दर्शाना ही उपन्यासकार का ध्येय है। लिखते है कि – ''ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में प्रमाण है कि किस प्रकार वैदिक ऋषियों ने यज्ञ संस्कृति, कृषि सभ्यता तथा वैदिक जीवन शैली को शनैः–शनैः विकसित किया। संशोधन, समन्वयन, परिवर्द्धन द्वारा भारतीय संस्कृति तथा समाज की क्रमिक रचना हुई है। पुराकालीन इस समन्वयी रचना की यथासंभव प्रामाणिक एवं रसमयी कथा ही इस उपन्यास में वर्णित हुई है।''[8]

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में इसी समन्वयी संस्कृति की प्रतिष्ठा के प्रयास दिखाई देते हैं। ये उपन्यास सांस्कृतिक उन्नयन की दिशा में आगे कदम बढ़ाने वाले सिद्ध होते है।

राष्ट्रीय अस्मिता के साथ मानवीय मूल्यों को मानव जीवन के अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार करते हुए उदात्त मानवीय भावों का उद्घाटन किया है। चरित्रों की उज्ज्वलता, कर्म की प्रधानता, काम का श्रेयस्कर रूप, साहित्य की रक्षा, मानवीय गुणों के विकास आदि मानवीय तत्वों को आपके उपन्यासों में सहज प्रस्फुटित होते देखा का सकता है। भारतीय

जीवन के अनेक जटिल प्रश्नों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए वे स्वातन्त्र्य भाव को ही प्रबल रूप से जाग्रत रखना चाहते हैं। अमरनाथ सिन्हा ने अपने लेख – 'स्वातन्त्र्य यज्ञ की आहुति : अरावली का मुक्त शिखर' में लिखा है कि – ''डॉ शत्रुघ्न प्रसाद ने भारतीय इतिहास के संघर्ष बिन्दुओं की सटीक पहचान मूल्यांकन तथा उनके मूल्य स्थापन के लिए मानो खड्. गहस्त संकल्पित रचनाधर्मिता अपना ली है। उनके ऐतिहासिक उपन्यास उनकी रचनाशीलता के इसी बीज संस्कार के प्रतिफलन हैं। शकों के विरूद्ध संघर्ष पर 'शिप्रा साक्षी है' बख्तियार खिलजी के आक्रमण पर 'सिद्धियों के खण्डहर', मुगलिया आक्रमण के प्रारम्भिक दौर पर 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' आदि हैं। 'अरावली का मुक्त शिखर' उसी बीज संस्कार का अगला प्रस्फुटन है। अरावली का मुक्त शिखर में एक अन्य महाप्रश्न की मीमांसा बड़ी गहराई से की गई है। महाप्रश्न यह है कि सारी शक्तिमत्ता, शौर्य उत्कट–उद्भट चारित्र्य के बावजूद भारत शताब्दियों तक गुलाम क्यों रहा? पराजित क्यों होता रहा? उपन्यास में विभिन्न प्रसंगोद्भावनाओं, चरित्र उपस्थापन, संवाद–परिसंवादों आदि के माध्यम से यह महाप्रश्न विवेचित है। समाधान के संकेत भी निहित है। राजपूत राजाओं में शौर्य–पराक्रम की कमी नहीं, किन्तु उनकी क्षुद्र एकल नीति, स्वार्थ और अदम्य अहंकार उन्हें एकछत्र संगठित होने नहीं देते।''[9]

इसी बीज संस्कार की पड़ताल, समाधान एवं संकल्प शक्ति अपनाकर राष्ट्रहित में समर्पित होने का भाव प्रदान करना शत्रुघ्न प्रसाद का अभीष्ट है। इतिहास के इन्हीं कारणों को इतिहास में खोजकर वर्तमान से जोड़ने का संकल्प लेकर ही शत्रुघ्न प्रसाद निरन्तर लेखनरत हैं। उन्होंने स्वीकार करते हुए लिखा है कि – ''इतिहास तो यथार्थ जीवन का निरन्तरित प्रवाह है। अतीत से वर्तमान तक काल का प्रवाह अखंडित है। आज के यथार्थ और इसके कारण को हम अपने इतिहास में देख सकते है। सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, हजारीप्रसाद द्विवेदी और शिवप्रसाद सिंह ने इसी यथार्थ के सहारे आज के यथार्थ को समझना चाहा है। मैं भी इसी संकल्प के साथ लेखन कर रहा हूँ।''[10]

ऐतिहासिक यथार्थ को समझकर राष्ट्रीय अस्मिता को प्रतिस्थापित करने का भाव उपन्यासकार का मूल स्वर है। राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान और स्थापना की भावना ही उन्हें इतिहास चरित्रों की ओर ले जाती है। वास्तव में हमारी राष्ट्रीय अस्मिता अतीतकालीन चरित्रों और स्मारकों में पायी जाती है। डॉ. देवेन्द्र दीपक ने 'राष्ट्रीय अस्मिता और साहित्यकार' आलेख में लिखा है कि – ''भारत की राष्ट्रीय अस्मिता भारत के ऋषि–मुनियों, संतों, दार्शनिकों, धर्माचार्यों, महाकवियों, विद्वानों, महापुरूषों की चर्चा के विधायक तत्वों के मेल से आकार लेती है। भारत में सभी वर्गों, क्षेत्रों, पंथों, जातियों के मनीषियों ने इसे पहचान दी है। राम, कृष्ण, शिव, बुद्ध, महावीर, नानक, रहीम, रसखान, दाराशिकोह आदि के चरित्र और उनकी शिक्षाएँ हमारा पाथेय है।''[11]

शत्रुघ्न प्रसाद ने भी राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान इतिहास के ऐसे ही पात्रों के माध्यम से करवाई है। याज्ञवल्क्य, कबीर, स्वामी विद्यारण्य, उधोदास वैरागी, सूफी फकीर सरमद, दाराशिकोह, रहीम, आनन्द भिक्षु जैसे संतों, दार्शनिकों, विचारकों के अलावा हेमचन्द्र (हेमू), विषमशील विक्रमादित्य, हरिहर–बुक्का, कोटा देवी, महाराणा प्रताप आदि स्वतंत्रता प्रिय संघर्षशील वीर नायकों के माध्यम से राष्ट्रीय अस्मिता को प्रतिष्ठित रखने की प्रेरणा शत्रुघ्न प्रसाद ने प्रदान की है। यही लेखक का अभीष्ट है। ये उपन्यास सिद्ध करते हैं कि शत्रुघ्न प्रसाद ऐतिहासिक उपन्यासकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। डॉ सुरेश गौतम ने अपने एक आलेख में लिखा है कि – ''यहाँ यह रेखांकित करना आवश्यक है कि राजनीतिक उथल–पुथल, घटनाओं का यथातथ्य चित्रण, चारित्रिक संकल्पना में त्वरा और भावनात्मक आवेग समेटते हुए शत्रुघ्न प्रसाद कभी आचार्य चतुरसेन के निकट चले जाते हैं, कभी वृन्दावनलाल वर्मा के। इनके उपन्यासों में हजारी प्रसाद द्विवेदी के लालित्य चिंतन की इतिहास दृष्टि को आसानी से देखा जा सकता है। यदि एक ओर शत्रुघ्न प्रसाद ने भारतीय इतिहास के उल्लास भरे प्रसंगों को आत्मीय शैली में अंकित कर उन्हें नई ऊर्जा दी है तो दूसरी ओर भावनात्मक जमीन पर कठोर निर्ममता के साथ अपनी दुर्दशा के कारणों की गहराई से पड़ताल की है।''[12]

निष्कर्षतः शत्रुघ्न प्रसाद अतीतकालीन यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए सचेष्ट दिखाई पड़ते हैं। इस दिशा में उनके उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का सुन्दर संतुलित समायोजन किया गया है। वस्तु और कला के संयोजित रूप में ये श्रेष्ठ उपन्यासों की श्रेणी में स्वागतेय हैं। इनके उपन्यासों में राहुल सांकृत्यान जैसा रूखा इतिहास नहीं है। हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसी महाकाव्यात्मकता भी नहीं है। वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों से निकटता जरूर है। भगवती चरण वर्मा एवं यशपाल जैसी कल्पना प्रधानता भी नहीं है। चतुरसेन शास्त्री जैसी इतिहास रस की अभिलाषा भी नहीं है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों के गहन अध्ययन एवं अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों के अध्ययन के बाद मेरा निष्कर्ष है कि ये न वृन्दावनलाल वर्मा है न चतुरसेन शास्त्री, ये केवल शत्रुघ्न प्रसाद है। अपने में अद्वितीय! अपने में विलक्षण! ये एक श्रेष्ठ मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं।

संदर्भ सूची

1. समान्तर कोश – अरविन्द कुमार, पेज – 262
2. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में काल चेतना एवं संस्कृति – शत्रुघ्न प्रसाद, पेज – 16
3. सिद्धियों के खण्डहर – शत्रुघ्न प्रसाद, भूमिका
4. कविता की तीसरी आँख – डॉ प्रभाकर श्रोत्रिय, पेज – 7
5. हमारा दृष्टिकोण – मधुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ, पेज – 24
6. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद – पेज – अपनी बात
7. शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश – शत्रुघ्न प्रसाद, आमुख
8. सरस्वती सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, भूमिका
9. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद – मई–जुलाई–2015, पेज – 10–13
10. तुंगभद्रा पर सूर्योदय – शत्रुघ्न प्रसाद, भूमिका
11. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद – अप्रैल–जून–2014, पेज – 56
12. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद – अगस्त–अक्टूबर–2016, पेज – 54

शोध सारांश

शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यास : एक मूल्यांकन

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों का मूल्यांकन उनकी इतिहास दृष्टि को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना के धरातल पर किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में ऐतिहासिक यथार्थ एवं राष्ट्रीय –सांस्कृतिक विचारों की स्थापना के आधार पर स्थान निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। प्रथम अध्याय 'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्भव एवं विकास' में हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास–क्रम को दर्शाते हुए उनमें व्यक्त अतीत के राष्ट्रीय–सांस्कृतिक विचारों को वर्णित किया गया है। उपन्यास सृजन के प्रारम्भ काल में ही ऐतिहासिक उपन्यासों का लेखन भी होने लगा, यह वर्णन करते हुए इस परम्परा के उपन्यासों के विकास को वर्णित किया गया है। उपन्यास की विचार–भूमि को स्पष्ट किया गया है। प्रेमचन्द–पूर्व काल में ऐतिहासिक उपन्यासों का लेखन ऐतिहासिक रोमांस के रूप में हुआ जिसके प्रणेता किशोरीलाल गोस्वामी हैं। कल्पना की प्रधानता, रोमांस–प्रवृति की अधिकता, नायक–पूजा आदि प्रवृत्तियों की प्रमुखता के साथ–साथ हिन्दू गौरव एवं राष्ट्रीय चेतना इन उपन्यासों के सृजन का मुख्य ध्येय रहा है। गंगा प्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, मिश्र बंधु, ब्रजनन्दन सहाय आदि इस काल के अन्य प्रमुख उपन्यासकार रहे हैं जिन्होंने ऐतिहासिक रोमांसों की रचना की है।

वृन्दावन लाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यासों को प्रौढ़ता प्रदान करने में उतना ही श्लाघनीय प्रयास किया है जितना प्रेमचन्द ने सामाजिक उपन्यासों को। गढ़ कुण्डार, मृगनयनी, विराटा की पद्मिनी, माधवजी सिन्धिया, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि उनके प्रौढ़ ऐतिहासिक उपन्यास हैं। सही अर्थों में प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा ही है। भगवती चरण वर्मा का चित्रलेखा, यशपाल का दिव्या, जयशंकर प्रसाद का अधूरा उपन्यास इरावती, राहुल सांकृत्यान के सिंह सेनापति एवं जय यौधेय, चतुरसेन शास्त्री रचित वयं रक्षाम्, वैशाली की नगरवधू, सोना और खून, सोमनाथ तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी रचित बाणभट्ट की आत्मकथा, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा, चारू–चन्द्रलेख आदि उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास परम्परा में मील के पत्थर हैं। विभिन्न युगों की राष्ट्रीय–सांस्कृतिक परम्परा एंव ऐतिहासिक यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। रांगेय राघव मार्क्सवादी प्रगतिशील परम्परा के ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। जिन्होंने 'मुर्दों का टीला' में मोहनजोदड़ों सभ्यता का प्रगतिशील दृष्टिकोण से चित्रण किया है। अमृतलाल नागर एक प्रतिभाशाली ऐतिहासिक उपन्यासकार हुए हैं जिन्होंने शतरंज के मोहरे एवं सुहाग के नूपुर जैसे ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ–साथ मानस का हंस और खंजन–नयन जैसे ऐतिहासिक नायक प्रधान उपन्यासों की रचना की है। नरेन्द्र कोहली का 'तोड़ो कारा तोड़ो' तथा शिवप्रसाद सिंह का 'नीला चाँद' भी श्रेष्ठ कोटि के

उपन्यासों में परिगणनीय है। विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, राजीव सक्सेना, क्षमा कौल, चन्द्रकान्ता, राजेन्द्र मोहन भटनागर, द्रोणवीर कोहली, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, मेवाराम, मनमोहन सहगल, सन्हैयालाल ओझा, भगवतीशरण मिश्र आदि ने विभिन्न कालों की पृष्ठभूमि पर आधारित विभिन्न दृष्टिकोणों के साथ अतीतकालीन उपन्यासों की रचना की है। शत्रुघ्न प्रसाद भी इसी परम्परा की कड़ी हैं। राष्ट्रीय –सांस्कृतिक विचारों को प्रतिष्ठित करने, अतीतकालीन गौरव का चित्रण करने, राष्ट्रीय चेतना जागृत करने, ऐतिहासिक यथार्थ को व्यक्त करने के दृष्टिकोण से ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, इस अध्याय में यही दर्शाया गया है। अतीतकालीन दुर्बलताओं से बचकर तथा सबलताओं को अपनाकर हम अपना भविष्य सुखद बना सकते हैं, ऐसा संदेश भी इनके विवेचन में संकेतित है। उपन्यास मानव जीवन का व्यापक चित्रण करता है और इतिहास अतीतकालीन जीवन का चित्रण करता है। ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास की घटनाओं, पात्रों एवं परिस्थितियों को आधार बनाकर अतीत जीवन का व्यापक चित्रण आधुनिक सन्दर्भों में करता है। ऐतिहासिक उपन्यास काल को अखण्ड व निरन्तर दर्शाकर आज को अतीत की देन होना दर्शाता है। ऐतिहासिक उपन्यास वर्तमान एवं भविष्य के लिए उपादेय बन जाते हैं। ये उपन्यास राष्ट्रीय–सांस्कृतिक परम्परा को भी अनवरत जीवन से जोड़े रखने का प्रयास करते हैं। इसी सन्दर्भ में ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास क्रम का अध्ययन किया गया है। एक ही घटना या सन्दर्भ को भिन्न–भिन्न दृष्टियों से देखा–परखा जा सकता है। यह समेकित निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है। विवेच्य अध्याय में इतिहास दृष्टि और उपन्यास दृष्टि के मेल से बनी औपन्यासिक विधा के इतिहास को दर्शाया गया है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास का निरन्तर सृजन हो रहा है और यथार्थ जीवन का चित्रण करते हुए औपन्यासिक महत्व को बनाए हुए है। यह विधा अपने आकर्षक प्रभाव को स्थापित करते हुए मानव जीवन पर अमिट छाप छोड़ रही है और अपना एक विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। इसी महत्व के साथ विकास क्रम को दर्शाया गया है।

द्वितीय अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन किया गया है। शत्रुघ्न प्रसाद के जन्म, जन्मस्थान, शिक्षा, आजीविका, परिवार आदि के वर्णन के साथ–साथ उनकी वैयक्तिक विशिष्टताओं का भी उल्लेख किया गया है। उनके जीवन संघर्ष को दर्शाते हुए उनके ईमानदार, उदात्त, राष्ट्र प्रेमी, स्पष्टवक्ता, ओजस्वी स्वभाव, सरल एवं सादा जीवन की छवियाँ भी चित्रित की गई है। अध्यापक, संपादक एवं लेखक के विविध आयामी दायित्वों का जिस साहस, संकल्प एवं संघर्ष के साथ निर्वहन करते आए हैं और कर रहे हैं, इस पक्ष की भी विवेचना की गई है। इनके राष्ट्रीय चिंतन को भी व्यक्त किया गया है। साहित्यकार के रूप में कवि, कहानीकार, आलोचक, समीक्षक एवं उपन्यासकार के रूप में अपनी पहचान बनाई है और ऐतिहासिक उपन्यास सृजन में निरन्तर सृजनरत है। उनकी सृजित रचनाओं के

माध्यम से उनके सृजनशील व्यक्तित्व को भी प्रत्यक्ष किया गया है। 'सदानीरा' पत्रिका में प्रकाशित 'पत्र–सम्मति' के उद्धरणों द्वारा उनके सम्पादन कौशल एवं उनेक वैचारिक चिन्तन को भी व्यक्त किया गया है। आपको अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित किया गया है। पुरस्कारों एवं सम्मानों का विवरण देकर यह स्पष्ट किया गया है कि आप साहित्यकार जगत में गौरवपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। मैथिलीशरण गुप्त सम्मान एवं गणेश शंकर विद्यार्थी साहित्य सेवी सम्मान प्राप्त होना इस बात की पुष्टि करता है कि आपका कृतित्व साहित्य समृद्धि में विशिष्ट महत्व रखता है। इस अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद के जीवन संघर्ष के साथ–साथ यह भी दर्शाया गया है कि ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की प्रेरणा किन परिस्थितियों की उपज है। शत्रुघ्न प्रसाद को अपने परिवार में राम–कृष्णमयी सनातन संस्कारों की सीख मिली। आर्य समाज, कबीर मत का भी प्रत्यक्ष अनुभव उन्हें आस–पास के वातावरण से प्राप्त हुआ। नोआखाली आदि घटनाओं ने उनके हृदय को संवेदित किया। किसान कॉलेज–सोहसराय के कवित्व पूर्ण वातावरण का प्रभाव भी पड़ा। नालन्दा के खण्डहरों से उपजी आत्म–पीड़ा ने संवेदनशील हृदय को द्रवित कर दिया। मीसाबन्दी के दौरान जेल में ऐतिहासिक उपन्यास पढ़ने को मिले। वातावरण से उपजी संवेदना को ऐतिहासिक उपन्यासों के अध्ययन से गति मिली। उनके राष्ट्र–प्रेमी मन को राष्ट्र–भक्ति का निर्वहन करने का यही श्रेष्ठ माध्यम लगा। सिद्धियों के खण्डहर, शिप्रा साक्षी है, तुंगभद्रा पर सूर्योदय, हेमचन्द्र–विक्रमादित्य, सुनो भाई साधो, कश्मीर की बेटी, सरस्वती–सदानीरा, अरावली का मुक्त शिखर एवं शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश में उनकी पीड़ा एवं संवेदना को महसूस किया जा सकता है। व्यक्तित्व और कृतित्व एक–दूसरे के पूरक होते है। एक–दूसरे से प्रभावित होते हैं। उनका राष्ट्र–प्रेमी संवेदनशील हृदय, सादा–सहज जीवन एवं अद्वैतवादी चेतन मन उनके कृतित्व में भी देखा जा सकता है। विवेच्य अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को विवेचित किया गया है।

तृतीय अध्याय 'शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यास : कथ्य एवं शिल्प' में उनके भावात्मक एवं कलात्मक सौन्दर्य का विवेचन किया गया है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों का कथ्य ऐतिहासिक यथार्थ के माध्यम से गतिशील जीवन का संदेश देना है। 'सरस्वती–सदानीरा' में वैदिककालीन जीवन की यज्ञ संस्कृति के साथ–साथ उस काल के वर्ग भेद एवं वर्ण भेद को भी दर्शाया गया है। वैदिक, व्रात्य, कोल, किरात, किन्नर, पणि अपने–अपने वर्गों में भिन्न–भिन्न जीवन व्यतीत करते है। 'शिप्रा साक्षी है' में राजमद का अहंकार एवं खण्डित राष्ट्रीय दृष्टि का परिणाम देखने को मिलता है। मध्यकालीन इतिहास पर आधारित सिद्धियों का खण्डहर, हेमचन्द्र – विक्रमादित्य, तुंगभद्रा पर सूर्योदय, सुनो भाई साधो, कश्मीर की बेटी, अरावली का मुक्त शिखर एवं शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश आदि उपन्यासों में धर्मान्ध राजनीति के दुष्परिणामों को अभिव्यक्ति मिली है। जाति, वर्ग, वर्ण, जनपदों में विभाजित समाज अन्ततः

पराजय और पतन भोगता है। यही यथार्थ इन उपन्यासों में चित्रित है। राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चिंतन, अतीतकालीन गौरव, समन्वयवादी दृष्टि, अद्वैतवादी चिंतन, आधुनिक प्रगतिशील चेतना आदि भावों की प्रतिष्ठा करना शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों का मूल कथ्य है। मानवतावादी विचारों एवं जीवन–मूल्यों के प्रति आस्था का भाव जगाना भी विचारणीय चिंतन रहा है। नालन्दा एवं विक्रमशीला का विध्वंश तथा कश्मीर का पतन दिखाकर मार्मिक वेदना व्यक्त की गई है, तो हरिहर–बुक्का, विक्रमादित्य एवं महाराणा प्रताप के माध्यम से राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र प्रेम के प्रति भावना जागृत की गई है। स्वामी विद्यारण्य, दाराशिकोह, सूफी सरमद, कबीर, याज्ञवल्क्य आदि के माध्यम से अद्वैतवादी एकात्म चेतना का संदेश दिया गया है। विषमशील–हला, श्रीदेवी–मरप्पा, बुझावन–पाटली के माध्यम से सामाजिक–सांस्कृतिक समन्वय की स्थापना दर्शायी गई है। आचार्य भास्वर आदि के माध्यम से अखण्ड भारत की एकता का भाव स्थापित किया गया है। नारी जीवन के शाश्वत प्रश्नों को उठाकर एवं नारी की दयनीय अवस्था दर्शाकर नारी जीवन के श्रेयस्कर पक्ष की सराहना करते हुए नारी के अर्द्धनारीश्वर रूप को प्रतिष्ठा दिलाने की सार्थक चेष्टा की गई है। प्रेम के निर्मल एवं पवित्र भावों की सृष्टि कर उदात्त एवं निश्छल प्रेम को जीवन की अनिवार्यता दर्शाया है। लक्ष्मीचन्द–मधुवंती, बुझावन–पाटली, तानसेन–महरूख, नूरी–जमालमोहन, सामश्रवा–नागकन्या मणिप्रभा, जेबुन्निसा–अकिल खाँ, भवनाथ– आलमआरा, आदि के माध्यम से निर्मल प्रेम की धारा प्रवाहित की गई है।

निष्कर्षतः अतीतकालीन यथार्थ से सबक लेकर वर्तमान को परिष्कृत करने, राष्ट्रीय–सांस्कृतिक भावों को अपनाने, अतीत के प्रति गौरव की भावना रखने, समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाने, अद्वैतवादी चिंतन को प्रमुखता देने, प्रेम की निर्मलता का भाव रखने एवं आधुनिक प्रगतिशील चेतना अपनाने का संदेश दिया गया है। विवेच्य अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद के इन्हीं विचारों की विवेचना की गई है।

विवेच्य अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों के कलात्मक सौन्दर्य का भी विवेचन किया गया है। दर्शाया गया है कि मुख्यतः वर्णनात्मक शैली के साथ–साथ संवादात्मक एवं पूर्वदीप्ति शैली का भी प्रयोग किया गया है। विचारात्मक, चिंतनपरक, प्रश्नात्मक भाषा ने उनकी लेखन शैली को विशिष्टता प्रदान की है। घटनाओं एवं स्थितियों को दर्शाते हुए चिंतनपरक प्रश्न एवं दार्शनिक विचार रखकर भाषा को आकर्षक प्रभाव दिया गया है। उनकी रचना शैली उनके व्यक्तित्व की तरह सहज एवं ओजस्वी भी है। मुहावरेदार एवं लोकोक्तिपरक भाषा कहीं–कहीं आलंकारिक सौन्दर्य से भी परिपूर्ण है। तत्सम्, तद्भव एवं देशज शब्दों के साथ–साथ आवश्यकतानुसार अरबी–फारसी एवं उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। भाषा राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक भावों को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सक्षम है। पात्रों के चरित्र एवं मनोदशाओं का चित्रण भाषा के माध्यम से मूर्त रूप में व्यक्त हुआ है। मार्मिक प्रसंगों की उद्भावना में

संवेदनशील शब्दावली का प्रयोग हुआ है। भाषा भावानुकूल, पात्रानुकूल एवं प्रसंगानुकूल है। इतिहास एवं कल्पना का समन्वय भी बड़ी कुशलता से किया गया है। कथा सुगठन, पात्रों की चरित्र सृष्टि, आकर्षक एवं रोचक संवाद सृष्टि, अतीतकालीन वातावरण का साक्षात् चित्रण, कथ्य की प्रेषणीयता, उद्देश्य को स्पष्ट करने में रचनाकार ने सफलता पायी है। यही रचना की शिल्प कुशलता होती है। कलात्मक सृष्टि के इन आयामों को विवेच्य अध्याय में दर्शाया गया है।

चतुर्थ अध्याय 'शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास एवं कल्पना' है जिसमें उनके द्वारा रचित उपन्यासों में प्रयुक्त इतिहास प्रसंगों एवं रचनाकार द्वारा कल्पित प्रसंगों का अध्ययन किया गया है तथा साथ ही इतिहास एवं कल्पना के समन्वय कौशल का भी विवेचन किया गया है। शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों की प्रमुख घटनाएँ एवं पात्र इतिहास द्वारा प्रमाणित है। विवेच्य अध्याय में इतिहास एवं कल्पना का विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए उनकी प्रामाणिकता को सिद्ध किया गया है। इतिहास बीते हुए काल की घटनाओं एवं पात्रों का लेखा–जोखा है। ऐसी घटनाएँ या ऐसे पात्र जिन्होंने उस काल के समग्र मानव जीवन को प्रभावित किया हो, परिवर्तन को दिशा दी हो, किसी देश, समाज, स्थान के लिए एक विशिष्ट मोड़ सिद्ध हुआ हो, इतिहास में स्थान पाते हैं। कल्पना रचनाकार का सर्जनात्मक पक्ष होता है। रचनाकार की सर्जन–शक्ति ही कल्पना है। रचनाकार अपनी कल्पना प्रतिभा द्वारा ऐसे प्रसंगों की उद्भावना करता है कि जीवन का यथार्थ चित्रण लगता है। 'सरस्वती–सदानीरा' वैदिक जीवन पर आधारित है। याज्ञवल्क्य, गुरू वैषम्पायन, महाराज जनक, गार्गी एवं मैत्रेयी, याज्ञवल्क्य की पत्नी कात्यायनी वैदिक साहित्य द्वारा प्रमाणित पात्र हैं। अन्य काल्पनिक पात्रों एवं प्रसंगों की नवीन उद्भावना लेकर उपन्यासकार ने ऐसा चित्रण किया है कि सम्पूर्ण वैदिक जीवन साक्षात् हो गया है। विषमशील–विक्रमादित्य द्वारा शकों से उज्जयिनी को मुक्त करवाकर शक संवत् का प्रवर्तन करना, हेमचन्द्र–विक्रमादित्य का दिल्ली पर अधिकार एवं अकबर द्वारा पराजित होना, हरिहर–बुक्का द्वारा मुहम्मद तुगलक से विद्रोह कर विजयनगर की स्थापना करना, कबीर और सिकन्दर लोदी का संघर्ष, अकबर–महाराणा प्रताप का संघर्ष एवं हल्दी घाटी का युद्ध, कश्मीर में कोटा देवी के शासन काल में शाह मिर्जा नामक अफगान द्वारा षड़यन्त्रपूर्वक कश्मीर की सत्ता हथिया लेना, औरंगजेब का दाराशिकोह आदि को मरवाकर कट्टरतापूर्ण धर्मान्ध शासन करना, इख्तियार–बिन–बख्तियार खिलजी द्वारा नालन्दा आदि का विध्वंस ऐसी घटनाएँ हैं जो इतिहास ग्रन्थों द्वारा प्रमाणित हैं। इन्हीं घटनाओं एवं प्रसंगों को आधार बनाकर तथा अनेक कल्पना प्रसूत पात्रों एवं प्रसंगों का समन्वय कर शत्रुघ्न प्रसाद ने उपन्यासों की रचना की है। यद्धपि विवेच्य उपन्यास घटनाओं, पात्रों, वातावरण की दृष्टि से शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं क्योंकि प्रमुख घटनाएँ एवं पात्र तथा कथा का मूल ढाँचा इतिहास आधारित है। कल्पनात्मक प्रसंग केवल प्रासंगिक एवं अवान्तर कथाओं के रूप में है।

पात्रों के संवादों में लेखक की अपनी कल्पनात्मक सूझ का उपयोग किया गया है जो रचनाकार की सर्जन–शक्ति का प्रमाण है। 'सरस्वती–सदानीरा' वैदिककालीन उपन्यास है। जिस काल का प्रामाणिक इतिहास कम मिलता है। अतः कुछ प्रामाणिक पात्रों को आधार बनाकर कल्पनात्मक शक्ति से ऐसा जीवन्त चित्रण किया है कि वैदिक जीवन साक्षात् हो उठा है। सामश्रवा–मणिप्रभा, बुझावन–पाटली, आदि के प्रसंग हो, चाहे किन्नरी रत्ना और याज्ञवल्क्य के बीच का आकर्षण कल्पना शक्ति द्वारा सृजित प्रसंगों के माध्यम से सरस्वती नदी से सदानीरा नदी तक के अनेक समूहों का जीवन मूर्त रूप में व्यक्त किया गया है। 'शिप्रा साक्षी है' में कुमार विषमशील का आचार्य के आश्रम में रहना, माध्यमिका विद्यापीठ में शिक्षा ग्रहण करना, यवन कन्या हला के साथ प्रेमाकर्षण और अन्त में विवाह, काल तरूणों की योजना, विद्युत्लेखा के जीवन की स्थितियाँ आदि काल्पनिक प्रसंगों के माध्यम से उपन्यास को सरसता प्रदान की गई है। 'सिद्धियों का खण्डहर' में गुलाम रसूल और इब्राहिम का गुप्तचरी प्रसंग हो, चाहे सिद्धघोरपा और अमात्य की तांत्रिक सिद्धियाँ प्राप्त करने के प्रसंग, बौद्ध मठों की दिनचर्या, कुमार महेन्द्र और सुवर्णा का मौन अनुराग एवं विवाह, जैन सुमन्त और सुभद्रा का साहचर्य एवं विवाह शोभन एवं बोधन का द्वन्द्वग्रस्त संघर्ष सभी प्रसंग कल्पनाप्रसूत हैं जो मूलकथा के साथ इतने घुले–मिले है कि एक ही कथा के तार लगते हैं। 'सुनो भाई साधो' में जमींदारों का एक होना, लक्ष्मीचन्द–मधुवंती का प्रेम प्रसंग, शहनाज–बारबक शाह के मध्य का प्रसंग, कबीर टोले के अनेक प्रसंग कल्पना की उपज हैं, जो सिकन्दर लोदी कालीन इतिहास से जुड़कर एकमेव हैं। 'हेमचन्द्र–विक्रमादित्य' में गजेन्द्र–चन्दा कथा, खुदादीन का चरित्र, नूरी–जमालमोहन एवं भक्तिकालीन संतों और नाथ योगी की कथाएँ ऐसी अवांतर कथाएँ हैं जो मूल कथा के साथ जुड़ी हुई हैं और कहीं भी भिन्न नहीं लगती है। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' में कमला देवी की पुत्री श्रीदेवी एवं मरप्पा का प्रसंग, देवदासी इन्दु एवं षणमुखम् प्रसंग, हमीद–गजाला प्रसंग, अनेक सम्प्रदायों के संतों के प्रसंग, सायणाचार्य एवं माधवतीर्थ के पारिवारिक प्रसंग कल्पना की उपज है जिनके माध्यम से अद्वैत चिन्तन के एकत्व की प्रतिष्ठा की गई है। 'कश्मीर की बेटी' कुछ क्षीण घटनाओं के आधार पर कल्पनात्मक कथा का ऐसा ताना–बाना है कि प्रामाणिक इतिहास कथा प्रतीत होती है। चाँदनी दासी एवं सर्वदेव, आनन्द भिक्षु भट्ट से जुड़े प्रसंग, पंडित प्रवर देवस्वामी से उत्पन्न स्थितियाँ, कोटराज–गुहरा प्रसंग सभी रचनाकार की कल्पना प्रतिभा की उपज है। 'अरावली का मुक्त शिखर' में अमरसिंह–रानकदे (जुगनी) प्रसंग, किशन–टिकोरी प्रसंग, फूला–संभा प्रसंग, पुरोहित–राणा प्रसंग एवं अकबर के हरम के दृश्य, तानसेन–महरूख प्रसंग काल्पनिक कथा प्रसंग हैं जो मूल कथा के साथ जुडकर ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं। 'दाराशिकोह : दहशत का दंश' में जया–रामसिंह प्रसंग, जेबु–अकिल खाँ प्रसंग, भवनाथ–आलमआरा प्रसंग, पंडित जगन्नाथ एवं काशी के पंडितों के प्रसंग, मुल्लाशाह बदख्शी, सूफी सरमद एवं जगन्नाथ का एक साथ मिलना आदि उपन्यासकार की कल्पना दृष्टि का ही कौशल है। ये सभी औरंगजेब की धर्मान्ध

शासन नीति में पिसते हुए विवशता का जीवन जीने पर मजबूर हैं। ये अंग ऐतिहासिक कथा ही प्रतीत होते हैं। विवेच्य अध्याय में दर्शाया गया है कि इतिहास की रक्षा करते हुए उपन्यासकार ने कल्पना प्रसूत उद्भावनाओं को इस कलात्मक कौशल से गुंफित किया है कि सभी अवांतर कथाएँ इतिहास–सूत्र ही प्रतीत होती है। इस अध्याय में यह विवेचन किया गया है कि जिन ऐतिहासिक घटनाओं एवं पात्रों को लेकर उपन्यास लिखे गए हैं वे प्रामाणिक हैं। इतिहास ग्रन्थों से उनके प्रमाण दिए गए हैं। कल्पनात्मक प्रसंगों एवं पात्रों की उद्भावनाएँ कैसे उपन्यास को सरसता प्रदान करती है और किस कुशलता से इतिहास को उपन्यास की सरसता दी गई है, इसकी भी विवेचना की गई है।

पाँचवाँ अध्याय 'शत्रुघ्न प्रसाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में युगीन चेतना' है जिसमें विभिन्न ऐतिहासिक कालखण्डों की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं मूल्यपरक चेतना को अभिव्यक्त किया गया है। राजनैतिक चेतना के अन्तर्गत दर्शाया गया है कि राजा का कर्तव्य प्रजाहित ही है। अहंकार एवं अभिमान से ग्रस्त शासकीय नीति राष्ट्र एवं समाज के हित में नहीं है। निरंकुश शासकीय नीति राष्ट्र एवं समाज के हित में नहीं है। गंधर्वसेन का निरंकुश एवं अहंकारी शासन गणतन्त्र को राजतंत्र में परिवर्तित कर देता है। शोषणकारी बन जाता है। विलासी जीवन का भोक्ता बनकर व्यक्ति स्वतन्त्रता का हनन करता है। परिणामस्वरूप राष्ट्र का पतन होता है। मुहम्मद–बिन–तुगलक, सिकन्दर लोदी, औरंगजेब आदि क्रूर धर्मान्ध नीति से परिचालित शासक है जिनके शासन में जनमानस हाहाकार कर उठता है। स्त्रियों को भोग की वस्तु मात्र समझा जाता है। धर्मभीरूता को अपनाकर भी कोई शासक अच्छा शासन नहीं दे सकता है। गोविन्दपाल सिद्धधोरपा व आचार्य कमलरक्षित की नीतियों से परिचालित है। दुर्बल शासक भी देशहित में नहीं है। कश्मीर में राजा सहदेव और उदयनदेव उदाहरण हैं। धर्मान्ध राजनीति में समाज और व्यक्ति को विवशता में जीवन जीना पड़ता है। समाज का पतन होता है। एकाकी सोच की राष्ट्रीय नीति भी खण्डित दृष्टि की पहचान है। मगध, सुराष्ट्र, लाट, उज्जयिनी आदि राष्ट्र नहीं जनपद हैं। ये एकाकी दृष्टि भी राष्ट्र के पतन का हेतु बनती रही है। विदेशियों को पाँव जमाने का अवसर देती रही है। शस्त्र शक्ति ही शासन को मजबूती देती है, यह तथ्य भी रेखांकित किया गया है। संगठित शक्ति, शस्त्र शक्ति, राष्ट्रीय एकत्व की शक्ति, समाज हितकारी शासकीय नीति जो त्याग, समर्पण एवं राष्ट्रहित का भाव रखती हो, श्रेष्ठ राजनीति है। ऐसी राजनैतिक चेतना, हरिहर–बुक्का, स्वामी विद्यारण्य, हेमचन्द्र, कुमार महेन्द्र, कोटा देवी, महाराज जनक, महाराणा प्रताप आदि के माध्यम से जागृत की गई है। सामाजिक समानता व्यक्ति, समाज एवं देश सभी के लिए हितकारी है। वर्गों एवं जातियों में विभाजित समाज देश को कमजोर करता है। छूत–अछूत या ऊँच–नीच का भाव समाज में भेद पैदा करता है। समाज की प्रगति अवरूद्ध होती है। साथ ही समाज में नारी का सम्मानजनक जीवन ही समाज को उन्नत दशा देता

है। विवेच्य अध्याय में सामाजिक समरसता की प्रतिष्ठा की चेष्टा हुई है जो उपन्यासकार की रचनाओं में दर्शायी गई है। पंडित प्रवर देवस्वामी का ब्राह्मण अधिकार कश्मीर को दुर्बल करता है। वैदिक, व्रात्य, नाग, किन्नर, आदि का भेद वैदिक युगीन जीवन को अलगाव प्रदान किए हुए है। अछूत और निम्न समझी जाने वाली जातियों ने पीड़ित होकर इस्लाम को स्वीकार किया और वहाँ भी उन्हें सम्मान नहीं मिला। ये देश हित में नहीं हुआ। नारी को भोग्या एवं दोयम मानकर किया जाने वाला सामाजिक व्यवहार समाज को पतन की ओर लेकर गया। अनेक सामाजिक कुप्रथाओं यथा अन्तर्जातीय विवाह न होना, पतित समझकर भेद करना, बाल विवाह होना, विधवा विवाह न होना, देवदासी जैसी प्रथाएँ भी समाज का कलंक है। समाज को निष्प्रभ करती हैं। ऐसी सभी सामाजिक मान्यताओं का खण्डन शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में किया गया है। विवेच्य अध्याय में यही दर्शाया गया है। सुवर्णा के माध्यम से दर्शाया गया है कि साधना के नाम पर परपुरूष के साथ संसर्ग से अच्छा है प्रेम करने वाले पुरूष को अपनाना। विद्युत्लेखा, शहनाज बेगम, साध्वी सरस्वती, उदयपुरी बेगम, आदि की पीड़ा के माध्यम से नारी चेतना को वाणी दी गई है। सुभद्रा–सुमन्त, चाँदनी–सर्वदेव, सुवर्णा–महेन्द्र, कबीर–लोई, किशन–टिकोरी, चन्दा–गजेन्द्र, इन्दु–षण्मुखम आदि के माध्यम से समाज में व्याप्त नारी जीवन से जुड़ी बुराईयों के प्रति चेतना जागृत की गई है। विधवा विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता दी गई है। महाराणा प्रताप एवं उनकी महारानियों के संवाद, कबीर–लोई के संवाद एवं स्वामी विद्यारण्य और वैतीहोत्री के संवाद के माध्यम से अद्वैत दाम्पत्य की चेतना प्रदान की गई है। महाराणा–पुरोहित संवाद के माध्यम से सभी समाजों को समान सम्मान प्रदान करने का भाव हो, चाहे याज्ञवल्क्य का सभी वैदिक जनसमूहों को जोड़ने का प्रयास हो, सामाजिक चेतना को ही व्यक्त करता है। विवेच्य अध्याय में शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में व्यक्त सामाजिक समरसता की विवेचना दर्शायी गई है। भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक भेदों एवं पाखण्डों का चित्रण शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में विस्तार से वर्णित हुआ है। वैदिक काल में भी रूद्र और शिव की अलग–अलग रूप में वैदिक–व्रात्यों में मान्यता मतभेद का कारण है। इन्द्र–वरूण की मान्यता भी भिन्न–भिन्न वर्ग उत्पन्न करती है। कालान्तर में शैव–वैष्णव, शाक्त, बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायों के मतभेद समाज को भ्रान्त एवं विकृत भाव दे रहे हैं। सम्प्रदायों में भी अनेक प्रकार के विकार एवं विकृतियों का समावेश है। धर्म के नाम पर समाज को अनेक तरह से पीड़ित होना पड़ता है। बौद्ध मठ अनाचार के गढ़ बने हुए हैं। तांत्रिक शक्तियों की प्रबलता समाज को दिग्भ्रमित किए हुए है। अनेक मान्यताएँ, अनेक मत–मतान्तर। सांस्कृतिक स्वरूप में भी यही मतान्तर देखने को मिलता है। कहीं यज्ञ की प्रधानता, कहीं अग्नि की। कहीं नागदेवता की पूजा। मन्दिर–मठ की अलग–अलग मान्यताएँ। इस यथार्थ बोध के साथ एकत्व की चेतना देकर शत्रुघ्न प्रसाद ने धार्मिक–सांस्कृतिक समन्वय का भाव प्रदान किया है। याज्ञवल्क्य के प्रयासों से वैदिक रूद्र एवं व्रात्य शिव का एक रूप मान्य होता है। कबीर व स्वामी विद्यारण्य आदि के माध्यम से

अद्वैत चेतना की प्रतिष्ठा होती है। पाटली–बुझावन, विषमशील–हला, श्रीदेवी–मरप्पा के विवाह को सांस्कृतिक क्रान्ति कहकर सांस्कृतिक समन्वय की प्रतिष्ठा करना ही सांस्कृतिक चेतना है। धार्मिक–सांस्कृतिक एवं जीवन मूल्य परक चेतना का विवेचन हुआ है।

षष्टम अध्याय 'शत्रुघ्न प्रसाद का समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासकारों के साथ तुलनात्मक अध्ययन' में इतिहास दृष्टि, विषयवस्तु, इतिहास–कल्पना, युगधर्म, भविष्य द्रष्टा आदि तथ्यों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। 'शिप्रा साक्षी है' उपन्यास ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी पर आधारित है। शत्रुघ्न प्रसाद ने महाराज गंधर्वसेन को सत्तामद के अहंकार से ग्रस्त नारी सौन्दर्य पर मुग्ध शासक के रूप में व्यक्त करते हैं। शकों से पराजित होकर उज्जयिनी का पतन देखते हैं। कुमार विषमशील विक्रमादित्य शक्ति संचय कर शकों को पराजित करता है। इस उपन्यास की तुलना विश्वम्भरनाथ उपाध्याय रचित 'जोगी मत जा' और शरद पगारे रचित 'गन्धर्वसेन' से की गई है। 'जोगी मत जा' में उपाध्याय जी ने विक्रमादित्य और भर्तृहरि को भाई दिखाकर यह सिद्ध किया है कि विक्रम संवत के प्रवर्तक विक्रमादित्य ही भर्तृहरि के भाई थे। जनश्रुति पर आधारित इतिहास दृष्टि है। भर्तृहरि और पिंगला का प्रेम तथा माया रचित विश्वासघात भी दिखाया गया है। भर्तृहरि को शक विजय का नायक एवं कुशल व लोकप्रिय शासक भी दर्शाया गया है। योग विद्याओं को भी केन्द्रीय स्थान मिला है। शरद पगारे रचित 'गंधर्वसेन' में गंधर्वसेन को वीर, साहसी स्त्री पारखी के रूप में दर्शाया गया है। व्यक्ति प्रधान उपन्यास बन गया है। गंधर्वसेन स्त्री द्वारा आहत होते रहने की कुण्ठा झेलते है। यही कारण है कि स्त्रियों के प्रति उनके मन में केवल विलास का भाव है। साध्वी सरस्वती के साथ अपहरण न दिखाकर इसमें गंधर्वसेन– सरस्वती की प्रेमगाथा कही गई है और विक्रमादित्य को गंधर्वसेन–सरस्वती का पुत्र दर्शाया गया है। इतिहास यहाँ प्रेम कहानी के रूप में व्यक्त हुआ है। शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' की तुलना मनमोहन सहगल रचित 'काला सच' के साथ की गई है। तुंगभद्रा पर सूर्योदय' मुहम्मद–बिन–तुगलक के शासनकाल एवं उसकी दक्षिण विजयों पर आधारित है जबकि 'काला सच' अलाउद्दीन खिलजी के सोमनाथ विध्वंस की घटना पर केन्द्रित है। समानता है देवल देवी के प्रसंग में। देवल देवी की दुर्दशा दोनों उपन्यासों में दिखाई गई है। उसे कई तुर्क शासकों की अंकशायिनी बनना पड़ता है। 'काला सच' में पाटण नरेश रायकरण देव के विलासी जीवन का दुष्परिणाम दर्शाया गया है। पाटण नरेश रायकरण देव अपने मंत्री माधव की चरित्रवान पत्नी रूपसुन्दरी का जबरन भोग करता है। रूपसुन्दरी आत्महत्या कर लेती है। श्राप दे देती है, राज्य विनाश का। अलाउद्दीन के आक्रमण में राजा रायकरण देव कहीं मारा जाता है। कमला देवी पकड़ ली जाती है। अन्त में उसकी पुत्री देवल देवी को भी वह अपने पास बुला लेती है। जिसका कई शासकों द्वारा शोषण होता है। 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' इसके आगे की कहानी है पर देवल देवी की कथा मौजूद है। प्रकारान्तर से मुस्लिम शासन में नारी शोषण की गाथा कही गई

है। कबीर कालीन जीवन पर शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'सुनो भाई साधो' में सिकन्दर लोदी एवं शर्की सुल्तानों व बारबक शाह के मध्य संघर्ष के इतिहास को व्यक्त किया है। इतिहास दृष्टि है कि जनश्रुति के अनुसार सिकन्दर लोदी एवं कबीर दोनों ही हिन्दू माँ की सन्तान है। परन्तु एक सत्तासीन होकर हिन्दू जनता पर अत्याचार करता है। एक सन्त बनकर जनता को राम–रहीम की एकता का संदेश देता है। सिकन्दर लोदी और कबीर का संघर्ष भी दर्शाया गया है। भगवती शरण मिश्र रचित 'देख कबीरा रोया' और राजेन्द्र मोहन भटनागर द्वारा रचित 'महात्मा' संत कबीर के जीवन पर आधारित उपन्यास हैं। 'देख कबीरा रोया' ऐतिहासिक कम सामाजिक अधिक बन पड़ा है। शैली में भी भ्रम एवं नाटकीयता का समावेश है। 'महात्मा' में कबीर के दार्शनिक जीवन का अधिक चित्रण है। दोनों ही उपन्यासों में कबीर और लोई के सम्बन्धों के साथ धनिया का भी वृतान्त दिखाया गया है। दोनों उपन्यास कबीर के जीवन पर केन्द्रित हैं। चरित्र प्रधान या जीवनीपरक उपन्यास अधिक प्रतीत होते है। 'सुनो भाई साधो' कबीरकालीन इतिहास की कथा कहती है। अतः ऐतिहासिक उपन्यासों की परिभाषा पर खरी उतरती है।

'अरावली का मुक्त शिखर' महाराणा प्रताप और अकबर के संघर्ष पर आधारित है। राजेन्द्रमोहन भटनागर के 'नीले घोड़े का सवार' और 'एक अन्तहीन युद्ध' भी इसी विषय पर भिन्न–दृष्टियों से रचित उपन्यास है। 'अरावली का मुक्त शिखर' में अकबर को साम्राज्यलिप्सु, रसिक, विलासी शासक दर्शाकर महाराणा का उज्ज्वल, उदात्त विचारधारा से मूल्यांकन किया गया है। जोधाबाई की विवशता को भी नवीन दृष्टि से परखा गया है। सामाजिक समरसता की प्रतिष्ठा भील–राणा सम्बन्धों के माध्यम से की गई है। 'नीले घोड़े का सवार' व 'एक अन्तहीन युद्ध' में महाराणा को संघर्षशील एवं दार्शनिक दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया गया है। महाराणा–अमरसिंह के सम्बन्ध भी अविश्वसनीय दर्शाए गए हैं। राजेन्द्रमोहन भटनागर ने महाराणा की प्रेरणा उनकी पत्नी रत्नावती बाई को माना है और अन्त समय में वह उनके साथ ही साँस छोड़ देती है। ऐसा दर्शाया गया है। शत्रुघ्न प्रसाद ने महाराणा की माता जैवंताबाई को ही प्रेरक दर्शाया है। इस अध्याय में अरावली का मुक्त शिखर, नीले घोड़े का सवार एवं एक अन्तहीन युद्ध में व्यक्त भिन्न–भिन्न दृष्टियों का विवेचन किया गया है।

शहजादा दाराशिकोह एवं औरंगजेब के सम्बन्धों पर आधारित शाहजहाँ–औरंगजेब कालीन शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश' दारा की पराजय के बाद उपजी दहशत का चित्रण करता है। इस उपन्यास में औरंगजेब की धर्मान्ध शासकीय नीति से दहशतजदां विवश जीवन का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण है। किस तरह जन सामान्य दहशत के खौफ में जीवन व्यतीत करता है और स्वयं वह शासक भी बेखौफ दिखता हुआ भी दहशत में जीता है। यही दर्शाया गया है। मेवाराम रचित 'दाराशुकोह' विशाल पटल पर लिखित उपन्यास है जिसमें शाहजहाँ एवं औरंगजेब काल का चित्रण है। वस्तुवर्णनों की अधिकता से

युक्त इतिहास को प्रामाणिकता से व्यक्त करता है। दारा के उत्थान एवं पतन दोनों को दर्शाता है। 'प्रीत पसारे पंख' इस पृष्ठभूमि पर आधारित लक्ष्मीनारायण नंदवाना रचित छोटा सा उपन्यास है जिसमें पंडित जगन्नाथ एवं लवंगी बेगम की मार्मिक प्रेम कथा वर्णित है। यह कथा प्रकारान्तर से तीनों उपन्यासों में व्याप्त है। भिन्न–भिन्न दृष्टियों से औरंगजेब कालीन शासन को व जगन्नाथ–लवंगी प्रेमकथा को व्यक्त किया गया है, विवेच्य अध्याय में इन्हीं भिन्न दृष्टियों का विवेचन किया गया है। शत्रुघ्न प्रसाद रचित 'कश्मीर की बेटी' एवं मनमोहन सहगल रचित 'जेहलम की बेटी' उर्फ 'घटता–बढ़ता चाँद' कश्मीर के वातावरण पर केन्द्रित उपन्यास हैं। इनमें चौदहवीं एवं सोलहवीं सदी के कश्मीर का चित्रण मर्मान्तक पीड़ा के साथ दर्शाया गया है।

सप्तम अध्याय 'शत्रुघ्न प्रसाद का ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास में योगदान' है जिसमें दर्शाया गया है कि ऐतिहासिक उपन्यासों की समृद्धि में शत्रुघ्न प्रसाद का महत्वपूर्ण योगदान है तथा इतिहास के माध्यम से ऐतिहासिक दृष्टि विकसित करने, इतिहास को सूक्ष्म दृष्टि से परखकर नवीन सृष्टि करने, युग समस्याओं का निराकरण प्रस्तुत कर युग धर्म प्रतिष्ठित करने, गतिशील जीवन का संदेश देने और वर्तमान एवं भविष्य के लिए इतिहास को प्रासंगिक सिद्ध करने की दृष्टि से शत्रुघ्न प्रसाद महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। शत्रुघ्न प्रसाद का मानना है कि इतिहास आज के साथ अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। आज का कश्मीर चौदहवीं सदी का परिणाम है। वैदिककालीन जन्मना पद्धति आज भी भेद उत्पन्न करती है। अतीत भविष्य को सुखद बनाने का माध्यम हो सकता है। गन्धर्वसेन के अहंकार और विलासिता से आज भी सबक लिया जा सकता है। आपसी मतभेदों के अतीतकालीन परिणाम हमें आज समरस समाज की प्रेरणा देते हैं। रूढ़ होना स्थिर होना है। गति रूकना है। संस्कारों में निरन्तर परिष्कार होते रहना आवश्यक है। प्रेम का निर्माल्य हर युग की माँग है। शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने उपन्यासों के माध्यम से जीवन को नवीन सृष्टि की ओर अग्रसर रहने का संदेश देकर विशिष्ट योगदान दिया है। शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने महत्वपूर्ण नौ उपन्यासों की रचना कर ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या में तो वृद्धि की ही है, साथ ही ऐतिहासिक उपन्यास जिसकी दृष्टि और लक्ष्य को भी परिष्कार एवं मजबूती देने का काम किया है। एक नवीन इतिहास दृष्टि देकर इस दिशा में सार्थक कदम बढ़ाया है। विचारों की समृद्धि ही विकास की समृद्धि है। नई दृष्टि के साथ ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना विकास में विशिष्ट योगदान ही माना जाएगा। इस अध्याय में दर्शाया गया है कि शत्रुघ्न प्रसाद ने प्रगतिशील चेतना को भी सही अर्थों में अभिव्यक्त किया है। खण्डनवादी प्रगतिशील विचारधारा समाज को आगे नहीं बढ़ाती है। एक विभाजन पैदा कर देती है। विरोध पैदा कर देती है। पुरातन संस्कारों की नींव पर परिष्कृत मूल्यों की सृष्टि ही प्रगतिशीलता है। राष्ट्रीय–सांस्कृतिक प्रगतिशील दृष्टि विकसित कर उपन्यासकार

ने इस विधा को वैचारिक समृद्धि प्रदान की है। यह इस विधा के विकास में विशिष्ट योगदान है।

अष्टम अध्याय 'उपसंहार' है जिसमें पूर्व के सात अध्यायों का निष्कर्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। दर्शाया है कि शत्रुघ्न प्रसाद अपनी ही इतिहास दृष्टि और परिपक्व सोच के रचनाकार है जिनमें वृन्दावनलाल वर्मा जैसी इतिहास दृष्टि है। हजारीप्रसाद जैसी ललित कल्पना हैं। चतुरसेन शास्त्री जैसी प्रभविष्णुता है। पर वे अपने में अनूठे रचनाकार है। वे केवल शत्रुघ्न प्रसाद है। निष्कर्षः शत्रुघ्न प्रसाद का तुलनात्मक अध्ययन विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, शरद पगारे, मनमोहन सहगल, मेवाराम, राजेन्द्र मोहन भटनागर, भगवती शरण मिश्र एवं लक्ष्मीनारायण नंदवाना के समकालीन इतिहास एवं विषय वस्तु पर आधारित उपन्यासों के आधार पर किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. सिद्धियों के खण्डहर – शत्रुघ्न प्रसाद, साहित्य संसद, दिल्ली – 1983
2. शिप्रा साक्षी है – शत्रुघ्न प्रसाद, साहित्य संसद, दिल्ली – 1986
3. हेमचन्द्र–विक्रमादित्य – शत्रुघ्न प्रसाद, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली – 1989
4. सुनो भाई साधो – शत्रुघ्न प्रसाद, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली – 1999
5. तुंगभद्रा पर सूर्योदय – शत्रुघ्न प्रसाद, पुस्तक भवन, दिल्ली – 2001
6. कश्मीर की बेटी – शत्रुघ्न प्रसाद, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली – 2002
7. अरावली का मुक्त शिखर – शत्रुघ्न प्रसाद, शिवांक प्रकाशन, नयी दिल्ली – 2014
8. शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश – शत्रुघ्न प्रसाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली – 2015
9. सरस्वती–सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली – 2015

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में काल चेतना एवं संस्कृति – शत्रुघ्न प्रसाद, विभोर प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – 2007
2. अनास्था के आस–पास – शत्रुघ्न प्रसाद, प्रसाद प्रकाशन, पटना, संस्करण – 1971
3. अनथके चरण – शत्रुघ्न प्रसाद, जागृति प्रकाशन, नोएडा, संस्करण – 1987
4. देशभक्त संन्यासी विवेकानन्द – शत्रुघ्न प्रसाद, सूर्यभारती प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 1993
5. लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक – शत्रुघ्न प्रसाद हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, संस्करण – 1967
6. प्रीत पसारे पंख – लक्ष्मीनारायण नंदवाना, चिन्तन प्रकाशन, उदयपुर, संस्करण – 2011
7. काला सच – मनमोहन सहगल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 2006
8. घटता–बढ़ता चाँद – मनमोहन सहगल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 1996
9. गंधर्वसेन – शरद पगारे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 2012
10. बेगम जैनाबादी – शरद पगारे, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण – 1996
11. देख कबीरा रोया – भगवती शरण मिश्र, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण – 2014
12. जोगी मत जा – विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, रचना प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 2005
13. दाराशुकोह – मेवाराम, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, संस्करण – 2010

14. नीले घोड़े का सवार – राजेन्द्र मोहन भटनागर, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण – 2000
15. एक अन्तहीन युद्ध – राजेन्द्र मोहन भटनागर, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, संस्करण – 1999
16. महात्मा – राजेन्द्र मोहन भटनागर, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 1989
17. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास – शिवशंकर पाण्डेय, आलोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–1978
18. अमृतलाल नागर की कथादृष्टि के समाजशास्त्रीय आयाम – डॉ सरोज सिंह, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – 2007
19. समाजशास्त्र – सत्यकेतु विद्यालंकार, श्री सरस्वती सदन प्रकाशन, मसूरी, संस्करण – 1980
20. हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना – रत्नाकर पाण्डेय, पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 1976
21. हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य – डॉ मोहिनी शर्मा, साहित्यकार प्रकाशन, जयपुर संस्करण – 1986
22. हिन्दी उपन्यास कला – डॉ रामलखन शुक्ल, दलित साहित्य संस्थान, दिल्ली, संस्करण – 2012
23. हजारी प्रसाद द्विवेदी – विश्वनाथ तिवारी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण – 2013
24. उपन्यास और लोकतन्त्र – मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 2013
25. साहित्य और सामाजिक परिवर्तन – संपादक, अनन्तराम मिश्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 1997
26. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना – राजेश रानी, के.के. पब्लिकेशन्स, दिल्ली, संस्करण – 2011
27. अमृतलाल नागर की कथा दृष्टि के समाजशास्त्रीय आयाम – सरोज सिंह, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – 2007
28. हिन्दी उपन्यास एवं उपन्यासकार – हेतु भारद्वाज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 2011
29. गढ़ कुण्डार – वृन्दावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 1995
30. कीर्ति सागर – रमाकान्त पाण्डेय 'अकेला', साहित्यागार, जयपुर, संस्करण–1994
31. मृगनयनी – वृन्दावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 1993
32. समकालीन कविता : इतिहास बोध – राकेश कुमार, प्रकाशन संस्थामन, नयी दिल्ली,

संस्करण – 1989
33. कविता की तीसरी आँख – प्रभाकर श्रोत्रिय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण – 1980
34. काव्यशास्त्र – भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण – 2014
35. भगवती चरण वर्मा का गद्य साहित्य – करूणा उमरे, गरिमा प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 2002
36. हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यास और उपन्यासकार – द्वारिका प्रसाद सक्सेना, विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली, संस्करण – 2004
37. वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों का पुनर्मूल्यांकन – डॉ रामप्यारे तिवारी, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, संस्करण – 2006
38. मध्यकालीन भारत – विद्याधर महाजन, एस चन्द्र एण्ड कम्पनी लिमिटेड़, नई दिल्ली, संस्करण – 1992
39. मध्यकालीन भारत – हरिशंकर शर्मा, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, संस्करण – 2011
40. अकबर महान् और उसका युग – डॉ दिनेश मंडोत, आविष्कार पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, संस्करण – 2012
41. मेवाड़ के महाराणा और शहंशाह अकबर, राजेन्द्र शंकर भट्ट, स्फटिक संस्थान, जयपुर, संस्करण – 1976
42. वीर शिरोमणी महाराणा प्रताप – गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, संस्करण – 2016
43. आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ पद्मजा शर्मा, रचना प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 1998
44. बाणभट्ट की आत्मकथा – पाठ एवं पुनर्पाठ – मधुरेश, आधार प्रकाशन, पंचकूला, संस्करण – 2015
45. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी पात्रों की भूमिका – शिवानी विद्यालंकार, श्री सरस्वती सदन, नयी दिल्ली, संस्करण – 2003
46. हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार – भगवती शरण मिश्र, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण – 2010
47. ऐतिहासिक उपन्यासों में सांस्कृतिक चिन्तन – डॉ ज्ञानप्रकाश मिश्र, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली, संस्करण – 2012
48. अनुत्तर योगी – तीर्थंकर महावीर – वीरेन्द्र कुमार जैन, श्री निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इंदौर, संस्करण – 1981
49. विश्वबाहु परशुराम – विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 1997

50. साहित्य विधाएँ – शशिभूषण सिंहल, स्कॉलर बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण – 2009

51. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, गीता मा. बेणचेकर, वाड़्मय बुक्स, अलीगढ़, संस्करण – 2012

52. गुलारा बेगम – शरद पगारे, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण – 1993

53. वैशाली की नगरवधू – आचार्य चतुरसेन शास्त्री, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण – 2003

54. पाटलिपुत्र की राजनर्तकी : कोशा – कृष्णानंद, प्रतिभा प्रकाशन, पटना, संस्करण – 1998

55. विश्वामित्र – ब्रजेश के. बर्मन, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, संस्करण – 2010

56. चित्रलेखा – भगवतीचरण वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 2004

57. अनामदास का पोथा – हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 2003

58. विराटा की पद्मिनी – वृन्दावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 2009

59. लाल किला – आचार्य चतुरसेन शास्त्री, डिस्कवरी बुक सेन्टर, संस्करण – 2009

60. मल्लिका देवी वा बंड्.ग सरोजिनी – किशोरीलाल गोस्वामी सम्पादक – मधुरेश, हर्ष पब्लिकेशन्स, दिल्ली, संस्करण – 2010

61. रूठी रानी – प्रेमचन्द, साहित्यागार, जयपुर, संस्करण – 1995

62. मुगलकालीन भारत – प्रताप सिंह, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, संस्करण – 2011

63. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा – रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 1992

64. साहित्यिक निबन्ध – रेणु शर्मा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, संस्करण – 2006

65. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ – जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, संस्करण – 1977

66. भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना – बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, संस्करण – 1977

67. हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य – प्रेम भटनागर, अर्चना प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 1968

68. राहुल सांकृत्यायन की इतिहास दृष्टि – चन्द्रभानु सिंह, धरती प्रकाशन, गंगाशहर, बीकानेर, संस्करण – 1980

69. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कृतित्व का शैली वैज्ञानिक अध्ययन – डॉ लक्ष्मी लाल बैरागी, संधी प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 1980
70. उपन्यास : स्थिति और गति – चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 1977
71. रांगेय राघव के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन – जगदीश प्रसाद गुप्त, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, संस्करण – 2011
72. साहित्यिक निबन्ध – राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, संस्करण – 1965
73. रांगेय राघव : एक अन्तर्यात्रा – कल्याण प्रसाद वर्मा, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, संस्करण – 2011
74. बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, संस्करण – 2006
75. हिन्दी उपन्यास – सुषमा धवन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 1961
76. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना – डॉ शिवशंकर त्रिवेदी, साहित्य निलय, कानपुर, संस्करण – 1997
77. आधुनिक उपन्यास : विविध आयाम – डॉ विवेकी राय, त्रिभुवन प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – 2012
78. आधुनिक हिन्दी उपन्यास–I – भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 2010
79. आधुनिक हिन्दी उपन्यास–II – नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण – 2010
80. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों की सर्जनात्मक भाषा – डॉ श्यामकान्त झा, संरचना प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद, संस्करण – 2009
81. हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों का नवमूल्यांकन – उदयवीर शर्मा, रचना प्रकाशन, मथुरा, संस्करण – 1989
82. प्रतिनिधि निबन्ध संग्रह – डॉ हेतु भारद्वाज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 2016
83. विश्व इतिहास की झलक – जवाहर लाल नेहरू, अनुवाद चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय, सस्ता साहित्य मंडल, संस्करण – 1982
84. मध्यकालीन भारत – हरिश्चन्द्र वर्मा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय – दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, संस्करण – 1993
85. मध्यकालीन भारत : एक सर्वेक्षण – इमत्याज अहमद, नेशनल पब्लिकेशन्स, पटना, संस्करण – 1989

86. उपन्यासकार रामेश्वर शुक्ल अंचल – वीणा गौतम, राजेश प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 1975
88. ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा – रामदरश मिश्र, एस.चन्द्र एण्ड कम्पनी, नयी दिल्ली, संस्करण – 1964
89. हिन्दी उपन्यास – शिवनारायण श्रीवास्तव, सरस्वती मन्दिर प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण – 1960
90. उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा – शशिभूषण सिंहल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, संस्करण – 1960
91. आत्मकथा और उपन्यास – ज्ञानेन्द्र कुमार सन्तोष, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नयी दिल्ली, संस्करण – 2013
92. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ – शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 2005
93. हिन्दी उपन्यास एवं कहानी : एक विश्लेषण – उर्वशी शर्मा, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, संस्करण – 2009
94. हिन्दी साहित्य का इतिहास – नगेन्द्र एवं हरदयाल, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, संस्करण – 2017
95. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पवन पॉकेट बुक्स, दिल्ली
96. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास : वस्तु एवं शिल्प – वेदप्रकाश वेदालंकार, अग्रवाल प्रकाशन, अम्बाला, संस्करण – 2008
97. भारतीय ऐतिहासिक स्थल कोश – हुकुमचन्द जैन, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, संस्करण – 2007
98. प्राचीन भारत का इतिहास – कृष्णगोपाल शर्मा, अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर, संस्करण – 2007
99. मुगलकालीन भारत – आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, संस्करण – 1953
100. यशपाल और मानिक बंदोपाध्याय – सदाशिव द्विवेदी, प्रासंगिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 1976
101. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, संस्करण – 2009
102. लाल किला – आचार्य चतुरसेन, डिस्कवरी बुक सेन्टर, दिल्ली, संस्करण – 2009
103. इतिहास दृष्टि और ऐतिहासिक उपन्यास – ज्यार्जी लुकाच, अनुवाद – कर्ण सिंह, ग्रन्थ शिल्पी प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, संस्करण – 2009
104. राहुल सांकृत्यायन के कथा साहित्य में ऐतिहासिक दृष्टि – संगीता श्रीवास्तव, संकल्प

प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 2011

105. काल चेतना एक साहित्यिक आयाम – समीर महाजन, लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 2004

106. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – शशिभूषण सिंहल, प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, संस्करण – 1989

107. हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त – नरेन्द्र कोहली, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 1989

108. हिन्दी उपन्यास – सुषमा धवन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली संस्करण – 1961

109. तरूण संन्यासी – राजेन्द्र मोहन भटनागर, विश्वविद्यालय प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 2001

110. बाणभट्ट की आत्मकथा – हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 2011

111. चीवर – रांगेय राघव, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 2007

112. कथा सतीसर – चन्द्रकान्ता, राजकमल प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, संस्करण – 2007

113. माधवजी सिंधिया – वृन्दावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 2001

114. शोध प्रविधि – विनयमोहन शर्मा, मयूर पैपर बैक्स, नोएडा, संस्करण – 2010

115. हिन्दी उपन्यास : उद्भव एवं विकास – डॉ सुरेश सिन्हा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 1965

116. प्रतिनिधि निबंध संग्रह – हेतु भारद्वाज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 2016

118. हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास – उमेश शास्त्री, देवनगर प्रकाशन, जयपुर, संस्करण – 2011

119. हिन्दी उपन्यास का विकास – मधुरेश, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – 2014

120. अकुलाहटें मेरे मन की – महिमा श्री, अंजुमन प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – 2015

121. ग्लोबल गाँव का देवता – रणेन्द्र, पेंगुइन बुक्स, संस्करण – 2014

122. गोली – आचार्य चतुरसेन शास्त्री, हिन्द पॉकेट बुक्स, नयी दिल्ली

123. भारत का सम्पूर्ण इतिहास – वीरेन्द्र कुमार मिश्र एवं भरतेश कुमार मिश्र, शिवांक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संवत – 2011

124. प्राचीन भारत – जी.पी. सिंहल, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर

125. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास – चतुर्दश भाग – सम्पादक – हरवंशलाल शर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वि.सं. 2027

126. अलंकरण समारोह 2007–08, संचालक – संस्कृति संचालनालय मध्य प्रदेश, भोपाल

127. उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, संस्करण – 2002
128. उपन्यास की संरचना – गोपालराय, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, संस्करण – 2012
129. दिव्या – यशपाल, पैंग्विन बुक इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली
130. प्राचीन भारत का इतिहास – शिवकुमार गुप्त, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
131. इतिहास के सिद्धान्त एवं पद्धतियाँ – एच.सी. पांचाल रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, संस्करण – 2014
132. संत कबीर का साहित्य – बिन्दू दूबे, कला प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण – 2002
133. प्राचीन भारत – पंकजलता श्रीवास्तव एक्सिस पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली, संवत – 2011
135. हिन्दी के प्रमुख उपन्यास और उपन्यासकार – राजेश अनुपम, माडर्न प्रिन्टर्स, जयपुर, संस्करण – 2010
136. आधुनिक उपन्यास : विविध आयाम – विवेकीराय, त्रिभुवन प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – 2012
138. गोमटेश गाथा – नीरज जैन, मनीषा ट्रस्ट, सतना, संस्करण – 1989
139. हिन्दी का गद्य साहित्य – रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
140. ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस – गुरदीप सिंह खुल्लर, रिसर्च पब्लिकेशन्स एण्ड सोशल साइंसेज, दिल्ली

शब्दकोश –

1. मानक हिन्दी कोश – रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण – 1966
2. हिन्दी शब्द सागर – श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा – काशी
3. नालन्दा विशाल शब्द सागर – आदिश कुमार जैन, आदिश बुक डिपो, नयी दिल्ली, संस्करण – 1993
4. वृहत् हिन्दी कोश – कालिका प्रसाद, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, संस्करण – 1992
5. समान्तर कोश – अरविन्द कुमार, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नयी दिल्ली, संस्करण – 2012
6. आदर्श हिन्दी शब्दकोश – पं. रामचन्द्र पाठक, भार्गव बुक डिपो, वाराणसी, संस्करण – 1976

7. हिन्दी पयार्यवाची – भोलानाथ तिवारी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 2012
8. हिन्दी शब्दकोश – हरदेव बाहरी, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण – 2012
9. हिन्दी साहित्य कोश – धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संस्करण – 1992
10. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ – द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी, इलाहाबाद, विक्रम संवत् – 2024
11. हिन्दी पर्यायवाची कोश – भोलानाथ तिवारी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संवत् – 2002

पत्रिकाएँ –

1. सदानीरा – शत्रुघ्न प्रसाद, पटना
2. पिनाक – शत्रुघ्न प्रसाद, पटना
3. मधुमती – राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
4. समावर्तन – रमेश दवे, उज्जैन
5. समन्वय – सदानन्द गुप्त, गोरखपुर
6. साक्षात्कार – साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल
7. पाथेय कण – माणकचन्द, जयपुर
8. समकालीन भारतीय साहित्य – साहित्य अकादमी, दिल्ली
9. समीक्षा – दिल्ली
10. पंजाब सौरभ – मनमोहन सहगल विशेषांक – 1984
11. मगबन्धु – भगवती शरण मिश्र विशेषांक – जाग्रति फाउण्डेशन, राँची
12. हमारा दृष्टिकोण – भगवती शरण मिश्र का कथा साहित्य विशेषांक – 2006, अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, राजस्थान
13. हमारा दृष्टिकोण – शत्रुघ्न प्रसाद का कृतित्व, विशेषांक – 2004, अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, राजस्थान
14. वागर्थ – कबीर विशेषांक – 2000, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता
15. पंचशील शोध समीक्षा – पंचशील प्रकाशन, जयपुर
16. कृति ओर – रमाकान्त शर्मा, जोधपुर
17. विभाषा संसृति – पटना
18. राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति – 2006, राजेन्द्र मोहन भटनागर विशेषांक, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
19. साहित्येतिहास में स्त्री विमर्श – प्रज्ञा प्रकाशन, पटना – 2010
20. ऐतिहासिक उपन्यासों में समाज जागृति – संकलन – क्रान्ति कनाटे, अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, नयी दिल्ली

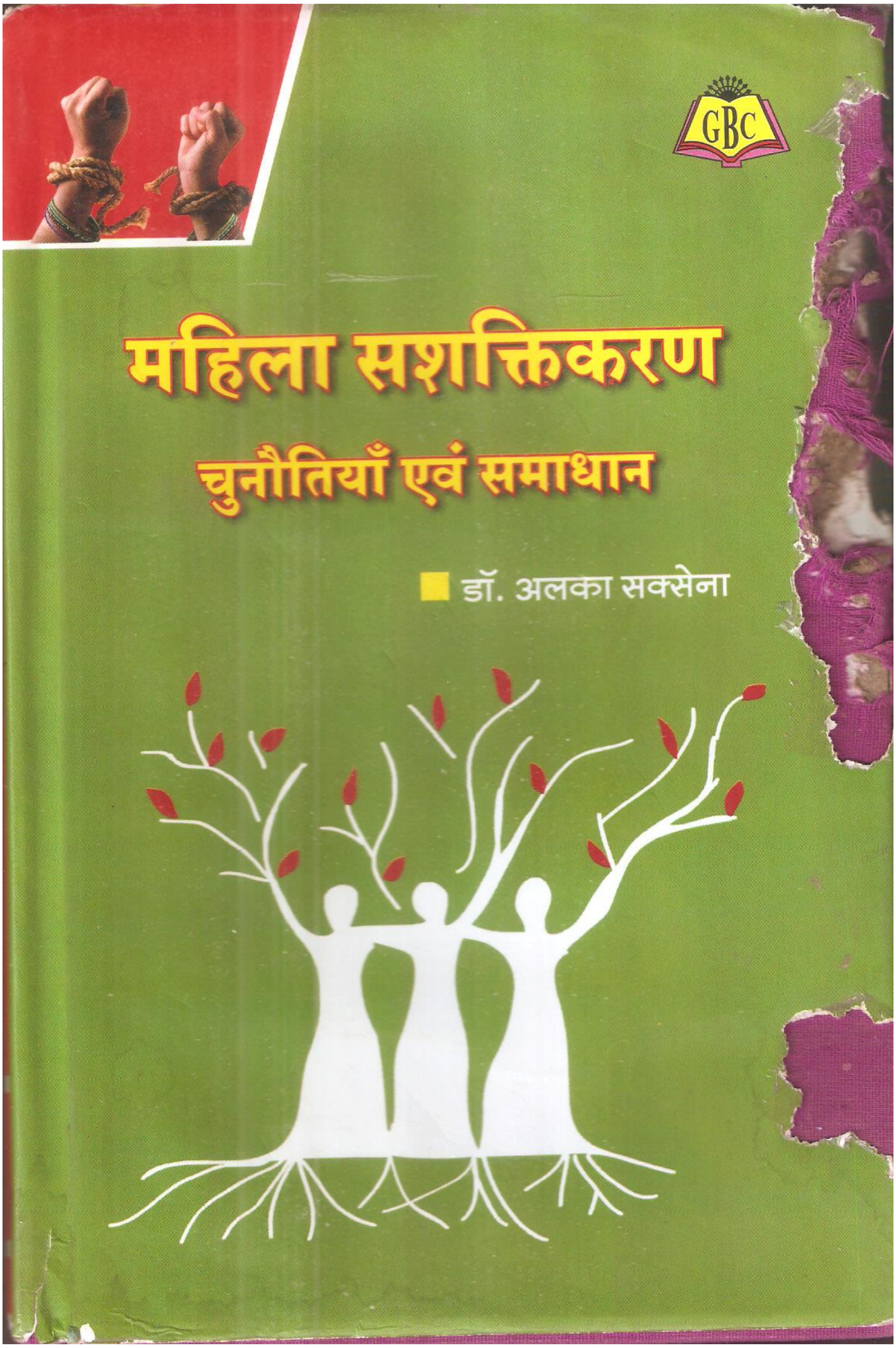
GBC
महिला सशक्तिकरण
चुनौतियाँ एवं समाधान
डॉ. अलका सक्सेना

प्रकाशक :
रामकिशोर शर्मा
गौतम बुक कम्पनी
जी-4, महालक्ष्मी कॉम्पलैक्स
260/ 5, राजापार्क, जयपुर 302 004
फोन : कार्यालय : 0141-2624516
मोबाइल : 09414461135

© सुरक्षित

ISBN : 978-93-81149-94-2

प्रथम संस्करण : 2016

मूल्य : ₹ 895.00

फोटो टाईपसैटिंग :
विशाल कम्प्यूटर्स, जयपुर

मुद्रक : **शीतल आफसैट, जयपुर**

वैधानिक चेतावनी

इस पुस्तक की सम्पूर्ण सामग्री भारतीय कॉपीराइट एक्ट के अन्तर्गत लेखक तथा प्रकाशक के पास सुरक्षित हैं। इस पुस्तक का नाम, टाइटल-डिजाइन, अंदर के मैटर एवं चित्र आदि का आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर एवं किसी भी भाषा में छापने एवं प्रकाशित करने या किसी तकनीक द्वारा स्टोर करने, कापी करने या सम्प्रेषण करने की कुचेष्टा/दुस्साहस न करें अन्यथा कानूनन हर्जे-खर्चे व हानि के स्वयं जिम्मेदार होंगे।

पुस्तक का कम्पोजिंग कार्य कम्प्यूटर द्वारा कराया गया है। पुस्तक के लेखन व प्रकाश कार्य में लेखक व प्रकाशक द्वारा पूर्ण सावधानी बरतने के बावजूद भी कुछ गलतियाँ रह जाना सम्भव है, जिसके लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं लेखक जिम्मेदार नहीं होगा, जिल्द (बाईडिंग) व मुद्रण की गलती के कारण रह गई त्रुटि में उस भाग का पन्ना पुस्तक लाने पर या सूचित करने पर बदल कर दे दिया जाएगा। किसी भी परिवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र जयपुर ही होगा।

44.	डॉ. अनुराग सिंह चौहान	मानवाधिकार और महिलाएँ	251
45.	श्रीमती बबीता शर्मा	मानवाधिकार और महिलाएँ	258
46.	डॉ. घनश्याम बैरवा	मानवाधिकार और महिलाएँ	262
47.	डॉ. पुष्पलता शर्मा	नारी शक्ति व महिलाओं के मानवाधिकार	269
48.	Dr. Yogita Tyagi	Women Rights and Empowerment in India	273
49.	डॉ. हंसा स्वामी	नारी : कल, आज और कल	281
50.	रघुवीर सिंह	शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में नारी चेतना	285
51.	शालिनी रानी	नारी पुरुष की पूरक हैं, प्रतिस्पर्द्धी नहीं	291
52.	डॉ. गोपीराम शर्मा	हिन्दी साहित्य में महिलावादी विमर्श	302
53.	सुश्री शशीना पारीक	कलाश्री कान्तिचन्द्र भारद्वाज में सशक्त नारी चित्रण	305
54.	श्रीमती मोनिका शर्मा	भारतीय नारी की त्रासदी	309

50

शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में नारी चेतना

रघुवीर सिंह
शोधार्थी
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

परिचय : लब्धप्रतिष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार शत्रुघ्न प्रसाद का जन्म 12 फरवरी 1932 को बिहार प्रदेश के छपरा नगर के वैश्य परिवार में हुआ। आपने पटना विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम.ए.(1956 ई.) एवं पीएच.डी. (1967) की उपाधि प्राप्त की। 1957 ई. से 1992 ई. तक मगध विश्वविद्यालय के अंगीभूत किसान कॉलेज, बिहार शरीफ में हिन्दी साहित्य का अध्यापन किया। हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं प्रोफेसर पद से सेवानिवृत हुए। सम्प्रति पटना में निवास करते हुए निरन्तर अध्ययन एवं लेखन में रत हैं। प्रगतिशील राष्ट्रीय चेतना के ऐतिहासिक साहित्य की रचना ही जीवन का प्रमुख ध्येय मानते हैं। कविता, कहानी, समीक्षा, जीवनी एवं आलोचनात्मक लेखन भी किया है।

'सदानीरा' नामक साहित्यिक पत्रिका का निरन्तर प्रकाशन करते हुए संपादन का दायित्व भी निभा रहे हैं। अनेक राष्ट्रीय स्तर की साहित्यिक पत्रिकाओं में आपके शोधपरक आलेख प्रकाशित हुए हैं। अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत हुए हैं। मध्य प्रदेश संस्कृति विभाग द्वारा 'राष्ट्रीय मैथिलीशरण गुप्त सम्मान' 2008 से भी समादृत हुए हैं। सिद्धियों के खण्डहर (1983), शिप्रा साक्षी है (1986), हेमचन्द्र विक्रमादित्य (1989), सुनो भाई साधो (1999), तुंगभद्रा पर सूर्योदय (2001), कश्मीर की बेटी (2002), अरावली के मुक्ति शिखर (2014), आदि आपके प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'सरस्वती सदानीरा' एवं 'दाराशुकोहः दहशत का दंश' शीघ्र प्रकाश्य हैं।

समीक्षात्मक ग्रंथ हिन्दी के 'ऐतिहासिक उपन्यासों में कालचेतना एवं संस्कृति' (2007) भी प्रकाशित हुआ हैं। प्रस्तुत आलेख आपके ऐतिहासिक उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी चेतना पर आधारित है। प्राचीनकाल की मान्यता नारी "शक्तिस्वरूपा" से लेकर आधुनिक काल के 'नारी सशक्तिकरण' के दौर तक नारी को अनेक पद्धतियों और अनेक मान्यताओं से नवाजा गया है: देवी, पूजनीया, घर लक्ष्मी के नामों से सुशोभित करते हुए पुरुष उसे अपमानित, लांछित और लज्जित जीवन जीने पर विवश भी करता रहा है। नारी हमेशा अपमानित होती रही है, अपहरण, चीरहरण और बलात्कार का दंश भोगती रही है। त्रेता युग में सीता जैसी साध्वी नारी को अपहरण के बाद अग्निपरीक्षा और फिर निर्वासन का कष्ट भोगना पड़ता है परन्तु ऋषि आश्रम में आश्रय मिल जाता है।

द्वापर में अम्बा का अपहरण अस्मिता का प्रश्न खड़ा करता है और द्रौपदी का चीरहरण कुलवृद्धों के संरक्षण एवं आश्रय पर संशय उपस्थित करता है। मध्यकाल तक आते-आते नारी के पास कोई संरक्षण नहीं रह जाता है। यहाँ नारी का अपहरण और चीरहरण ही नहीं होता है, शीलहरण भी होता है। और चुपचाप सहन करना ही नियति। अग्नि परीक्षा से होकर अग्नि समाधि ही नारी जीवन का सत्य बन जाती है। सीता का निर्वासन, द्रौपदी का दाँव पर लगना व राजकुमारियों का विजित राजा के साथ परिणय सूत्र में बंधना नारी की राज धर्म के आगे आहुति ही रही है।

समाजतंत्र, राजतंत्र एवं धर्मतंत्र की बलि चढ़ती रही है, हमेशा देवस्वरूपा नारी। समाज की धुरी, परिवार की मर्यादा, त्याग की मूर्ति, पुरुष की प्रेरणा आदि सम्मानों से छली जाती रही है। नारी के जीवन में रही है केवल पीड़ा, केवल विवशता, केवल बंधन। उपजता रहा एक मूक प्रश्न- क्या मेरी यही नियति है? क्या यह मेरा दोष है? मेरी क्या पहचान है? मेरा क्या अस्तित्व है? ऐसा जीवन क्यों?

सदियों से नारी पर हो रहे अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न एवं दमन के प्रतिक्रियास्वरूप उपजते प्रश्नों एवं मुक्त होने की तड़प दिखाकर शत्रुघ्न प्रसाद ने नारी चेतना को स्वर प्रदान किया है। अरूण भगत के साथ बातचीत में भी कहा है कि भारतीय नारी संस्कृति द्वारा प्रतिष्ठित होकर भी प्रताड़िता रही है, दमिता रही है। मैने उसके संघर्ष एवं नव प्रतिष्ठा को वाणी दी है। शत्रुघ्न प्रसाद ने विगत जीवन द्वारा वर्तमान को सार्थकता प्रदान करते हुए मध्यकालीन पतनशील समाज को कथ्य बनाकर नारी को नव चेतना प्रदान करने का सार्थक प्रयास किया है। आपके उपन्यासों में नारी जीवन का हाहाकार ही नहीं है, उन विश्वासों का पर्दाफ़ाश भी हैं। जो इस हाहाकार के जिम्मेदार हैं।

पुरुषवादी अस्वस्थ सोच, रूढ़िवादी विकृत परम्पराएं, धर्म का विकृत स्वरूप, सामन्ती शासन व्यवस्था का कुरूप दर्शाते हुए स्पष्ट किया है कि समाज के ठेकेदारों, धर्म

के मठाधीशो, साम्राज्य लिप्सु शासकों की भोगवादी नीति ही नारी की दयनीय दशा की जिम्मेदार रही है। इससे मुक्त होकर ही नारी अपनी अस्मिता, अपनी पहचान खोज सकती है। मर्म का स्पर्श कराता यह युगबोध ही नारी चेतना का वाहक बना है। आपने अनेक नारी पात्रों के द्वारा शोषित नारी की विवशता को अभिव्यक्ति दी है, तथा विद्रोह और प्रतिकार करती चेतनाशील दृष्टि भी प्रदान की है। शत्रुघ्न प्रसाद की नारी चेतना को निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है :

1. शोषण से मुक्ति की चेतना : शत्रुघ्न प्रसाद मध्यकालीन नारी की दुर्दशा देखकर द्रवित हो उठते है। और इस दुर्दशा का समाधान खोजने के लिए व्याकुल हो उठते है। आपके उपन्यासों में समाज व्यवस्था धर्म व्यवस्था एवं शासन व्यवस्था द्वारा शोषित नारी का मार्मिक चित्रण हुआ है। सहज साधना के रूप में नारी को व्यभिचार में धकेला जाता है। साधना के नाम पर बौद्ध साधक नारी का देह शोषण ही करते हैं। 'सिद्धियों के खण्डहर' की सुवर्णा और सुभद्रा अपनी चेतनशीलता के कारण अपने नारीत्व की रक्षा करती है, परन्तु सुरेखा एवं देवमित्रा जैसी नारियाँ इस जाल में फँस जाती है। सामन्ती शासन में स्त्री को जीती हुई वस्तु समझा जाता है। विवाह सम्बन्ध भी राजनैतिक संधि का परिणाम होते हैं।

समाज परम्पराओं के नाम पर नारी का शोषण करता है। 'सिद्धियों का खण्डहर' में सुवर्णा की मनोदशा से इस शोषण को समझा जा सकता है। कहती है "उसका शरीर काँप रहा था। उसने आँखों को बन्द कर लिया। बन्द आँखों में कभी शोभन, कभी सिद्ध घोरपा, कभी सुरेखा, कभी आचार्य कमल रक्षित झलक जाते है। और सभी बारी बारी से संकेत देते .... तुम महामुद्रा हो। मैं महामुद्रा नहीं बनूँगी"। उसका चेतन मन कहता है कि "जब परपुरुष से दूरी उचित है तो परपुरुषों के साथ सहज साधना भी अनुचित है" इस प्रकार धर्म के द्वारा शोषण से मुक्ति की चेतना प्रदान की गई है।

सामन्ती शासन व्यवस्था द्वारा किये जाने वाले शोषण का चित्रण विद्युतलेखा, साध्वी सरस्वती, जोधा बाई व देवल देवी के माध्यम से व्यक्त हुआ है। विद्युत्लेखा विधवा से बौद्ध भिक्षुणी, देवदासी और राजनर्तकी बनने पर विवश है। अपने जीवन को निर्बलता और मूक सर्मपण का जीवन मानती है। देवलदेवी को कई नवाबों की अंकशायिनी बनना पडता है। देवलदेवी कहती है 'औरत तो मादा जानवर है, ऐशपरस्त महल मादा को नोचता रहता है'। यह पीड़ा सामन्ती शासन पर करारा प्रहार है। वह अपनी पुत्री को अपने भीतर शक्ति का संचार करने का संकेत देती है। जोधा बाई की पीड़ा है कि वह अपने पुत्र की माँ नहीं अम्मी जान है और वे विवशता में मुगल बादशाह से बंधकर रह रही है। यह पराधीनता का जीवन है। सर्व देव के माध्यम से नारी चेतना का स्वर उठाया गया है, 'स्त्री क्या भूसम्पत्ति है या सोने का निर्जीव ढेला। राजा और

सामन्त के ऊँचें भवन में पत्नी–उपपत्नी केवल भोग विलास के लिए। धर्म, ब्याह, परिवार यह सब मान देने के लिए है। जब तक धर्म और परिवार भी नारी बचा नहीं पाते, पशु के समान पुरुष नारी का आखेट करते रहेंगे।

2. नारी आदर्श एवं नारी मर्यादा की चेतना : शत्रुघ्न प्रसाद का नारी चिन्तन भारतीय संस्कृति के अनुरूप होते हुए ऐसी व्याख्या लिए हुए है कि वह अतीत को वर्तमान से जोड़ता है। भारतीय समाज में समर्पित नारी ही आदर्श नारी की संज्ञा पाती है। तिरस्कार सहन करते हुए भी वह अपनी नारी मर्यादा का पालन करती है। शिप्रा साक्षी हैं, महारानी सौम्यदर्शना पति गंन्धर्वसेना द्वारा उपेक्षित होने पर भी उनका अमंगल नहीं चाहती है। कहती है 'अनुराग के कारण ही तो अमंगल की सम्भावना मात्र से कांप उठी हूँ ......मै आपका और आपके कुल का अमंगल नहीं देख सकती।

शक्ति आप संन्यासिनी को सादर मंदिर में पहुंचा दे'। माता एवं पत्नी दोनों की मर्यादा का पालन करती है। सुवर्णा और सुभद्रा किसी भी तरह के प्रलोभन में नहीं आती है और अपनी नारी मर्यादा को खण्डित नहीं होने देती। कोटा देवी अपनी पत्नी धर्म और प्रजा धर्म के बीच उदयन देव की उदासीनता सहन करती है। काम भावना के मर्यादित एवं संयमित स्वरूप की व्याख्या की गई है। काम को मंगलमय रूप में स्वीकार किया गया है। क्रियाशक्ति यतीस्वर व शाश्वती के माध्यम से बताया है कि काम को काम देवता बनाकर, परिवार और संस्कृति में मर्यादित बनाकर उदात्त बनाया जा सकता है। इस प्रकार मर्यादा एवं आदर्श की चेतना व्यक्त की गई है।

3. दाम्पत्य चेतना : शत्रुघ्न प्रसाद परिवार के मर्यादित रूप को ही श्रेष्ठ मानते है। वे पति–पत्नि में अद्वैत भाव को स्वीकार करते है। शाश्वती के माध्यम से स्पष्ट किया है कि पति–पत्नी एक दूसरे के पूरक बनकर रहें। एक दूसरे की दुर्बलता न बनें। अभेद भाव बना रहें। माधवाचार्य वैतीहोत्री से कहते है कि – 'हम अलग नहीं हैं। हम एक साथ जीने के लिए एक दूसरे से जुड़े है ... अरे तुमने अद्वैत चिन्तन को भाव बना दिया। दाम्पत्य जीवन में अद्वैत भाव, अदभुत।

4. सृजन, शक्ति एवं संघर्ष की चेतना : शत्रुघ्न प्रसाद नारी को सृजन, शक्ति एवं संघर्ष का पुंज मानते हैं। कोटादेवी संघर्ष का प्रतीक बनकर उभरती है। शायनाचार्य ने कहा है 'कि सात्वती! भारतीय अवधारणा में नारी शक्ति है। हमने नारी को शक्ति रूप में देखा है। वह सृजन शक्ति है'।

5. राजनैतिक चेतना : कोटादेवी के माध्यम से शत्रुघ्न प्रसाद ने नारी की राजनैतिक सूझ–बूझ दर्शाकर नारी चेतना जागृत की है। कोटा देवी अपने भाई रावणचन्द्र को साहस और शौर्य पर विश्वास रखने के लिए कहती है। प्रजाहित में वह व्यक्तिगत सुखों का त्याग भी करती है। कश्मीर की समस्या पर अपनी सलाह देकर सिद्ध करती हैं

कि उसमें सुझ बूझ राजनैतिक परिपकता है। उसका कहना है कि राजाओं का आपसी वैमनस्य देश को दुर्बल बना गया, वर्तमान के लिए भी राजनैतिक प्रेरणा बनता है।

6. पतित जीवन के प्रति चेतना : समाज में व्याप्त रूढ़िवादी परम्पराएँ जो नारी जीवन के लिए कष्टकारी एवं विषमता का कारण बनी हुई हैं। विरोध किया गया है तथा उन्हें त्यागकर नवीन जीवन अपनाने की प्रेरणा प्रदान की गई है। सर्वदेव और चांदनी श्रीदेवी और मरप्पा तथा किशन और टिकोरी का विवाह सामाजिक क्रांति का सूत्रपात है। चांदनी दस वर्ष दरिया साह के पास रहने के बाद वापस आती है श्री देवी देवलदेवी के मुस्लिम पति की पुत्री है। टिकोरी विधवा है। और दूसरी जाति के युवक से प्रेम करती है। इनके विवाह की व्यवस्था पतित नारी को समाज में प्रतिष्ठा दिलवाने का प्रयास है। यह नारी जीवन के लिए उद्धार की चेतना प्रदान करती है। विधवा जीवन से मुक्ति दिलाने के रूप में पुनर्विवाह का समर्थन किया गया है। सुवर्णा और महेन्द्र तथा सुभ्रदा और सुमन्त का स्वस्थ प्रेम को स्वीकार करते हुए विवाह करवाना रूढ़ परम्पराओं का त्याग ही है। देवदासी प्रथा पर प्रहार कर इसे त्यागने की प्रेरणा दी गई है।

इन्दुमती को जबरन देवता के चरणों में अर्पित कर दिया जाता है। 'देवता से विवाह और देवदासी संबोधन' कहलाकर इस व्यवस्था पर प्रश्न उठाया गया है। रूढ़ परम्पराओं के प्रति चेतना का स्वर स्वामी विद्यारण्य के शब्दों में व्यक्त होता है। 'यदि हम श्रीदेवी को नया जीवन नहीं दे सके तो धर्म दर्शन, साहित्य, कला, शिक्षा का क्या मूल्य रह जाएगा। क्या हमारी समाज चेतना का नई परिस्थितियों से टकराकर विजय पाने की महत्वाकांक्षा नहीं है। मरप्पा और श्री देवी के विवाह को सामाजिक सांस्कृतिक क्रांति कहकर नारी चेतना का नवीन मार्ग उपस्थित किया गया है।'

7. शांति व समन्वय की चेतना : राजकुमारी हला के माध्यम से युद्ध जैसी समस्या को अनावश्यक बताकर शांति और समन्वय की प्रेरणा दी गई है। कहती है 'कुमार। इस संसार में शांति व सम्मान से जीना ही बड़ी समस्या है। मैं समझती हूं धर्म समाज और राज्य सब इसी के लिए बनाये गये हैं। दिन रात भटकना, युद्ध हत्या लूटमार यह कोई जीवन का रूप नहीं है।'

निष्कर्षतः जिस प्रकार मध्यकालीन जीवन में शासन, समाज एवं धर्म नारी की पतनशीलता का कारण बने थे वैसे ही आज का पूँजीवाद एवं बाज़ारवाद नारी जीवन के लिए मृग मरीचिका सिद्ध न हो जाए। इसके लिए सचेत करते हुए नारी को आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव प्राप्त करने की प्रेरणा दी है। नारी चेतना का उद्घोष करते हुए सुवर्णा से कहलवाया है कि 'भगवान् बुद्ध ने कहा है कि स्वयं दीप बनकर अपने अन्तर में प्रकाश पाओ।'

संदर्भ सूची

1. 'सिद्धियों के खण्डहर' (1983)
2. 'तुंगभद्रा पर सूर्योदय' (2001)
3. 'शिप्रा साक्षी है' (1986)
4. 'कश्मीर की बेटी' (2002)
5. 'सुनो भाई साधो' (1999)
6. 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' (1989)
7. 'अरावली के मुक्तिशिखर [redacted]' (2014)
8. 'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कालचेतना एवं संस्कृति' (2007)
9. 'साक्षात्कार' (नवम्बर, 2007)
10. 'हमारा दृष्टिकोण' (शत्रुघ्न प्रसाद विशेषांक)

❑

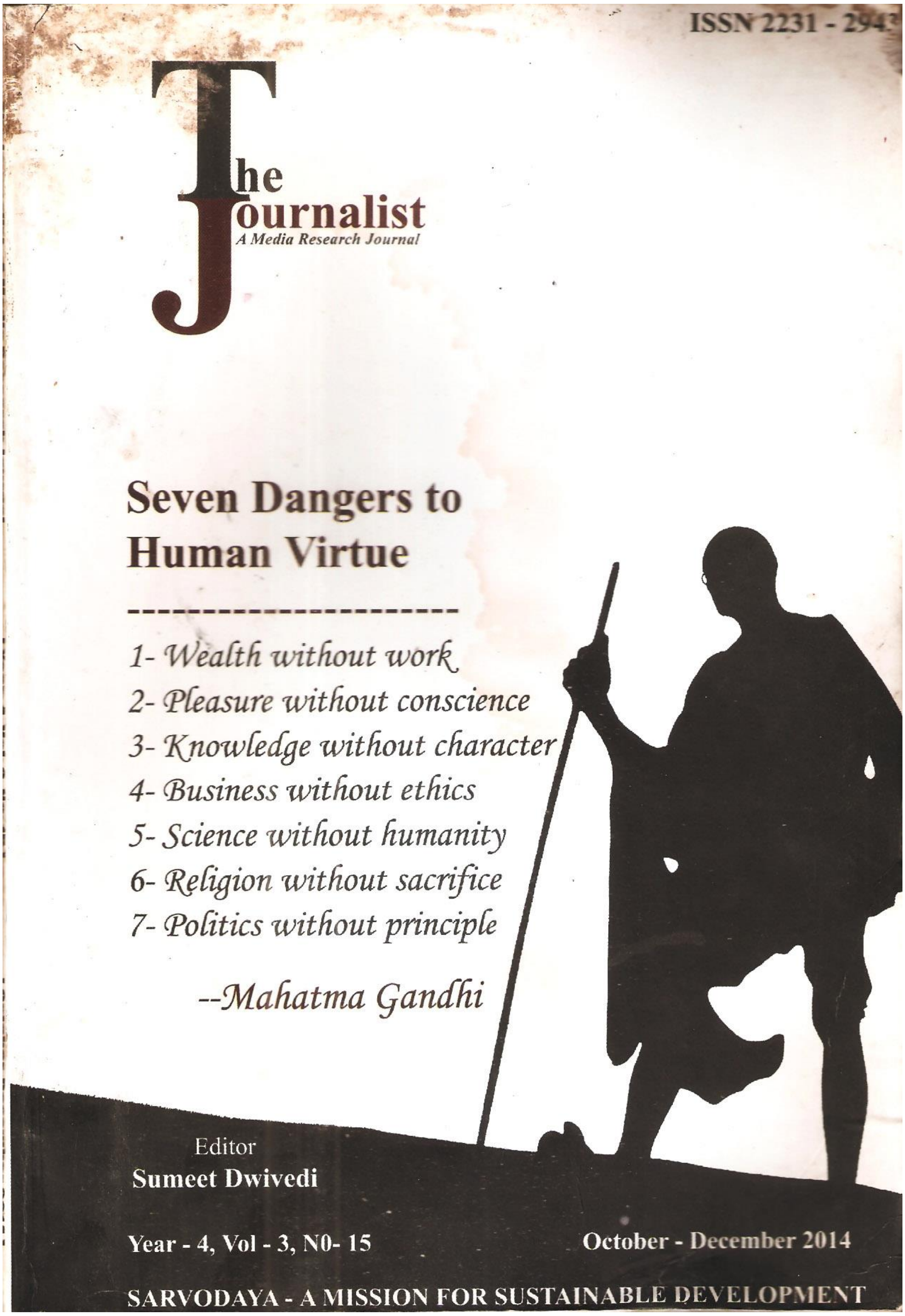

ISSN 2231 - 2943

The Journalist

A Media Research Journal

Seven Dangers to Human Virtue

1- *Wealth without work*
2- *Pleasure without conscience*
3- *Knowledge without character*
4- *Business without ethics*
5- *Science without humanity*
6- *Religion without sacrifice*
7- *Politics without principle*

--Mahatma Gandhi

Editor
Sumeet Dwivedi

Year - 4, Vol - 3, N0- 15 October - December 2014

SARVODAYA - A MISSION FOR SUSTAINABLE DEVELOPMENT

[Year: 4, Vol: 3, N0: 15] [October-December 2014] [ISSN 2231-2943]

THE JOURNALIST

A Media Research Journal

Editor:
Sumeet Dwivedi

Co-Editor:
Ritesh Kumar Srivastava

Published By:
Sarvodaya-A Mission for Sustainable Development
323/2, Alopibagh, Allahabad (Uttar Pradesh)-211006

Index

Research Papers (शोध पत्र):

1. भारत में नक्सलवाद : आन्तरिक सुरक्षा को चुनौती, समस्या एवं समाधान
(डॉ0 रीना कुमारी) 1-6

2. साहित्य और मीडिया
(राहुल दुबे) 7-12

3. कोरवा जनजाति पर विकास योजनाओं का प्रभाव
(जैनेन्द्र कुमार) 13-24

4. सार्क एवं पर्यावरणीय समस्या
(डॉ0 दिनकर त्रिपाठी) 25-30

5. साहित्य का सामाजिक सरोकार और संस्कृति का वैश्विक परिप्रेक्ष्य
(रामकृष्ण पाण्डेय) 31-36

6. भारतीय कृषि उत्पाद निर्यात की संभावनाएँ
(कल्लन प्रसाद) 37-41

7. ग्रामीण क्षेत्र में ऋण व्यवस्था की स्थिति
(डॉ0 रवीन्द्र प्रताप सिंह) 42-45

8. डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थवाद : राष्ट्र, समाज एवं संस्कृति के सन्दर्भ में
(रघुवीर सिंह) 46-48

9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का भाषिक कर्म
(डॉ0 भोला बाबू मौर्य) 49-53

10. पं0 मुकुटधर पाण्डेय का काव्य सिद्धान्त
(डॉ0 आशीष कुमार मिश्र) 54-58

11. भोजपुरी क्षेत्र की खड़ी बोली : एक अध्ययन
(डॉ0 संगीता मौर्य) 59-62

12. शब्दस्यहेतुत्व निरुपणम्
(डॉ0 अनिरुद्ध कुमार पाण्डेय, प्रवीण तिवारी) 63-64

13. समाज के मसीहा "महात्मा गांधी"
(आरती मरवाहा) 65-67

The Journalist-A Media Research Journal
ISSN 2231-2943 / Year-4, Vol-3, No-15

8

डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थवाद : राष्ट्र, समाज एवं संस्कृति के सन्दर्भ में

– रघुवीर सिंह
शोध छात्र, हिन्दी विभाग, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य यथार्थवाद की विभिन्न भावभूमियों का प्रकाशन रहा है। इस दौर के लेखकों ने प्रकृतवाद, अतियथार्थवाद, आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद, समाजवादी यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद के साथ–साथ ऐतिहासिक यथार्थवाद को भी अभिव्यक्त किया है। ऐतिहासिक यथार्थवाद से तात्पर्य है – ऐतिहासिक घटनाओं एवं पात्रों को कथानक बनाकर सृजित साहित्य। हालांकि ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के यथार्थ एवं कल्पित आदर्श का समन्वय होता है। इस साहित्य में इतिहास के किसी कालखण्ड की उन विशेष घटनाओं को विषयवस्तु बनाया जाता है, जिनके कारण समाज और देश की जीवन दिशा प्रभावित हुई हो और जिसके प्रभाव से वर्तमान भी समस्याग्रस्त बना हुआ है। वस्तुतः अतीत के मार्मिक पक्षों का उद्घाटन कर कल्पना प्रसूत प्रसंगों द्वारा समकालीन समस्याओं से साक्षात्कार करवाया जाता है। इतिहास और कल्पना के मिश्रण से इतिहास रस की सृष्टि की जाती है। रचना आगत समय के लिए प्रासंगिक बनती है। ऐतिहासिक यथार्थवाद के रूप में तत्कालीन समय के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, समाज का प्रामाणिक एवं यथातथ्य प्रस्तुतीकरण एवं उस कालखण्ड के जीवन संघर्ष, जय–पराजय, उत्थान–पतन आदि का दर्शन करवाया जाता है। उस काल के समाज की सबलताओं एवं दुर्बलताओं को निरपेक्ष भाव से चित्रित किया जाता है। उपन्यासकार सचेत करना चाहता है कि अतीत की दुर्बलताओं ने देश और समाज की अनवरत गति को बाधित कर जीवन की दिशाएं बदली और परिणामस्वरूप वर्तमान जीवन दुष्परिणाम भोगने पर विवश है। डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थवाद को प्रगतिशील राष्ट्रीय दृष्टि से प्रस्तुत किया है। उन्होंने ''शिप्रा साक्षी है'' की अपनी बात में लिखा है कि अतीत संग्रहालय की निर्जीव पाषाण मूर्ति नहीं, मानव के गतिशील जीवन की अनिवार्य कड़ी है। यह तो गतिशील मानव जीवन के यथार्थ का आलोकन–आलोचन होता है।

डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद अतीत के मर्मस्थलों से मर्माहत होकर सृजन की तूलिका उठाते हैं और सिसकते हुए अतीत का साक्षात प्रतिबिम्ब उकेर देते हैं। वे नालंदा एवं उदन्तपुरी के खण्डहरों की ही नहीं कश्मीर की घाटियों की करूण पुकार सुनाते हैं। इतिहास वंचित हेमू की निराशापूर्ण वेदना को भी महसूस करवाते हैं। शिप्रा और तुंगभद्रा

को साक्षी बनाकर सचेत करते हैं और कबीर के चिंतन से अवगत करवाते हैं। राजपूताने के त्याग व बलिदान से अरावली के उच्च शिखर पर मुक्ति का उद्‌घोष करवाते हैं। उपन्यासकार ने भिन्न–भिन्न कालखण्डों की उन विकृतियों एवं दुर्बलताओं का यथार्थ अंकन किया है, जिनके कारण विश्वगुरू एवं सोने की चिड़िया कहलाने वाला भारत देश दयनीय अवस्था में पहुंच जाता है और अन्ततः दासता को अपनाता है। उन स्थितियों की ओर इंगित किया गया है, जिन्होंने विदेशियों के आगमन का मार्ग प्रशस्त किया। मध्यकालीन भारत के समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था, विषम सामाजिक स्थिति, शासक वर्ग का दायित्वहीन व्यवहार एवं विलासी जीवनशैली, आपसी टकराव अहम् की भावना आदि स्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है, जिसके कारण राष्ट्रीयता की संकीर्ण विचारधारा पनपती है और देश व समाज का पराभव होता है।

सिद्धियों का खंडहर, शिप्रा साक्षी है, सरस्वती सदानीरा, तुंगभद्रा पर सूर्योदय, कश्मीर की बेटी, सुनो भई साधो, अरावली के मुक्तिशिखर पर एवं हेमचन्द्र विक्रमादित्य उपन्यासों में इतिहास का यथार्थ चित्रण किया गया है। इसमें तत्कालीन समाज की सामाजिक बुराइयों को वैचारिक आधार पर चिंतन के लिए प्रेरित करने वाली अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मानवीय असमानता को क्रूर सत्य के रूप में उजागर किया गया है। "शिप्रा साक्षी है" में कुमार विषमशील एवं महारानी सौम्या के वार्तालाप में समाज का यथार्थ प्रकट होता है कि क्यों संत समाज व ब्राह्मण वर्ग धन अर्जित करने के लिए कर्म न करके झूठे पूजा–पाठ का सहारा लेता है। ऊंच–नीच एवं छूत–अछूत का भाव बनाए रखकर समाज की गति को बाधित करता है और इस कुरीति का अन्य वर्ग के लोग किस तरह लाभ उठाते हैं। चरणदास को जब महाकाल मंदिर में अपमानित होना पड़ता है तो भिक्षुधर्म रत्न सहानुभूति प्रदान कर दलित ग्राम में बौद्ध मत का प्रसार करता है और विदेशी आक्रमण के समय यह समुदाय आक्रमणकारियों का सहयोग करता है। अछूतों के प्रति इसी व्यवहार ने अछूतों को इस्लाम स्वीकार करने पर विवश कर दिया। वहां भी उन्हें सम्मान प्राप्त नहीं हुआ। 'सुनो भाई साधो' में समाज के इसी यथार्थ का वर्णन है। देवदासी प्रथा को भी समाज के एक काले सच के रूप में दर्शाया गया है। नारी जीवन की पीड़ा एवं दयनीय स्थिति भी मध्यकालीन भारतीय समाज का एक ऐसा सच है जिसने समाज का विकास नहीं होने दिया। देवदासी इंदू, कोटा देवी, चांदनी, विद्युत लेखा, महारानी सौम्यदर्शना एवं साध्वी सरस्वती ऐसे पात्र हैं जो किसी न किसी रूप में समाज की दोयम सोच का शिकार हैं।

डॉ० शत्रुघ्न प्रसाद के उपन्यासों में मध्यकालीन भारत के यथार्थ राष्ट्र की अभिव्यक्ति होती है। एक तरफ राष्ट्रीय चेतना की भाव–धारा सर्वस्व समर्पण का भाव जगाती है, वहीं स्वार्थ और संकीर्ण सोच राष्ट्रीयता का खण्डबोध करवाती है। हेमचन्द्र को अन्य देशी राजाओं का सहयोग नहीं मिल पता है। कुमार महेन्द्र को गोड़ नरेश लक्ष्मण सेन सहायता नहीं देते हैं। कोटा देवी को भी इसी संकीर्ण सोच के कारण पराजय देखनी पड़ती है। कालकाचार्य पण्डित देवस्वामी सिद्धघोरपा ऐसे पात्र हैं जो विदेशियों को आमंत्रित करते हैं। अपने अहम् भाव की पूर्ति में राष्ट्र का अहित करते हैं। उस काल में

राष्ट्रहित सर्वोपरि न रहकर स्वार्थ, दुर्बलता, अहम् आदि प्रभावी रहते हैं जिसका देश को दु:खद परिणाम भोगना पड़ता है। इसी का यथार्थ चित्रण साक्षात् देख सकते हैं।

मध्यकालीन भारत की संस्कृति संघर्ष एवं द्वंद्व से परिपूर्ण रही है। हिन्दू, जैन, बौद्ध धर्मों का आपसी टकराव व एक–दूसरे पर आरोप लगाते रहना धर्म का पतन भी करता है और जनमानस से विश्वास भी खोता है। सहजयान की मंत्र साधना और यौन आचरण समाज का अहित ही करता है। सिद्ध समुदाय स्त्रियों का महामाया बनाकर अपनी यौन पूर्ति करते हैं और अपने मंत्र विधान के द्वारा देश रक्षा का आधार रखते हैं। सैनिक शक्ति पर होने वाले व्यय को अपने विहारों के लिए खर्च करते हैं और अंत में देश को हानि उठानी पड़ती है। सिद्धघोरपा इसका सशक्त उदाहरण है।

हेमचन्द्र का कहना है कि मुगल मुझे काफिर कहकर गालियां देते हैं और अपने राज राणा रावल जी मेरी उपेक्षा करते हैं। यह अविवेक है। साईंनाथ का कहना है कि हिन्दू राम–रहीम की बात मान लेते हैं किन्तु इनका अछूतों के प्रति व्यवहार बुरा है। अयोध्यावासियों का यह कहना क मन्दिर का उद्धार हो, मंदिर जैसे अपने देश का उद्धार हो आदि कथन अतीत के समाज और राष्ट्र का यथार्थ चित्रण है।

डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद का यह मर्म कथन इतिहास की मर्मव्यथा को व्यक्त करता है, जब वे कहते हैं कि 'हम देश की धरती मां का सम्मान करना कब सीखेंगे......हम कब समझेंगे........हम कब समझेंगे!

सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. सिद्धियों का खण्डहर, डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद।
2. शिप्रा साक्षी है, डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद।
3. सरस्वती सदानीरा, डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद।
4. तुंगभद्रा पर सूर्योदय , डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद।
5. कश्मीर की बेटी, डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद।
6. सुनो भाई साधो, डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद।
7. अरावली के मुक्तिशिखर पर, डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद।
8. हेमचन्द्र विक्रमादित्य, डॉ0 शत्रुघ्न प्रसाद।

ISBN : 978-81-921231-6-5
स्त्री विमर्श
कल, आज और कल

मूल्य : 400/- रुपये
ISBN : 978-81-921231-6-5

प्रकाशक :
हिन्दी विभाग
राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चूरू (राज.)

© हिन्दी विभाग

प्रथम संस्करण : 2014

मुद्रक : अग्रवाल प्रिण्टर्स, चूरू

Satri Vimarsh : Kal, Aaj Aur Kal

49 स्त्री विमर्श : दशा, दिशा और संभावना 236
– श्रीमती कविता पंसारी
50. "स्त्री विमर्श का वर्तमान स्वरूप और कमलेश्वर का कथा साहित्य" 240
– सुरेश गर्ग
51. साहित्य में स्त्री विमर्श 'संस्कृत साहित्य के संदर्भ में 244
– डॉ. चित्रा इन्दोरिया
52. साहित्य में स्त्री विमर्श : आधुनिक हिन्दी उपन्यासों के विशेष संदर्भ में 248
– सुश्री रंजना सींवर
53. नारी विमर्श के मुद्दे और 'दिव्या' 252
– डॉ. गीता कपिल
54. प्रिन्ट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के समक्ष स्त्री – रमाकान्त 257
55. नारी मुक्ति का आन्दोलन : ध्रुवस्वामिनी – डॉ. ममता खांडल 260
56. मानवाधिकार एवं साहित्य में स्त्री विमर्श – डॉ. अंजु बाला सीमार 263
57. भारतीय स्त्री आत्मकथाओं में विद्रोह का स्वर – प्रो. मीनाक्षी श्रीवास्तव 267
58. बाजारीकरण और भूमण्डलीकरण का ज़ाल और स्त्री–विमर्श 270
– धनेश कुमार मीणा
59. डॉ. अम्बेडकर का चिन्तन एवं दलित महिला – भागीरथ लाल मेघवाल 272
60. अल्पना मिश्र की कहानियों में स्त्री चेतना– मिथिलेश कुमारी 275
61. डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में स्त्री.चेतना 279
– रवीन्द्र कुमार मीणा
62. स्त्री अस्मिता की तलाश : ऐतिहासिक उपन्यास 286
– रघुवीर सिंह
63. राष्ट्रकवि दिनकर की स्त्री–चेतना – डॉ. राजेन्द्र प्रसाद खीचड 289
64. स्त्री – विमर्श का दृढ़ आधार : अनामिका की कविताएं 293
– डॉ. नीतू परिहार
65. दलित साहित्य में स्त्री चित्रण – भानीराम मेघवाल 300
66. सामाजिक मुद्दे एवं खाप पंचायतें : हरियाणा राज्य के धरातलीय यथार्थ का विवेचन एवं विश्लेषण – डॉ. विनिता, सुमन कुमारी 304
67. भारतीय साहित्य में स्त्री विमर्श : अतीत और वर्तमान 311
– डॉ. श्यामा सिंह
68. स्त्री विमर्श और समकालीन हिन्दी कहानी 315
– डॉ. सुमन पलासिया
69. आधी दुनिया नारीः फिर क्यों वह बेचारी 322
– कल्याणसिंह चारण, कु. प्रभा चारण
70. दलित–स्त्री का जीवन्त दस्तावेज़ – शिकंजे का दर्द' के सन्दर्भ में 326
– डॉ. विजय कुमार प्रधान
– सुश्री नूतन कुमारी

स्त्री अस्मिता की तलाश : ऐतिहासिक उपन्यास

— रघुवीर सिंह

लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकार यशपाल ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' की भूमिका में ऐतिहासिक साहित्य का महत्व प्रकट करते हुऐ लिखा था कि " अपने अतीत का मनन एवं मंथन हम भविष्य के लिए संकेत मानने के उद्देश्य से करते है। वर्तमान में अपने को असमर्थ पाकर भी हम अपने अतित में क्षमता का परिचय पाते है...... इतिहास विश्वास ही नहीं विश्लेषण की वस्तु है। इतिहास मनुष्य का अपनी परम्परा से आत्मविश्लेषण है।"

उपर्युक्त कथनानुसार हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों में भी नारी जीवन का विवेचन हुआ है। अतीत दर्शन से नारी के भविष्य का निर्माण संकेतित है। इस साहित्य में जिसे मुख्य धारा से अलग माना जाता है नारी अस्मिता के प्रश्न चुनौती के रूप में उभरते है। अनेक ऐतिहासिक प्रसंगो व पात्रों के माध्यम से नारी जीवन की विविध स्थितियों का चित्रण भी हुआ है तथा नारी जगत की पीड़ाओं, समस्याओं, उलझनों, आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति भी हुई है। अनेक ऐसे उपन्यासकार हुये है जिन्होने नारी जीवन के मुक्त भविष्य की कामना की है। अतीत को पुनर्जीवित कर वर्तमान को अनुप्राणित किया है। भविष्य का मार्ग प्रशस्त किया है। ऐसे उपन्यासकारों में वृन्दावन लाल वर्मा का नाम उच्च स्थान पर पदस्थ है। इनके लेखन में स्त्री अस्मिता की मुखर अभिव्यक्ति हुई है जो इस तथ्य से प्रमाणित है कि इनके उपन्यासों में केन्द्रीय पात्र स्त्रियां हैं तथा शीर्षक भी स्त्रियों के नाम पर ही हैं। चरित्र चित्रण की उज्ज्वलता है। मृगनयनी, कचनार, झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, महारानी दुर्गावती, अहिल्या बाई तथा विराटा की पद्मिनी आदि उपन्यास नारी प्रधान है तथा नारी चेतना का उद्घोष करते है। अन्य उपन्यासों मे भी नारी द्वन्द्व का सूक्ष्म चित्रण मिलता है। 'गढ़ कुण्डार' में हेमवती — नागदेव प्रसंग में स्त्री का जीवन संघर्ष व्यक्त हुआ है तथा निर्भीक और विद्रोही विचार भी व्यक्त हुये है। स्त्री परिवर्तन की आधारभूमि तैयार होती है। वह कहती है " बुन्देला कन्या न ऐसी भाषा सुन सकती है न सह सकती है। " 'कचनार ' महाराजा दिलीप सिंह से विवाह पूर्व शारीरिक सम्बन्ध बनाने के लिए अस्वीकार कर देती है। यह नारी चेतना का प्रस्फुटन है। नारी प्रतिष्ठा की स्थापना। 'अहिल्या बाई ' की आनंदी के विचार आज का स्त्री विमर्श ही है। वह कहती है — "मल्हार नीच है, ओछा है। मैं मूर्ख या कायर के साथ अपना जीवन या मान नहीं गवाउंगी।" इस प्रकार वर्मा जी के उपन्यासों के नारी पात्र पुरुषवादी सोच को नकार कर उसे चुनौती प्रदान करते है। मृगनयनी और लाखी के माध्यम से कर्मवादी व प्रगतिशील विचारधारा की पुष्टि होती है। वर्मा जी ने नारी का आदर्शवादी रूप दर्शाते हुये कहा है " स्त्री का गौरव, सौन्दर्य, महत्त्व स्थिरता में है जैसे उस नदी का ....दूर से बिल्कुल स्थिर, बहुत पास से प्रगतिशालिनी "

नारी के गौरव को स्थापित करने की प्रबल भावना रखने वाले पुरोधा हजारी प्रसाद द्विवेदी स्त्री शरीर में देव मन्दिर की कल्पना करते है। बाणभट्ट द्वारा भट्टिनी का उद्धार सम्पूर्ण नारी जाति का उद्धार है। वह कहती है " मैं तुम्हारे देश की

लाख–लाख अपमानित, लांछित और अकारण दण्डित बेटियों में से एक हूं। कौन नहीं जानता वह धृणित व्यवसाय में प्रधान आश्रय सामन्तों और राजाओं के अन्तःपुर है।'' एक पीड़िता द्वारा सामन्तवादी परम्परा पर किया गया यहा करारा प्रहार आज की नारी को एक सम्बल प्रदान करता है। द्विवेदी जी ने पुरुष प्रधानता के प्रासाद को खण्डहर में बदलकर नारी के प्रति सम्वेदना का सागर बहा दिया है। 'पुनर्नवा' की चन्द्रा पुंसत्वहीन अनचाहे पुरुष का त्याग करती है और परिषद के समर्थन से मनचाहें पुरुष आर्यक को अपनाती है। यह स्त्री स्वतंत्रता के समर्थन में एक सार्थक पैरवी मानी जा सकती है। इसी कड़ी में रांगेय राधव कृत 'मुर्दो का टीला ' व यशपाल कृत ' दिव्या ' भी प्रमुख उपलब्धि हैं। मुर्दो का टीला में द्रविड़ विल्लिभितूर कहता है कि '' मैं कवि हूं। प्रेम चाहता हूं। स्त्री को बांधना नहीं चाहता हूं।'' यशपाल की दिव्या आचार्य रूद्रधीर से कहती है – '' अपनी प्रवृति के कारण दासी कुलवधू के सम्मान के योग्य नहीं है। दुर्भाग्य की अग्नि में जल कर दासी ने स्वतंत्र नारी का कलंक पाया है। वहीं उसे प्रिय है।'' एक में पुरुष स्त्री को स्वतंत्र रखनें का आकांक्षी है। एक में स्त्री स्वयं स्वतंत्र रहना चाहती है। बन्धन अस्वीकार। स्त्री का स्वयं पर अधिकार, यही वांछनीय है। वर्तमान समाज की आवश्यकता व भविष्य में नारी जगत को दिशा प्रदान करती हुई विचार धारा 'सीरो की दृढ़ता में व्यक्त हो रहीं है।'' मेरे लिए संसार में केवल तुम्ही एक पुरुष नहीं हो। तुम जैसे अनेक, तुमसे श्रेष्ठ अनेक।'' पुरुष दम्भ को चोटिल करने वाला क्रान्तिकारी चेतन स्वर भविष्य की आवाज है। और यह कहना तो और भी साहस का काम है कि '' मैं तुम्हारे वंश की धुरी खीचने के लिए बछड़े उत्पन्न करने वाली गाय नहीं हूं।'' पौराणिक कथानकों के उपन्यासकार नरेन्द्र कोहली रचित 'दीक्षा' उपन्यास की अहिल्या यह कथन कि ''मै अकेली जड़ नहीं हो गयी थी, सम्पूर्ण आर्यावर्त जड़ हो चुका था।'' सिद्ध करता है कि स्त्री शून्य संसार निर्जीव समान है। ' महासमर की अम्बिका की पुकार व विद्रोह विवशता की पीड़ा व व्यवस्था के प्रति अग्निसम दाहक है।

रांगेय राधव लिखित 'यशोधरा जीत गई' में भद्रा का कथन पुरुष –नारी असमानता की चरम अभिव्यक्ति है। तथा क्षोभ व पीड़ा की देन है। कहती है –'' जो जन्म देती है वह नीची है जो पालती है, वह नीची है। फिर पुरुष क्यो उंचा है? क्यो वह भोगी होने का अंहकार रखता है।'' चतुरसेन शास्त्री भी इस चेतना को उच्च स्वर देने वाले उपन्यासकार माने जाते है। 'वैशाली की नगरवधू ' में नारी चेतना प्राण होकर प्रकट हुई है। अम्बपाली कहती है '' नगर वधू का कानून गणतन्त्र का कलंक है।'' चतुरसेन शास्त्री द्वारा स्त्रीत्व के अधिकारो, स्त्री के सम्मान, स्त्री की मर्यादा का आह्वान करवाया गया है। कृष्णा नन्द जी की 'पाटलिपुत्र की राजनर्तकी–कोषा' कहती है कि '' राजनर्तकी का पद शोषण का प्रतीक है। नारी प्रत्येक युग में शोषित होती आयी है।'' यहीं प्रगतिशील चिन्तन अभिव्यक्त हुआ है। भगवती चरण वर्मा की चित्रलेखा में भी नारी विमर्श की सशक्त अभिव्यक्ति है। इसमें चित्रलेखा द्वारा पुरुष –स्त्री के सम्पूरक सम्बन्ध की पैरवी की गयी है। 20 वीं सदी के उपन्यास 'रसकपूर ' में वेश्या पुत्री रसकपूर महाराज जगत सिंह से कहती है '' मेरी मर्यादा की रक्षा करने वालो को हीं अपने देह दान की प्रतिज्ञा कर बैठी हूं इसके अभाव से शक्ति प्रयोग कर जीवित प्राप्त करना इस

भूमण्डल पर किसी के लिए *भी असम्भव होगा।"* रसकपूर स्त्री *सामर्थ्य* और दृढता के **साथ** स्त्री स्वाभिमान की प्रेरणा प्रदान करती है।

शत्रुधन प्रसाद प्रगतिशील विचारधारा के वाहक ऐतिहासिक उपन्यासकार है **जिन्होनें** समृद्ध उपन्यास साहित्य में नारी की नवीन जीवन दृष्टि को समर्थन दिया है। 'सिद्धियों के खण्डहर' में 'महेन्द्र – सुवर्णा ' का मौन उनुराग उदात प्रेम व कर्तव्य का प्रतिफलन है। तापस बालक व मन्त्री कन्या का एक दूसरे पर विश्वास धार्मिक पाखण्ड पद्धति का खण्डन करता है। सुमन्त जैनयुवा है तथा सुभद्रा शाक्त विधवा है। राजनर्तकी विधुत्लेखा के मनोभावों से उपन्यासकार ने अभिव्यक्त किया है कि स्वयं भगवान शिव निम्न कोटि के प्राणियों से प्रेम करते है फिर उन्हीं भक्त मनुष्यों का ही तिरस्कार करते है। मानवीय संवेदना का ज्वलंतप्रश्न उपस्थित किया है। इसके अलावा रानो सौम्यदर्शना, सुमन, साध्वी सरस्वती आदि नारी पात्र पुरुष अत्याचारों से प्रभावित होते है। शक राजकुमारी हला और विषमशील का आकर्षण भी द्वन्द्व का कारण बनता है। ' हेमचन्द्र विक्रमादित्य' की पारों की पीड़ा जन–2 की बहू–बेटियों की पीड़ा है। 'तुगंभद्रा पर सूर्योदय' में भाणमुखम व देवदासी इन्दुमती का विवाह व हमीद व मृगनयनी का विवाह, देवदासी जैसी शोषित नारी की मुक्ति व अन्तर्जातीय परम्परा का खण्डन करती है। 'कश्मीर की बेटी' में कोटादेवी का संघर्ष अपने आपमें प्रेरणा का प्रकाशपुंज है तो दासी पुत्री चांदनी का दस वर्ष तक अपहृत व बलात्कृत निष्कर्षतः ऐतिहासिक उपन्यासें में विभिन्न युगों के नारी पात्रों का चित्रण हुआ है। परित्यक्ता, शोषिता अपहृता, बलात्कृता, तिरस्कृता नारियों की मर्मव्यथा भी अभिव्यक्त हुई है। वासनापूर्ति, स्वार्थ लोलुपता व पुरुषवादी अह। के विरोध में विद्रोह का भाव भी दर्शाया गया है। स्वतंत्रता व मुक्ति की आकांक्षा तथा स्व की पहचान की चाहना भी मुखरित हुई है। अनेक रूपों में नारी का चित्रण व विवेचन **स्त्री–विमर्श भी न माना जाए तो स्त्री** अस्मिता की पहचान जरूर व्यक्त हुई है। साहित्य का समग्र विवेचन परम आवश्यक है। अतीत से भविष्य का सुन्दर स्वरूप निर्धारित है। शिवप्रसाद सिंह **के कथन पर** दृष्टिपात जरूरी है:– " अगर अपने मन ही मन निश्चय कर लिया है कि इतिहास में लौटना प्रतिगामिता है और ऐसा करने वाले वर्तमान से टकराने से कतराते है तब तो बहस का सवाल ही नहीं है। आज यदि पूरे विश्व के साहित्य को देखें तो अतीत की और दौड़ हतप्रभ कर देगी।....आज के तथाकथित मूल्यों की कशमकश से घबराकर लोग ऐसे चरित्रों को ढूंढ रहे है जो अतीत के होते हुए भी हमारे वर्तमान के आदर्श है।" "भूमिका कुहरे में युद्ध"

– शोधार्थी, कोटा विश्वविद्यालय,कोटा

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में काल चेतना एवं संस्कृती
2. हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यास एवं उपन्सासकार डॉ द्वारिका प्रसाद
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासें में सांस्कृतिक चेतना –डॉ शिवशंकर त्रिवेदी
4. हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार –भगवती शरण मिश्र
5. वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का पुर्नमूल्याकन –डॉ रामशरण तिवारी

• • •

साक्षात्कार – शत्रुघ्न प्रसाद एवं उनकी पुत्री महिमाश्री के साथ शोधार्थी रघुवीर सिंह की बातचीत

स्थान – दिल्ली स्थित महिमाश्री का आवास

दिनांक – 11–01–2016

चित्र 5 – शत्रुघ्न प्रसाद एवं उनकी पुत्री महिमाश्री के साथ शोधार्थी रघुवीर सिंह बातचीत करते हुए।

1.रघुवीर सिंह – प्रथम दर्शन में तो आप 'सादा जीवन उच्च विचार' के प्रतीक लगते हैं। आप अपनी जीवन शैली के बारे में अवगत करवाकर हमें अपने व्यक्तित्व–परिचय का लाभ प्रदान कीजिए।

शत्रुघ्न प्रसाद – नगर के सामान्य मध्यमवर्गीय परिवार में मैंने जन्म लिया है। गाँव में खेती है। गाँव की जीवन–शैली से प्रभावित रहा हूँ। व्यवसायी वर्ग का होने पर भी सामान्य परिवार का ही रहा हूँ। संयुक्त परिवार, मुहल्ला और नगर सांस्कृतिक वातावरण से ओत–प्रोत रहे हैं। मेरी प्रवृति के अनुसार इस वातावरण में मैंने सांस्कृतिक–राष्ट्रीय संस्कार ही पाए हैं। बचपन से प्रवृति भी ऐसी ही रही है। सनातन–धर्म तथा आर्य समाज दोनों का प्रभाव रहा है। कबीर एवं विवेकानन्द से प्रभावित रहा हूँ। अतः रहन–सहन एवं खान–पान के प्रति विशेष लगाव मन में नहीं रहा। विवेकानन्द के इस कथन का प्रभाव रहा है– "भारत में व्यक्ति की पहचान वेशभूषा से नहीं विचारों से होती है।'' अतः विचारों में संस्कृति, अपनी भूमि, अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता व समृद्धि की भावानुभूति ही प्रबल होती गई। अतः जीवन सादा ही रहा।

2. रघुवीर सिंह – महिमा जी ! आप अपने पिताजी की जीवन शैली के बारे में कुछ बताना चाहेंगी? क्या आप स्वयं पर भी इनका कुछ प्रभाव महसूस करती है ?

महिमाश्री – पिताजी का जीवन 'सादा जीवन उच्च विचार' कथन को पूरी तरह चरितार्थ करता है। बिना घी वाली रोटियाँ, एक हरी सब्जी, दही यही इनका प्रिय भोजन है। दूध

पीना अनिवार्य आदत है। शाकाहारी हैं। एक ही धोती–कुर्ता से काम चलाने की आदत रही है, जिससे हम लोग परेशान रहते थे। फटी गंजी को भी बदलने के लिए हम लोगों को ही कहना पड़ता था। साहित्य और राष्ट्र ही पहली आवश्यकता होने के कारण इन्होंने जीवन के दूसरे पहलुओं की तरफ ध्यान ही नहीं दिया। सेवानिवृत्ति तक किसान कॉलेज के सामने वाले मुहल्ले में खपरैल वाले घर में रहते रहे। सादगी का यह प्रमाण पर्याप्त ही होगा। 'ड्राईंग रूम' में रोशनी की एक किरण भी नहीं आती थी। दूसरे साहित्यकार व अध्यापक मित्र वहाँ आने में कतराते थे। अन्य प्राध्यापक पक्के–सुन्दर मकानों में रहते थे। मुहल्ले में तांगे वाले, मछली बेचने वाले, नशा करने वाले रहते थे। अब आप ही इनकी सादगी और विचार धारा का अनुमान लगा सकते हैं। मैं पिताजी जितनी सादा तो नहीं पर मेरे स्वभाव में इनका प्रभाव है। इनकी तरह वितरागी तो नहीं हूँ। पर सहज हूँ। घर का खाना, थोड़े में सन्तुष्ट होना व सबको सम्मान देना संभवतः पिताजी का ही प्रभाव है। हर वर्ग व समुदाय के लोगों के साथ घुल–मिल जाना, ऊँच–नीच का भाव न होना, सबके साथ समान व सम्मानजनक व्यवहार रखने का स्वभाव सब भाई–बहनों में हैं; जो पिताजी की ही देन है। भारतीय पर्वों को प्रसन्नता से मनाना, प्रसाद बनाना और मुहल्लेवासियों व मित्रों में वितरित करना पिताजी का नियमित संस्कार रहा है। हमारे आनाकानी करने पर स्वयं जाकर प्रसाद देकर आते थे।

पिताजी धुन के पक्के हैं; लगनशील है; सोच लिया तो करना ही है। धैर्यवान और परिश्रमी इतने कि विश्वास नहीं किया जा सकता है। सरस्वती के वरद पुत्र को लक्ष्मी (धन) का आकर्षण नहीं रहा। स्वावलम्बी हैं। अपना काम खुद करने में विश्वास रखते हैं। तीन पुत्र और तीन पुत्रियों के पिता हैं पर कभी किसी से कुछ नहीं मांगते हैं। सन्तान की मांग पूरी करने के लिए तत्पर रहते हैं। बेटे–बहू से सेवा करवाने के बारे में कभी नहीं सोचा। माँ के साथ ही रहते है यद्यपि पूरा परिवार उन्हें सम्मान देता हैं। पूरे परिवार में मेल–जोल का भाव है। स्वाभिमानी व कर्तव्यनिष्ठ इतने है कि कभी भी हम लोगों की पैरवी नहीं की। कहते थे– "सिफारिश की मत सोचना। मेरे सिद्धान्त के खिलाफ हैं, मैं कभी नहीं करूंगा।" इस तरह सीधे, सरल, आत्मीय, भारतीय संस्कारों से युक्त स्वाभिमानी एवं स्वावलम्बी व्यक्ति हैं – पिताजी।

3. रघुवीर सिंह– ऐतिहासिक लेखन में अध्ययन एवं अनुसंधान की विशेष आवश्यकता है। इतनी श्रमसाध्य साधना कैसे कर पाते हैं, इस उम्र में भी ?

शत्रुघ्न प्रसाद – किशोर जीवन से ही संस्कृति, राष्ट्र, इतिहास, पराधीनता, स्वाधीनता की बातें सुनता रहा। विचार करता रहा। आर्य समाज, विवेकानन्द, महात्मा गाँधी आदि के कारण इन्हीं विचारों की प्रबलता होती गई। ऐतिहासिक उपन्यास पढ़ता रहा। नालन्दा के खण्डहरों ने पीड़ा से भर दिया। अनुप्राणित हुआ। राष्ट्रीय–सांस्कृतिक विचारधारा की प्रबलता व इस

विचारधारा को समाज के सामने रखने की भावना ने ही ऐतिहासिक उपन्यास लेखन का संकल्प दिया। संकल्प श्रम करवा लेता है। अतः अध्ययन–अनुसंधान परिश्रम के साथ होता रहता है। निरन्तर है। 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'। उम्र प्रभावी नहीं है, संकल्प प्रभावी है।

4. रघुवीर सिंह– महिमा जी, इनकी अध्ययनशीलता एवं लेखकीय समपर्ण को देखकर आप कैसा अनुभव करती हैं ?

महिमाश्री – अद्भुत व आश्चर्यजनक लगता है। पिताजी धैर्यवान व अध्ययनशील व्यक्ति हैं। इनके अध्ययन में निरन्तरता है। अनुशासन है। अध्ययन और अनुसंधान करके लिखते हैं। लिखने के प्रति जितना परिश्रम व संकल्प रखते है; प्रकाशन के प्रति जितनी उत्सुकता रखते है, प्रकाशक के साथ उतना ही धैर्य से काम लेते हैं। 'सरस्वती–सदानीरा' को लिखने में सात–आठ वर्ष लगे और प्रकाशित होने में नौ–दस वर्ष लगे। यह एक सशक्त उदाहरण है। ना प्रचार–प्रसार के लिए दाँव–पेच आजमाते हैं। रॉयल्टी मांगने में भी संकोच दिखाते हैं। मैंने जबसे होश संभाला है, पिताजी को निरन्तर अध्ययन–लेखन में रत देखा है। अधिक अस्वस्थ होने पर ही यह छूट पाता है। प्रचार, गुटबाजी, पुरस्कार, लोभ व दाँव–पेच से दूर एकांत साधना में लीन रहते हैं। हाँ संतोष यह है कि साहित्य जगत में पिताजी का सम्मानजनक स्थान है। यही लेखन का पुरस्कार मानते हैं। अफसोस है मुझे, इसलिए कि शायद पिताजी दिल्ली जैसे बड़े शहर में रहते तो शायद युवा–पीढ़ी इनके विचारों के अधिक अवगत होने का अवसर पाती। इन्हें भी समुचित सम्मान मिलता। ऐसे ओजस्वी वक्ता से युवा–पीढ़ी को, समाज व राष्ट्र को अनमोल विचार मिलता।

5. रघुवीर सिंह– प्रेमचन्द के कहने पर जयशंकर प्रसाद ने भी यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास लिखा था। आप तो निरन्तर ऐतिहासिक उपन्यास ही लिखते जा रहें हैं। कौनसी दृढ़–आस्था के बल पर मुख्य–धारा से अलग ऐतिहासिक लेखन में रत है, जबकि आज हर कोई मुख्यधारा में डुबकी लगाने में अपना सौभाग्य और सार्थकता समझता है।

शत्रुघ्न प्रसाद– मेरी आस्था राष्ट्र है, संस्कृति है। इसी के प्रति संकल्प है मेरा। प्रगतिशीलता को मैं अतीत और वर्तमान के साथ जोड़ कर देखता हूँ। वर्तमान अतीत से सीखकर भविष्य को सँवारे, यही प्रगतिशीलता है। अतीत को भूल जाना प्रगतिशीलता नहीं; आत्मप्रवंचना है। उपन्यास की अनिवार्य शर्त यथार्थ है। मैं इतिहास का यथार्थ प्रस्तुत करता हूँ। मेरे सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में युग का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक यथार्थ वर्णित हुआ है। विगत का भी, वर्तमान का भी। व्यक्ति की प्रकृति, प्रवृत्ति, वर्ण–व्यवस्था से उत्पन्न विषमता, स्त्री की दुखद अवस्था, आर्थिक स्थिति इन सबका देश–काल–पात्र के अनुसार वर्णन–चित्रण हुआ है। यह बहुआयामी यथार्थ वर्तमान यथार्थ से जुड़ा हुआ है। मेरे उपन्यासों में देश एवं

काल का यथार्थ सघन है। मुख्यधारा कुछ समय का उफान है। यह लेखन धीर गति का निरन्तर प्रवाह है। मैं ध्येय का लेखक हूँ। केवल प्रशंसा प्राप्ति का लेखक नहीं हूँ।

6. रघुवीर सिंह– आपके अधिकांश उपन्यासों में इतिहास का गौरव नहीं; इतिहास की पीड़ा अभिव्यक्त हुई हैं। यह '' आह से उपजा होगा गान '' वाली पंक्ति का चरितार्थ लगता है। इसे हृदय का द्रवीकरण कहा जाए या हृदय का प्रक्षालन –

शत्रुघ्न प्रसाद– अत्यन्त मर्म बेधी प्रश्न है आपका। नालन्दा के खण्डहरों ने मेरे हृदय को पीड़ित किया। 800 वर्षों की पराधीनता से उपजी विषमताओं की पीड़ा ही मेरी कथा प्रेरणा है। नालन्दा, कश्मीर, विजयनगर, काशी, चित्तौड़ आदि अपने ध्वस्त गौरव से पीड़ा ही तो पैदा करते हैं। मैंने बचपन और किशोर जीवन में स्वाधीनता आन्दोलन को देखा है। जुलूसों में सम्मिलित हुआ हूँ। भारत विभाजन की त्रासदी को देखा समझा है। इसके बाद भी भारत आक्रमण एवं आतंक से त्रस्त रहा है। अतः मेरे उपन्यासों में अतीत की पीड़ा अधिक रही है। अतीत एवं आगत से तादात्म्य स्थापित कर सका हूँ। अतीत को देखकर पीड़ा से द्रवित हुआ हूँ। लिखकर हृदय को प्रक्षालित कर सका हूँ।

7.रघुवीर सिंह– महिमा जी, क्या आपने अपने पिताजी के उपन्यास पढ़े है? कोई विशेष कृति या विशेष पात्र जिसने आप को सोचने पर विवश किया है ?

महिमाश्री– पिताजी द्वारा रचित सभी उपन्यास एवं उन पर लिखी गई समीक्षाएं पढ़ी हैं। सभी उपन्यास अलग–अलग कालखण्डों का बोध कराते हैं। सब अपने में विशिष्ट हैं। सब मार्मिक हैं। सद्यः प्रकाशित शहजादा दाराशिकोह, अरावली का मुक्तशिखर, सरस्वती–सदानीरा उपन्यास भिन्न–भिन्न कालखण्डों के भिन्न–भिन्न यथार्थ को महसूस करने को विवश करते है। 'शहजादा दाराशिकोहः दहशत का दंश' औरंगजेब कालीन धर्मान्ध क्रूरता का मार्मिक चित्रण करता है। 'अरावली का मुक्त शिखर' अकबर कालीन वातावरण व मेवाड़पति राणा प्रताप के स्वातन्त्र्य संघर्ष को अभिव्यक्त करता है। 'सरस्वती–सदानीरा' वैदिककालीन समाज का मनोरम चित्रण उपस्थित करता है। किसी एक उपन्यास या पात्र के प्रभाव से प्रभावित होने वाली बात कठिन है। सभी उपन्यास, सभी पात्र भिन्न–भिन्न अहसास देते हैं। लेखक अज्ञात हो तो पता ही नहीं लगता कि ये उपन्यास एक लेखक के है। भिन्न–भिन्न प्रेरणाएँ–ऐसा ही महसूस होता है।

8.रघुवीर सिंह– साहित्यकार अपने परिवेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता हैं। आपके परिवार व समकालीन परिवेश ने आपको कितना प्रभावित किया; फिर आपने तो ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है?

शत्रुघ्न प्रसाद– स्वाधीनता संघर्ष, स्वाधीनता के बाद व इक्कीसवीं सदी के दो दशकों में सनातनधर्म, आर्यसमाज, राष्ट्र से पराधीनता की पीड़ा, संघर्ष एवं राष्ट्र बोध का परिवेश मिला। अध्ययन में विवेकानन्द व कबीर की अद्वैत चेतना व ऐतिहासिक उपन्यासों में व्यक्त

राष्ट्रीय–सांस्कृतिक विचार मैंने परिवेशगत ही पाए। अनेक विद्वान प्राध्यापकों का प्रभाव भी रहा। किसान कॉलेज व नालंदा कॉलेज का साहित्यिक वातावरण भी अनुप्राणित करता रहा हैं। समकालीन लेखन वामपंथी विचारधारा से प्रभावित रहा है। यह एकपक्षीय लेखन है। वामपंथ की विचारधारा को राष्ट्र की प्रगति के अनुकूल नहीं मानता। अतः उनको उत्तर ही देता रहा हूँ। सभी अच्छाइयों को आत्मसात करता हूँ।

9.रघुवीर सिंह– महिमा जी, आपको कोई ऐसा वृतान्त याद है; जिसमें आपने अपने पिताजी में उत्कट मानवता का भाव देखा हो?

महिमाश्री– देश पहले परिवार बाद में, पिताजी का यही विचार रहा है। आपात्काल के दौरान बन्दी रहने पर व बाद में भी निरन्तर देश के उत्थान के लिए ही सोचते रहते थे। लिखने लगे; इसी भाव से। देश और मानवता की दृष्टि से पिताजी में गाँधीजी वाली लगन देखी है–मैंने। हमारे घर में कामवाली आती रही है, परन्तु शौचालय व स्नानघर पिताजी स्वयं ही साफ करते हैं। गरीब घर की लड़कियों के विवाह में सहयोग करते हैं। 'शनीचर काका' का प्रसंग तो मानवता का उत्तम उदाहरण है। 'शनीचर काका' कपड़े धोकर व प्रेस करके कभी समय पर नहीं देता था। कपड़े जला देता था। कभी–कभी कई दिनों तक खुद पहन कर काम में ले लेता था। पकड़े जाने पर भी पिताजी ने उन्हें कभी नहीं हटाया। 'मालिक अगली बार नहीं होगा– कहते ही क्षमा मिल जाती थी। एक बार तो माँ की साड़ी को एक महिने तक नहीं लौटाया। शनीचर की पत्नी ने उसे पहन लिया। वैसी ही दूसरी सिल्क की साड़ी लेकर शनीचर आए। माँ ने तुरन्त पहचान लिया। शनीचर की चोरी पकड़ी गई। शनीचर काका ने बात मानते हुए स्वीकर किया कि पत्नी के मायके में शादी है। उसी में पत्नी ने वह साड़ी पहनी है। पिताजी ने फिर यह कहकर कि 'गरीब आदमी है', कह तो दिया पुनः नहीं करेगा। उसे क्षमा कर दिया। ऐसी मानवता की उत्तम भावना के कई वृतान्त हैं।

10.रघुवीर सिंह – आप अध्यापन, सम्पादन एवं साहित्य लेखन का सफल निर्वाह कर रहे है? कहाँ अधिक सन्तुष्टि पाते है? क्या तीनों कर्मों को एक कड़ी के रूप में देखा जा सकता हैं ?

शत्रुघ्न प्रसाद– सन् 1957 से 1962 तक केवल अध्यापन किया। 1963 ई. से अध्यापन एवं साहित्य कर्म साथ–साथ चल पड़े। द्वन्द नहीं रहा। पूरक ही हैं– एक–दूसरे के। अध्ययन हुआ तो अध्यापन में सहायक हुआ। मित्रों के आग्रह एवं मन में रही इच्छा की पूर्ति के निमित्त सम्पादन कर्म चल पड़ा। संघर्ष के साथ इसे भी निभा रहा हूँ। अध्ययन का समय सम्पादन में देना पड़ा है। अध्यापन, सम्पादन एवं साहित्य लेखन तीनों को मैंने कर्तव्य समझ कर समर्पण के साथ किया। देश एवं समाज की जागृति में तीनों की विशिष्ट भूमिका होती है। अध्यापक भावी पीढ़ी का निर्माण करता है। सम्पादक प्रबुद्ध वर्ग के विचारों को समाज तक

पहुँचाता है और समाज को दिशा प्रदान करता है। साहित्य राष्ट्र–समाज का दर्पण बनकर समाज को नवीन जीवन का दिशा निर्देश भी देता है। राष्ट्र व समाज को उन्नत बनाने, राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने, सांस्कृतिक उन्नयन करने के उद्देश्य की पूर्ति में तीनों ही श्रेयस्कर माध्यम है। मैंने प्रगतिशील राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना को समाज तक पहुँचाया है– इनके द्वारा। राष्ट्र–जागरण के तीनों माध्यमों का निर्वाह कर जीवन की सार्थकता महसूस करता हूँ।

11.रघुवीर सिंह– लोकतांत्रिक मूल्यों में कितनी आस्था रखते हैं ? क्या आपके उपन्यासों की विषयवस्तु लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुकूल हैं ? सम्प्रदायवाद का दोष लग सकता है। प्रकाश डालिए।

शत्रुघ्न प्रसाद– स्वातंन्त्र्यपूर्व ही राजनीति, साहित्य व पत्रकारिता के माध्यम से लोकतांत्रिक चेतना प्रबल हो गई थी। स्वतंत्र भारत लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति है। लोकतंत्र श्रेष्ठ शासन पद्धति है। लोकतांत्रिक मूल्यों में मेरी पूरी आस्था है। परन्तु स्वतन्त्र्योत्तर भारत में लोकतन्त्र को अतिरिक्त लाभ कमाने का जरिया समझ लिया गया है। राजनेता, उद्योगपति, व्यापारी, अधिकारी एवं चालाक–चतुर इसका अतिरिक्त लाभ उठा रहे हैं। इस व्यवस्था से क्षुब्ध हूँ। लोकतंत्र भ्रष्ट्रतंत्र हो गया है या बना दिया गया है। मेरे उपन्यास ऐतिहासिक है। आज की लोकतांत्रिक व्यवस्था का चित्रण नहीं हो सकता है। पर शासक को जनहितकारी होना चाहिए। शासक–वर्ग के लिए जनसमस्या की प्रथमिकता ही लोकतांत्रिक चेतना है। गाँवों में लोकतांत्रिक भावना प्राचीन काल से रही है। मेरे उपन्यासों में अभिव्यक्त है। अन्यायी व अत्याचारी शासन के प्रति जनआक्रोश मेरे उपन्यासों में प्रदर्शित है। यह लोकतंत्र की ही चेतना है। सब वर्गों का हित, सबके साथ समानता, सबको समान महत्त्व, प्रत्येक मन स्वतन्त्र यही लोकतांत्रिक मूल्य हैं जो मेरे उपन्यासों में व्यक्त हुए हैं। आज की भारतीय व्यवस्था को पूरी तरह लोकतांत्रिक नहीं कहा जा सकता है। वर्ग विशेष का हित विशेष रूप से देखा जाता है। मेरे उपन्यासों के लिए साम्प्रदायिकता का प्रश्न उठाना नितान्त एक पक्षीय विचार हो सकता है। यह मध्यकालीन यथार्थ है। किसी धर्म, सम्प्रदाय या वर्ग के प्रति पूर्वाग्रह नहीं है। उस यथार्थ को समझते हुए आज की शासन व्यवस्था जन–भावनाओं की अपेक्षाओं पर खरा उतर सकती है। अफसोस है कि आज का भ्रष्टाचार युक्त प्रशासन, आतंकवाद का त्रास आदि कहीं न कहीं मध्यकालीन यथार्थ का ही अंग है। भारतीय लोकतंत्र को परिपक्व अवस्था में लाने के लिए लोकतांत्रिक मूल्यों को ईमानदारी से लागू करने की जरूरत है।

12.रघुवीर सिंह– आपके उपन्यासों में धर्म के विकृत रूप एवं धर्मान्धता दोनों का चित्रण हुआ है। धर्म का आदर्श रूप कैसा हो सकता है? 'धर्मनिरपेक्षता' की दृष्टि से विचार प्रदान कीजिए।

शत्रुघ्न प्रसाद– हमारे देश में सामाजिक व्यवस्था, धर्म एवं राजनीति दोष पूर्ण रहे हैं। ऐतिहासिक उपन्यास में महिमामण्डन ही नहीं यथार्थ भी चित्रित होना चाहिए। मैंने अपने लेखन में धर्म तथा समाज के साथ राजनीति की दुर्बलताओं से युक्त यथार्थ को पूरा स्थान दिया है। हिन्दू–बौद्ध–जैन धर्म में व्याप्त दुर्बलताओं व आपसी वैमनस्य व द्वन्द ने राजनीति को भी पंगु बना दिया था और जनसामान्य आस्थाहीन–द्विग्भ्रम का जीवन जी रहा था। यद्यपि अनेक संत अद्वैत व एकात्म विचारधारा को लाकर समाज में आस्था व विश्वास पैदा कर रहे थे और किया भी। धर्म के विकृत रूप के साथ–साथ धर्म के प्रेरक रूप को दर्शाया गया है। आज की धर्मनिरपेक्षता छलावा है। भारतीय सनातन धर्म का सर्व–धर्म–समभाव ही सच्ची धर्म निरपेक्षता है। आज के धर्मनिरपेक्षतावादी (सेकुलरवादी) बुद्धिजीवी, पत्रकार, राजनेता, विचारक न तो पश्चिमी सेकुलरवाद को समझते हैं न भारतीय सर्व–धर्म–समभाव को समझना चाहते हैं। सेकुलरवाद के नाम पर हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू गौरव, हिन्दू जनता को नष्ट कर अलगाववादी–मुस्लिम राजनीति को तुष्ट कर थोक वोट चाहते हैं। इस धर्मनिरपेक्षता ने तो वैमनस्य पैदा किया है। टकराव बनाए रखना चाहते हैं। ये तो छलावे की धर्मान्धता ही है। ये वामपंथी सेकुलरवादियों का दूरगामी षड़यन्त्र है। वोट मिलते रहें। हिन्दू ह्रदय दबा रहे। विकास न करना पड़े।

धर्म का सच्चा रूप सुनो भाई साधो, तुंगभद्रा पर सूर्योदय, अरावली का मुक्त शिखर, सरस्वती–सदानीरा, शहजादा दाराशिकोह : दहशत का दंश में उद्‌घाटित हुआ है। धर्मान्धता की दहशत में पलता धर्म का सच्चा सर्वधर्म समभाव रूप मेरे उपन्यासों में दर्शनीय है। याज्ञवल्क्य, कबीर, माधवाचार्य, दाराशिकोह, उधोदास वैरागी, महाराणा प्रताप आदि इस सच्चे समभावी धर्म के प्रतिनिधि हैं। सच में धर्म विरोधी, मजहबी सियासत के समर्थक वाम–सेकुलरवादी भारत में विद्यमान धर्म के व्यापक मानवीय रूप को समझना नहीं चाहते हैं। व्यापक मानवीय धर्म ही देश में विकास और शान्ति दे सकाता है।

13.रघुवीर सिंह– आपकी राष्ट्रीय–सांस्कृतिक विचारधारा प्रगतिशील मूल्यों के साथ मेल खाती है क्या? राष्ट्रवादी कहकर प्रगतिशीलता का विरोधी बता दिया जाता है। हमारे मन में उपजे इस भ्रम का निवारण अपने विवेकशील विश्लेषण द्वारा कीजिए।

शत्रुघ्न प्रसाद– मेरी सांस्कृतिक विचारधारा युगानुकूल प्रगतिशील है। काल निरन्तर है। संस्कृति निरन्तर प्रवाहित होती है। युगानुकूल–परिवर्तित–परिष्कृत होती रहती है। युग चेतना से समायोजित होती है। यही प्रगतिशीलता है। भारतीय धर्मसाधना का वैशिष्ट्य है–संस्कृति। रूढ़िवादी विरोध करते हैं। धीरे–धीरे परिष्कृत रूप को अपना लेते हैं। यह सत्य है। यह सम्यक है। डॉ अम्बेडकर को इस समाज से न्याय पाने में लम्बा समय लगा; यह खेद का विषय है। परन्तु वाम–सेकुलर प्रगतिवादी नहीं हैं– मेरी दृष्टि में। ये हिन्दू गौरव को मिटाने,

हिन्दू संस्कृति को मिटाने, हिन्दू धर्म को मिटाने को प्रगतिशीलता मानते हैं। आशय स्पष्ट है— हिन्दूओं को मिटाना प्रगतिशीलता नहीं हैं। हम अपने अतीत के साथ जुड़कर, अपने अतीत की संस्कृति एवं धर्म को परिष्कृत कर युगानुकूल परिवर्तन के साथ आगे बढ़ते रहें, यही सम्यक प्रगति है। मेरे उपन्यासों में व्यक्त राष्ट्रीय—सांस्कृतिक प्रगतिशीलता युगानुकूल परिष्कार प्राप्त करती हुई देश—समाज—संस्कृति का उन्नयन करने की विचारधारा से अनुप्रेरित है।

14.रघुवीर सिंह— आप अद्वैत समता दर्शन पर विश्वास रखते हैं। धर्म और दर्शन के लिए यह मत वर्तमान के लिए कितना प्रासंगिक है ? क्या यह जीवन का श्रेष्ठ दर्शन हो सकता है?

शत्रुघ्न प्रसाद— निस्संदेह यही श्रेष्ठ दर्शन है। स्वामी विवेकानन्द ने नववेदान्त की व्याख्या कर इसी अद्वैत समता दृष्टि की प्रतिष्ठा की थी। 1893 ई. की धर्मसभा ने इसे ही विश्व का श्रेष्ठ एवं आदर्श दर्शन बताया था। कबीर इसी दृष्टि को प्रदान कर चुके थे। इसी के प्रकाश में गॉधी तथा अन्य राष्ट्रवादी जन समाज को जोड़ने में सफल हुए थे। पूरा छायावादी काव्य तथा प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, शिवप्रसाद सिंह, रेणु, नरेन्द्र कोहली इसी प्रकाश में लिखते रहे हैं। यह नये युग को भारत का अवदान है। पूँजीवाद, ईसाइयत, पश्चिमी दर्शन, मध्य एशिया का तौहीद दर्शन, मार्क्सवाद, माओवाद आदि के समक्ष अद्वैत समता दर्शन सर्वाधिक मानवीय व युगानुकूल है।

15.रघुवीर सिंह— महिमा जी, आपने अपने पिताजी को किसी विशिष्ट पूजा विधान या विचारधारा की ओर अग्रसर पाया है? इनकी धार्मिक—दार्शनिक मान्यता पर कुछ बता सकेंगी, हमें ?

महिमाश्री— पिताजी धार्मिक है, पूजा—पाठी नहीं। हिन्दू धर्म अर्थात् सनातन धर्म के मानवीय एवं आत्मीय स्वरूप को अपनाए हुए हैं। सनातन धर्म के मानवीय रूप पर आस्था रखते हैं या कहूँ कि जीवन में अपनाए हुए है। माँ पूजा—पाठी हैं। ये उन्हें नहीं रोकते। स्वयं तो स्नानादि से निवृत होने पर कुछ मौन मंत्रोच्चारण कर ईश्वर को याद करते हैं। पर्वों पर उल्लास दिखाते हैं। सारे मुहल्लेवासियों व मित्रों—परिचितों को प्रसाद वितरण करना परम दायित्त्व समझते हैं। माँ आर्य—समाजी हैं, पिताजी सनातनी। परन्तु सारे पूजा—विधान माँ ही सम्पन्न करती है। किसी भी धर्म के प्रति नकारात्मक भाव पिताजी के मन में नहीं देखा। सम भाव इनकी दार्शनिक भावना का प्रबल अंग है। आस्था इनकी शक्ति है। भारतीय जीवन पद्धति यथा—योग करना, प्राणायाम करना, सुबह जल्दी उठना, देशी व्यंजन और शाकाहारी भोजन पसन्द करना ही श्रेयस्कर मानते हैं। यही इनका धार्मिक दर्शन है। यही जीवन दर्शन है।

16.रघुवीर सिंह– 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य' भारतीय इतिहास का गौरवमयी पात्र है। 'शिप्रा साक्षी हैं', 'जोगी मत जा' व गन्धर्वसेन उपन्यासों में इस पात्र के जीवन को भिन्न–भिन्न रूप में व्यक्त किया है। 'दाराशिकोह' व कबीर की पत्नी 'लोई' पर भी मत–वैभिन्य है। ऐतिहासिक सत्य क्या है?

शत्रुघ्न प्रसाद– 'शिप्रा साक्षी है' 'कालकाचार्य कथानक' ग्रन्थ व अन्य उपलब्ध प्रमाणों पर आधारित है। मेरी दृष्टि राजतंत्र के पतन एवं गणतंत्र की महत्ता तथा सर्व धर्म सम भाव पर आधारित है। साथ ही विदेशियों के शनैः शनैः भारतीयकरण पर आधारित है। गंधर्वसेन राजमद में अंहकारी एवं विलासी हो जाता है। गणतन्त्र की उपेक्षा करता है। मुनि कालकाचार्य क्रोध पर संयम नहीं रख पाते हैं। विदेशी शकों को आमंत्रित करते हैं। उज्जयनी शकों के अधीन हो जाता है। राजा का अहंकार और मुनि का क्रोध दोनों ही जन–जीवन के लिए घातक हैं, सिद्ध होता है। विक्रमादित्य अपनी एकत्व भावना व पराक्रम शक्ति से शकों को पराजित कर उज्जयनी पर पुनः भारतीय शासन की प्रतिष्ठा करते हैं। विक्रम संवत का प्रवर्त्तन होता है। यही ऐतिहासिक सत्य है। 'दाराशिकोह' एक उदारचेता अद्वैत एकात्म साधक रहा है। उसका राजनीतिज्ञ दुर्बल रहा है। उदारता व सर्व धर्म सम भाव प्रबल रहा। धर्मान्ध–कट्टर पंथ के प्रभाव से पराजित हुआ। मारा गया। यही ऐतिहासिक सत्य है।

'लोई' कबीर की पत्नी थी। कबीर और लोई का दाम्पत्य आत्मीयता एवं प्रेम के साथ–साथ समपर्ण का प्रतीक रहा है। सिकन्दर लोदी की कट्टरता व कबीर की मानवीयता में टकराव है। लोई कबीर की शक्ति बनती है। उस युग में नव धर्मान्तरित बुनकर समुदाय ईस्लाम धारण करने पर भी पीड़ित है। कबीर को ब्राह्मण एवं मुल्ला–मौलवी दोनों से प्रताड़ना मिलती है। कबीर निर्भीक है। दोनों पर प्रहार करते है। यही ऐतिहासिक सच्चाई है।

17.रघुवीर सिंह– 'सरस्वती–सदानीरा' का प्रसंग कहाँ से लिया गया है? इसे मिथक कहें या सत्य।

शत्रुघ्न प्रसाद– 'सरस्वती–सदानीरा' ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, वृहदारण्यक उपनिषद में प्राप्त प्रसंगो एवं राधाकृष्ण चौधरी की पुस्तक 'एनसिएन्ट इण्डिया' से प्राप्त तथ्यों पर आधारित है। वैदिक युग मिथक नहीं, सत्य है। पुराणों की कथाओं को मिथक कहकर भारतीय संस्कृति को कमजोर करने का प्रयास है। यह प्राचीन भारत का इतिहास ही है। जीवन है। रूपान्तररित होकर काल्पनिक लगने लगा है। 'सरस्वती–सदानीरा' पुराणों पर आधारित नहीं है। वैदिक युग से अब तक भारतीय जीवन निरन्तरित है।

18.रघुवीर सिंह– आपके उपन्यासों में दाम्पत्य में अद्वैत भाव एवं काम के मंगलमय स्वरूप की स्थापना दिखाई देती है जबकि समूचा–नारी विमर्श स्त्री के उन्मुक्त जीवन का पक्षधर है। यह विचार कितना प्रासंगिक है ?

शत्रुघ्न प्रसाद– आज का नारी–विमर्श पश्चिम से प्रेरित दृष्टि है। स्वतन्त्र जीवन नारी को उपभोग की वस्तु बना रहा है। नारी अस्मिता का प्रश्न आज भी यथावत है। इसमें नारी व समाज दोनों का कल्याण नहीं है। परिवार एवं समाज का भंजक है। नारी विमर्श में व्यक्त नारी आक्रोश एवं विद्रोह का समर्थन नहीं किया जा सकता है। नारी को भोग की ओर ले जाना नारी अस्मिता व नारी हित नहीं है। स्वावलम्बन व स्वतन्त्र चेतना तो समझी जा सकती है। भारतेन्दु से लेकर अब तक अनेक कवि–लेखक नारी–स्वतन्त्रता के पक्षधर हैं; पर यह नारी विमर्श भिन्न है। नारी जीवन के लिए काम का मंगलमय रूप और अद्वैत दाम्पत्य भाव ही श्रेयस्कर है। स्वतन्त्र अस्मिता के साथ प्रेम नारी का प्राण है, शक्ति है। अद्वैत भाव का प्रेम ही नारी जीवन की अस्मिता व सार्थकता है। मेरा विचार शाश्वत प्रासंगिक है।

19.रघुवीर सिंह– महिमा जी, आप अपने पिताजी के काम एवं दाम्पत्य सम्बन्धी विचारों से कितना सहमत हैं। उन्मुक्त नारी, आदर्श नारी, काम की मर्यादा ! कहाँ तक प्रासंगिक ?

महिमा श्री– पिताजी नारी को परिवार, समाज व राष्ट्र की धुरी मानते हैं परन्तु नारी के प्रति परम्परागत अवधारणा नहीं है। आज की स्वतंत्र विचारधारा के अनुकूल दाम्पत्य जीवन को श्रेष्ठ मानते हैं; चाहे प्रेम–विवाह का दाम्पत्य ही हो। पिताजी स्त्री की स्वायत्तता को परिवार एवं दाम्पत्य के दायरे में देखना चाहते हैं। पिताजी ने मेरी माताजी को विवाह के बाद एम.ए. करवाया। हम सब बहनों को पढ़ाया–लिखाया। मुझे दिल्ली में रहने की छूट दी। इन्हें परम्परागत या स्त्री–मुक्ति का विरोधी नहीं कहा जा सकता। पश्चिमी भोगवाद इन्हें मान्य नहीं है। मैं स्वयं स्वतन्त्र विचारों की हूँ। स्त्री स्वतन्त्रता की समर्थक हूँ। कविताएँ लिखती हूँ इस विषय पर। पिताजी के स्त्री विचारों का आदर करती हूँ। विचार स्त्री–पुरूष के सार्थक जीवन पर होना चाहिए।

20.रघुवीर सिंह– आप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े रहे हैं। आपातकाल के दौरान कारावास में भी रहना पड़ा। संघ की हिन्दूवादी संगठन कहकर आलोचना की जाती है। अपना अनुभव हमारे साथ बाँटिए।

शत्रुघ्न प्रसाद– संघ को हिन्दूवादी संगठन कहकर आलोचना एकांगी दृष्टिकोण है। संघ ने राष्ट्र की अस्मिता को बचाया है। हम अपनी संस्कृति के साथ आगे क्यों नहीं बढ़ सकते। आलोचना करने वाले अपनी संस्कृति व राष्ट्रीयता को मिटाकर कौनसा गौरव प्राप्त कर लेंगे। केवल दुराग्रह है। कुछ न पा सकेंगे। यह राष्ट्रवादी संगठन है। संघ में मुझे राष्ट्र, अपनी संस्कृति, अपने इतिहास तथा विभिन्न युगों के संघर्ष को समझने का बोध हुआ। प्रगतिशील भारतीय जीवन मूल्यों से प्रेरित व अनुप्राणित हुआ। यह जीवन का पाथेय बना। यह राष्ट्र का पाथेय बन सकता है। यदि सब अपनाएँ।

21.रघुवीर सिंह– पुरस्कार वापसी के दौर में राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत होने जा रहे हैं। कैसा महसूस करते हैं ? पुरस्कार का साहित्यकार के जीवन में क्या महत्त्व है?

शत्रुघ्न प्रसाद– पुरस्कार वापसी राजनीतिक षड़यन्त्र है। यहाँ साहित्यकार का गौरव मलिन होता है। साहित्यकार तो राजनीति को दिशा देता है। राजनीति का हथकण्डा नहीं होता। बिहार चुनाव के बाद स्वतः बन्द हो जाना इसकी सच्चाई प्रकट कर देता है। इसका कोई मूल्य नहीं। श्रेष्ठ रचनाओं व रचनाकारों का सम्मानित व पुरस्कृत होना गौरव का विषय है। अपने लेखन के लिए पुरस्कार पाना भी गौरव का विषय है। परन्तु इसके लिए लामबन्दी करना गौरव का हनन करता है। मिलीभगत का सम्मान या सम्मान की लालसा साहित्य की उत्कृष्टता में कमी लाता है। पुरस्कार गौरव व उत्साह देता है परन्तु मेरा लेखन संकल्प एवं विचारों से ही अनुप्राणित है।

22.रघुवीर सिंह– महिमा जी! आपके पिताजी को पुरस्कार प्राप्त करते देखकर आप कैसा महसूस करती हैं?

महिमा श्री– गर्वित! आह्लादित। सच पूछो तो पिताजी इससे भी ज्यादा के हकदार हैं। साहित्य के प्रति लगन व समपर्ण इन्हें तपस्वी का दर्जा देता है। सच में पिताजी, साहित्य–तपस्वी हैं। क्योंकि ये पुरस्कार, सम्मान या प्रशंसा की दृष्टि से कभी नहीं लिखते। आत्मलीन या साहित्य–लीन। राष्ट्र, संस्कृति, समाज के प्रति ही इनका साहित्य संकल्पित है। रॉयल्टी के बारे में भी नहीं सोचते है। ऐसे तपस्वी साहित्यकार को पुरस्कृत होते देखकर गौरवान्वित महसूस करूँगी। अभी तो यह पुरस्कार समारोह स्थगित हो गया है।

23.रघुवीर सिंह– आगामी पीढ़ी के लिए कोई संदेश या प्रेरणा देना चाहेंगे। जीवन–दर्शन का संदेश।

शत्रुघ्न प्रसाद– आगामी पीढ़ी अतीत को समझते हुए राष्ट्र, धरती, संस्कृति, समाज से अनुप्राणित होकर आगे बढ़े। यही चाहूँगा। समरस भाव का समाज बन सके। विषमता दूर हो सके। आगामी पीढ़ी का ऐसा प्रयास हो। आगामी पीढ़ी के लिए यही जीवन प्रेरणा हो। आगामी पीढ़ी का जीवन मंगलमय हो! साधुवाद।

Mahima
10/01/16